बी.एस.सी. द्वितीय वर्ष

प्राणीशास्त्र, प्रथम प्रश्नपत्र

कशेरूकी और उनका विकास

(Vertebrates and Evolution)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY-BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Mukesh Napit
   Asst. Professor,
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukarjee
   Science & Commerce College, Bhopal.
2. Dr. K.K. Mishra
   Asst. Professor,
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukarjee
   Science & Commerce College, Bhopal.
3. Dr. Mukesh Dixit
   Professor,
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukarjee
   Science & Commerce College, Bhopal.

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal.
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal.
3. Dr. Shailendra Kaushik
   Asst. Director,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal.
4. Dr. Mukesh Dixit
   Professor,
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukarjee
   Science & Commerce College, Bhopal.
5. Dr. K.K. Mishra
   Asst. Professor,
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukarjee
   Science & Commerce College, Bhopal.
6. Dr. Mukesh Napit
   Asst. Professor,
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukarjee
   Science & Commerce College, Bhopal.

COURSE WRITER

Manila Bhatia, Faculty of Biotechnology, Department of Zoology and Biotechnology, Govt. (Auto.) M.H. College of Home Science and Science for Women, Jabalpur (M.P.).

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. (Developed by Himalaya Publishing House Pvt. Ltd.) and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

कशेरूकी और उनका विकास

Syllabi	Mapping in Book
इकाई 1 : कॉर्डेटा का वर्गीकरण, यूरोकॉर्डेटा एवं सिफेलोकॉर्डेटा का सामान्य संगठन कॉर्डेटा की उत्पत्ति, संघ कॉर्डेटा का पार्कर एवं हैसबेल के अनुसार गण तक वर्गीकरण, यूरोकॉर्डेटा – हर्डमनिया का अध्ययन, सिफेलोकॉर्डेटा – ऐम्फिऑक्सस का अध्ययन, पेट्रोमाइजोन एवं मिक्सीन की तुलना।	**इकाई 1** : संघ–पृष्ठवंश या कॉर्डेटा **(पृष्ठ 3–79)**
इकाई 2 : तुलनात्मक अध्ययन : अध्यावरण, कंकाल एवं श्वसन तन्त्र अध्यावरण का तुलनात्मक अध्ययन, कॉर्डेटा (उभयचरी, सरीसृप, पक्षी तथा स्तनी) के लिम्ब अस्थियाँ, और गर्डिन्स का तुलनात्मक अध्ययन, श्वसन तन्त्र (उभयचरी, सरीसृप, पक्षी तथा स्तनी) का तुलनात्मक अध्ययन।	**इकाई 2** : अध्यावरण का तुलनात्मक विवरण **(पृष्ठ 80–251)**
इकाई 3 : तुलनात्मक अध्ययन : परिसंचरण तन्त्र, तन्त्रिका तन्त्र (स्नायु तन्त्र), मुत्रजनन तन्त्र एवं प्लेसेण्टा हृदय एवं महाधमनी चाप का तुलनात्मक अध्ययन, मस्तिष्क का तुलनात्मक अध्ययन, स्तनियों में मूत्रजनन तन्त्र एवं प्लेसेण्टा का तुलनात्मक अध्ययन।	**इकाई 3** : कॉर्डेटस के विभिन्न तन्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन **(पृष्ठ 252–365)**
इकाई 4 : जीवन की उत्पत्ति एवं उद्विकास जीवन की उत्पत्ति – आधुनिक सिद्धान्त केवल, लैंमार्कवाद, डार्विनवाद, आधुनिक संश्लेषण सिद्धान्त, विभिन्नता, उत्परिवर्तन, पृथकरण एवं जातिवाद, अनुकूलन, अनुहरण, माइको, मैक्रो एवं मेगा उद्विकास।	**इकाई 4** : जीवन की उत्पत्ती एवं विकासवाद **(पृष्ठ 366–500)**
इकाई 5 : जीवाश्मीकरण, विलुप्त प्राणियों का अध्ययन जीवाश्म, जीवाश्मीभवन की विधियाँ, जीवाश्म की आयु निर्धारण, विलुप्त प्राणियों का अध्ययन : डायनोसॉर्स एवं आर्कियोप्टेरिक्स, मानव का उद्विकास, भूवैज्ञानिक समय माप एवं द्वीपीय प्राणिजात।	**इकाई 5** : जीवाश्मीकरण, विलुप्त प्राणियों का अध्ययन **(पृष्ठ 501–606)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 संघ–पृष्ठवंश या कॉर्डेटा **3–79**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 कॉर्डेट लक्षण
1.2.1 प्राथमिक कॉर्डेट लक्षण
1.2.2 कॉर्डेटा तथा नॉन–कॉर्डेटा में भिन्नता
1.2.3 कॉर्डेट्स की उत्पत्ति
1.2.4 फाइलम कॉर्डेटा के मुख्य उप–खण्ड या सब–डिवीजन
1.2.5 फाइलम कॉर्डेटा का वर्गीकरण
1.2.6 सब–फाइलम
1.2.7 विशिष्ट लक्षण
1.2.8 सब–फाइलम क्रेनिएटा या वर्टीब्रेटा के सामान्य लक्षण
1.2.9 एनऐम्नियोटा तथा ऐम्नियोटा कशेरुकियों की तुलना
1.3 यूरोकॉर्डेटा–प्रतिरूपी उदाहरण– हर्डमानिया
1.3.1 बाह्य लक्षण
1.3.2 टेस्ट
1.3.3 कंटिकाएँ
1.3.4 सामान्य शरीर
1.3.5 मेंटल (प्रावार) तथा एट्रियम (परिकोष्ठ)
1.3.6 यूरोकॉर्डेटा की सम्बन्ध–निकटताएँ
1.4 सिफेलोकॉर्डेटा–ऐम्फिऑक्सस लैन्सिओलेट्स
1.4.1 नाम की व्युत्पत्ति
1.4.2 भौगोलिक वितरण
1.4.3 ऐम्फिऑक्सर्स के आदिम गुण
1.4.4 विशिष्ट लक्षण
1.4.5 आहार–नाल का श्वसन क्रिया से सम्बन्ध
1.4.6 रुधिर–परिवहन का पथ
1.4.7 ऐम्फिऑक्सस के उत्सर्जी अंग
1.4.8 ऐम्फिऑक्सस का तन्त्रिका–तन्त्र
1.4.9 ऐम्फिऑक्सस के तन्त्रिका तन्त्र की विशिष्टताएँ
1.5 पैट्रोमाइजोनः बाह्य लक्षण तथा मिक्सीन से तुलना
1.5.1 वितरण
1.5.2 स्वभाव एवं वास–स्थान
1.5.3 बाह्य लक्षण
1.5.4 पेट्रोमाइजोन का ऐमोसीट लार्वा की संरचना तथा इसका महत्व
1.5.5 मिक्सीन
1.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 अध्यावरण का तुलनात्मक विवरण **80—251**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अध्यावरण का तुलनात्मक अध्ययन
2.2.1 चर्म / डर्मिस
2.2.2 त्वचा के कार्य
2.2.3 त्वचा की व्युत्पत्तियाँ
2.2.4 एपिडर्मिस की व्युत्पत्तियाँ
2.2.5 चर्मीय / डर्मल व्युत्पत्तियाँ
2.2.6 मत्स्य वर्ग में चर्मी शल्क
2.2.7 चतुष्पादों में डर्मल व्युत्पत्तियाँ
2.2.8 पक्षियों में त्वचा के व्युत्पन्न
2.2.9 पिच्छ विन्यास
2.2.10 स्तनी
2.2.11 शल्कों, बालों एवं परों / पंखों की संरचना
2.2.12 बालों के कार्य
2.3 कशेरुकियों में कंकाल तन्त्र : लिम्ब बोन्स एवं गर्डिल्स
2.3.1 कंकाल
2.3.2 अन्तःकंकाल के कार्य
2.3.3 कशेरुकियों के अन्तःकंकाल के भाग
2.3.4 गर्डिल्स या मेखलाएँ
2.3.5 कशेरुकी के विभिन्न वर्गों में पेक्टोरल गर्डिल
2.3.6 कशेरुकी के विभिन्न वर्गों में पेल्विक गर्डिल
2.3.7 कशेरूक के पाद, मेखलाएँ का तुलनात्मक अध्ययन
2.3.8 लिम्ब बोन्स
2.3.9 टेट्रापोडा
2.4 कशेरुकियों में पाचन तन्त्र
2.4.1 स्कॉलिओडॉन का पाचन तन्त्र
2.4.2 मेंढक का पाचन तन्त्र
2.4.3 पाचक ग्रन्थियाँ
2.4.4 यूरोमैस्टिक्स का पाचन तन्त्र
2.4.5 कबूतर का पाचन तन्त्र
2.4.6 बर्सा फैब्रिसाई
2.4.7 लीपस का पाचन तन्त्र
2.4.8 यकृत की रचना के बारे में आधुनिक मत
2.4.9 यकृत के कार्य
2.4.10 पैन्क्रियाज या अग्न्याशय
2.5 श्वसन तन्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
2.5.1 कशेरुकों में श्वसन तन्त्र
2.5.2 गिल्स / क्लोम
2.5.3 फेफड़े
2.5.4 प्रतिनिधि कशेरुकों का श्वसन तन्त्र
2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 कॉर्डेटस के विभिन्न तन्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन **252—365**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 कशेरुकियों में परिसंचरण तन्त्र
3.2.1 हृदय
3.2.2 कशेरुकियों के विभिन्न वर्गों में हृदय का अध्ययन
3.2.3 कशेरुकियों में ऐओर्टिक आर्चेज
3.2.4 कशेरुकियों में ऐओर्टिक आर्चेस का रूपान्तरण
3.3 कशेरुकियों में तन्त्रिका तन्त्र : मस्तिष्क
3.3.1 तन्त्रिका तन्त्र का विभाजन
3.3.2 कशेरुकियों का केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र
3.3.3 विभिन्न कशेरुकियों में मस्तिष्क का अध्ययन
3.4 मूत्रजनन तन्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
3.4.1 कशेरुकी गुर्दे एवं वाहिनियाँ
3.4.2 प्रतिनिधि कशेरुकों का उत्सर्जी तन्त्र
3.4.3 विभिन्न कशेरुक प्राणियों में जनन अंगों का अध्ययन
3.5 स्तनियों में प्लेसन्टेशन
3.5.1 प्लेसेन्टा
3.5.2 भ्रुण का इम्प्लांटेशन
3.5.3 प्लेसेन्टा का वर्गीकरण
3.5.4 प्लेसेन्टा की कार्यिकी एवं कार्य
3.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 जीवन की उत्पत्ती एवं विकासवाद **366—500**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 जीवन की उत्पत्ति
4.2.1 प्राचीन परिकल्पना
4.2.2 आधुनिक परिकल्पना
4.2.3 प्रारम्भिक पृथ्वी तथा वायुमण्डल का निर्माण
4.2.4 वायरस रूपी जीवन के विकास—क्रम में इनका स्थान
4.2.5 जीवन की उत्पत्ति में वायरस का महत्व
4.3 लैमार्कवाद एवं डार्विनवाद
4.3.1 जैव—विकास का संक्षिप्त इतिहास
4.3.2 जैव—विकास के सिद्धान्त
4.3.3 (अ) डार्विनवाद
4.3.4 (ब) प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त या डार्विनवाद
4.3.5 (क) डार्विनवाद की आलोचना
4.3.6 (ड) नव—डार्विनवाद
4.3.7 लैमार्कवाद तथा डार्विनवाद की तुलना
4.3.8 जननद्रव्य सिद्धान्त
4.3.9 जनन चयन सिद्धान्त
4.3.10 जननद्रव्य सिद्धान्त की आपत्ति

4.4 विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त उत्परिवर्तन, विभिन्नता, पृथक्करण एवं जाति उद्भवन
4.4.1 विकास का आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त
4.4.2 प्रभावी कारकों के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार
4.4.3 विभिन्नताएँ
4.4.4 विभिन्नताओं के प्रकार
4.4.5 पृथक्करण
4.4.6 पृथक्करण के लाभ
4.4.7 जाति उद्भवन
4.5 अनुकूलन एवं अनुकृति
4.5.1 अनुकूलन
4.6 अनुकृति/अनुहरण
4.6.1 रक्षात्मक अनुकृति/रक्षात्मक अनुहरण
4.6.2 आक्रमणात्मक अनुकृति
4.6.3 मृत्यु का बहाना
4.6.4 बेटेसियन तथा मुलेरियन अनुकृति
4.7 सूक्ष्म, दीर्घ एवं वृहत् विकास
4.7.1 माइक्रो या सूक्ष्म विकास
4.7.2 मैक्रो–इवोल्यूशन या दीर्घ विकास
4.7.3 मैगा–इवोल्यूशन या वृहत – विकास
4.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.9 सारांश
4.10 मुख्य शब्दावली
4.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.12 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 जीवाश्मीकरण, विलुप्त प्राणियों का अध्ययन **501–606**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 जिवाश्म, जीवाश्मीकरण की प्रक्रिया, जीवाश्मों का आयु निर्धारण
5.2.1 जिवाश्म विज्ञान/जीवाश्मिकी के प्रभाग
5.2.2 चट्टानों के प्रकार
5.2.3 जीवाश्म
5.2.4 जीवाश्म–निर्माण
5.2.5 जीवाश्म अभिलेख
5.2.6 जीवाश्मों के प्रकार
5.2.7 जीवाश्मीभवन की दशा
5.2.8 जीवाश्म के अध्ययन का महत्व
5.2.9 जिवाश्मों की आयु निर्धारण
5.3 विलुप्त प्राणियों का अध्ययन डाइनोसॉर्स एवं आर्किऑप्टेरिक्स
5.3.1 डायनोसार्स
5.3.2 डायनोसार्स की उत्पत्ति
5.3.3 आर्किऑप्टेरिक्स
5.3.4 आर्किऑप्टेरिक्स के प्रमुख लक्षण
5.3.5 आर्किऑप्टेरिक्स का महत्व
5.4 प्राणी भौगोलिक वितरण
5.4.1 पेलिआर्कटिक परिमण्डल
5.4.2 निआर्कटिक परिमण्डल
5.4.3 नियोट्रॉपिकल परिमण्डल

5.4.4 इथियोपियन परिमण्डल
5.4.5 ओरिएण्टल परिमण्डल
5.4.6 ऑस्ट्रेलियन परिमण्डल
5.5 मानव का विकास
5.5.1 जन्तु जगत में मानव का स्थान
5.5.2 मानव के विकास का संक्षिप्त इतिहास
5.5.3 भविष्य का मानव / होमो फ्युच्युरिस
5.6 भौमिक समय–सारणी एवं द्वीपीय प्राणी समूह
5.6.1 विभिन्न युगों के अन्तर्गत जैव–विकास
5.6.2 द्विपीय प्राणी समूह
5.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.8 सारांश
5.9 मुख्य शब्दावली
5.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.11 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्राणी शास्त्र प्राणियों के व्यवहार संरचना शरीर विज्ञान वर्गीकरण एवं वितरण का वैज्ञानिक अध्ययन हैं। जन्तु विज्ञान के नाम से भी जाना जाता है। इस जीव विज्ञान की शाखा के अन्तर्गत प्राणी के जीवन का किसी क्षेत्र विशेष तथा समय के सापेक्ष अध्ययन किया जाता है। प्राणी विज्ञान का ज्ञान जगत के लिए महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि वन्य जीवों से सम्बन्धित जानकारी प्रकृति का संतुलन बनाए रखने में उनकी भूमिका आदि से अवगत कराता है। यह वन्य जीवों की वृद्धि और रक्षा के लिए प्राकृतिक पुनर्वास और प्रजनन, सुरक्षा और संरक्षण के प्रति लोगों को जागरूक करता है। प्राणी शास्त्र कोशिका की उत्पत्ति, जीन सिद्धांत, समस्थिति, जीवन की उत्पत्ति, प्राणियों का विकास और उनकी प्रवृत्ति व्यवहार संरचना आदि सिद्धांतों पर आधारित हैं। यह पुस्तक दूरस्थ शिक्षा पाठ्यक्रम मे स्नातक स्तर के द्वितीय वर्ष के प्राणी विज्ञान विषय के प्रश्न पत्र कशेरूकी और उनका विकास लिए लिखी गई है। जिसमे कशेरूकी प्राणियों, यूरोकॉर्डेटा, सिफेलोकॉर्डेटा, एम्फिबीयन्स, रेप्टाइल्स, पक्षी एवं स्तनी, की उत्पत्ति, वर्गीकरण, विभिन्न शारीरिक तन्त्रों, जैसे– त्वचा तन्त्र, रक्त और परिवहन तन्त्र, पाचन तन्त्र, अस्थि तन्त्र आदि, के विकास, जीवन की उत्पत्ति के सिद्धांत, और उनके जीवाश्म विज्ञान से सम्बन्धित जानकारी को सुव्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत कर, विद्यार्थियों को बोध कराने का प्रयास किया गया है। यह पुस्तक स्व-निर्देशात्मक प्रारूप मे लिखी गई है, जोकि 5 इकाइयों मे विभाजित है। प्रत्येक इकाई विषय परिचय के साथ शुरू होती है, जिसके बाद उद्देश्य के रूप में रूपरेखा तैयार की गई है। पाठ्यक्रम सामग्री को सरल और सुव्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत कर समझाने का प्रयास किया गया है और पाठक पाठ मे दिये गए सवालों को हल कर अपनी प्रगति का परीक्षण कर सकता है। प्रत्येक इकाई के अन्त मे स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्नों की सूचि अभ्यास प्रश्नावली के रूप में दी गई है। जिस में लघु उत्तरीय के साथ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न भी शामिल है। विद्यार्थियों के लिए, इकाई के अन्त मे इकाई सारांश और कुंजी शब्द अनुभाग बहुत ही उपयोगी है जोकि इकाई पाठ्य सामग्री को प्रभावी बनाता हैं।

मनीला भाटिया
जबलपुर, म.प्र.

इकाई 1 संघ–पृष्ठवंश या कॉर्डेटा (Phylum – Chordata)

टिप्पणी

संरचना (Structure)

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 कॉर्डेट लक्षण
  1.2.1 प्राथमिक कॉर्डेट लक्षण
  1.2.2 कॉर्डेटा तथा नॉन–कॉर्डेटा में भिन्नता
  1.2.3 कॉर्डेट्स की उत्पत्ति
  1.2.4 फाइलम कॉर्डेटा के मुख्य उप–खण्ड या सब–डिवीजन
  1.2.5 फाइलम कॉर्डेटा का वर्गीकरण
  1.2.6 सब–फाइलम
  1.2.7 विशिष्ट लक्षण
  1.2.8 सब–फाइलम क्रेनिएटा या वर्टीब्रेटा के सामान्य लक्षण
  1.2.9 एनऐम्नियोटा तथा ऐम्नियोटा कशेरुकियों की तुलना
1.3 यूरोकॉर्डेटा–प्रतिरूपी उदाहरण– हर्डमानिया
  1.3.1 बाह्य लक्षण
  1.3.2 टेस्ट
  1.3.3 कंटिकाएँ
  1.3.4 सामान्य शरीर
  1.3.5 मेंटल (प्रावार) तथा एट्रियम (परिकोष्ठ)
  1.3.6 यूरोकॉर्डेटा की सम्बन्ध–निकटताएँ
1.4 सिफेलोकॉर्डेटा–ऐम्फिऑक्सस लैन्सिओलेट्स
  1.4.1 नाम की व्युत्पत्ति
  1.4.2 भौगोलिक वितरण
  1.4.3 ऐम्फिऑक्सर्स के आदिम गुण
  1.4.4 विशिष्ट लक्षण
  1.4.5 आहार–नाल का श्वसन क्रिया से सम्बन्ध
  1.4.6 रुधिर–परिवहन का पथ
  1.4.7 ऐम्फिऑक्सस के उत्सर्जी अंग
  1.4.8 ऐम्फिऑक्सस का तन्त्रिका–तन्त्र
  1.4.9 ऐम्फिऑक्सस के तन्त्रिका तन्त्र की विशिष्टताएँ
1.5 पैट्रोमाइजोनः बाह्य लक्षण तथा मिक्सीन से तुलना
  1.5.1 वितरण
  1.5.2 स्वभाव एवं वास–स्थान
  1.5.3 बाह्य लक्षण
  1.5.4 पेट्रोमाइजोन का ऐमोसीट लार्वा की संरचना तथा इसका महत्व
  1.5.5 मिक्सीन
1.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

1.0 परिचय (Introduction)

यह संघ (Phylum) जन्तु जगत का अधिक विषमांग (heterogenous) समूह है जिसमें ऱ्हासित ट्यूनीकेट (degenerate tunicate), एम्फिऑक्सस (Amphioxus) तथा वास्तविक कशेरुकी जैसे मछलियाँ (fishes), एम्फीबियन (Amphibians), रेप्टाइल्स (reptiles), पक्षी (birds) तथा स्तनधारी (mammals), रखे गये। देखने में ये सभी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न नजर आते हैं परन्तु वास्तव में इन सभी में कुछ आधारभूत विशिष्ट लक्षण होते है, जैसे– नोटोकार्ड, पृष्ठ तन्त्रिका कार्ड तथा गिल छिद्र। कॉर्डेटा सभी प्रकार के हो सकते हैं। ये छोटे, बड़े, ऱ्हासी, स्थानबद्ध (sessile), स्वतन्त्र तथा स्थूल शरीर के हो सकते हैं। प्रायः सभी प्रकार के वातावरण में ये मिलते हैं परन्तु कोई भी सदस्य परजीवी (parasite) नहीं है।

1.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कॉर्डेट लक्षण के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- यूरोकॉर्डेटा – प्रतिरूपी उदाहरण दे पाऐंगे।
- सिफेलोकॉर्डेटा के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर पाऐंगे।
- पैट्रोमाइजोन बाह्य लक्षण तथा मिक्सीन से तुलना कर पाऐंगे।

1.2 कॉर्डेट लक्षण (Chordate Characters)

फाइलम कॉर्डेटा के जन्तु द्विपक्षीय सममित (bilaterally symmetrical), विखण्डित (metamerically/segmented)/त्रिस्तरीय/(triploblastic)/सगुहीय (coelomate) एवं जटिल संरचना वाले जन्तु हैं। इनमें निम्न तीन प्राथमिक कॉर्डेट लक्षणों में से एक या एक से अधिक गुणों का जीवन की किसी न किसी अवस्था में पाया जाना आवश्यक है।

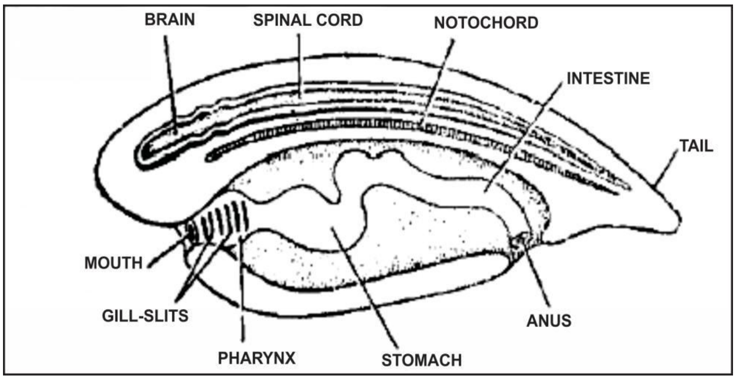

चित्र क्र. 1.1: प्रारूपी कॉर्डेट की संरचना
(Structure of a Typical Chordate)

टिप्पणी

1.2.1 प्राथमिक कॉर्डेट लक्षण (Primary Chordate Characters)

1. **नोटोकॉर्ड की उपस्थिति (Presence of Notochord)**– हेमीकॉर्डेटा के अतिरिक्त समस्त कॉर्डेट जन्तुओं में एक ठोस, अखण्डनीय, लचीली किन्तु कठोर अक्षीय शलाका के रूप में नोटोकॉर्ड (notochord) पायी जाती है। यह शरीर के पृष्ठ भाग में आहार–नाल के ऊपर तथा पृष्ठ नर्व–कॉर्ड (nerve cord) के नीचे शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती है। यह मध्य पृष्ठतल में आहार–नाल की एण्डोडर्म (endoderm) से विकसित होती है। नोटोकॉर्ड विशेष प्रकार की धानीयुक्त पैरेनकाइमेटस कोशिकाओं से बनी होती है, जिनके बाहर आन्तरिक लचीला तथा बाहरी तन्तुमय संयोजी ऊतक (fibrous connective tissue) का आवरण होता है। नोटोकॉर्ड प्राथमिक आन्तरिक कंकाल (endoskeleton) बनाती है जो केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र (central nervous system) तथा पेशियों को अवलम्बन प्रदान करते हैं।

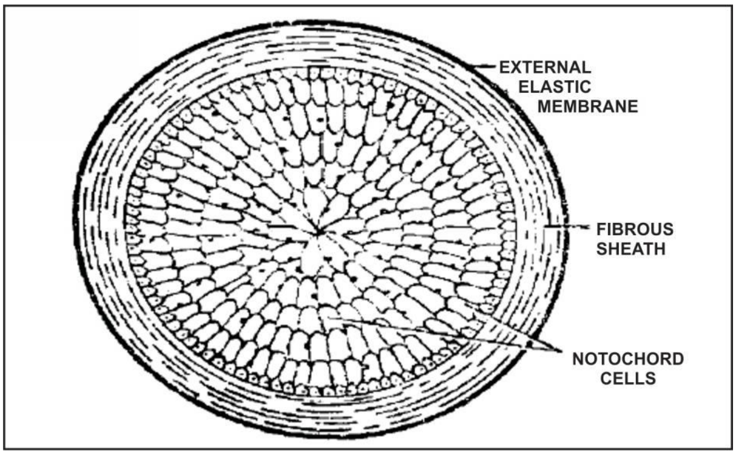

चित्र क्र. 1.2: लैम्प्रे की नोटोकॉर्ड का अनुप्रस्थ काट
(T.S. Notochord of Lamprey)

2. **पृष्ठ नालाकार केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र की उपस्थिति (Presence of dorsal tubular central nervous system)**– कॉट जन्तुओं का तन्त्रिका–तन्त्र एक खोखली नली के आकार का होता है जो देह भित्ति के ठीक नीचे तथा नोटोकॉर्ड के ऊपर मध्य पृष्ठतल में स्थित होता है। यह भ्रुण में एक्टोडर्म के मध्य–पृष्ठतल के अन्तर्गमन द्वारा बनती है। अन्तर्गमन के फलस्वरूप न्यूरल ग्रूव (neural groove) बनती है जिसके दोनों किनारों के मध्य में मिलने से न्यूरल नाल (neural tube) का निर्माण होता है। यह एपिडर्मिस से अलग होकर केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र का निर्माण करती है।

   इसकी गुहा तन्त्रिका गुहा (neurocoel) कहलाती है। अधिक विकसित कॉर्डेट जन्तुओं में तन्त्रिका–नाल का अगला सिरा चौड़ा होकर मस्तिष्क का

टिप्पणी

निर्माण करता है तथा शेष भाग स्पाइनल कॉर्ड या रीढ़ रज्जु (spinal cord) बनाता है।

3. **ग्रसनी विदर की उपस्थिति (Pharyngeal Clefts)**– ग्रसनी विदर या आशय विदर (visceral clefts) समस्त कार्डेट जन्तुओं में जीवन की किसी न किसी प्रावस्था में अवश्य पाये जाते हैं। ये आहार नाल की अगली पार्श्व दीवारों में युगल छिद्रों के रूप में पाये जाते हैं जिनके द्वारा ग्रसनी गुहा बाहर को खुलती है। भ्रुण गर्भावस्था में ये एक्टोडर्म के अंदर की ओर धंसने, तथा ग्रसनी के एण्डोडर्म के बाहर की और उभरने एवं दोनों के समेकन से बनते हैं। कुछ जन्तुओं (एम्फीऑक्सस) में ये जीवन–पर्यन्त पाये जाते हैं। मछलियों में ये क्लोमों में परिवर्तित हो जाते हैं और क्लोम–छिद्रों द्वारा बाहर खुलते हैं। स्थलीय जन्तुओं में ये अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में परिवर्तित हो जाते हैं।

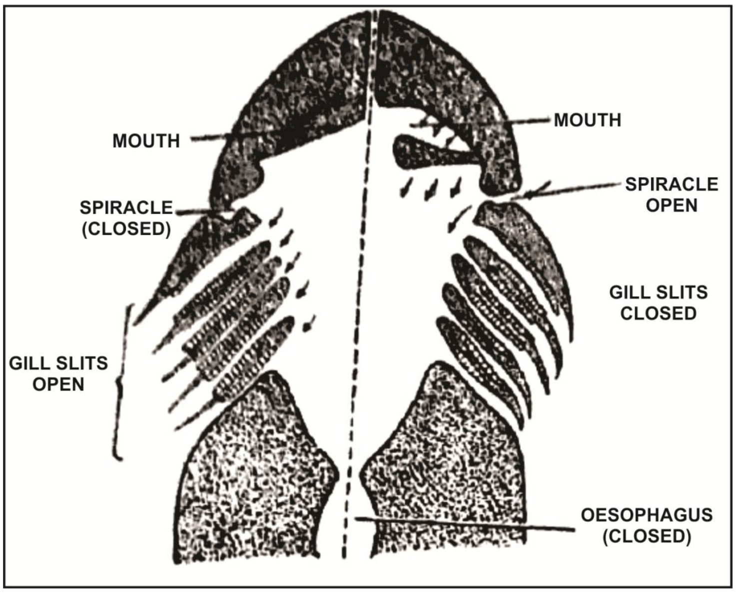

चित्र क्र. 1.3: जलीय कॉट में क्लोम–विदर (Gill-clefts) या क्लोम–छिद्र (Gill-slits)

1.2.2 कॉर्डेटा तथा नॉन–कॉर्डेटा में भिन्नता (Differences between Chordata and Non-chordata)

प्राथमिक कॉर्डेटा लक्षणों के व्यतिरिक्त कॉर्डेट तथा नॉन–कॉर्डेट जन्तुओं में निम्नलिखित अन्तर है–

1. **जीवित अन्तःकंकाल की उपस्थिति (Presence of living endoskeleton)**– कॉर्डेट जन्तुओं में मजबूत अस्थियों का बना हुआ ढाँचा होता है जो शरीर के अंदर स्थित होता है। नॉन–कॉर्डेट जन्तुओं में या तो कंकाल का अभाव होता या यह बाह्यकंकाल होता है, जो जीवित काइटिन पदार्थ का बना होता है।

टिप्पणी

2. **पुच्छ की उपस्थिति (Presence of a post-anal tail)**– शरीर के मुख्य अक्ष का गुदाद्वार के पास वाला भाग वास्तविक पुच्छ कहलाता है। इसमें पेशिया, नर्वकार्ड, नोटोकार्ड या कशेरुक दण्ड एवं रक्त–वाहिनियाँ होते हैं, किन्तु पार्श्व अंगों का प्रभाव होता है। नॉन–कॉर्डेट जन्तुओं की पुच्छ कार्डेट जन्तुओं से बिल्कुल भिन्न होती है।
3. **अधर हृदय (Ventral heart)**– कॉर्डेटा में हृदय आहार नाल के नीचे अधर तल पर स्थित होता है, किन्तु नॉन–कॉर्डेटा में यह सदैव आहार–नाल के ऊपर स्थित होता है।
4. **बंद परिवहन तन्त्र की उपस्थिति (Presence of closed vascular system)**– अधिकांश नॉन–कॉर्डेटा में परिवहन तन्त्र खुला होता है, क्योंकि इनकी रुधिर वाहिनियाँ कोशिकाओं में समाप्त न होकर भित्ति–विहीन रुधिर–विवरों में समाप्त होती हैं, अतः इनके घासिय अंग रक्त में पड़े रहते हैं। कॉर्डेटा समुदाय में परिवहन तन्त्र बंद होता है और इसकी चिर–वाहिनियाँ निश्चित दीवारों वाली रक्त कोशिकाओं (blood capillaries) में समाप्त होती है। अतः इसमें आंत अंग (visceral organs) रूधिर के वाहकों की दीवार द्वारा रूधिर से अलग रहती है।
5. **यकृत निवाहिका उपतन्त्र की उपस्थिति (Presence of hepatic portal system)**– कॉर्डेटा जन्तुओं में आहारनाल से भोजन अवशोषित करने के पश्चात् कूपर–कोशिकाओं द्वारा यकृत निवाहिका शिरा (hepatic portal vein) में पहुँचता है जो इस रक्त को यकृत में ले जाती है और यकृत के अंदर कोशिकाओं में विभाजित होकर यकृत–कोशिकाओं को रक्त पहुँचाती है नॉन–कॉर्डेट में ऐसा नहीं होता है।
6. **लाल रक्त कोशिकाओं की उपस्थिति (Presence of red blood corpuscles)**– कॉर्डेट जन्तुओं में हीमोग्लोबिन (श्वसन पदार्थ) लाल रक्त कणिकाओं में पाया जाता है। नॉन–कॉर्डेट जन्तुओं में अधिकतर हीमोग्लोबिन के स्थान पर हीमोसायनिन होता है जो रक्त के प्लाज्मा में घुला रहता है
7. **रक्त परिवहन की दिशा (Direction of blood flow)**– नॉन–कॉर्डेट जन्तुओं में पृष्ठ वाहिनी (dorsal vessel) में रक्त पीछे से आगे की ओर बहता है किन्तु कॉर्डेट जन्तुओं में यह आगे से पीछे की ओर बहता है।
8. **नॉन–कॉर्डेट (Coelom)**– जन्तुओं में सीलोम एक जोड़ी पर्यन्तरंग गुहा (perivisceral cavity) के रूप में आशिक अंगों के चारों ओर पाई जाती है। कॉर्डेट जन्तुओं में यह निश्चित भागों में बँटी होती है और प्रत्येक भाग का एक निश्चित कार्य होता है। ये भाग निम्नलिखित है - पृष्ठीय मायोसील (myocoel) मध्य नेफ्रोसील (nephrocoel), तथा पार्श्व एवं अधर, स्प्लेंकनोसील (splanchnocoel)
9. **न्यूरॉन्स की स्थिति (Placement of neurons)**– कॉर्डेटा जन्तुओं में तन्त्रिका कोशिका नर्व कार्ड की केन्द्रीय नाल के चारों ओर स्थित होती है किन्तु नॉन–कॉर्डेट जन्तुओं में ये बाहर की ओर स्थित होती हैं।

10. **तन्त्रिकाओं का उद्गम (Origin of nerves)**– नॉन–कॉर्डेटा में तन्त्रिका नर्व कार्ड से प्रत्येक खण्ड में स्थित गुच्छिका से निकलती है जबकि कॉर्डेटा में इनका उद्गम पृष्ठ तथा तन्त्रिका मूलों (dorsal and ventral nerve roots) से होता है।

11. **जोड़ी उपांगों की उपस्थिति (Presence of paired appendages)**– कॉर्डेट जन्तुओं में केवल दो जोड़ी उपांग पाये जाते हैं किन्तु नॉन–कॉर्डेटा जन्तुओं में इनकी संख्या भिन्न–भिन्न होती है, जो शरीर में उपस्थित खण्डों की संख्या के अनुरूप भी हो सकती है।

12. **कशेरुक–दण्ड की उपस्थिति (Presence of vertebral column)**– समस्त कशेरुक दण्ड जन्तु में नोटोकार्ड के स्थान पर कोरक–दण्ड पाया जाता है। जिसमें बहुतसी कशेरुकाएँ होती है। नॉन–कॉर्डेटा जन्तुओं में ऐसी कोई रचना नहीं पायी जाती। यद्यपि मनुष्य, हर्डमानिया (Herdmania), बेलेनोग्लासस, स्कोलियोडोन एवं मेंढक के प्रकार, रचना, स्वभाव एवं कार्यिकी में बहुत अधिक भिन्नताएँ है, किन्तु सभी में प्रारम्भिक कॉर्डेटा लक्षण पाये जाते हैं। इसी कारण ये सभी एक ही फाइलम के अन्तर्गत रखे गये हैं।

1.2.3 कॉर्डेट्स की उत्पत्ति (Origin of Chordates)

कॉर्डेट्स की उत्पत्ति पैलिओजोइक महाकल्प (Palaeozoic Era) के ऑर्डोवीशियन कल्प (Ordovician period) में हुई है, क्योंकि इस समुदाय के सबसे पुराने जीवाश्म इसी कल्प (period) की चट्टानों में अलवणजलीय मछलियों के रूप में पाये जाते हैं। इस समुदाय की उत्पत्ति के बारे में वैज्ञानिकों की दो परिकल्पनाएँ महत्वपूर्ण हैं–

(अ) **ऐनेलिड परिकल्पना (Annelid Theory)**– ये परिकल्पना ऐनेलिडा और कॉर्डेट जन्तुओं के मध्य पायी जाने वाली समानताओं पर आधारित है। दोनों में ही द्विपार्श्वीय एवं खण्ड–युक्त शरीर (bilateral and segmented body), खण्डीय उत्सर्जन अंग तथा विकसित सीलोमिक गुहा पायी जाती है। इस मत को वैज्ञानिकों का अधिक समर्थन प्राप्त नहीं है।

(ब) **एकाइनोडर्म परिकल्पना (Echinoderm Theory)**– इस परिकल्पना को वैज्ञानिकों का समर्थन प्राप्त है। हेमीकॉर्डेटा (Hemichordata) को प्रथम कॉर्डेटा कहा जाता है। ये कृमि–सदृश समुद्री जन्तु हैं जिनमें प्रमुख कॉर्डेटा लक्षणों के प्रारम्भ होने का संकेत मिलता है। इनके जीवन–चक्र में टॉरनेरिया शिशु प्रावस्था (Tornaria larva) पायी जाती हैं जो एकाइनोडर्म की बाइपिन्नेरिया शिशु प्रावस्था (Bipinnaria larva) से अधिक समानता रखती है। इसी आधार पर वैज्ञानिक पृष्ठवंश के निम्नलिखित वंशक्रम को मान्यता देते हैं।

एकाइनोडर्म का ऑरीकुलर लार्वा → हेमीकॉर्डेट लार्वा→ ट्यूनीकेट लार्वा→ ब्रैंकियोस्टोमा (एम्फीऑक्सस)

।

ऑस्ट्रेकोडर्म मछली (ऑर्डोवीशियन) (कल्प की)

।

टेट्रापोडा (Tetrapods)

टिप्पणी

1.2.4 फाइलम कॉर्डेटा के मुख्य उप–खण्ड या सब–डिवीजन (Major Sub-divisions of Phylum Chordata)

फाइलम कॉर्डेटा एक हिटेरोजीनियस (heterogeneous) समूहों का जन्तु–समुदाय है जो एक–दूसरे से भिन्न होते हुए भी अनेक लक्षणों में एक–दूसरे से समानता रखते हैं। फाइलम के वर्गीकरण में जन्तुओं के ये समूह उनके विशिष्ट लक्षणों के आधार पर बड़े कार्यात्मक खण्डों या उप–खण्डों (division or sub-division) में व्यवस्थित किये गये हैं। इन उप–खण्डों या टैक्सा (texa) को वर्गीकरण के विभिन्न सिस्टम (system) के अन्तर्गत अलग–अलग प्रकार से व्यवस्थित किया गया है–

1. **सब–फाइला या वर्ग (Sub-phyla or Classes)**– फाइलम कॉर्डेटा को सुविधानुसार नोटोकॉर्ड के आधार पर चार प्रारम्भिक उप–खण्डों में विभाजित किया गया है, जिन्हें सब–फाइला कहते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

   (a) सब–फाइलम एडेलो कॉर्डेटा या हेमीकोर्डेटा (Sub-phylum 1- Adelo Chordata or Hemichordata)

   (b) सब–फाइलम ट्यूनीकेटा या यूरोकॉर्डेटा (Sub-phylum 2- Tunicate or Urochordata)

   (c) सब–फाइलम एक्रेनिया या सिफेलोकॉर्डेटा (Sub-phylum 3- Acrania or Cephalochordata)

   (d) सब–फाइलम क्रेनिएटा या वर्टीब्रेटा (Sub-phylum 4- Craniata or Vertebrata)

   (a) **सब–फाइलम एडेलो कॉर्डेटा या हेमीकोर्डेटा (Adelo Chordata or Hemichordata)**– (Gr-, hemi = half; chorde = chord) – हेमीकोर्डेटा को काफी लम्बे समय से निम्न कोटि के कॉर्डेट्स माना जाता रहा है, किन्तु आधुनिक टैक्सोनॉमिस्ट्स (Taxonomists) के अनुसार, हेमीकॉर्डेट्स में वास्तविक नोटोकॉर्ड के स्थान पर स्टोमोकॉर्ड (stomochord) पाये जाते हैं। अतः इसे अब कॉर्डेट्स से अलग करके इनवर्टीब्रेट के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र फाइलम के रूप में मान्यता दी गयी है।

टिप्पणी

(b) सब–फाइलम ट्यूनीकेटा या यूरोकॉर्डेटा (Tunicata or Urochordata)– (Gr-, uros = tail; L, chorde cord)– इस सब–फाइलम को तीन वर्गों (Classes - Ascidiacea, Thaliacea and Larvacea) मे विभाजित किया गया है, जबकि सब–फाइलम ऐक्रेनिया (Acrania) के अन्तर्गत केवल एक ही Cephalochordata) को सम्मिलित किया गया है। सब–फाइलम क्रेनिऐटा या वर्टीब्रेटा (Craniata or Vertebrata - L -, Vertebrates back-bone) (Classes- Euphanerida, Heterostraci, Anaspida, Osteostraci, Petromyzontia, Myxinoidea, Placodermi, Elasmobranchii, Osteichthyes, Amphibia, Reptilia, Aves and Mammalia) है।

2. **प्रोटोकॉर्डेटा तथा यूरोकॉर्डेटा (Protochordata and Urochordata)**– फाइलम कॉर्डेटा के अन्तर्गत प्रथम दो सब–फाइलम यूरोकॉर्डेटा तथा ऐक्रेनिया के जन्तु केवल समुद्री जल में पाये जाते हैं तथा इन सभी में वर्टीब्रल कॉलम या रीढ़ की हड्डी का पूर्ण अभाव होता है। अतः इनको सामान्य रूप से प्रोटोकॉर्डेट्स (Protochordates; Gr-, Protos/First; chorda - cord) कहते हैं, क्योंकि ये आदिम या प्रथम कॉर्डेट हैं, जो कॉर्डेटा के वंशज कहे जाते हैं। वर्गीकरण में प्रोटोकॉर्डेटा को पहले एक अलग फाइलम का स्थान दिया गया था जिसके अन्तर्गत हेमीकॉर्डेटा (Hemichordata) को भी एक तीसरे सब–फाइलम के रूप में सम्मिलित किया गया था। वर्तमान समय में अब हेमीकॉर्डेटा को इनवर्टीब्रेट के अन्तर्गत एक अलग स्वतन्त्र फाइलम के रूप में, जबकि यूरोकॉर्डेटा तथा सिफेलोकॉर्डेटा को वास्तविक सब–फाइलम के रूप में मान्यता दी गयी है।

   वर्टीब्रेटा, जो फाइलम कॉर्डेटा का चौथा सब–फाइलम है, को जन्तुओं में सुविकसित वर्टीब्रल कॉलम या रीढ़ की हड्डी पाई जाने की वजह से अधिक विकसित कॉर्डेट माना गया है तथा इन्हें फाइलम कॉर्डेटा के उप–खण्ड (sub-division) यूरोकॉर्डेटा (Urochordata) में सम्मिलित किया गया है। कभी–कभी प्रोटोकॉर्डेट्स को लोअर कॉर्डेट्स (lower chordates) तथा वर्टीब्रेट्स को हायर कॉर्डेट्स (higher chordates) भी कहा जाता है।

3. **ऐक्रेनिया तथा क्रेनिएटा (Acrania and Craniata)**– सब–फाइलम प्रोटोकॉर्डेटा के जन्तुओं में सिर तथा क्रेनियम का पूर्ण अभाव होता है, इसलिए इन्हें एक्रेनिया (Acrania; Gr-, a absent, crania = head) कहते हैं। इसके विपरीत सब–फाइलम के जन्तुओं में एक सुविकसित सिर तथा क्रेनियम पाया जाता है, इसलिए इन्हें क्रेनिएटा कहा जाता है।

4. **एग्नैथा तथा ग्नैथोस्टोमेटा (Agnatha and Gnathostomata)**– सब–फाइलम वर्टीब्रेटा या क्रेनिएटा को निम्न दो सैक्शन (sections) में विभाजित किया गया है–

   (i) एग्नैथा (Agnatha; Gr-; A = not; gnathos = jaw)– इसमें वास्तविक जोड़ों तथा युग्मित पदों का पूर्ण अभाव होता है। एनथोस्टोम्स छोटे, आदिम किन्तु अत्यधिक विशिष्ट मछलियों की

टिप्पणी

तरह जल में पाये जाने वाले वर्टीब्रेट्स हैं। इनके अन्तर्गत विलुप्त यूफैनेरिडा, हेटरोस्ट्रेसि, एनेस्पिडा, ऑस्टीओस्ट्रासि तथा आधुनिक पैट्रोमाईजॉन्सिया तथा मिक्सीनॉयडिया को सम्मिलित किया गया है।

(ii) ग्नैथोस्टोमेटा (Gnathostomata; Gr-, gnathos = jaw, stoma = mouth)– शेष अन्य सभी वर्टीब्रेट्स में वास्तविक जबड़े तथा युग्मित पाद पाये जाते हैं, अत: इन्हें ग्नैथोस्टोमेटा में सम्मिलित किया गया है। पहले एग्नैथा तथा ग्नैथोस्टोमेटा को फाइलम कॉर्डेटा के अन्तर्गत सब–फाइलम का स्थान दिया गया था, किन्तु आधुनिक वर्षों में इन्हें सब–फाइलम वर्टीब्रेटा की सुपरक्लास (superclass) माना गया है।

5. **पाइसेस तथा टेट्रापोडा (Pisces and Tetrapoda)**– समूह ग्नैथोस्टोमेटा को दो मुख्य समूहों में विभाजित किया गया है – पाइसेस तथा टेट्रापोडा। समूह पाइसेस (Pisces - L-, piscis = fish) के अन्तर्गत सभी प्रकार की मछलियों को सम्मिलित किया गया है। इनमें युग्मित फिन्स (paired fins) पाये जाते हैं तथा ये केवल जल में ही पायी जाती हैं। समूह टेट्रापोडा (Tetrapoda; Gr-, retra= four; podos= foot) के सभी वर्टीब्रेट्स में चार पाद पाये जाते हैं। इसके अन्तर्गत एम्फिबियन्स, रेप्टाइल्स, पक्षियों तथा स्तनधारियों को सम्मिलित किया गया है।

6. **ऐनएम्नियोटा तथा एम्नियोटा (Anamniota and Amniota)**– वर्टीब्रेट्स जन्तुओं को उनके भ्रुणीय परिवर्तन (embryonic development) के आधार पर भी विभाजित किया गया है। यह एक विशिष्ट झिल्ली (amnion) जो विकसित भ्रुण को एक रिजरवॉयर द्रव (reservoir fluid) में सुरक्षित रखती है, की उपस्थिति के आधार पर किया गया है। जिन वर्टीब्रेट्स जन्तुओं के भ्रुणीय परिवर्तन में यह झिल्ली पायी जाती है, उन्हें ऐम्नियोटा (Amniota) समूह के अन्तर्गत रखा जाता है। इसके अन्तर्गत क्लास रेप्टिलिया, एवीज, मैमेलिया को सम्मिलित किया गया है, जबकि अन्य सभी विलुप्त पेट्रोमाइजॉन्सिया, मिक्सीनॉयडिया, पिसीज तथा ऐम्फिबिया को समूह ऐनएम्नियोटा (Anamniota) में सम्मिलित किया गया है, क्योंकि इनके भ्रुणीय परिवर्धन में एम्नियोन झिल्ली अनुपस्थित होती है।

फाइलम कॉर्डेटा के सामान्य लक्षण (General Characters of Phylum Chordata)

1. ये सभी स्थानों, जैसे– जमीन, जल तथा पेड़–पौधों पर पाये जाते हैं तथा सभी स्वतन्त्र रूप से रहने वाले जीव है।
2. शरीर मेटामेरिक खण्डयुक्त (metamerically segmented), बाइलैटरल सिमिट्रिकल तथा छोटे से लेकर बड़े आकार वाले जीव हैं।

टिप्पणी

3. जीवन की किसी न किसी अवस्था में इनमें गुदा के पीछे एक पेशीय पुच्छ (tail) पायी जाती है।
4. कुछ को छोड़कर प्रायः सभी में त्वचा के ऊपर बाह्य कंकाल उपस्थित होता है।
5. देहभित्ति ट्रिप्लोब्लास्टिक, अर्थात इसमें तीन जर्मन स्तर– एक्टोडर्म, मीसोडर्म तथा एण्डोडर्म पाये जाते हैं।
6. ये सीलोमेट जन्तु है, अर्थात् इनमें वास्तविक एण्टेरोसीलिक या साइजोसीलिक (enterocoelic or schizocoelic) सीलोम पाया जाता है।
7. इनमें जीवन की किसी न किसी अवस्था में नोटोकॉर्ड उपस्थित होती है।
8. डोर्सल नर्व–कॉर्ड नलिका के समान तथा आहारनाल के पृष्ठ तल पर स्थित होती है।
9. सभी कॉमेंट्स में जीवन की किसी न किसी अवस्था में फैरिंक्स की दीवार में गिल–स्लिट्स पाये जाते हैं।
10. आहारनाल पाचन ग्रन्थियों सहित पूर्ण।
11. रुधिर परिवहन–तन्त्र बंद प्रकार का, हृदय डॉर्सल तथा वैण्ट्रल वाहिनियों सहित शरीर के वैण्ट्रल तल पर स्थित। हिपेटिक पोर्टल तन्त्र विकसित।
12. उत्सर्जन तन्त्र प्रोटो या मीसो या मेटानेफ्रिक किडनी (kidneys) से मिलकर बना होता है।
13. नर और मादा अधिकांशत: अलग–अलग होते हैं।

1.2.5 फाइलम कॉर्डेटा का वर्गीकरण (Classification of Phylum Chordata)

फाइलम कॉर्डेटा अनेक हेटेरोजीनस (heterogenous) कॉर्डेटा समूहों से मिलकर बना हुआ है, जिसमें एक समूह के जन्तु दूसरे समूह के जन्तुओं से अनेक लक्षणों में भिन्नता रखते हैं, किन्तु कुछ लक्षणों में समानता भी दर्शाते हैं। पार्कर तथा हैसवेल (Parker and Haswell) ने कॉर्डेटा को नोटोकॉर्ड के आधार पर चार सब–फाइलम में विभाजित किया है।

1.2.6 सब–फाइलम (Sub-phylum)

ऐडेलोकार्डेटा या हेमीकोर्डेटा (Sub Phylum - (I) : Adelochordata or Hemichordata)

टिप्पणी

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. ये सरल रचना वाले कॉलोनिअल या सोलिटरी, अचल या स्वतन्त्रजीवी एवं बिलों में रहने वाले जन्तु हैं जो नितान्त समुद्र से होते हैं।
2. शरीर कोमल तथा कृमि की तरह होता है जो प्रोबोसिस (proboscis), कॉलर (collar) एवं धड़ (trunk) में विभाजित होता है।
3. सीलोम ऐण्टेरोसीलस (enterocoelous) होता है, जो प्रोटोसील (protocoel), मीजोसील (mesocoel) और मैटासील (metacoel) में विभक्त होता है।
4. प्रोबोसिस में बक्कल डाइवर्टिकुलम (buccal diverticulum) होता है। इसे पहले नोटोकॉर्ड (notochord) समझा गया था।
5. पाचन कैनाल सीधी आकार की होती है। फैरिंक्स की दीवार में कई जोड़ी गिल–स्लिट्स (gill slits) होते हैं।
6. रक्त परिवहन तन्त्र खुला (open type) होता है जिसमें एक सैण्ट्रल साइनस, एक पल्सेटाइल हार्ट तथा दो लम्बी रक्त वाहिनी (डॉर्सल तथा वैनट्रल) होती हैं।
7. उत्सर्जन तन्त्र एक ग्लोमेरुलस (glomerulus) से बनता है जो प्रोबोसिस में स्थित होता है।
8. तन्त्रिका तन्त्र सरल होता है।
9. जनन लैंगिक होता है। नर और मादा अलग–अलग या संयुक्त होते है। गोनाड (gonads) के अनेक जोड़े पाये जाते हैं।
10. निषेचन बाहरी होता है। परिवर्तन अप्रत्यक्ष होता है। इनमें टार्नेरिया लार्वल अवस्था पायी जाती है।

सारणी क्र. 1.1: Showing Sub-division of Phylum Chordata According to Parker & Haswell (Revised by Marshall & Williams)

टिप्पणी

Sub-phyla	Classes	Group		Super Classes
IV. Craniata	13. Mammalia	Euchordata (Higher Chordata)	Gnathostomata	Amniota
	12. Aves			
	11. Reptilia			
	10. Amphibia			Anamniota
	9. Osteichthyes			
	8. Elasmobranchii			
	7. Placodermi			
	6. Myxinoidea		Agnatha	
	5. Petromyzontida			
	4. Osteostraci			
	3. Anaspida			
	2. Heterostraci			
	1. Euphanerida			
III. Acrania	1. Cephalochordata	Protochordata (Lower Chordata)		
II. Tunicata	3. Larvacea			
	2. Thaliacea			
	1. Ascidiacea			
I. Adelochordata	2. Pterobranchia			
	1. Enteropneusta			

सारणी क्र. 1.2: Outline Classification of Phylum Chordata According to Parker & Haswell (Revised by Marshall & Williams, 1987)

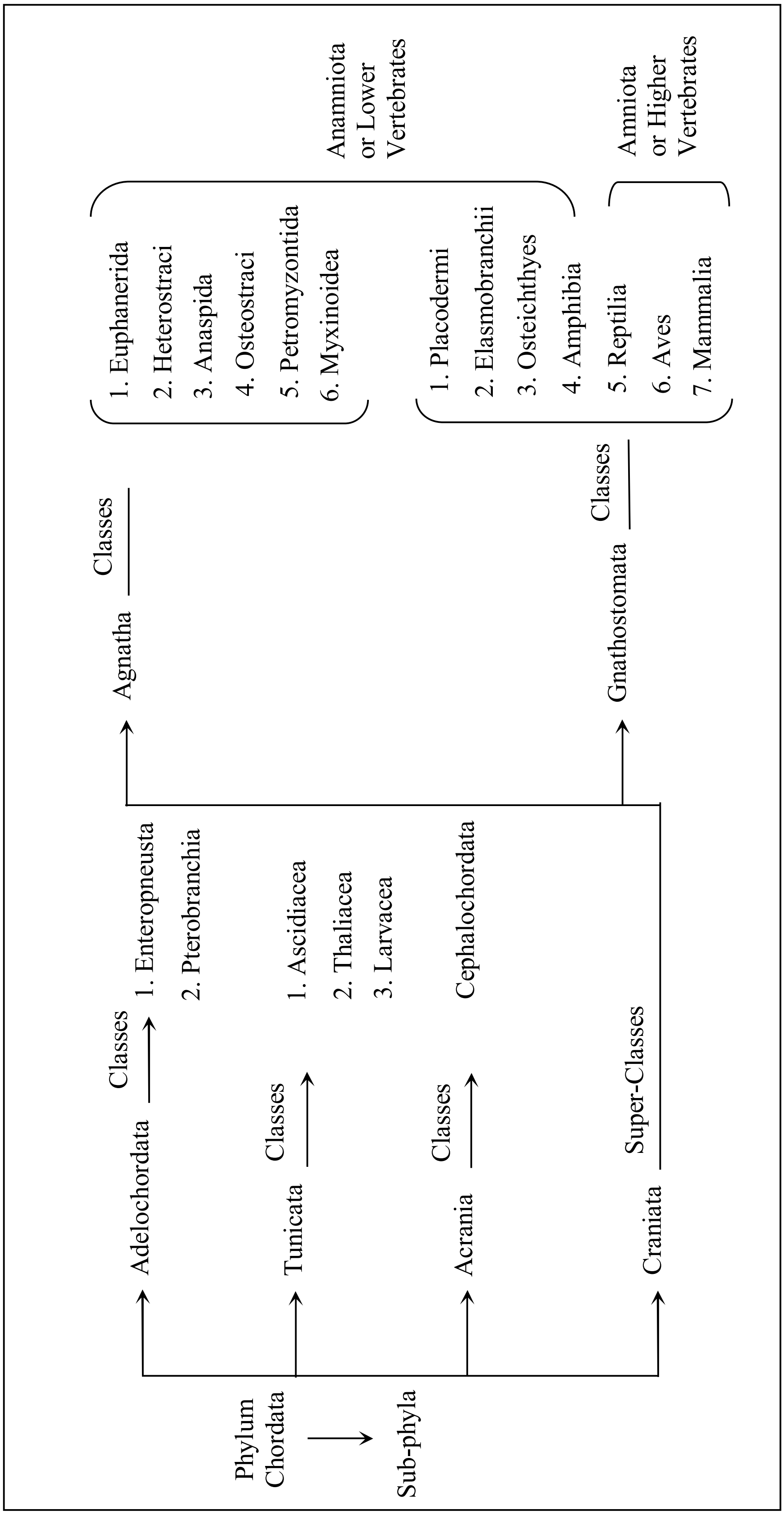

टिप्पणी

टिप्पणी

वर्गीकरण (Classification)

इस सब–फाइलम की सभी ज्ञात जातियों को निम्नलिखित दो क्लासों में बाँटा गया है।

क्लास (I) : एण्टेरॉप्यूस्टा

Class (I) : Enteropneusta

1. ये सोलिटरी जन्तु हैं जो बिलों में रहते हैं। कॉलर में टेण्टाकुलेटेड भुजाएँ नहीं होती।
2. पाचन नाल सीधी, मुख और गुदाद्वार अलग–अलग सिरों पर स्थित होते हैं। फैरिंक्स की दीवार में अनेक जोड़ी के आकार के गिल–स्लिट (gill - slits) पाये जाते हैं।
3. नर और मादा अलग–अलग होते है। गोनाड्स (gonads) अनेक होते है, जो सैक (sac) के आकार के होते हैं।

   उदाहरण– बैलेनोग्लोसस *(Balanoglossus),* सैकोग्लोसस *(Saccoglossus),* टाइकोडरा (Ptychodera)

क्लास (II) : टैरो ब्रैंकिया

Class (II): Pterobranchia

1. ये कॉलोनिअल, स्थानबद्ध तथा बिलों में रहने वाले जन्तु हैं। कॉलर में टेण्टाकुलेटेड भुजाएँ पाई जाती हैं, भुजाएँ खोखली तथा सीलिऐटेड होती हैं।
2. एक जोड़ी गिल–स्लिट पाये जाते हैं। या पूर्णरूपेण अनुपस्थित पाये जाते हैं। पाचन कैनाल U आकार की होती है, मुख तथा गुदाद्वार एक ही सिरे पर स्थित होते हैं।
3. नर और मादा लिंग अलग–अलग या संयुक्त होते है। परिवर्धन में लार्वल अवस्था उपस्थित या अनुपस्थित होती हैं।

ऑर्डर (i) : रैब्डोप्लूराइडा

Order (i) : Rhabdopleurida

1. कॉलोनियल, कॉलोनी का प्रत्येक सदस्य आपस में एक आधार या स्टोलन से जुड़ा रहता है।
2. कॉलर में एक जोड़ी टेण्टाकुलेटेड भुजाएँ पायी जाती हैं। गिल–स्लिट अनुपस्थित होते हैं।

   उदाहरण– रैब्डोप्लूरा (Rhabdopleura)

टिप्पणी

ऑर्डर (i) सेफैलोडिस्सीडा

Order (i) : Cephalodiscida

1. ये सोलिटरी जन्तु हैं। कॉलर में अनेक टेण्टाकुलेटेड भुजाएँ होती हैं।
2. एक जोड़ी गिल–स्लिट पाये जाते हैं।

   उदाहरण– सेफैलोडिस्कस (Cephalodiscus), ऐटुबेरिया (Atubaria)

सब–फाइलम–(II) : ट्यूनीकेट या यूरोकॉर्डेटा

Sub-Phylum (II) : Tunicate aur Urochordata

यूरोकॉर्ड्स साधारणतया समुद्री स्क्वर्ट्स (Sea Squirts) के नाम से जाने जाते हैं। इनका सर्वप्रथम मुआयना अरस्तू (Aristotle, 384-22 B-C-) ने किया था।

1.2.7 विशिष्ट लक्षण (Specific Characters)

1. इनकी लगभग 2,100 जातियाँ ज्ञात हैं। समस्त यूरोकॉर्डेट्स समुद्री जल में अकेले या छोटे–छोटे समुह (colonies) में स्वतन्त्र रूप से तैरते रहते हैं। कुछ समुद्री जल में चट्टानों पर आजीवन चिपके रहते हैं।
2. वयस्क शरीर डिजनेरेट (degenerate), असममित (asymmetrical), थैलीनुमा, अनसैगमेण्टेड (unsegmented), बिना युग्मित पादों तथा सामान्यतः बिना पुच्छ के होता है।
3. शरीर के ऊपर ट्यूनीसिन (tunicine) पदार्थ से बना एक चिम्मड़ खोल, जिसे टेस्ट या ट्यूनिक (test or tunic) कहते हैं, चढ़ा रहता है।
4. एक टर्मिनल ब्रैंकिया छिद्र तथा एक डॉर्सल एट्रीयल छिद्र सामान्यतः उपस्थित होता है।
5. सीलोम का अभाव होता है, किन्तु एक एक्टोडर्मल एट्रीयल गुहा (atrial cavity) जो फैरिंक्स को चारों ओर से घेरे रहती है, एट्रीयल छिद्र द्वारा बाहर खुलती है।
6. आहारनाल U के आकार की होती है। ग्रसनी (pharynx) बड़ी एवं थैलीनुमा तथा इसकी पार्श्व दीवारों में अनेक गिल–दरारें होती हैं।
7. वयस्क अवस्था में फैरिन्जियल गिल–दरारों (pharyngeal gill-slits) के अलावा कोई अन्य महत्वपूर्ण कॉर्डेट लक्षण नहीं पाया जाता, परन्तु स्वतन्त्र तैरने वाली टैडपोल लार्वल (tadpole larval) प्रावस्था इनके जीवन में महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि इनमें मूल कॉर्डेट लक्षण नोटोकॉर्ड एवं पृष्ठ नालवत् नर्वकॉर्ड (nerve cord) भली प्रकार विकसित अवस्था में पायी जाती हैं।
8. नोटोकॉर्ड लार्वा की पूँछ में ही सीमित रहती है (uros - tail - chorda - notochord)।
9. कायान्तरण (metamorphosis) के अन्तर्गत जब लार्वा वयस्क में बदलता है, तो पूँछ के साथ ही नोटोकॉर्ड समाप्त हो जाती है तथा पृष्ठ नालवत्

टिप्पणी

नर्व–कॉर्ड एक छोटे से ठोस गैंग्लिओन (ganglion) के रूप रह जाती है। इसलिए इसे रिट्रोग्रेसिव कायान्तरण (retrogressive metamorphosis) कहते है।

10. साधन परिवहन–तन्त्र खुला (open), हृदय नलिका के समान तथा अधर तल पर स्थित होता हैं। रुधिर में विशेष वेनेडोसाइट्स (vanadocytes) कणिकाएं पायी जाती है, जो समुद्री जल से वेनेडियम का स्रावण करती हैं।
11. उत्सर्जन न्यूरल ग्रन्थि, पाइलोरिक ग्रन्थि तथा नेफ्रोसाइट्स रुधिर कणिकाओं के द्वारा होता है।
12. गोनड्स या जननांग (gonads) द्विलिंगी होता है। अलैंगिक जनन बडिंग के द्वारा होता है।

वर्गीकरण (Classification)

सब–फाइलम यूरोकॉर्डेटा की लगभग 2,100 जातियाँ ज्ञात हैं, जिनमें 2,000 जातियों स्थानबद्ध (fixed) तथा 100 पैलेजिक (pelagic) हैं। इन जातियों को हर्डमान (Herdman, 1891), गारस्टंग (Garstang, 1895), पैरीअर (Perrier, 1898), हार्टमेयर (Hartmeyer, 1909-11) तथा एस.एम. दास (S.M. Dass, 1957) ने विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। इस पुस्तक में यूरोकॉर्डेटा का वर्गीकरण R.S.K. Barnes, Calow, P. P.S.W. Olive and D.W. Golding The Invertebrates: A New Synthesis के द्वितीय संसकरण पर आधारित है।

वर्ग(a) : ऐसीडिएसिया

Class (a) : Ascidiacea

1. ये स्थानबद्ध या स्वतन्त्र रूप से तैरने वाले, अकेले या समूहों (solitary or colonial) में पाये जाने वाल समुद्री ट्यूनीकेट्स जन्तु होते हैं।
2. वयस्क अवस्था में पूँछ, नोटोकॉर्ड तथा नर्वकॉर्ड का पूर्ण अभाव पाया जाता है।
3. टेस्ट तन्तुओं एवं कोशिकाओं सहित संयोजी ऊतक जैसा (स्थायी)।
4. ग्रसनी या ब्रांचियल सैक (branchial sac) सुविकसित एवं थैलीनुमा तथा दोनों पार्श्व दीवारों पर असंख्य गिल–दरारें या स्टिग्मेटा (stigmata) उपस्थित होते हैं।
5. जनन अलैंगिक तथा लैंगिक (asexual and sexual) दोनों प्रकार का पाया जाता हैं। यह वर्ग निम्नलिखित चार ऑर्डर्स (orders) में विभाजित किया गया है।

ऑर्डर (a) : एप्लोयूसोब्रैन्किया

Order (a) : Aplousobranchia

1. सभी जन्तु मण्डलीय (colonial) होते हैं।
2. जनन अंग (gonads) आंत के छल्ले में स्थित होते हैं।
3. फैरिंक्स (pharynx) की भित्ति सामान्य होती हैं।

उदाहरण– क्लैवेलिना (Clavelina)।

टिप्पणी

ऑर्डर (b) : स्टोलाइडोब्रैन्किया

Order (b) : Stolidobranchia

1. मुख्यतः एकल (solitary) पाए जाते हैं।
2. जनन अंग देह–भित्ति (body wall) में धँसे हुए होते हैं।
3. फैरिंक्स ऊर्ध्व रूप में मुड़ा हुआ तथा आन्तरिक दण्ड (internal bars) सहित होता है।

उदाहरण– बोट्रिलस (Botryllus), हर्डमानिया (Herdmania)।

ऑर्डर (c) : फ्लेबोब्रैंकियल

Order (c) : Phlebo Branchial

1. अधिकांशतः एकल (solitary) होते हैं।
2. जनन अंग आँत के छल्ले में स्थित होते हैं।
3. फैरिंक्स में उठी हुई आन्तरिक दण्डिकाएँ (internal bars) उपस्थित होती हैं। जो कि पैपिली के द्विशाखित होने से बनती हैं।

उदाहरण– सिओना (Ciona), ऐसीडिया (Ascidia)।

ऑर्डर (d) : एस्पाइरेकुलेटा

Order (d) : Aspiraculata

1. समुद्री (marine) जन्तु होता हैं।
2. शरीर थैले जैसा तथा टैस्ट जैली समान होती हैं।
3. शरीर का अगला सिरा सँकरा जिस पर मुँह स्थित होता है। मुँह टेन्टैकिल्स (tentacles) द्वारा घिरा हुआ होता हैं।

उदाहरण– एस्पाइरेकुलेटान (Aspiraculatan)।

वर्ग (b) : थैलिएसिया

Class (b) : Thaliacea

1. ये समुद्र की सतह पर अकेले या समूहों में स्वतन्त्र रूप से तैरने वाले ट्यूनीकेट्स हैं।
2. शरीर लम्बा, नालाकार, ब्रैंकियल एवं ऐट्रीयल छिद्र इसके विरोधी सिरों पर पाया जाता हैं।
3. देहभित्ति में शरीर के चारों ओर फैली मोटी पेशियाँ टेस्ट स्पष्ट एवं पारदर्शक होती हैं।
4. जीवनवृत्त में द्विरूपी (dimorphic), अलैंगिक (asexual) एवं लैंगिक (sexual) सदस्यों का पीढ़ी एकान्तरण (alternation of generation) होता हैं।

टिप्पणी

इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित दो ऑर्डर (Order) हैं–

ऑर्डर (i) : डॉलिओलिडा या साइक्लोमायरिया

Order (i) : Doliolida or Cyclomyaria

1. स्वतन्त्र रूप से तैरने वाले पैलेजिक (pelagic) जन्तु होते हैं। शरीर कास्क (cask) की भाँति होता है, ब्रैंकियल तथा ऐट्रीयल छिद्र विरोधी छोरों पर पाए जाते हैं।
2. टेस्ट पतला एवं स्पष्ट होता हैं। मॉसपेशियाँ पूर्ण जो शरीर को चारों ओर से घेरती हैं।
3. स्टिग्मेटा (stigmata) शरीर के पश्च भाग पर होता हैं। हरमाफ्रोडाइट (hermaphrodite) तथा जीवनवृत्त में पिढ़ी–एकान्तरण (alternation of generation) उपस्थित होता है।
4. लैंगिक पीढ़ी हमेशा पोलिमोर्फिक (polymorphic), लार्वा में नोटोकॉर्ड तथा नर्वकॉर्ड उपस्थित होते हैं।

   उदाहरण– डॉलिओलम (Doliolum)।

ऑर्डर (ii) : पायरोसोमिडा

Order (ii) : Pyrosomida

1. समूहों में पाये जाने तथा स्वतन्त्र रूप से तैरने वाले पैलेजिक (pelagic) जन्तु होते है।
2. टेस्ट पारदर्शक तथा जैली–सदृश होती हैं।
3. कॉलोनी (colony) एक खोखले सिलिण्डर (cylinder) की भाँति बनी होती है, जिसका एक सिरा बंद रहता है। कॉलोनी के समस्त जूऑयड्स (zooids) या सदस्य एक ही टेस्ट के अंदर इस प्रकार से बंद रहते है कि सभी जूऑयड्स के ब्रैंकियल छिद्र (branchial apertures) बाहर की ओर तथा उनके ऐट्रियल छिद्र (atrial apertures) अंदर की ओर खुलते हैं।
4. बैक्टीरिया की उपस्थिति के कारण कॉलोनी चमकीली (phosphorescent) होती है।

   उदाहरण– पायरोसोमा (Pyrosoma)।

ऑर्डर (iii) : साल्पिडा या डेस्मोमायरिया

Order (iii) : Salpida or Desmo Maria

1. स्वतन्त्र रूप से तैरने वाले पैलेजिक (pelagic) जन्तु पाए जाते हैं। शरीर मूली के आकार का, ब्रैंकियल तथा ऐट्रियल छिद्र विरोधी छोरों पर पाए जाते हैं।
2. मॉसपेशियाँ अधर तल पर अपूर्ण एवं टेस्ट सुविकसित तथा पारदर्शी होते हैं।
3. जीवनवृत्त में पीढ़ी–एकान्तरण उपस्थित, एवं पुच्छक (tailed) लार्वा अनुपस्थित होता है।

   उदाहरण– साल्पा (Salpa)।

टिप्पणी

वर्ग (c) : लार्वेसिया या अपेण्डिकुलेरिया

Class (c) : Larvacea or Appendicularia

1. सूक्ष्म (5 mm तक लम्बे), स्वतन्त्र रूप से तैरने वाले समुद्री पैलेजिक (pelagic) यूरोकॉर्डेट्स जन्तु होते हैं।
2. ये नियोटेनिक (neotenic) होते हैं, अर्थात इनमें टैडपोल प्रावस्था में ही जननांग बन जाते हैं तथा जनन होने लगता है और कायान्तरण नहीं होता। अतः ये जीवन–पर्यन्त लार्वल अवस्था में ही बने रहते है (इनके वयस्क नहीं मिलते)।
3. टेस्ट मोटा, ढीला व जैली–सदृश (अस्थायी) होता हैं।
4. शरीर धड़ व पूँछ में विभेदित तथा गिल–दरारों की केवल एक जोड़ी उपस्थित होती हैं।
5. ऐट्रियल गुहा छोटी तथा गुदाद्वार शरीर के अधर तल पर होता है।
6. नर और मादा जननांग एक ही जन्तु में होते हैं।

इसको निम्नलिखित ऑर्डर में विभाजित किया गया है।

ऑर्डर (i) : कॉपेलैटा

Order (i) : Copelata

1. टेस्ट–हाउस (test-house) बाइरेडियली सीमैट्रिकल जिसमें केवल एक अलग इनहेलेण्ट तथा एक्सहैलेण्ट छिद्र उपस्थित (Oikopleura) या केवल एक ही छिद्र उपस्थित (Kowalski) होता हैं।
2. फैरिंक्स में एण्डोस्टाइल उपस्थित (Oikopleura) या अनुपस्थित (Kowalevskia) होता है।

   उदाहरण– ओइकोप्लूरा (Oikopleura), अपेंडिकेलूरिया (Appendicaluria), कोवालेवस्किया (Kowalevskia)।

सब–फाइलम (III) : ऐक्रेनिया या सिफैलोकॉर्डटा

Sub-Phylum (III) : Acrania or Cephalochordata

विशिष्ट लक्षण (Specific Characters)

1. सिफैलोकॉर्डेट्स समुद्री जल में पाये जाने वाले छोटे मछली के समान जन्तु हैं, जिनमें कॉर्डेट्स के सभी मुख्य लक्षण पाये जाते हैं।
2. ये समुद्र में स्वतन्त्र रूप से तैरते या मिट्टी में धसे रहते हैं। शरीर लम्बाई में 5 से 8 सेमी लम्बा, मछली के समान खण्डीय तथा पारदर्शी होता है।
3. एक स्पष्ट सिर का अभाव होता है एवं शरीर धड़ तथा पुच्छ में विभाजित होता हैं।
4. युग्मित पादों का अभाव, किन्तु मीडियन फिन उपस्थित होती हैं।
5. बाह्य कंकाल का अभाव तथा एपिडर्मिस एकस्तरीय होती हैं।
6. पेशियाँ डॉन–लेटरल तथा मायोटोम्स में सेगमेण्टली व्यवस्थित होती हैं।

टिप्पणी

7. सीलोम एण्टरोसीलस, किन्तु फैरिंजीयल क्षेत्र में एटीएम के विकसित होने के कारण अल्पविकसित होता है।
8. शरीर की पूरी लम्बाई में अग्र छोर तक फैली नालवत् नर्वकॉर्ड तथा नोटोकॉर्ड (Cephales = head; Chordata = notochord) पायी जाती है।
9. फेरिंक्स बड़ा तथा फैरिन्जियल गिल–स्लिट्स स्पष्ट और संख्या में अधिक होते हैं।
10. एट्रियल गुहा अत्यधिक विकसित होता है।
11. फैरिंक्स के अंदर एण्डोस्टाइल और सीलिऐटेड ट्रैक्ट (ciliated tract) उपस्थित होता हैं, जो भोजन के कणों को पकड़ने में सहायक होते हैं।
12. गोनड्स सेगमेण्टली व्यवस्थित होते हैं।
13. उत्सर्जन अंग खण्डयुक्त नेफ्रीडिया के रूप में होते हैं।
14. निषेचन क्रिया शरीर के बाहर समुद्री जल में होती हैं।
15. परिवर्धन अप्रत्यक्ष तथा एक स्वतन्त्र रूप से तैरने वाली लार्वल अवस्था में उपस्थित होता है।
16. सिफैलोकॉर्डेट्स की लगभग 30 जातियाँ ज्ञात हैं।

वर्गीकरण (Classification)

सब–फाइलम सिफेलोकॉर्डेटा के अन्तर्गत केवल एक ही वर्ग सिफेलोकोर्डा (Cephalochorda) तथा एक फैमिली ब्रैंकियोस्टोमा (Branchiostoma) सम्मिलित है। इस फैमिली में दो जेनेरा (genera) ब्रैंकियोस्टोमा (Branchiostoma = Amphiorus) तथा ऐसीमेट्रॉन (Asymmetron) आते हैं। जीनस बैंकियोस्टोमा में आठ तथा ऐसीमेट्रॉन में सात जातियाँ ज्ञात हैं।

वर्ग : सिफेलोकॉर्डेटा (Class : Cephalochordata)

1. शरीर छोटी मछलियों के समान, मेटामेरिस्म (metamerism) तथा मायोटोम्स (myotomes) अधिक स्पष्ट।
2. फैरिन्जियल गिल–स्लिट्स संख्या में अधिक। ये स्वतन्त्र रूप से तैरने तथा बिल में रहने वाले कॉर्डेट होते हैं। इनकी लगभग 28 जातियाँ पायी जाती हैं। **उदाहरण**– बैंकियोस्टोमा या ऐम्फिऑक्सस (Branchiostoma = Amphioxus)।

सब–फाइलम–(IV) : क्रेनिएटा या वर्टीब्रेटा

Sub-Phylum (IV) : Craniata or Vertebrata

ये विकसित कॉर्डेट्स हैं जिनमें जटिल मस्तिष्क (brain) का क्रमिक विकास हुआ है तथा इनमे मस्तिष्क अस्थि या उपास्थि (bone or cartilage) के बने मस्तिष्क खोल या क्रैनियम (brain box or cranium) के अंदर बंद रहता है। भ्रुणीय नोटोकॉर्ड के स्थान पर वयस्क में अस्थि या उपास्थि की कशेरुकाओं (vertebrae) से बनी कशेरुक दण्ड (vertebral column) उपस्थित होती हैं। इसलिए इस समूह

टिप्पणी

को कशेरुकी या यूकॉर्डेटा (Vertebrata or Euchordata) कहते हैं। अस्थियाँ तथा उपास्थियाँ मिलकर इन जन्तुओं के अंदर एक अन्तःकंकाल (endoskeleton) बनाती हैं। मस्तिष्क के साथ–साथ शरीर के अग्र सिरे पर संवेदांगों (sensory organs) का विकास होता है, जिससे अग्र सिरा एक स्पष्ट शीर्ष (head) में विभेदित होता है। फैरिन्जियल गिल–दरारें (pharyngeal gill-slits) भ्रुणावस्था में तो सभी कशेरुकियों में बनती हैं, परन्तु वयस्क अवस्था में ये कुछ ही सदस्यों में पायी जाती हैं। नालवत् नर्वकॉर्ड आजीवन उपस्थित तथा कशेरुक दण्ड में बंद रहती है। मछलियों से मानव तक सभी कशेरुकी जन्तु इसी समूह के अन्तर्गत आते हैं। इनमें पृष्ठवंशीय लक्षणों का क्रमिक उद्विकास (gradual evolution) हुआ है। यह उद्विकास पहले जलीय जीवन (aquatic life) और उससे स्थलीय जीवन (terrestrial life) की ओर अग्रसर हुआ।

1.2.8 सब–फाइलम क्रेनिएटा या वर्टीब्रेटा के सामान्य लक्षण (General Characters of Sub-phylum Craniata or Vertebrata)

1. निम्न कोटि के कशेरुक जलीय तथा उच्च कोटि के कशेरुक सामान्यतः स्थलीय होते हैं।
2. बाइलेटरली सिमेट्रिकल, मेटामेरिकली सेगमेण्टेड तथा मध्यम से बड़े आकार का शरीर होता है।
3. शरीर स्पष्ट रूप से सिर, धड़ तथा एक पोस्ट–ऐनल पुच्छ में विभाजित होता है।
4. धड़ में साधारणत: दो जोड़ी लेटरल पाद (lateral appendages) उपस्थित होते हैं, जो शरीर को साधने, चलने तथा अन्य विशिष्ट कार्यों में उपयोग किये जाते हैं।
5. त्वचा एक स्ट्रैटिफाइड एपिथीलियम (stratified epithelium) के रूप में जो एक बाहरी एपिडर्मिस तथा भीतरी डर्मिस से मिलकर बनी होती है। जलीय कशेरुकियों की त्वचा में म्यूकस ग्रन्थियाँ अधिक पायी जाती हैं।
6. त्वचा की सतह ऊपर से एक सुरक्षात्मक बाह्य कंकाल से ढकी रहती है जो एपिडर्मल स्केल्स, फैदर्स, बाल, नाखून तथा हॉर्न आदि का बना होता है।
7. नोटोकॉर्ड वर्टिब्रल कॉलम में बदल जाती है। अन्तःकंकाल (endoskeleton) हड्डी या कार्टिलेज या दोनों ही से जो वर्टिब्रल कॉलम, गर्डिल्स तथा लिम्ब अस्थियों के रूप में होता है।
8. सुविकसित शाइजोसीलिक सीलोम जिसमें सभी आन्तरिक अंग स्थित रहते हैं।
9. पाचन–तन्त्र सम्पूर्ण, आहार नाल लम्बी एवं कॉइल्ड (coiled), फैरिन्जियल गिल–स्लिट्स संख्या में सात जोड़ी से अधिक नहीं (केवल साइक्लोस्टोम्स को छोड़कर) होते हैं।

टिप्पणी

10. श्वसन जलीय कशेरुकियों में गिल्स तथा स्थलीय कशेरुकियों में फेफड़ों के द्वारा होता हैं।
11. रुधिर परिवहन–तन्त्र बंद (closed) प्रकार का, हृदय 2, 3 या 4 चेम्बर्स का तथा शरीर के वैण्ट्रल तल पर स्थित होता है। हीमोग्लोबिन पिगमेंट लाल रुधिर कणिकाओं में पाया जाता है।
12. उत्सर्जन मेसोनेफ्रिक या मेटानेफ्रिक किडनी के द्वारा होता है।
13. डोर्सल नर्व–कॉर्ड का अग्रभाग फूलकर मस्तिष्क का निर्माण करता है जो क्रेनियम या ब्रेन बॉक्स (brain box) के अंदर बंद रहता है। नर्व–कॉर्ड का शेष भाग स्पाइनल कॉर्ड का निर्माण करता है जो वर्टीब्रल कॉलम की न्यूरल कैनाल के अंदर स्थिर रहता है। क्रेनियल तन्त्रिकाओं की संख्या 10 या 12 जोड़ी होती हैं। प्रत्येक साइनल तन्त्रिका का निर्माण डॉर्सल एवं वैण्ट्रल रूट्स (roots) के आपस में मिलने से होता है।
14. विशिष्ट संवेदी अंग नेत्र तथा कर्ण (eyes and ears) के रूप में पाये जाते हैं।
15. नर एवं मादा अलग–अलग होते हैं। युग्मित गोनड्स जिनमें सुविकसित गोनोडक्ट्स पायी जाती है।
16. परिवर्तन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से होता है।
17. फाइलम कॉर्डेटा के अन्तर्गत सबसे बड़ा सब–फाइलम वर्टीब्रेटा है जिसके अन्तर्गत लगभग 49,000 जातियाँ सम्मिलित हैं। इसमें से 40,000 जातियाँ जीवित तथा शेष विलुप्त हो चुकी हैं।

1.2.9 एनऐम्नियोटा तथा ऐम्नियोटा कशेरुकियों की तुलना (Comparison Between Anamniota and Amniota Vertebrates)

एनऐम्नियोटा (Anamniota or Lower Vertebrates)

1. **समूह (anamniota) के अन्तर्गत वर्टीब्रेट्स के निम्न वर्ग**– ओस्ट्रैकोडर्मी, साइक्लोस्टोमेटा, प्लैकोडमी, कॉण्ड्रिक्थीज, होलोसिफैली, डिप्नोई, ओस्टीक्यीज तथा ऐम्फिबिया (Ostracodermi, Cyclostomata, Place dermi, Chondrichthyes, Holocephali, Dipnoi, Osteichthyes and Amphibia) सम्मिलित हैं। इन्हें सामान्यः निम्नतर कशेरुक (Lower Vertebrates) कहते हैं।
2. ये विशेषतः जलीय माध्यम में वास करते हैं।
3. शरीर सामान्यतः तीन भागों– सिर, धड़ तथा पुच्छ में विभाजित होता है। ग्रीवा अनुपस्थित होती है।
4. दो जोड़ी पैर या पादों (limbs) में पाए जाते हैं।
5. बाह्य कंकाल अनुपस्थित या डर्मल स्केल्स के रूप में होता हैं।
6. फैरिन्जियल गिल–स्लिट्स जीवन–पर्यन्त उपस्थित होते है।

7. नोटोकॉर्ड उपस्थित होती है, किन्तु सेगमेण्टेड तथा कार्टिलेज से घिरी होती हैं।
8. अन्तःकंकाल अधिकांशतः कार्टिलेज की।
9. हृदय 2 या 3 चेम्बर्स से निर्मित होता है।
10. असमतापी या शीत–रुधिरीय (poikilothermous or cold-blooded) होते हैं।
11. श्वसन अंग गिल्स के रूप में पाए जाते है।

एम्नियोटा (Amniota or Higher Vertebrates)

1. समूह amniota के अन्तर्गत वर्टीब्रेट्स के शेष रेप्टीलिया, ऐवीज, मैमेलिया (Reptilia, Avis and Mammalia) सम्मिलित हैं।
2. सामान्यतः उच्चतर कशेरुकी (Higher venbrates) कहते हैं।
3. ये विशेषतः स्थलीय होते हैं।
4. शरीर सामान्यतः चार भागों में सिर, ग्रीवा, धड तथा पुच्छ में विभाजित होता है।
5. दो जोड़ी पेण्टाडेक्टाइल पाद एवं फिन्स पूर्णतः अनुपस्थित होते हैं।
6. बाह्य कंकाल एपिडर्मल सेल, फैदर्स, बालों, पंजों, हॉर्नस् आदि के रूप में होता हैं।
7. फैरिन्जियल गिल–स्लिट्स वयस्कों में अनुपस्थित होते हैं।
8. नोटोकॉर्ड वयस्क में वर्टीब्रल कॉलम में बदली हुई अवस्था में पाया जाता हैं।
9. अन्तःकंकाल अधिकांशतः हड्डी के रूप में होता है।
10. हृदय रेप्टाइल्स को छोड़कर सभी में 4 चेम्बर्स से निर्मित होता हैं।
11. समतापी या गरम–रुधिरीय (homiothermous or warm-blooded) कहा जाता है।
12. श्वसन अंग फेफड़ों के रूप में होते हैं।
13. किडनी मीसो या मेटानेफ्रिक होती हैं।

1.3 यूरोकॉर्डेटा–प्रतिरूपी उदाहरण– हर्डमानिया (Urochordata – Typical Example– Herdmania)

क्लास यूरोकॉर्डेटा में सी–स्क्वर्ट (Sea squirt) अथवा ऐसिडियन (acsidian) और उनके सम्बन्धी प्राणी पाये जाते हैं जो सभी समुद्रवासी हैं और कुल मिलाकर व्यापक रूप से पाया जाने वाला यह एक विचित्र वर्ग है। इनमें से अधिकांश वयस्क में अनेक कॉर्डेट–आरक्षण समाप्त हो जाते हैं लेकिन इनके स्वच्छन्द तैरने, वाले लार्वों में इनकी कॉर्डेट सम्बन्ध–समानताएँ स्पष्ट दिखाई पड़ जाती हैं। इन लार्वों में

टिप्पणी

ग्रसनी गिल–दरार, पृष्ठीय नलिकाकार केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र और एक नोटोकॉर्ड होता है जो केवल पूँछ तक सीमित रहता है (इसलिए यूरोकार्डेटा नाम पड़ा)। कायांतरण के दौरान गिल–दरारों को छोड़कर अन्य सभी कार्ड आरक्षण समाप्त हो जाते हैं ये गिल–दरारें बाहर को न खुलकर एक एट्रियम (atrium) में खुलती हैं जिस में एक्टोडर्म का स्तर बना होता है। इनके शरीर के चारों तरफ एक आवरण बन जाता है जिसे टेस्ट (test) या ट्यूनिक (tunic) कहते हैं (इसी आधार पर ट्यूनिकेटा, (Tunicata) नाम पड़ा)। कायांतरण में होने वाले परिवर्तन स्थानबद्ध जीवन के लिए विशेषीकरण हैं, ऐसे जीवन में सिलियरी आहार–पद्धति परिपूर्ण हो जाती है, जिसके कारण संचलन अंग तथा तन्त्रिका–संवेदी तन्त्र सरल और ऱ्हासित हो जाते हैं। इनमें विखंडता नहीं पाई जाती और सीलोम का अभाव होता है। ये सभी उभयलिंगी होते हैं। कुल मिलाकर लगभग 2200 यूरोकॉर्डेटा ज्ञात हैं। इनमें संरचना, स्वभाव और आवास सम्बन्धी भारी विविधता पायी जाती है। ये स्थानबद्ध हो सकते हैं अथवा स्वच्छन्द तैरने वाले। ये सभी समुद्रों में पाये जाते हैं और तटों के सहारे–सहारे ये दो मील से अधिक की गहराई तक पाये जाते हैं।

प्रतिरूपी उदाहरण– हर्डमानिया (*Herdmania*) यूरोकॉर्डेटा अथवा ट्यूनिकेट समुद्री प्राणी होते हैं जो सभी समुद्रों की सभी गहराइयों में पाए जाते हैं। ये उत्तरी ध्रुव महासागर तथा दक्षिणी ध्रुव महासागर के क्षेत्रों से लेकर उष्णकटिबंधीय तक तथा वेलांचली क्षेत्रों से लेकर तीन मील तक के गहरे क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यूरो कोर्डेटा एक समान स्थानबद्ध पूर्वज से उत्पन्न हुए है और इस क्लास की सर्वाधिक सामान्य दशा समुद्री स्वेटर में पाई जाती है जिनमे हर्डमानिया आता है। हर्डमानिया भारतीय समुद्रों में पाया जाने वाला सबसे सामान्य मॉनेसीडियन प्राणी है। हर्डमानिया की बारह ज्ञात स्पीशीज में से केवल तीन स्पीशीज भारत में पाई जाती हैं, ये तीन स्पीशीज, पैलिडा *(H- pallida),* सीलोनिका *(H- ceylonica)* तथा मौरिशियाना *(H- mauritiana)* हैं। इनमें से भी केवल पहली दो स्पीशीज ही भारत के तटवर्ती समुद्रों में पाई जाती हैं और तीसरी स्पीशीज गहरे जल में पाई जाती है। यहाँ पर हर्डमानिया पैलिडा का विस्तार से वर्णन किया गया है।

स्वभाव तथा आवास– हर्डमानिया पैलिडा एकचर समुद्री प्राणी है। इसका प्रत्येक प्राणी अपने पश्च–अधर सिरे पर एक पाद द्वारा अधःस्तर से प्रायः अलग–अलग चिपका होता है। जब अधःस्तर रेतीला होता है तब पाद चौड़ा या लंबा बन जाता है जो रेत में गड़ा रहता है और जन्तु को समुद्र की तली में स्थिर किए रहता है। हर्डमानिया के टेस्ट मे अनेक प्रकार के बहुत से जीव रहते पाए जा सकते हैं। इनमें से कुछ जीव केवल टेस्ट की सतह पर ही चिपके हो सकते हैं तथा अन्य जीव टेस्ट के पदार्थ में न्यूनाधिक गड़े रह सकते हैं। हर्डमानिया के भोजन में सूक्ष्म पौधे और प्राणी आते हैं जैसे कि शैवाल। हर्डमानिया का विस्तार दूर–दूर तक पाया जाता है हालाकि इसे सार्वभौमिक स्पीशीज नहीं कहा जा सकता। हर्डमानिया हिन्द महासागर, प्रशांत महासागर तथा अटलांटिक महासागर से रिकार्ड की गई है और यह स्पीशी मलय तथा पश्चिमी द्वीप समूह से भी प्राप्त की गई है। हर्डमानिया उभयलिंगी तथा अण्डप्रजक होती है। निषेचन समुद्र में

सम्पन्न होता है और अण्डों से निकलते टेडपोल लार्वा अल्पकालीन स्वच्छंद जीवन बिताकर समुद्र की तली में बैठ जाते और एक स्थिर जीवन बिताने लगते हैं।

1.3.1 बाह्य लक्षण (External Features)

हर्डमानिया पैलिडा का शरीर कुछ–कुछ दीर्घ आयत प्रकृति का होता है, इसका चिपका हुआ सिरा मुक्त सिरे की अपेक्षा संकीर्ण होता है। मुक्त सिरे पर दो छिद्र होते हैं–गिल–छिद्र (branchial aperture) तथा एट्रियमी–छिद्र (atrial aperture)। वयस्क का औसतन आकार लगभग 9.5 cm लंबा, 7 cm चोड़ा तथा 4 cm मोटा होता है। अधिक आयु वाले प्राणियों का आकार 12 × 8 × 4 cm तथा असाधारण रूप में बड़े प्राणी का आकार 13 × 8 × 4'5 cm हो सकता है। पाद जब भी पाया जाता है तो काफी लंबा (3 से 4 cm) का हो सकता है। प्राकृतिक अवस्था में शरीर का सामान्य रंग गुलाबी होता है। सतह पर चटकीले लाल रंग के क्षेत्रकों का बना होना हर्डमानिया का विशिष्ट लक्षण है, ये क्षेत्रक टेस्ट में मौजूद रक्त वाहिनियों की अन्तस्थ घुण्डियों (ऐम्पुलाओं) से बने होते हैं। टेस्ट नरम और चर्मीय होता है। यह अल्पवयस्को में लगभग पारदर्शी किन्तु वयस्कों में प्रायः अपारदर्शी होता है। टेस्ट की बाहरी सतह प्रायः ऊँची–नीची होती है जिस पर कहीं उथली कहीं काफी गहरी रेखाएँ बनी होती है जो एक दूसरे को काटती हुई सी भी दिखाई पड़ती हैं। गिल–छिद्र तथा एट्रियमी छिद्र शरीर के छोटे–छोटे उभारों पर बने होते हैं। जिन्हें क्रमशः गिल–साइफन (branchial siphon) तथा एट्रियमी साइफन (atrial siphon) कहते हैं। पूरी तरह फेले होने पर एट्रियमी साइफन, गिल–साइफन से ज्यादा लंबा होता है। बड़े प्रकार के प्राणी में एट्रियमी साइफन लगभग 1.5 cm, तथा गिल–साइफन लगभग 1 cm लंबा होता है। एट्रियमी साइफन लगभग सदैव ही ऊपर को रुख किए रहता है और एट्रियमी छिद्र लगभग सीधा खड़ा होता है। किन्तु गिल साइफन सदैव थोड़ा सा बाहर की ओर झुका रहता है और गिल–छिद्र लगभग पार्श्वतः तथा एट्रियम छिद्र से दूर को खुलता है। पूरी तरह फैले गिल–छिद्र का औसतन व्यास लगभग 2 cm, और एट्रियमी छिद्र का ओसतन व्यास लगभग 1:2 cm होता है। गिल–साइफन के प्रचार पर लंबे गिल–स्पर्शकों (branchial tentacles) का एक चक्र बना होता है, तथा एट्रियमी साइफन के आधार पर एट्रियमी स्पर्शक (atrial tentacles) नामक मामूली से दाँतेदार वलनों का एक घेरा बना होता है। साइफनों का टेस्ट बहुत लचीला होता है और समुद्र के जल में तनिक सा भी विक्षोम होने पर यह संकुचित होकर छिद्रों को बंद कर देता है।

टिप्पणी

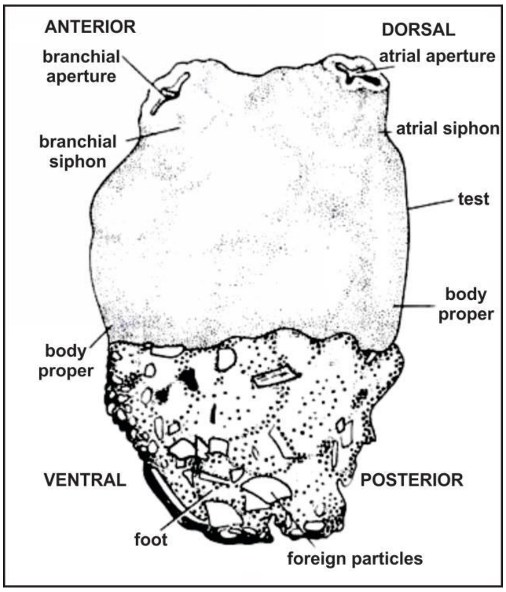

चित्र क्र. 1.4: हर्डमानिया पैलिडा (बाह्य लक्षण)

पाद जब होता है तब यह प्राणी के आवास के अधःस्तर की प्रकृति के अनुसार भिन्न–भिन्न आकृति का हो सकता है। यदि अधःस्तर बारीक रेत का बना हुआ हो तब पाद अण्डाकार होता है, सतह चिकनी होती है तथा टेस्ट काफी कड़ा होता है। किन्तु यदि अधःस्तर सीपी–कवच आदि के मोटे–मोटे टुकड़ों का होता है तब पाद के आकृतिक अनियमित होती है और यह लगभग नरम होता है।

गिल–छिद्र प्राणी का अग्र सिरा दर्शाता है, फलतः विपरीत सिरा जो अधःस्तर पर चिपका रहता है, पश्च सिरा होता है। एट्रियमी छिद्र वाली दिशा शरीर की पृष्ठ दिशा होती है जो बहुत ही सीमित होती है। एट्रियमी छिद्र वाली सतह से विपरीत दिशा जो अंशतः अधःस्तर से चिपकी रहती है अधर सतह होती है। यह अधर सतह काफी बड़ी होती है।

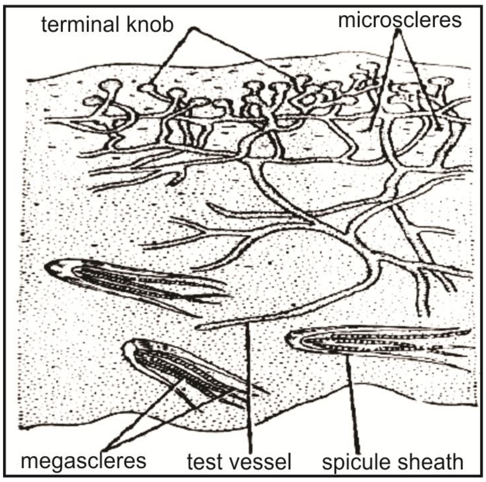

चित्र क्र. 1.5: हर्डमानिया – टेस्ट का उदग्र सेक्शन जिसमें रक्त वाहिकाएं, ऐम्पुला तथा कंटिका दिखाई पड़ रही हैं।

टिप्पणी

1.3.2 टेस्ट (Test)

जन्तु को बाहर से घेरने वाला आवरण चर्मीय पारसी टेस्ट या ट्यूनिक होता है जो ट्यूनिसिन (tunicine) का बना होता है।

ट्यूनिसिन एक ऐसा पदार्थ है जो पौधों के सेलुलोज से मिलता–जुलता है। पाद पूर्णतः टेस्ट का बना होता है। टेस्ट में एक स्वच्छ मेटिक्स आघार पदार्थ होता है जिसमें कई चीजें गड़ी रहती हैं। विभिन्न आकृतियों की कोशिका बनाते हुए तन्तु, कैल्शियम कंटिकाएँ भरोर विशाखा रक्त – वाहिकाएं, जिनके अन्त में बल्ब सदृश उत्फूलन बने होते हैं जिन्हें वाहिकीय एम्पुल्ला (vascular ampullae) कहते हैं। इन वाहिकीय एम्पुल्ला के द्वारा टेस्ट के ऊपर चटक लाल रंग के चकते पड़ जाते हैं। रक्त वाहिकाओं तथा ऐम्पुलों के द्वारा रक्त का संचार होता और इस प्रकार वे टेस्ट में आहार लाते हैं, साथ ही वे सहायक श्वसन अंगों का कार्य भी करते हैं। ऐम्पुला संवेदी अंग भी होते हैं। टेस्ट एक्टोडर्म से उत्पन्न हुआ होता है लेकिन टेस्ट में पायी जाने वाली कोशिकाएँ मीजोडर्मी होती हैं, वे प्रवास द्वारा टेस्ट पहुँच गयी होती हैं। कोशिकाओं के अनेक साइज और अनेक आकृतियाँ होती हैं, जैसे वे बड़ी और छोटी अण्डाकार कोशिकाएँ अमीबीय कोशिकाएँ, कोणीय कोशिका, गोल रिक्तिकायित (vacuolated) कोशिकाएँ, आदि हो सकती है। कुछ तन्त्रिका–कोशिकाएँ होती हैं जिनमें अनेक प्रवर्ध निकले होते है।

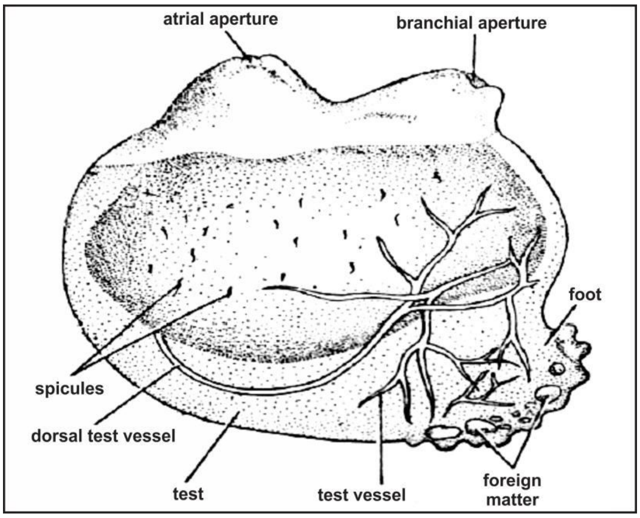

चित्र क्र. 1.6: हर्डमानिया – टेस्ट का प्रवास दृश्य जिसमें दाहिना अर्धांश काट कर टेस्ट वाहिकाएं दिखाई गई हैं।

1.3.3 कंटिकाएँ (Spicules)

शरीर में दो प्रकार की कंटिकाएँ पायी जाती हैं बहुत छोटी लघुकंटिकाएँ (microscleres) तथा बड़ी गुरुकंटिकाएँ (megascleres)। ये सभी कैल्शियम होती है तथा इन की प्रकृति निश्चित होती है।

लघुकंटिका– केवल टेस्ट में होती हैं और उसके पदार्थ में छितराई रहती है। प्रत्येक कंटिका में एक गोल–गोल घुण्डी वाला शीर्ष होता है और एक लंबी देह होती है, जो शीर्ष से विपरीत दिशा में नुकीली होती जाती है। शीर्ष सामान्यतः चिकना होता है और उस पर विरले ही कुछ थोड़े से काँटे हो सकते हैं। लेकिन देह पर काँटे के बहुत से छल्ले बने होते है जिनमें प्रत्येक छल्ले में 5–20 काँटे होते हैं। काँटों के ये छल्ले कंटिका की पूरी देह के चारों ओर होते हैं, और एक दूसरे से लगभग समान दूरियों पर होते है, तथा उस पर बने हुए कंटि सदा शीर्ष की ओर को रुख किये रहते हैं। काँटो का साइज उनकी वृद्धि अवस्था पर निर्भर होता है। औसत साइज 60 माइक्रॉन होता है लेकिन बहुत बड़े काँटे करीब 80 माइक्रॉन तक के हो सकते है। गुरुकंटिकाएँ दो प्रकार की होती हैं– (i) स्पिडलनुमा और (ii) पिपेटनुमा। ये दोनों प्रकार की कंटिकाएँ लघुपट काँटो से कहीं ज्यादा बड़ी होती है।

(i) स्पिन्डलनुमा कंटिकाएँ (Spindle-shaped spicules)– सदैव योजी ऊतक के एक आवरण में बंद होती हैं और वे प्राणी के समस्त शरीर के अधिकतर ऊतकों में छितराई होती हैं। लेकिन ये टेस्ट के पश्च अर्धांश में नियमित रूप में व्यवस्थित होती हैं। ये मेंटल में भी प्रचुर संख्या में पाई जाती हैं लेकिन उसमें ये समान रूप में वितरित नहीं रहतीं। ये प्रायः जठर तथा गोनडों के प्रदेश में बहुत सघन होती है। इसी प्रकार साइफनों के आधार पर भी बहुत संख्या में पाई जाती हैं, और आंत के प्रदेशों में भी काफी होती हैं। लेकिन श्रद्धेय पेशियों के आधार पर बहुत अल्प होती हैं। ये प्रायः चरणों में बंद रेखीय पंक्तियों में व्यवस्थित रहती हैं, और प्रत्येक पंक्ति का स्वरूप एक डोरी जैसा होता है। लघुकंटिकाओं के समान प्रत्येक गुरुकंटिका में जाटों के बहुत से छल्ले बने होते हैं, इनके प्रत्येक छल्ले में 20 से 60 काँटे होते हैं और सभी काँटे एक ही दिशा में रुख किये रहते हैं। इनका साइज वृद्धि प्रवस्था के अनुसार छोटा–बड़ा होता है। उसके स्तन साइज 1.5 mm होता है हालांकि कुछ 2.8 mm तक के हो जाते हैं।

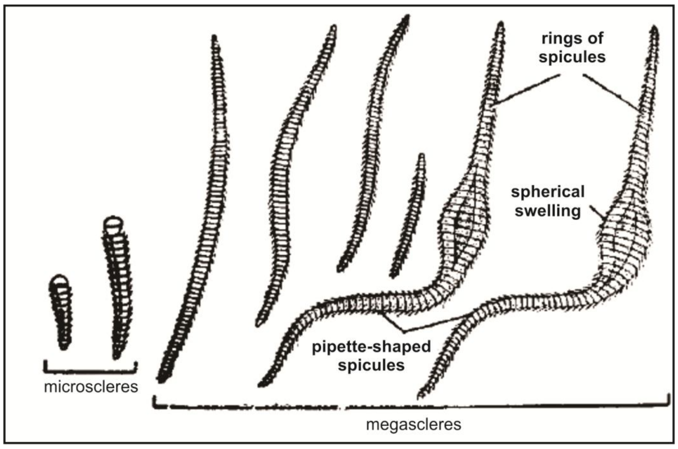

चित्र क्र. 1.7: हर्डमानिया – विभिन्न प्रकार की कंटिकाएँ।

(ii) पिपेटनुमा कंटिकाएँ (Pipette - shaped spicules)– प्रकार में स्पिन्डलनुमा कंटिकाएँ की अपेक्षा ज्यादा बड़ी होती है। लेकिन कभी–कभी ये बहुत ही ज्यादा बड़ी यहां तक कि 3.5 mm, तक लम्बी होती हैं। इनकी प्रत्येक कंटिका का एक मुख्य लक्षण इनके मध्य में बना हुआ एक गल, फूला हुआ भाग होता है। जिससे, यदि कंटिका सीधी हुई तो, उसका रूप एक पिपेट जैसा हो जाता है। कितु प्रायः ये कंटिकाएँ सीधी नहीं होती, इनके फूले भाग के दोनों ओर की नुकीली शाखाएँ एक या दूसरी ओर को मुडी होती हैं जिसके फलस्वरूप कंटिका की आकृति U अथवा V जैसी हो जाती है। स्पिन्डलनुमा कंटिकाओं की तरह इनमें भी काँटों के बहुत से छल्ले बने होते हैं, और ये भी योजी ऊतक के आवरणों में बंद होती हैं। ये मेंटल में बहुत संख्या में होती हैं और मुख्य रूप में गोनडों के क्षेत्र तथा यकृत की पालियों में पाई जाती हैं।

गुरुकंटिका– शरीर के लगभग प्रत्येक अंग में पाई जाती हैं। इन कंटिकाओं का कोई निश्चित कार्य नहीं बताया जा सकता, बस इतना ही कहा जा सकता है कि ये शायद शरीर के विभिन्न अंगों को सहारा देती हैं। देखा गया है कि मेंटल की बहुत सी कंटिकाएँ टेस्ट में उभरी–घुसी रहती हैं जिससे कि कंटिका का आधा भाग टेस्ट में तथा आधा भाग मेंटल में गड़ा रहता है। अतः इनमें से कुछ कंटिकाओं का कार्य टेस्ट को मेंटल से कसकर चिपकाए रखना जान पड़ता है। इस मत की पुष्टि एक बात से हो जाती है कि कंटिकाओं की स्थिति ऐसी होती है कि इनके सभी काँटे मेंटल की ओर को रुख किए रहते हैं जिससे मेंटल के संकुचित होने पर मेंटल टेस्ट से दूर नहीं जा सकता। जब कंटिका रक्त वाहिकाओं के चारों ओर आवरण बनाए रखती हैं तब उनका कार्य वाहिकाओं की दीवारों को कड़ा करना होता है ताकि वे पिचक न जाएँ।

1.3.4 सामान्य शरीर (General Anatomy)

हर्डमानिया का शरीर मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। वास्तविक शरीर, जो समुद्री जल में उभरा होता है और पाद जो समुद्र की तली में गड़ा होता है। प्राणी के सभी कोमल अंग वास्तविक शरीर में होते हैं और पाद केवल टेस्ट का ही बना होता है। यदि वास्तविक शरीर के बाईं ओर का टेस्ट काट कर हटा दिया जाए तो लगभग पारदर्शी मेंटल में से जन्तु के अनेक भीतरी अंग दिखाई पड़ सकते हैं, या फिर समूचे टेस्ट को हटा कर शरीर को देखा जा सकता है।

बाईं ओर से देखने पर शरीर में निम्नलिखित संरचनाएँ सुगमता से पहचानी जा सकती हैं–

1. दो उभरे हुए साइफन (Siphon) जिनमें वलयाकार तथा अनुदैर्ध्य पेशियाँ दिखाई देती है।
2. एक चौड़ा पास बनाती हुई आंत (intestine)।
3. यकृत की बाईं पालि का एक अंश जो चाकलेट के रंग का पिंड होता है।

4. बायाँ गोनड (Left gonad) जो एक गुलाबी से रंग की संहति के रूप में आंत–पाश में पड़ा होता है।

टिप्पणी

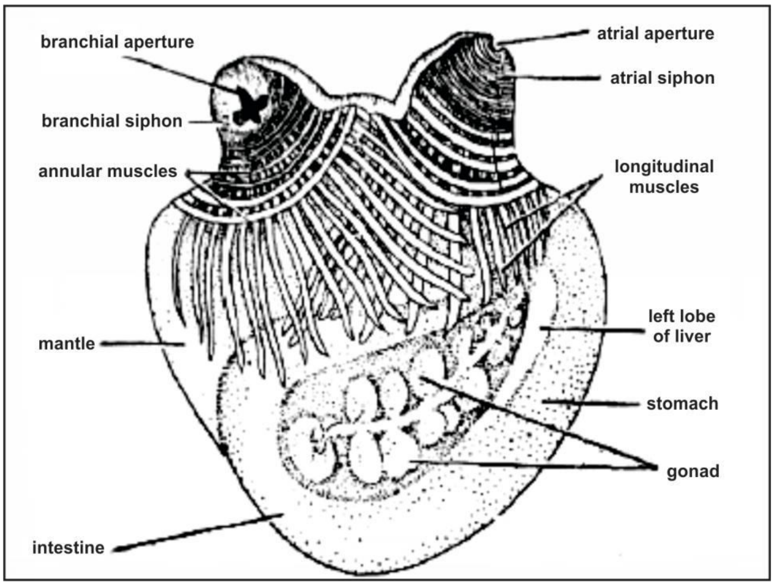

चित्र क्र. 1.8: हर्डमानिया – जन्तु का पार्श्व दृश्य जिसमें टेस्ट को बाईं ओर से काट कर भीतरी संरचना दिखाई गई है।

शरीर को दाई ओर से देखने पर निम्नलिखित संरचना दिखाई देंगी–

1. तन्त्रिका (हाइपोफिजियल) ग्रन्थि (Neural Hypophysis glands) दोनों साइफनों के बीच के क्षेत्र में एक गहरे से रंग का उभरा हुआ भाग बनाती है।
2. परिहृद् (Pericardium) जो एक लम्बी समान मोटाई की बालचंद्राकार पारदर्शी नली होती है, जिसके भीतर हृदय स्थित होता है।
3. यकृत की दाई पालि (Right lobe of the liver) जिसकी लगभग अण्डाकार चाकलेट रंग की संहति परिहृद् के सिरे के समीप स्थित होती है।
4. दायाँ गोनड (Right gonad) जो साइफन की अनुदैर्ध्य पेशियों के निवेशरेखा के समीप एक पालियुक्त गुलाबी सी संहति होती है।

एंडोस्टाइल को दाईं और बाईं दिशाओं से एक अपारदर्शी छड़ के रूप में देखा जा सकता है जो गिल के समूचे अधर सीमांत के सहारे–सहारे चलती जाती है।

टिप्पणी

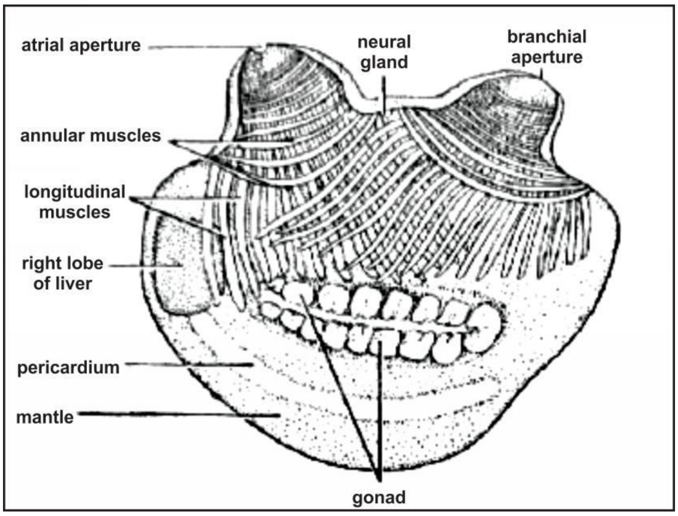

चित्र क्र. 1.9: हर्डमानिया – टेस्ट हटा देने के बाद जैसा वह बाईं ओर से दिखाई पड़ता है।

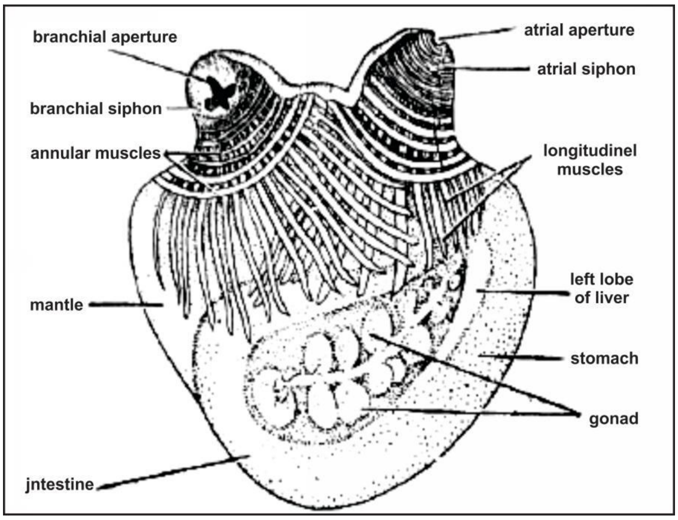

चित्र क्र. 1.10: हर्डमानिया – टेस्ट हटा देने के बाद प्राणी, जैसा कि वह दाईं ओर से दिखाई देता है।

मेंटल तथा गिल– थैले की दीवार में से काट लगाने के बाद, गिल–थैले की गुहा खुल जाती है। इसके अन्तिम अग्र सिरे पर चिरा हुआ मुख अथवा गिल–साइफन होता है जिसके पीछे गिल–संवरणी (branchial sphincter) और उसके स्पर्शकों का घेरा दिखाई देता है। स्पर्शकों के पीछे चिकना गिलपूर्वी क्षेत्र होता है जिसकी पश्चसीमा पर दो ग्रसनी पट्टियाँ (peripharyngeal bands) होती हैं। गुल पूर्वी क्षेत्र में परिग्रसनी पत्तियों तथा पृष्ठ–पटल के संधि स्थान पर पृष्ठीय गुलिका (dorsal tubercle) स्थित होती है। पृष्ठीय पटल पूरे नीचे ग्रसिका–छिद्र (oesophageal opening) के अग्र सीमांत तक आ जाता है, यह छिद्र तथाकथित ग्रसिका क्षेत्र से घिरा होता है। गिल थैले की खुल गई हुई भीतरी सतह पर दोनों पार्श्वों पर अनेक वलन बने होते हैं।

गिल–थैला काट कर निकाल देने के बाद जन्तु के अन्य भीतरी शरीरांग दिखाई पड़ने लगते हैं। शरीर के बाएँ अंग में जठर में से ग्रसिका दिखाई पड़ती है। यह जठर यकृत की बड़ी आकार की बाईं पालि से ढका होता है। जठर बिना किसी सीमा रेखा के लम्बी अंतडी में जारी रहता है और यह अंतडी एक पाश बनाती है जिसमें बाएँ गोनड घिर जाता है। यह अंतडी एक छोटे से मलाशय के द्वारा एट्रियमी साइफन के आधार पर खुलती है। परिहृद्, यकृत की बाईं पालि और दायाँ गोनड शरीर के दाएँ प्रघांश में स्पष्ट दिखाई दे सकते हैं।

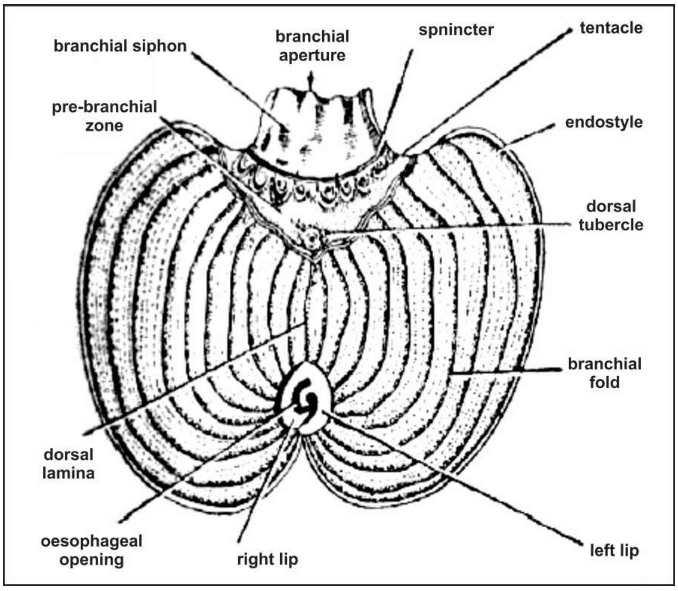

चित्र क्र. 1.11: हर्डमानिया : अधर दिशा से अनुदैर्ध्य काट कर खोल गया प्राणी जिसमें ग्रसनी का भीतरी दृश्य दिखाई पड़ रहा है।

1.3.5 मेंटल (प्रावार) तथा एट्रियम (परिकोष्ठ) (Mantle and Atrium)

टेस्ट के भीतर देह–भित्ति अथवा मेंटल (mantle) होता है। मेंटल से टेस्ट का स्राव होता है। मेंटल टेस्ट के भीतर निलम्बित रहता है। वह केवल गिल एवं एट्रियम–छिद्रों पर ही जुड़ा होता है जहाँ पर वह गिल और एट्रियम साइफनों का निर्माण करता। मेंटल के भीतर एक बड़ी एट्रियम–गुहा (atrial cavity) बंद होती है जिसमें पानी भरा होता है। मेंटल में एक बाहरी परत एक्टोडर्म की, मध्य परत मीजोडर्म की और भीतरी परत पुनः एक्टोडर्म की होती है। यही भीतरी परत एट्रियम–गुहा का बाहरी अस्तर बनाती है। गिल और एट्रियम–साइफनों के चारों ओर अनेक छल्लों के रूप में व्यवस्थित वलयाकार पेशियाँ (annular muscles) होती हैं। वलयाकार पेशियों के नीचे अनुदैर्ध्य पेशियाँ (longitudinal muscles) होती है जो गिल– तथा एट्रियम–छिद्रों से चलती हैं और देह के लगभग आधे मार्ग तक हर पार्श्व में पंखे के रूप में फैलती जाती हैं। सभी पेशियाँ अरेखित (Smooth) होती हैं।

टिप्पणी

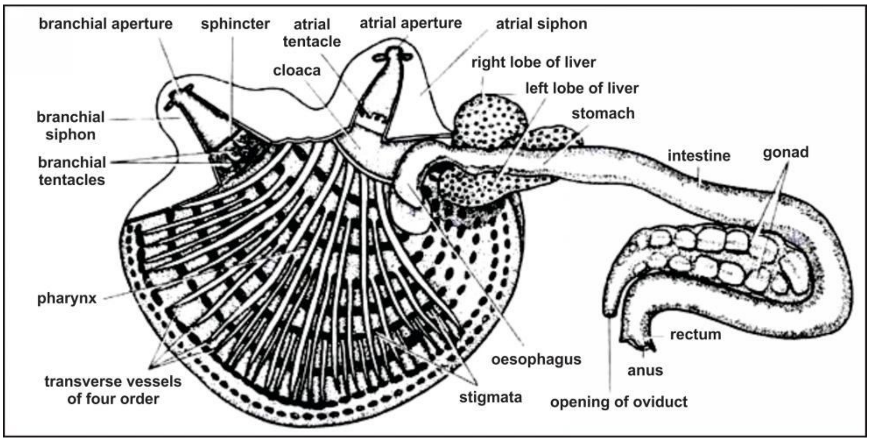

चित्र क्र. 1.12: हर्डमानिया – अधर दिशा से अनुदैर्ध्य काट कर दिखाया गया जन्तु जिसमें गिल–थैला निकाल कर भीतरी अंग दिखाए गए हैं।

आहार नाल– मेंटल के भीतर एट्रियम–गुहा में पड़ी हुई एक बड़ी थैले–जैसी ग्रसनी (pharynx) होती है जिसे गिल–थैला (branchial sac) भी कहते हैं। ग्रसनी की दीवार अग्र और अधर दिशाओं में मेंटल के साथ समेकित रहती है, इस समेकन के कारण एट्रियम–गुहा दाएँ और बाएँ दो भागों में बँट जाती है, हालांकि ये दोनों भाग पृष्ठ दिशा में एक–दूसरे में जारी रहते हैं। मुख अथवा गिल–छिद्र एक गिल–साइफन में खुलता है जो एक मुख–पथ (स्टोमोडियम) है क्योंकि उसमें एपिडर्मिस का अस्तर बना होता है।

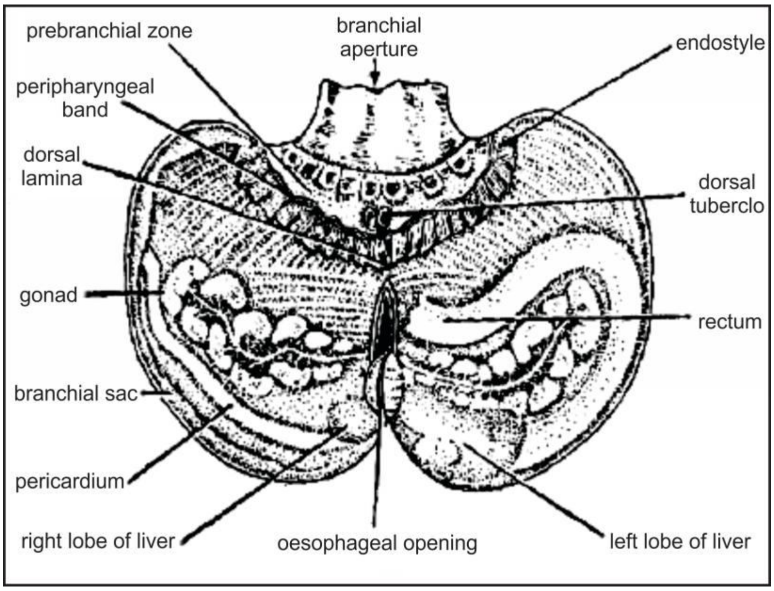

चित्र क्र. 1.13: हर्डमानिया – आहार–नाल जैसी कि वह मेंटल को हटा देने के बाद बाईं ओर से दिखाई पड़ती है।

इसी तरह एट्रियम–साइफन गुदा–पथ (प्रॉक्टोडियम) होता है। स्टोमोडियम के आधार पर विशाखा स्पर्शकों (tentacles) का एक घेरा बना होता है, ये स्पर्शक

टिप्पणी

चलनी की तरह कार्य करते हुए केवल सूक्ष्म आहार–कणों को ही भीतर जाने देते हैं। स्पर्शकों के नीचे एक चिकना गिलपूर्वी (peribronchial) अथवा ग्रसनीपूर्वी (parapharyngeal) क्षेत्र होता है जिसमें दो सर्पिल कुण्डलियों की बनी एक फूली हुई पृष्ठीय गुलिका (dorsal tubercle) होती है। उसके बाद दो पतले सिलियायित उद्रख बने होते हैं जिन्हें ग्रसनी पट्टियाँ (peri-pharyngeal bands) कहते हैं, जो ग्रसनी के ऊपरी सिरे के समांतर और उसे घेरे हुए बने होते हैं। इनमें से पिछली परी ग्रसनी पट्टी मध्य–पृष्ठ दिशा में एक पृष्ठ पटल (dorsal lamina) से और मध्य–अधर दिशा में एक एण्डोस्टाइल (endostyle) से जुड़ी होती है। उसके बाद एक बड़ी ग्रसनी आती है जो लगभग समस्त एट्रियम–गुहा में भरी होती है, शेष आहार–नाल एट्रियम–गुहा में ग्रसनी से बाईं और मेंटल में गड़ी रहती है। ग्रसनी की दीवार में अनुप्रस्थ पंक्तियों में व्यवस्थित स्टिग्मा की अनेक पंक्तियाँ बनी होती है, इन्हीं छिद्रों के द्वारा ग्रसनी एट्रियम–गुहा में खुलती है। स्टिगमैटा के किनारों पर सिलिया बने होते हैं, जो ग्रसनी से एट्रियम–गुहा की दिशा में जलधारा बहाते हैं।

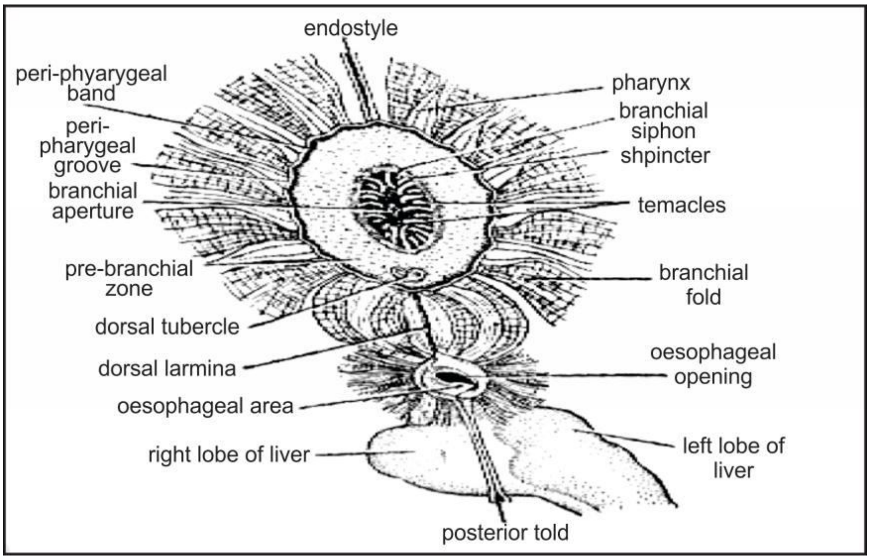

चित्र क्र. 1.14: हर्डमानिया – इस आरेख में गिल वलनों, परिग्रसनी पट्टियाँ, पृष्ठ पटल, ग्रसनी क्षेत्र तथा एण्डोस्टाइल के सम्बन्ध दिखाए गए हैं।

स्टिग्मा गिल–दरारें नहीं हैं बल्कि वे कुछ मूल गिल–दरारों के उपविभाजनों द्वारा बने हैं। दो–दो स्टिग्मा के बीच में ग्रसनी की दीवार में अनुप्रस्थ तथा अनुदैर्ध्य जड़ें होती हैं जिनमें रुधिर वाहिकाएँ होती हैं। इस प्रकार ग्रसनी एक करंड (टोकरी) के समान प्रतीत होती है। ग्रसनी का अस्तर हर पार्श्व में दस–दस अनुदैर्ध्य वलनों के रूप में उभरा रहता है।

पृष्ठ–पटल एक पतली पट्टी सी होती है जो ग्रसनी की मध्य–पृष्ठ छत में पड़ी होती है, इसके किनारे–किनारे अनेक शंक्वाकार सिलियायित उभार बने होते हैं जिन्हें जिव्हिकाएँ (languets) कहते हैं। पृष्ठ–पटल पश्च परिग्रसनी पट्टी से चलता हुआ ग्रसिका के मुखद्वार तक पहुँचता है। पृष्ठ–पटल और उसकी

जिव्हिकाएँ एक पार्श्व में मुड़कर एक नलिका जैसी बना लेती हैं जिसमें से अहार से लदा हुया श्लेष्म गुजर सकता है। ग्रसनी के मध्य–अधर फर्श में एक एण्डोस्टाइल बना होता है, यह एक जांच होती है जिसमें चार अनुदैर्ध्य पंक्तियाँ ग्रन्थि–कोशिकाओं की बनी होती हैं जिनके बीच–बीच में सिलियायित कोशिकाएँ होती हैं। कोशिकाओं की बीच की पंक्ति में लम्बे सिलिया होते हैं। एण्डोस्टाइल की ग्रन्थि–कोशिकाएँ एक श्लेष्मा का स्राव करती हैं जिसे सिलियायित कोशिकाएँ धक्का देकर पाश्वों से बहाती जाती हैं। एण्डोस्टाइल एक ऐसी रचना है जो कशेरुकियों की थायराइड ग्रन्थि के समजात (homologous) है।

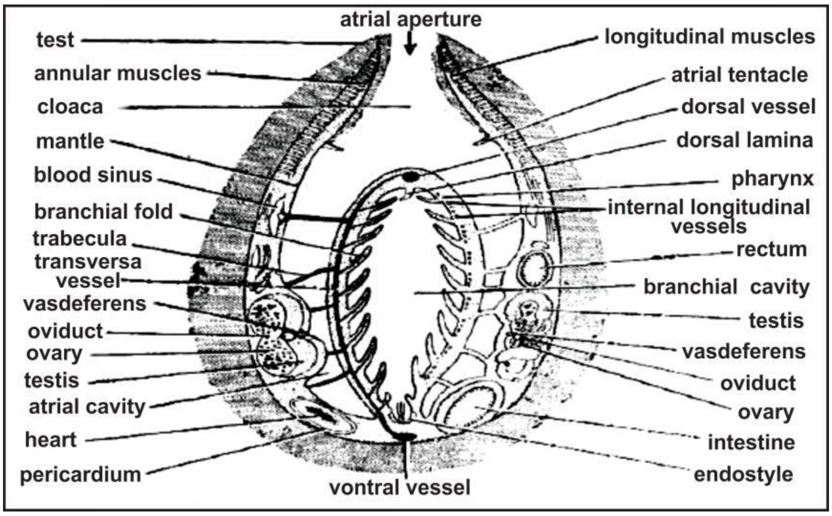

चित्र क्र. 1.15: हर्डमानिया – एट्रियमी साइफन में से गुजरता हुआ प्राणी का आरेखीय अनुप्रस्थ सेक्शन।

ग्रसनी का पश्चीय भाग ग्रसिका–क्षेत्र (oesophageal area) कहलाता है, इसी के चारों ओर ग्रसनी के तमाम वलन आकर केंद्रित होते जाते हैं। ग्रसिका–क्षेत्र में दो अर्धवृत्ताकार ओष्ठ होते हैं जो एक छिद्र को घेरे रहते हैं, यह छिद्र ग्रसिका में खुलता है। ग्रसिका एक छोटी मुड़ी हुई नलिका होती है, जिसके भीतर अस्तर में चार सिलियायित खाँचे होती हैं, ये खाँचे आहार को जठर की ओर जाने देती है। जठर की चौड़ाई ग्रसिका की अपेक्षा ज्यादा होती है लेकिन इसकी दीवारें पतली होती हैं और उनमें एक नलिकाकार विशाखित जठरनिर्गम ग्रन्थि (pyloric gland) होती है। जठरनिर्गम–ग्रन्थि की नलिका एक अकेले छिद्र के द्वारा आंत के मध्य में खुलती है। जठर पतली दीवारों वाले एक आंत में खुलता है जिसमें अक्षर U की आकृति बनाती हुई दो समांतर भुजाएँ होती है। आंत एक छोटे सिलियायित मलाशय (rectum) से जुड़ी होती है और यह मलाशय एक गुदा के द्वारा एट्रियम–गुहा के पृष्ठीय भाग में खुलता है और इस भाग को ऑस्कर (cloaca) कहते हैं। जठर से सटा हुआ एक भूरा जिगर या यकृत होता है जो दो पालियों का बना होता है, इसकी बायीं पाली ज्यादा बड़ी होती है। जिगर से अनेक वाहिनियाँ निकलती हैं जो अलग–अलग रहती हुई जठर में आकर खुलती है।

जिगर और जठर में स्टार्च के समान रचना वाली कोशिकाएँ होती हैं जो कदाचित् संचित आहार होती हैं।

टिप्पणी

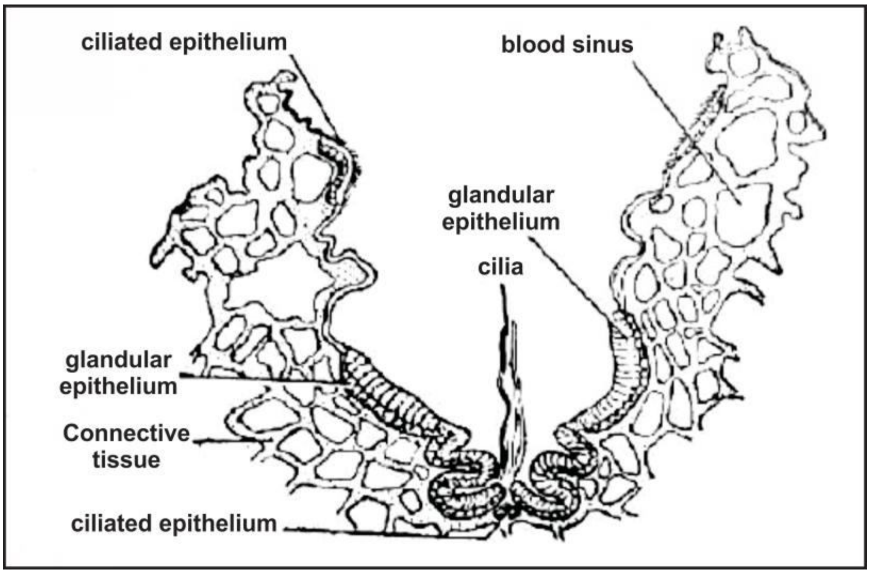

चित्र क्र. 1.16: हर्डमानिया – एण्डोस्टाइल का T.S.I

आहार–ग्रहण– सिलियरी विधि के आहार–ग्रहण का कारण है स्थानबद्ध स्वभाव का पाया जाना। स्टिग्मा से सीमांतों पर बने सिलिया एक सतत जलधारा बनाए रखते हैं जो मुख में प्रवेश करती जाती है। मुख में से होकर यह ग्रसनी में पहुँचती है और फिर स्टिगमैटा में से होती हुई एट्रियम–गुहा में पहुँच जाती है। जहाँ से फिर वह एट्रियम छिद्र के द्वारा बाहर पहुँच जाती है। जल की धारा के साथ–साथ सूक्ष्म जैव आहार–कण भी भीतर चले जाते हैं जो इस तरह ग्रसनी में पहुँचते हैं। ग्रसनी में पहुँचकर वे ग्रसनी–दीवारों पर जा टिकते हैं। एण्डोस्टाइल की ग्रन्थि कोशिकाओं से श्लेष्मा का स्राव होता है (यह श्लेष्म सिलिया द्वारा आगे की ओर नहीं ले जाई जाती जैसा कि शुरू में सोचा जाता था)। श्लेष्मा को एण्डोस्टाइल सिलिया एण्डोस्टाइल से समकोण बनाते हुए अनुप्रस्थ दिशाओं में धक्का देते रहते हैं। ग्रसनी के स्तर पर पड़े हुए आहार–कण श्लेष्म में चिपक जाते हैं और सामान्यतः ग्रसनी की दीवार के सहारे–सहारे ऊपर की ओर चढ़ते जाते है और पृष्ठ–पटल में पहुँच जाते हैं, इस चढ़ते जाने के दौरान आहार–कण और श्लेष्मा की, लिपटे जाते हुए, एक सिलेंडराकार संहति बन जाती है। ऊपर की ओर मुड़ी हुई जिव्हिकाओं के द्वारा बनी नलिका के भीतर पृष्ठ–पटल के सिलिया सिलिंडराकार संहति को एक डोरी का रूप दे देते हैं। आहार से लदी यह श्लेष्मा–डोरी ग्रसिका के भीतर को पहुँच जाती है।

पचन– यकृत से एक पल–भूरे पाचक रस का स्राव निकलता है और जठर में पहुँच जाता है। इस स्राव में अनेक एन्जाइम होते हैं, जैसे कार्बोहाइड्रेट की माल्टोज में तोड़ देने वाला ऐमाइलेज, प्रोटीन को तोड़ने वाला एक प्रोटिएज, और एक कमजोर लाइपेज जो कदाचित् वसाओं पर क्रिया करता है। यकृत के भीतर सुरक्षित खाद्य पदार्थ के रूप में स्टार्च भी जमा कर लिया जाता है।

टिप्पणी

जठर–निर्गम गाथ एक सहायक पाचन अंग है, इसकी प्रवृत्ति कदाचित् अग्न्याशय प्रकार की होती है। आहार का पाचन मुख्यतः जठर के भीतर होता है, अवशोषण आंत के भीतर होता है। सिलियायित मलाशय अत्यधिक कुंडलित मल को इतनी जोर से बाहर को निकाल फेंकता है कि वह एट्रियम–साइफन में से होता हुआ लगभग 10 cm बाहर जा पड़ता है।

श्वसन–तन्त्र– ग्रसनी में प्रवेश करने वाली जलधारा अपने साथ घुली हुई ऑक्सीजन लाती हैं। ग्रसनी की दीवारों में रक्त वाहिनियों तथा सांसों में रक्त की सप्लाई खूब ज्यादा होती है। ये रक्त वाहिनियाँ तथा साइनस ऐसे बड़े–बड़े क्षेत्र प्रदान करते हैं जिनमें कदाचित् कुछ कार्बन डाइऑक्साइड के बदले ऑक्सीजन ग्रहण कर ली जाती है। रक्त का श्वसन–वर्णक ऑक्सीजन को सोखने में लगभग पूर्णतः असमर्थ होता है। गैसों का विनिमय एट्रियम में होता है जहाँ वाहिकीय ट्रेबीक्यूल (vascular trabeculae) पाये जाते हैं। टेस्ट में वाहिकीय ऐम्पुला (vascular ampullae) पाये जाते हैं जो सहायक श्वसन अंगों का कार्य करते हैं और उनके द्वारा टेस्ट की सतह पर गैसों का विनिमय होता है।

परिसंचरण–तन्त्र– रक्त हल्का सा लाल होता है। इसमें रंगहीन प्लाज्मा होता है और प्लाज्मा में अनेक वर्णकित एवं श्रवण की कणिकाएँ तथा कुछ रंगहीन अमीबीय श्वेताणु होते हैं। श्वेताणु (leukocytes) केंद्रकित, अमीबीय और रंगहीन होते हैं। अन्य कणिका गोल और विविध साइजों की होती हैं, कुछ कणिकाओं में रिक्तिकाएं होती हैं, वे केंद्रित भी हो सकती हैं और नहीं भी हो सकती है। उनमें वर्णक न हो या हो सकता है कि उनमें नारंगी, भूरा या पीला–हरा वर्णक हो। हरा वर्णक वैनेडियम (vanadium) होता है जिसे श्वसन वर्णक बताया गया है लेकिन इसकी ऑक्सीजन–अवशोषण क्षमता इतनी कम है कि यह श्वसनीय नहीं हो सकता। ऐसीडियनों में कोशिकाएँ नहीं होती, और बहुत से साइनस होते हैं अतः रक्त और ऊतक द्रव में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि वे दोनों ही स्वच्छंद रूप में एक दूसरे में मिलते जाते हैं।

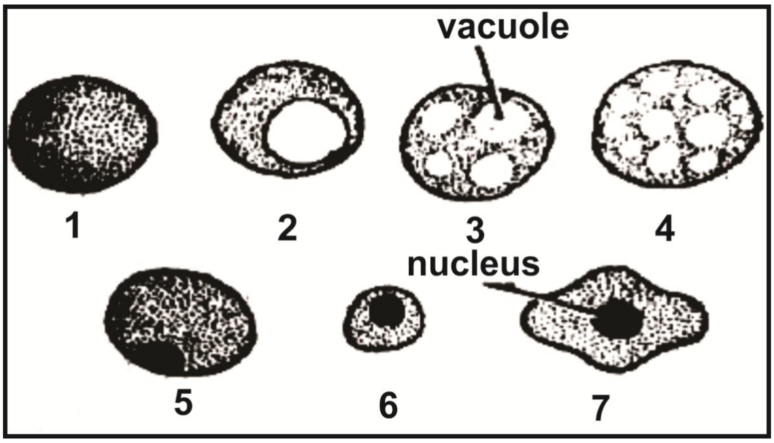

चित्र क्र. 1.17: हर्डमानिया – रक्त कणिकाएँ

टिप्पणी

दाहिने गोनड के नीचे स्थित एक नलिकाकार परिहृद् होता है जिसकी दीवारें मोटी और असंकुचनशील होती हैं। परिहृद् में एक रंगहीन परिहृद्–द्रव भरा रहता है। परिहृद् के भीतर एक पतली–दीवार वाला नलिकाकार संकुचनशील हृदय होता है जिसमें रेखित पेशियाँ होती हैं। हृदय अपनी समूची लम्बाई में एक पतले पल्ले (फ्लैप) द्वारा परिहृद् से जुड़ा होता है।

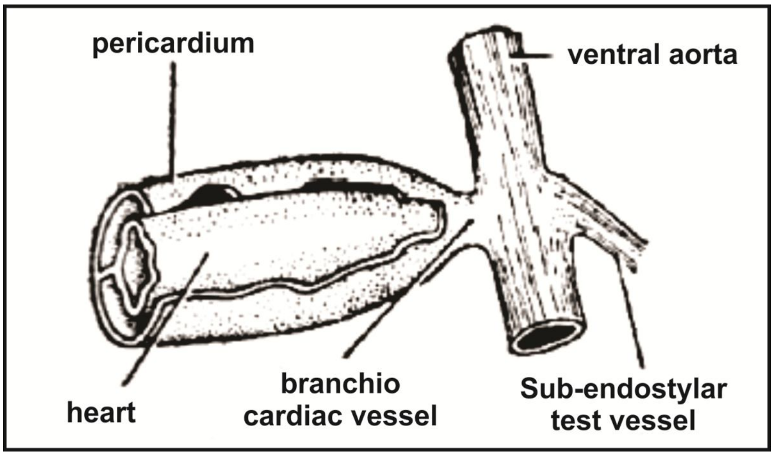

चित्र क्र. 1.18: हर्डमानिया – परिह की दीवार काटकर हृदय का जुड़ा होना दिखाया गया है।

अधिकतर ऐसीडियनों में वास्तविक रक्त वाहिकाएँ नहीं होती, लेकिन हर्डमानिया में ये विकसित होती है। अधर दिशा में हृदय एक अधर महाधमनी (ventral aorta) में खुलता है, यह महाधमनी की दीवार के नीचे पूरी लम्बाई में पड़ी रहती है। हृदय के समीप अधर महाधमनी में से एक अधर टेस्ट वाहिका (ventral test vessel) निकलती है जो टेस्ट में रक्त पहुंचाती है। उदर महाधमनी में से उसकी समूची लम्बाई में युग्मित अनुप्रस्थ वाहिकाएं निकलती हैं जो प्रत्येक पार्श्व पर ग्रसनी की दीवार में स्टिग्मा की पंक्तियों के मध्य से चलती जाती हैं। अनुप्रस्थ वाहिकाओं से छोटी शाखाएँ निकलती हैं जो प्रत्येक पंक्ति के दो–दो स्टिग्मा के बीच में से गुजरती है। अनुप्रस्थ वाहिकाएं ग्रसनी की दीवार में से होकर गुजरती हैं और दूसरी पार पृष्ठ–पटल के ऊपर स्थित पृष्ठ–महाधमनी (dorsal aorta) से जा मिलती है। पृष्ठ–महाधमनी में से शाखाएँ निकलती हैं जो तन्त्रिका–ग्रन्थि में जाती हैं, मुख्य पृष्ठ–महाधमनी पश्च दिशा में गिल–आंतराग वाहिका (branchio visceral vessel) के रूप में चलती जाती है। इस गिल–आंतराग वाहिका से यकृत, गोनडों, ग्रसिका, जठर और आंत को रक्त–सप्लाई पहुँचाती है। हृदय के पृष्ठ सिरे से एक हृद्–आंतराग वाहिका (cardio - visceral vessel) निकलती है जो विशाखा होकर टेस्ट, यकृत, गोनड, ग्रसिका, जठर और आंत में रक्त पहुँचाती है।

टिप्पणी

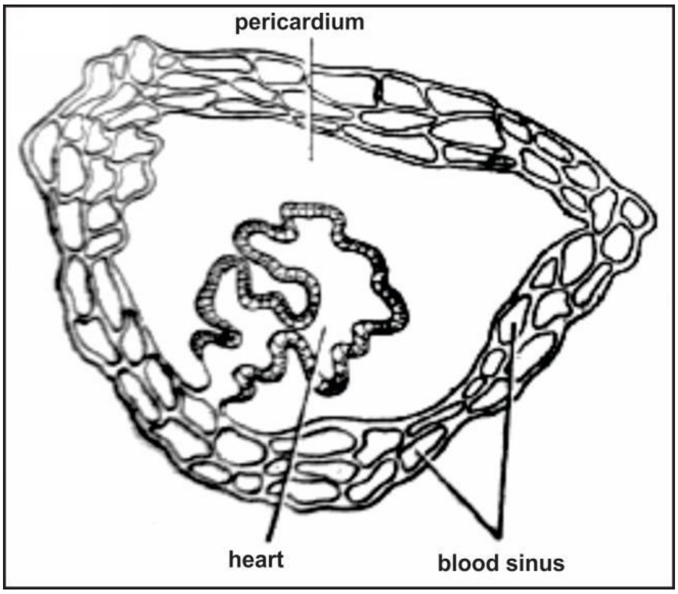

चित्र क्र. 1.19: हर्डमानिया – परिहृद् तथा हृदय का T.S.I

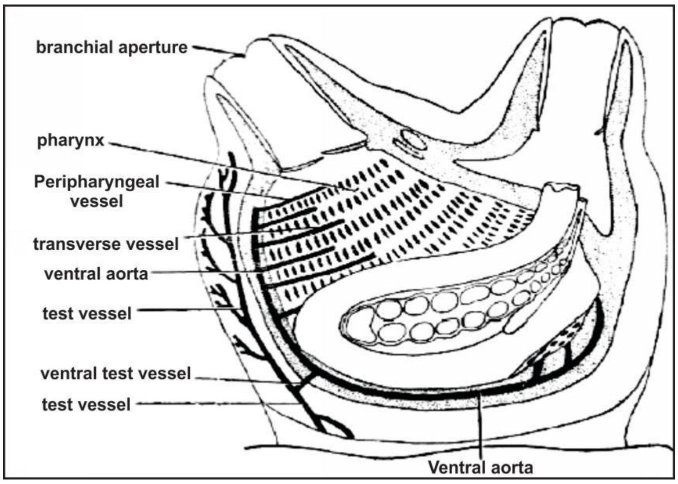

चित्र क्र. 1.20: अधर महाधमनी तथा उसकी शाखाएँ

टिप्पणी

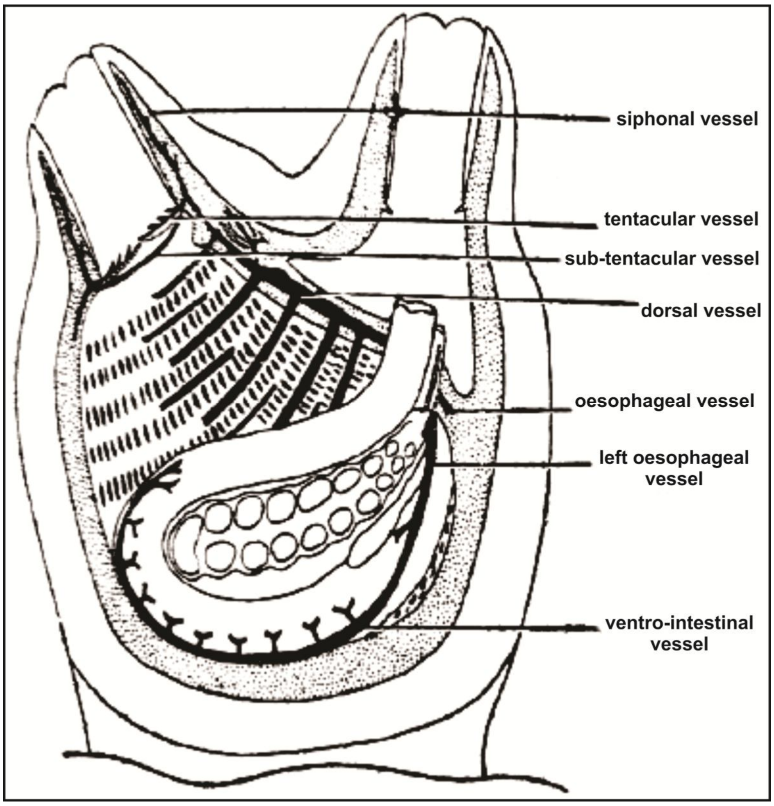

चित्र क्र. 1.21: हर्डमानिया – पृष्ठ महाधमनी तथा उसकी शाखाएँ

परिसंचरण– हृदय के क्रमाकुंचन संकलन, तरंगों के रूप में हृदय के एक छोर से दूसरे छोर तक चलते जाते हैं। इन संकुचनों में कई स्पंदन एक साथ चलते जाते हैं। उसके बाद एक थोड़ा–सा विराम होता है जिसके बाद संकुचन शुरू हो जाते हैं लेकिन इस बार की संकुचन–तरंगें उल्टी दिशा में चलती हैं। इस प्रकार रक्त–प्रवाह एकान्तर क्रम में उल्टी–उल्टी दिशाओं में चला जाता है। जन्तु–जगत में ऐसा कोई अन्य उदाहरण नहीं है जिसमें रक्त का यह अजीब उलटता जाता हुआ प्रवाह पाया जाता हो। जब हृदय में पृष्ठ–अधर दिशा में स्पंदन होता है तब रक्त अधर महाधमनी को पहुँचाया जाता है जहाँ से वह टेस्ट में और अनुप्रस्थ वाहिकाओं द्वारा ग्रसनी में पहुँचता है। रक्त ग्रसनी में ऑक्सीजनित होता है जहाँ से वह पृष्ठ–महाधमनी में पहुँचता है और यह पृष्ठ महाधमनी गिल–आंतराग वाहिका में पहुँच जाती है, और फिर वहाँ से रक्त यकृत, गोनडों, ग्रसिका, जठर और आंत में पहुँचता है। इन अंगों और टेस्ट से रक्त हृद्–आंतराग वाहिका द्वारा एकत्रित होकर वापिस हृदय में पहुँचा दिया जाता है। लेकिन जब हृदय अधर–पृष्ठ दिशा में स्पंदन करता है तब रक्त हृद्–आंतराग वाहिका में पहुँचता है जो टेस्ट और आंतराग को रक्त–सप्लाई पहुँचाती है, आंतराग का रक्त गिल–आंतराग वाहिका, पृष्ठ महाधमनी, अनुप्रस्थ वाहिकाओं, अधर महाधमनी जिसमें टेस्ट से भी रक्त आता है और फिर हृदय में पहुँचता है। रक्त का ऑक्सी–जनीकरण ग्रसनी और टेस्ट दोनों में होता है।

टिप्पणी

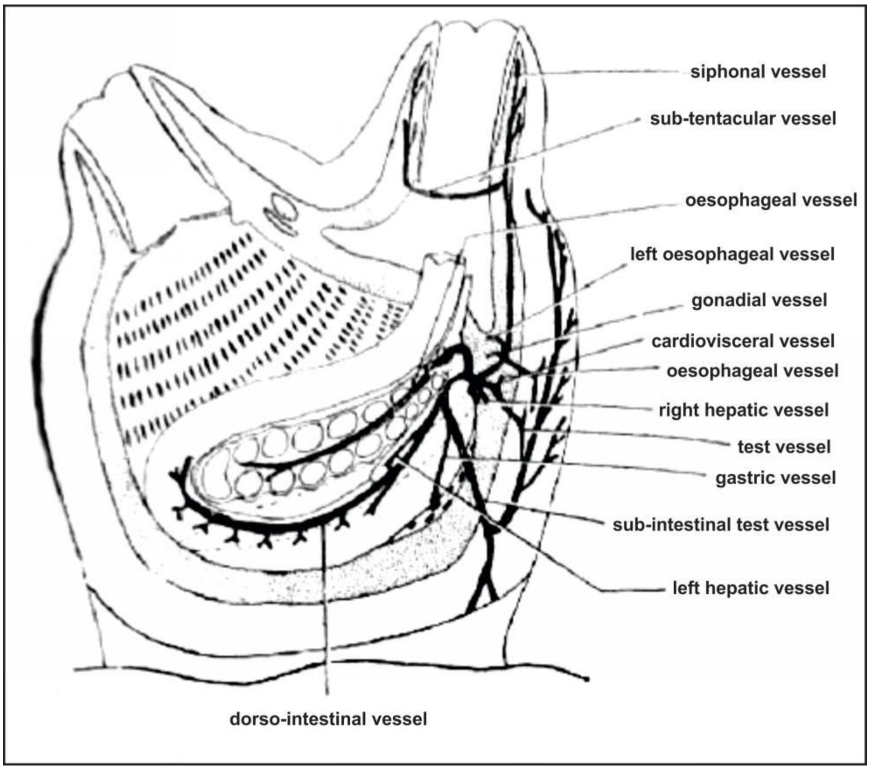

चित्र क्र. 1.22: हर्डमानिया – हृद्–आंतराग वाहिका तथा उसकी शाखाएँ

तन्त्रिका तन्त्र– वयस्क में एक मस्तिष्क होता है जिसे तन्त्रिका–गैंग्लियॉन (nerve ganglion) भी कहते हैं। यह गैंग्लियॉन लगभग 4 mm लंबा होता है, यह मध्य–पृष्ठ दिशा में दो साइफनों के बीच मेंटल में गड़ा रहता है।

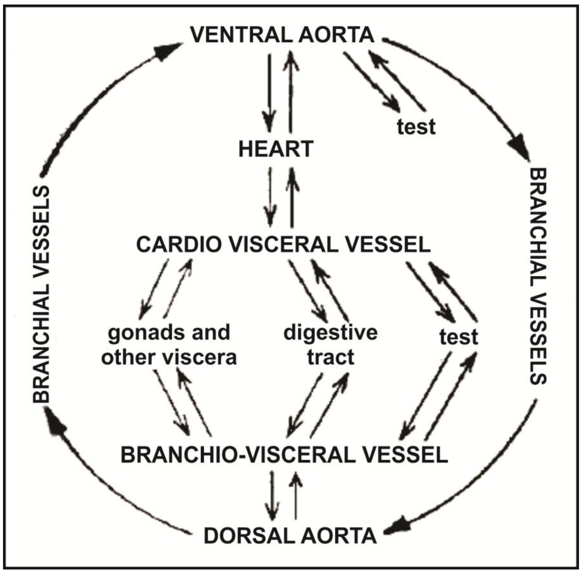

चित्र क्र. 1.23: हर्डमानिया – रक्त परिसंचरण का मार्ग

टिप्पणी

यह मस्तिष्क पायूरिडी कुल (Pyuridae) में, जिसमें हर्डमानिया की छाती है, तन्त्रिका–ग्रन्थि के नीचे पड़ा रहता है लेकिन अधिकतर ऐसिडियनों में मस्तिष्क की स्थिति तन्त्रिका–ग्रन्थि के पृष्ठ पर होती है। मस्तिष्क से तीन तन्त्रिकाएँ गिल–साइफन की ओर तथा दो तन्त्रिकाएँ एट्रियमसाइफन की ओर निकलती हैं। मस्तिष्क उस सुविकसित तन्त्रिका–तन्त्र के अग्र भाग का अपविकसित अवशेष है जो लार्वा में पाया जाता है।

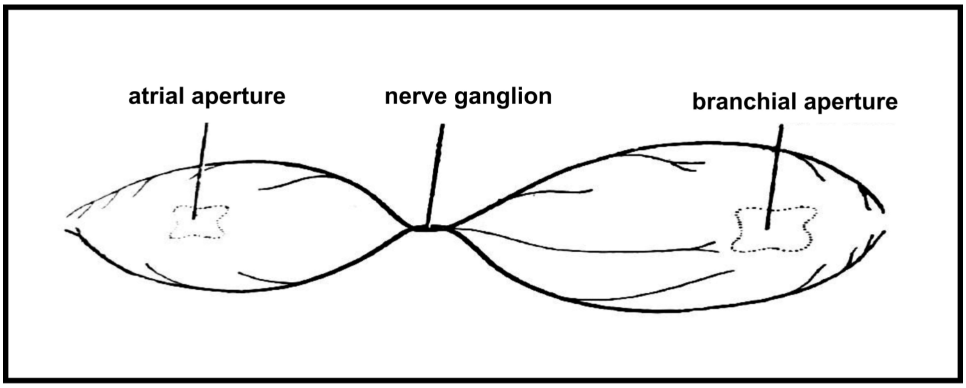

चित्र क्र. 1.24: हर्डमानिया – तन्त्रिका–गैंग्लियॉन और उसकी तन्त्रिका

अनेक कोशिकाओं में तन्त्रिका पहुँचती हैं, मुख्यतः टेस्ट और साइफनों की कोशिकाओं में–

1. टेस्ट के ऊपर बने लाल वर्णक वाले चकत्ते प्रकाशग्राही होते हैं। क्योंकि वे प्रकाश के प्रति संवेदी होते हैं।
2. साइफनों के टेस्ट–सीमांतों की और स्पर्शकों की संवेदी कोशिकाएँ स्पर्श ग्राही (tango receptors) होती हैं क्योंकि वे स्पर्श के लिए संवेदी होती हैं।
3. साइफनों के सीमांत पर बनी कोशिकाएँ धारा–ग्राही (Flow-receptors) होती हैं क्योंकि वे जलधारों के प्रति संवेदी होती हैं।
4. साइफनों का अस्तर बनाने वाली कोशिकाएँ तापग्राही (thermoreceptors) होती हैं, वे ताप में होने वाले परिवर्तनों के प्रति संवेदी होती हैं।
5. पृष्ठ–पटल तथा परि ग्रसनी पट्टियों के संधि–स्थल पर गिल–पूर्वी क्षेत्र में पड़ी हुई एक पृष्ठ–गुलिका (dorsal tuberose) होती है। इसका एक बड़ा आकार होता है जिसके ऊपर सर्पिल रूप में कुण्डलित दो पालियां बनी होती हैं, प्रत्येक पालि में तीन कुण्डलियाँ होती हैं और इसकी सतह पर सिलियायित कोशिकाएँ होती हैं। इसका कार्य घ्राण (सूचना) और स्वाद का अनुभव करना होता है।

टिप्पणी

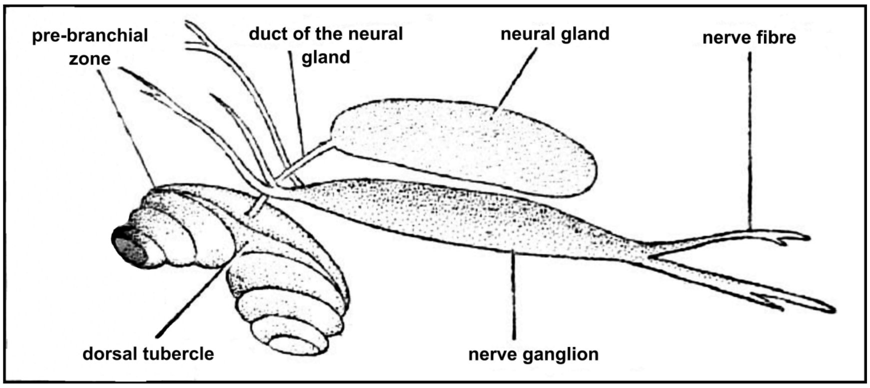

चित्र क्र. 1.25: हर्डमानिया – पृष्ठ गुलिका का उदग्र दृश्य

उत्सर्जी–अंग– भूरे रंग की एक अण्डाकार तन्त्रिका ग्रन्थि (neural gland) मस्तिष्क के तुरंत ऊपर पड़ी होती है। यह मेंटल में गड़ी रहती, और लगभग 4 × 1 mm होती है।

इसमें अनेक विशाखा नलिकाएँ होती हैं, एक छोर पर यह एक छोटी वाहिनी में चलती है और यह वाहिनी एक सिलियायित कीप द्वारा पृष्ठ–गुलिका के ऊपर की ओर खुलती है। रक्त की वृक्काणु (nephrotic) नामक कोशिकाएँ अपशिष्ट कणों को एकत्र कर लेती हैं, उसके बाद वे तन्त्रिका–ग्रन्थि में पहुँच जाती हैं जहाँ से वे बाहर निकल जाती हैं। तन्त्रिका–ग्रन्थि से एक हॉर्मोन का भी स्राव होता है जो अण्ड विसर्जन तथा कायांतरण में सहायता देता है। अतः ऐसा लगता है कि तन्त्रिका–ग्रन्थि कदाचित् कशेरुकियों की पिट्यूटरी ग्रन्थि के समजात है।

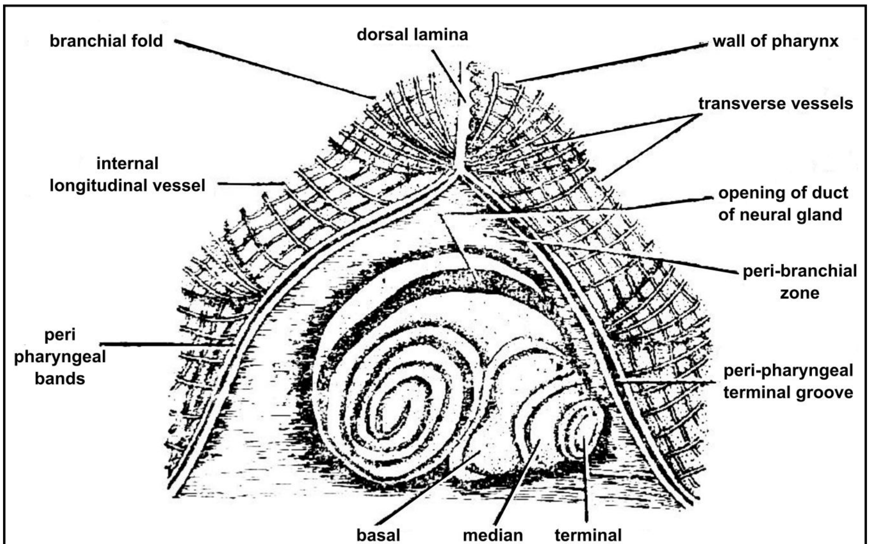

चित्र क्र. 1.26: हर्डमानिया – तन्त्रिका–ग्रन्थि

टिप्पणी

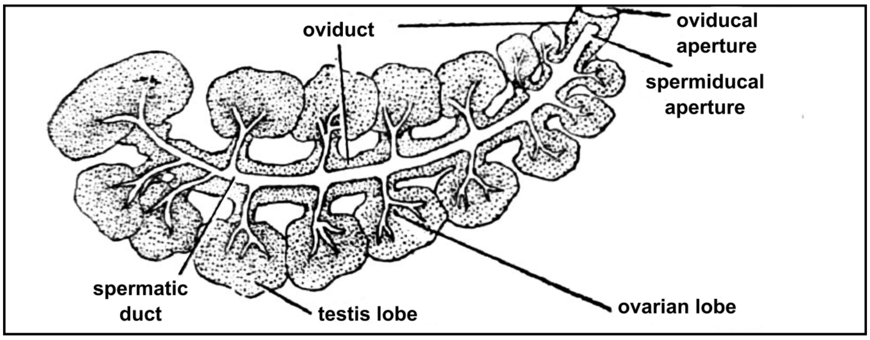

चित्र क्र. 1.27: हर्डमानिया– तन्त्रिका–सम्मिश्र (तन्त्रिका ग्रन्थि, तन्त्रिका गेंग्लियॉन और पृष्ठ गुलिका)

जनन अंग– यह प्राणी उभयलिंगी होता है। इसमें दो बड़े गोनड होते हैं जो मेंटल में गडे रहते हैं, बायाँ गोनड आंत के लूप में पड़ा होता है जबकि दाहिना गोनड हृदय की पृष्ठ दिशा में पड़ा होता है। हर गोनड लगभग 3 × 1 cm होता है और उसमें दो पंक्तियों में स्थित लगभग बीस पालियाँ होती हैं, पश्चिम अयुग्मित पालि सबसे बड़ी होती है। हर पालि में एक बाहरी कुछ–कुछ लाल रंग का वृषण–भाग (testicular part) होता है जिसमें शुक्राणु बनते हैं, और एक मेरी गुलाबी रंग का अण्डाशयी भाग (ovarian part) जिसमें अण्डे होते हैं। गोनडों के अण्डाशयी भाग संकीर्ण वाहिनिकाओं द्वारा एक मोटी अण्डवाहिनी से जुड़े होते हैं, जबकि वृषण–मार वाहिनिकाओं के द्वारा एक पतली शुक्राणु वाहिनी अथवा शुक्रवाहिनी से जुड़े होते हैं। अण्डवाहिनी और शुक्रवाहिनी समान्तर चलती जाती हैं और अपने–अपने छिद्रों के द्वारा एट्रियम–गुहा में खुलती है जहाँ अण्डों और शुक्राणुओं का विसर्जन होता है।

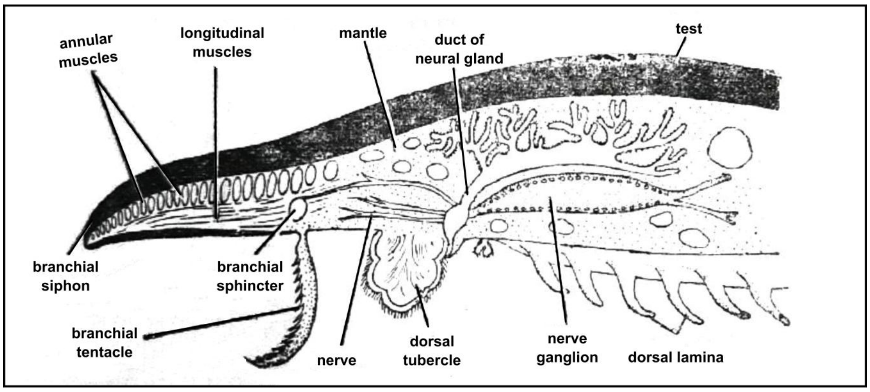

चित्र क्र. 1.28: हर्डमानिया – बायाँ गोनड, भीतरी सतह से देखने पर।

टिप्पणी

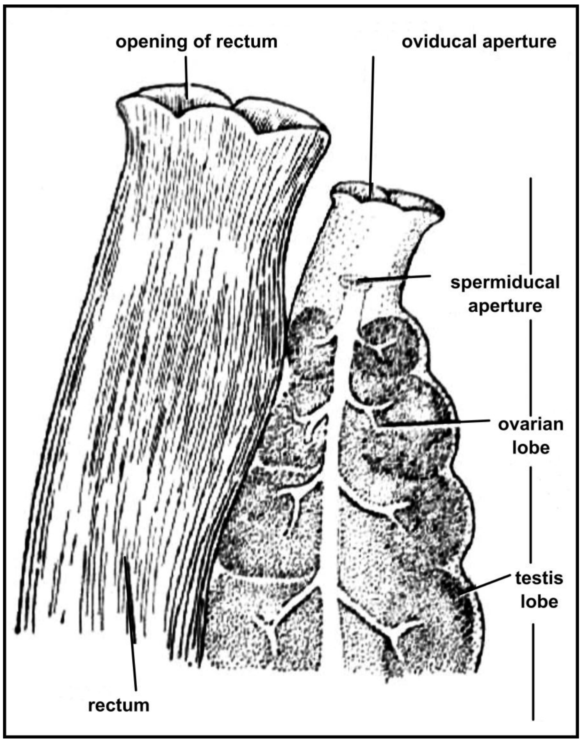

चित्र क्र. 1.29: हर्डमानिया – मलाशय, अण्डवाहिनी तथा शुक्राणु वाहिनी के छिद्रों का आरेख।

लिंग कोशिकाएँ एट्रियमी साइफन में से होती हुई समुद्र में पहुँच जाती हैं। समुद्र के जल में सामान्यतः परनिषेचन सम्पन्न होता है। हर्डमानिया स्त्रीपूर्वी (protogynous) होती है, जिसमें अण्डाशय का परिपक्वन वृषणों से बहुत पहले हो जाता है।

अनुमान लगाया गया है कि तन्त्रिका–ग्रन्थि एक ऐसे हार्मोन का स्राव करती है जो कशेरुकियों के पिट्यूटरी की अग्रपाली से निकलने वाले हॉर्मोन के समान होती है। हार्मोन से मस्तिष्क प्रभावित होता है और मस्तिष्क गोनडों को उत्तेजित करते हैं ताकि उनसे युग्मक निकालें। इस प्रकार एक दूसरे के पास–पास स्थानबद्ध जन्तु एक ही समय पर अण्डे बाहर देने के लिए उत्तेजित होते हैं ताकि परनिषेचन सुनिश्चित हो सके।

युग्मनज (जाइगोट) में पूर्ण मंजी विदलन होता है जो प्रसन्न होता है, इस प्रकार एक गोल ब्लास्टुला बन जाता है जिसके बीच में एक ब्लास्टोसील होती है। ऊपर की छोटी कोशिकाएँ लघुखंड होती है जो एक्टोडर्म बनाती है और निचली बड़ी कोशिकाएँ गुरुखंड होती है जिनसे एण्डोडर्म बनता है। गैस्ट्रुलेशन (Gastrulation) गुरखंडों के अन्तरारोहण (emboly) अथवा अन्तर्वलन (invagination) से होता है, गुणनखंड अब एक प्राद्यात्र (archenteron) को घेरे रहते हैं। प्राद्यात्र का चौड़ा द्वार ब्लास्टोपोर कहलाता है, और जैसे–जैसे प्राद्यात्र बढ़ती जाती है वैसे–वैसे ब्लास्टो सील समाप्त हो जाती है। गैस्ट्रिक लेवल के बाद भ्रुण लंबा होता जाता है और एक पूँछ युक्त लार्वा बन जाता है। यह पूँछ युक्त

टिप्पणी

लार्वा अण्डे से विस्फोटित होकर स्वच्छन्द तैरने लग जाता है। इसमें एक अण्डाकार पावर होता है और एक लंबी शाश्वतय संपीड़ित पूँछ होती है। इसमें मेंढक के टैडपोल से कुछ–कुछ समता होने के कारण इसे टैडपोल लॉग कहते हैं।

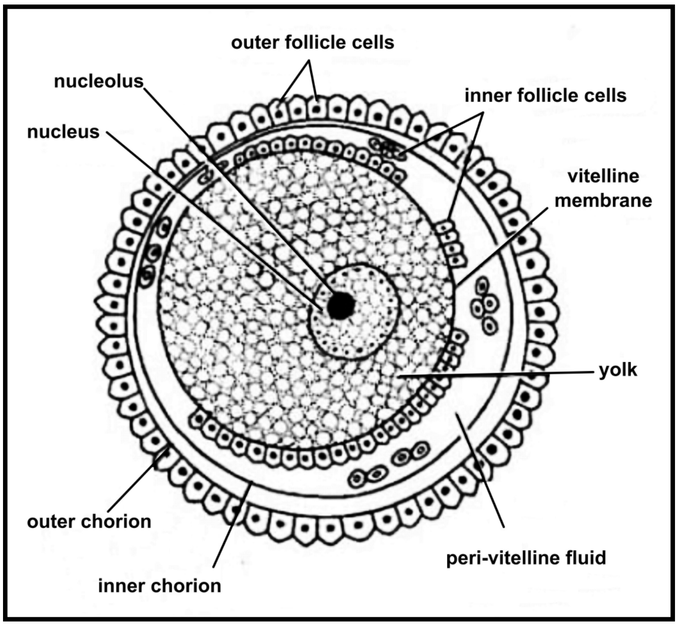

चित्र क्र. 1.30: हर्डमानिया – परिपक्व अण्डाणु की संरचना।

1.3.6 यूरोकॉर्डेटा की सम्बन्ध–निकटताएँ (Affinities of Urochordata)

टैडपोल लार्वा से प्रतिक्रमणी कायांतरण के द्वारा उत्पन्न होने वाले व्यय ऐसीडियन में उसके अधिकारी के आरक्षण समाप्त हो चुके हैं फिर भी कई बातों में उसका कॉर्डेटा से सम्बन्ध प्रकट होता है जो इस प्रकार हैं–

1. गिल–स्पर्शक ऐम्फिऑक्सस के वीलम–स्पर्शकों के समान है।
2. ट्यूनिकेटों की ग्रसनी सिफेलोकॉर्डेटा की ग्रसनी के समान है जिसमें वह–संख्यक स्टिग्मा, ग्रन्थीय सिलियायित एंडोस्टाइल, परिग्रसनी पट्टियाँ और एक पृष्ट पटल (अथवा अधोग्रसनी खाँच) होते हैं।
3. टिफ्लोसोल की तुलना इलास्मोब्रैंकों के सर्पिल वाल्व से की जा सकती है। एंडोस्टाइल कशेरुकियों को थायराइड ग्रन्थि के समजात होता है।

तन्त्रिका– ग्रन्थि की स्थिति और उसके उद्भव से ऐसा संकेत मिलता है कि कशेरुकियों की पिट्यूटरी ग्रन्थि के समजात है। वयस्क से भी अधिक टेडपोल लार्वा में उसके तन्त्रिका–तन्त्र, स्टिग्मा और नोटोकॉर्ड में कॉर्डेटा लक्षण पाए जाते है। इनके अलावा इस लार्वा में दो और बातें पाई जाती है– (क) पुच्छ–फिन से युक्त गुदापश्चीय पेशीय पूँछ का पाया जाना, और (ख) ऐसीडियनों के परिवर्धन में कॉर्डेटों के ही समान विदलन और गैस्ट्रलाभवन का पाया जाना।

यूरोकॉर्डेटा एक स्वच्छन्द तैरने वाले कॉर्डेट पूर्वज से व्युत्पन्न हुए हैं और उनके निकटतम सम्बन्ध सिफेलोकॉर्डेटा से हैं। इन दोनों क्लासों में इतनी निकट समजातताएँ पायी जाती हैं कि उसमें इन दोनों के लिए समान पूर्वजता झलकती है।

1.4 सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalochordata)– ऐम्फिऑक्सस लैन्सिओलेट्स (Amphioxus Lanceolatus)

सब–फाइलम सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalochordata) के सभी जन्तु छोटे तथा ऊपर से देखने में मछली के समान दिखायी देते हैं। ये सभी समुद्री जल में पाये जाते हैं। ये वे कॉर्डेट्स जन्तु हैं जिनमें तीन प्रारम्भिक विशिष्ट कॉर्डेट लक्षण जैसे– नोटोकॉर्ड, डॉर्सल ट्यूबुलर नर्व–कॉर्ड तथा फैरिन्जियल गिल–स्लिट्स (notochord, dorsal tubular nerve cord and pharyngeal gill slits) साधारण स्थिति जीवन के पूरे समय तक विद्यमान रहते हैं। अतः ये जन्तु साधारण प्रारम्भिक कॉर्डेट की दशा को दर्शाते हैं तथा साथ ही फाइलम कॉर्डेटा के एक ब्लू–प्रिंट (blue-print) समझे जाते हैं, अर्थात् ये फाइलम कॉर्डेटा की रूपरेखा को दर्शाते हैं।

सिफेलोकॉर्डेटा का सबसे सामान्य उदाहरण जिसका विस्तृत अध्ययन किया गया है, ब्रैंकियोस्टोमा (ऐम्फिऑक्सस), (Branchiostoma Amphioxus) है, जिसे सामान्यतः लैंसलॉट या लैन्सिट (lancelet or lancet) कहते हैं। इसका प्रथम वर्णन जर्मन वैज्ञानिक पैलास (Pallas) ने 1778 में किया था, जिन्होंने इसे फाइलम मोलस्का (Phylum Mollusca) के अन्तर्गत एक स्लग समझकर इसको लाइमैक्स लैन्सिओलेट्स *(Limax lanceolatus)* का नाम दिया था एक इटालियन वैज्ञानिक कोस्टा (Costa) ने प्रथम बार 1834 में इसके कॉर्डेट जन्तु होने की पुष्टि की और इसे ब्रैंकियोस्टोमा लैन्सिओलेट्स *(Branchiostoma lanceolatus)* का नाम दिया। ठीक दो वर्ष बाद यारैल (Yarrel) नामक वैज्ञानिक ने 1836 में इसे ऐम्फिऑक्सस लैन्सिओलेट्स (Amphioxus lanceolatus) का नाम दिया।

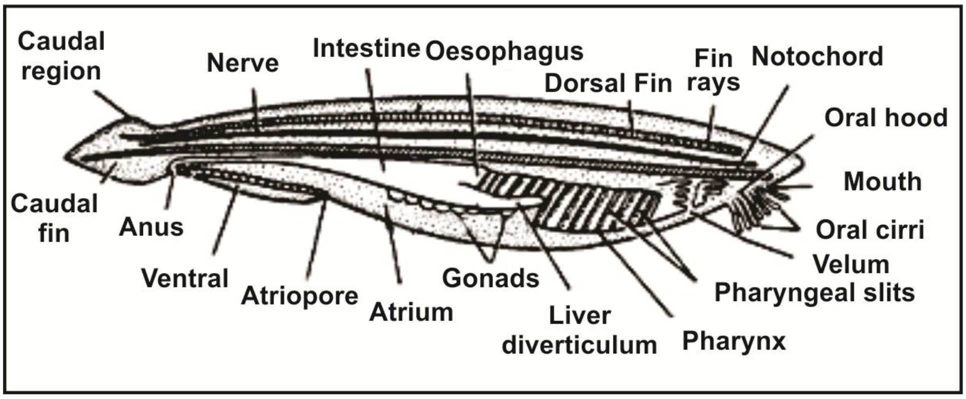

चित्र क्र. 1.31: सिफेलोकॉर्डेट (Cephalochordate)

टिप्पणी

वर्गीकृत स्थिति Systemic Position

|

Phylum - Chordata

|

Group 1 -Acraniata

|

Sub phylum- Cephalochordata

|

Class - Leptocardii

|

Family- Branchiostoma

|

Type - *Branchiostoma lanceolatum* (Amphioxus lanceolatus)

1.4.1 नाम की व्युत्पत्ति (Derivation of Names)

सिफेलोकॉर्डेटास जन्तुओं में नोटोकॉर्ड सिर में रॉस्ट्रम तथा मस्तिष्क के आगे तक फैली रहती है, यह लक्षण किसी और कार्डेटास जन्तुओं में नहीं पाया जाता है इसलिए इन जन्तुओं को सब–फाइलम सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalochordata :Gr-kephale = head, chorde = cord) का नाम दिया गया है। इन जन्तुओं में एकल (akul) का पूर्ण अभाव होता है, इसलिए सिफेलोकॉर्डेट्स को एक्रेनिया, Acrania (Gr-a = absent + kranion = skull) भी कहते हैं। पुराना जैनेरिक नाम ऐम्फिऑक्सस (Gr- amphi = double + oxys = sharp) और इसका सामान्य नाम लैनसिट या लैंचसिलैट lancet or lancelet (a little Iance) जन्तु के शारीरिक आकार से सम्बन्धित है, क्योंकि इनके शरीर पी पीनों सिर शार्प (sharp), चुकीले तथा भाले की तरह (Iace - Me) के होते हैं, लेकिन इन का वास्तविक जैनेरिक नाम ब्रैंकियोस्टोमा (Branchiostoma) है। शरीर की आकृति के पिथपत अनुसार सिर्फैलोकारडेट जन्तुओं की लिए सामान्य नाम एस्कऑक्सस को भी सुरक्षित रखा गया है तथा जीवशास्त्रीयों में सामान्य रूप से ऐम्फिऑक्सस नाम अत्यन्त ही प्रचलित है। इनमें से अनेक इसे ब्रैंकियोस्टोमा के लिए पर्यायवाची शब्द के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

1.4.2 भौगोलिक वितरण (Geographical Distribution)

ब्रैंकियोस्टोमा की नौ जातियाँ हैं जो संसार के लगभग सभी समुद्रों में पायी जाती हैं। अधिकांशतः यह मेडिटेरेनियन (Mediterranean) सागर से उत्तरी समुद्र तक तथा अमेरिका के एटलाण्टिक सागर से हिन्द महासागर तक पाया जाता है। यह ब्रिटेन तथा जापान में भी बहुतायत से पाया जाता है। जापान में तो यह भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। भारतीय समुद्रों के तट पर ब्रैंकियोस्टोमा की पायी जाने वाली सामान्य जातियाँ बैंकियोस्टोमा इण्डिकम (B- indicum), ब्रै, पेलैजिकम (B- pelagicum) तथा ब्रै, सेरीबीयम (B- ceribbaeum) हैं।

टिप्पणी

इस पुस्तक में निम्नलिखित वर्णन ब्रैंकियोस्टोमा लैन्सियोलेटम (Branchiostoma lanceolatum) पर आधारित है जो एक सामान्य रूप से जानी जाने वाली जाति है।

1.4.3 ऐम्फिऑक्सर्स के आदिम गुण (Primitive Characters of Amphioxus)

1. नोटोकॉर्ड जीवन–पर्यन्त बनी रहती है और संचित रहती है।
2. कार्टिलेजी अथवा उपास्थि (cartilaginous) या अस्थिल (bony) अन्तःकंकाल (endoskeleton) के रूप में कपाल तथा कशेरुक दण्ड (skull and vertebral column) अनुपस्थित होते है।
3. केंद्रीय तन्त्रिका–तन्त्र नर्व–कॉर्ड (nerve cord) के रूप में होता है जो मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड (spinal cord) में भिन्नित नहीं होता। यह नोटोकॉर्ड के पृष्ठ तल पर स्थित होता है जो कशेरुक दण्ड (vertebral column) में नहीं होता।
4. युग्मित पखों (paired fins) या विस्मित पादों (paired appendages) का अभाव होता है।
5. शरीर मायोटोमिक खंडीभवन (myotonic segmentation) प्रदर्शित करता है।
6. एपिडर्मिस कोशिकाएँ एक स्तर की बनी होती हैं तथा वास्तविक डिर्मिस का अभाव होता है।
7. ग्रसनी के चारों ओर एट्रियम होता है पर इसमें एण्डोस्टाइल होता है। धात्र सीधी नली के समान होती है। यकृत पिण्ड सरल प्रकार का होता है।
9. पोषण रोमा भी सरल प्रकार का होता है।
10. रुचिर रंग–विहीन तथा ह्रदय धनुष्य स्थित होता है। धमनियाँ (arteries) तथा शिरों (veins) में कोई अन्तर नहीं होता। मुल होते हैं।
11. स्पाइनल–तन्त्रिकाओं (spinal nerves) में अलग–अलग पृष्ठ एवं अवर होते हैं।
12. नेत्र या कान के समान संगठित ज्ञानेन्द्रियों का प्रभाव होता है तथा ग्राहक (receptors) आदिम प्रकार के होते हैं।
13. उत्सर्जी अंग विखण्डित क्रम से विन्यसित नेफ्रीडिया (nephridia) होते हैं।
14. जनन–पिण्डक भी खंडित क्रम में विन्यसित होते हैं तथा इनमें वाहिनियों का अभाव होता है।
15. अण्डे छोटे तथा योक रहित (yolkless) होते हैं।

1.4.4 विशिष्ट लक्षण (Specialized for Peculiar Characters)

1. ग्रसनी अत्यधिक विस्तृत एवं जटिल प्रकार की होती है।
2. ग्रसनी की दीवार कार्टिलेज की बनी विशेष क्लोम–छड़ों (gill - bars) द्वारा अवलम्बित रहती है।

टिप्पणी

3. वीलम एवं ओरल हुड (velum and oral hood) उपस्थित होते हैं जो क्रमशः वेलम स्पर्शक (velum tentacles) तथा मुखवर्ती या रोम गुच्छ (oral cirri) युक्त होते हैं।
4. एट्रीयम सीलोम को विस्थापित करके काफी विस्तीर्ण हो जाता है।
5. पेशियों (muscles) की व्यवस्था विखण्डन क्रम से विन्यसित बण्डलों या मायोमियर्स (myomeres) के रूप में होती है। इनके आकुंचन एवं प्रसार से जन्तु गति करता है।
6. मेटाप्ल्यूरल फोल्ड (metapleural folds) उपस्थित होती हैं। जो स्थयित्वकारी (stabilizers) के समान कार्य करते हैं।
7. नोटोकॉर्ड में अग्रविस्तरण (extension) होता है।

अतः हम देखते हैं कि ऐम्फीऑक्सस के कॉर्डेट गुण अत्यधिक प्रकार के हैं। प्रकल्पित किया जा सकता है कि ये कॉर्डेट्स के मूलभूत पूर्वजों से सम्बन्धित हैं। फिर भी इसके द्वितीय या विशिष्ट गुणों से स्पष्ट है कि यह कॉर्डेट उद्‌भव की प्रत्यक्ष दिशा में नहीं है किन्तु कॉर्डेट्स के पैतृक वंश की उपशाखा को निरूपित करता है।

आहार–नाल (Alimentary Canal)– ऐम्फिऑक्सस की आहार–नाल एक सीधी नाल है जो भीतर की ओर रोमाभी एपिथीलियम (ciliated epithelium) द्वारा प्रास्तरित रहती है। यह निम्न भागों में भिन्नित होती है–

1. **मुख एवं मुख गुहा (Mouth and oral cavity)**– मुख, मुखगुहा (oral cavity) के तल पर स्थित एक छोटा–सा छिद्र है जो ओरल हुड (oral hood) से घिरा रहता है। ओरल हुड के पार्श्व किनारे 10–11 जोड़ी संवेदी मुखवर्ती शिवना या ओरल सिराई (oral cirri) में निकले होते हैं, किन्तु इनकी संख्या आयु के साथ बढ़ती जाती है। प्रत्येक सिरस एक संयुक्त – कंकाल द्वारा अवलम्बित रहता है जो ओरल हुड के कंकाल से जुडा रहता है। पोषण के समय ओरल सिराई अंदर की ओर मुड़ कर छलनी (sieve) बनाते हैं।

टिप्पणी

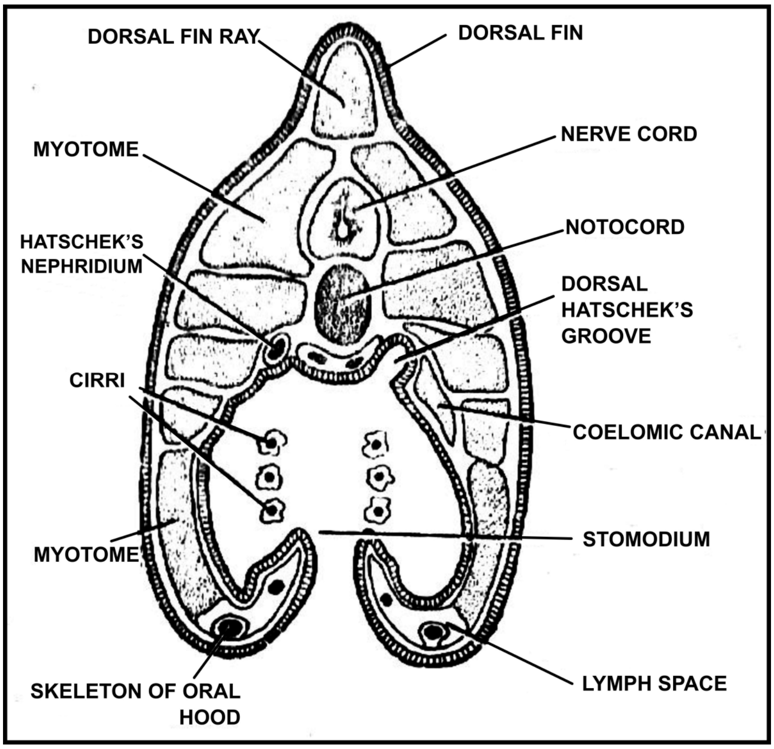

चित्र क्र. 1.32: ऐम्फिऑक्सस के ओरल हुड से अनुप्रस्थ काट (T-S- through Oral Hood of *Amphioxus*)

मुखगुहा या स्टोमोडियम (stomodium) किस प्रकार की होती है। इसका तल अंदर की ओर पगडी के समान 6–9 प्रक्षेप्य में विस्तारित होता है। ये मूलर का रोमाभी अंग या व्हिल अंग (ciliated organ of Muller or wheel organ) बनाते हैं। व्हील अंग पानी की धारा को तेजी से घुमा कर भोजन के कणों को झाड़ कर अलग कर लेता है। व्हील ऑर्गन के मध्य–पृष्ठ प्रोष या उभार पर एक ग्रन्थिमय हैस्चेक खाँच (Hatschek's groove) होती है जो हैस्चेक गर्त (Hatschek's pit) में समाप्त हो जाती है। स्टोमोडियम व ग्रसनी के बीच में गोलाकार डायाफ्राम से बने एक छोटे छिद्र द्वारा स्टोमोडियम ग्रसनी में खुलता है इसे वीलम (velum) कहते हैं। वीलम के किनारों से 12 पतले वीलर स्पर्शक या टेन्टेकल्स (velar tentacles) निकले रहते हैं जिन पर बहुत–से संवेदी अंकुरक (papillae) तथा रोमक होते है।

टिप्पणी

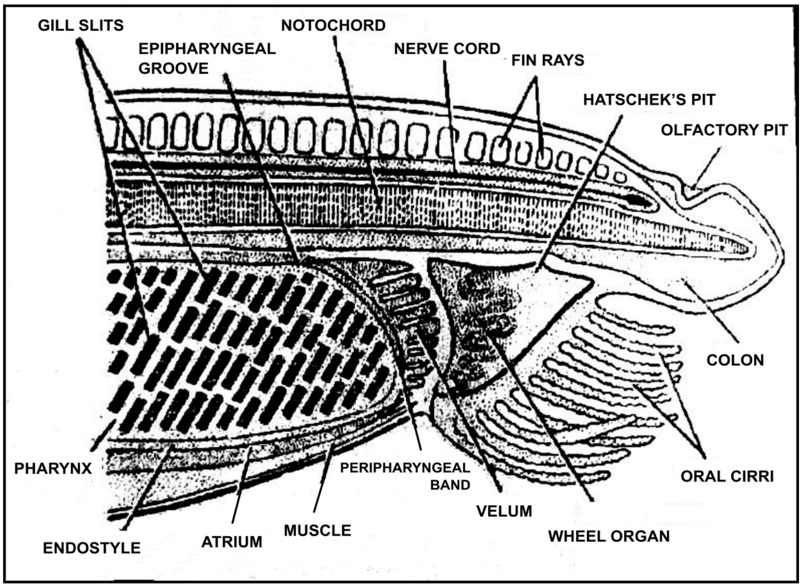

चित्र क्र. 1.33: ऐम्फिऑक्सस–ओरल हुड, विलम तथा व्हील ऑर्गन को दिखाते हुए अग्रभाग (Anterior Part of Amphioxus Showing Oral Hood, Velum and Wheel Organ)

2. **ग्रसनी (Pharynx)**– ग्रसनी एक बड़े तथा पाश्वीय दीवारों से चिपके हुए कोष या पुटक के समान रचना है जो शरीर के मध्य तक फैली होती है। यह पोषण की अपेक्षा श्वसन का कार्य अधिक करती है। इसकी पार्वीय या प्ल्युरल दीवारों (pleural walls) पर 150–200 जोड़ी तिरछे उदग्र गिल–छिद्र या क्लोम छिद्र (gill-slits) स्थित होते हैं। क्लोम–छिद्रों के बीच के स्थानों में– (i) प्राथमिक तथा (ii) द्वितीयक प्रकार की गिल–छड़े या क्लोम–छड़ें (gill-bars) पायी जाती हैं।

   लारवा के जीवन–काल में कुछ देर बाद प्रत्येक प्राथमिक क्लोम–छड़ की पृष्ठ दीवार से एक द्वितीयक विलोम–छड़ (secondary gill-bar) या जीभी–छड़ (tongue bars) विकसित होती हैं। ये एक–दूसरे से निम्न लक्षणों में भिन्न होती हैं–

   (i) प्राथमिक क्लोम–छड़ें प्रदर की ओर एक देहगुहा या सीलोमिक स्थान (coelomic space) घेरे रहती हैं।

   (ii) प्राथमिक क्लोम–छड़ों की कंकाल–छड़ें द्विशाखित होती हैं किन्तु द्वितीयक क्लोम–छड़ों की कंकाल–छड़ें द्विशाखित नहीं होती।

टिप्पणी

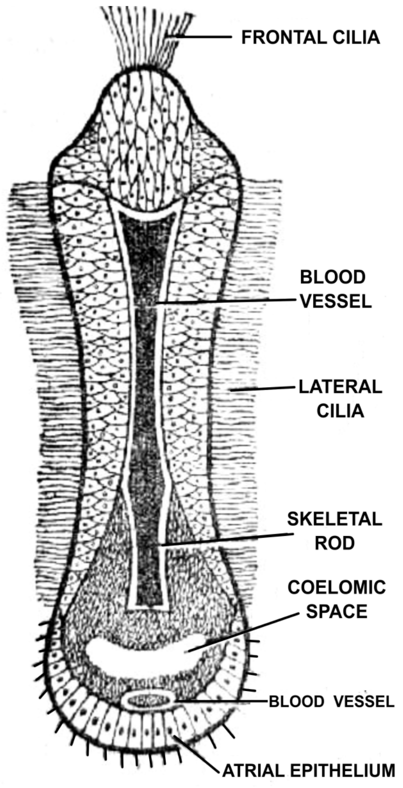

चित्र क्र. 1.34: प्राथमिक क्लोम–छड़ (Primary gill - bar)

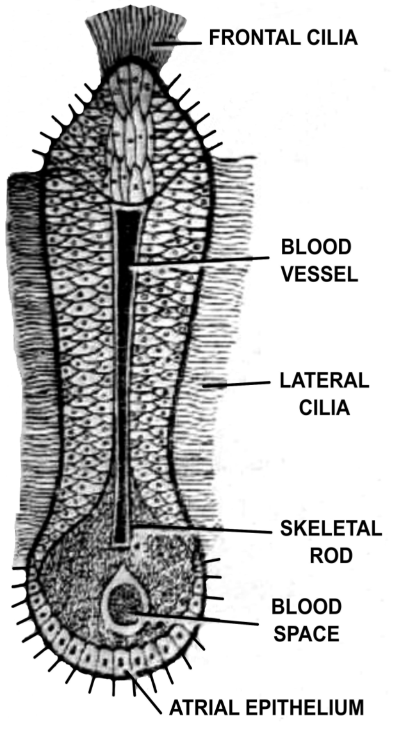

चित्र क्र. 1.35: द्वितीयक क्लोम–छड़ (Secondary gill - bar)

टिप्पणी

प्राथमिक क्लोम–छड़ें अनुप्रस्थ जोड़ों या सन्धियों द्वारा एक–दूसरे से मिली होती हैं। इन जोड़ों को सिनेप्टिकुली (synapticulae) कहते हैं। ये श्लेष्मी कंकाल छड़ों द्वारा अवलम्बित रहती हैं और इनमें रुधिर वाहिनियाँ होती हैं। इन रचनाओं के कारण ग्रसनी का आकार कन्डी के समान हो जाता है।

क्लोम–छड़ का अधिकांश भाग रोमाभी ग्रसनी एपिथीलियम तथा ऐण्डोडर्म से ढका होता है जो इसके भीतरी, अग्र एवं पश्च तलों को चारों ओर से घेरे होता है किन्तु इसके बाहरी फलक (एट्रियल गुहा की ओर का भाग) एट्रियम की एक्टोडर्म से विस्तारित होते हैं तथा इन पर अल्प संख्या में रोमक पाये जाते हैं। क्लोम–छड़ के अंदर संयोजी ऊतक, रुधिर वाहिनी तथा कंकाल–छड़ आदि होती हैं।

ग्रसनी के तल पर एण्डोस्टाइल (endostyle) या ग्रसनी (hypopharyngeal) खांच होती है। यह एक छिछले जलमार्ग के समान होती है जो रोमाभी पथों के एकान्तरित म्यूकस स्रावित करने वाली ग्रन्थि–कोशिकाओं (gland cells) के चार लम्बवत पथों से विस्तारित होती है। एण्डोस्टाइल का तल दो कंकाल पट्टिकाओं द्वारा अवलम्बित रहता है। आगे की ओर एण्डोस्टाइल परिग्रसनी पट्टिकाओं द्वारा मध्य–पृष्ठ रोमाभी पथ से मिल जाती है। रोमाभी पथ को अधिग्रसनी खांच (peripharyngeal groove) कहते हैं और यह ग्रासनली में खुलती है।

आहार–नाल में शेष भाग एक सीधी नली के रूप में होता है। इसका अगला छोटा सँकरा भाग ग्रासनली (oesophagus) कहलाता है जो कुछ अधिक चौड़े आमाशय (stomach) में खुलता है। आमाशय आंत (intestine) में खुलता है और आंत अधर पख के वाम ओर स्थित गुदाद्वार (anus) द्वारा बाहर खुलती है।

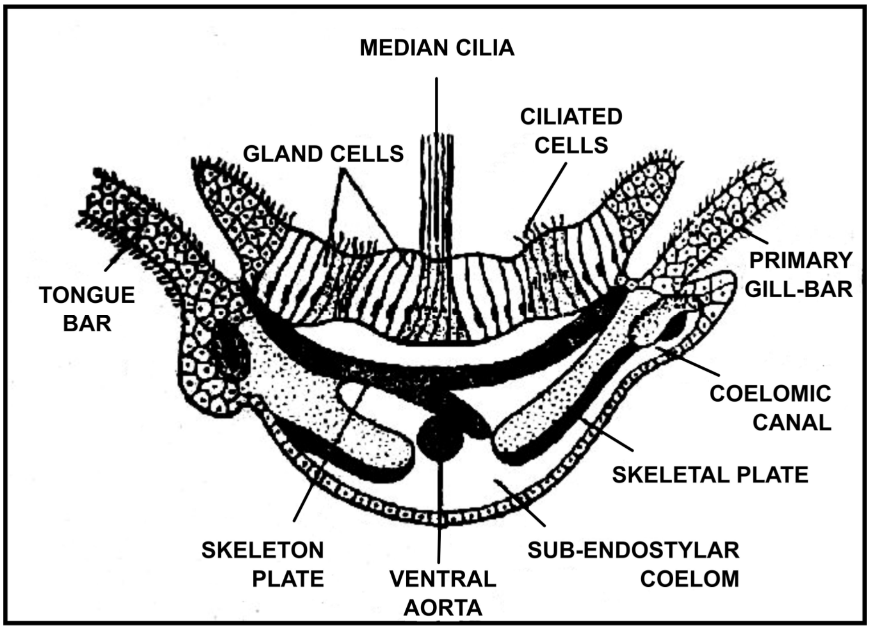

चित्र क्र. 1.36: ऐम्फिऑक्सस के एण्डोस्टाइल का अनुप्रस्थ काट
(T-S- endostyle of Amphioxus)

पाचन ग्रन्थि (Digestive Gland)– पाचन–ग्रन्थि में केवल एक यकृत अंध–नाल या हिपेटिक सीकम (hepatic caecum) होती है जो ग्रासनली तथा ग्रसनी के संगम स्थल से एक अन्ध विनाल के रूप में निकलती है। यह ग्रसनी के पावं में इसके साथ–साथ चलती है तथा ग्रन्थिल एपिथीलियम द्वारा आस्तरित होती है। यह बाह्य रूप से पृष्ठवंशियों के यकृत (liver) के समान होती है।

पोषण एवं पाचन (Feeding and Digestion)– ऐम्फिऑक्सस *(Amphioxus)* रोमाभी पोषक (ciliary feeder) है जो पानी की धारा के साथ आये छोटे–छोटे जीवों को छान कर अलग कर लेता है। पानी की धारा मुख द्वारा ग्रसनी में प्रवेश करती है और एट्रियम से होती हुई एट्रियोपोर द्वारा बाहर निकल जाती है। पोषण क्रिया जटिल एवं रुचिकर होती है। क्लोम–छड़ों के रोमकों की तीव्र गति से जल की धारा उत्पन्न होती है। क्लोम–छड़ों के सामने रोमक धारा को ग्रसनी गुहा के भीतर नीचे से ऊपर की ओर मोड़ देते हैं जिससे एण्डोस्टाइल से अधिग्रसनी खाँच की ओर जलीय श्लेष्म प्रवाहित होता है जो अन्त में ग्रासनली (oesophagus) में चला जाता है। पोषण के समय ओरल सिराई या मुखवती सिराई (oral cirri) एक–दूसरे के ऊपर मुड़कर एक छलनी बनाते हैं। मुख द्वारा अंदर आती हुई पानी की धारा में से भोजन के कण यहाँ छान लिये जाते हैं। व्हील ऑर्गन के रोमकों की घूर्णन–गति जल की धारा को ग्रसनी की तरफ निर्देशित करती है। ग्रसनी के अंदर भोजन के कण एण्डोस्टाइल तथा ग्रसनी एपिथीलियम से स्रावित श्लेष्म में उलझ जाते हैं। एण्डोस्टाइल से स्रावित होने वाली म्युकस सर्वप्रथम पार्श्व रोमकों द्वारा अधर दीवार पर स्थानान्तरित होकर क्लोम छड़ों के सामने के रोमकों द्वारा ऊपर की ओर निर्देशित होती है। इस प्रकार जल की धारा के साथ भोजन से भरी हुई म्यूकस नीचे के तल से अधिग्रसनी खाँच में प्रवाहित होती है। अधिग्रसनी खाँच के रोमक इस धारा को ग्रासनली की ओर धकेल देते हैं।

मुख अथवा स्टोमोडियम के अंदर पानी की धारा में से अलग किये गये भोजन के कण हैस्चेक खाँच द्वारा स्रावित म्यूकस में एकत्रित कर लिए जाते हैं किन्तु ग्रसनी के अंदर ये परिग्रसनी पट्टिकाओं द्वारा एकत्रित करके अधिग्रसनी खाँच पर स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं।

ग्रसिका में पहुँचते–पहुँचते भोजन के कण म्यूकस के साथ कुण्डलित होकर एक मोटी धारा का रूप ले लेते हैं। आहार–नाल में भोजन पक्षमों की सहायता से आगे बढ़ता है, जो आहार–नाल की पूर्ण लम्बाई के साथ एक पथ का निर्माण करते हैं। ग्रसिका में भोजन मध्यान्त्र (midgut) में पहुँचता है जहाँ रोमाभी पार्श्वपथ इसे मध्यान्त्र विनाल (midgut diverticulum) की ओर निर्देशित करता है। यहाँ से भोजन मध्यान्त्र में फिर से वापस आ जाता है। रोमकों का इलियो–कोलोनिक वलय (ileo-colonic ring) भोजन का परिभ्रमण करता है, जिससे भोजन पाचक विकरों (digestive enzymes) से भली प्रकार मिल जाता है। पाचक विकर आहार–नाल तथा मध्यान्त्र विनाल (midgut diverticulum) से स्रावित होते हैं। ये इलियो–कोलन क्षेत्र के रोमकों की परिभ्रमण गति द्वारा भोजन से मिल जाते हैं। पाचन मध्यान्त्र में प्रारम्भ होता है, यह अवशेष भोजन के

टिप्पणी

आहार–नाल से बाहर निकलने तक होता रहता है। इस बाह्य कोशिकीय पाचन (extracellular digestion) के अतिरिक्त प्रान्तर–कोशिकीय पाचन (intracellular digestion) का भी पता चला है। भोजन के छोटे कण पश्चान्त्र (hindgut) की एपिथीलिम कोशिकाओं द्वारा एकत्रित करके पचा लिये जाते हैं। पचे भोजन का अवशोषण मध्यान्त्र में प्रारम्भ हो जाता है किन्तु मुख्य रूप से यह क्रिया पश्चान्त्र (hind gut) में ही होती है।

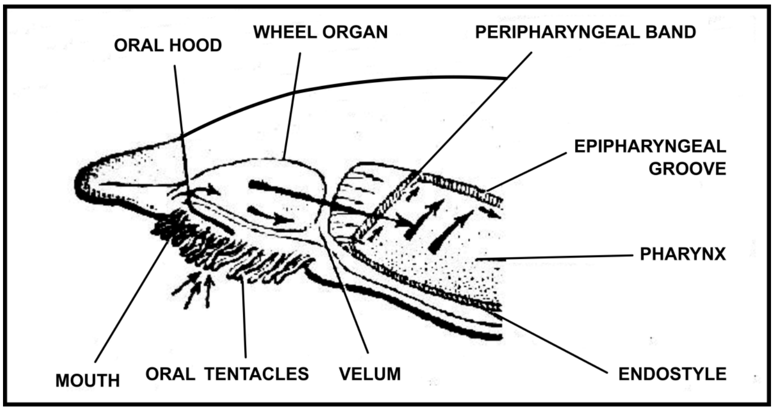

चित्र क्र. 1.37: ऐम्फिऑक्सस – पोषण की क्रियाविधि
(Amphioxus – Mechanism of Feeding)

1.4.5 आहार–नाल का श्वसन क्रिया से सम्बन्ध (Association of Alimentary Canal with Respiration)

निम्नलिखित विशेषताओं के कारण ऐम्फिऑक्सस की आहार–नाल श्वसन क्रिया से भी सम्बद्ध होती है–

1. फैरिंक्स या ग्रसनी की दीवार संवहनीय होती है। अतः सिनैप्टीकुली एवं अभिवाही बक्कल वाहिनियों में से रुधिर के गुजरते समय गैसों का आदान प्रदान होता है।
2. क्लोम–छड़ों के पक्षियों द्वारा जल की धारा उत्पन्न होती है।
3. व्हील अंग (wheel organ) के पक्षियों की गति के कारण जल–धारा ग्रसनी की ओर उन्मुख हो जाती है।

ऐम्फिऑक्सस रुधिर–वाहिनी या रुधिर–परिवहन संस्थान (blood vascular system) सरल एवं बंद (closed) प्रकार का होता है हृदय तथा हीमोग्लोबिन (haemoglobin) की अनुपस्थिति ऐम्फिऑक्सस के रुधिर–परिवहन तन्त्र की विशेषता है। हृदय की अनुपस्थिति के कारण मुख्य धमनियों (arteries) की दीवार पेशी युक्त एवं संकुचनशील होती हैं। यद्यपि अधिकतर रुधिर–वाहिनियाँ एक समान होती हैं किन्तु पुष्ठवंशियों की वाहिनियों के साथ कुछ निश्चित सजातीयताएँ होने के कारण इनमें से कुछ धमनियाँ (arteries) तथा अन्य शिराएं (vessels) कहलाती हैं।

टिप्पणी

वाहिनी–संस्थान में निम्न रचनाएँ होती हैं–

1. एक शिरापात्र या साइनस विनोसस–
   (i) अधर महाधमनी या वेन्ट्रल एओर्टा
   (ii) दो पृष्ठ–महाधमनी या डोर्सल एओर्टा
   (iii) निवाहिका उपतन्त्र या पोर्टल सिस्टम

(अ) प्रमुख शिराएँ या कार्डिनल वेन–

1. **शिरा पात्र या साइनस विनोसस (Sinus venosus)**– साइनस विनोसस ग्रसनी के पिछले सिरे के नीचे स्थित पतली दीवार वाला कोष है। इसमें शरीर के विभिन्न भागों से शिराओं द्वारा लाया रुधिर एकत्रित होकर अधर महाधमनी या वेन्ट्रल एओर्टा (ventral aorta) में चला जाता है।
2. **अधर महाधमनी अथवा वेन्ट्रल एओर्टा (Ventral aorta)**– अचर महाधमनी मोटी दीवार की अत्यधिक संकुचनशील रुधिर–वाहिनी है जो एण्डोस्टाइल के नीचे ग्रसनी की मध्य–पृष्ठ दीवार में स्थित होती है। इसमें से कई जोड़ी पार्श्व शाखा निकलकर प्राथमिक क्लोम–छडों (primary gill - bars) को जाती है।

   इन्हें अभिवाही क्लोम धमनियाँ (afferent branchial arteries) कहते हैं। इनके आधार फूले हुए होते हैं तथा क्लोम छड़ों की वाहिनियों में रक्त भेजते हैं। द्वितीयक क्लोम बड़े अप्रत्यक्ष रूप से अभिवाही क्लोम धमनियों से निकली अनुप्रस्थ वाहिनियों से रुधिर प्राप्त करती हैं जो सिनैप्टिकुली (synapticulae) में स्थित होती है।

   पृष्ठ भाग अपवाही क्लोम धमनियों (efferent branchial arteries) की श्रेणियाँ, प्राथमिक एवं द्वितीयक क्लोम–छड़ों से रुधिर एकत्रित करके एक जोड़ी पृष्ठ–धमनियों (dorsal aortae) में खाली कर देती हैं। क्लोम धमनियों में से गुजरते हुए रुधिर श्वसनीय जल की धारा के सम्पर्क में आता है, किन्तु यहाँ इसके ऑक्सीकरण का कोई प्रमाण नहीं मिलता क्योंकि रुधिर में श्वसन वर्णको (respiration pigments) का अभाव होता है।
3. **पृष्ठ महाधमनी अथवा डोर्सल एओर्टा (Dorsal aortae)**– शरीर के आधे अग्र भाग में पृष्ठ महाधमनी में एक जोड़ी वाहिनियाँ होती हैं जो ग्रसनी की छत पर अधोग्रसनी खाँच (epipharyngeal groove) के दोनों ओर स्थित होती हैं। आगे की ओर एक जोड़ी वाहिनियाँ आन्तरिक कैरोटिड या ग्रीवा धमनियाँ (carotid arteries) के रूप में प्रोथ (snout) में चली जाती हैं।

   ओरल हुड (oral hood) के क्षेत्र को संवहित करती हैं। ये रुधिर एकत्रित करने वाली वाहिनियाँ हैं जो प्रवाही क्लोम–धमनियों (efferent branchial arteries) द्वारा ग्रसनी से लाया रुधिर एकत्रित करती हैं।

टिप्पणी

पश्च भाग में दोनो पृष्ठ– महाधमनी ग्रसनी के पीछे आपस में मिलकर पृष्ठ महाधमनी (dorsal aorta) बनाती हैं जो मध्यपृष्ठ रेखा पर पीछे की नोटोकॉर्ड तथा आंत के बीच में से होती हुई पुच्छ भाग में चली जाती हैं। यहाँ इसे कॉडल धमनी (caudal artery) कहते हैं। यह वितरक वाहिनी के रूप में कार्य करती है और इससे अनेक छोटी–छोटी शाखाएँ निकलकर आंत को जाती हैं। ये शाखाएँ आंतीय दीवार में जालिका (plexus) बनाती हैं।

4. **पोर्टल सिस्टम (Portal system)**– कृपुच्छ से रुधिर कॉडल शिरा (caudal vein) द्वारा एकत्रित किया जाता है। यह आगे की ओर आंत के नीचे उप–आन्त्रीय शिरा (subintestinal vein) बनाती है और रुधिर वाहिनियों की श्रेणियों द्वारा आंतीय रुधिर वाहिकाओं में रुधिर एकत्रित करती है। उप–आन्त्रीय शिरा धड़ में प्रवेश करके पश्चांत्र (hindgut) की दीवारों में धँसकर एक जालिका बनाती है। पश्चांत्र जालिका से रुधिर यकृत पोर्टल शिरा (hepatic portal vein) द्वारा एकत्रित कर लिया जाता है। वह यकृत (liver) के अधर तल पर जाकर जालिका बनाती है। यकृत से रुधिर यकृत शिरा (hepatic vein) में एकत्रित होता है, जो आगे की ओर पाचन–ग्रन्थि के ऊपर से बढ़ती हुई नीचे की ओर मुड़कर साइनस विनोसस (sinus venosus) में खुल जाती जाती है।

   एक जोड़ी पेराइटल या पाश्विक शिराएँ (parietal veins) आहार–नाल के ऊपर स्थित होती हैं। ये शरीर की पृष्ठ दीवार से रुधिर एकत्रित करके साइनस विनोसस में खाली करती हैं। अनुप्रस्थ शिराएँ उदर महाधमनी को रुधिर पहुँचाती हैं।

5. **प्रमुख शिराएँ अथवा कार्डिनल वीन्स (Cardinal veins)**– एक जोड़ी अग्र प्रमुख शिराएँ (anterior cardinal veins) कई जोड़ी सर्पिल वाहिनियों द्वारा शरीर के अग्रभाग से रुधिर एकत्रित करती हैं। ये जनन–पिण्डकों के तल पर शरीर की पार्श्व दीवारों के साथ चलती हैं। इस प्रकार एक जोड़ी पश्च प्रमुख शिराएँ (posterior cardinal arteries) शरीर के पश्च भाग से रुधिर लाती हैं। पश्चीय भाग में पश्च शिराएँ पुच्छ शिरा से मिल जाती हैं। अग्रभाग में दोनों पक्षों की अग्र एवं पश्च प्रमुख शिराएँ आपस में मिलकर एक सामान्य प्रमुख शिरा या कुवियें शिरानाल (common cardinal vein or ductus cuvieri) बनाती हैं। इस प्रकार बनी दोनों कुवियें शिरानाल या प्रमुख शिराएँ साइनस विनोसस में खुलती हैं।

   वृक्क (kidney) तथा वास्तविक यकृत (liver) की प्रस्थिति के कारण इसमें वास्तविक वृक्क एवं यकृत निवाहिका उपतन्त्रों (renal and hepatic portal system) का भाव होता है किन्तु यकृत निवाहिका एवं यकृत शिराओं (hepatic portal and hepatic veins) की उपस्थिति पृष्ठवंशी यकृत निवाहिका उपतन्त्र की प्रारम्भावस्था को इंगित करती है।

टिप्पणी

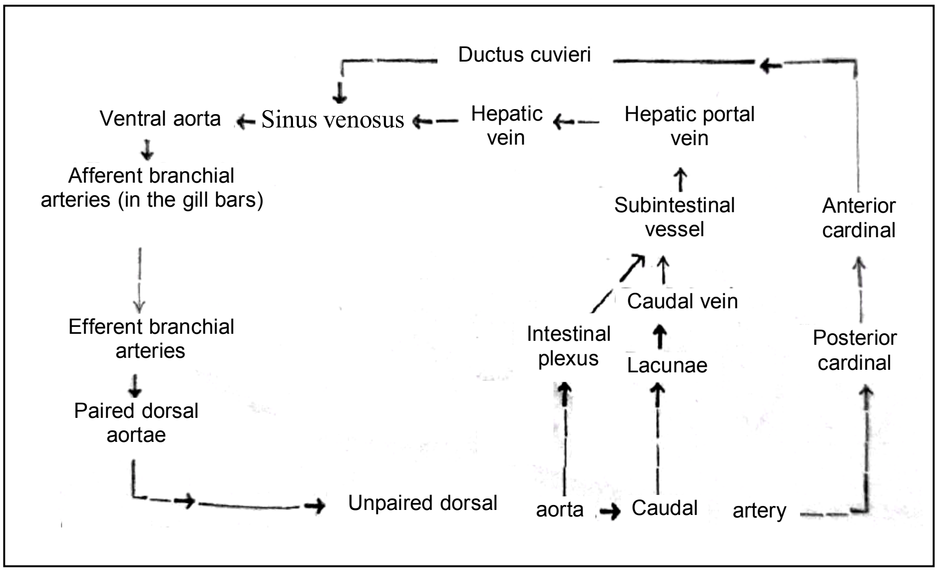

चित्र क्र. 1.38: प्रमुख शिराएँ (Major Veins)

1.4.6 रुधिर–परिवहन का पथ (Course of Blood – Circulation)

परिवहन संस्थान की विशेषताएँ (Peculiarities of Circulatory System)

(i) हृदय अनुपस्थित होता है।

(ii) वाहिनियों की दीवारें कुंचनशील होती हैं और अधर वाहिनी पम्प के समान कार्य करती है।

(iii) पृष्ठ महाधमनी (dorsal aorta) अग्रभाग में एक जोड़ी वाहिनियों द्वारा निरूपित होती है।

(iv) यकृत पोर्टल उपतन्त्र (hepatic portal system) प्रारम्भावस्था में होता है।

(v) शरीर के पश्च भाग में अधर महाधमनी (ventral aorta) का स्थान उपान्त्रीय शिरा (sub-intestinal vein) ले लेती है।

(vi) रुधिर का संचलन उदर महाधमनी (ventral aorta) में आगे की ओर तथा पृष्ठ महाधमनी (dorsal aorta) में पीछे की ओर होता है।

(vii) अभिवाही तथा अपवाह (afferent and efferent) क्लोम – वाहिनियों एवं यकृत व दोनों में जालिका उपस्थित होती है।

1.4.7 ऐम्फिऑक्सस के उत्सर्जी अंग (Excretory Organs of Amphioxus)

ऐम्फिऑक्सस के उत्सर्जी अंग की रचना अकशेरूकियों या नॉन–कॉर्डेटा (non-chordata) के उत्सर्जी अंगों के समान होती है। अन्य बहुत–से अकशेरुकियों की भाँति इसके उत्सर्जी अंग भी एक्टोडर्मल प्रोटोनेफ्रीडिया (protonephridia) होते हैं। कुछ अन्य अंग भी उत्सर्जी कार्य से सम्बन्धित माने जाते है। ये निम्न हैं–

टिप्पणी

1. प्रोटोनेफ्रीडियम (Protonephridium)
2. हेस्चैक नेफ्रीडियम (Hatschek's nephridium)
3. ब्राउन की (Brown funnels)
4. रीनल–पैपिली (Renal papillae)

1. **प्रोटोनेफ्रीडियम (Protonephridia)**– प्रोटोनेफ्रीडियम 90 जोड़ी विशिष्ट प्रकार की परिवर्तित एक्टोडर्मल नलिकाएँ हैं, जिनका एक–एक जोड़ा प्रत्येक देहखण्ड में स्थित होता है ये सीलोम गुहा (coelomic cavities) के साथ में ग्रसनी के ऊपर स्थित होते हैं, तथा प्राथमिक क्लोम–छड़ों के प्रारूप होते हैं। प्रत्येक प्रोटोनेफ्रीडियम एक मुड़ी हुई तथा पतली दीवार वाली नलिका के समान होता है यह आगे की ओर ऊर्ध्व (vertical) तथा पीछे की ओर क्षैतिज या अनुप्रस्थ शाखाओं में भिन्न होता है। ऊर्ध्व शाखा प्राथमिक क्लोम–छड़ के समानान्तर चल कर अन्ध रूप में समाप्त हो जाती है।

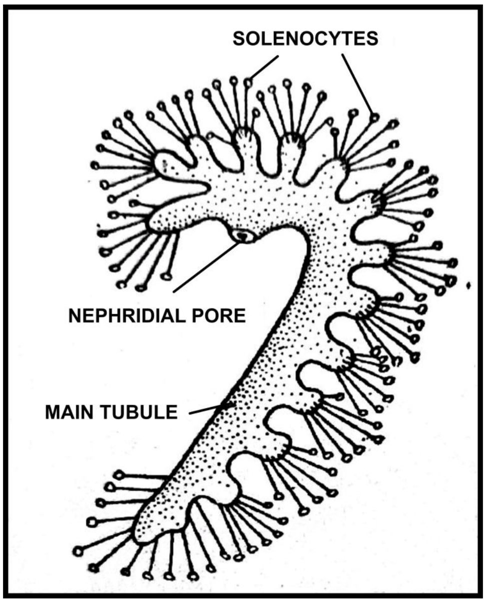

चित्र क्र. 1.39: ऐम्फिऑक्सस का प्रोटोनेफ्रीडियम
(Protonephridium of Amphioxus)

प्रोटोनेफ्रीडिअपोर (Protonephridiopore)– द्वारा एट्रियल गुहा से सम्बन्धित रहती है, जो द्वितीयक क्लोम छड़ के सम्मुख उपस्थित होती है। प्रोटोनेफ्रीडियम के शरीर से बहुत–सी छोटी शाखाएँ निकलती है। प्रत्येक शाखा पर अनेक पतली नलिकाएँ होती हैं। प्रत्येक नलिका सोलिनोसाइट (solenocyte) या शिखा–कोशिका (flame-cell) में समाप्त हो जाती है। एक प्रोटोनेफ्रीडियम में लगभग 500 शिखा–कोशिकाएँ होती है। प्रत्येक शिखा–कोशिका में एक लम्बा कशाभ (flagellum) होता है जो इसकी गुहा या नलिका के अंदर कम्पन करके उत्सर्जी द्रव को प्रोटोनेफ्रीडियम के

टिप्पणी

शरीर में निर्देशित करता है। शिखा – कोशिकाओं के समूह सीलोमिक एपीथीलियम को अलग कर सीलोमिक गुहा में लटके रहते हैं तथा विसरण द्वारा उत्सर्जी पदार्थों को सीलोमिक द्रव में से अलग करते हैं।

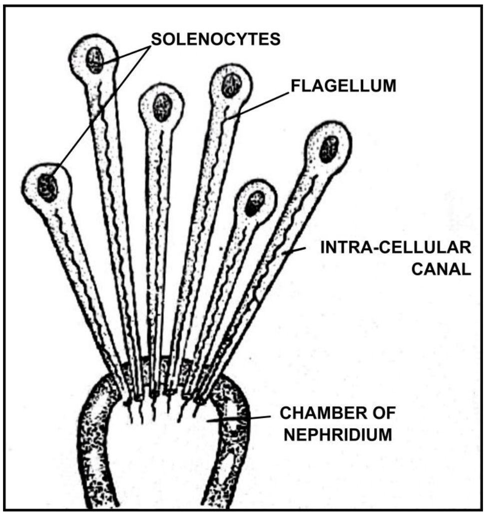

चित्र क्र. 1.40: प्रोटोनेफ्रीडियम का कुछ भाग काटकर खोलने पर
(A Part of Protonephridium Open and Enlarged)

2. **हेस्चैक नेफ्रीडियम (Hatschek's nephridium)**– यह एक एकांकी तथा बड़ा नेफ्रीडियम है जो नोटोकॉर्ड के कुछ बाँयी ओर अधर तल पर वीलम (velum) की छत पर स्थित होता है। सभी आवश्यक लक्षणों में यह सामान्य प्रोटोनेफ्रीडियम के समान होता है, किन्तु इसका आकार बड़ा होता है। यह मुड़ी हुई नली है जिसमें बहुत–सी नलिकाएँ होती हैं जो शिखा–कोशिकाओं (solenocytes) में समाप्त होती हैं। इसका अग्र सिरा हेस्चैक गर्त (Hatschek's pit) के सामने अन्ध रूप में समाप्त हो जाता है और पश्च सिरा फिलम के ठीक पीछे ग्रसनी में खुलता है। हेस्चैक नेफ्रीडियम (Hatschek's nephridium) रुधिर वाहिनियों द्वारा बनाई जाली से सम्बन्धित होता है और इसकी प्रत्येक शिखा–कोशिका के चारों ओर एक छोटा–सा सीलोमिक कोष (coelomic sac) होता है। यह रुधिर में से नाइट्रोजिनस उत्सर्जी पदार्थों को अलग करता है।
3. **ब्राउन की (Brown funnels)**– एक जोड़ी ब्राउन की भी उत्सर्जी कार्य से सम्बन्धित होती हैं। ये ग्रसनी के पश्च सिरे के अधर तल पर स्थित होती हैं। इनका अग्रिम सँकरा सिरा सीलोम में खुलता है तथा चौड़ा पश्च सिरा एट्रियम से संचारित रहता है।
4. **रीनल पैपिली (Renal papillae)**– एट्रियम के फर्श पर असंख्य छोटे–छोटे रीनल पैपिली (renal papillae) होते हैं जिनके उत्सर्जी होने का अनुमान लगाया जाता है।

1.4.8 ऐम्फिऑक्सस का तन्त्रिका–तन्त्र (Nervous System of Amphioxus)

टिप्पणी

ऐम्फिऑक्सस का तन्त्रिका–तन्त्र सरल होता है तथा इसमें मस्तिष्क का अभाव होता है। उच्च कॉर्डेट्स की पृष्ठ नर्व कॉर्ड (dorsal nerve cord) की भाँति ऐम्फिऑक्सस के केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र (central nervous system) में भी एक पृष्ठ नालाकार नर्व कार्ड (dorsal - tubular nerve cord) होती है जिससे अन्य तन्त्रिका विकसित होती हैं।

पृष्ठ नर्व कार्ड (Dorsal nerve cord) केपृष्ठ नर्व कार्ड नोटोकॉर्ड के ऊपर मध्य–पृष्ठ लाइन पर स्थित होती है और संयोजी ऊतक के आवरण में बंद रहती है। पीछे की ओर यह नोटोकॉर्ड के अंतिम सिरे से कुछ आगे पतली होकर एक महीन बिंदु के रूप में समाप्त हो जाती है तथा आगे की ओर नोटोकॉर्ड के अग्रिम सिरे से कुछ पहले समाप्त हो जाती है। नर्व कॉर्ड में एक–अक्षीय गुहा होती है जिसे न्यूरोसील (neurocoel) कहते हैं। यह पृष्ठ–तल पर एक माध्यिक–अनुलम्ब विदर से सम्बन्धित होती है, जिसे पृष्ठ–विदर (dorsal fissure) कहते हैं। पृष्ठ विदर थोड़ा पीछे की ओर चौड़ा होकर नाँद के समान पृष्ठ–विस्तारण (dorsal dilation) बनाता है। इसके चारों ओर संयोजी ऊतक का कोमल आवरण होता है। न्यूरोसील आगे की ओर सेरिब्रल बेसिक या प्रमस्तिष्क पुटी (cerebral vesicle) में विस्तारित होती है, जिसकी दीवार में निश्चित संवेदी अंग (नेत्र तथा घ्राण गत) होते हैं।

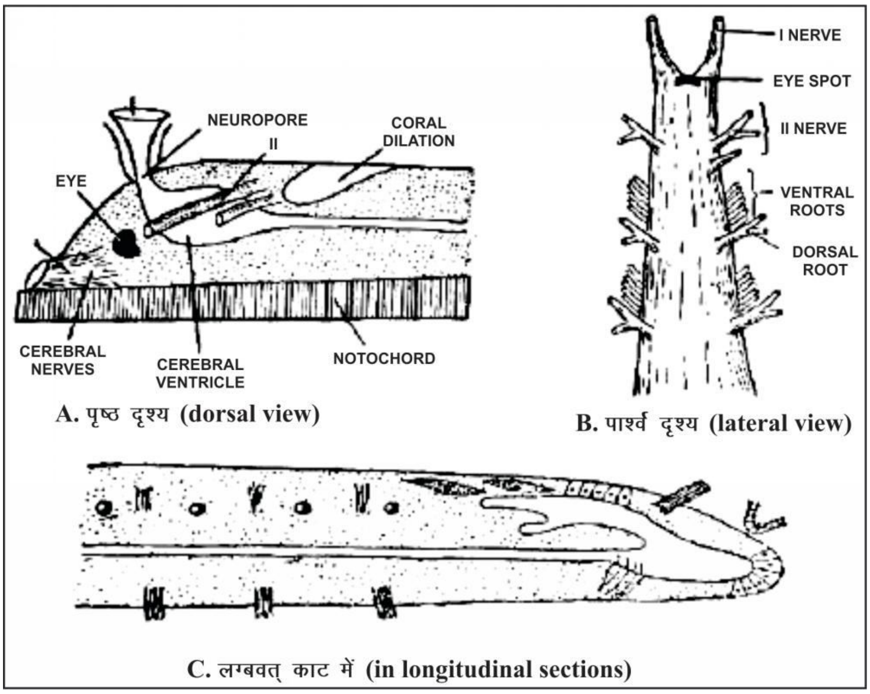

चित्र क्र. 1.41: ऐम्फिऑक्सस के केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र का अग्रभाग (Anterior Part of Central Nervous System of Amphioxus)

अग्र–पृष्ठ भाग में सेरेब्रल बेसिक से एक खोखली तथा नुकीली धानी के समान विनाल निकलती है जो रोमाभी होती है। इसको घ्राण संवेदी माना गया है। नर्व कॉर्ड (nerve cord) मुख्य रूप से लम्बे तन्त्रिका सूत्रों (nerve fibres) की बनी होती है, जिनमें तन्त्रिका–कोशिका प्रचुरता में होती है। तन्त्रिका कोशिकाएँ न्यूरल नाल के चारों ओर होती हैं और इनसे निकले तन्त्रिका सूत्र परिधिस्थ (peripheral) तथा अधिक पृष्ठस्थ होते हैं। न्यूरल नाल की पृष्ठ दीवार पर थोड़े–थोड़े अन्तर पर कुछ दीर्घ कोशिकाएँ तथा दीर्घ सूत्र होते हैं।

परिधिस्थ तन्त्रिका (Peripheral nerves)– दो जोड़ी क्रेनियल तन्त्रिकाएँ (cranial nerves) या सेरिब्रल तन्त्रिका तथा प्रमस्तिष्क तन्त्रिका (cerebral nerves) सेरिब्रल बेसिक से निकलती हैं। सेरिब्रल तन्त्रिकाओं की प्रथम जोड़ी अग्र सिरे से तथा द्वितीय जोड़ी पृष्ठपक्ष से निकलती है। इनकी प्रकृति संवेदी होती है और ये प्रोथ (snout) को सम्भरणित करती हैं। इनके पीछे स्पाइनल कॉर्ड (spinal cord) या तन्त्रिका रज्जु (nerve cord) से स्पाइनल नर्व (spinal nerve) के अनेक जोड़े निकलते हैं। मायोटोम्स (myotomes) के विन्यास के अनुरूप एवं बाएँ पक्ष की तन्त्रिकाएं एक–दूसरे से एकान्तरित होती हैं। प्रत्येक खण्ड के दोनों तरफ दो–दो तन्त्रिका होती हैं। एक पृष्ठ–तन्त्रिका मूल (dorsal nerve root) तथा एक अपर तन्त्रिका मूल (ventral nerve) होती हैं। पृष्ठ तन्त्रिका मूल एक मूल से तथा अवर मूल अनेक मूलों से विकसित होती है। पृष्ठवंशियों में ये दोनों मिल जाती है, किन्तु इसमें ऐसा नहीं होता। अधर तन्त्रिका प्रेरक होती हैं और त्वचा तथा अनुप्रस्थ पेशियों को सम्भरणित करती हैं तथा मायोटोम्स (myotomes) के बीच से गुजरती हैं। पृष्ठ तन्त्रिकाएं संवेदी होती हैं और त्वचा के ग्राहक अंगों (receptor organs) से विकसित होती हैं। आहार–नाल की दीवार में दो तन्त्रिका जालिकाओं के रूप में एक स्पष्ट स्वायत्त–तन्त्रिका संस्थान (autonomous nervous system) होता है।

1.4.9 ऐम्फिऑक्सस के तन्त्रिका तन्त्र की विशिष्टताएँ (Peculiarities of Nervous System of Amphioxus)

ऐम्फिऑक्सस का तन्त्रिका तन्त्र कॉर्डेटा तन्त्रिका संस्थान की पूर्वयोजना पर आधारित होता है किन्तु फिर भी यह निम्न कारणों से इससे भिन्न है–

1. इसमें विशिष्ट मस्तिष्क का अभाव होता है।
2. इसमें स्पाइनल नर्व गैंगलिया का अभाव होता है।
3. अनुकम्पी गैंगलिया (sympathetic ganglia) का भी अभाव होता है।
4. नर्व कॉर्ड तन्त्रिकाओं की पृष्ठ तथा अधर मूल स्वतन्त्र होती हैं।
5. पृष्ठ मूल मिश्रित प्रकृति की होती हैं अर्थात् ये ग्राहक (receptor) एवं प्रेरक (motor) दोनों प्रकार की होती हैं।
6. अधर मूल बहुमूलों के रूप में विकसित होती हैं।

1.5 पैट्रोमाइजोन : बाह्य लक्षण तथा मिक्सीन से तुलना (Petromyzon : External Features and Comparison with Myxine)

सबसे निम्नकोटि के कशेरुक जन्तु एग्नेथा समूह (group Agnatha) के अन्तर्गत आते हैं। इनमें नोटोकॉर्ड आजीवन स्थायी तथा वर्टिब्रल कॉलम बहुत कम विकसित पाया जाता है। जबड़े तथा जोड़ीदार उपांग अनुपस्थित होते हैं। अधिकांश सदस्य प्राचीनकालीन थे जो अब नहीं रहे अर्थात् विलुप्त हो चुके हैं। वर्तमान में जीवित जातियों की संख्या लगभग 50 है। इनमें गोल व कीपनुमा मुख एक चूषक (sucker) का कार्य करता है। इसलिए इन्हें एक ही क्लास साइक्लोस्टोमेटा (class - cyclostomata - Gr- cyklos = circular, stoma = mouth) में रखा गया है। इस क्लास के जीवित प्रतिनिधि पैट्रोमाइजोन या लैम्प्रे (Petromyzon or Lamprey) तथा मिक्सीन या हैग मछलियाँ (Myxine or Hag fishes) हैं। इन्हें सामान्यतः चक्र या गोलमुखी ईल मछलियों (round mouth eels) के नाम से जाना जाता है, क्योंकि ये ऊपर से देखने में ईल मछलियों के समान दिखायी देती हैं। किन्तु ये ईल नहीं हैं, क्योंकि ईल्स वास्तव में अत्यधिक विकसित बोनी मछलियाँ (bony fishes) होती है।

Classification = (Systematic Position)

Phylum : Chordata

Subphylum : Vertebrata

Group : Agnatha

Class : Cyclostomata

Order : Petromyzoniformes

Family : Petromyzontidae

Genus : *Petromyzon Lamprey*

1.5.1 वितरण (Distribution)

लैम्प्रेज (Lampreys) वितरण में विश्वव्यापी है तथा स्वच्छ व नमकीन दोनों ही प्रकार के जल में पाई जाती है। उत्तरी भाग के टैम्परेट क्षेत्रों (temperate zones) में सामान्य रूप से इसकी तीन जातियाँ पायी जाती है, पेट्रोमाइजोन मेरिनस (Prompt on martyrs) जो सामान्यतः समुद्री लैम्प्रे के नाम से जानी जाती है। यू. एस.ए. तथा कनाडा (U.S.A and Canada) के मध्य ग्रेट लेक्स (Great Lakes) व उत्तरी अमेरिका, यूरोप तथा अफ्रीका के अटलांटिक समुद्री किनारों के जल में पायी जाती है।

टिप्पणी

1.5.2 स्वभाव एवं वास–स्थान (Habit and Habitat)

पेट्रोमाइजोन, जिसे लैम्प्रे के नाम से जाना जाता है, स्वच्छ एवं समुद्री (freshwater and marine) दोनों पानी में पाया जाता है। पैट्रोमाइजोन मेरिनस *(Petromyzon marinus)* एक विनाशकारी (destructive) समुद्री लैम्प्रे है, जबकि लैम्प्रेरा फ्लुविएटिलिस *(Lamprera fluviatilis)* एक सामान्य स्वच्छ जलीय लैन है। दोनों ही प्रयोगशालाओं में अध्ययन के लिए उपयोग किये जाते हैं। पेट्रोमाइजोन एक पीड़ादायक जन्तु है। इसके जीवन में दो मुख्य अवस्थाएँ पायी जाती हैं– **(i) लार्वल अवस्था (larval phase)**– इसके लार्वा को ऐमोसील (Ammocoele) लार्वा कहते हैं जो स्वच्छ जल (fresh water) में रहता है। वह स्वभाव से कियोस्टोमा की तरह सैडेण्टेरी, फिल्टर फीडर तथा माइक्रोफेगस (sedentary, filter feeder and microphagus) होता है। **(ii) वयस्क अवस्था (adult phase)**– वयस्क पैट्रोमाइजोन जोलयाक समान होते हैं, समुद्री जल में रहते हैं तथा ये मछलियों पर एक्टोपैरासिटिक (ectoparasitic) जीवन व्यतीत करते हैं। ये मछलियों (तथा टर्टिल्स = turtles) के शरीर के निचले तल पर अपने मजबूत चूषक मुख या बक्कल फनल (suctorial mouth or buccal funnel) के द्वारा चिपक जाते हैं तथा अपनी रैस्पिंग जिव्हा (rasping tongue) की सहायता से उसके शरीर के मांस को खुरचकर अलग करके मछली का रुधिर चुसते रहते हैं। पैट्रोमाइजोन अपने शरीर की अण्डुलेशन्स (undulations) गति के द्वारा जल में भली–भाँति तैर सकते हैं। ये कभी–कभी जल की तेज धाराओं के साथ गति करते–करते, अचानक पत्थरों से अपने चूषक (sucker) की सहायता से चिपक जाते हैं। जनन काल आने पर समुद्रों में वास करने वाले लैम्प्रे नदियों के स्वच्छ जल में माइग्रेट (migrate) करते हैं, जिसे ऐनाड्रोमल माइग्रेशन कहते हैं। स्वच्छ जल में ये प्रजनन की क्रिया पूर्ण करने के बाद अण्डे देते हैं तथा इसके बाद नर और मादा दोनों की मृत्यु हो जाती है।

1.5.3 बाह्य लक्षण (External Features)

आकार, आकृति एवं रंग (Size, shape and colour) वयस्क पैट्रोमाइजोन या लैम्प्रे का शरीर लम्बा, बेलनाकार तथा ईल मछली (eel fish) के समान होता है। इसके शरीर की लम्बाई कुछ इंच से लेकर एक मीटर तक होती है। लैम्प्रेरा फ्लुविएटिलिस *(Lamprera fluviatilis)* लम्बाई में लगभग 90 cm. जबकि पैट्रोमाइजोन मेरिनस *(Petromyzon marinus)* की लम्बाई एक मीटर तक पायी जाती है। स्वच्छ जल में पायी जाने वाली जातियाँ आकार में छोटी होती है। शरीर का डोर्सल भाग हरा, भूरा या नीले रंग का होता है, जबकि पार्श्वभाग सफेद रंग का होता है।

लैम्प्रे की त्वचा अत्यन्त ही चिकनी तथा लसलसी होती है, क्योंकि इसकी एपिडर्मिस में एककोशिकीय म्यूकस ग्रन्थि (mucous glands) स्थित होती हैं। ये चिपचिपे और चिकने म्यूकस का स्रावण करती रहती हैं, जो शरीर की सतह को चिकना तथा लसलसा बनाये रखता है। त्वचा पर एपिडर्मल स्केल्स

टिप्पणी

(epidermal scales) का पूर्ण अभाव होता है। पैट्रोमाइजोन के शरीर को स्पष्ट रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है– (i) सिर, (ii) धड़ तथा (iii) पुच्छ।

पेट्रोमाइजोन के बाहरी लक्षणों का अध्ययन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं–

1. **बक्कल फनल (Buccal funnel)**– शरीर के अग्र भाग को सिर के वैण्ट्रल तल पर एक बड़ी थैलेनुमा खाँच होती है जिसे चूषक (sucker) या बक्कल फनल (buccal funnel) कहते हैं। यह इसका चूषक उपकरण (suctorial apparatus) है जो इसे चिपकने में सहायता करता है। बक्कल फनल का किनारा चारों ओर से एक मार्जिनल मैम्ब्रेन (marginal membrane) से घिरा रहता है। यह किनारा एक कार्टिलेज की उपस्थिति के कारण कठोर रहता है मार्जिनल मैम्ब्रेन पर चारों ओर झालर की तरह छोटे तथा कोमल उभार (projections) पाये जाते हैं, जिन्हें मुखीय फिम्ब्री या पैपिली (oral fimbriae or papillae) कहते हैं, जो पैट्रोमाइजोन को मछली के शरीर पर चिपकने में सहायता करते हैं।

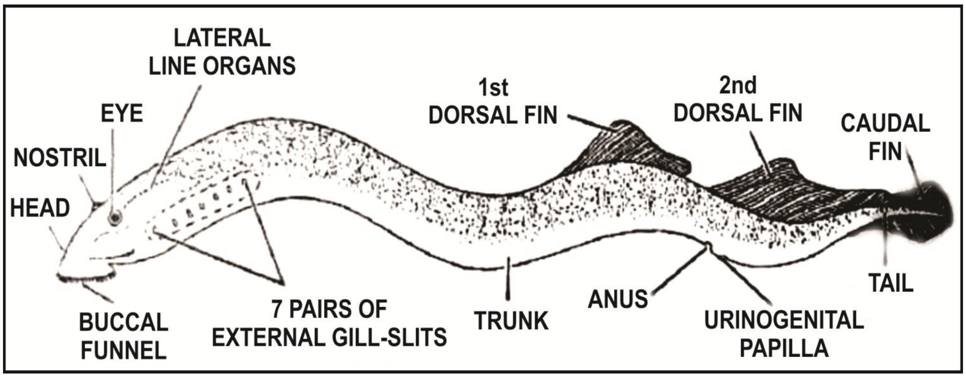

चित्र क्र. 1.42: Petromyzon Marinus or Sea Lamprey

इन्हीं मुखीय पैपिली के मध्य कुछ लम्बे संवेदांग पाये जाते हैं, जिन्हें संवेदी सिराई (sensory cirri) कहते हैं। बक्कल फनल के भीतर की ओर अनेक कोनिकल (conical) तथा पीले रंग के एपिडर्मल हॉर्नी दाँत (horny teeth) पाये जाते हैं, जो एक निश्चित अरीय कतारों (radial rows) में व्यवस्थित रहते हैं। ये दाँत कशेरुकी जन्तुओं के वास्तविक दाँतों की तरह नहीं होते हैं। बक्कल फनल के तल पर एक छोटा गोलाकार छिद्र के समान मुख (mouth) स्थित होता है जो एक कार्टिलेज की रिंग (ring) द्वारा खुला रहता है। मुख के नीचे तथा पीछे की ओर बक्कल फनल में एक खुरचने वाली जीभ निकली रहती है जो पिस्टन की तरह आगे–पीछे चलती है। इसकी सतह पर भी हॉर्नी एपिडर्मल दाँत स्थित होते हैं। दाँत कोनिकल (conical) होते हैं तथा घिसने पर नये दाँत इनका स्थान लेते रहते हैं। जीभ मछली के शरीर का माँस खुरचने तथा बक्कल फानल रुधिर चूसने का कार्य करता है। पेट्रोमाइजोन में स्पष्ट जबड़ों का पूर्ण अभाव होता है।

टिप्पणी

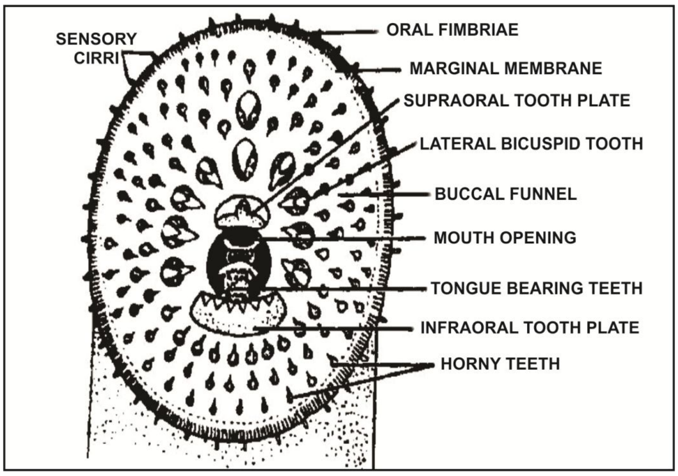

चित्र क्र. 1.43: Petromyzon Buccal Funnel from Ventral View

2. **नेत्र (Eyes)**– पेट्रोमाइजोन के सिरे के प्रत्येक पार्श्व (Lateral) तल पर एक–एक बड़ा नेत्र स्थित होता है। इनमें पलकों का पूर्ण अभाव होता है। इनके ऊपर से त्वचा के पतले पारदर्शी आवरण रहती है।

3. **बाहरी छिद्र (External apertures)**–

   (i) मुख (Mouth)– यह एक सैकड़ा तथा गोल छिद्र होता है जो बक्कल फनल के तल पर स्थित होता है। यह एक कार्टिलेज की रिंग के द्वारा खुला रहता है।

   (ii) नासाछिद्र या नेसोहाइपोफाइसिअल छिद्र (Nostril or nasobypophyseal aperture)– दोनों नेत्रों के मध्य सिर के मिड–डॉर्सल (mid-dorsal) तल पर एक छोटा गोल छिद्र स्थित होता है। इसे नासाछिद्र या नेसो हाइपो फाइसिअल छिद्र कहते हैं। नासाछिद्र पीछे की ओर नासाकोष (nasal sac) में खुलता है। नासाछिद्र के ठीक पीछे सिर की त्वचा पर एक पारदर्शी बिंदु के समान रचना होती है, जिसे पीनियल अंग या क्षेत्र (pineal organ or area) कहते है, जो पैट्रोमाइजोन में मध्य नेत्र (middle eye) की स्थिति को अंकित करता है। यह प्रकाश के लिए संवेदी होता है।

   (iii) बाहरी गिल–स्लिट्स (External gill-slits)– सिर के प्रत्येक ओर पार्श्व तल पर नेत्रों के ठीक पीछे सात–सात लम्बवत कपाट व्यवस्थित छोटें गोल छिद्र पाये जाते हैं, जिन्हें बाहरी गिल–स्लिट्स कहते हैं। इस प्रकार लैम्प्रे में बाहरी गिल–स्लिट्स की संख्या सात जोड़ी होती है। ये भीतर की ओर युग्मित क्लोम–धानियों (gill pouches) में खुलते हैं।

   (iv) गुदा–द्वार तथा यूरीनोजेनिटल पैपिला (Anus and urinogenital papilla)– धड़ एवं पुच्छ के संगम–स्थल के वैण्ट्रल तल पर एक खाँच की तरह का गड्ढा होता है, जिसे क्लोएका (cloaca) कहते हैं। इसके ठीक पीछे यूरीनोजेनिटल पैपिला

(urinogenital papilla) स्थित होता है जो एक यूरीनोजेनिटल छिद्र (urogenital aperture) सहित क्लोएका में उभार के रूप में निकला रहता है। इसी के ठीक सामने एक छोटा गुदा–द्वार (anal opening) भी क्लोएका में स्थित होता है।

(v) **संवेदी छिद्र (Sensory apertures)**– सिर एवं धड़ के पार्श्व–भागों की त्वचा पर लेटरल लाइन सिस्टम (lateral line system) के अनेक छोटे–छोटे संवेदी छिद्र स्थित होते हैं।

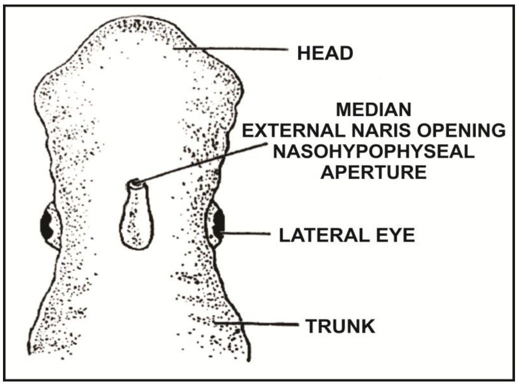

चित्र क्र. 1.44: Petromyzon : Dorsal View of Head

4. **फिन्स (Fins)**– पैट्रोमाइजोन में युग्मित फिन्स (paired fins) का अभाव होता है। धड़ की डॉर्सल सतह पर पीछे की ओर दो असमान प्रथम एवं द्वितीय, मीडियन डॉर्सल फिन्स (median dorsal fins) तथा पुच्छ के चारों ओर एक कॉडल फिन (caudal fin) पाया जाता है। कॉडल फिन का ऊपरी लोब (lobe) द्वितीय डॉर्सल फिन से जुड़ा रहता है। ये सभी फिन्स पतली कार्टिलेजिनस रॉड्स या फिन रेज (fin rays) के द्वारा अवलम्बित रहते हैं।

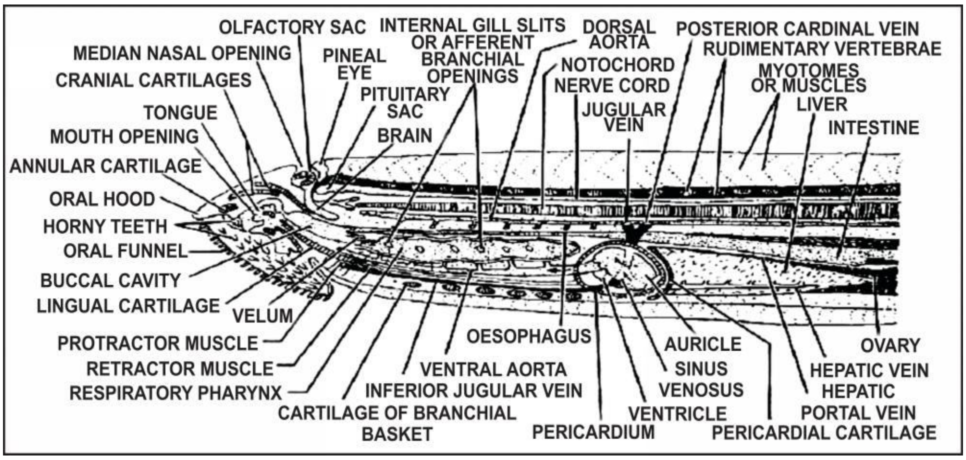

चित्र क्र. 1.45: Petromyzon: M- L- S- of Anterior End to Show Internal Anatomy (Female)

टिप्पणी

1.5.4 पेट्रोमाइजोन का ऐमोसीट लार्वा की संरचना तथा इसका महत्व (Structure and Importance of Ammocoete Larva of Petromyzon)

पेट्रोमाइजोन का ऐमोसीट लार्वा अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह एक अत्यधिक आदिम (most primitive) तथा विशिष्ट (generalized) कशेरुक जन्तु के रूप को निरूपित करता है। इसका शरीर ईल (eel) की तरह होता है, किन्तु यह वयस्क पैट्रोमाइजोन से अनेक लक्षणों में भिन्नता रखता है जैसे–

(i) इसमें केवल एक ही सत्तू मीडियन डॉर्सल (dorsal) पंख पाया जाता है।

(ii) यह एक ब्लाइण्ड (blind), दन्तविहीन, नॉन–पैरासिटिक फिल्टर फीडर (non-parasitic filter feeder) होता है।

(iii) इसमें ब्रैंकियोस्टोमा (Branchiostoma) की तरह श्वसन तथा सीलिअरी फीडिंग विधि (ciliary feeding mechanism) पायी जाती है।

(iv) इसमें सक्टोरियल बक्कल फनल (suctorial buccal funnel) का पूर्ण अभाव होता है, किन्तु ब्रैंकियोस्टोमा की तरह इसका मुख ओरल हुड (oral hood) से घिरा रहता है। मुख (mouth) के नीचे एक ट्रान्सवर्स लिप (transverse lip) भी पाया जाता है।

(v) ब्रैंकियोस्टोमा की तरह इसके फैरिंक्स में अंदर जमीन पर एण्डोस्टाइल (endostyle) पाया जाता है। इसके ही तरह यह जल के रेतीले तल में धँसा रहता है।

(vi) इसमें एक वेलम (velum) जैसी रचना जो एक जोड़ी पेशीय फ्लेप्स (muscular flaps) से मिलकर बनी होती है, पायी जाती है। यह फैरिंक्स में जलधारा के प्रवेश को नियन्त्रित करता है।

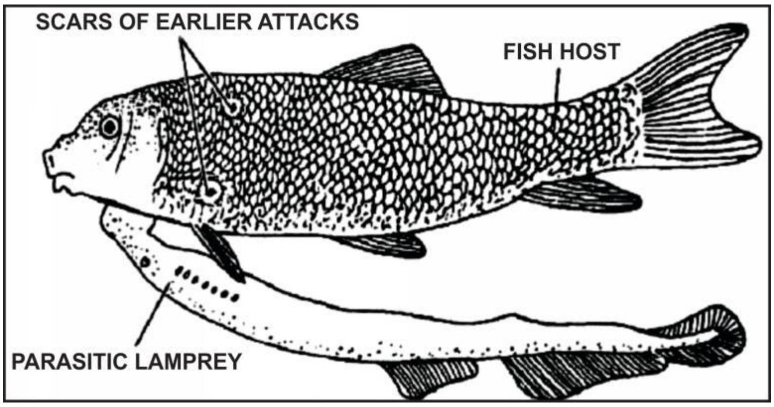

चित्र क्र. 1.46: **Petromyzon: For Feeding Attached to a Bony Fish**

(vii) इसमें सात जोड़ी गिल पाउच (gill pouches) पाये जाते हैं जो फैरिंक्स के अंदर आन्तरिक गिल–स्लिट्स तथा शरीर के बाहर बाहरी गिल–स्लिट्स के द्वारा खुलते हैं।

(viii) फैरिंक्स की दीवार ब्रैंकियल बास्केट (branchial basket) के द्वारा अवलम्बित रहती है। इसी के कारण फैरिंक्स की दीवार वैकल्पिक रुप से (alternately) फैलती तथा सिकुड़ती रहती हैं, जिससे एक नियमित जलधारा का निर्माण होता है, जो मुख से प्रवेश करके फैरिंक्स से होती हुई बाहरी गिल–स्लिट्स के द्वारा बाहर निकलती रहती है। इस प्रकार इसमें जलधारा का सरकुलेशन (water circulation) पेशीय–गति के द्वारा होता है न कि सीलिअरी गति के द्वारा जैसा कि ब्रैंकियोस्टोमा में पाया जाता है।

(ix) लिवर, बाइल डक्ट, गाल ब्लैडर तथा प्रोटोनेफ्रोस किडनी आदि सभी सुविकसित पाये जाते हैं। पेरीकार्डियल गुहा जो सीलोम से जुड़ी रहती है, में बंद रहता है।

(x) युग्मित नेत्र सिर पर मोटी त्वचा के नीचे छिपे रहते हैं।

(xi) पिनियल नेत्र (जो एक होता है) सुविकसित पाया जाता है, किन्तु हाइपोफाइसिअल तथा नासिका कोष (hypophyseal and nasal sacs) अविकसित अवस्था में होते हैं।

कायान्तरण (Metamorphosis)– एमोसीट लार्वा 3 से 7 वर्ष का अपना जीवन व्यतीत करने के बाद कायान्तरण के अन्तर्गत अनेक विशिष्ट परिवर्तनों से गुजरता हुआ एक अर्धपरजीवी वयस्क (semiparasitic adult) पैट्रोमाइजोन में बदल जाता है। कायान्तरण में इसमें निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं–

(i) ओरल हुड एक चूषक बक्कल फनल, जिसमें तीखे दाँत, जीभ, गोलाकार मुख तथा जटिल पेशियों का विकास होता है, में परिवर्तित हो जाता है।

(ii) एण्डोस्टाइल फैरिंक्स के नीचे एक थायरॉइड ग्रन्थि में बदल जाता है।

(iii) फिलम् क्षीण होकर अदृश्य हो जाता है।

(iv) इसोफेगस रेसपिरेटरी फैरिंक्स (respiratory pharynx) से अलग हो जाता है।

(v) गॉल ब्लैडर तथा बाइल डक्ट अदृश्य हो जाती है।

(vi) गिल–पाउच (gill - pouches) के अंदर गिल्स का विकास होता है।

(vii) प्रोनेफ्रोस किडनी के स्थान पर मीसोनेफ्रोस किडनी का विकास होता है।

(viii) युग्मित नेत्र सुविकसित अवस्था में आ जाते हैं।

(ix) सतत डॉर्सल पंख दो भागों में विभाजित हो जाता है।

(x) पेरीकार्डियल गुहा सीलोम से पूरी तरह अलग हो जाती है।

(xi) स्पाइनल कॉर्ड डॉर्सो–वैण्ट्रली चपटी हो जाती है तथा त्वचा का रंग पीले–बादामी से हरा–बादामी हो जाता है।

कायान्तरण के पश्चात् शिशु लैम्प्रेज स्वच्छ जल से तैरकर समुद्र में आ जाते हैं, जहाँ वे 3–4 वर्ष रहने के बाद परिपक्व अवस्था में बदल जाते हैं तथा दोबारा प्रजनन के लिए स्वच्छ जल में प्रवेश करते हैं।

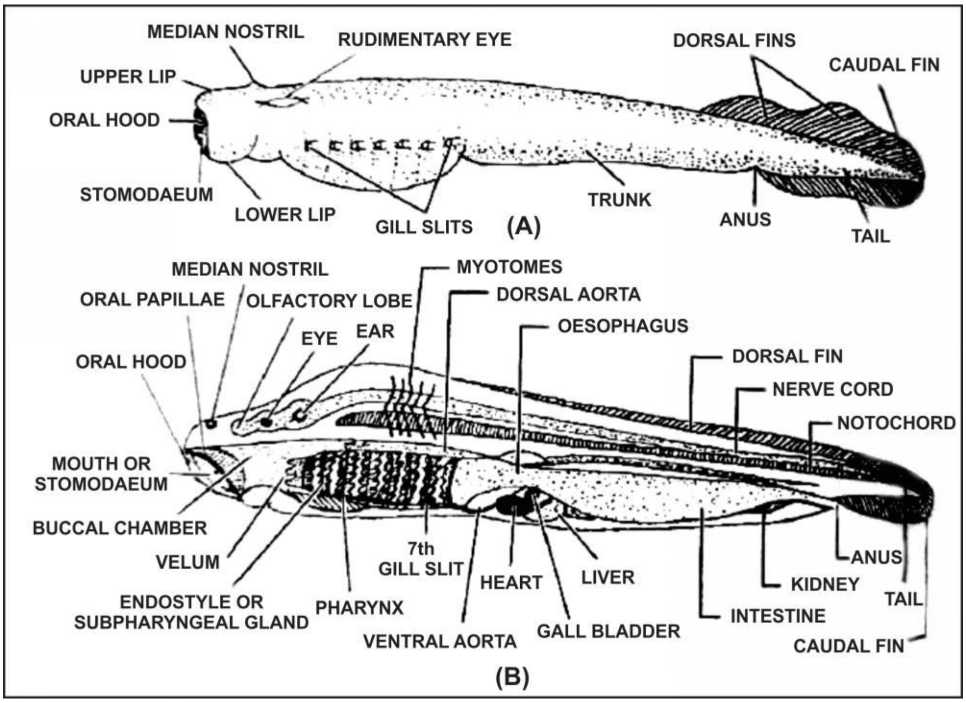

चित्र क्र. 1.47: Petromyzon: (A) External Structure of Ammocoete Larva, (B) Internal Structure of Ammocoete Larva

1.5.5 मिक्सीन (Myxine)

साइक्लोस्टोम्स के जो सदस्य ऑर्डर मिक्सीनिफोर्मीस (Myxiniformes) के अन्तर्गत आते हैं, उन्हें सामान्यतः हैग मछलियाँ कहा जाता है। ये केवल समुद्री जल में वास करते हैं। मिक्सीन अधिकांशतः यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका तथा जापान के समुद्री तटों पर पायी जाती हैं। इसका शरीर ईल (eel) या कृमि के समान (worm like) 50 से 60 cm तक लम्बा होता है। त्वचा कोमल, लचीली, स्केल विहीन तथा गुलाबी रंग की होती है। शरीर सिर, धड़ तथा पुच्छ में विभेदित रहता है। यह पैट्रोमाइजोन या लैम्प्रे से अनेक लक्षणों में भिन्न होती है। चूषक मुख सिर के टर्मिनल सिरे पर स्थित होता है जो कोमल तथा सिकुड़े हुए लिप्स (lips) या होठों से घिरा रहता है। नेत्र अल्पविकसित तथा मोटी त्वचा से ढके रहते हैं। मुख के चारों ओर कार्टिलेज से सधे हुए छः माँसल सिराई या टैण्टाकिल्स होते हैं। मुख में जबड़ों का अभाव होता है। जीभ पर छोटे–छोटे दाँतों की दो पंक्तियाँ होती है। नासिका छिद्र अग्रीय होता है। यह नेसल डक्ट में खुलता है जो नेजोहाइपोफाइसिअल कोष (nasohypophyseal sac) से जुड़ी रहती है। गिल पाउच या क्लोम धानियाँ (gill pouches) छः जोड़ी होती हैं जो फैरिंक्स में खुलती है साथ ही बाहरी गिल–स्लिट द्वारा बाहर खुलती हैं। युग्मित पंख का अभाव होता है। एक अल्पविकसित मिटर–बैण्टुल तथा एक कॉडल पंख साधारणतः उपस्थित होते हैं जिनमें फिन–रेज (पिद–तंले) पूर्णतः अनुपस्थित होती हैं। त्वचा में अनेक म्युकस ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं जो सिर से पुच्छ तक दो कतारों में व्यवस्थित रहती हैं तथा अनेक छिद्रों से बाहर खुलती हैं। इन्हीं के द्वारा यह अत्यधिक मात्रा में

टिप्पणी

स्लाइम (slime) का स्रावण करती है। इसलिए मिक्सीन को सामान्यतः स्लाइम ईल (slime eel) भी कहते हैं। मिक्सीन मछलियों की विनाशक होती हैं, यह घायल या मरी हुई मछलियों के सीलोम का बेधन करके आन्तरिक अंगों तथा शरीर की दीवार के मॉस (flesh) का भक्षण करती हैं जिसमें केवल मछलियों की हड्डियाँ ही शेष बचती हैं। इसलिए मिक्सीन को बोरर (borer) भी कहते हैं तथा यह एक वास्तव में आन्तरिक परजीवी (internal parasite) है।

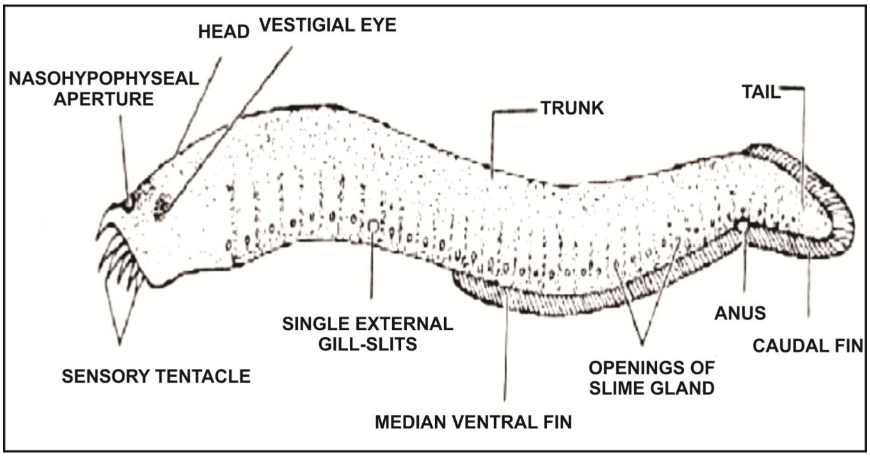

चित्र क्र. 1.48: Myxine: Lateral View

सारणी क्र. 1.3: पेट्रोमाइजोन एवं मिक्सीन के विभिन्न लक्षणों की तुलना

लक्षणों (Characters)	पेट्रोमाइजोन या लैम्प्रे (Petromyzon or Lampreys)	मिक्सीन या हैग मछलियाँ (Myxine or Hag Fishes)
वास–स्थान	लैम्प्रे समुद्र एवं स्वच्छ जल (नदी) दोनों में ही वास करते हैं।	ये पूर्णतया समुद्र के खारे पानी में रहती हैं।
परजीविता	यह बाह्य परजीवी या अपरजीवी जाति है।	यह एक आन्तरिक परजीवी की तरह होती है।
शरीर	यह मजबूत होता है।	कुछ कमजोर एवं अत्यधिक कोमल होते है।
आकार	लंबाई एक मीटर तक होती है।	लंबाई एक मीटर से कम होती हैं।
पंख	इसमें पंख सुविकसित होते हैं।	पंख अल्पविकसित होते हैं।
त्वचा	डॉर्सल पंख नोच (notched) होता है।	अत्याधिक स्लाइमी, कम स्लाइमी (slimy)।
नासा–छिद्र	सिर की डॉर्सल सतह पर मध्य रेखा पर स्थित। यह नेजोहाइपोफाइसिअल कोष में खुलता है जिसका पिछला सिरा बंद होता है।	सिर की वैण्ट्रल सतह पर मुख आगे स्थित। नो हाइपोफिसिस कोष बक्कल गुहा में खुलता है।

टिप्पणी

नेत्र	नेत्र पूर्ण विकसित होते हैं।	नेत्र मोटी त्वचा के नीचे, अविकसित तथा दृष्टिहीन होते हैं।
पिनियल क्षेत्र	पिनियल क्षेत्र उपस्थित होता है।	इसमें पिनियल क्षेत्र नहीं होता।
बक्कल फनल	इसमें बक्कल फनल विकसित होता है।	इसमें बक्कल फनल का अभाव होता है।
मुख	इसमें मुख बक्कल फनल के तल पर एण्टी–वैण्ट्रली स्थित होता है तथा कार्टिलेज के होठों से घिरा होता है। होठों पर शंक्वाकार दाँत पाये जाते हैं। जीभ कम विकसित होती है तथा इस पर बड़े दाँत पाये जाते हैं।	इसमें मुख सिर के टर्मिनल अग्रीय भाग पर स्थित होता है जो कोमल तथा सिकुड़े हुए होठों से घिरा होता है। इस पर कार्टिलेज के दाँत अनुपस्थित होते हैं। मुख के चारों ओर कार्टिलेज से सधे हुए टैण्टाकिल्स पाये जाते हैं।
सैलाइवरी ग्रन्थियाँ	उपस्थित तथा एण्टिकोएगुलेण्ट का स्रावण करती हैं।	इसमें ये ग्रन्थियाँ अनुपस्थित होती हैं।
फैरिंक्स	पीछे बंद श्वसन नलिका के रूप से समाप्त होता है।	पीछे ईसोफेगस में खुलता है।
गिल पाउच	इसमें सात जोड़ी पाये जाते हैं।	मिक्सीन में छः जोड़ी, जबकि ऐप्टेट्रीटस (Epetatretus) में 15 जोड़ी तक पाये जाते हैं।
गिल–स्लिट्स	इसमें सात जोड़ी होते हैं।	मिक्सीन में एक जोड़ी, जबकि ऐप्टेट्रीटस में 15 जोड़ी पाये जाते हैं।
ब्रोंकियल बास्केट	पैट्रोमाइजोन में यह पूर्ण विकसित पायी जाती है।	मिक्सीन में यह अल्पविकसित होता है।
न्यूरल आर्च	उपस्थित।	अनुपस्थित।
लिंगुअल–कार्टिलेज	अल्पविकसित।	सुविकसित।
पैरीकार्डिअल कोष	मोटी दीवार का तथा कार्टिलेज से सधा रहता है।	पतली दीवार का तथा बिना कार्टिलेज का होता है।
मस्तिष्क	पैट्रोमाइजोन में मस्तिष्क विकसित होता है तथा इसमें सिर का भाग स्पष्ट होता है।	मिक्सीन में मस्तिष्क का विकास होता है तथा सिर का भाग स्पष्ट नहीं होता है।
क्रेनियल तन्त्रिकाएं	इसमें दस जोड़ी पायी जाती है।	इसमें आठ जोड़ी पायी जाती हैं।
स्पाइनल तन्त्रिका रूट्स	इसमें स्पाइनल तन्त्रिका की डॉर्सल तथा वेंट्रल रूट अलग–अलग होती है।	इसमें डॉर्सल एवं वैण्ट्रल रूट्स जुडी हुई होती हैं।

टिप्पणी

कर्ण	इसके कर्ण में दिकस, सैकुलस एवं दो सर्कुलर केनाल पायी जाती है।	इसका कर्ण सरल होता है। इसमें सैकुलस अनुपस्थित तथा केवल एक सेमी सर्कुलर कैनाल पायी जाती है।
किडनी	इसमें किडनी अधिक विकसित तथा मेसोनेफ्रिक होती है।	इसमें किडनी आदिम प्रोनेफ्रिक या मेसोनेफ्रिक होती है।
यूरीजेनाइटल साइनस	इसमें उपस्थित होता है। जनन छिद्र एक जोड़ी होते हैं।	इसमें अनुपस्थित होता है। जनन छिद्र केवल एक होता है।
आंत	इसकी आंत में टिपलोसोल या स्पाइरल फोल्ड पाया जाता है।	इसकी आंत में टिफ्लोसोल अनुपस्थित होता है, किन्तु आंत की दीवार में लम्बवत फोल्ड्स पाये जाते हैं।
फीडिंग या पोषण	पैट्रोमाइजोन सक्टोरियल फाइनल के द्वारा मछलियों की निचली सतह से चिपके होते है। यह अपनी दन्तयुक्त जीभ के द्वारा मछली के मांस को खुरच–खुरच कर अलग करके मछली के रुधिर को चूसती है।	मिक्सीन एक स्कैवेन्जर (scavenger) है, यह घायल या मृत मछलियों के शरीर को बेधकर, सीलोम में घुसकर उसके आन्तरिक अंगों तथा देहभित्ति की पेशियों का भक्षण करती है।
सैक्स	इसमें नर और मादा अलग–अलग होते है।	इसमें प्रत्येक सदस्य हर्माफ्रोडाइट होता है।
अण्डे	इसके अण्डे छोटे तथा बिना शैल (shell) के होते हैं।	इसके अण्डे बड़े तथा हॉर्नी शैल (horney shell) में बंद होते हैं।
सैगमेण्टेशन	होलोब्लास्टिक।	मीरोब्लास्टिक।
वर्धन	इसके वर्धन में लार्वा अवस्था पायी जाती है। इसके लार्वा को ऐमोसीट लार्वा (Ammocoete larva) कहते हैं, जो कायान्तरण के द्वारा वयस्क में बदलता है। अतः इसका वर्धन अप्रत्यक्ष प्रकार का होता है।	इसका वर्धन प्रत्यक्ष प्रकार का होता है, क्योंकि इसमें कोई लार्वल अवस्था नहीं पायी जाती है और न ही इसमें कायान्तरण पाया जाता है।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

1. कॉर्डेट्स होते है–

   (अ) बाइरेडियल (ब) रेडियल

   (स) ऐसिमेट्रिकल (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. खोखली, नलिकाकार तथा आहारनाल के पृष्ठ तल की ओर स्थित केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र होता है–

   (अ) कॉर्डेट्स में (ब) नॉन–कॉर्डेट्स में

   (स) दोनों में (द) किसी में नहीं

टिप्पणी

3. RBC में हीमोग्लोबिन पाया जाता है–
   (अ) कशेरुकियों में (ब) अकशेरुकियों में
   (स) दोनों में (द) किसी में नहीं
4. यूरोकॉर्डेट्स का शरीर होता है–
   (अ) खण्डयुक्त (ब) बिना खण्डों का
   (स) उपर्युक्त में से कैसा भी (द) सिर, धड़ व उदर में विभक्त
5. सिफैलोकॉर्डेट्स का उत्सर्जी अंग है–
   (अ) किडनी (ब) नेफ्रीडिया
   (स) शरीर की सतह (द) उपर्युक्त तीनों
6 सिफैलोकॉर्डेट्स में होता है–
   (अ) युग्मित पादों का अभाव, मीडियन फिन उपस्थित
   (ब) युग्मित पाद व मीडियन फिन अनुपस्थित
   (स) युग्मित पाद व मीडियन फिन उपस्थित
   (द) युग्मित पाद उपस्थित, मीडियन फिन अनुपस्थित

1.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1. (अ)
2. (अ)
3. (अ)
4. (ब)
5. (ब)
6. (अ)

1.7 सारांश (Summary)

(अ) हेमीकॉर्डेटा के अतिरिक्त समस्त कॉर्डेट जन्तुओं में एक ठोस, अखण्डनीय, लचीली किन्तु कठोर अक्षीय शलाका के रूप में नोटोकॉर्ड पायी जाती है। कॉर्डेट्स की उत्पत्ति पैलिओजोइक महाकल्प के ऑडोवेशियन कल्प में हुई है, क्योंकि इस समुदाय के सबसे पुराने जीवाश्म इसी कल्प की चट्टानों में अलवण जलीय मछलियों के रूप में पाये जाते हैं। सब–फाइलम यूरोकॉर्डेटा की लगभग 2,100 जातियाँ ज्ञात हैं, जिनमें 2,000 जातियाँ स्थानबद्ध तथा 100 पैलेजिक हैं। इन जातियों को हर्डमान, गारस्टंग, पैरीअर, हार्टमेयर तथा एस.एम. दास ने विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। इस पुस्तक में यूरोकॉर्डेटा का वर्गीकरण R.S.K.

Barnes, P. Calow, P.S. W- Olive, D.W. Golding RT The Invertebrates: A New Synthesis के द्वितीय संस्कृति पर आधारित है।

टिप्पणी

(ब) ये विकसित कॉर्डेट्स हैं जिनमें जटिल मस्तिष्क का क्रमिक विकास हुआ है तथा इनमें मस्तिष्क अस्थि या उपास्थि (bone or cartilage) के बने मस्तिष्क खोल या क्रैनियम (brain box or cranium) के अंदर बंद रहता है। भ्रुणीय नोटोकॉर्ड के स्थान पर वयस्क में अस्थि या उपास्थि की कशेरुकाओं (vertebrae) से बनी कशेरुक दण्ड (vertebral column) उपस्थित होती हैं। इसलिए इस समूह को कशेरुकी या यूकॉर्डेटा (Vertebrata or Euchordata) कहते हैं। अस्थियाँ तथा उपास्थियाँ मिलकर इन जन्तुओं के अंदर एक अन्तःकंकाल (endoskeleton) बनाती हैं। मस्तिष्क के साथ–साथ शरीर के अग्र सिरे पर संवेदांगों (sensory organs) का विकास हुआ जिससे अग्र सिरा एक स्पष्ट शीर्ष (head) में विभेदित हुआ। फैरिन्जियल गिल–दरारें (pharyngeal gill-slits) भ्रुणावस्था में तो सभी कशेरुकियों में बनती हैं, परन्तु वयस्क अवस्था में ये कुछ ही सदस्यों में पायी जाती हैं। नालवत् नर्वकॉर्ड आजीवन उपस्थित तथा कशेरुक दण्ड में बंद होती हैं। मछलियों से मानव तक सभी कशेरुकी जन्तु इसी समूह के अन्तर्गत आते हैं। इनमें पृष्ठवंशीय लक्षणों का क्रमिक उद्विकास (gradual evolution) हुआ है। यह उद्विकास पहले जलीय जीवन (aquatic life) और उससे स्थलीय जीवन (terrestrial life) की ओर अग्रसर हुआ।

(क) क्लास यूरोकोर्डेटा में सी–स्क्वर्ट (Sea squirt) अथवा ऐसिडियन (acsidian) और उनके सम्बन्धी प्राणी पाये जाते हैं जो सभी समुद्रवासी हैं और कुल मिलाकर व्यापक रूप से पाया जाने वाला यह एक विचित्र वर्ग है। इनमें से अधिकांश के वयस्क में अनेक कॉर्डेट–लक्षण समाप्त हो जाते हैं लेकिन इनके स्वच्छन्द तैरने वाले लार्वो में इनकी कॉर्डेट सम्बन्ध–समानताएँ स्पष्ट दिखाई पड़ जाती हैं। इन लार्वो में ग्रसनी गिल–दरार, पृष्ठीय नलिकाकार केन्द्रीय तन्त्रिका–तन्त्र और एक नोटोकॉर्ड होता है जो केवल पूँछ तक सीमित रहता है (इसलिए यूरोकॉर्डेटा नाम पड़ा)। कायांतरण के दौरान गिल–दरारों को छोड़कर अन्य सभी कार्ड लक्षण समाप्त हो जाते हैं। ये गिल–दरारें बाहर को न खुलकर एक एट्रियम (atrium) में खुलती हैं जिस में एक्टोडर्म का स्तर बना होता है।

1.8 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **कॉर्डेट (Chordate)**: यह संघ जन्तु जगत का अधिक विषमांग समूह है जिसमे न्हासिक टयूनिकेट, ऐम्फिऑक्सस तथा वास्तविक कशेरुकी जैसे– मछलियॉ, एम्फीबियन, रेप्टाइल, पक्षी तथा स्तनधारी रखे गये हैं।
- **एम्नियोटा (Amniota)**: समूह एम्नियोटा के अन्तर्गत वर्टीब्रेट्स के शेष रेप्टीलिया, ऐवीज, मैमेलिया सम्मिलित हैं। इन्हें सामान्यतः उच्चतर कशेरुकी (higher vertebrate) कहते हैं।
- **यूरोकॉर्डेटा (Urochordata)**: क्लास यूरोकॉर्डेटा में सी–स्क्वर्ट (Sea Squirt) अथवा ऐसिडियन (ascidian) और उनके सम्बन्धी प्राणी पाए जाते

हैं जो सभी समुद्रवासी हैं और कूल मिलाकर व्यापक रूप से पाया जाने वाला यह एक विचित्र वर्ग है।

- **सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalochordata):** सब–फाइलम सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalo-chordata) के सभी जन्तु छोटे तथा ऊपर से देखने में मछली के समान दिखाई देते हैं। ये समुद्री जल में पाए जाते हैं।
- **ऐम्फिऑक्सस (Amphioxus):** सिफेलोकॉर्डेट का सबसे सामान्य उदाहरण ब्रैंकियोस्टोमा ऐम्फिऑक्सस (Branchiostoma Amphioxus) है, जिसे सामान्यतः लैंसलॉट या लैन्सिट (Lancelot or Lancet) कहते हैं।
- **पैट्रोमाइजोन (Petromyzon):** सबसे निम्नकोटि के कशेरुक जन्तु एग्नेथा समूह (Group Agnatha) के अन्तर्गत आते हैं। इस क्लास के जिवित प्रतिनिधि पैट्रोमाइजोन या लैम्प्रे (Petromyzon or Lamprey) तथा मिक्सीन या हैग मछलियाँ (Myxine or Hag fishes) हैं।

1.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. संघ कॉर्टेडा के सामान्य लक्षण लिखिए।
2. फाइलम कॉर्डेटा का (वर्ग तक) संक्षिप्त वर्गीकरण कीजिए।
3. फाइलम कॉर्डेटा के प्रमुख तीन लक्षण लिखिए।
4. यूरोकॉर्डेटा के महत्वपूर्ण वर्ग लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. फाइलम कॉर्डेटा के मुख्य लक्षणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. संघ कॉर्टेडा के विभेदी लक्षणों को बताइए। उदाहरण तथा मुख्य लक्षणों को बताते हुए इस संघ का वर्ग तक वर्गीकरण कीजिए।
3. कॉर्डेटा एवं नॉन–कॉर्डेटा के विभेद की सविस्तर जानकारी दीजिए।
4. फाइलम कॉर्डेटा हेमीकॉर्डेटा के विशिष्ट लक्षण लिखिए। क्रेनिएटा तथा एक्रेनिएटा में क्या अन्तर है?

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Cytology – C.B. Powar
2. Principle of Physiology & Anatomy – Tor-Tora
3. Animal Physiology – Goyal & Sastry
4. Animal Physiology and Biochemistry – Eckert and Ramelils
5. Animal Physiology and Biochemistry – Dr. K.V. Sastry

टिप्पणी

इकाई 2 अध्यावरण का तुलनात्मक विवरण (Comparative Account of Integuments)

संरचना (Structure)

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अध्यावरण का तुलनात्मक अध्ययन
2.2.1 चर्म/डर्मिस
2.2.2 त्वचा के कार्य
2.2.3 त्वचा की व्युत्पत्तियाँ
2.2.4 एपिडर्मिस की व्युत्पत्तियाँ
2.2.5 चर्मीय/डर्मल व्युत्पत्तियाँ
2.2.6 मत्स्य वर्ग में चर्मी शल्क
2.2.7 चतुष्पादों में डर्मल व्युत्पत्तियाँ
2.2.8 पक्षियों में त्वचा के व्युत्पन्न
2.2.9 पिच्छ विन्यास
2.2.10 स्तनी
2.2.11 शल्कों, बालों एवं परों/पंखों की संरचना
2.2.12 बालों के कार्य
2.3 कशेरुकियों में कंकाल तन्त्र : लिम्ब बोन्स एवं गर्डिल्स
2.3.1 कंकाल
2.3.2 अन्तःकंकाल के कार्य
2.3.3 कशेरुकियों के अन्तःकंकाल के भाग
2.3.4 गर्डिल्स या मेखलाएँ
2.3.5 कशेरुकी के विभिन्न वर्गों में पेक्टोरल गर्डिल
2.3.6 कशेरुकी के विभिन्न वर्गों में पेल्विक गर्डिल
2.3.7 कशेरूक के पाद, मेखलाएँ का तुलनात्मक अध्ययन
2.3.8 लिम्ब बोन्स
2.3.9 टेट्रापोडा
2.4 कशेरुकियों में पाचन तन्त्र
2.4.1 स्कॉलिओडॉन का पाचन तन्त्र
2.4.2 मेंढक का पाचन तन्त्र
2.4.3 पाचक ग्रन्थियाँ
2.4.4 यूरोमैस्टिक्स का पाचन तन्त्र
2.4.5 कबूतर का पाचन तन्त्र
2.4.6 बर्सा फैब्रिसाई
2.4.7 लीपस का पाचन तन्त्र
2.4.8 यकृत की रचना के बारे में आधुनिक मत
2.4.9 यकृत के कार्य
2.4.10 पैन्क्रियाज या अग्न्याशय
2.5 श्वसन तन्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
2.5.1 कशेरुकों में श्वसन तन्त्र
2.5.2 गिल्स/क्लोम
2.5.3 फेफड़े
2.5.4 प्रतिनिधि कशेरुकों का श्वसन तन्त्र

टिप्पणी

2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय (Introduction)

जन्तुओं की स्थूल संरचनाओं के अध्ययन को शरीर विज्ञान या एनॉटॉमी (Anatomy) कहते है जबकि विभिन्न जन्तुओं के शरीर को सामूहिक संरचना के तुलनात्मक अध्ययन को तुलनात्मक या कम्पेरेटिव एनाटॉमी (Comparative anatomy) कहते है। वास्तव में, तुलनात्मक एनॉटॉमी किसी जन्तु विशेष की एनाटॉमी से अधिक आशयपूर्ण (Purposetal) एवं गव्यात्मक (Dynamic) होती है। इसके अध्ययन से हमें किसी जन्तु विशेष या जन्तु समूह की जाति की उत्पत्ति तथा उनकी समजातीय संरचनाओं (homologous structures) में घटित परिवर्तन या रूपान्तरण (Modifications) के विषय मे जानकारी मिलती है। वास्तव में यह भूत या आदिकाल में वातावरणीय परिवर्तनों के कारण जन्तुओं मे आपस में हुए जीवन–संघर्ष तथा योग्यतम की अतिजीविता के लिए हुए शारीरिक परिवर्तनों का इतिहास बताती हैं। इन भिन्नताओं के बावजूद, आदिकाल तथा वर्तमान के सभी कशेरूक जन्तुओं की शारीरिक संरचना एक ही सामान्य रचनात्मक प्लान (Common architectral plan) पर आधारीत है। अतः तुलनात्मक एनॉटॉमी के अध्ययन में जैवीय विकास (Organic Evolution) के दौरान विभिन्न प्राणियों की समजातीय संरचनाओं में हुए परिवर्तनों का ज्ञान होता है जिससे जैवीय विकास के सिध्दान्त को बल मिलता है।

कशेरूक प्राणियों में कंकाल का अधिकांश भाग शरीर के अंदर पाया जाता है, इसी कारण इस प्रकार के कंकाल को अन्तःकंकाल (Endoskeleton) कहते है। इसका उद्गम मीजेनकाइम (Mesenchyme) की कोशिकाओं से हुआ है। सर्वप्रथम शरीर के कंकाल का अधिकांश भाग उपास्थि (Catrilage) के रूप में विकसित होता है, उसके पश्चात् अनेक क्रमिक परिवर्तनों के द्वारा अस्थि का विकास होता है। इस प्रकार की अस्थियों को उपस्थिमय (Cartilaginous) या प्रतिस्थापित (Replacing) अस्थि कहते हैं। दूसरे प्रकार की बिना उपास्थि के बीच में बने मीजेनकाइम (Mesenchyme) या संयोजी ऊतक (Connective tissue) कें प्रत्यक्ष या सीधे अस्थि भवन (Ossification) के द्वारा बनती है। ऐसी अस्थियों को कलामय (Membranous) या चर्मास्थि या डर्मिसी अस्थि (Dermal tone) कहते हैं। दोनों प्रकार की अस्थियों का निर्माण समान होता है। भ्रुणीय विकास में अन्तःकंकाल तीन अवस्थाओं से गुजरता है– मीजेनकाइम, उपास्थि, अस्थि। अस्थि के विकास में उपास्थि अवस्था का पाया जाना पूर्वजों की स्थितियों का निर्माण है।

सभी सजीवों में पाचक तन्त्र भोजन के अधिग्रहण, पाचन (Digestion), अवशोषण एवं अपने भोजन को बाहर निकालने का कार्य करता है। सभी सजीव भोजन पदार्थ ग्रहण कर इनको अपने प्रकार के प्ररस (protoplasm) मे समायोजित

करते है तथा इन रासायनिक पदार्थों का निर्माण कर शीघ्र ही जारण (Combustion) की क्रिया के द्वारा इनको साधारण रासायनिक पदार्थों में परिवर्तित कर या जलाकर अन्त में शरीर से बाहर निकाल देते है। चयापचय की इस मूलभूत विधि के ऊपर सभी वृहद् कार्य निर्भर करते है।

कार्बोहाइड्रेट्स के पाचित होने के बाद बने अन्तिम उत्पाद (End products) अन्ततः ऑक्सीकृत होकर स्थितिज उर्जा देते है जो जन्तु मे संग्रहीत रहती है। इस संग्रहीत उर्जा या स्थितिज उर्जा (Stored energy/ Potential energy) का उपयोग जन्तु गतिज ऊर्जा (Kinetic energy) के रूप में विभिन्न कार्यो में करता है।

लगातार उर्जा प्रवाह हेतु कोशिकाओं में अनवरत ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। ऑक्सीकरण की प्रक्रिया में कार्बन डाइऑक्साइड एवं पानी उत्पादों के रूप में उत्पन्न होते हैं। शरीर से यदि कार्बन डाइऑक्साइड जल्दी–जल्दी नहीं हटाई गयी तो वह शरीर पर विषैला प्रभाव डालती है, अतः शरीर में कार्बन डाइऑक्साइड को हटाना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि ऑक्सीजन की आपूर्ति। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु शरीर का कुछ भाग या सम्पूर्ण सतह चारों ओर के वायुमण्डल या जल से गैसों के आदान–प्रदान हेतु निर्धारित कर दी जाती है। ऐसे अंग श्वसनांग (respiratory organs) कहलाते हैं तथा वह सतह जिस पर गैसों का आदान प्रदान होता है, श्वसन सतह (Respiratory surface) कहलाती है। रक्त और लसिका गैसों को ऊतकों तथा अंगों तक लाते तथा ले जाते है। गैसों के भली भांति आदान–प्रदान हेतु श्वसन सतह में निम्न परिस्थितियाँ होना आवश्यक है–

1. श्वसनांग और बाहय वातावरण के मध्य सम्बन्ध होना चाहिए।
2. स्वतन्त्र या घुली हुई वायु का मार्ग व्यवधान रहित होना चाहिए।
3. श्वसन सतह बहुत पतली होनी चाहिए जिससे उसे होकर तेजी से विसरण हो सके।
4. इस सतह पर अनेक रक्त वाहिकाएँ होना चाहिए।
5. यह सतह हमेशा नम होनी चाहिए क्योंकि गैसों के श्वसन सतह से गुजरने से पहले घुलना होता है।
6. गैसीय विनिमय हेतु विशाल सतह उपलब्ध होनी चाहिए।
7. बाहर से अंदर या अंदर से बाहर जाने वाली गैसों के मार्ग में किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं होना चाहिए।

श्वसन क्रिया में ऊर्जा श्वसन सतह पर मुक्त नहीं होती किंतु कोशिकाओं के अंदर अनेक ऐन्जाइमेटिक प्रतिक्रियाएँ होने के बाद होती है।

2.1 उद्देश्य (Objectives)

टिप्पणी

इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद, आप निम्न कार्य कर सकेंगे–

- अध्यावरती तन्त्र की संरचना को समझेंगे।
- अध्यावरण के विशेष व्युत्पत्तियों पर चर्चा कर सकेंगे।
- पृष्ठवंशियों मे त्वचा के विकास का वर्णन कर सकेंगे।
- अन्तः कंकाल के लाभ बता पाएगे।
- उपास्थि तथा अस्थि के मध्य अन्तर पर चर्चा कर सकेंगे।
- कशेरूकी के प्रारूप कंकाल का वर्णन कर पाएगे।
- मेंढक तथा खरगोश के कंकाल के मध्य अन्तर पर चर्चा कर सकेंगे।
- घोड़े में दौड़ने के लिए, चमगादड़ में उड़ने के लिए, व्हेल में तैरने के लिए तथा मनुष्य में चलने के लिए, कंकाल में रूपांतरण के बारे में बता पाएगे।
- कशेरूकी जीवों में दंत विन्यास का वर्णन कर सकेंगे।
- कार्डेट्स में फीडिंग अनुकूलन (Feeding adaptations) का वर्णन कर सकेंगे।
- स्तनधारियों मे आहारनाल के विकास का पता लगा पाएगे।
- शाकाहारी, माँसाहारी तथा सर्वाहारी जन्तुओं में आहारनाल के संगठन का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे।
- कशेरूक जन्तु की विभिन्न जल एवं वायुवीय श्वसन संरचनाओं का वर्णन कर सकेंगे।
- गैसों के आदान प्रदान की क्रियाविधि की व्याख्या कर सकेंगे।
- मछलियों मे वायु श्वसन के लिए सहायक श्वसन अंगों तथा मेंढक में मुखीय श्वसन का वर्णन कर सकेंगे।
- ग्रसनी, श्वासनली, ब्रोंकाई और वायुकूपिका केंद्र कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

2.2 अध्यावरण का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Account of Integuments)

(अ) अध्यावरण एवं उसकी व्युत्पत्तियाँ (Integument – Its Derivatives)

अध्यावरणी तन्त्र (Integumentary system) के अन्तर्गत **त्वचा** (Skin) एवं **त्वचा से व्युत्पन्न** समस्त संरचनाएँ (Skin derived structures) आती हैं। त्वचा शरीर की सुरक्षा करने के साथ–साथ शरीर के सबसे बड़े, जटिल एवं महत्वपूर्ण अंग का कार्य करती है। अध्यावरण या त्वचा की मूल संरचना सभी कशेरुकी प्राणियों

(Vertebrate animals) में समान रूप से होती है, लेकिन इन कशेरुक प्राणियों के विभिन्न प्राकृतिक वातावरण या आवास (Habitats) में रहने के कारण इन प्राणियों की त्वचा की संरचना में अनेक महत्वपूर्ण रचनात्मक, आकारिकी एवं कार्यात्मक (Structural, Morphological and Physiological) विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। प्राणियों की त्वचा में वातावरण का अत्याधिक प्रभाव पड़ता है, इस कारण त्वचा की संरचना वातावरण के अनुकूल होती है।

अध्यावरण या त्वचा कशेरुक प्राणियों के शरीर का बाहरी आवरण होता है। त्वचा मुख (Mouth), मलाशय (Rectum), नासाछिद्रों (Nostrils), पलकों (Eye lids) एवं मूत्रजनन वाहिनियों (Urinogenital ducts) में निरन्तर रहती है और अस्तर (Lining) को बनाती है। कशेरुक प्राणियों के विकास का सम्बन्ध कशेरुकियों के जलीय (Aquatic) वातावरण से थलीय (Terrestrial) वातावरण में संक्रमण के साथ सम्बन्धित है। कशेरुकों की त्वचा में दो स्तर पाये जाते हैं– **(1) बाह्य स्तर** (Outer layer) या एपिडर्मिस (Epidermis) जो भ्रूणीय एक्टोडर्म (Embryonic ectoderm) से व्युत्पन्न होती है। **(2) आन्तरिक स्तर** (Inner layer) **चर्म** या **डर्मिस** (Dermis) या **कोरियम** (Corium) होती है जो **भ्रूणीय मीसोडर्म** (Embryonic mesoderm) से व्युत्पन्न होती है। दोनों स्तरों की आपेक्षिक मात्रा वातावरण के अनुसार भिन्न होती है।

बाह्य स्तर या **एपिडर्मिस** (Epidermis) **स्तम्भाकार** (Columnar) एपिथीलियल कोशिकाओं की अनेक स्तरों से बनी स्तरित (Stratified) एपिथीलियम से निर्मित होती है। यह स्तम्भाकार कोशिकाएँ सूक्ष्म अन्तराकोशिकीय तन्तुओं (Inter cellular) या सेतुओं (Bridges) के द्वारा आपस में एक–दूसरे से समेकित होती हैं। यह सेतु कोशिकाओं की सतह पर पाये जाते हैं। एपिडर्मिस का सबसे आन्तरिक स्तर **मैल्पीजी स्तर** या **जननिक स्तर** (Stratum malpighii or germinativum) होता है। इस स्तर की कोशिकाओं में निरन्तर विभाजन होकर नई कोशिकाएँ निर्मित होती रहती हैं, जैसे–जैसे कोशिकाएँ ऊपर की ओर जाती हैं वैसे–वैसे चपटी होती जाती हैं। इन कोशिकाओं का **कोशिकाद्रव्य** या सायटोप्लाज्म (Cytoplasm) **श्रृंगीय** (Keratinized) होता जाता है, इस क्रिया को श्रृंगीयकरण/केरेटिनीकरण (Keratinization) कहते हैं। कोशिकाद्रव्य ठोस होने के साथ–साथ केन्द्रक (Nucleus) लुप्त हो जाता है। इस कोशिकीय स्तर को **श्रृंगीय स्तर/स्ट्रेटम कोर्नियम** (Stratum corneum) कहते हैं। इस स्तर की कोशिकाएँ कड़ी, श्रृंगीय, चपटी होती हैं। इन कोशिकाओं का अधिकांश भाग **केरेटिन** (Keratin) का बना होता है। केरेटिन जल अवरोधी (Water proof) अघुलनशील प्रोटीन होती है। सम्पूर्ण एपिडर्मिस एक **आधारीय झिल्ली** (Basement membrane) पर सधी रहती है तथा चर्म/डर्मिस से पृथक् रहती है। स्ट्रेटम कार्नियम/श्रृंगीय स्तर की कोशिकाएँ निरन्तर पृथक् होकर सतह से पृथक् होती रहती हैं और नई कोशिकाएँ इनका स्थान लेती रहती हैं।

बाह्य स्तर या एपिडर्मिस की कोशिकाओं में रक्त वाहिनियों (Blood vessels) का अभाव होता है, इस स्तर की कोशिकाएँ चर्म/डर्मिस के रक्त प्रवाह से पोषण को प्राप्त करती हैं।

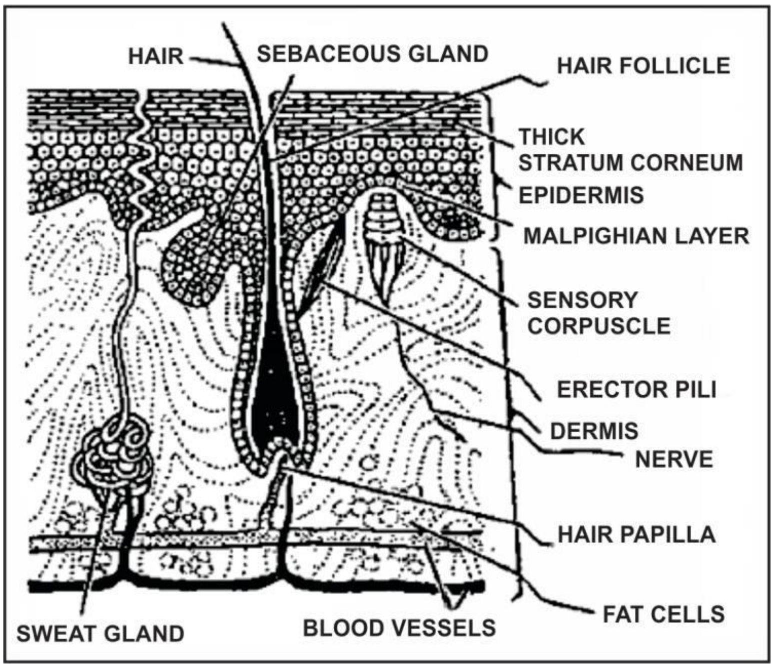

चित्र क्र. 2.1: **Integument : V.S. Skin of Mammal**

2.2.1 चर्म/डर्मिस (Dermis)

यह एपिडर्मिस के नीचे स्थित रहती हैं, यह स्तर सम्पूर्ण शरीर पर एक लचीला, दृढ़ एवं मोटा आवरण बनाता है। चर्म/डर्मिस में संयोजी ऊतक (Connective tissues), अरेखित पेशियों (Unstriped muscles) एवं रक्त कोशिकाओं (Blood capillaries), तन्त्रिकाओं (Nerves) एवं वसा कोशिकाएँ (Fat cells) उपस्थित होते हैं। चर्म/डर्मिस में लसिका वाहिनियाँ (Lymph vessels) एवं अंगुलीकार प्रवर्ध (Finger-like processes) होते हैं जो एपिडर्मिस में निकले रहते हैं, जिनमें रक्त कोशिकाओं के लूप (Loops) एवं तन्त्रिका सहित स्पर्श संवेदी/टेक्टाइल कार्पस्कल्स (Tactile corpuscles) होते हैं। यह स्तर शरीर को आधार देता है और रक्त को बाहरी सतह पर ले जाता है।

2.2.2 त्वचा के कार्य (Functions of Skin)

त्वचा शरीर का एक जटिल अंग है, इसके विभिन्न कार्य निम्नलिखित होते हैं–

1. **रक्षा (Protection)**–

   (i) त्वचा शरीर का एक आवरण बनाती है और सुरक्षा प्रदान करती है। यह बाह्य वस्तुओं को देह के अंदर जाने से और यान्त्रिक आघात से बचाती है।

   (ii) यह शरीर से जल हानि एवं शरीर में हानिकारक जीवाणुओं के प्रवेश को रोकती है।

   (iii) त्वचा से अनेक संरक्षी व्युत्पत्तियाँ (Derivatives)– जैसे शल्क (Scales), अस्थि प्लेटें (Bony scales), वसा की स्तर, पिच्छ/पर

टिप्पणी

(Feathers) एवं रोम (Hairs) उत्पन्न होते हैं, जो शरीर को आघातकारी स्पर्श से रक्षा करते हैं और जल अवरोधकता प्रदान करते हैं।

(iv) त्वचा के वर्णक (Pigments) सूर्य की हानिकारक किरणों को अवशोषित कर शरीर की रक्षा करते हैं।

(v) वर्णक त्वचा में संरक्षी रंग व्यवस्था को बनाते हैं जिससे प्राणी अपने वातावरण के समान दिखाई पड़ता है और शत्रुओं के लिए लगभग अदृश्य हो जाता है।

(vi) त्वचा से एक आवरण बन जाता है जो जल एवं विलेयों को निम्नलिखित में से किसी एक विधी द्वारा बाहर जाने से रोकता है–

(अ) प्रोटोकॉर्डेट्स (Protochordates), मछलियों (Fishes) एवं उभयचरी प्राणियों (Amphibians) में क्यूटिकल (Cuticle) का निर्माण होता है।

(ब) मछलियों एवं जल में रहने वाले उभयचरी प्राणियों में श्लेष्म स्तर (Mucus layer) का स्त्रावण होता है।

(स) चतुष्पादों (Tetrapods) की एपिडर्मिस में किरेटिन (Keratin) की स्तरों का बनना जो एक श्रृंगीय कोशिकीय स्तर के रूप में बाह्य सतह पर पाया जाता है।

2. **स्त्रावण (Secretion)**– त्वचा एक स्त्रावण (Secretory) अंग होती है। त्वचा में अनेक प्रकार की ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं, जिनके स्त्रावण प्राणी के लिए उपयोगी होते हैं–

(i) श्लेष्म ग्रन्थियाँ (Mucus glands)– जो जलीय प्राणियों की त्वचा में होती है, यह श्लेष्म स्त्रावित करती है, जो त्वचा को नम, लसलसा व चिकना बनाये रखता है।

(ii) तैलीय/सैबेशस ग्रन्थियाँ (Sebaceous glands)– यह ग्रन्थियाँ तैलीय पदार्थ का स्त्रावण करती हैं जो त्वचा एवं बालों को चिकना बनाये रखता है।

(iii) दुग्ध ग्रन्थियाँ (Milk/mammary glands)– यह ग्रन्थियाँ स्तनी प्राणियों में पाई जाती हैं, शिशु के पोषण के लिए दूध उत्पन्न करती हैं।

(iv) यूरोपाइजियल ग्रन्थियाँ (Uropygial glands)– यह पक्षियों में पाई जाती हैं जिनसे पिच्छ प्रसाधन (Preening) के लिये तैल स्त्रावित होता है।

(v) विष ग्रन्थियाँ (Poison glands)– इन ग्रन्थियों से विषैला द्रव स्त्रावित होता है जो शत्रुओं से रक्षा करने में सहायक होता है।

3. **गमन में सहायता (Help in locomotion)**– अनेक प्राणियों में त्वचा से व्युत्पन्न अंगों से चलन सम्पन्न होता है–

   (i) मछलियों के पंख (Fins) जल में सहायता करते हैं।

   (ii) मेंढक एवं जलीय पक्षियों के पैरो की त्वचा झिल्ली (Web) तैरने में मदद करती है।

   (iii) पक्षियों के डैनों एवं पूँछ के पिच्छ उड़ने मे सहायता करते हैं।

   (iv) त्वचा के प्रसारों से उड़न छिपकलियों (Flying lizards), विलुप्त टेरोडेक्टायलों (Extinct pterodactyles), उड़न गिलहरियों (Flying squirrels) एवं चमगादड़ों (Bats) के पंख/पटेजियम (Patagium) बनते हैं जो इन प्राणियों को उड़ने में सहायता करते हैं।

   (v) त्वचा से निर्मित चिपकने वाली गद्दियाँ (Adhesive pads) एवं पंजे (Claws) चिकनी एवं खड़ी सीधी सतह पर प्राणियों के चलने व चढ़ने में सहायता करती हैं।

   (vi) कछुओं, व्हेल, डालफिन आदि प्राणियों के उपांग त्वचा के द्वारा संरक्षित होकर पतवार का रूप लेते हैं जो इन प्राणियों को जाल में तैरने में सहायता करते हैं।

4. **ताप नियन्त्रण (Temperature regulation/control)**– प्राणियों के शरीर में ऊतकों के ऑक्सीकरण से निरन्तर गर्मी उत्पन्न होती रहती है। रक्त परिसंचरण द्वारा यह गर्मी सब तरफ समान रूप से फैला दी जाती है। गर्मी छोड़ी जाने वाली श्वास के द्वारा बाहर निकलती है, इसी प्रकार मल एवं मूत्र से भी गर्मी बाहर की ओर निकलती है। अन्तःतापी (Endothermal) प्राणियों में त्वचा के द्वारा गर्मी का नियमन किया जाता है–

   (i) **पक्षियों के पिच्छ (Feathers)** ऊष्मारोधी (Heat proof) होते हैं। इन पक्षियों में गर्मी का नियमन पिच्छों की व्यवस्था को अदल–बदल कर किया जाता है। यह पिच्छ (Feathers) अपने अंदर गर्म वायु–आवरण को समेटे रहते हैं, जब पिच्छ, शरीर से अधिक पास या सट जाते हैं तब वह गर्म हवा को निकाल देते हैं, इस कारण शरीर ठण्डा हो जाता है, जब शरीर पर पिच्छ फूल जाते हैं तब वह गर्म वायु को समेटे रहते हैं, इस कारण शरीर गर्म रहता है।

   (ii) स्तनी प्राणियों में त्वचा से पसीना निरन्तर वाष्पित (Vaporise) होते रहने से गर्मी का नियमन होता रहता है। सर्दी या ठण्ड के मौसम में त्वचा एवं उसकी रक्त केशिकाएँ (Blood capillaries) संकुचित होकर शरीर की गर्मी के न्हास को रोकती हैं।

   (iii) कुछ प्राणियों में त्वचा की वसा गर्मी को निकलने से रोकती है, क्योंकि वसा गर्मी की कुचालक है।

5. **खाद्य संग्रह (Food storage)**– त्वचा के सबसे निचले स्तर **उप–त्वचीय ऊतक** (Sub-cutaneous tissues) वसा को संगृहित खाद्य (Reserve food) के रूप में जमा करके रखती है। यह वसा आवश्यकता के समय पोषण

टिप्पणी

के रूप में काम आती है। यह वसा शीत–निष्क्रियता (Hibernation), प्रवास (Migration) एवं मौसमी अकाल (Seasonal draught/famine) के समय पोषण के रूप में उपयोग होती है।

व्हेल (Whale) स्तनी, डालफिन (Dolfin), सीलों (Seal) में त्वचा की वसा एक मोटे स्तर का रूप ले लेती है, इसको **तिमिवसा/ब्लबर** (Blubber) कहते हैं, यह वसा न केवल संगृहीत खाद्य/पोषण पदार्थ है बल्कि शरीर के ताप को भी नियन्त्रित करती है।

6. **श्वसन (Respiration)**– उभयचर प्राणियों (Amphibians) में त्वचा नम एवं लसलसी होती है। नम एवं लसलसी त्वचा श्वसन – अंग का कार्य करती है। इन प्राणियों में त्वचा का श्वसन कार्य, फेफड़ों, के श्वसन कार्य से अधिक होता है।

7. **उत्सर्जन एवं समस्थिती (Excretion and Homeostasis)**–

   (i) त्वचा के द्वारा व्यर्थ पदार्थ शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं। **श्रृंगीयकरण/केरेटीनाइजेशन** (Keratinization) के कारण निर्मित कार्नियम स्तर (Corneam layer) निरन्तर गिरती रहती है। पसीने के साथ लगभग 2-3% कार्बन डाइऑक्साइड शरीर से बाहर निकाल दी जाती है।

   (ii) **निर्मोचन/त्वकमोचन (Ecdysis)** के समय शरीर की त्वचा के श्रृंगीय स्तर (Stratum corneum) के उतार फेंकने से कुछ अवशिष्ट पदार्थ भी निकल जाते हैं।

   (iii) **स्तनी** प्राणियों में पसीने के द्वारा रक्त में से चयापचयी अपशिष्ट पदार्थ (Metabolic waste products) बाहर निकल जाते हैं। कुछ उत्सर्जी पदार्थ – यूरिया (Urea), अमोनिया (Ammonia) एवं लवण (Salts) आदि का उत्सर्जन त्वचा से पसीने के रूप में होता है, जो वास्तविक रूप में रासायनिक दृष्टि से पतला मूत्र समान होता है। इस प्रकार त्वचा, वृक्कों (Kidneys) के समान शरीर के आन्तरिक वातावरण को एक समान बनाये रखने में सहायक होती है, अर्थात् शरीर में समस्थिती बनाये रखने में सहायता करती है।

8. **संवेदी अंग (Sense organs)**– त्वचा एक महत्वपूर्ण संवेदी अंग है, क्योंकि इसमें विशेष प्रकार की स्पर्श संवेदी कोशिकाएँ एवं कणिकाएँ होती हैं जो स्पर्श (Touch), ताप परिवर्तनों, गर्मी (Heat), ठण्ड (Cold) दाब (Pressure) एवं पीड़ा (Pain) के लिए संवेदी होती हैं, यह कोशिकाएँ एवं कणिकाएँ त्वचा में एपिडर्मिस के नीचें चर्म/डर्मिस में स्थित होती हैं जिनमें तन्त्रिका तन्तु पाये जाते हैं, जिनके द्वारा निर्मित संवेदी केन्द्र उद्दीपनों को ग्रहण करते हैं।

9. **एन्जाइम का बनना (Formation of Enzyme)**– मछलियों एवं मेंढक के टेडपोल लार्वा की त्वचा की कोशिकाओं से एक प्रकार के एन्जाइम निकलते हैं, जिससे इनके चारों ओर की उपस्थित झिल्ली फटकर पृथक् हो जाती है

और यह बाहर निकलकर स्वतन्त्र हो जाते हैं, इन एन्जाइम्स को **हैचिंग एन्जाइम** (Hatching Enzyme) कहते हैं।

10. **लैंगिक वरण (Sexual selection)**– त्वचा एवं इससे व्युत्पन्न हुई अनेक रचनाएँ मनुष्य में नर एवं मादा में एक प्रकार का आकर्षण बनाये रखती हैं–
    - (i) त्वचा पक्षियों के पिच्छ/पर बनाती है जो प्रायः चटकीले रंगों के होते हैं, यह चटकीले रंग आकर्षण के लिए होते हैं।
    - (ii) स्तनी प्राणियों की त्वचीय–ग्रन्थियों (Cutaneous glands) से एक प्रकार की गन्ध निकलती है जिससे नर एवं मादा में परस्पर आकर्षण होता है।
    - (iii) त्वचा की मूलाधार ग्रन्थियाँ (Perineal glands) भी एक प्रकार की गन्ध स्त्रावित करती हैं जो नर एवं मादा में आकर्षण उत्पन्न करती हैं।
    - (iv) त्वचा पर वर्णकों के वितरण एवं गन्ध ग्रन्थियों द्वारा स्त्रावित हॉर्मोन/फेरोमोन आदि पदार्थों से अनेक प्राणियों में प्रजनन हेतु लैगिंक आकर्षण होता है।
11. **त्वचीय कंकाल (Cutaneous skeleton)**– त्वचा कंकाल बनाने में योगदान देती है। त्वचा की चर्म/डर्मिस के संयोजी ऊतकों (Connective tissues) से **कलाजात/मैम्ब्रेनस अस्थियाँ** (Membranous bones) बनती हैं। कंकाल की दृढ़ता इन्ही कलाजात अस्थियों के कारण होती है।
12. **अन्य कार्य (Other functions)**– (i) त्वचा के द्वारा सूर्य के प्रकाश से विटामिन 'डी' (Vitamin 'D') प्राप्त होता है। त्वचा में स्थित तैलीय ग्रन्थियों (Sebaceous glands) में निर्मित सीबम तेल (Sebum oil) में ईस्टर्स (Esters) होते हैं जो सूर्य के प्रकाश की पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet rays) के प्रभाव के कारण विटामिन 'डी' में परिवर्तित होकर रक्त में पहुँचते हैं–
    - (i) त्वचा प्रकाश की किरणों, तैलीय एवं अन्य मरहम आदि पदार्थों का अवशोषण करती है।
    - (iii) चतुष्पादी (Tetrapods) प्राणियों में स्थित नासिका ग्रन्थियाँ (Nasal glands) नासिका छिद्रों की धूल एवं पानी से रक्षा करती हैं।
    - (iv) त्वचा लचीली होती है, इस कारण यह दबाव पड़ने पर फटती नहीं है।
    - (v) त्वचा शरीर की आकृति को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।
    - (vi) कान में स्थित कर्ण गुहिका/आडिटरी मीटस (Auditory meatus) की ग्रन्थियाँ, कर्ण मोम (Ear wax) को स्त्रावित करती हैं जो कान

के पर्दे को चिकना एवं कर्ण गुहिका में प्रवेश करने वाले कीटों को जकड़ने/पकड़ने का कार्य करता है।

टिप्पणी

2.2.3 त्वचा की व्युत्पत्तियाँ (Derivatives of Skin)

कशेरुक (Vertebrates) जलीय, स्थलीय एवं उड्डयन (Flight) अनुकूलन के प्राणी होते हैं, इस कारण इन विभिन्न आवासीय प्राणियों की त्वचा में असमानता का होना स्वाभाविक है। वातावरण का सर्वाधिक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव त्वचा पर होता है, इस कारण विभिन्न प्रकार के वातावरण में निवास करने वाले प्राणियों की त्वचा में वातावरण के अनुसार संरचनाएँ पाई जाती हैं जो कशेरुक प्राणियों में त्वचीय अनुकूलन (Cutaneous adaptation) को प्रदर्शित करती है, इन संरचनाओं को त्वचा की व्युत्पत्तियाँ (Derivatives) कहते हैं। त्वचा की दोनों स्तरों से विभिन्न प्रकार की व्युत्पत्तियाँ बनती हैं। एपिडर्मिस/बाह्य स्तर से – **त्वचीय ग्रन्थियाँ** (Cutaneous glands), **एपिडर्मल शल्क** (Epidermal scales), **सींग** (Horns), **नखर** (Claws), **नाखून** (Nails), **पिच्छ/पर्र** (Feathers) एवं **रोम/बाल** (Hairs) आदि। चर्म एवं डर्मिस से मछलियों और कुछ सरीसृपों के **चर्मी शल्क** (Dermal scales) आदि होते हैं।

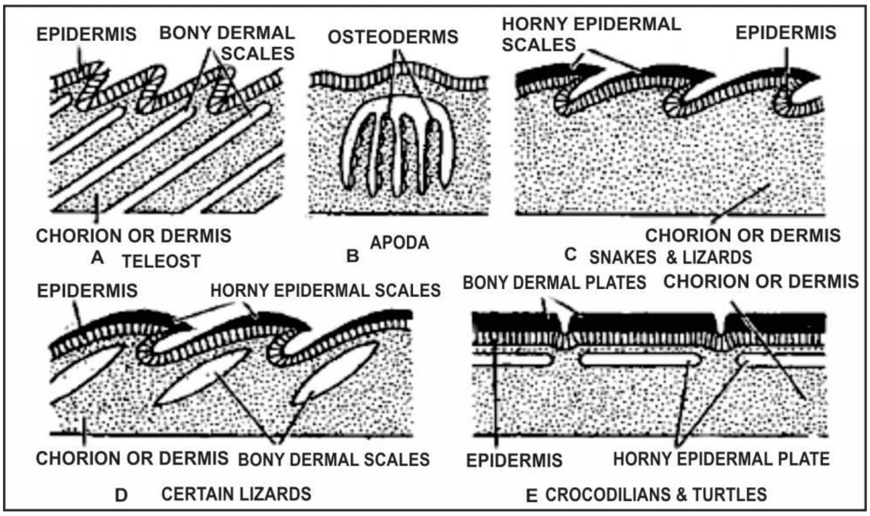

चित्र क्र. 2.2: Integument : V.S. Skin of Vertebrates Showing Inter Relationship of Various Types of Scales

2.2.4 एपिडर्मिस की व्युत्पत्तियाँ (Epidermal Derivatives)

त्वचा की बाह्य स्तर एपिडर्मिस की कोशिकाओं से निम्न दो प्रकार की व्युत्पत्तियाँ (Derivatives) निर्मित होती हैं–

A. कोमल एपिडर्मल व्युत्पत्तियाँ (Soft Epidermal Derivatives)

B. कठोर एपिडर्मल व्युत्पत्तियाँ (Hard Epidermal Derivatives)

A. कोमल एपिडर्मल व्युत्पत्तियाँ (Soft Epidermal Derivatives)– इसके अन्तर्गत **त्वचीय ग्रन्थियाँ** (Cutaneous glands) आती हैं। यह

ग्रन्थियाँ एपिडर्मिस की **स्ट्रेटम मैल्पीजी** (Stratum malpighii) से निर्मित होती हैं। संरचना की दृष्टि से यह ग्रन्थियाँ एककोशिकीय (Unicellular) एवं बहुकोशिकीय ग्रन्थियाँ (Multicellular glands) होती हैं–

1. एककोशिकीय ग्रन्थियाँ (Unicellular glands)– यह ग्रन्थियाँ एकाकी रूपान्तरित कोशिकाएँ होती हैं जो अन्य एपीथिलियल कोशिकाओं (Epithelial cells) के बीच–बीच में होती हैं। यह ग्रन्थियाँ ऐम्फिऑक्सस (Amphioxus), साइक्लोस्टोम्स (Cyclostomes), मछलियों (Fishes) एवं उभयचरी (Amphibians) प्राणियों के लार्वा की त्वचा में पाई जाती हैं। एककोशिकीय ग्रन्थियाँ हैं–

श्लेष्म ग्रन्थियाँ (Mucous glands)– इनको **चषक कोशिकाएँ** (Goblet cells) भी कहते हैं। इन ग्रन्थियों के द्वारा **प्रोटीन** नामक म्युसिन (Mucin) पदार्थ को स्त्रावित किया जाता है। यह पदार्थ पानी के साथ मिलकर श्लेष्म (Mucus) को बनाता है।

इस ग्रन्थि का प्रमुख कार्य त्वचा को नम एवं चिकना बनाये रखना होता है, यह श्लेष्म प्राणियों में त्वचीय श्वसन (Cutaneous respiration) के साथ–साथ शत्रुओं की पकड़ से बचाव करने में सहायता करता है। जीवाणु (Bacteria) एवं फफूंद (Fungus) से भी सुरक्षा प्रदान करती है।

एककोशिकीय अन्य ग्रन्थियाँ हैं– कणिकीय कोशिकाएँ (Granular cells) एवं **बीकर कोशिकाएँ** (Beaker cells) होती हैं जो साइक्लोस्टोम एवं मछलियों की त्वचा में पाई जाती हैं और श्लेष्म (Mucous) को स्त्रावित करती हैं।

2. बहुकोशिकीय ग्रन्थियाँ (Multicellular glands)– यह ग्रन्थियाँ अनेक कोशिकाओं के द्वारा बनी होती हैं। बहुकोशिकीय ग्रन्थियाँ संरचना के अनुसार नलाकार, कोष्ठिक एवं शाखान्वित होती हैं। यह ग्रन्थियाँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं जो कशेरुक प्राणियों की त्वचा की एपिडर्पिस की कोशिकाओं के रूपान्तरण से बनती हैं और चर्म/डर्मिस में अन्तः वृध्दि (Invagination) के रूप में स्थित होती हैं–

(अ) नलाकार ग्रन्थियाँ (Tubular glands)– यह ग्रन्थियाँ नलिका के समान होती हैं जिनके दूरस्थ सिरे पर कोई पुटिका (Follicle) या गोल प्रसारण नहीं होता है। यह ग्रन्थियाँ तीन प्रकार की होती हैं–

(i) सामान्य नलाकार ग्रन्थियाँ (Simple tubular glands)

(ii) सामान्य नलाकार कुण्डलित ग्रन्थियाँ (Simple tubular coiled glands)

(iii) संयुक्त नलाकार ग्रन्थियाँ (Compound tubular glands)

(i) सामान्य नलाकार ग्रन्थियाँ (Simple tubular glands)– यह ग्रन्थियाँ बंद नलियों के समान छोटी–छोटी होती हैं, आंशिक रूप से चर्म/डर्मिस में रहती हैं और एपिडर्मिस में फैली रहती हैं। ये निम्नलिखित प्रकार की हैं–

टिप्पणी

(a) **मोल ग्रन्थियाँ (Moll glands)**– यह ग्रन्थियाँ नेत्र की पलकों के बालों (Eye lashes) के सम्पर्क में होती हैं। यह ग्रन्थियाँ स्वेद ग्रन्थियों के रूपान्तरण से बनती हैं।

(ii) **सामान्य नलाकार कुण्डलित ग्रन्थियाँ (Simple tubular coiled glands)**– इस प्रकार की ग्रन्थियों में लम्बा, पतला नलाकार भाग होता है तथा ग्रन्थि का दूरस्थ भाग कुण्डलित होकर चर्म/डर्मिस में रहता है। यह निम्नलिखित होती हैं–

(a) **सेरुमिनस ग्रन्थि (Ceruminous gland)**– यह ग्रन्थि रूपान्तरित स्वेद ग्रन्थि (Sweat gland) होती है। यह ग्रन्थि लम्बी, कुण्डलित एवं नलाकार होती है, इसका अधिकांश दूरस्थ भाग चर्म/डर्मिस के अंदर रहता है। यह ग्रन्थियाँ एक छिद्र के द्वारा त्वचा की बाहरी सतह पर खुलती हैं। यह ग्रन्थि कान की बाहय कर्ण गुहिका (External auditory meatus) के भाग में पाई जाती है। इस ग्रन्थि का स्त्रावण मोम के समान होता है, जिसको **कान का मोम** (Ear wax) कहते हैं, जो कान की धूल से रक्षा करता है।

मुर्गे (Fowl) वर्ग के पक्षियों में ग्रन्थियाँ बाह्य कान में कर्ण गूथ ग्रन्थियाँ बना लेती हैं।

(b) **स्वेद ग्रन्थियाँ (Sweat glands)**– यह ग्रन्थि लम्बी, कुण्डलित नलाकार ग्रन्थियाँ होती हैं। इन ग्रन्थियों का ऊपरी भाग एक वाहिनी (Duct) के रूप में होता है जो त्वचा की सतह पर एक छिद्र के द्वारा खुलता है। ग्रन्थि का दूरस्थ कुण्डलित भाग चर्म/डर्मिस में रहता है तथा इसके चारों ओर रक्त वाहिनियों (Blood vessels) का जाल पाया जाता है। स्वेद ग्रन्थियों से पानी समान पसीना स्त्रावित होता रहता हैं, जिसमें अधिकांश रूप से पानी होता है तथा सोडियम (Sodium), पोटैशियम (Potassium) एवं यूरिया लवण होते हैं। यह पसीना शरीर से कुछ चयापचयी व्यर्थ पदार्थों को बाहर निकाल देता है। वाष्पन के द्वारा शरीर में ताप नियमन का कार्य भी होता है।

यह ग्रन्थियाँ शरीर में समान रूप से वितरित नहीं होती हैं। मनुष्य की हथेलियों, तलवों (Sole) व बगलों (Armpits) में अत्याधिक होती हैं। बिल्लियों (Cats) एवं चुहों (Rats) में यह ग्रन्थियाँ केवल पैर के तलवों में पाई जाती हैं। दरयाई घोड़े में पसीना केवल कर्ण पल्लवों (Ear pinna) पर स्थित ग्रन्थियों से स्त्रावित होता है जो लाल रंग का होता है। यह लाल रंग का पसीना दरयाई घोड़े (Hippopotamus) में सिर एवं पीठ पर फैल जाता है। नर बृहद् कंगारू **मैक्रोपस रूफस** (Macropus rufus) में भी लाल पसीना निकलता है।

रोमन्थकों (Ruminants) एवं खरगोश में स्वेद ग्रन्थियाँ थूथन पर एवं अंगुलियों के बीच में पाई जाती हैं। समुद्री स्तनी प्राणियों–साइरेनिया (Sirenia) एवं सिटैशिया (Cetacea) प्राणियों में स्वेद ग्रन्थियाँ अनुपस्थित होती हैं।

(iii) संयुक्त नलाकार ग्रन्थियाँ (Compound tubular glands)– यह ग्रन्थियाँ शाखित (Branched) नलाकार होती हैं। **उदाहरण– मोनोट्रीम्स** (Monotreams) में स्तन ग्रन्थियाँ (Mammary glands) एवं जठर ग्रन्थियाँ (Gastric glands)–

(a) स्तन ग्रन्थियाँ (Mammary glands)– मोनोट्रीम्स (Monotreams) स्तनी प्राणियों मे नर एवं मादा दोनों में यह ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं और दूध स्त्रावित करती हैं। यह ग्रन्थियाँ सीधे त्वचा की बाहरी सतह पर खुलती हैं। शिशु, बाल के गुच्छों को चाटकर (Licking) दूध को ग्रहण करते हैं। इन ग्रन्थियों में चूचुक (Nipples) नहीं पाये जाते हैं। जब नर में क्रियाशील ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं तब उसे **पुस्तन वृध्दि** या **गाइनेकोमेस्टिया** (Gynecomastia) कहते हैं।

(b) जठर ग्रन्थियाँ (Gastric glands)– अमाशय की स्त्रावी ग्रन्थियाँ जठर ग्रन्थियाँ कहलाती है। यह सामान्य रूप से श्लेष्म, अम्ल एवं एन्जाइम्स को स्त्रावित करती हैं। प्राणियों में यह तीन प्रकार की होती हैं। जठरागमी (Cardiac), फंडिक (Fundic) एवं जठरनिर्गमी (Pyloric) ग्रन्थियाँ। जठरागमी/कार्डियक एवं जठरनिर्गमी/पायलोरिक ग्रन्थियाँ श्लेष्म का स्त्राव करती है। फंडिक भाग में श्लेष्म स्त्रावी कोशिकाओं के अतिरिक्त HCl अम्ल स्त्रावित करने वाली अम्लजन/ओक्सिन्टिक (Oxyntic) कोशिकाएँ एवं पेप्सिन (Pepsin) को स्त्रावित करने वाली जाइमोजन (Zymogen) या पेप्टिक (Peptic) कोशिकाएँ पाई जाती हैं। पेप्टिक कोशिकाएँ केवल जठर लाइपेज (Gastric lipase) एवं प्रोपेप्सिन एवं प्रोरेनिन (Prorenin) नामक एन्जाइम्स का स्त्रावण करती हैं। यह HCl के द्वारा सक्रिय रूप में परिवर्तित होते हैं। पक्षियों (Birds) में जठर रस केवल प्रोवेन्ट्रिकुलस/पुरोजठर (Proventriculus) में पाई जाने वाली ग्रन्थियों के द्वारा स्त्रावित किया जाता है। जठर ग्रन्थियाँ आमाशय की म्यूकोसा (Mucosa) में धँसकर सरल या विशाखित नलाकार ग्रन्थियों के रूप में होती हैं। सरीसृप प्राणियों के आमाशय में विशाखित जठर ग्रन्थियों के गर्त होते हैं।

(ब) कोष्ठिक या पुटाकार ग्रन्थियाँ (Alveolar or Saccular glands)– यह ग्रन्थियाँ बहुकोशिकीय (Multicellular) होती हैं। यह ग्रन्थियाँ चर्म/डर्मिस में अधःवृध्दियाँ होती हैं। इनमें एक नलाकार वाहिनी (Tubular duct) होती

टिप्पणी

है, इनका अन्तिम भाग एक गोल प्रसारण के रूप में होकर फ्लास्क (Flask) की आकृति ले लेता है। यह ग्रन्थियाँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं–

(i) सामान्य कोष्ठक ग्रन्थियाँ (Simple alveolar glands)

(ii) सामान्य शाखित कोष्ठक ग्रन्थियाँ (Simple branched alveolar glands)

(iii) संयुक्त कोष्ठक ग्रन्थियाँ (Compound alveolar glands)

(i) सामान्य कोष्ठक ग्रन्थियाँ (Simple alveolar glands)– इस प्रकार की ग्रन्थियों में नलिका के दूरस्थ भाग पर एक (Alveolii) कोष्ठक होता है। **उदाहरण**– उभयचरी प्राणियों में विष, श्लेष्म एवं उरू/फीमोरल (Femoral) ग्रन्थियाँ–

(a) विष ग्रन्थियाँ (Poison glands)– यह ग्रन्थियाँ कुछ मछलियों (fishes) एवं उभयचरी प्राणियों (Amphibians) में शरीर की सम्पूर्ण सतह पर पायी जाती हैं। यह आकार में बड़ी होती हैं, संख्या में कम होती हैं। भेक मेंढकों (Toad) में विष ग्रन्थियाँ आपस में मिलकर सिर के पीछे स्थित पैरोटिड ग्रन्थियाँ (Parotid glands) बनाती हैं। विष ग्रन्थियों के स्त्राव से जलन उत्पन्न होती है तथा यह सुरक्षा का कार्य करती हैं। सिसीलियन (Caecilians) प्राणियों में ग्रन्थियाँ **महाविष ग्रन्थियों** के रूप में होती हैं।

(b) श्लेष्म ग्रन्थियाँ (Mucus glands)– यह बहुकोशिकीय कोष्ठक (Alveolar) ग्रन्थियाँ होती हैं। यह ग्रन्थियाँ मछलियों एवं उभयचरी प्राणियों (Amphibians) के सम्पूर्ण शरीर पर पाई जाती हैं तथा त्वचा को चिकना एवं नम बनाए रखने के लिए श्लेष्म (Mucus) स्त्रावित करती हैं। उभयचरी प्राणियों में यह त्वचा को नम बनाये रखती हैं और श्वसन में सहायता करती हैं।

(c) उरू ग्रन्थियाँ/फीमोरल ग्रन्थियाँ (Femoral glands)– यह ग्रन्थियाँ सरीसृप (Reptiles) में पाई जाती हैं। नर (Male lizards) छिपकलियों की जाँघों (Thigh) की नीचे की सतह पर घुटनों (Knee) से अवस्कर (Cloaca) तक एक पंक्ति में स्थित होती हैं, इन ग्रन्थियों से चिपचिपा पदार्थ स्त्रावित होता है जो सूखकर, कठोर होकर छोटे–छोटे शूल का रूप ले लेता है। यह शूल मैथुन के समय मादा को पकड़ने में सहायता करते हैं। कुछ समुद्री कछुओं में पाई जाने वाली उरु ग्रन्थि का स्त्राव लिंगी आकर्षण के उपयोग में आता है।

(ii) सामान्य शाखित कोष्ठक ग्रन्थियाँ (Simple branched alveolar glands)– ग्रन्थियों के नलाकार भाग के दूरस्थ सिरे पर अनेक कोष्ठक (Alveolii) या गोल प्रसारण (Sacculus) पाये जाते हैं।

उदाहरण– तैलीय, मीबोमियन, जीस (Zeiss), गन्ध तथा यूरोपायजियल ग्रन्थियाँ–

(a) **तैलीय ग्रन्थियाँ (Sebaceous glands)** – यह त्वचा के अधिकांश भाग में पाई जाती हैं। यह ग्रन्थियाँ हथेलियों एवं तलवों में अनुपस्थित होती हैं। यह ग्रन्थियाँ बालों से सम्बन्ध बनाये हुए **रोम–पुटक** (Hair follicle) में पाये जाने वाली कोष्ठिक (Alveolar) ग्रन्थियाँ होती हैं। नाक, होठों के किनारों, जनन अंगों के आस–पास एवं स्तन पैपिला पर नलिकाएँ किसी रोम–पुटक (Hair follicle) से सम्बन्धित नहीं होती हैं, लेकिन स्वतन्त्र रूप से खुलती हैं। इन ग्रन्थियों से एक तेल समान द्रव निकलता है जो बालों को चिकना बनाये रखता है और त्वचा के ऊपर भी एक महीन स्तर बनाता है।

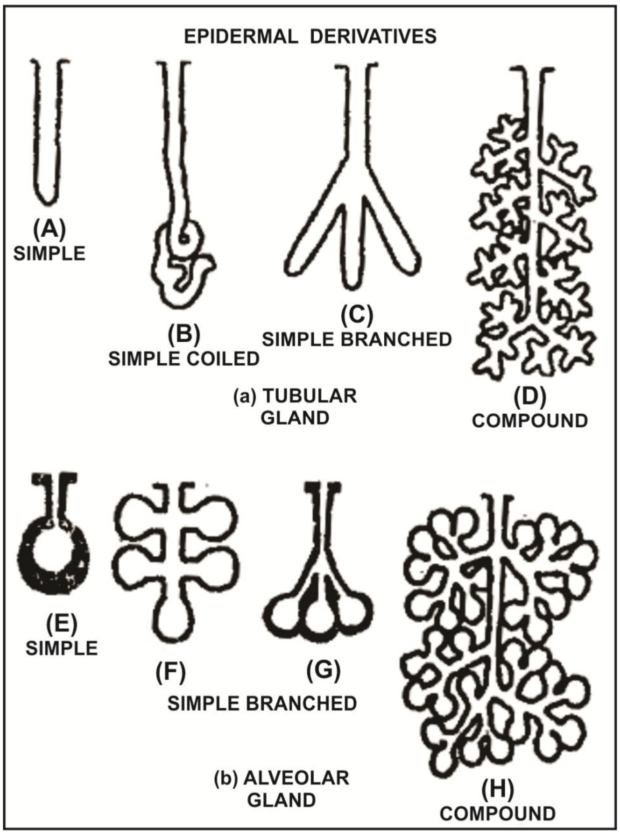

चित्र क्र. 2.3: **Integument : Epidermal Glands**

इन ग्रन्थियों के चिकनाईदार स्त्राव में विभिन्न प्रकार के मोम (Wax), वसीय अम्ल (Fatty acids) एवं कोलेस्ट्राल (Cholesterol) पाये जाते हैं। इस चिकने स्त्राव के कारण त्वचा मुड़ सकने योग्य रहती है। यह ग्रन्थियाँ **मैनिस** (Manis), **साइरीनियन** (Sirenians), एवं **सिटेशियन** (Cetaceans) प्राणियों में अनुपस्थित होती हैं।

(b) **मीबोमियन ग्रन्थियाँ (Meibomian glands)**– यह ग्रन्थियाँ मनुष्यों की पलकों (Eye lids) में पाई जाती हैं। प्रत्येक ग्रन्थि में एक लम्बी सीधी वहिनी होती है, जिसमें पृथक् कोष्ठिकाएँ खुलती हैं। इन ग्रन्थियों के द्वारा एक तैलीय स्त्राव निकलता है जो अश्रु द्रव (Tears) के ऊपर एक महीन स्तर को बनाता है। इस द्रव से नेत्र में नमी बनी रहती है। रोते समय यह तैलीय स्तर टूट जाता है और अश्रु नेत्र से बाहर निकलते हैं।

(c) **जीस की ग्रन्थियाँ (Zeiss glands)**– यह सिबेशियस ग्रन्थियों की परिवर्तित ग्रन्थियाँ होती हैं। यह ग्रन्थियाँ बरौनियों (Eye lashes) के रोम–पुटकों (Hair follicles) में खुलती हैं।

(d) **गन्ध ग्रन्थियाँ (Scent glands)**– इन ग्रन्थियों में एक ऐसी संरचना पाई जाती है जिससे पता चलता है कि यह ग्रन्थियाँ या तो रूपान्तरिक स्वेद ग्रन्थियाँ (Sweat glands) या रूपान्तरित तैलीय/सिबेशियस (Sebaceous) ग्रन्थियाँ होती हैं। इन ग्रन्थियों के द्वारा स्त्रावित गन्ध विपरीत लिंगी को एक–दूसरे की ओर आकर्षित करता है। हिरनो (Deers) के कुल में यह ग्रन्थियाँ सिर पर आँखों के पास होती हैं। **सुअरों** में खुरों (Hoofs) के मध्य, अनेक मांसाहारी (Carnivore) प्राणियों में गुदा (Anus) के पास, **कुत्तों** (Dogs) में दुम के आधार पर तथा **चमगादड़ों** (Bats) में चेहरे पर, **बकरियों** में पैरों की अंगुलियों के बीच होती हैं।

(e) **यूरोपायजियल ग्रन्थियाँ (Uropygial glands)**– यह ग्रन्थियाँ पक्षियों में पाई जाती हैं। यह ग्रन्थियाँ जलीय पक्षियों (Aquatic birds) में अत्याधिक विकसित होती हैं। यह ग्रन्थियाँ विशाखित कोष्ठक ग्रन्थियाँ (Branched alveolar glands) होती हैं तथा पूँछ (Tail) या यूरोपायजियम की पृष्ठीय दिशा में स्थित होती हैं। इसमें तेल समान तरल पदार्थ स्त्रावित होता है जो लैंगिक क्रिया के समय गन्धवाही होता है, इस तैलीय स्त्रावण को पंखों/पिच्छों (Feathers) के प्रसाधन (Preening) तथा उनको जल अवरोधी बनाने के काम आता है।

(iii) **संयुक्त कोष्ठक ग्रन्थियाँ (Compound alveolar glands)**– यह ग्रन्थियाँ शाखित कोष्ठीय होती हैं, विशाखित होकर अनेक लघु पालियाँ (Lobules) बनाती हैं तब इन ग्रन्थियों को संयुक्त कोष्ठक ग्रन्थियाँ कहते हैं। **उदाहरण**– यूथेरियन (Eutherian) स्तनी प्राणियों में लार ग्रन्थियाँ एवं स्तन ग्रन्थियाँ (Mammary glands)–

(a) **स्तन ग्रन्थियाँ (Mammary glands)**– यूथेरियन (Eutherian) स्तनी प्राणियों में यह ग्रन्थियाँ संयुक्त कोष्ठक प्रकार की होती हैं। इन ग्रन्थियों की वाहिनियाँ एक चूचुक (Nipples) या थन (Teat) पर खुलती हैं। चूचुक छाती की एक उभरी हुई बहिवृध्दि होती है, जबकि थन (Teat) एक लम्बा कुण्ड/सिस्टर्न (Cistern)

होता है जिसमें स्तन ग्रन्थियाँ अपनी वाहिनियों द्वारा खुलती हैं। कुण्ड में से एक नलिका निकलती है। जो थन (Teats) की सतह पर खुलती है। स्तन ग्रन्थियों और उनके साथ में वसा (Fat) मिलकर त्वचा के उत्फूलन के रूप में हो जाते हैं जिनको **स्तन या छाती** कहते हैं। स्तनों की संख्या पृथक्–पृथक् स्तनी प्राणियों में पृथक्–पृथक् होती है जो 2 से लेकर ओपोसम (Opossum) में 25 तक होती है। स्तन मनुष्य के शरीर में बगलों (Armpit) से लेकर जाँघों के प्रारम्भ होने वाले भाग तक हो सकते हैं। यह दो अधर दूध रेखाओं (Ventral milk line) में होते हैं या फिर वक्षीय (Thoracic), कक्षीय (Axillary), उदरीय (Abdominal) या वक्षणीय (Inguinal) क्षेत्रों में पाये जा सकते हैं।

(b) लार ग्रन्थिया (Salivary glands)– अधिकांश कशेरुक प्राणियों की मुख गुहिका में चार जोड़ी लार ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। यह ग्रन्थियाँ है – **इन्फ्राऑर्बिटल** (Infraorbital), **पैरोटिड** (Parotid), **सबलिन्ग्युल** (Sublingual) एव **सबमैक्सिलरी** ग्रन्थियाँ (Submaxillary glands)। मनुष्य में केवल तीन जोड़ी लार ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं, इन्फ्राआर्बिटल ग्रन्थि अनुपस्थित होती है।

लार ग्रन्थियों में या तो श्लेष्म कोशिकाएँ (Mucus cells) या लसीजनक कोशिकाएँ (Serous cells) पाई जाती हैं। श्लेष्म कोशिकाओं में पारभासी बड़े कण पाये जाते हैं, कोशिकाएँ पीली या पारभासी (Translucent) दिखाई देती हैं। लसीजनक कोशिकाएँ अपारदर्शी (Opaque) छोटे जायमोजेन कणों के रूप में होती हैं। जिससे लार (Saliva) स्त्रावित होती है। लार (Saliva) एक रंगहिन, दुग्धोपलाम (Opalescent) चिपचिपा (Viscous), धूसर (Cloudy) द्रव्य होता है। यह कार्बोहाइड्रेट के पाचन का कार्य करता है। विषैले सर्पों में विष का कार्य करता है। इसमें 98.5-99% पानी एवं 1-1.5% घने अवशेष पदार्थ होते हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थियों के अतिरिक्त, गहरे समुद्र में या पानी की अधिक गहराई में पाई जाने वाली मछलियों में जो प्रकाश न पहुँचने वाले क्षेत्रों में रहती हैं **फोटोफोर्स** (Photophores) या **संदीप्ति अंग** (Luminescent) के रूप में शरीर की अधर दिशा के पास लम्बी पंक्तियों में पाये जाते हैं। इनकी ग्रन्थिल कोशिकाएँ फोस्फोरेसेन्ट प्रकाश (Phosporescent light) उत्पन्न करती हैं, जो इनके शिकार को आकर्षित करता है।

B. कठोर एपिडर्मल व्युत्पत्तियाँ (Hard Epidermal Derivatives)– कशेरुक प्राणियों में कठोर व्युत्पत्तियाँ एपिडर्मिस की श्रृंगी स्तर/स्ट्रेटम कार्नियम (Stratum corneum) स्तर से उत्पन्न होती हैं। यह कठोर व्युत्पत्तियाँ विभिन्न समूह के कशेरुक प्राणियों में पाई जाने वाली निम्नलिखित संरचनाएँ हैं–

1. एपिडर्मल शल्क (Epidermal scales),
2. सींग (Horn),
3. नाखून (Nails), नखर (Claws), खुर (Hoofs) आदि
4. पिच्छ/पर (Feathers) एवं चोंच (Beak),
5. बाल/रोम (Hairs)

1. एपिडर्मल शल्क (Epidermal Scales)– अनेक कशेरुक प्राणियों में **शल्कों** (Scales) का सुरक्षात्मक आवरण पाया जाता है। यह शल्क एपिडर्मिस की **जननिक स्तर** (Stratum germinativum) या मैल्पिजी स्तर (Stratum malpighii) की कोशिकाओं से निर्मित होते हैं, जो सामान्य रूप से निर्मोचित (Moulting) एवं पुनः निर्मित होते रहते हैं।

एपिडर्मल शल्क (Epidermal scales) सरीसृप वर्ग (Class Reptilia) के प्राणियों में मुख्य रूप से पाये जाते हैं। सरीसृप वर्ग के प्राणी प्रथम पूर्ण रूप से स्थलीय प्राणी हैं, इस कारण त्वचा की सुरक्षा के हेतु शल्कों (Scales) का विकास हुआ। जैसे–जैसे कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य में केरेटिन (Keratin) का विकास हुआ वैसे–वैसे शल्कों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। यह शल्क एक सतत कवच बनाते हुए शरीर का सुरक्षात्मक आवरण बनाते हैं। शल्क (Scales) एक–दूसरे को ढँकते हैं।

शल्क (Scale) ऐम्फिऑक्सस, सायक्लोस्टोम्स (Cyclostomes) एवं कुछ मछलियों में, भेकों (Toads), सिसीलियन्स (Caecilians)/अन्धें उभयचरी प्राणियों में अनुपस्थित होते हैं। एक यूरोपीय भेक–पिलोबेटिस (Pilobatis) में पश्च पादों के आन्तरिक किनारों पर कठोर एपिडर्मल शल्क उपस्थित होते हैं। भेक इनका उपयोग मिट्टी खोदने में करते हैं।

सरीसृप (Reptiles) में पूर्ण विकसित शल्क पाये जाते हैं। सरीसृपों में यह शल्क दो प्रकार के होते हैं–

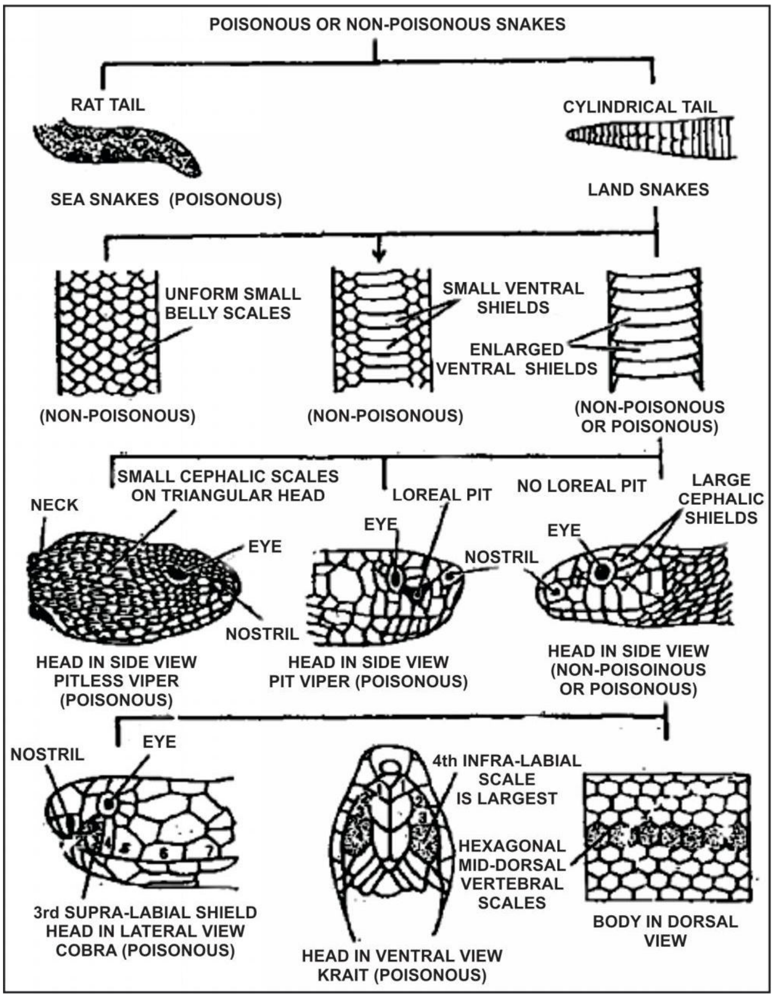

चित्र क्र. 2.4: **Integument : Epidermal Scales in Snakes**

(i) छिपकलियों एवं सर्पों के शल्क (Scales of Lizards - Snakes)– छिपकलियों एवं सर्पों में शल्क जो शरीर पर निरन्तर रहते हैं एक–दूसरे को ढँकते जाते हैं या परिछादित (Overlapping) होते हैं। समय–समय पर इनमें निर्मोचन होता है। निर्मोचन (Moulting) से पूर्व पुराने शल्कों के नीचे नये शल्क निर्मित हो जाते हैं। शल्कों की सम्पूर्ण स्तर पूरी की पूरी एक साथ उतरती है। साँपों में यह अंदर से बाहर की ओर उलट जाती है। अधिकांश सर्पों में अधर सतह (Ventral side) के शल्क अन्य सतह के शल्कों से भिन्न, लम्बे और अनुप्रस्थतः (Transversely) व्यवस्थित होते हैं। यह शल्क गमन करने में सहायक होते हैं।

सर्पों के शरीर की सतह पर शल्कों की व्यवस्था के द्वारा विषैले (Poisonous) एवं विषहीन (Non poisonous) सर्पों में भिन्नता या पहचान की जाती है–

टिप्पणी

(a) यदि अधरीय (Ventral) शल्क सँकरे हैं और यदि वह पूरे अधरीय भाग को नहीं ढँकते हैं और पार्श्व में छोटे–छोटे शल्क पाये जाते हैं, तब सर्प **विषहीन** होता है।

(b) यदि अधरीय शल्क विशेषित (Prominent) एवं चौड़े हैं एवं अधर भाग पर आर–पार दिशा में पूर्णरूप से फैले हैं तब सर्प सामान्यतः **विषैला** हो सकता है।

(c) यदि सर्प के शीर्ष के पृष्ठीय भाग में सभी शल्क छोटे आकार के हों तथा शील्ड (Shield) अनुपस्थित हो तो **विषैला वाइपर** (Viper) सर्प होता है।

(d) यदि उपपुच्छीय (Sub-caudal) शल्क दोहरे हैं तथा सिर पर लोरियल गर्त (Loreal pit) हो तो सर्प **विषैला रसैल वाइपर** (Russel viper) होता है।

(e) यदि कशेरुकीय शल्क (Vertebral scales) बड़े नहीं हैं तथा तीसरी अधि–ओष्ठीय (Supra labial) शील्ड/शल्क नेत्र एवं नासिका शल्क या शील्ड को छूती है तब सर्प **विषैला नाग** (Cobra) या **कोरल सर्प** है।

(v) यदि कशेरुकीय शल्क आकार में बड़े हैं ओर उपपुच्छीय शल्क अविभाजित हैं और निचले जबड़े पर अधः ओष्ठीय (Infra-orbital) शल्क/शील्ड हैं और चौथी शल्क बड़ी हो तो सर्प **विषैला करैत** (Krait) होता है।

(h) यदि सिर पर नाग, कोरल, करैत के लक्षण अनुपस्थित हों तो सर्प विषहीन है। उपर्युक्त प्रथम 6 लक्षणों के अतिरिक्त जो लक्षण शल्कों के रूप में सर्प में होते हैं उसके अनुसार सभी सर्प विषहीन होते हैं।

(ii) कछुओं और मगरमच्छों के शल्क (Scales of Turtle/Tortoises and Crocodiles)– कछुओं और मगरमच्छों में शल्क विभिन्न प्रकार के पाये जाते हैं, यह शल्क कोरछादी/परिछादित (Overlapping) नहीं होते हैं या एक–दूसरे को ढँकते हुए नहीं होते हैं। कछुओं और मगरमच्छों में शल्क समय–समय पर निर्मोचन क्रिया नहीं करते हैं। शल्क पृथक्–पृथक् रूप से विकसित होते हैं। कछुओं में प्रत्येक शल्क के नीचे स्थित मैलपीजी कोशिकाओं का स्तर वृद्धि के समय शल्क की परिधि पर कोशिकाओं का निर्माण करता हैं, इस कारण एक नई श्रृंगीय स्तर बन जाती है। यह नई स्तर पुराने शल्कों को कवच से दूर कर देती है। कछुओं और मगरमच्छों में शल्क धीरे–धीरे घिस जाते हैं और इनके स्थान पर नये शल्क निर्मित हो जाते हैं।

बड़े आकार के एपिडर्मल शल्कों को जो कछुओं के कवचों एवं साँपों के सिर पर पाये जाते हैं, उन शल्कों को प्रशल्क (Scutes) कहते हैं।

पक्षियों (Birds) में शल्क टाँगों, पिच्छों एवं चोंच के आधार पर पाये जाते हैं। यह शल्क साँप और छिपकलियों के समान कोरछादी (Overlapping) होते हैं।

स्तनी (Mammals) प्राणियों में शल्क, चूहों की दुम पर, बीवर (Beaver), मस्क चूहा (Musk rat) एवं छछूँदरों (Mole) की पूँछ और पन्जों पर होते हैं। इन शल्कों मे निर्मोचन (Moulting) नहीं पाया जाता है। स्केली एन्टईटर/शल्की चींटीखोर (Scaly anteater) – पेंगोलिन (Pangolin) साल, सल्लू साँप में शल्क सम्पूर्ण शरीर पर होते हैं। शरीर की अधर दिशा में शल्क अनुपस्थित होते हैं। इन प्राणियों में शल्कों का निर्मोचन एक–एक कर होता है।

आर्मेडिलो (Armadillo) में शल्क बड़े होते है, इस प्राणी में कन्धों (Shoulders) और कूल्हों (Hips) के शल्क समेकित होकर प्लेटें बनाते हैं। शरीर की मध्य अधर दिशा को छोड़कर शल्क आपस में समेकित होकर छल्ले समान (Ring-like) प्लेटें बनाते हैं। इन शल्कों में भी निर्मोचन (Moulting) नहीं होता है। पुराने शल्कों के स्थान पर नये शल्क निर्मित होते हैं।

2. **सींग (Horn)**– यह केवल अंगुलेट स्तनी प्राणियों (Ungulate mammals) में पाये जाते हैं। सींग पाँच प्रकार के होते हैं–

   (i) केरेटिन तन्तुमय सींग (Keratin fibrous horn)– यह सींग एपिडर्मिस की केरेटिन युक्त कोशिकाओं से निर्मित होते हैं, इसके आन्तरिक भाग में आपस में चिपके हुए केरेटिन तन्तुओं की चपटी सघन स्तर बन जाती है। यह एक एपिडर्मल संरचना है जो टूट जाने पर पुनः विकसित हो जाती है। सींग कंकाली तत्वों (Skeletal elements) का बना नहीं होता है। **उदाहरण**– भारतीय गेंडे में एक तथा अफ्रीकी गेंडे में दो सींग पाये जाते हैं।

   (ii) खोखले सींग (Hollow horn)– यह सींग गाय, भैंस, भेड़ों और बकरियों में पाये जाते हैं। सींग नर एवं मादा दोनों में पाये जाते हैं। इन खोखले सींगों में श्रृंगीय स्तर, फ्रन्टल हड्डी (Frontal bone) के एक छोटे से प्रवर्ध को घेरे रहती है। यह खोखले सींग न तो कभी गिरते हैं और न ही कभी शाखित होते हैं।

   (iii) जिराफ के सींग (Horn of Giraffe)– यह सींग आकार में छोटे होते हैं तथा नर एवं मादा दोनों में पाये जाते हैं। यह स्थाई होते हैं तथा विशाखित नहीं होते हैं। इस प्रकार के सींगों में चर्मीय/डर्मिसी अस्थि का आन्तरिक भाग होता है और इसके ऊपर एक **'मखमल'** समान एपिडर्मिसी आवरण पाया जाता है। यह मखमली आवरण कभी झड़ता नहीं है।

   (iv) मृग श्रृंग/मृग सींग/ऐन्टलर्स (Antlers)– इस प्रकार के सींग **मृग** परिवार के केवल नर प्राणियों में तथा **केरिबू** (Caribou) एवं **रेन्डियर** (Reindeer) प्राणियों में नर तथा मादा दोनों में पाये जाते

टिप्पणी

हैं। सींग में फ्रन्टल हड्डी (Frontal bone) का विशाखित प्रवर्ध/बहिवृध्दि के रूप में होता है, जब इसमें वृध्दि हो रही होती है तब सींग के ऊपर रोमिल त्वचा की एक स्तर पाई जाती है जिसे मखमल/वेल्वेट (Velvet) कहते हैं। सींग की पूर्ण वृध्दि हो जाने के पश्चात् यह मखमल की स्तर झड़ जाती है और केवल चर्म हड्डी सींग में शेष रह जाती है। यह हड्डीदार सींग भी प्रत्येक प्रजनन ऋतु के पश्चात् गिर जाते हैं। मृग सींगों का निर्मित होना, पीयूष ग्रन्थि की अग्रपालि एवं वृषण के द्वारा स्त्रावित हॉर्मोन्स के द्वारा नियन्त्रित होता है।

(v) **प्रान्ग हार्न/शूल श्रृंग/शूल सींग (Prong horn)**– इस प्रकार के सींग में अंदर से फ्रन्टल अस्थि (Frontal bone) होती है एवं बाहर से एपिडर्मिस का आवरण होता है जो 1–3 प्रान्ग्स में निकला रहता है, केवल श्रृंगीय आच्छद से ढँका होता है जो प्रत्येक वर्ष उतार फेंक दिया जाता है। यह सींग **रूसी एन्टीलोप – ऐन्टिलोकैप्रा** (Antilocapra) में पाया जाता है।

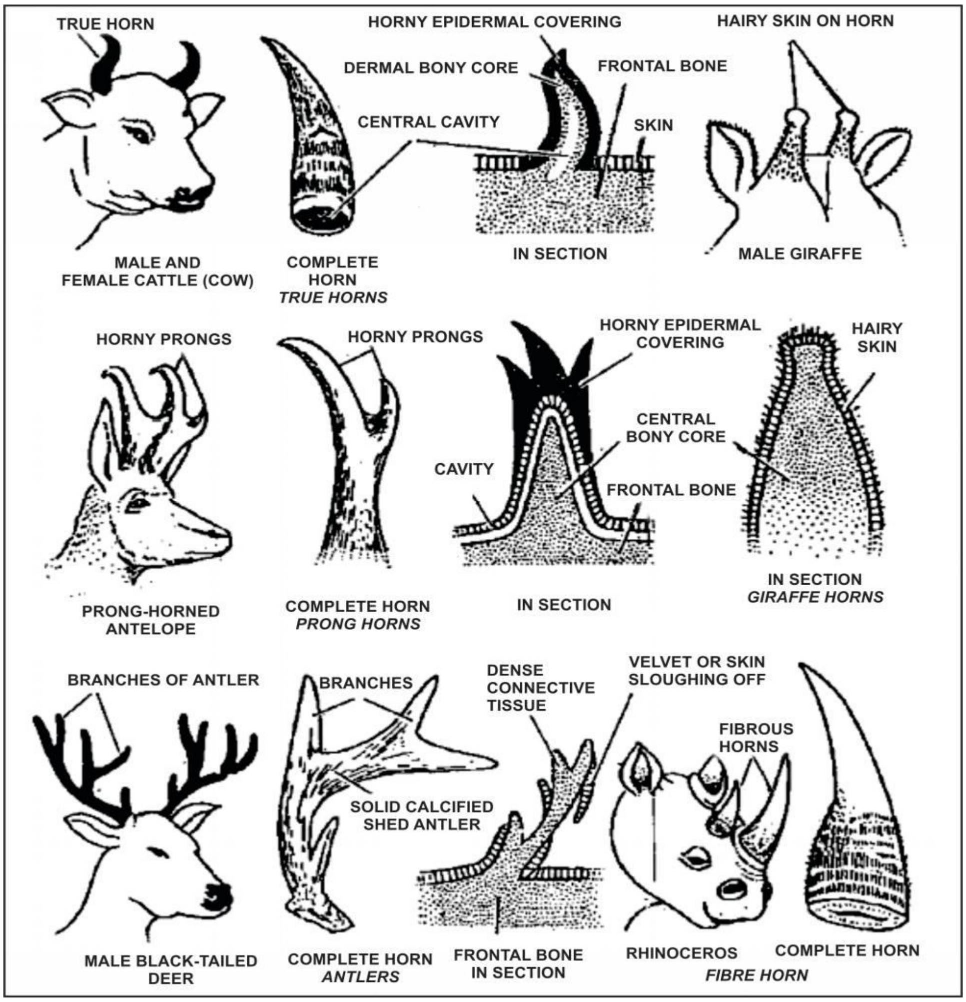

चित्र क्र. 2.5: **Types of Horns-Antlers in Mammals**

3. **नाखून (Nails), नखर (Claws), खुर्र (Hoof) या अंगुलीय सिरे (Digital tips)**– अंगुलीय सिरे (Digital tips) के अन्तर्गत आने वाली संरचनाएँ – नाखून (Nails), नखर (Claws), खुर्र (Hoof) हैं, जिनकी मूलभूत संरचना एक समान होती है। यह एपिडर्मिस की श्रृंगीय स्तर (Stratum corneum) से बनते हैं। यह सभी व्युत्पत्तियाँ त्वचा की सतह के समानान्तर निर्मित होती हैं। इसके दो भाग होते हैं–

   (i) नख/अंगुइस (Unguis)– यह एक बड़ी शल्क समान प्लेट होती है।

   (ii) अधःनख/सब–अंगुइस (Sub unguis)– यह भाग कोमल होता है। दोनों भाग एक बिन्दु पर अभिभूत होते हैं और अन्तिम अंगुलास्थि/फैलेंक्स (Phalanx) के अन्तिम भाग को आच्छादित करते हैं।

   (i) नखर/पंजे (Claws)– नखर केवल सरीसृपों, पक्षियों एवं स्तनी प्राणियों में पाये जाते हैं। नखर दो प्रमुख भागों का बना होता है– एक पृष्ठीय शल्कीय कठोर प्लेट होती है जिसको **नख/अंगुइस** (Unguis) या नखर प्लेट कहते हैं। अधर सतह पर कोमल प्लेट होती है जिसे **अधःनख/सब–अंगुइस** या सोल प्लेट कहते हैं। यह दोनों भाग अंगुली के अन्तिम सिरे या फैलेन्क्स (Phalanx) के शीर्ष भाग को ढँके रहते हैं।

   सरीसृपों में नखर घुमावदार होते हैं, जिसके निचले किनारों के बीच अधःनख (Sub-unguis) होती है। बाह्य सतह समय–समय पर निर्मोचन (Moulting) करती है और हमेशा नई बनी रहती है। पक्षियों के नखर की संरचना सरीसृपों के समान होती है, लेकिन पक्षियों में निर्मोचन नहीं होता है।

   स्तनी प्राणियों (Mammals) के नखरों **अधःनख**/सब–अंगुइस ऱ्हासित हो जाता है और अंगुली के सिरे पर मांसल गद्दी सतत रूप से स्थित होती है। बिल्ली (Cat) में नखर प्रत्यागामी (Rectractile) होते हैं। अक्रियाशील अवस्था में खोल के अंदर खींच लिये जाते हैं।

   (ii) नाखून (Nails)– यह व्युत्पत्तियाँ केवल स्तनी वर्ग के प्राइमेट्स प्राणियों में पाई जाती हैं। **अंगुइस/नख** (Unguis) वाला भाग पृष्ठीय बड़ा एवं चपटा होता है तथा अधःनख/सब–अंगुइस कम विकसित होती है। अधःनख ऱ्हासित नाखून के सिरे के नीचे सँकरी पट्टिका के रूप में होती है। नाखून की आधार सतह पर एपिडर्मिस अन्तर्गमन कर नाखून–खाँच (Nail groove) को बनाती है, जिसमें नाखून की जड़ होती है जिससे नख की वृध्दि होती है।

   (iii) खुर्र (Hoof)– यह अंगुलेट (Ungulate) स्तनी प्राणियों में पाये जाते हैं। इसमें नख (Unguis) मोटा होता है और अंगुली के अन्त में चारों ओर से मुड़ा होता है, यह अधःनख (Sub-unguis) को घेरता है जो इसको अंदर से भरे रखता है। खुर्र के पीछे एक गद्दी या मांसल गद्दी

टिप्पणी

होती है जो फ्राग (Frog) कहलाता है और भूमि के सम्पर्क में कभी नहीं आता है। खुर्र में निरन्तर वृध्दि होती है। स्तनियों के नाखून एवं खुर्र रूपान्तरित नखर होते हैं।

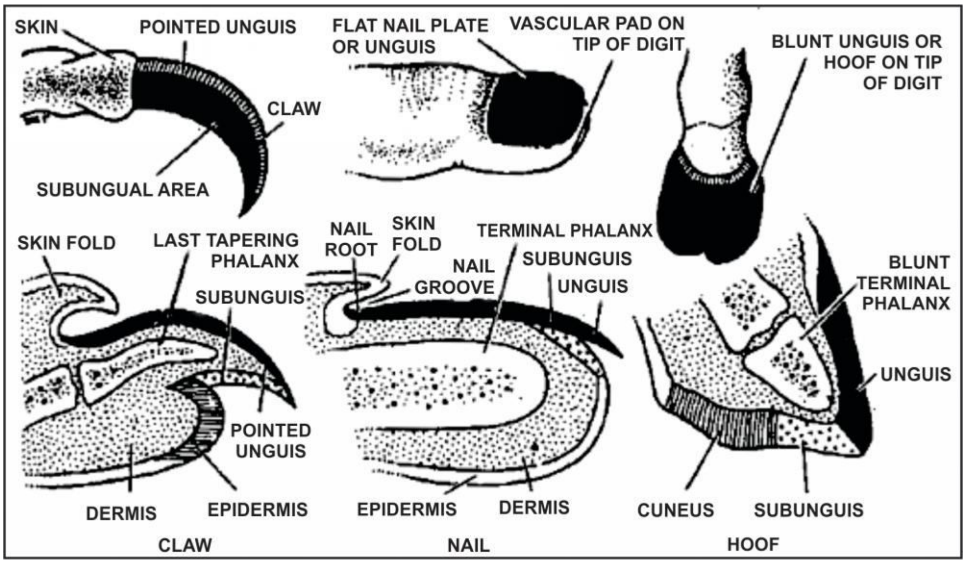

चित्र क्र. 2.6: **Integument : Claws, Nails and Hoof**

4. **पिच्छ/पर्र (Feathers) एवं चोच (Beak)**– पिच्छ/पर्र पक्षी वर्ग की विशेषता है, यह रूपान्तरित सरीसृपी शल्क (Reptilian scales) होते हैं। यह भी एपिडर्मिस की स्ट्रेटस कार्नियम/श्रृंगीय स्तर (Stratum corneum) से विकसित होते हैं। पिच्छ/पर्र हल्के, लचीले, जलरोधी एवं दृढ़ होते हैं, इनमें वर्णकों (Pigments) की उपस्थिती के कारण अनेक रंग दिखाई देते हैं। यह शरीर के ताप को स्थिर बनाये रखते हैं, उड़ान के समय शरीर को साधे रखते हैं एवं एक संरक्षणी आवरण (Protective covering) बनाते हैं। पक्षियों में पिच्छ तीन प्रकार के होते हैं–

   (i) कन्टूर पिच्छ/पर (Contour feather) या पेन्नी (Pennae)

   (ii) लघु पिच्छ (Plumulae) या डाउन फैदर्स (Down feathers)

   (iii) रोम पिच्छ/फिलोप्ल्यूम्स (Filoplumes)

   (i) कन्टूर पिच्छ (Contour feather)– यह व्युत्पत्तियाँ पक्षियों के सारे शरीर के ऊपर होती हैं, यह पिच्छ दो प्रकार के होते हैं– **(a) डैने/क्विल पिच्छ (Quill feathers)**– आकार में बड़े होते हैं, पिच्छों के ऊपर पाये जाने वाले इन पिच्छों को **पक्ष पर** या **रैमाइजेस** (Remiges) एवं पूँछ पर पाये जाने वाले पिच्छों को **पुच्छ पर** या **रेक्ट्राइसेस** (Rectrices) कहते हैं। **(b) देहपिच्छ (Coverts)**– सारे शरीर को ढँके रहते हैं और आकार में छोटे होते हैं।

कन्टूर पिच्छ में एक मध्यीय अक्ष (Central axis) होता है, जिसको प्रधान स्तम्भ या स्केपस (Scapus) कहते हैं, स्केपस के समीपस्थ भाग को **पिच्छाक्ष** या **क्विल** (Quill) कहते हैं तथा इसका आधारीय भाग कैलेमस (Calamus) होता है जो त्वचा में धँसा रहता है। कैलेमस एक नलाकार, खोखला भाग होता है, जिसमें मज्जा पिच्छ पल्प (Feather pulp) के अवशेष भाग से बनती है। कैलेमस के अन्तिम सिरे पर, जो गर्त में धँसा रहता है एक छिद्र – **निम्न नाभि** (Inferior umbilicus) और ऊपर एक **ऊर्ध्व नाभि** (Superior umbilicus) होती है। ऊर्ध्व नाभि के पास से एक **अनुपिच्छ** (After shaft) या अधःरेकिस (Hyporachis) निकला रहता है। यह पिच्छकों (Barbs) एवं पिच्छिकाओं (Barbules) का कोमल गुच्छा होता है, जो अनेक पक्षियों में अधिक लम्बा होता है।

कैलेमस (Calamus) के ऊपर वाला भाग या स्केपस का दूरस्थ भाग–व्रन्त ठोस **रेकिस** (Rachis) होता है। इसकी आन्तरिक सतह पर पूरी लम्बाई में एक **नाभि खाँच** (Umbilical groove) होती है। रेकिस पर एक फैला हुआ भाग **पिच्छ फलक** या **वेन** (Vane) या **वेक्सिलम** (Vexillum) होता है। पिच्छ फलक (Vane) के दोनों पार्श्व भागों में समानान्तर पिच्छक (Barbs) होते हैं जो कोमल धागे के समान संरचनाएँ होती हैं। प्रत्येक पिच्छक के दोनों ओर अनेक महीन धागों के समान **पिच्छिकाएँ** (Barbules) होती हैं, जिन पर अनेक वक्र **हुक** या **हेमुलाई** (Hamuli) होते हैं, दूसरी दिशा में हर पिच्छक पर समीपस्थ पिच्छिकाएँ होती हैं, जिसमे खाँचयुक्त सीमान्त होते हैं। दूरस्थ पिच्छिकाओं के हेमुलाई समीपस्थ पिच्छिकाओं के खाँचयुक्त सीमान्तों में सम्बन्धित होते हैं, इस प्रकार पिच्छक (Barbs) आपस में बँधे होते हैं। दो पिच्छक के बीच की पिच्छिकाएँ आपस में वक्र हुक के द्वारा जुड़ी रहती हैं। यह सम्पूर्ण पिच्छफलक (Vane) एक चपटे अंश के रूप में कार्य करता है तथा वायु के प्रति अवरोध उत्पन्न करता है।

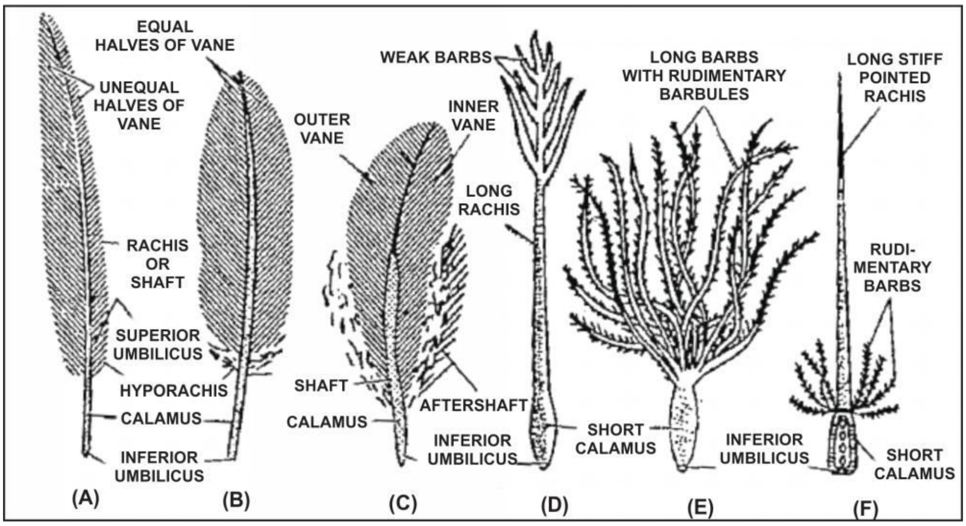

चित्र क्र. 2.7: Integument : Feathers

(ii) लघु पिच्छ/कोमल पिच्छ (Down feather)– इस प्रकार के पिच्छकों में एक अधिक छोटा खोखला **पिच्छाक्ष** होता है, जिसका एक सिरा पक्षियों के शरीर की त्वचा में धँसा रहता है। स्वतन्त्र सिरे से पिच्छक (Barbs) एवं पिच्छिकाएँ (Barbules) निकलती हैं। इनमें कण्टिकाएँ या हेमुलाई नहीं पाई जाती हैं। वयस्क पक्षियों में कोमल पिच्छ/पर अपने ही एक प्रकार के चूर्ण **कोमल पर** या पिच्छक (Powder down feather) के रूप में पाये जाते हैं जिसमें से पाउडर या चूर्ण के समान कण (Granules) गिरते रहते हैं। यह पिच्छ कन्टूर पिच्छों (Contour feathers) के नीचे स्थित रहते हैं या छिपे रहते हैं। जहाँ पर कि यह एक सघन स्तर बनाते हैं, जिसमें वायु गति नहीं होती है, इस कारण शरीर का ताप बाहर नहीं निकलता है। यहीं पिच्छ के कारण ऊँचाइयों पर पक्षियों के शरीर को जम जाने से बचाते हैं।

पक्षियों के शिशुओं पर प्रथम बार आने वाले कोमल पिच्छ शरीर को ढँके रहते हैं, इन पिच्छों को **नीड़ शावक पर/पिच्छक** (Nestling down feather) कहते हैं। यह वयस्क पक्षियों के कोमल पिच्छों से इस कारण भिन्न होते हैं कि इनमें पिच्छाक्ष एवं पिच्छकों के आधारीय भागों पर एक श्रृंगीय आवरण ढँके रहता है। यह पिच्छ शीघ्र ही गिर जाते हैं।

(iii) रोम पिच्छ/फिलोप्ल्यूम (Filoplume)– इनको **रोम पिच्छक/बाल पिच्छक** (Hair feather) कहते हैं। इन पिच्छों में एक लम्बा पतला वृन्त होता है, वृन्त के ऊपर थोड़े से अन्तस्थ एवं बिना हेमुलाई (Hamuli) वाले पिच्छक होते हैं। रोम पिच्छ सम्पूर्ण शरीर पर कन्टूर पिच्छों के बीच–बीच में स्थित होते हैं।

उपर्युक्त तीन पिच्छों (Feathers) के अतिरिक्त कुछ पक्षियों में **रिक्टल ब्रिस्टल्स** के रूप में **रिक्टल शूकें** (Rictal bristles) पिच्छ पाये जाते हैं। यह पिच्छ चोंच के आधार पर कड़े बालों के समान पाये जाते हैं। प्रत्येक रिक्टल शूक में एक महीन रेकिस के आधार पर एक छोटा–सा कैलेमस एवं अवशिष्ट पिच्छक पाये जाते हैं।

चोंच (Beak)– पक्षियों में चोंच उभरी हुई एवं निचले जबड़े के चारों ओर एक आवरण के रूप में होती है। यह जबड़े से आगे बड़ी रहती है। यह चोंच कठोर होती है। पक्षियों में जबड़े की अस्थि रूपान्तरित एपिडर्मल शल्कों के आवरण से ढँकी रहती है। पक्षियों के समान पक्षियों के अतिरिक्त चोंच कछुओं एवं डक बिल प्लेटीपस में पाई जाती है।

5. **बाल (Hairs)**– यह केवल स्तनी प्राणियों की विशेषता है। यह कुछ स्तनी प्राणियों में शरीर की सम्पूर्ण सतह पर पाये जाते हैं, मनुष्य के शरीर पर यह कहीं–कहीं छोटे भागों में पाये जाते हैं। व्हेल (Whale) एवं अन्य जलीय स्तनी प्राणियों में शरीर की सतह पर दूर–दूर तक वितरित रहते हैं। बाल भी त्वचा की श्रृंगीय संरचनाएँ हैं जो मैल्पीजियन स्तर की कोशिकाओं के विभाजित होने के कारण चर्म/डर्मिस में एक स्थूल का निर्माण करती है जो नीचे की ओर वृध्दि करके बाल जर्म स्तर (Hair germ layer) को बनाती हैं।

   बाल त्वचा में से न्यून कोण पर बाहर निकलते हैं। प्रत्येक बाल में एक लम्बा बाहर की ओर निकला **काण्ड/शैफ्ट** (Shaft) होता है और नीचे की ओर **जड़/मूल** (Root) होती है, यह जड़ रोम पुटक (Hair follicle) में पड़ी होती है। **रोम पुटक** (Hair follicle) चर्म में बना अंदर की ओर स्थित एक गर्त होता है। रोम पुटक के आधार पर जड़ फूलकर एक गोलाकार संरचना रोम बल्ब (Hair bulb) को निर्मित करती है और बालों की वृध्दि केवल जड़ (Root) में होती है। इसमें मैल्पीजी स्तर की कोशिकाएँ निरन्तर विभाजित होती रहती हैं। बल्ब के नीचे **डर्मल पैपिला** (Dermal papilla) होती है जिसमें संयोजी ऊतक (Connective tissue) एवं रक्त वाहिनियाँ होती हैं। यह वाहिनियाँ पोषण प्रदान करती हैं।

   बाल के काण्ड/शैफ्ट के बाहर की ओर **अधिचर्म/क्यूटिकल** (Cuticle) का आवरण होता है, यह पारदर्शी, कोरछादी (Overlapping) कोशिकाओं से बनता है। क्यूटिकल में एक बाह्य भाग कार्टेक्स (Cortex) और आन्तरिक भाग मेडुला (Medulla) होता है। कार्टेक्स की श्रृंगित कोशिकाओं में वर्णक और कुछ वायु अवकाश (Air spaces) होते हैं।

टिप्पणी

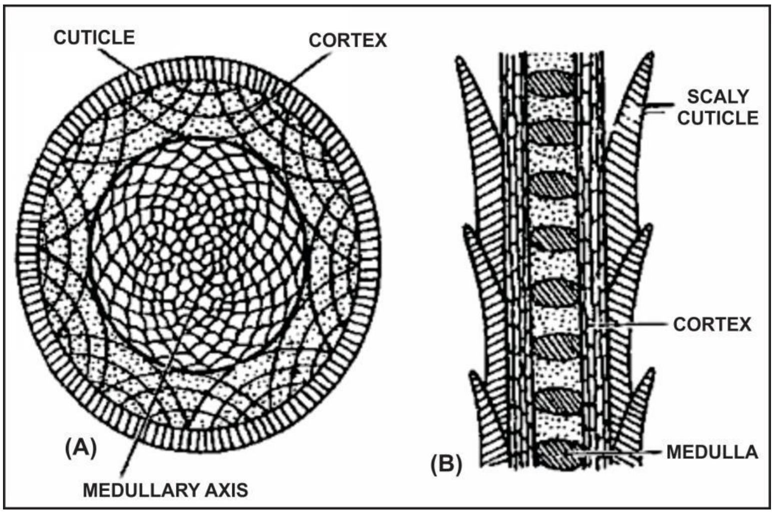

चित्र क्र. 2.8: **Integument : (A) T.S. of Hair (B) Hair (L.S.)**

सारणी क्र. 2.1: कशेरुक प्राणियों में त्वचा एवं बाह्य कंकाल की तुलना
(Comparison between Skin and Exoskeleton of Vertebrate Animals)

क्र. No.	लक्षण (Characters)	मत्स्य (Fishes) स्कॉलियोडॉन (Scoliodon)	उभयचरी (Amphibians) मेंढक (Frog)	सरीसृप (Reptilia) यूरोमेस्टिक्स (Uromastix)	पक्षी (Birds) कबूतर (Pigeon)	स्तनी (Mammals) खरगोश (Rabbit)
1.	बाह्य कंकाल (Exoskeleton)	त्वचा पर एक सुरक्षात्मक आवरण होता है जो शल्कों (Scales) के रूप में पाया जाता है। प्लेकॉयड शल्क (Placoid scales) पाये जाते हैं।	मेंढक में बाह्य कंकाल पूर्णतः अनुपस्थित होता है।	बाह्य कंकाल पाया जाता है। यह एपिडर्मल श्रृंगी शल्कों (Horny scales) एवं नखर (Claws) के रूप में होता है।	बाह्य कंकाल पाया जाता है। बाह्य कंकाल शल्क (Scales), नखर (Claws), चोंच (Beak) एवं पिच्छों (Feathers) के रूप में पाया जाता है। पिच्छ तीन प्रकार के होते हैं।	बाह्य कंकाल पाया जाता है। बाह्य कंकाल शल्क, नखर (Claws) एवं बालों (Hair) के रूप में पाया जाता है।
2.	एपिडर्मल शल्क (Epidermal scales)	इसमें एपिडर्मल शल्कों का अभाव होता है। प्लेकॉयड शल्क मीजोडर्म से निर्मित होते हैं जो शरीर की पूरी लम्बाई में तिरछी पंक्तियों में व्यवस्थित होते हैं।	एपिडर्मल शल्क पूर्णरूप से अनुपस्थित रहते हैं।	एपिडर्मल शल्क पाये जाते हैं जोकि पतले, छोटे और एक–दूसरे पर आच्छादित होते हैं एवं शरीर की सम्पूर्ण त्वचा में पाये जाते हैं।	एपिडर्मल शल्क छोटे, पतले केवल पश्च टाँगों, पैर (Feet) एवं चोंच (Beak) के आधार पर पाये जाते हैं।	खरगोश में एपिडर्मल शल्क अनुपस्थित होते हैं, लेकिन चूहों, बीवर्स (Beavers) आदि प्राणियों के पैरों एवं पूँछ पर पाये जाते हैं।

3.	**चर्मीय शल्क (Dermal scales)**	उपास्थिमय मछलियों या इलास्मो– ब्रैन्क मछलियों में चर्मीय शल्क अनुपस्थित होते हैं। अस्थिमय मछलियों (Bony fishes) में शल्क कॉस्मायड (Cosmoid), गैनॉयड (Ganoid), टीनॉयड (Ctenoid) एवं सायक्लॉयड (Cycloid) शल्क पाये जाते हैं।	चर्मीय शल्क पूर्णतः अनुपस्थित होते हैं।	छिपकली सरीसृपों को छोड़कर चर्मीय शल्क कछुओं एवं मगरमच्छों में चर्मीय स्क्यूट्स एवं प्लेट्स (Dermal scutes and plates) के रूप में पाये जाते हैं।	चर्मीय शल्क (Dermal scales) अनुपस्थित होते हैं।	चर्मीय शल्क आर्मेडिलो (Armadillo) में प्लेट्स के रूप में पाये जाते हैं। खरगोश के अतिरिक्त, अन्य स्तनी प्राणियों में बाह्य कंकाल नाखून (Nail), खुर (Hoof), नखरों (Claws) एवं बाल के रूप में पाया जाता है।
4.	**निर्मोचन (Moulting)**	शल्कों का निर्मोचन नहीं पाया जाता है।	केवल त्वचा की बाह्य स्तर श्रृंगीय स्तर छोटे–छोटे टुकड़ों के रूप में त्वचा से उतरती रहती है।	निश्चित समय पर शल्कों का अपूर्ण या पूर्णरूप से निर्मोचन होता रहता है।	मौसम के प्रभाव के अनुसार पिच्छ गिरते रहते हैं और नये निर्मित होते रहते हैं।	सींगों का निर्मोचन मौसम के अनुसार श्रृंगी स्तर के द्वारा पाया जाता है।
5.	**त्वचा (Skin)**	त्वचा कठोर, खुरदरी एवं दृढ़ होती है। शरीर से मजबूती से संलग्न रहती है।	त्वचा पतली, चिकनी, नम एवं चिपचिपी होती है। शरीर पर ढीले रूप में संलग्न रहती है। त्वचा की डर्मिस के नीचे उपत्वचीय लसिका कोटर (Sub-cutaneous lymph sinuses) पाये जाते हैं।	त्वचा अपेक्षाकृत मोटी, शुष्क, खुरदरी होती है। गर्दन एवं शरीर के पार्श्व भाग में ढीली, अनुप्रस्थ वलनों (Folds) के रूप में होती है।	त्वचा कठोर पतली, शुष्क, लचीली एवं ढीले रूप में शरीर से संलग्न रहती है, जिससे उड़ते समय अवरोध उत्पन्न नहीं हो।	त्वचा अत्यधिक मोटी, शुष्क लचीली होती है। जल अवरोधी होती है। त्वचा ढीले रूप में संलग्न नहीं होती है।
6.	**रंग (Colour)**	त्वचा का रंग भिन्न होता है। पृष्ठीय सतह का रंग गहरा तथा अधरीय सतह का हल्के रंग या हल्के पीले रंग का होता है।	त्वचा का रंग पृष्ठीय सतह पर गहरे हरे रंग का, जिसमें काले, भूरे रंग के धब्बे होते हैं। अधर सतह का रंग हल्का पीला होता है।	यूरोमेस्टिक्स की पृष्ठीय सतह की त्वचा पीले भूरे, रंग की, गहरे भूरे रंग के धब्बों सहित, अधर सतह हल्के पीले रंग की होती है। सरीसृप प्राणियों में त्वचा का रंग छिपने में सहायक या चेतावनी देने के लिए होता है।	वर्णक केवल पिच्छों (Feathers) में पाये जाते हैं। इस कारण प्राणी विभिन्न रंग का होता है। त्वचा में वर्णकधर (Chroma-tophore) अनुपस्थित होते हैं। अतः पक्षियों का रंग आकर्षक होता है।	एपिडर्मिस की निचली स्तर में वर्णक कणिकाएँ पाई जाती हैं, लेकिन वर्णकयुक्त वर्णकधर (Chromato-phore) अनुपस्थित होते हैं। शाखान्वित डेन्ड्राइट कोशिकाएँ जिसमें मेलेनोब्लास्ट (Melanoblast) एपिडर्मिस एवं डर्मिस के बीच पाये जाते हैं।

7.	**एपिडर्मिस (Epidermis)**	त्वचा की एपिडर्मिस में अनेक कोशिकीय स्तर पाए जाते हैं, लेकिन श्रृंगीय स्तर (Stratum corneum) अनुपस्थित होती है। जननिक स्तर या मैल्पीजी स्तर पाई जाती है। मैल्पीजी स्तर के नीचे अनेक वर्णक कोशिकाएँ वर्णकधर (Chromato-phore) पाये जाते हैं, जिसमें काले वर्णक होते हैं।	एपिडर्मिस की बाह्य स्तर चपटी कोशिकाओं की बनी होती है जोकि समयानुसार त्वचा से झड़ती है। एपिडर्मिस में श्रृंगीय एवं मैल्पीजी स्तर पाई जाती है। चर्म/डर्मिस में वर्णक कोशिकाएँ पाई जाती हैं जोकि रंग परिवर्तन में सहायक होती हैं।	एपिडर्मिस की बाह्य स्तर को श्रृंगीय स्तर (Stratum corneum) कहते हैं। नीचे की स्तर जननिक स्तर होती है। वर्णकधर (Chromatop-hores) त्वचा के उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जोकि शल्क से ढँके नहीं होते हैं।	एपिडर्मिस अधिक पतली एवं कोमल होती है, (पिच्छों (Feathers) के क्षेत्र में) अन्य क्षेत्र में अधिक मोटी होती है। केवल परों में वर्णक पाये जाते हैं।	एपिडर्मिस की बाह्य स्तर श्रृंगीय स्तर (Corneal layer) होती है, इसके नीचे स्वच्छ स्तर (Stratum lucidum) तथा इसके नीचे कणिकीय स्तर (Stratum granulossum) तथा अन्तिम स्तर मैल्पीजी स्तर (Stratum malpighii) होती है।
8.	**ग्रन्थियाँ (Glands)**	श्लेष्म स्त्रावित ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। विष ग्रन्थियाँ अनुपस्थित होती हैं।	एपिडर्मिस में अनेक एक कोशिकीय, फ्लास्क के आकार की श्लेष्म एवं विष ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं जोकि श्लेष्म को स्त्रावित कर त्वचा को नम, चिपचिपा बनाती हैं। विष ग्रन्थियों से विषैला तरल पदार्थ स्त्रावित होता है जोकि शत्रु से सुरक्षा का कार्य करता है।	त्वचा में कोई भी ग्रन्थि नहीं पाई जाती है, लेकिन कुछ स्थानीय ग्रन्थियाँ उरु या फीमोरल ग्रन्थियाँ, जाँघ की अधर सतह पर पाई जाती हैं।	त्वचीय ग्रन्थियाँ अनुपस्थित होती हैं। पूँछ में केवल यूरोपाइजियल ग्रन्थि (Uropygial gland) पाई जाती है।	एपिडर्मिस में श्लेष्म ग्रन्थियाँ अनुपस्थित होती हैं। स्तनी प्राणियों की त्वचा मे स्वेद ग्रन्थियाँ (Sweat glands), तैलीय ग्रन्थि (Sebaceous) एवं स्तन ग्रन्थियाँ (Mammary glands) पाई जाती हैं। सेबेशियस ग्रन्थियों से तैलीय द्रव स्त्रावित होता है जोकि बालों को चिकना एवं जलरोधी बनाता है। स्वेद ग्रन्थियों के द्वारा चयापचयी व्यर्थ पदार्थों को बाहर निकालकर ताप नियमन का कार्य करती है।

9.	डर्मिस/चर्म (Dermis)	चर्म या डर्मिस में संयोजी ऊतक, पेशियाँ, रक्त वाहिनियाँ, तन्त्रिकाएँ एवं लसिका स्थान (Lymph spaces) एवं कोलेजन तन्तु पाये जाते हैं।	चर्म/डर्मिस पतली और इसमें स्तर पाई जाती हैं– कोमल या स्पान्जियोसम स्तर (Stratum spongiossum) एवं सघन एवं संहत स्ट्रेटम काम्पेक्टम (Stratum compactum), जिसमें संयोजी ऊतक तन्तु, जोकि ऊर्ध्व एवं क्षैतिज रूप में पाई जाती है।	चर्म या डर्मिस मोटी जिसमें ऊपरी एवं निचली स्तर होती हैं, इसमें संयोजी ऊतक के बन्डल या पूल पाये जाते हैं।	चर्म या डर्मिस में एक ऊपरी एवं निचली सघन स्तर होती है जिसके बीच में संवहनी स्तर (Vascular layer) होती है। चर्म पतली, जिसमें परस्पर जाल बनाते हुए संयोजी ऊतक तन्तु, पिच्छों को गति प्रदान करने वाले प्रचार पेशी तन्तु, रक्त वाहिनियाँ एवं तन्त्रिका तन्तु पाये जाते हैं।	स्तनी प्राणियों में चर्म/डर्मिस अत्याधिक विकसित होती है। चर्म में संयोजी ऊतक तन्तु, पेशी तन्तु, रक्त वाहिनियाँ तन्त्रिकाएँ, स्पर्श कणिकाएँ एवं कुछ ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं।
10.	त्वचीय श्वसन (Cutaneous respiration)	मछलियों की त्वचा संवेदी एवं रक्षात्मक होती है। जल के लिए पारगम्य नहीं होती है, इस कारण त्वचीय श्वसन का कार्य नहीं करती है।	उभयचरी प्राणियों की त्वचा रक्षात्मक एवं जल के लिए पारगम्य (Permeable) होती है इस कारण त्वचीय श्वसन का कार्य होता है।	त्वचा श्वसन का कार्य नहीं करती है, क्योंकि यह रक्षात्मक एवं जलरोधी होती है।	त्वचीय श्वसन नहीं पाया जाता है। त्वचा रक्षात्मक एवं जलरोधी (Water proof) होती है।	स्तनी प्राणियों की त्वचा रक्षात्मक, जलरोधी होती है। त्वचीय श्वसन का कार्य नहीं करती है।

रोम पुटक के आन्तरिक भाग में जड़ के चारों ओर **रोम आच्छद कोशिकाओं** (Hair sheath cells) की दो स्तरें होती हैं– **एक बाह्य मूल आच्छद** (External root sheath) एवं एक **आन्तरिक मूल आच्छद** (Internal root sheath) रोम पुटक में एक **तैलीय ग्रन्थि** (Sebaceous gland) खुलती है, जो तैलीय पदार्थ को स्त्रावित कर बाल को नम एवं चिकना बनाये रखती हैं।

रोम पुटक के आधार तक डर्मिस के ऊपरी भाग से एक अरेखित तन्तुओं की एक पेशी रोम हर्षणी (Errector pilli) होती है जो संकुचित होकर बाल को सीधा खड़ा करती है।

2.2.5 चर्मीय/डर्मल व्युत्पत्तियाँ (Dermal Derivatives)

एपिडर्मिस की अपेक्षा **चर्म/डर्मिस** की व्युत्पत्तियों की संख्या कम है। इसके अन्तर्गत मत्स्य (Fishes) वर्ग में पाये जाने वाले शल्क, पंख अर्रे (Fin rays) आदि आते हैं।

चर्मी/डर्मल शल्क (Dermal scales)– चर्मी शल्क मीसोडर्म (Mesoderm) की कोशिकाओं से निर्मित होते हैं। यह शल्क केवल मछलियों, कुछ सरीसृप

टिप्पणी

(Reptiles) एवं कुछ स्तनी प्राणियों में पाये जाते हैं। चर्मी शल्कों को उतारा नहीं जाता है, इन शल्कों में अस्थि की नई स्तर निर्मित होने के कारण जीवनपर्यन्त वृद्धि होती रहती हैं।

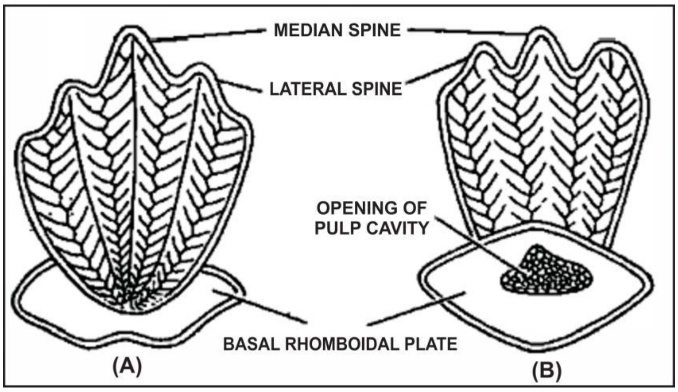

चित्र क्र. 2.9: Integument : Dorsal Scales; Placoid Scale (Dorsal and Ventral View)

2.2.6 मत्स्य वर्ग में चर्मी शल्क (Dermal Scales in Fishes)

इसमें अग्रलिखित प्रकार के (Scales) शल्क आते हैं–

1. **कॉस्माइन शल्क (Cosmoine scales)**– यह शल्क **आदिम कोयेनिक्थीज़** (Choanichthyes) तथा **लैटिमीरिया** (Latimeria) में पाये जाते हैं। इस प्रकार के शल्क में चार स्तर होती थीं– सबसे नीचे की स्तर **आइसोपेडीन** (Isopedine)/**डेन्टीन** (Dentine) जो अस्थि के समान थी। इसके ऊपर की स्तर एक स्पन्जी अस्थि (Spongy bone) की होती थी, इसमें वाहिनियाँ गुहिकाएँ (Vascular spaces) पाई जाती थीं, इसकी पल्प गुहिका में **ओडोन्टोब्लास्ट** (Odontoblast) कोशिकाएँ होती थी। तीसरी स्तर **कॉस्माइन** (Cosmoine) होती थी, इसमें लघु नलिकाएँ (Canaliculi) होती थी। सबसे बाहर की स्तर पतली, कठोर विट्रोडेन्टीन या इनैमेल (Vitrodentine of Enamel) की होती थी।
2. **प्लेकॉयड शल्क (Placoid scales)**– इन शल्कों का उद्गम कॉस्माइड शल्कों (Cosmoid scales) की कुछ स्तरों के समाप्त हो जाने के पश्चात् हुआ। यह शल्क केवल **उपास्थिमय मछलियों** (Cartilaginous fishes) या **इलैस्मोब्रैन्क मछलियों** की त्वचा में पाये जाते हैं। इन शल्कों में एक चपटी अस्थि **आधारीय प्लेट** (Basal plate) होती है, इस प्लेट के ऊपर तीन नोकों (Points) वाला एक शूल होता है, यह शूल एपिडर्मिस से ऊपर की ओर उभरा रहता है, इनकी दिशा पीछे की ओर होती है। शूल (Spines) के अंदर एक **पल्प गुहिका** (Pulp cavity) होती है, जिसमें संयोजी ऊतक (Connective tissue), रक्त वाहिनियाँ (Blood vessels) और **ओडोन्टोब्लास्ट** (Odontoblast) कोशिकाओं से बना **पल्प/मज्जा**

होती है। आधारीय प्लेट (Basal plate) **डेन्टीन** (Dentine) की बनी होती है, इसके ऊपर **विट्रोडेन्टीन** (Vitrodentine) का आवरण चढ़ा होता है। प्लेकॉयड शल्क के दोनों भाग आधारीय प्लेट एवं शूल मीसोडर्म से निर्मित होते हैं। शार्कों (Sharks) की पकाई हुई त्वचा को जिसमें प्लेकायड शल्क उपस्थित होते हैं, **शैगरीन** (Shagreen) कहते हैं।

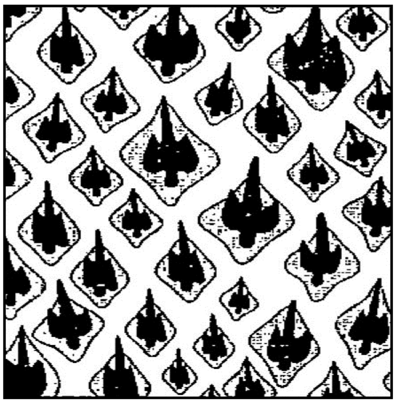

चित्र क्र. 2.10: **Integument : Placoid Scales on the Surface of the Skin**

शार्क एवं डॉगफिश में प्लेकॉयड शल्क अधिक छोटे, संख्या में अधिक एवं पास–पास स्थित रहते हैं, परन्तु स्केट मछली (Skate fish) में ये शल्क बड़े–बड़े और वितरित या बिखरे हुए होते हैं। इलास्मोब्रैन्क मछलियों में प्लेकॉयड शल्क रूपान्तरित होकर विभिन्न संरचनाएँ– **मुख पथीय दंतिकाएँ** (Stomodeal denticles), **दान्त** (Teeth), **आरा दान्त** (Saw teeth), और **दंश** (Sting) का बनाते हैं।

3. **टीनॉयड शल्क (Ctenoid scales)**– इन शल्कों के ऊपर आइसोपेडीन (Isopedine) की पतली स्तर होती है। यह शल्क केन्द्र में मोटे और सीमान्त पर पतले होते हैं। इन शल्कों में संकेन्द्रिक (Concentric) वृद्धि रेखाएँ होती हैं, इन शल्कों के मुक्त पश्च भाग में छोटे–छोटे कंकत (Cteni) या दाँत पाये जाते हैं। अग्र आन्तरिक भाग में दबा हुआ और लहरदार सीमान्त होता है। टीनॉयड (Ctenoid) शल्क सामान्यतः अस्थिमय मछलियों (Bony fishes) का बाह्य कंकाल बनाते हैं। इन शल्कों में एक उदग्र नलिका पार्श्व रेखा (Lateral line) से आती है और सतह पर खुलती है।

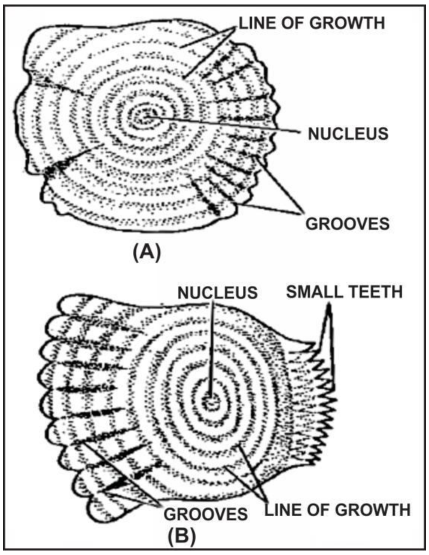

चित्र क्र. 2.11: **Integument : Dermal Scales (A) Cycloid and (B) Ctenoid Scales**

यह शल्क भी विकर्ण क्रम में स्थित होते हैं। इन शल्कों में एक अस्थिल परत/स्तर होती है, जिसके नीचे तन्तुकी संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue) पाये जाते हैं। यह शल्क कार्प मछलियों (Carps) में नहीं पाये जाते हैं।

4. **गेनॉयड (Ganoid)**– यह शल्क प्रारम्भिक आदिम मछलियों की त्वचा में पाये जाते हैं। इन शल्कों में एक आधारीय स्तर आइसोपेडीन (Isopedine) की होती है, इसके ऊपर एक ऱ्हासित कॉस्माइन (Reduced cosmoine) की स्तर होती है, सबसे ऊपर की स्तर एक पारभासी पदार्थ गैनोइन (Ganoin) की होती है। कुछ शल्कों में ऱ्हासित कॉस्माइन स्तर नहीं पाई जाती है। कॉस्माइन (Cosmoine) की मध्य स्तर कड़े डेन्टाइन (Dentine) की होती है। कॉस्माइन स्तर के अनुसार गेनॉयड शल्कों को विभाजित किया जाता है–
   (i) **पैलिओनिस्कॉयड गेनॉयड शल्क (Palaeoniscoid ganoid scales)**– यह शल्क केवल पॉलीप्टेरस (Polypterus) में पाये जाते हैं। इन शल्कों में कॉस्माइन स्तर ऱ्हासित होती है।
   (ii) **लेपिसोस्टीऑयड गेनॉयड शल्क (Lepisosteoid ganoid scales)**– इन शल्कों में कॉस्माइन स्तर पूर्णरूप से अनुपस्थित होती है, इस कारण गेनाइन स्तर सीधे आइसोपेडीन स्तर के ऊपर पाई जाती है। गेनॉयड शल्क पास–पास फर्श की टाईल्स के समान परस्पर लगे रहते हैं।
5. **सायक्लॉयड (Cycloid)**– यह शल्क गोल, केन्द्रीय भाग में मोटे तथा सीमान्त भाग में पतले होते हैं। इन शल्कों में एक नीचे की स्तर तन्तुकी संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue) की होती है तथा एक ऊपरी

स्तर अस्थि समान आइसोपेडीन (Isopedine) की होती है, जो डेन्टीन (Dentine) को बनाती है। इन शल्कों में संकेन्द्रित वृद्धि रेखाएँ (Concentric growth lines) होती हैं। यह वृद्धि रेखाएँ मछलियों की उम्र (Age) को दर्शाती हैं। यह शल्क एक–दूसरे को विकर्णतः अतिव्याप्त करते हुए चर्म/डर्मिस में धँसे होते हैं। प्रत्येक शल्क का अग्र भाग पिछले शल्क का पश्च भाग ढँके रहता है। यह शल्क अस्थिमय मछलियों (Bony fishes) में बाह्य कंकाल को बनाते हैं। इन शल्कों में एक उदग्र नलिका, पार्श्व रेखा (Lateral line) से आती है और बाहर की ओर खुलती है।

कुछ मछलियों में टीनॉयड (Ctenoid) एवं सायक्लॉयड (Cycloid) दोनों प्रकार के शल्क पाये जाते हैं, नीचे की ओर सायक्लॉयड तथा ऊपर की ओर टीनॉयड शल्क पाये जाते हैं। अश्व मीन (Sea horse) में शल्क शरीर पर एक कवच बनाते हैं, जो कि शरीर को ढँके रहते हैं।

2.2.7 चतुष्पादों में डर्मल व्युत्पत्तियाँ (Dermal Derivatives in Tetrapods)

चतुष्पादों (Tetrapods) में डर्मल व्युत्पत्तियों के रूप में अस्थिल प्लेटें (Bony plates) या ओस्टियोडर्म (Osteoderm) पाये जाते हैं। सरीसृप वर्ग (Class Reptilia) के सबसे प्राचीन प्राणियों कछुओं एवं मगरमच्छों (Crocodiles) में अस्थिल चर्मी शल्क होते हैं। कछुओं में कैरापेस (Carapace) एवं प्लैस्ट्रान (Plastron) के नीचे अविछिन्न ओस्टियोडर्म होते हैं, इन ओस्टियोडर्म में एक दृढ़/कठोर चर्मीय (Dermal) कंकाल पाया जाता है जो अन्तःकंकाल (Endoskeleton) के साथ जुड़ता है। मगरमच्छों में चर्मीय शल्कों के नीचे ओस्टियोडर्म केवल पीठ एवं गले पर पाये जाते हैं। भेक (Toad) की कुछ जातियों में डर्मल शल्क, अस्थिल प्लेटों के रूप में सिर और पीठ की त्वचा में धँसे हुए होते हैं। मगरमच्छों में डर्मल प्लेट आकार में छोटी होती है, केवल शरीर की पृष्ठीय सतह पर एपिडर्मल शल्कों के नीचे पाई जाती है।

पक्षियों में चर्मीय व्युत्पत्तियों का ह्रास होता है। पक्षियों में केवल खोपड़ी (Skull) की कलाजात अस्थियों (Membranous bones) को छोड़कर डर्मल शल्क या डर्मल कंकाल पक्षियों में अनुपस्थित होते हैं। स्तनी प्राणियों में ओस्टियोडर्म, आर्मेडिलो (Armadillo) में एपिडर्मल शल्कों के नीचे स्थित होते हैं। यह स्पन्जी संगठन की अस्थिल प्लेटें (Bony plates) होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ व्हेलों (Whales) में पीठ और पृष्ठीय पंख (Dorsal fin) पर अस्थिमय ओस्टियोडर्म होते हैं।

2.2.8 पक्षियों में त्वचा के व्युत्पन्न (Derivatives of Skin in Birds)

पिच्छ/पर (Feathers)– पिच्छ, पक्षियों का प्रमुख लक्षण है, पिच्छ पक्षियों के अतिरिक्त अन्य प्राणियों में नहीं पाये जाते हैं। संरचना के आधार पर पक्षियों के पिच्छों को तीन प्रकार में विभाजित किया जाता है–

टिप्पणी

A. कन्टूर पिच्छ/समोच्च पिच्छ (Contour feather of Plumae)

B. लघु या कोमल पिच्छ (Down feather)

C. रोम पिच्छ/फिलोप्ल्यूम (Filoplume)

A. कन्टूर पिच्छ/समोच्च पिच्छ (Contour feather of Plumae)– कुछ पक्षियों के कन्टूर पिच्छ में ऊर्ध्व नाभि (Superior umbilicus) के पास रेकिस एवं क्विल के संगम पर एक अन्य पिच्छ पाया जाता है, जिसको **अनुपिच्छ** (After shaft) या **अधःरेकिस** (Hyporachis) कहते हैं। इनमें हेमुलाई (Hamuli) अनुपस्थित, लेकिन पिच्छक (Barbs) एवं पिच्छिकाएँ (Barbules) होती हैं।

पक्षियों में विभिन्न कार्यों को करने के लिए पिच्छ विभिन्न प्रकार से रूपान्तरित होते हैं। यह रूपान्तरण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

(अ) उड्डयन पिच्छ (Flight feathers)– इसकी संरचना प्रारूपी कन्टूर पिच्छ के समान होती है। इसमें भी पूर्ण विकसित वृन्त एवं पिच्छ फलक होता है। पिच्छक (Barbs), पिच्छिकाएँ (Barbules) एवं हेमुलाई (Hamuli) एवं खाँच युक्त सीमान्त (Grooved edges) विकसित रूप में पाये जाते हैं। इन पिच्छों को शरीर पर स्थिती के अनुसार **पक्ष पिच्छों** (Remiges), **पुच्छ पिच्छों** (Rectrices), **देह पिच्छों** (Coverts) एवं **आकृति पिच्छों** में विभाजित होते हैं।

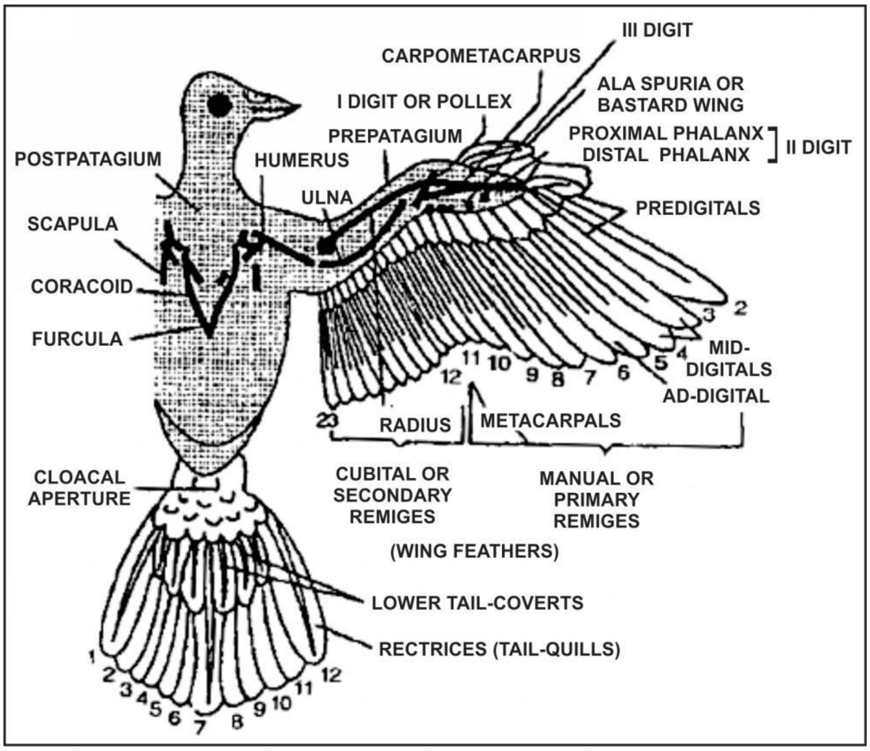

चित्र क्र. 2.12: **Arrangement of Flight Feathers**

(ब) पक्ष पिच्छ (Remiges)– यह पिच्छ आकार में बड़े होते हैं तथा पंखों पर पाये जाते हैं। इनको पक्षान्त (Pinions) भी कहते हैं।

इनकी संख्या कबूतर में 23 होती है जिनमें से – 11 पक्ष पिच्छ हाथ से जुड़े रहते हैं ओर **प्राइमरीज/प्राथमिक पक्ष पिच्छ** (Primaries/Primary wing quill) कहलाते हैं। शेष 12 पक्ष पिच्छ अल्ना (Ulna) से जुड़े होते हैं। यह द्वितीय पक्ष पिच्छ या सेकन्ड्रीज (Secondary wing quill/secondaries) कहलाते हैं। 11 प्राइमरीज में से–

(a) 6 पिच्छ मेटाकार्पल (Metacarpal) से जुड़े रहते हैं।

(b) शेष 5 पिच्छ II एवं III अंगुलियों से जुड़े रहते हैं, इनको डिजिटल पिच्छ (Digital feathers) कहते हैं। II अंगुली की दूरस्थ अंगुलास्थि पर **दो पूर्वांगुलक** (Digitals) पिच्छ एवं समीपस्थ अंगुलास्थि पर **दो मध्य अंगुलक** (Mid digital) पिच्छ होते हैं। III अंगुली पर एक अकेला **अधि – अंगुलक** (Ad-digital) पिच्छ पाया जाता हैं।

B. (i) पुच्छ पिच्छ– पंख के अग्र सीमान्त पर पिच्छों का एक गुच्छा होता है, जो **हस्तांगुष्ठ** (Pollex) से उत्पन्न होता है। इसको **ऐला स्पूरिया** (Ala-spuria)/**बास्टर्ड पिच्छ** (Bastard feather) कहते हैं–

(a) 12 **पुच्छ पिच्छ/रेक्ट्रीसिस (Rectrices)**– पूँछ के चारों ओर पंख (Fan) के समान व्यवस्थित होते हैं। यह पिच्छ उड़ते समय रडर (Rudder) के समान कार्य करते हैं और जमीन पर उतरते समय ब्रेक (Brake) लगाने के काम आते हैं।

(b) देह पिच्छ (Coverts) छोटे आकार के पंख पिच्छ (Wing feather) होते हैं जो पक्ष पिच्छों/रेमीजेस एवं पुच्छों/रेक्ट्रीसिस के आधारों के बीच के रिक्त स्थान को भरते हैं। इन देह पिच्छों की/अनेक ऊर्ध्व एवं अधः पक्षक पंक्तियाँ, पक्ष पिच्छों के आधारों को ढँके रहती हैं। इसी प्रकार पुच्छ पिच्छों के आधार भी इन पिच्छों से ढँके रहते हैं।

(ii) कोमल पिच्छ (Down feather)– इन पिच्छों की संरचना पृष्ठ पर दी गई है। कबूतर (Pigeon) में नीडशावक (Nestling down) पिच्छ जो शिशु–पक्षी (Chick) के शरीर पर पहला पिच्छ आवरण बनाते हैं। कन्टूर पिच्छों द्वारा प्रतिस्थापित किये जाते हैं।

C. रोम पिच्छ (Filoplume)– इन पिच्छों मे एक लम्बा पतला वृन्त होता है, वृन्त के ऊपर अन्तस्थ (Terminal) बिना हेमुलाई (Hamuli) वाले पिच्छक होते हैं। यह पिच्छ सम्पूर्ण शरीर पर कन्टूर पिच्छों के बीच–बीच में स्थित होते हैं।

2.2.9 पिच्छ विन्यास (Pterolysis)

पक्षियों के शरीर पर पिच्छों की व्यवस्था को **पिच्छ विन्यास** कहते हैं। पक्षियों के सम्पूर्ण शरीर पर पिच्छ (Feathers) एकसमान रूप से व्यवस्थित नहीं होते हैं। यह

टिप्पणी

पिच्छ शरीर के कुछ स्थानों पर पाये जाते हैं, इन स्थानों को **पिच्छ क्षेत्र** (Pterylae) कहते हैं। कबूतर के शरीर में दस (10) पिच्छ क्षेत्र पाये जाते हैं–

(i) **शीर्षस्थ पिच्छ क्षेत्र (Cephalic pterylae)**– यह सिर पर पाया जाता है।

(ii) **ग्रीवा पिच्छ क्षेत्र (Cervical pterylae)**– यह गर्दन पर पाया जाता है।

(iii) **ह्यूमेरल पिच्छ क्षेत्र (Humeral pterylae)**– यह कन्धे पर पाया जाता है और ह्यूमेरस को ढँके रहता है।

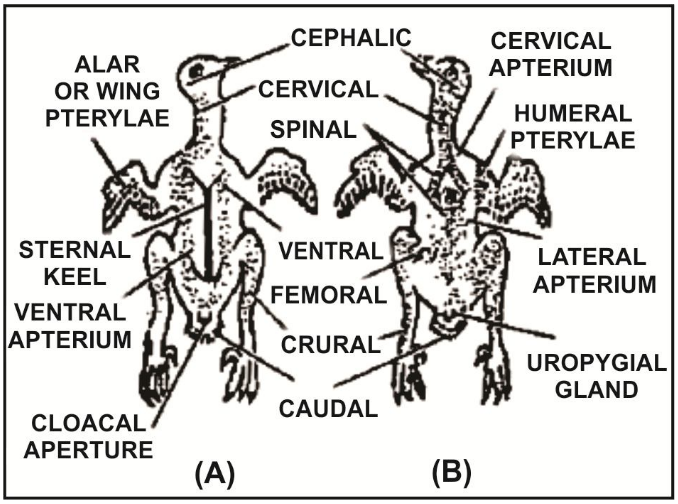

चित्र क्र. 2.13: **Feathers Tracts: (A) Ventral View, (B) Dorsal View**

(iv) **मेरु पिच्छ क्षेत्र (Spinal pterylae)**– यह कबूतर के शरीर की पृष्ठ सतह पर मेरु रज्जु (Spinal cord) के साथ–साथ होता है और गर्दन से पूँछ तक पाया जाता है।

(v) **पक्षाभ पिच्छ क्षेत्र (Alar pterylae)**– यह क्षेत्र रेमीजीस पिच्छों और उनके आधारों के बीच पायी जाने वाली देह पिच्छों की ऊर्ध्व और अधः पक्षक पंक्तियाँ होती हैं।

(vi) **अधर पिच्छ क्षेत्र (Basal pterylae)**– इसमें दो क्षेत्र, छाती के दोनों ओर एक–एक क्षेत्र होता है।

(vii) **उरु पिच्छ क्षेत्र (Femoral pterylae)**– डैनो के बाहरी ओर पाया जाता है।

(viii) **जंघा पिच्छ क्षेत्र (Crural pterylae)**– कबूतर की जाँघ पर पाया जाता है।

(ix) **पुच्छ पिच्छ क्षेत्र (Caudal pterylae)**– इस भाग में पुच्छ एवं देह पिच्छों की ऊर्ध्व एवं अधः पुच्छावरक पंक्तियाँ आती हैं।

(x) **पार्श्व पिच्छ क्षेत्र (Lateral pterylae)**– कबूतर के पार्श्व में होता है।

2.2.10 स्तनी (Mammals)

इनकी त्वचा सूखी एवं जलरोधी होती है। यह रोमयुक्त एवं कोमल होती है। स्तनी की त्वचा भी दो भागों में विभाजित होती है– (1) बाह्य एपिडर्मिस (Outer Epidermis), (2) आन्तरिक चर्म/डर्मिस (Dermis)–

1. **एपिडर्मिस (Epidermis)**– यह भ्रूण की एक्टोडर्म से निर्मित होती है। यह सबसे अधिक मोटी होती है। एपिडर्मिस बहुकोशिकीय (Multicellular) एवं बहुस्तरीय (Multilayered) होती है। यह चार स्तरों में विभाजित होती है– (अ) बाहरी स्तर **किण/श्रृंगीय स्तर** (Stratum corneum) होती है। इसकी कोशिकाएँ चपटी होती हैं। 8–10 स्तर चपटी कोशिकाओं की होती हैं। इन कोशिकाओं का कोशिकाद्रव्य सूख जाता है, इन कोशिकाओं की प्रोटीन केरेटिन या श्रृंगी पदार्थ में परिवर्तित हो जाती है। इन कोशिकाओं को **केरेटिन कोशिकाएँ** (Keratin cells) कहते हैं। जैसे–जैसे त्वचा के अंदर की कोशिकाएँ बाहर की ओर सरकती हैं, केरेटिन कोशिकाएँ त्वचा से पृथक् होती जाती हैं।

   श्रृंगीय स्तर के नीचे एक **स्वच्छ स्तर/स्ट्रेटम ल्यूसिडियम** (Stratum lucidium) होती है, जिसको **अवरोध स्तर** (Barrier layer) भी कहते हैं। इस स्तर की कोशिकाएँ संहत एवं परस्पर संयोजित होकर एक निश्चित क्षेत्र को बनाती हैं। स्वच्छ स्तर में **इलाइडीन** (Eleidin) नामक रासायनिक पदार्थ होता है। इस पदार्थ के कारण कोशिकाएँ पारदर्शक होती हैं।

   स्वच्छ स्तर के नीचे एक **कणिकीय स्तर** (Stratum granulossum) होता है। इसमें केरेटोहायलिन (Keratohyalin) की गहरी अभिरंजनीय कणिकाएँ (Pigmented granules) होती हैं। जैसे–जैसे इस स्तर की कोशिकाएँ बाहर को खिसकती हैं चपटी होती जाती हैं।

   कणिकीय स्तर के नीचे **कंटक स्तर** (Stratum spinossum) होती है। इसकी कोशिकाएँ कंटकीय अन्तराकोशिक सेतुओं के द्वारा आपस में बँधी रहती हैं।

   एपिडर्मिस की आन्तरिक स्तर जो कंटक स्तर के नीचे स्थित होती है **जननिक स्तर** (Stratum germinativum) या **मैल्पीजी स्तर** (Stratum malpighii) होती है और आधारिक झिल्ली (Basement membrane) पर टिकी रहती है। जननिक स्तर से विभाजन के पश्चात् नवीन कोशिकाएँ निर्मित होती रहती हैं जो एपिडर्मिस की बाहर की सतह की ओर सरकती जाती हैं।

   स्तनी प्राणियों की एपिडर्मिस में श्लेष्म ग्रन्थियाँ (Mucus glands) अनुपस्थित होती हैं। एपिडर्मिस की कोशिकाओं से नाखून, नखर, सींग, खुर्र आदि व्युत्पत्तियाँ निर्मित होती हैं।

2. **चर्म/डर्मिस (Dermis)**– अधिक विकसित होती है। यह दो भागों की बनी होती है। चर्म का ऊपरी भाग **पैपिलरी स्तर** (Papillary layer) कहलाती है। इसमें लचीले (Elastic) एवं कोलेजन (Collagen) तन्तु तथा

टिप्पणी

इनके बीच–बीच में रक्त वाहिनियाँ/केशिकाएँ (Blood capillaries) पाई जाती हैं। यह भाग कोमल ओर लचीला होता है।

चर्म/डर्मिस के निचले भाग में एक जालकीय स्तर होती हैं और इसमें इलास्टिक एवं कोलेजन तन्तु होते हैं। डर्मिस की दोनों स्तरों में तन्त्रिकाएँ, अरेखित पेशियाँ (Unstriated muscles), कुछ ग्रन्थियाँ, स्पर्श कणिकाएँ एवं संयोजी ऊतक होते हैं। चमड़ा (Leather) बनाने में चर्म/डर्मिस सहायता करती है। चर्म के आन्तरिक भाग में एक–दूसरे से परस्पर जुड़ी हुई वसा–कोशिकाएँ (Fat cells) होती हैं।

त्वचा में एपिडर्मिस से बाल, स्वेद ग्रन्थियाँ, तैलीय ग्रन्थियाँ (Sebaceous glands) एवं स्तन ग्रन्थियाँ निर्मित होती हैं। एपिडर्मिस की सबसे निचली स्तर में वर्णक (Pigments) होते हैं जो त्वचा को रंग प्रदान करते हैं। इन रंगीन कोशिकाओं को मेलेनोफोर (Melanophore) कहते हैं। यह कोशिकाएँ, कणिकाओं के निर्माण के पश्चात् लुप्त हो जाती हैं। मनुष्य की त्वचा में रंगीन कोशिकाएँ लुप्त नहीं होती हैं। यह **मेलेनोसाइट** (Melanocytes) के रूप में पाई जाती हैं।

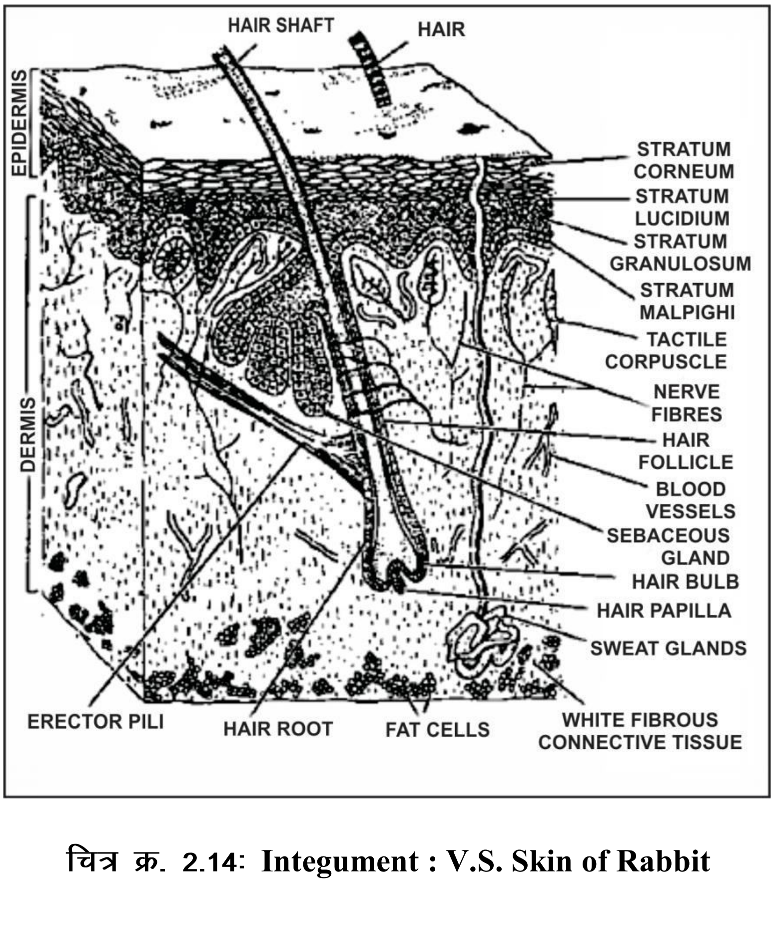

चित्र क्र. 2.14: **Integument : V.S. Skin of Rabbit**

2.2.11 शल्कों, बालों एवं परों/पंखों की संरचना (Structure of Scales, Hairs and Feathers)

टिप्पणी

1. **शल्क (Scales)**– अधिकांश मछलियों की त्वचा, बाह्य कंकाल (Exoskeleton) द्वारा आच्छादित होती है। बाह्य/कंकाल **शल्कों (Scales)** के रूप में होते हैं। कुछ मछलियों की त्वचा नग्न होती है और त्वचा में कोई भी शल्क नहीं पाये जाते हैं। **उदाहरण**– कैटफिशेज/कैटमछलियाँ (Catfishes), कुछ जातियों जैसे कि **पोलियोडोन** (Polydon) एवं **ऐसिपेन्सर** (Acipenser) मछलियाँ शरीर के स्थानीय क्षेत्र को दर्शाती है। उत्पत्ति के अनुसार शल्क दो प्रकार के होते हैं– (i) वह शल्क जो इपिडर्मिस एवं डर्मिस दोनों की स्त्रावी क्रिया के कारण बनते हैं। जैसेकि **प्लेकॉयड शल्क** (Placoid scales) (ii) वह शल्क जो केवल डर्मिस के द्वारा व्युत्पन्न किये जाते हैं। यह शल्क अस्थिल मछलियों में पाये जाते हैं।

   संरचना की दृष्टि से शल्क (Scales) निम्न प्रकार से वर्गीकृत किये जाते हैं, जैसे कि **कोस्मॉइड** (Cosmoid), **गैनाइड** (Ganoid), या **रहोम्बोइड्** (Rhomboid), **प्लेकाइड** (Placoid), **सायक्लाइड** (Cycloid) एवं **टीनायॅड** (Ctenoid), अन्तिम दो प्रकार के शल्कों को **अस्थिल कंटकीय शल्क** (Bony ridge scales) भी कहते हैं–

   (a) **कोस्माइड शल्क (Cosmoid Scales)**– यह शल्क आदिम या विलुप्त क्रोसोप्टेरीजी, लेटिमेरिया (Latimeria) एवं **डिप्नोई** (Dipnoi) में पाये जाते हैं। इन शल्कों की बाहरी स्तर पतली एवं इनेमल समान होती है, जिसको **विट्रोडेन्टीन** (Vitrodentine) कहते हैं। मध्य स्तर कठोर, अकोशिकीय (Non-cellular) डेन्टीन (Dentine), समान पदार्थ से बनी होती है जिसको कॉस्मीन (Cosmine) कहते हैं। इसमें अनेक शाखान्वित नलिकाएँ (Branched tubules) एवं कक्ष (Chambers) पाये जाते हैं। इसकी आन्तरिक स्तर वाहिकामय अस्थिल पदार्थ (Vascularical bony substance), आइसोपेडीन (Isopedine) की बनी होती है। यह शल्क नीचे से नये आइसोपेडीन के बनने के पश्चात् वृद्धि करते हैं। कॉस्माइड शल्क जीवित मछलियों में नहीं पाये जाते हैं। जीवित डिप्नोई मछलियों में सायक्लाइड शल्क होते हैं जिसमें कास्माइन स्तर (Cosmine layer) लुप्त होते जाती है।

   (b) **गैनॉयड शल्क (Ganoid scales)**– यह शल्क आदिम ऐक्टिनोप्टेरिजियन्स (Actinopterygians) मछलियों में पाये जाते हैं। इन मछलियों को **गैनायॅड मछलियाँ** (Ganoid fishes) कहते हैं। यह शल्क भारी होता हैं और इसमे बाहरी स्तर कठोर अकार्बनिक इनेमेल समान पदार्थ की होती है, जिसको **गेनॉइन** (Ganoin) कहते हैं। मध्य स्तर **कास्माइन** (Cosmine) होती है, जिसमें अनेक शाखन्वित नलिकाएँ होती हैं। सबसे अंदर की स्तर अधिक मोटी ओर **लेमेलर अस्थि** (Lamellar bone) **आइसोपेडीन** (Isopedine) की बनी होती

है। यह शल्क नीचे और ऊपरी सतह में नई स्तरों के बनने के द्वारा आकार में वृद्धि करते हैं। यह शल्क सामान्यतया समचतुर्भुज (Rhomboid) आकार में होते हैं। यह शल्क आपस में खूँटी (Peg) एवं सन्धि के द्वारा जुडते हैं।

यह शल्क **ऐसिपेन्सर** (Acipenser) मछली में बड़े, विलगित (Isolated) अस्थिल (Scutes) के रूप में होते हैं और पाँच अनुदैर्ध्य पंक्तियों में उन स्थानों पर व्यवस्थित होते हैं जहाँ अधिक टूट फूट होती है। **लेपिडोस्टियस** मछली में यह शल्क कठोर, पालिशयुक्त समचतुर्भुजीय प्लेट (Rhomboid plates) के रूप में होते हैं सिरे से सिरे तक जुड़े होते हैं। इस प्रकार एक पूर्ण कवच/ढाल (Armour) बना लेते हैं। इन शल्कों में कास्मीन स्तर लुप्त हो जाती है, इस कारण शल्क पतले होते हैं। **एमिया** (Amia) मछली में यह शल्क अधिक पतले होते हैं, इन शल्कों में गेनॉइन स्तर (Ganoin layer) लुप्त होती है और यह सायक्लाइड (Cycloid) शल्क के समान होते हैं।

(c) प्लेकाइड शल्क (Placoid scales)– मछलियों की त्वचा में सूक्ष्म **चर्मीय दन्तिकाएँ** (Dermal denticles) या **प्लेकाइड शल्क** पाये जाते हैं जो तिरछी पंक्तियों में व्यवस्थित होते हैं, यह शार्क, रे, या उपास्थिमय (Shark, Rays or Cartilaginous) मछलियों में बाह्यः कंकाल (Exoskeleton) के रूप में पाये जाते हैं। प्रत्येक शल्क में डायमण्ड आकार में कैल्सीयुक्त **आधारीय प्लेट** (Basal plate) पाई जाती है, जिसमें **त्रिरेखीय** (Triradiant) शंकु/कंटक (Spine) बाहर की ओर निकलते रहते हैं। यह कंटक/शूल (Spine) पीछे की दिशा की ओर व्यवस्थित होते हैं। **आधारीय प्लेट** कैल्शीयम ऊतक की बनी होती है जो दान्तों के डेन्टीन के समान होती है। प्लेट के मध्य में एक छिद्र होता है जो गुहिका (Cavity) में खुलता है, इस गुहिका को **पल्प गुहिका** (Pulp cavity) कहते हैं। यह पल्प गुहिका शूलों (Spines) में फैली रहती है, इस गुहिका में **डेन्टीन** (Dentine) को निर्मित करने वाली **ओडोन्टोब्लास्ट कोशिकाएँ** (Odontoblast cells) होती हैं।

शूल (Spine) **डेन्टीन** (Dentine) के बने होते हैं, यह एक **कैल्सीमय** (Calcareous) पदार्थ होता है, बाहर की ओर एक कठोर, सघन, **ऐनेमल समान पदार्थ** (Enamel like substance) से आच्छादित होता है। डेन्टीन, स्पन्जी (Spongy) होता है जिसमें **वाहिकाएँ/केनेलिकुलि** (Canaliculi) होती है। इसके अतिरिक्त इसमें संवहनी गुहिकाएँ, संयोजी ऊतक (Connective tissue), रक्त वाहिनियाँ (Blood vessels) पाई जाती है। इन मछलियों में प्लेकाइड शल्क की आधारीय प्लेट (Basal plate) एवं शूल (Spine) मीसोडर्म (Mesoderm) से निर्मित होते हैं।

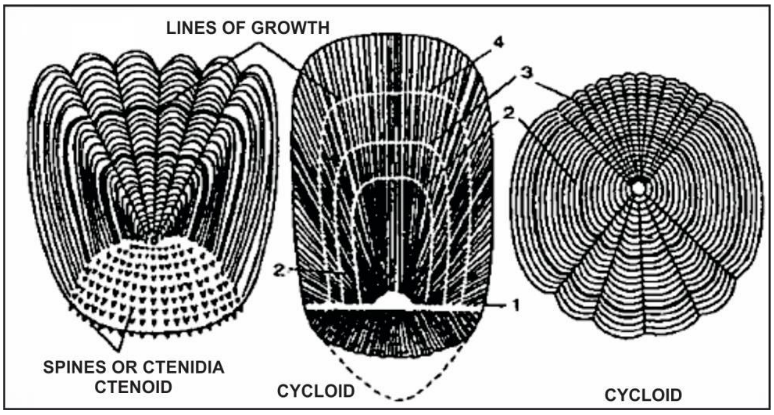

चित्र क्र. 2.15: **Cycloid and Ctenoid Scales: 1. Edge of Smolt Scale; 2. First Winter Zone Mark; 3. Spawning Mark; 4. Second Winter Zone Mark**

शार्क मछलियों की पकाई हुई त्वचा को जिसमें **प्लेकायॅड शल्क** (Placoid scales) उपस्थित होते हैं, **शैगरीन** (Shagreen) कहलाती है। इलास्मोब्रैन्क मछलियों में प्लेकाइड शल्क रूपान्तरित होकर विभिन्न संरचनाएँ– **मुख पथीय दन्तिकाएँ** (Stomodaeal dentricles), **दन्त** (Teeth), **आरा दन्त** (Saw teeth) एवं **दंश** (Sting) को बनाते हैं।

(d) सायक्लायड शल्क (Cycloid scales)– यह शल्क गोल, केन्द्रीय भाग में मोटे तथा सीमान्त भाग में पतले होते हैं। इन शल्कों में एक नीचे की स्तर **तन्तुकी संयोजी ऊतक** (fibrous connective tissue) की होती है तथा एक ऊपरी स्तर अस्थिसमान आइसोपेडीन (Isopedine) की बनी होती है। यह **डेन्टीन** (Dentine) को बनाती है। इन शल्कों में **सकेन्द्रित वृद्धि रेखाएँ** (Concentric growth lines) होती है। यह वृद्धि रेखाएँ मछलियों की उम्र (Age) को दर्शाती हैं। यह शल्क एक दूसरे को विकर्णतः (Radially) अतिव्याप्त करते हुए चर्म/डर्मिस में धँसे होते हैं। प्रत्येक शल्क का अग्र भाग, पिछले शल्क के पश्च भाग को ढँके रहते हैं। शल्कों में एक उदग्र नलिका, पार्श्व रेखा (Lateral line) से आती है और बाहर की ओर खुलती है। शल्क का जो भाग त्वचा के बाहर होता है, इसमें कम उभार एवं कटाव मापे जाते हैं। शल्क का अग्र भाग त्वचा में धँसा रहता है।

टिनॉयड शल्क (Ctenoid scales)– यह शल्क गोलाकार होते हैं, तथा यह सायक्लायड शल्कों (Cycloid scales) से स्वतन्त्र सिरों पर कटाव एवं गर्तों की उपस्थिति के कारण भिन्न होते हैं। शल्क के पश्च सिरे की सतह पर अनेक शूल (Spines) भी मापे जाते हैं। यह शल्क केन्द्रीय भाग में मोटे और सीमान्त भाग में पतले होते हैं। इन शल्कों में सकेन्द्रीय वृद्धि रेखाएँ (Connective growth lines) होती

हैं। इन शल्कों के ऊपर **आइसोपेडीन** (Isopedine) की पतली स्तर होती है। इन शल्कों में एक उदग्र नलिका पार्श्व रेखा (Lateral line) से आती है और सतह पर पहुँचती है। इन शल्कों के स्वतन्त्र सिरों पर **कंकाट** (Cteni) या **दन्त** मापे जाते हैं। यह शल्क, अस्थिल मछलियों के बाह्यः कंकाल को बनाते हैं।

कुछ मछलियों में टिनॉयड (Ctenoid) एवं सायक्लॉयड (Cycloid) दोनों प्रकार के शल्क पाये जाते हैं। नीचे की ओर सायक्लायड (Cycloid) शल्क तथा ऊपर की ओर **टीनॉयड शल्क** (Ctenoid scales) पाये जाते हैं। अश्व मीन (Sea horse) में शल्क शरीर में एक कवच को बनाते हैं। जो शरीर को ढँके रहते हैं।

2. **बाल (Hairs)**– बाल की उपस्थिति स्तनियों का प्रमुख लक्षण है। इनका निर्माण एपीडर्मिस से होता है। हथेलियों, तलवों तथा शिश्नमुण्ड (Glans penis) को छोड़कर बाल पूरे शरीर की त्वचा पर पाये जाते हैं। बाल के दो भाग होते हैं– (a) बाल की जड़ (Root) तथा (b) रोमकाण्ड (Shaft)–

   (a) **बाल की जड़ (Hair root)**– यह डर्मिस की गहराई में एक नालवत (Tubular) पुटिका (फॉलिकिल – Follicle) के रूप में धँसा रहता है। फॉलिकिल द्विस्तरीय (Double layered) होती है। बाहरी स्तर डर्मिस का तन्तुमय (Fibrous) तथा भीतरी स्तर एपीडर्मल कोशिकाओं का होता है। पुटिका का निर्माण एपीडर्मिस के मैलपीजी स्तर के डर्मिस में धँसे जाने के कारण होता है। फॉलिकिल का निचला सिरा इसकी गुहा में थोड़ा धँसकर एक छोटी गड्ढेनुमा रचना बनाता है जिसे रोम पैपिला (हेयर पैपिला – Hair papillae) कहते हैं। पैपिला के शिखर की रुधिर कोशिकाओं से पोषण ग्रहण कर निरन्तर विभाजित होती रहती हैं। इसी से ठोस एवं बेलनाकार (Cylindrical) रोम (Hair) का निर्माण होता है। वृद्धि स्थल पर कोशिकाओं के सक्रिय विभाजन से इनका एक गुच्छा सा बना रहता है। इसी कारण रोम का आधार भाग बल्ब (Bulb) के रूप में फैला रहता है। रोम के बल्ब (Bulb) वाले भाग में अनेक अतिरिक्त स्तर पाये जाते हैं। यह स्तर अंदर से बाहर की ओर प्रायः **हक्सले स्तर** (Huxley's layer), और **हेन्लेज़ स्तर** (Henle's layer) होते हैं। ये दोनों स्तर आपस में मिलकर आन्तरिक मूल आवरण (Root sheath) को बनाते हैं। बाहर की ओर बहुस्तरीय बाहरी मूल आवरण (Multilayered outer root sheath) होता है। बाहरी मूल आवरण की बाहरी स्तर, जननिक स्तर (Stratum germinativum) से जुड़ी रहती है तथा तैलीय ग्रन्थियों से भी सम्बन्धित रहती है। अन्त में यह रोम पुटिका (Hair follicle) में खुलती है। जो बाहरी और आन्तरिक मूल आवरण के बीच का स्थान होती है। बाल का रंग मेडुला में पाई जाने वाली अन्तः कोशिकीय स्थान में पाई जाने वाली वायु एवं कार्टेक्स में वर्णकों (Pigment) की उपस्थिती के कारण होता है।

(b) रोम काण्ड (Hair shaft)– यह रोम का वह भाग है जो पुटिका के बाहर निकला रहता है। रोमकाण्ड (हेयर शैफ्ट) किरैटिनयुक्त निर्जीव भाग होता है। रोम काण्ड/शैफ्ट (Shaft) में तीन स्तर पाये जाते हैं–

(i) **मेडुला** (Medulla),

(ii) **कार्टेक्स** (Cortex),

(iii) एक **क्यूटिकिल** (Cuticle)। क्यूटिकिल सबसे बाहर की ओर पाई जाती है।

शैफ्ट के मध्य की कोशिकायें सटी हुई, बहुभुजीय (Polygonal) होती हैं जो इसके मेडुलरी अक्ष (Medullary axis) को बनाती हैं। इसके चारों ओर लम्बी व चपटी कोशिकाओं का बहुस्तरीय कॉर्टेक्स (Cortex) होता है। कॉर्टेक्स पर शल्की (Scaled) पारदर्शक कोशिकाओं का महीन आवरण होता है जिसे **क्यूटिकिल** कहते हैं। कॉर्टेक्स की कोशिकाओं में रंग कणिकाएँ (Pigmented granules) होती हैं जिनके कारण रोम (Hair) काला या भूरा दिखाई देता है। इन कणिकाओं के नष्ट हो जाने से या इनका निर्माण बंद हो जाने के कारण बाल सफेद हो जाते हैं। बालों को हिलाने डुलाने के लिए बाल के फालिकिल (Follicle) के साथ एक ऐरेक्टर पिलाई पेशियाँ (Erector pilli muscles) सम्बन्धित रहती है।

तैल ग्रन्थि/सिबैसियस ग्रन्थि (Sebaceous glands)– ये रोम पुटिकाओं (Hair follicles) से जुड़ी तथा इन्हीं की एपीथीलियम से बनी छोटी, सामान्य व शाखान्वित कोष्ठीय ग्रन्थियाँ (Branched lobulated glands) हैं। इन्हीं में **सीबम** (Sebum) नामक प्राकृतिक तेल सदृश पदार्थ का निर्माण होता है जो बालों तथा त्वचा को चिकना, तापरोधी एवं जलरोधी बनाये रखता है। ये ग्रन्थियाँ स्वभाव में **हैलोक्राइन** (Halocrine) होती हैं – सीबम से भर जाने पर इसकी ग्रन्थिल कोशिकाएँ स्वयं मृत होकर स्त्रावित पदार्थ में चली जाती हैं।

टिप्पणी

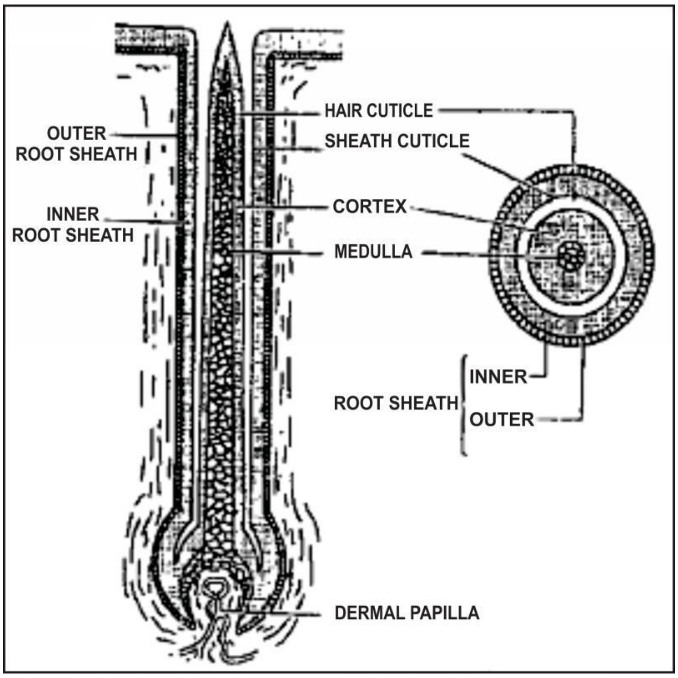

चित्र क्र. 2.16: **Longitudinal and Cross-section of the Hair along with the Hair Follicle of Mammals**

2.2.12 बालों के कार्य (Functions of Hair)

1. बाल त्वचा पर एक रक्षात्मक आवरण बनाते हैं जिसे **लोमचर्म** (पिलेज-Pelage) कहते हैं।
2. लोमचर्म (पिलेज) के घना होने पर बालों के बीच वायु फँसकर एक तापरोधी आवरण बनाती है। इस प्रकार बाल शरीर के ताप नियन्त्रण में मदद करते हैं।
3. शरीर के बाल पेशियों तथा हॉर्मोन्स के प्रभाव से खड़े होकर जलरोधी (Waterproof) व संवेदनशील हो जाते हैं जिससे शत्रु को भय लगने लगता है। इस प्रकार बाल शत्रु से रक्षा करने में मदद करते हैं। बाल खड़ा होना **एड्रीनेलिन** हॉर्मोन के नियन्त्रण में रहता है।
4. शशक की नासिका पर स्थित गलमुच्छे (Vibriassae) स्पर्श–उद्दीपन ग्रहण करने का कार्य करते हैं।
5. नासिका के बाल श्वसन मार्ग में धूल के कंणों को जाने से रोकते हैं।

टिप्पणी

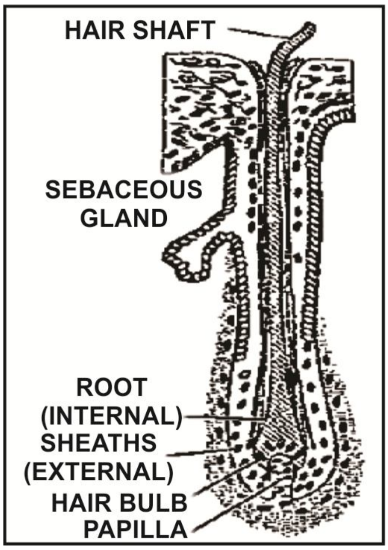

चित्र क्र. 2.17: **Structure of Hair**

बालों या रोमों (hairs) की शरीर पर व्यवस्था अनियमित होती है। सभी स्तरी प्राणियों के सम्पूर्ण शरीर पर बाल/रोम समान होते हैं। लेकिन स्तनी प्राणियों में रूपान्तरित होते हैं। **हॉग** (Hog) पर ब्रिस्टल्स (Bristles) अधिक मजबूती से विकसित होते हैं, यह लम्बे, कठोर, रोम होते हैं। सेहीर या हेजहॉग (Hedgehog) के शरीर पर पाये जाने वाले शूल (Spines) रोम/बाल से विकसित होते हैं। स्तनी प्राणियों के ऊपरी ओष्ठ पर पाई जाने वाली विब्रिसी (Vibrissae) या मूँछ, संवेदी बाल होते हैं, यह सामान्य बालों की अपेक्षा अधिक लम्बे एवं कठोर होते हैं। यह चेहरे पर पाये जाते हैं। सिटेसिया समूह (Cetacea) के स्तनी प्राणियों में केवल विब्रिसी (Vibrisae) ही पाई जाती है, शेष शरीर पर बाल अनुपस्थित होते हैं। आँखों पर पाई जाने वाली **पलकें** (Eye lashes) सामान्य बालों की अपेक्षा लम्बी एवं कठोर होती है। **ऱ्हाइनोसिरास/गेंडे** (Rhinoceros) में जो सींग पाया जाता है वह बालों के गुच्छे के रूपान्तरण से निर्मित होता है। बाल शरीर की सतह पर एक कोणीय स्थिती में व्यवस्थित होते हैं। सामान्यतया बाल बेलनाकार होते हैं, लेकिन दूरस्थ सिरे की ओर चपटे या पूर्ण लम्बाई में चपटे होते हैं। इसी कारण यह भेड़ो में कुण्डलित हो जाते हैं। ऊन रूपी बाल (Woolly hairs) का खुदरापन, छोटे प्रवर्धों की उपस्थिति के कारण होता है तथा एक विशेष गुणों वाले फर में विकसित होते हैं।

टिप्पणी

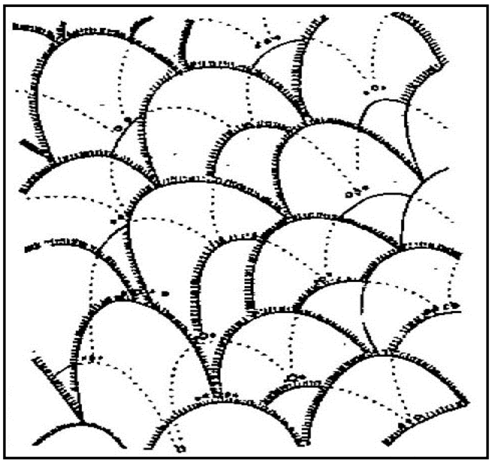

चित्र क्र. 2.18: Arrangement of the Hair in Groups of Three and Five Human Embryo; with the Probable Ancestral Arrangement of the Skin (After Stohr)

स्तनी प्राणियों की जातियों के अनुसार बाल, विलगित रूप में शरीर पर पाये जाते हैं। उत्पत्ति की दृष्टि से बाल शल्कों (Scales) के बीच में स्थित होते थे। जाति के अनुसार यह 2 या दर्जनों के रूप में या अधिक विलगित रूप में होते हैं। यह बालों के समूह समानान्तर पंक्तियों में इस प्रकार व्यवस्थित होते हैं कि प्रत्येक समूह के बाल, पीछे और आगे के बालों के अन्तराल के विपरीत स्थिती में पाये जाते हैं या हम यह कहें कि बाल **इम्ब्रिकेटेड** (Imbricated) रूप में व्यवस्थित होते हैं, जिस प्रकार कि शल्क व्यवस्थित होते हैं। वितरण की दृष्टि से एक समय स्तनी प्राणियों का शरीर दोनों शल्कों एवं बालों (Scales and hairs) के द्वारा ढँका होता था।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

1. स्तनी प्राणियों की त्वचा में एडिपोज ऊतक पाया जाता है–
   (अ) चर्म में (ब) चर्म के नीचे
   (स) अधिचर्म में (द) पेशियों में।
2. रात्रि मे निम्न में से कौन से शल्क पाये जाते हैं–
   (अ) प्लेकॉइड (ब) सायक्लाइड
   (स) रहोम्बोइड (द) टिनॉइड।
3. स्तनी प्राणियों में नाखून, नखर, सींग एवं खुर किससे उत्पन्न किये जाते हैं?
   (अ) अस्थि (ब) उपास्थि
   (स) त्वचा की पेशियाँ (द) त्वचा की कार्नियम स्तर से।

4. त्वचा की केरेटिन है–

(अ) उपास्थि (ब) अस्थिल ऊतक

(स) स्क्लेरोप्रोटीन (द) म्यूकोप्रोटीन।

5. डर्मिस या कोरियम में विकसित होती है–

(अ) ऐक्टोडर्म (ब) एण्डोडर्म

(स) मीज़ोडर्म (द) कार्डीमीसोडर्म।

6. त्वचा में उभयचरी अनुकूलताएँ हैं–

(अ) रक्षात्मक संरचना के रूप में प्लेट की उपस्थिती

(ब) शल्कीय त्वचा जो पानी की हानि को रोके

(स) चिकनापन एवं वाहिकामय

(द) उपरोक्त सभी।

7 खरगोश में विब्रिसी है–

(अ) संवेदी अंग (ब) तन्त्रकीय अंग

(स) मादा अंग (द) नर अंग।

8. मेंढक की त्वचा की स्ट्रेटम कार्नियम में _________ पाये जाते हैं।

(अ) जीवित केन्द्रकीय स्तम्भाकार कोशिकाएँ

(ब) जीवित अकेन्द्रकीय स्तम्भाकार कोशिकाएँ

(स) सूखी अकेन्द्रकीय चपटी कोशिकाएँ जिनमें स्तम्भाकार कोशिकाएँ होती हैं

(द) निर्जीव केन्द्रकीय स्तम्भाकार कोशिकाएँ

9. कुण्डलित नलाकार ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं–

(अ) आमाशय के फण्डस भाग में (ब) यकृत में

(स) स्वेद ग्रन्थियों में (द) अग्न्याशय में।

10. दुग्ध ग्रन्थियाँ _________ की रूपान्तरण होती है।

(अ) सेबैशियस ग्रन्थियाँ (ब) स्वेद ग्रन्थियाँ

(स) तैलीय ग्रन्थियाँ (द) मायोबिमियन ग्रन्थियाँ।

11. त्वचा की इपिडर्मिस में ________ नहीं पाये जाते हैं।

(अ) रक्त वाहिनियाँ (ब) तन्तुकाएँ

(स) मैलेनिन कणिकाएँ (द) इपिथीलियल कोशिकाएँ।

12. निम्नलिखित में कौनसी पेशियाँ त्वचा की गति एवं हिलाने के लिए उत्तरदायी होती है?

(अ) ऐरेक्टरपिलि (ब) पेनिकुलस कार्नोसस

(स) आकुंचन पेशी (द) कोलेजन तन्तु।

13. स्तनी प्राणियों में मोम ग्रन्थियाँ (सेसमिनस) त्वचीय ग्रन्थियों का रूपान्तरण होती है, यह सीमित होती है–

(अ) नेत्र (ब) ओल्फेक्टरी पथ

(स) पैरिनियल पेथीज (द) बाह्यः कर्ण गुहिका।

14. डर्मिस में जो बाल का भाग पाया जाता है वह कहलाता है–

(अ) रोमीय पुटिका (ब) रोम पैपिला

(स) रोम मूल (द) रोम शैफ्ट।

15. मेंढक में त्वचा हमेशा नम रहती है क्योंकि–

(अ) यह उत्सर्जी सतह के रूप में कार्य करती है

(ब) पानी को शोषण करने के लिए सतह होती है

(स) यह त्वचीय श्वसन के लिए होती है

(द) उपरोक्त में से कोई नहीं।

16. स्तनी प्राणियों में जो बाल पाये जाते हैं वह संरचना है–

(अ) इपिडर्मल (ब) ऐन्डोडर्मल

(स) मीज़ोडर्मल (द) डर्मल।

17. त्वचा की वर्णकता ________ के स्त्रावन के द्वारा होती है।

(अ) इओसिनोफिल्स (ब) मेलेनोसाइट्स

(स) मोनोसाइट्स (द) लाल रक्ताणु।

18. सरीसृप एवं छिपकलियों में जो शल्क पाये जाते हैं वह है–

(अ) एपिडर्मल शल्क (ब) डर्मल शल्क

(स) मीज़ोडर्मल शल्क (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

टिप्पणी

2.3 कशेरुकियों में कंकाल तन्त्र : लिम्ब बोन्स एवं गर्डिल्स (Skeletal System in Vertebrates : Limb Bones and Girdles)

2.3.1 कंकाल (Skeleton)

कशेरुक जन्तु अधिकांशतः स्थलीय तथा स्वच्छ जलीय (या अलवण जलीय) होते हैं। इनका वातावरण (वायु एवं स्वच्छ जल) क्रमशः इनके शरीर से बहुत हल्का होता है, इसलिए कशेरुक जन्तुओं में शरीर की आकृति बनाये रखने, आन्तरिक अंगों को सहारा एवं इनकी रक्षा करने तथा गमन में सहायता करने के लिए कंकाल तन्त्र की आवश्यकता पड़ी। कशेरुक जन्तुओं के शरीर में कठोर ऊतक (hardened tissues) मिलकर कंकाल का निर्माण करते हैं। अगर इन जन्तुओं के शरीर में मांसपेशियों को अवलम्बित करने तथा इनकी गति के लिए लीवर (levers) की तरह कार्य करने के लिए कंकाल न रहा होता तो ये जन्तु आकार में छोटे तथा धीमी गति से चलने वाले रह जाते। अकशेरुकी जन्तुओं (invertebrates animals) में अधिकांशतः कंकाल उनके शरीर की बाहरी सतह पर बाह्यकंकाल (exoskeleton) के रूप में स्त्रावित किया जाता है, जो प्रायः मृत तथा संरचनाओं को सँभालने में अक्षम होता है, जबकि कशेरुकी जन्तुओं के शरीर के अंदर एक जीवित तथा वृद्धि करने वाला **अन्तःकंकाल** (endoskeleton) पाया जाता है।

कशेरुकी कंकाल के प्रकार (Types of Vertebrates Skeleton)

कशेरुकियों में निम्न तीन प्रकार का कंकाल पाया जाता है–

1. **एपिडर्मल हॉर्नी बाह्यकंकाल (Epidermal horney exoskeleton)**– इसके अन्तर्गत पंजे (claws), रेप्टिलियन स्केल्स, पक्षियों के फैदर्स (reptilian scales, bird feathers) तथा स्तनियों के बाल, सींग, नाखून तथा खुर (hairs, horns, nails and hoofs) आदि आते हैं जो त्वचा की एपिडर्मिस के किरैटिनाज्ड डेरिवेटिव्स (keratinised derivatives) हैं। सभी जीवित ऐम्फिबियन्स (केवल जिग्नोफियोना के अतिरिक्त) में बाह्यकंकाल का पूर्ण अभाव होता है। एपिडर्मल हॉर्नी बाह्यकंकाल का अध्ययन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं।
2. **डर्मल अस्थि कंकाल (Dermal bony skeleton)**– डर्मल अस्थि कंकाल का निर्माण त्वचा की डर्मिस से होता है। इसके अन्तर्गत बोनी स्केल्स एवं प्लेट्स या स्क्यूट्स अथवा ऑस्टियोडर्मस (bony scales and plates or scutes or osteoderms), फिन रेज (fin rays) तथा ऐण्टलर्स (antelers) आते हैं जो क्रमशः मछलियों, रेप्टाइल्स तथा स्तनियों में पाये जाते हैं। मछलियों में डर्मल स्केल्स एपिडर्मिस को चीरकर शरीर की बाहरी सतह पर आ जाते हैं तथा बाह्यकंकाल (exoskeleton) का निर्माण करते हैं।
3. **अन्तःकंकाल (Endoskeleton)**– कशेरुकी जन्तुओं में कंकाल का अधिकांश भाग उनके शरीर के अंदर काफी गहराई में स्थित होता है जो **अन्तःकंकाल** (endoskeleton) कहलाता है। यह मीजैनकाइम

टिप्पणी

(mesenchyme) से विकसित होता है। इन जन्तुओं की प्रारम्भिक भ्रूणीय (embryonic) अवस्थाओं में अन्तःकंकाल कार्टिलेज (cartilage) के रूप में पाया जाता है जो अधिकांश वयस्क कशेरुकियों में अस्थि (bone) में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार की हड्डियाँ जो कार्टिलेज के द्वारा बनती हैं, को **कार्टिलेजिनस** या **रिप्लेसमैण्ट अस्थियाँ** (cartilagenous or replacement bones) कहते हैं। परन्तु **डर्मल** या **मैम्ब्रेन अस्थियाँ** (dermal or membrane bones) शरीर की ऊपरी सतह की ओर त्वचा की डर्मिस में बिना कार्टिलेज अवस्था के विकसित होती हैं। इन दोनों प्रकार की अस्थियों को विकसित होने की प्रक्रिया भिन्न होते हुए भी इनकी हिस्टॉलॉजिक संरचनाएँ (histological structures) समान होती है।

2.3.2 अन्तःकंकाल के कार्य (Functions of Endoskeleton)

कशेरुकियों के अन्तःकंकाल के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

(i) यह शरीर का एक दृढ़ आन्तरिक ढ़ाँचा (framework) बनाता है जो शरीर को भौतिक रूप में अवलम्बित करता है।

(ii) शरीर को एक निश्चित प्रकार का आकार प्रदान करता है।

(iii) शरीर के कोमल अंगों; जैसे– मस्तिष्क, फेफड़े, हृदय आदि की चारों ओर से घेर कर रक्षा करता है।

(iv) शरीर को एक विशाल आकार प्रदान करता है (जैसे– व्हेल, हाथी आदि में), क्योंकि यह जीवित होता है तथा वृद्धि करता रहता है।

(v) पेशियों को चिपकने के लिए सतह प्रदान करता है।

(vi) यह लीवर्स (levers) के समान कार्य करता है जिस पर पेशियाँ अवलम्बित रहती हैं।

(vii) इसकी बोन मैरो (bone-marrow) में लाल रक्त कणिकाओं (Red Blood Corpuscles) का निर्माण होता है।

(viii) कर्णों में ईयर ऑसिकिल्स (ear ossicles) के रूप में सुनने में सहायता करता है।

(ix) ट्रैकियल रिंग्स (Tracheal rings) तथा पसलियों के रूप में श्वसन क्रिया में सहायता करता है।

2.3.3 कशेरुकियों के अन्तःकंकाल के भाग (Divisions of Vertebrates Endoskeleton)

अध्ययन की सरलता के लिए अन्तःकंकाल को उनकी स्थिति के आधार पर तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया गया है– **ऐक्सियल** (Axial), **ऐपेण्डिकुलर** (Appendicular) तथा **हेटरोटॉपिक** (Heterotopic) अन्तःकंकाल। एक अन्य पद्धति के अनुसार अन्तःकंकाल को पहले सोमेटिक (Somatic) तथा **विसरल कंकाल** (Visceral skeleton) में विभाजित किया गया है–

1. **सोमेटिक कंकाल (Somatic skeleton)**– इसके अन्तर्गत देह भित्ति (body wall) का निम्नलिखित कंकाल आता है–

   (a) **ऐक्सियल अन्तःकंकाल (Axial-Endoskeleton)**– इसके अन्तर्गत वर्टिबल कॉलम (vertebral column), रिब्स (ribs), स्टर्नम (sternum) तथा स्कल का अधिकांश भाग (न्यूरोक्रेनियम तथा डर्मेटोक्रेनियम) आता है।

   (b) **ऐपेण्डिकुलर अन्तःकंकाल (Appendicular Endoskeleton)**– इसके अन्तर्गत गर्डिल्स (girdles) तथा उपांग अस्थियाँ (limb bones) आती हैं।

2. **विसरल कंकाल (Visceral skeleton)**– इसके अन्तर्गत फैरिंक्स की दीवार (pharyngeal wall) का कंकाल या स्प्लैन्कनोक्रेनियम (splanchnocranium) आते हैं।

2.3.4 गर्डिल्स या मेखलाएँ (Girdles)

सभी टेट्रापोड कशेरुकियों में दो प्रकार की–पेक्टोरल तथा पेल्विक गर्डिल्स पायी जाती है जो क्रमशः अग्र एवं पश्च पादों को अवलम्बित करती हैं। टेट्रानोड्स की गर्डिल्स एवं पादों में अत्यधिक समानता पायी जाती है, अतः ये समजात अंग (homologous organs) माने जाते हैं।

टेट्रापोड्स में गर्डिल्स का उद्भव (Origin of Girdles in Tetrapods)– यह पूर्णतः माना जाता है कि टेट्रापोड्स जन्तुओं में गर्डिल्स एवं पादों का उद्भव मछलियों के युग्मित पखनों तथा उनके कंकाल (paired fins and their skeleton) से हुआ है। इनके पखने अन्तः कंकाल के हड्डियों के टुकड़ों या खण्डों द्वारा निलम्बित रहते हैं जिनको **टेरिजिओफोर** (pterygiophore) कहते हैं। प्रत्येक टेरिजिओफोर कई कंकालीय खण्डों से मिलकर बना होता है। इनमें आधार वाले खण्ड को **बेसल्स** (basals) तथा दूरस्थ वाले को **रेडियल्स** (radials) कहते हैं। मछलियों के युग्मित पखनों के टेरिजिओफोर के आधारीय या बेसल्स खण्ड टेट्रापोड्स में दोनों और बड़े खण्डों के रूप में संयोजित हो जाते हैं। प्रत्येक ओर का अगला खण्ड बड़ा एवं मिड–वैण्ट्रल रेखा तक फैला रहता है जो दूसरी ओर के आधारीय खण्ड के साथ मिलकर गर्डिल का निर्माण करता है।

टिप्पणी

सारणी क्र. 2.2: स्थलीय कशेरुकियों के अन्तःकंकाल के सामान्य भाग (Divisions of Endoskeleton in Land Vertebrates)

ऐक्सियल अन्तःकंकाल (Axial Endoskeleton)			ऐपेण्डिकुलर अन्तःकंकाल (Appendicular Endoskeleton)		हेटरोटॉपिक अस्थियाँ (Heterotopic Bones)
स्कल (Skull)	**वर्टीब्रल कॉलम (Vertebral Column)**	**थोरैसिक बास्केट (Thoracic Basket)**	**गर्डिल्स (Girdles)**	**उपांग अस्थियाँ (Limb Bones)**	**विशेष अंगों के साथ विकसित अस्थियाँ (Bones Developed with Specialized Organs)**
1. न्यूरोक्रेनियम– (a) क्रेनियम या मस्तिष्क बॉक्स (b) सैन्स या संवेदी कैप्सूल्स– (i) ऑल्फैक्ट्री – घ्राण (ii) ऑप्टिक – दृष्टि (iii) ऑडिटरी – कर्ण	1. वर्टीब्री– (i) सरवाइकल गर्दन में (ii) थोरैसिक सीने में (ii) लम्बर – पीठ के निचले भाग में (iv) सैक्रल – हिप में (v) कॉडल – पुच्छ में	1. रिब्स या पसलियाँ युग्मित, बोनी या कार्टि–लेजिनस 2. स्टर्नम छाती की अस्थियाँ	1. पेक्टोरल अग्र या कन्धे की गर्डिल इसमें निम्नलिखित अस्थियाँ सम्मिलित हैं– (i) स्केपुला – डॉर्सल तल पर (ii) क्लेविकल अग्र तल पर (iii) कोराकॉडल पश्च तल पर	1. अग्रपाद– (i) ह्यूमरस – अपर आर्म मे हथेली में (ii) रेडियस – अल्नाफोर आर्म में (iii) कार्पल्स कलाई में (iv) मेटाकार्पल्स हथेली में (v) फैलेंजेज – अँगलियों में	1. रॉस्ट्रल सूअर के थूथन – में 2. ऑस कॉर्डिस हिरन के हृदय के इण्टरवैण्ट्रिकुलर सेप्टम में 3. ऑस पेनिस – चमगादड़ रोडेण्ट्स कंगारू, कार्निवोरस ह्वेल तथा निम्न प्राइमेट्स के शिश्नमें 4. ऑस – क्लाइटोरिडिस खरगोश तथा निम्न प्राइमेट्स के क्लाइटोरिस में। 5. पैसुलस – पक्षियों के साइरिंक्स में। 6. एपिप्यूबिक मोनोट्रीम तथा मार्सुपियल की वैण्ट्रल उदर दीवार में 7. सीसेमॉइड हाथों की पिसीफार्म; घुटने की कैप (पटैला) आदि
2. डर्मेटोक्रेनियम स्कल की मैम्ब्रेन या डर्मल अस्थियाँ			2. पेल्विक पश्च या हिप गर्डिल इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अस्थियाँ आती है– (i) इलियम – डॉर्सल तल पर (ii) प्यूबिस अग्र में तल पर (iii) इश्चियम – पश्च तल पर	2. पश्च पाद– (i) फीमर – जंघा में (ii) टीबिया-फिबुला शैंक में (iii) टॉर्सल्स टखन में (iv) मेटाटॉर्सल्स– पैर के तलवे में (v) फैलेंजेज– पैर की अंगुलियों में	

टिप्पणी

3. स्प्लैन्कनौ – क्रेनियम इसमें विसरल ऑर्चेज या फैरिन्जियल कंकाल सम्मिलित है– (i) ऊपरी जबड़ा (ii) निचला जबड़ा (iii) हॉएड (v) लैरिक्सं					

(a) पेक्टोरल गर्डिल का उद्भव (Origin of pectoral girdle)– कार्टिलेजिनस मछलियों **(जैसे– स्कॉलिओडॉन)** में पेक्टोरल गर्डिल के अन्तःकंकाल में उसकी मिड – वैण्ट्रल सतह पर एक **कोराकॉइड कार्टिलेज** तथा लेटरल सतह पर एक **स्कैपुलर कार्टिलेज** स्थित होती है। कार्टिलेजिनस मछलियों में डर्मल अस्थियों का अभाव होता है। बोनी मछलियों (bony fishes) में कोराकॉइड् एवं स्कैपुलर कार्टिलेज अस्थियों में बदले होते हैं तथा इनसे सम्बन्धित इनमें कुछ डर्मल अस्थियाँ; जैसे– **क्लैविकल** (clavicles), **क्लीथ्रम** (cleithrum) तथा **सुप्राक्लीथ्रम** (supracleithrum) भी पायी जाती हैं। ये सभी संरचनाएँ टेट्रापोड्स में पेक्टोरल–गर्डिल के विकास का आधार हैं। प्रारम्भिक टेट्रापोड्स में पेक्टोरल–गर्डिल इसी प्रतिरूप के आधार पर विकसित हुई है। आधुनिक टेट्रापोड्स की पेक्टोरल–गर्डिल में क्लीथ्रम तथा सुप्राक्लीथ्रम पूर्णतः लुप्त हो जाती हैं तथा क्लैविकल एवं इण्टरक्लैविकल अधिक स्पष्ट हो जाती हैं।

(b) पेल्विक गर्डिल का उद्भव (Origin of pelvic girdle)– **स्क्वैलस** (squalus) कार्टिलेजिनस मछली की पेल्विक गर्डिल दो **इश्चियोप्यूबिक कार्टिलेजों** (ischiopubic cartilages) से मिलकर बनी होती है।

जो मध्य रेखा पर एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं। टेट्रापोड्स में भ्रूणीय अवस्था में पेल्विक गर्डिल का विकास एक बैसल काटिलेजिनस प्लेट के रूप में होता है। आगे परिवर्धन (development) में यही प्लेट दो अस्थियाँ–आगे की ओर **प्यूबिस** (pubis) तथा पीछे की ओर **इश्चियम** (ischium) में बदल जाती है। इसके डॉर्सल तल पर एक और कार्टिलेज अस्थि में बंदलकर **इलियम अस्थि** (ilium bone) का निर्माण करता है। पेल्विक गर्डिल की इन तीनों अस्थियों के मिलने के स्थान पर **एसिटाबुलम** (acetabulum) का विकास होता है।

टिप्पणी

2.3.5 कशेरुकी के विभिन्न वर्गों में पेक्टोरल गर्डिल (Pectoral Girdle in Different Classes of Vertebrate)

(i) **इलास्मोब्रैंकाई या कॉण्डिक्थीज (Elasmobranchi or chondrichthyes)**– मछलियों; जैसे स्कॉलिओडॉन (scoliodon) में पेक्टोरल गर्डिल कार्टिलेज की दो चापनुमा छड़ों की बनी होती है जो पेरिकार्डियम के नीचे एक–दूसरे से जुड़ी रहती हैं। यह लगभंग U के आकृति की होती है। गर्डिल का प्रत्येक अर्ध–भाग एक **डॉर्सल स्कैपुला** (scapula) तथा एक वैण्ट्रल **कोराकॉइड** (coracoid) कार्टिलेज से बनता है। स्कैपुलर भाग के सिरे पर एक **सुप्रास्कैपुलर कार्टिलेज** स्थित होता है जो गर्डिल के डॉर्सल सिरें का निर्माण करता है। स्कैपुला तथा कोराकॉइड के सन्धि–स्थल पर एक आर्टिकुलर सतह होती है जिससे पेक्टोरल पखने की बेसल कार्टिलेजेज (basal cartilages) जुड़ी होती हैं। इस स्थल के ठीक ऊपर गर्डिल में बड़े–बड़े तीन छिद्र होते हैं जिनसे होकर ब्रैंकियल धमनियाँ तथा ब्रैंकियल तन्त्रिकाएँ गुजरती हैं।

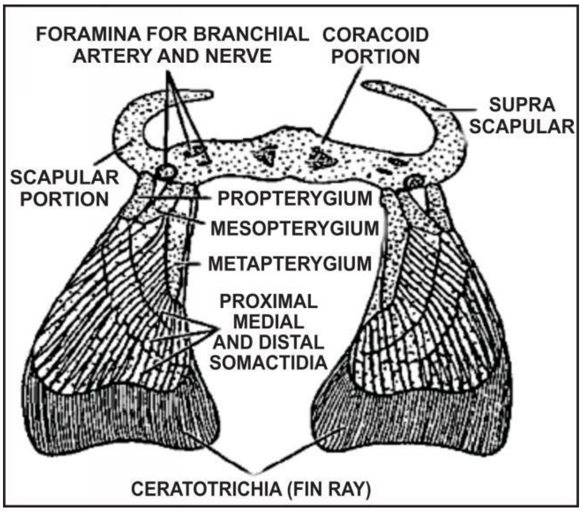

चित्र क्र. 2.19: **Scoliodon : Pectoral Girdle and Pectorol Fin Skeleton**

(ii) **टेट्रापोडा (Tetrapoda)**– टेट्रापोडा में पेक्टोरल गर्डिल की मूल रचना सभी जन्तुओं में समान होती है तथा सभी में पेक्टोरल गर्डिल दो अर्द्ध–भागों (halves) में विभेदित होती है जो क्रमशः दाहिने तथा बाएँ अग्र पादों (fore-limbs) को साधती है। प्रत्येक अर्ध–भाग को **इन्नोमिनेट** (innominate) कहते हैं। गर्डिल का प्रत्येक अर्धभाग **स्कैपुला** (scapula), **सुप्रास्कैपुला** (suprascapula), **प्रीकोराकॉइड** (precoracoid) तथा **कोरांकाइड** (coracoid) अस्थियों से मिलकर बना होता है। कोराकॉइड तथा स्कैपुला के सन्धि स्थल के मध्य ग्लीनॉइड गुहा (glenoid cavity) पायी जाती है। गर्डिल के प्रत्येक अर्ध–भाग में **क्लैविकल** तथा **इण्टरक्लैविकल** (clavicle and inter-clavicle) नामक दो डर्मल अस्थियाँ और पायी जाती हैं। टेट्रापोडा के विभिन्न वर्गों में उनके चलन के अनुसार

(mode of locomotion) पेक्टोरल गर्डिल में अनेक रूपान्तरण पाये जाते हैं, जो अग्रलिखित हैं–

(a) ऐम्फिबिया (Amphibia)– मेंढक (frog) की पेक्टोरल गर्डिल के दोनों अर्ध–भाग मिड–वैण्ट्रल रेखा पर स्टर्नम सहित जुड़े रहते हैं तथा पूर्ण गर्डिल एक 'C' के आकार की रचना प्रदर्शित करती है जिसका मुख्य कार्य हृदय तथा फेफड़ों जैसे कोमल अंगों को सुरक्षित रखना होता है। जमीन पर कूदते समय इसकी पिछली टाँगे ही काम आती हैं, किन्तु कूदने के बाद अगली टाँगें भूमि पर टिकने में सहायता देती हैं। मेंढक में पेक्टोरल गर्डिल का वर्टिब्रल कॉलम से कोई सम्बन्ध नहीं होता। पेक्टोरल गर्डिल का प्रत्येक अर्ध–भाग स्कैपुला, सुप्रास्कैपुला, कोराकॉइड, प्रीकोराकॉइड, क्लैविकल हड्डियों से बना होता है। क्लैविकल डर्मल अस्थि के रूप में होती है तथा प्रीकोराकॉइड से जुड़ी रहती है जो कार्टिलेज के रूप में होती है। कोराकॉइड सुविकसित तथा हथौड़े के आकार की होती है। कोराकॉइड के भीतरी किनारे के साथ एक एपिकोराकॉइड कार्टिलेज जुड़ा रहता है। सुप्रास्कैपुला अत्यन्त विकसित, चौड़ी तथा पंखे के आकार की तथा कैल्सीफाइड कार्टिलेज की बनी होती है। स्कैपुला चौड़ी तथा प्लेटनुमा अस्थि होती है। ग्लीनॉइड गुहा के निर्माण में कोराकॉइड तथा स्कैपुला भाग लेते हैं।

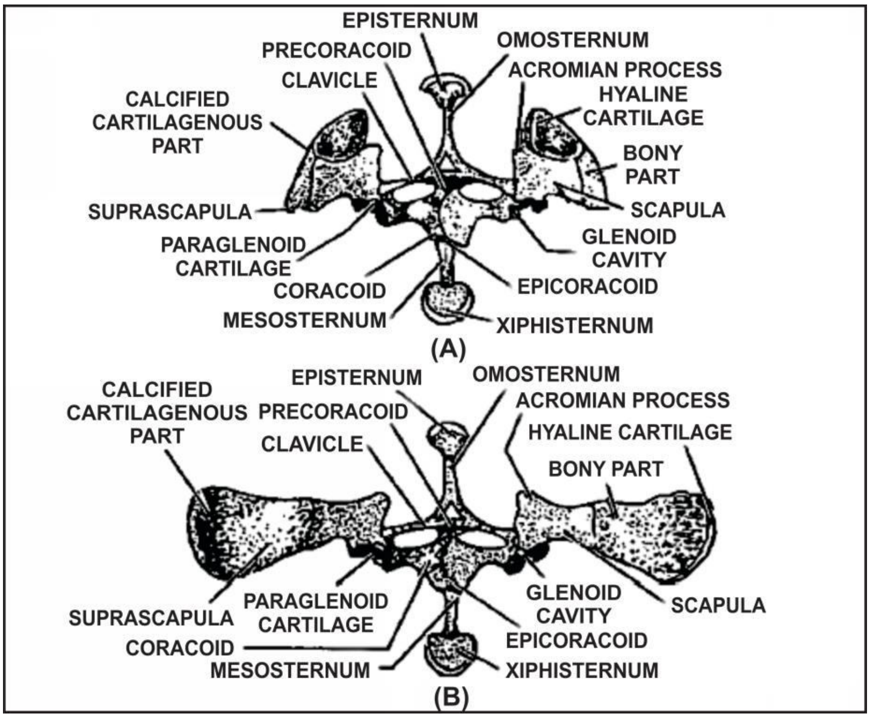

चित्र क्र. 2.20: Pectoral Girdle of Frog: (A) Ventral View, (B) Suprascapula of Both Sides Straightened

टिप्पणी

(b) **रेप्टिलिया (Reptilia)**– वैरेनस (Varanus) में पेक्टोरल गर्डिल सुविकसित पायी जाती है। इनके दोनों अर्ध–भाग 'T' के आकार की इण्टरक्लैविकल तथा स्टर्नम के दोनों ओर जुड़े रहते हैं। प्रत्येक अर्थ–भाग सुप्रास्कैपुला, स्कैपुला, कोराकॉइड, एपिकोराकॉइड इण्टरक्लैविकल तथा क्लैविकल से मिलकर बना होता है। स्कैपुला चपटी प्लेट के आकार की हड्डी होती है। सुप्रास्कैपुला कैल्सीफाइड कार्टिलेज से बनी चौड़ी एवं प्लेटनुमा होती है। कोराकॉइड चौड़ी, चपटी तथा छिद्रित हड्डी होती है। कोराकॉइड का अग्र तथा भीतरी भाग कार्टिलेजिनस होता है जिसे **एपिकोराकॉइड** कहते हैं। गर्डिल के प्रत्येक अर्ध में कोराकॉइड तथा एपिकोराकॉइड के मध्य दो बड़े फैनैस्ट्री या छिद्र (fenestrae) होते हैं। 'T' के आकार की **इण्टरक्लैविकल या एपिस्टर्नम** नामक डर्मल अस्थि मिड–वैण्ट्रल तल पर स्थित होती है तथा इसके दोनों ऊपरी उपांगों (limbs) पर दो डर्मल क्लैविकल अस्थियाँ होती हैं। क्लैविकल बाहरी किनारे स्कैपुला तथा सुप्रास्कैपुला के सन्धि स्थल तक फैले रहते हैं। ग्लीनॉइड गुहा स्कैपुला तथा कोराकॉइड मिलकर बनाते हैं।

(c) **एवीज (Aves)**– पक्षियों, जैसे– फाउल (fowl) में पेक्टोरल गर्डिल छड़ के अग्र भाग में स्थित होती है। गर्डिल के दोनों अर्ध–भाग स्टर्नम के दोनों ओर मजबूती से जुड़े रहते हैं तथा उड़ने के लिए पंखों (wings) को दृढ़ता से सहारा (support) देते हैं। पैक्टोरल गर्डिल का प्रत्येक अर्ध–भाग **कोराकॉइड, स्कैपुला** तथा लम्बी क्लैविकल से मिलकर बना होता है। कोराकॉइड सीधी तथा छड़ के आकार की तथा पेक्टोरल गर्डिल की सबसे मजबूत हड्डी होती है। इसका डॉर्सल सिरा एक हुक (hook) के आकार की **एक्रोकोरा–कॉइड प्रवर्ध** (acrocoracoid process) में निकला रहता है जो **क्लैविकल** से सन्धि करता है। स्कैपुला लम्बी तथा तलवार के आकार की हड्डी है जो समकोण बनाती हुई कोराकॉइड से जुड़ी रहती है। यह वर्टिब्रल कॉलम के समानान्तर शरीर के पीछे तक पसलियों के सम्पर्क में रहती है। स्कैपुला अग्र सिरे का भीतरी तल **एक्रोमियन प्रवर्ध** में निकला रहता है। दोनों क्लैविकल्स मिडवैण्ट्रल रेखा पर एक छोटी इण्टर क्लैविकल से जुड़कर **फरकुला** (furcula) का निर्माण करते हैं। सभी उड़ने वाले पक्षियों में फरकुला सुविकसित तथा कोराकॉइड से जुड़ी रहती है, किन्तु उड़ने वाले पक्षियों में यह ऱ्हासित अथवा अनुपस्थित होती है। कोराकॉइड, स्कैपुला तथा क्लैविकल के मिलने के स्थान पर एक चिकना गोलाकार स्थान होता है, जिसे **फोरामैन ट्रायोसियम** (foramen triosseum) कहते हैं। इसमें से होकर पेक्टोरेलिस माइनर पेशी के टैण्डन ह्यूमरस से जुड़े रहते हैं। ग्लीनॉइड गुहा कोराकोइड तथा स्कैपुला के द्वारा बनती है।

टिप्पणी

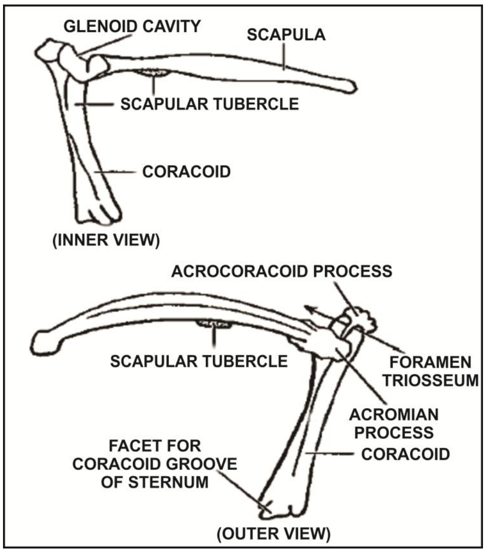

चित्र क्र. 2.21: **Fowl : Pectoral Girdle (Right Half)**

(d) मैमेलिया (Mammalia)– स्तनियों; जैसे– खरगोश की पेक्टोरल गर्डिल में काफी भिन्नता मिलती है, क्योंकि इन जन्तुओं में हृदय तथा फेफड़ों की सुरक्षा के लिए पसलियाँ तथा स्टर्नम थोरैसिक घाव के चारों ओर एक मजबूत कठघरा–सा बना देती हैं। इसलिए इनकी पेक्टोरल गर्डिल के दोनों अधांश एक–दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित होते हैं। स्तनियों में पेक्टोरल गर्डिल का प्रत्येक अर्धभाग – **स्कैपुला, सुप्रास्कैपुला, कोराकॉइड** तथा **क्लैविकल** से मिलकर बना होता है। स्कैपुला त्रिभुजाकार तथा चपटे आकार की कार्टिलेजिनस हड्डी होती है जो पेक्टोरल गर्डिल का सबसे चौड़ा भाग बनती है। स्कैपुला की बाहरी सतह पर लम्बाई में फैला एक उभार होता है जिसे **एक्रोमियन स्पाइन** (acromian spine) कहते हैं। इसका अन्तिम भाग **एक्रोमियन तथा मेटाक्रोमियन प्रवर्ध** (acromian and metacromian process) का निर्माण करता है जिससे पेशियाँ जुड़ी रहती हैं। सुप्रास्कैपुला, स्कैपुला के चौड़े किनारे पर एक सँकरी कार्टिलेज की पट्टी के रूप में होती है, जो प्रायः सभी स्तनियों में कम विकसित होती है। कोराकॉइड स्तनियों में अत्यधिक छोटी होती है तथा स्कैपुला से मिलकर **कोरैको – स्कैपुला** हड्डी बनाती है जो **कोराकॉइड** प्रवर्ध के रूप में ग्लीनॉइड कैविटी के साथ निकली रहती है। क्लैविकल्स पेक्टोरल गर्डिल से हटकर **कॉलर हड्डियों** (collar bones) का निर्माण करती हैं।

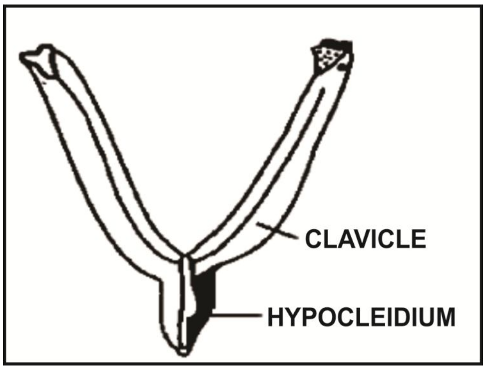

चित्र क्र. 2.22: **Fowl : Furcula**

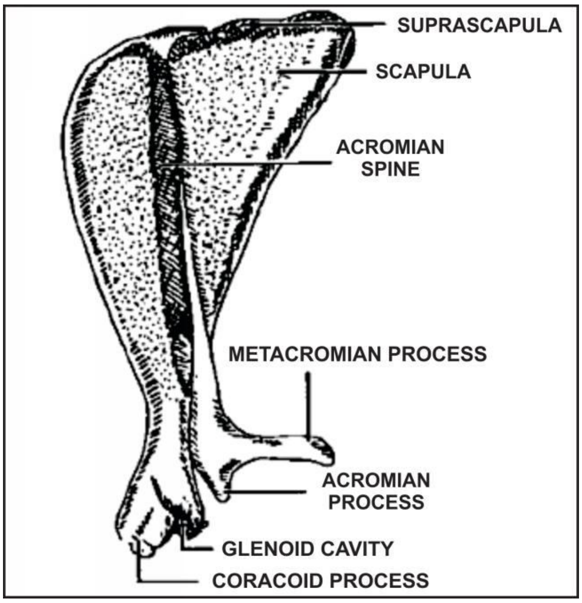

चित्र क्र. 2.23: **Pectoral Girdle of Rabbit-Left Hally**

2.3.6 कशेरुकी के विभिन्न वर्गों में पेल्विक गर्डिल (Pelvic Girdle in Different Classes of Vertebrate)

1. इलास्मोब्रैंकाई या कॉण्ड्रिक्थीज (Elasmobranchi or Chondrichthyes)– मछलियों जैसे– स्कॉलिओडॉन (scoliodon) में पेल्विक गर्डिल शरीर के वैंण्ट्रल तल पर क्लोएका के सामने अनुप्रस्थ रूप से स्थित होती है। प्रत्येक पेल्विक गर्डिल एक चपटी छड़ के समान कार्टिलेज की बनी होती है जिसे **इश्चिओप्यूबिक बार** (ischiopubic bar) कहते हैं। इसके प्रत्येक सिरे पर एक छोटा **इलियक प्रवर्ध** (iliac process) जो एसिटाबुलर फैसे (acetabular facet) के ऊपर उभरा रहता है, पाया जाता है। एसिटाबुलर फैसे से पेल्विक पखने के बेसल कार्टिलेज सन्धि करते हैं। गर्डिल के प्रत्येक सिरे पर नर्व के निकलने के लिए एक छिद्र होता है।

टिप्पणी

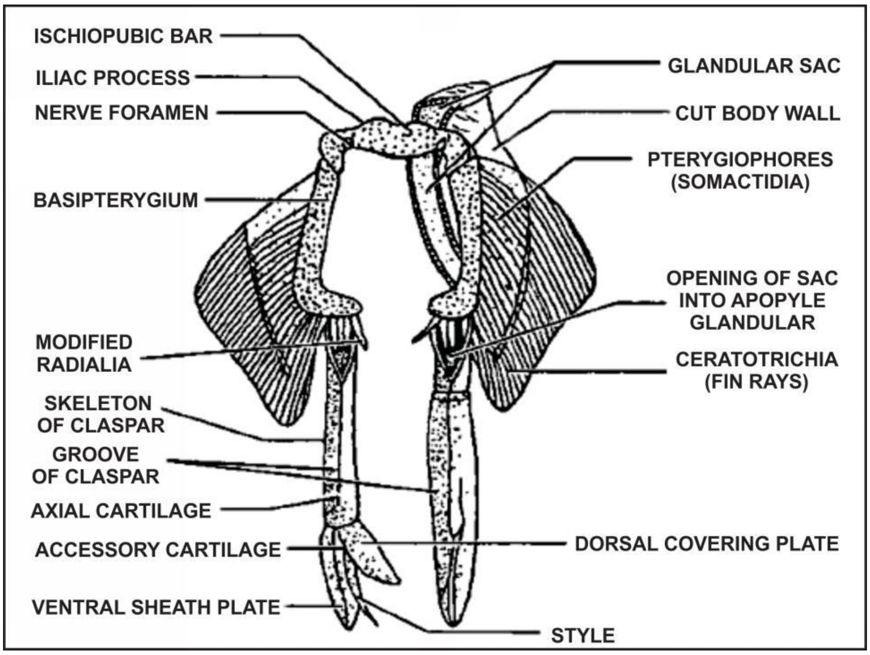

चित्र क्र. 2.24: Scoliodon- Pelvic Girdle and Pelvic Fin Skeleton बार (Ischiopubic Bar) कहते हैं।

2. टेट्रापोडा (Tetrapoda)– पेक्टोरल गर्डिल की तरह टेट्रापोड्स में पेल्विक गर्डिल सुविकसित पायी जाती है तथा इसकी मूल रचना सभी टेट्रापोड्स जन्तुओं में समान होती है। पैक्टोरल गर्डिल की तरह सभी टेट्रापोड्स में पेल्विक गर्डिल भी दो अर्ध–भागों से मिलकर बनी होती है तथा पश्चपादों (hind limbs) के कंकाल को साधती है। यहाँ भी प्रत्येक अर्ध–भाग को **इन्नोमिनेट** (innominate) कहते हैं। इसका प्रत्येक अर्ध–भाग **इलियम** (ilium), **इश्चियम** (ischium) तथा **प्यूबिस** (pubis) अस्थियों से मिलकर बना होता है। कुछ जन्तुओं की पेल्विक गर्डिल में प्री–प्यूबिस (pre-pubis) तथा हाइपो–इश्चियम (hypo-ischium) अस्थियाँ भी पायी जाती हैं। इसमें कोई भी डर्मल अस्थि नहीं पायी जाती। इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस के सन्धि स्थल पर एसिटाबुलम गुहा (acetabulum cavity) पायी जाती है। टेट्रापोडा के विभिन्न वर्गों में जन्तुओं के चलन के स्वभाव के अनुसार पेल्विक गर्डिल में अनेक रूपान्तरण पाये जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(i) ऐम्फिबिया (Amphibia)– दुम विहीन ऐम्फिबिया; जैसे– मेंढक की पेल्विक गर्डिल 'V' के आकार की होती है, क्योंकि इसके दोनों अर्ध–भागों की तीनों अस्थियाँ – इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस आपस में पूर्णतः जुड़कर एक प्लेटनुमा रचना बनाती हैं। दोनों अर्ध–भागों की आगे की भुजाएँ इलियम अस्थि से बनी होती हैं।

टिप्पणी

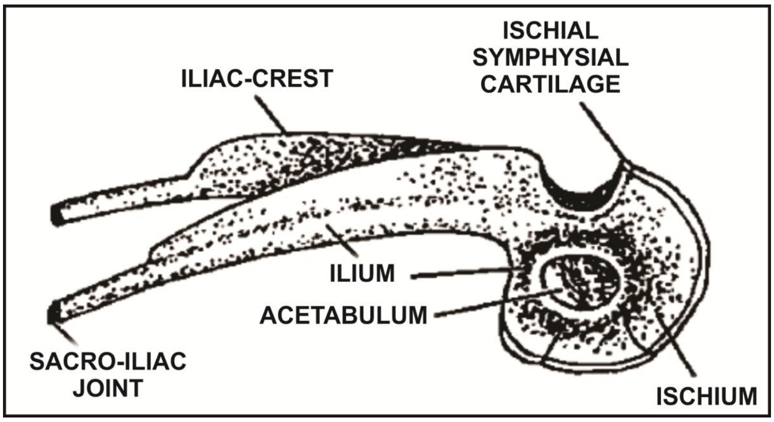

चित्र क्र. 2.25: Pelvic Girdle of Frog (Lateral View)

इलियम की इस प्रत्येक भुजा के डॉर्सल भाग पर पेशियों के जुड़ने के लिए एक बड़ा इलियक क्रैस्ट होता है। गर्डिल की प्लेट के दोनों ओर एसिटाबुलम गुहा होती है जो इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस हड्डियों से मिलकर बनी होती है। इसमें प्यूबिस हड्डी की रचना कैल्सीफाइड कार्टिलेज से होती है। मेंढक के कूदकर चलने तथा पिछली टाँगों के सहारे तेजी से तैरने के कारण इसकी पेल्विक गर्डिल अत्यन्त मजबूत होती है। इसलिए इसकी पेल्विक गर्डिल में यह रूपान्तरण हुआ है।

(ii) रेप्टिलिया (Reptilia)– इन जन्तुओं; जैसे– वैरेनस (Varanus) में पेल्विक गर्डिल का प्रत्येक अर्ध भाग ट्राइरेडिऐट (triradiate) आकृति का होता है जो इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस हड्डियों से मिलकर बना होता है। इलियम पीछे की ओर स्थित होती हैं। इसकी बाहरी सतह पर एक छोटा प्रीऐसिटाबुलर प्रवर्ध (preacetabular process) पाया जाता है। प्यूबिस एक लम्बी, चपटी तथा वक्राकार हड्डी है जो अपनी दूसरी ओर की प्यूबिस से मिलकर प्यूबिक सिम्फाइसिस (pubic symphysis) बनाती है। इस सिम्फाइसिस के सामने दोनों प्यूबिस के अग्र सिरों के मध्य एक छोटा एपिप्यूबिस कार्टिलेज स्थित होता है। इसके पश्च भाग पर एक अण्डाकार ऑब्ट्यूरेटर फोरामैन (obturator foramen) पाया जाता है जिससे ऑब्ट्यूरेटर नर्व गुजरती है। इस फोरामैन के ऊपर बाहर की ओर एक प्री–प्यूबिक प्रवर्ध स्थित होता है। इश्चियम छोटी, चपटी तथा कुछ वक्राकार अस्थि होती है जो अपनी ओर की दूसरी इश्चियम से मिलकर इश्चियाटिक सिम्फाइसिस (ischiatic symphysis) बनाती है जिसके अग्र भाग पर कैल्सीफाइड् कार्टिलेज से बनी एक हाइपोइश्चियम (hypoischium) पट्टी पायी जाती है। दोनों ओर की इश्चियम तथा प्यूबिस के मध्य एक बड़ा इश्चियो–प्यूबिक फेनैस्ट्रा (ischio-pubic fenestra) पाया जाता है जो एक कार्टिलेजिनस लिगामेण्ट के द्वारा दो भागों में विभाजित रहता है। एसिटाबुलम गुहा इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस तीनों अस्थियों से मिलकर बनी होती है।

टिप्पणी

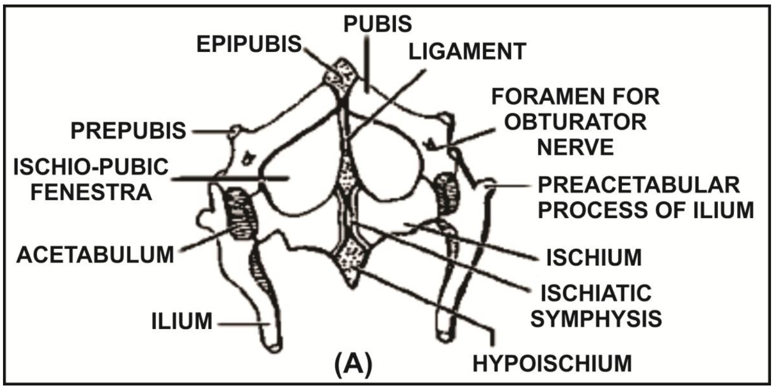

चित्र क्र. 2.26: Varanus and Pelvic Girdle: (A) Complete Girdle in Ventral View

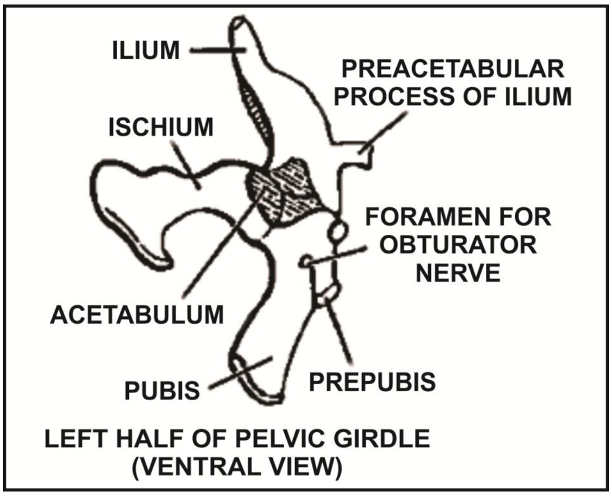

चित्र क्र. 2.27: Left Half Girdle in Ventral View

(iii) एवीज (Aves)– पक्षियों (जैसे– fowl = फाउल) की पेल्विक गर्डिल भी दो समान अर्ध–भागों की बनी होती है तथा प्रत्येक अर्ध–भाग इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस अस्थियों से मिलकर बना होता है। इनकी पेल्विक गर्डिल में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं जो इनके उड्डयन अनुकूलन (flight adaptations) से सम्बन्धित होती हैं–

(a) पक्षियों में पेल्विक गर्डिल के दोनों अर्ध–भाग मिड–वैण्ट्रल तल पर एक–दूसरे से काफी दूरी तक स्थित होते हैं तथा इसमें वैण्ट्रल सिम्फाइसिस का पूर्ण अभाव होता है।

(b) गर्डिल के दोनों अर्ध–भाग सिनसैक्रम से इसके दोनों ओर दृढ़ता से जुड़े रहते हैं।

(c) एसिटाबुलम पूर्ण रूप से अस्थिमय नहीं होती तथा आधार पर कुछ मैम्ब्रेनस होती है। इलियम पतली, फैली हुई तथा लैमैलर (lamellar) आकृति की होती है तथा प्रीएसिटाबुलर एवं पोस्टएसिटाबुलर भागों में विभाजित रहती है। इसका भीतरी किनारा सिनसैक्रम के साथ

जुड़कर आन्तरिक अंगों की रक्षा करता है तथा इसकी सतह पर अपनी ओर की किडनी (kidney) को स्थान देने के लिए दो गहरी कॉनकेविटीज (concavities) होती हैं। इश्चियम भी एक चौड़ी लैमैलर अस्थि के रूप में होती है जो पोस्टएसिबुलर इलियम से जुड़ी रहती है। एसिटाबुलर गुहा के आगे यह इलियम से इलियो–इश्चियाटिक (ilio-ischiatic) फोरामैन से अलग रहती है। प्यूबिस एक लम्बी पट्टी के समान होती है जो इंश्चियम की बाहरी सतह के साथ पीछे की ओर स्थित रहती है। एसिटाबुलम के आगे प्यूबिस से प्रीप्यूबिक प्रवर्ध निकला रहता है। एसिटाबुलम इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिक के द्वारा बनी होती है।

(iv) मैमेलिया (Mammalia)– स्तनियों (जैसे– खरगोश) में पेल्विक गर्डिल पश्चपादों के मध्य वर्टिब्रल कॉलम पर पीछे की ओर स्थित रहते हैं। यह 'W' के आकार की होती है। गर्डिल का प्रत्येक अर्ध–भाग इलियम, इश्चियम, प्यूबिस तथा कॉटीलॉइड अस्थियों से मिलकर बना होता है। इलियम पेल्विक गर्डिल की सबसे बड़ी हड्डी होती है। प्रत्येक ओर की इलिया की भीतरी सतह पर फाइब्रो–कार्टिलेज़ की गद्दियों द्वारा सिनसैक्रम के प्रथम सैक्रल वर्टिब्रा के ट्रान्सवर्स प्रवर्ध जुडकर सैक्रो–इलियक सन्धि बनाते हैं। प्यूबिस प्रत्येक अर्धांश के वैण्ट्रल तल तथा भीतर की और स्थित होती है। दोनों अर्धाशों की प्यूबिस हड्डियाँ मिड–वैण्ट्रल रेखा पर आपस में प्यूबिक–सिम्फाइसिस (pubic-symphysis) के द्वारा जुड़ी रहती हैं। इश्चियम तथा प्यूबिस के मध्य में एक चौड़ा खाली स्थान होता है, जिसे **ऑब्ट्यूरेटर फोरामैन या इश्चियो–प्यूबिक फोरामैन** कहते हैं। स्तनियों की पेल्विक गर्डिल में **कॉटीलॉइड** एक छोटी हड्डी होती है जो एसिटाबुलम तथा प्यूबिस के मध्य स्थित होती है। स्तनियों में एसिटाबुलम इलियम, इश्चियम तथा कॉटीलॉइड् से मिलकर बनी होती है।

सारणी क्र. 2.3: कशेरुकी के विभिन्न वर्गों मे पेक्टोरल गर्डिल का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study of Pectoral Girdle in Different Classes of Vertebrate)

Chara-cters	Amphibia	Reptilia	Aves	Mammalia
	Frog (Rana)	Lizard (Varanus/ Uromastix)	Pigeon/Fowl (Columba)	Rabbit (Oryctolagus)
1. स्थिति	थोरैसिक देह–भित्ति में धंसी एवं हृदय को चारों ओर से घेरे रहती है। अग्रपादों को अवलम्बित करती है।	वैण्ट्रो–लेटरल थोरैसिक देह–भित्ति में धंसी होती है। अग्रपादों को अवलम्बित करती है।	धड़ के ऐण्टीरो – डॉर्सल तल पर स्थित होती है तथा पंखों (wings) को अवलम्बित करती है।	धड़ की ऐण्टीरो–लेटरल सतह पर स्थित तथा अग्र पादों को अवलम्बित करती है।

टिप्पणी

2. सम्बन्ध या अटैचमैण्ट	इनमें गर्डिल के दोनों अर्ध–भाग मिड – वैण्ट्रल तल पर स्टर्नम से जुड़े रहते हैं, किन्तु वर्टीब्रल कॉलम से कोई सम्बन्ध नहीं होता।	गर्डिल के दोनों अर्ध–भाग वैण्ट्रल तल पर T–के आकार की इण्टरक्लैविकल तथा चौकोर स्टर्नल प्लेट से जुड़े रहते हैं।	दोनों अर्ध–भाग एक V–के आकार की फरकुला की सहायता से स्टर्नल से दृढ़ता से जुड़े रहते हैं।	दोनों अर्ध–भागों का वर्टीब्रल कॉलम तथा स्टर्नल में कोई सम्बन्ध नहीं होता।
3. दशा	कार्टिलेजिनस एवं अस्थिमय तथा सुविकसित।	कार्टिलेजिनस एवं अस्थिमय तथा सुविकसित।	हड्डियों से बनी तथा उड़ान के लिए सुविकसित।	हड्डियों से बनी। दौड़ने तथा खोदने के अनुकूल।
4. आकार	उल्टे आर्च के आकार की। दो समान अर्ध–भागों में विभाजित जो मिडवैण्ट्रल तल पर स्टर्नम से जुड़े रहते हैं।	उल्टे आर्च के आकार की। दो समान अर्ध–भागों में विभाजित जो मिडवैण्ट्रल तल पर आपस में जुड़े होते हैं।	प्रत्येक अर्ध–भाग लगभग ट–के आकार का होता है तथा एक–दूसरे से काफी दूर स्थित होते हैं।	प्रत्येक अर्ध–भाग तिकोने आकार का होता है तथा एक–दूसरे से पूर्णतयाः अलग होते हैं।
5. पेक्टोरल गर्डिल की हड्डियाँ	प्रत्येक अर्ध–भाग स्कैपुला तथा कोराकॉइड से मिलकर बनता है।	प्रत्येक अर्ध–भाग स्कैपुला तथा कोराकॉइड से बना होता है।	इनमें भी प्रत्येक अर्ध–भाग स्कैपुला तथा कोराकॉइड से बना होता है।	गर्डिल का प्रत्येक अर्ध–भाग एक बड़ी स्कैपुलोकोराकॉइड का बना होता है।
6. स्कैपुला	मेंढक में स्कैपुला प्रत्येक अर्ध–भाग की लेटरल सतह पर स्थित होती है। यह दृढ़, चपटी तथा दोनों सिरों पर चौड़ी होती हैं।	इनमें स्कैपुला प्रत्येक अर्ध–भाग की लेटरल सतह पर स्थित होती है। यह दृढ़, आयताकार, चौड़ी तथा वैण्ट्रली सँकरी होती है।	पक्षियों में स्कैपुला लम्बी तथा तलवार की आकृति की होती है। यह पेशियों द्वारा पसलियों से तथा कोराकॉइड से लिगामेण्ट द्वारा जुड़ी रहती हैं।	स्तनियों में स्कैपुला या स्कैपुलोकोराकॉइड प्रत्येक अर्ध–भाग की लेटरल सतह पर स्थित रहती है। यह बड़ी, तिकोनी तथा चपटी होती है। इसका – डॉर्सल आधारीय भाग चौड़ा तथा वैण्ट्रल सिरा सँकरा होता है।
7. स्कैपुलर प्रवर्ध	अनुपस्थित।	स्कैपुला के अग्र भाग पर एक औसिफाइड मीसो – स्कैपुलर प्रवर्ध पाया जाता है।	इनकी गर्डिल की स्कैपुला के अग्र सिरे पर एक स्कैपुलर ट्यूबरकिल तथा एक्रोमियन प्रवर्ध पाये जाते है।	इनकी स्कैपुला या स्कैपुलोकोराकॉइड की बाहरी सतह पर एक वर्टिकल स्पाइन पाया जाता है जो नीचे की ओर एक्रोमियन तथा पीछे की ओर एक मेटाक्रोमियन प्रवर्ध में समाप्त होता है।
8. सुप्रास्कै–पुला	सुविकसित। इनमें सुप्रास्कैपुला चौड़ी, चपटी तथा कैल्सीफाइड कार्टिलेज के रूप में होती है जो स्कैपुला की	इनमें यह स्कैपुला के डॉर्सल किनारे पर एक पतली, चपटी कैल्सी फाइड प्लेट के रूप में जुड़ी रहती है। यह	पक्षियों की गर्डिल में सुप्रास्कैपुला अनुपस्थित होती है।	इनमें यह स्कैपुला के डॉर्सल किनारे पर अत्यन्त ही अविकसित कैल्सीफाइड कार्टिलेज की पट्टी के रूप में होती है।

	डॉर्सल – तल से जुड़ी रहती है तथा प्रथम चार वर्टीब्री को ढके रहती है।	वर्टीब्रल कॉलम के किसी भाग को नहीं ढकती।		
9. कोराकॉइड	इनकी गर्डिल में चौड़ी एवं डम्बल (dumb-bell) की आकृति की होती है इसके भाग पर एक प्रीकोराकॉइड कार्टिलेज स्थित होता है जो इससे एक चौड़े कोराकॉइड फोरामैन के द्वारा अलग रहता है। दोनों ओर की कोराकॉइड अस्थियों एक–दूसरे से एक X–के आकार की एपिकोराकॉड कार्टिलेज के द्वारा जुड़ी रहती है।	इनमें कोराकॉइड बड़ी, चपटी तथा छिद्रित होती है। यह दो बड़े छिद्रों द्वारा प्रीकोराकॉइड, मीसोकोराकॉइड तथा कोराकॉइड प्रोपर में बॅटी रहती है। इसके छिद्रों के अग्र भाग को एक कार्टिलेजिनस एपिकोराकॉइड पूर्ण करता है।	पक्षियों की गर्डिल में कोराकॉइड दृढ़, सीधी छड़ के आकार की होती है। इसका निचला सिरा स्टर्नम के कोराकॉइड ग्रूव से जुड़ता है, जबकि ऊपरी सिरा हुक की आकृति का एक्रोकोराकॉइड प्रवर्ध बनाता है। एपिकोराकॉइड अनुपस्थित होता है।	स्तनियों की गर्डिल में कोराकॉइड अवशेष के रूप में पायी जाती है। यह ग्लीनॉइड गुहा के ऊपर स्कैपुला से निकली हुई कोराकॉइड प्रवर्ध के रूप में पायी जाती है। इनमें एपिकोराकॉइड अनुपस्थित होता है।
10. क्लैविकल्स	इनकी गर्डिल मैं ये लम्बी छड़ के आकार की ट्रान्सवर्स हड्डियाँ होती हैं जो प्रीकोराकॉइड कार्टिलेज के आगे दोनों ओर स्थित होती हैं।	इनकी गर्डिल में ये छोटी, लम्बी तथा वक्राकार हड्डियाँ होती हैं जो मध्य में एक–दूसरे से इण्टर क्लैविकल्स के द्वारा अलग रहती हैं।	इनमें ये लम्बी तथा छड़ के आकार की हड्डियाँ होती है जो स्कैपुला तथा कोराकॉइड से उनके डॉर्सल तल से जुड़ी रहती हैं तथा वैण्ट्रल तल पर इण्टरक्लैविकल से फ्यूज्ड रहती हैं।	स्तनियों में भी ये लम्बी, कुछ वक्राकार छड़ के आकार की होती हैं। इनका भीतरी सिरा स्टर्नम के मैनुब्रियम से तथा बाहरी सिरा स्कैपुला के एक्रोमियन प्रवर्ध से जुड़ा रहता है।
11. इण्टर–क्लैविकल	इनकी गर्डिल में भी ये अनुपस्थित होती हैं।	इनकी गर्डिल में इण्टरक्लैविकल पायी जाती है जो T–के आकार की होती है तथा दोनों क्लैविकल्स एवं गर्डिल के दोनों अर्ध–भागों के मध्य स्थित होती है।	इनमें दोनों क्लैविकल्स एक पार्श्व तलों से चपटी हाइपोक्लीडियम प्लेट से फ्यूज्ड होकर एक V–के आकार की संयुक्त हड्डी फरकुला बनाती हैं जो फ्यूज्ड क्लैविकल्स तथा इण्टरक्लैविकल को दर्शाती है।	प्रोटोथीरियन्स को छोड़कर, सभी स्तनियों में इण्टरक्लैविकल्स का पूर्ण अभाव होता है।
12. ग्लीनॉइड गुहा	इनकी गर्डिल में ग्लीनॉइड गुहा पीछे की ओर स्थित होती है तथा स्कैपुला और कोराकॉइड के द्वारा निर्मित होती है।	इनकी गर्डिल में भी यह पोस्टीरोलेटरली स्थित होती है तथा स्कैपुला और कोराकॉइड के द्वारा बनी होती है।	इनकी गर्डिल में भी यह पोस्टीरो लेटरली स्कैपुला तथा कोराकॉइड अस्थियों के द्वारा बनी होती है।	इनकी गर्डिल में ग्लीनॉइड गुहा पोस्टीरोवैण्ट्रली स्थित होती है तथा स्कैपुला – एवं कोराकॉइड के द्वारा निर्मित होती हैं।

13. फोरामैन ट्रायोसियम	इनकी गर्डिल में भी यह अनुपस्थित होता है।	अनुपस्थित।	इनकी पेक्टोरल गर्डिल में फोरामैन ट्रायोसियम पाया जाता है। इनकी गर्डिल में यह क्लैविकल के डॉर्सल सिरे, स्कैपुला के एक्रोमियन प्रवर्ध तथा कोराकॉइड के एक्रोकोराकॉइड प्रवर्ध से मिलकर बना होता है। इस फोरामैन से पेक्टोरेलिस माइनर पेशी के टेण्डन से गुजरते हैं।	स्तनियों की पेक्टोरल गडिल में यह फोरामैन अनुपस्थित होता है।

सारणी क्र. 2.4: कशेरुकी के विभिन्न वर्गो मे पेल्वीक गर्डिल का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparative Study of Pelvic Girdle in Different Classes of Vertebrate)

Characters	Amphibia	Reptilia	Aves	Mammalia
	Frog (Rana)	Lizard (Varanus/ Uromastix)	Pigeon/ Fowl (Columba)	Rabbit (Oryctolagus)
1. स्थिति	धड़ के पिछले भाग में स्थित होती है। पेल्विक भाग तथा पश्चपादों को अवलम्बित करती है।	धड़ के पेल्विक भाग में स्थित होती है तथा पश्चपादों को अवलम्बित करती है।	पेल्विक भाग में स्थित होती है तथा पिछली टाँगों को अवलम्बित करती है।	स्तनियों में भी पेल्विक गर्डिल पेल्विक भाग में स्थित होती है तथा पश्चपादों को अवलम्बित करती है।
2. सम्बन्ध या अटैचमैण्ट	पेल्विक गर्डिल की दोनों भुजाएँ वर्टिब्रल कॉलम के समानान्तर स्थित होती हैं, जबकि गर्डिल की मीडियन डिस्क अन्तिम वर्टिब्रा या यूरोस्टाइल को अवलंबित करती है।	इनमें गर्डिल को केवल इलियम हड्डी ही प्रथम सैक्रल वर्टिब्रा से जुड़ती है।	पक्षियों में पेल्विक गर्डिल सिनसैक्रम से दृढ़ता से फ्यूज्ड रहती है, जो द्विपादीय प्रचलन के लिए एक अनुकूलन है।	स्तनियों की पेल्विक गर्डिल की इलियम हड्डियाँ ही सिनसैक्रम से दृढ़ता से जुड़ी रहती हैं।
3. दशा	सुविकसित तथा अस्थिमय एवं कार्टिलेजिनस दोनों ही प्रकार की होती है।	अस्थिमय, ठोस एवं दृढ़ होती है। टेट्रापोड प्रचलन के लिए पूर्ण अनुकूलित होती है।	अस्थिमय बड़ी, हल्की तथा खोखली होती है। उड्डयन एवं द्विपादीय प्रचलन के अनुकूलित होती है।	अस्थिमय, बड़ी तथा दृढ़ होती हैं। तेज दौड़ने के लिए अनुकूलित होती हैं।

4. आकार	V–के आकार की होती है जो दो समान अर्ध–भागों से मिलकर बनती है। प्रत्येक अर्ध–भाग इन्नोमिनेट कहलाता है जो पीछे की ओर एक मीडियन डिस्क के रूप में जुड़े होते।	दो समान ट्राइरेडिएट अर्ध–भागों या इन्नोमिनेट से मिलकर बनी होती है, जो मिड वैण्ट्रल तल पर एक–दूसरे से मिले रहते हैं, किन्तु ये आपस में जुड़े नहीं होते।	इनमें भी यह गर्डिल दो समान अर्धभागों या इन्नोमिनेट से मिलकर बनी होती है, किन्तु पक्षियों में ये दोनों अर्ध भाग एक दूसरे से काफी दूरी पर स्थित होते हैं। यह स्थिति इन जन्तुओं के बड़े आकार के अण्डे देने में अनुकूलित होती है।	स्तनियों में यह गर्डिल दो समान ट्राइरेडिएट अर्ध–भागों से मिलकर बनी होती है जो दृढ़ता से मिडवैण्ट्रल तलपर एक–दूसरे से प्यूबिक सिम्फाइसिस के द्वारा जुडे रहते हैं।
5. पेल्विक गर्डिल की हड्डियाँ	इनमें गर्डिल का प्रत्येक अर्ध–भाग तीन अस्थियों इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस से मिल कर बना होता।	इनमें भी प्रत्येक अर्ध भाग तीन अस्थियों – इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस से मिलकर बना होता है।	प्रत्येक अर्ध–भाग में तीन अस्थियाँ इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस पायी जाती हैं।	स्तनियों के प्रत्येक अर्ध–भाग में इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस के अतिरिक्त कॉटीलोइड अस्थि भी पायी जाती है।
6. इलियम	इनकी गर्डिल में यह सुविकसित होती है जो आगे की ओर लम्बी भुजाओं के रूप में निकली होती है। ये भुजाएँ 9 वीं वर्टिब्रा के ट्रान्सवर्स प्रवर्ध पर टिकी होती हैं। डॉर्सल तल पर ये इलियक क्रैस्ट बनाती हैं। पीछे की ओर दोनों इलियम मीडियम डिस्क से मिली रहती हैं तथा इलियक सिम्फाइसिस का निर्माण करती हैं।	इनकी गर्डिल में इलियम छड़नुमा तथा मजबूत अस्थि होती है। इसका सिरा प्रथम सैक्रल वर्टिब्रा के ट्रान्सवर्स प्रवर्ध को खाँच से सन्धि करता है। दोनों ओर की इलियम एक–दूसरे से अलग रहती है। अतः इलियक सिम्फाइसिस नहीं पाया जाता है। इसमें एक छोटा प्रीएसिटाबुलर प्रवर्ध पाया जाता है।	इनकी गर्डिल में इलियम बड़ी एवं प्लेट के आकार की होती है जो पूर्णतया सिनसैक्रम से जुड़ी रहती है। यह प्री तथा पोस्ट – एसिटाबुलर भागों में विभाजित रहती है। इलियक – सिम्फाइसिस का अभाव होता है।	स्तनियों की गर्डिल में इलियम बड़ी तथा डॉर्सोऐण्टीरियर इलियक क्रैस्ट में उठी रहती हैं। इसका दूरस्थ सिरा चपटा होता है जो प्रथम सैक्रल वर्टिब्रा से सन्धि करता है। इलियक सिम्फाइसिस का अभाव होता है।
7. ऐण्टीट्रोकैण्टर प्रवर्ध	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	इनकी पेल्विक गर्डिल में इलियम अस्थि एसिटाबुलम के पश्च सिरे पर एक छोटा ऐण्टीट्रोकैण्टर प्रवर्ध का निर्माण करती है।	इनकी पेल्विक गर्डिल में यह प्रवर्ध अनुपस्थित होता है।

8. इश्चियम	इनकी गर्डिल में यह छोटी होती है। दोनों ओर की इश्चियम आपस में मिलकर डिस्क के पोस्टीरोडॉर्सल भाग के इश्चियाटिक सिम्फाइसिस बनाती हैं।	इनकी गर्डिल में इश्चियम चपटी तथा लगभग आयताकार होती है जो अपनी ओर की इश्चियम से मिडवैण्ट्रल तल पर मिलकर इश्चियाटिक सिम्फाइसिस बनाती है। इस स्थान से आगे की ओर एक कार्टिलेजिनस प्री–इश्चियम तथा पौछे की ओर हाइपोइश्चियम प्रवर्ध निकलते हैं।	पक्षियों की गर्डिल में भी इश्चियम चौड़ी एवं प्लेटनुमा होती है जो एसिटाबुलम के पीछे स्थित होती है। इसमें इश्चियाटिक सिम्फाइसिस तथा हाइपोइश्चियम आदि रचनाओं का अभाव होता है।	स्तनियों में इश्चियम छोटी, चपटी तथा गर्डिल के प्रत्येक अर्ध–भाग के पोस्टीरो – डॉर्सल तल पर स्थित होती है। इसका सबसे मोटा पिछला सिरा इश्चियल ट्यूबरोसिटी कहलाता है। इश्चियल सिम्फाइसिस का अभाव होता है।
9. इलियो इश्चियाटिक फोरामैन	इनकी गर्डिल में भी अनुपस्थित होता हैं।	अनुपस्थित होता है।	पक्षियों की पेल्विक गर्डिल में एक बडा, अण्डाकार इलियो – इश्चियाटिक फोरामैन पाया जाता है जो अग्र सिरे पर इश्चियम को पोस्ट एसिटाबुलर इलियम से पृथक् करता है।	स्तनियों की पेल्विक गर्डिल में यह फोरामैन अनुपस्थित होता है।
10. प्यूबिस	इनकी पेल्विक गर्डिल में दोनों प्यूबिस अस्थियाँ छोटी, तिकोनी तथा कैल्सीफाइड कार्टिलेज की बनी होती हैं। मिड–वैण्ट्रल तल पर डिस्क से मिलकर ये प्यूबिक सिम्फाइसिस बनाती हैं। इसमें एपिप्यूबिन का अभाव होता है।	इनकी पेल्विक गर्डिल में अस्थियाँ लम्बी, बेलनाकार तथा गर्डिल में ऐण्टीरो – वैण्ट्रल तल की ओर इंगित रहती है। दोनों ओर की अस्थियाँ प्यूबिक सिम्फाइसिस पर मिली रहती है। इसके अग्र सिरे पर एक कार्टिलेजिनस एपिप्यूबिस प्रवर्ध पाया जाता है। एसिटाबुलम के पास इसमें एक छोटा ऑब्ट्यूरेटर फोरामैन पाया जाता है।	पक्षियों की पेल्विक गर्डिल में प्यूबिस लम्बी, पतली, बेलनाकार अस्थि होती है जो इश्चियम के वैण्ट्रल किनारे के साथ समानान्तर उसकी पूरी लम्बाई से स्थित होती है। इसमें प्यूबिक सिम्फाइसिस का अभाव होता है।	स्तनियों की पेल्विक गर्डिल में प्यूबिस छोटी एवं बेलनाकार अस्थि होती है जो प्रत्येक अर्ध–भाग के वैण्ट्रो–मीडियन तल पर स्थित होती है। दोनों ओर की प्यूबिस आपस में मिलकर प्यूबिक सिम्फाइसिस का निर्माण करती हैं। इसमें एपिप्यूबिस प्रवर्ध अनुपस्थित होता है।
11. प्रीप्यूबिस	अनुपस्थित	इनमें प्यूबिस के मध्य में एक छोटी छड़नुमा प्रीप्यूबिस पायी जाती है जो बाहर की ओर मुड़ी रहती है।	कबूतर में प्रीप्यूबिस का अभाव होता है, किन्तु फाउल (fowl) की पेल्विक गर्डिल में एसिटाबुलम के	स्तनियों की पेल्विक गर्डिल में प्रीप्यूबिस का अभाव होता है।

टिप्पणी

			आगे प्यूबिस से एक प्रीप्यूबिक प्रवर्ध निकला रहता है।	
12. ऑब्ट्यूरेटर फोरामैन	इनकी पेल्विक गर्डिल में भी यह अनुपस्थित होता है।	एसिटाबुलम के पास प्यूबिस में एक छोटा ऑब्ट्यूरेटर फोरामैन पाया जाता है।	9. कबूतर में इश्चियम तथा प्यूबिस एक खाँच द्वारा तथा फाउल (fowl) में ये दोनों अस्थियाँ एक अण्डाकार ऑब्ट्यूरेटर फोरामैन द्वारा अलग रहती है।	स्तनियों में प्यूबिस तथा इश्चियम एक बडे ऑब्ट्यूरेटर फोरामैन द्वारा एक–दूसरे से अलग रहती हैं।
13. एसिटाबुलम	पेल्विक गर्डिल की डिस्क के दोनों लेटरल तलों पर पायी जाती हैं तथा तीनों अस्थियाँ – इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस से मिलकर बनी होती है जिसमें फीमर का हैड फिट होता है।	प्रत्येक गर्डिल के अर्ध–भाग में इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस के सन्धि स्थल पर कॉनकेव गुहा के रूप में पायी जाती है जिसमें फीमर का हैड फिट होता है।	गर्डिल के प्रत्येक अर्ध–भाग में तीनों अस्थियाँ लेटरल तल पर मिलकर एक एसिटाबुलर गुहा का निर्माण करती हैं जो तल पर एक छिद्र द्वारा छिद्रित रहती है। यह छिद्र एक मैम्ब्रेन के द्वारा ढका रहता है।	स्तनियों की पेल्विक गर्डिल में एसिटाबुलम इलियम, इश्चियम तथा कॉटीलॉइड के द्वारा बनी होती है। इसमें प्यूबिस भाग नहीं लेती है तथा न इसमें कोई छिद्र पाया जाता है।
14. कॉटीलॉइड अस्थि	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	स्तनियों की पेल्विक गर्डिल में यह अस्थि पायी जाती है।

2.3.7 कशेरुक के पाद, मेखलाएँ का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Account of Limb, Bones and Girdles of Vertebrates)

कशेरुक प्राणियों में कंकाल का अधिकांश भाग शरीर के अंदर पाया जाता है, इसी कारण इस प्रकार के कंकाल को अन्तः कंकाल (Endoskeleton) कहते है। इसका उद्गम मीजेनकाइम (Mesenchyme) की कोशिकाओं से हुआ है। सर्वप्रथम शरीर के कंकाल का अधिकांश भाग उपास्थि (Cartilage) के रूप में विकसित होता है, उसके पश्चात् अनेक क्रमिक परिवर्तनों के द्वारा अस्थि का विकास होता है। इस प्रकार की अस्थियों को उपास्थिमय (Cartilaginous) या प्रतिस्थापित (Replacing) अस्थि कहते हैं। दूसरे प्रकार की बिना उपास्थि के बीच में बने मीजेनकाइम (Mesenchyme) या संयोजी ऊतक (connective tissue) के प्रत्यक्ष या सीधे अस्थिभवन (Ossification) के द्वारा बनती हैं, ऐसी अस्थियों को कलामय (Membranous) या चर्मास्थि या डर्मिसी अस्थि (Dermal bone) कहते हैं। दोनों प्रकार की अस्थियों का निर्माण समान होता है। भ्रूणीय विकास में अन्तःकंकाल तीन अवस्थाओं से गुजरता है – मीजेनकाइम ⟶ उपास्थि ⟶ अस्थि। अस्थि के

विकास में उपास्थि अवस्था का पाया जाना पूर्वजों की स्थितियों का निर्माण है। कशेरूक प्राणियों में कंकाल (Skeleton) निम्नलिखित प्रकार का पाया जाता है–

1. **बाहय कंकाल/एपिडर्मल कंकाल (Exoskeleton or epidermal skeleton)**– यह कंकाल त्वचा की एपिडर्मिस की कर्नियल या श्रृंगीय स्तर से निर्मित होता है। यह कंकाल कठोर होता है और सामान्यतः शरीर के बाहरी भाग पर स्थित होता है। कशेरूक प्राणियों के विभिन्न समुदाय में यह भिन्न–भिन्न संरचना के रूप में पाया जाता है। सरीसृप प्राणियों में शल्क (Scales) एवं नाखून (Nails), नखर (Claws), खुर्र (Hoofs) एवं बाल पाये जाते है। उभयचरी प्राणियों में बाहय कंकाल अनुपस्थित होता है।

2. **चर्मास्थि/डर्मिसी अस्थि कंकाल (Dermal bony skeleton)**– यह कंकाल त्वचा की डर्मिस से निर्मित होता है। यह कंकाल अनेक कशेरुक प्राणियों के शरीर पर त्वचा में पाया जाता है। मत्स्य वर्ग के प्राणियों में शल्क (Scales) प्लेकॉयड (Placoid), गेनॉयड (Ganoid), सायक्लॉयड (Cycloid) एवं टिनॉयड (Ctenoid) एवं पंख अर्रे (Fin rays), पाये जाते है। कछुओं व मगरमच्छों में प्लेट्स, स्कूट्स या ऑस्टियोडर्म (Plates, Scutes or Ostraeoderm), तथा स्तनी प्राणियों में एन्टलर्स (Antlers) पाये जाते है। कुछ डर्मल कंकाल त्वचा की एपिडर्मिस को भेदकर बाहर आ जाते हैं और शरीर के उपर स्थित रहते है।

3. **अन्तःकंकाल (Endoskeleton)**– यह कंकाल कशेरुक प्राणियों में मीजेनकाइम (Mesenchyme) के द्वारा निर्मित होता है और शरीर को एक सुनिश्चित आकार प्रदान करता है। कशेरुक प्राणियों में पूर्णतः यह उपास्थि (Cartillage) या अस्थि (bony) का होता है।

कुछ कशेरुक प्राणियों में कुछ विशेष प्रकार की अस्थियाँ पाई जाती है जोकि न तो चर्मास्थि कंकाल (Dermal bony skeleton), में आती है और न ही अन्तःकंकाल (Endoskeleton) में। इन अस्थियों को विषमस्थानी अस्थियाँ (Heterotropic bones) कहते हैं।

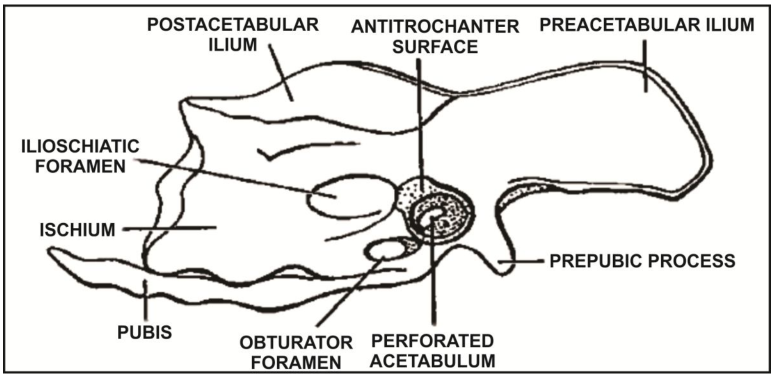

चित्र क्र. 2.28: Fowl : Right Half of Pelvic Girdle, Outer View

टिप्पणी

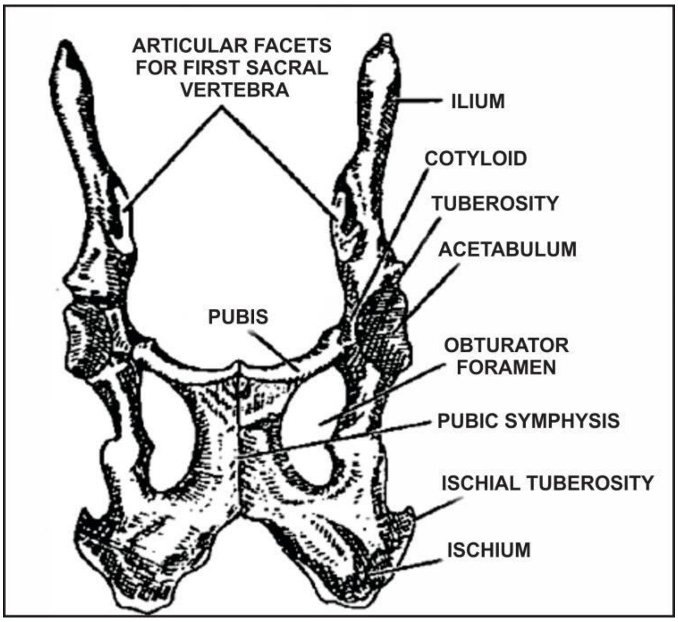

चित्र क्र. 2.29: **Pelvic Girdle of Rabbit**

2.3.8 लिम्ब बोन्स (Limb Bones)

वर्टीब्रेट्स के लिम्ब या लेटरल अपैण्डेजेज (limbs or lateral appendages) विविध प्रकार के होते हैं। साइक्लोस्टोम्स में लेटरल अपैण्डेजेज का पूर्ण अभाव होता है कार्टिलेजिनस; जैसे– शार्कस् (sharks) तथा बोनी मछलियों में जल में तैरने के लिए मीडियन तथा युग्मित फिन्स (median and paired fins) पाये जाते हैं। मीडियन फिन का अन्तःकंकाल फिन रेज (fin rays) की कतार का बना होता है, जिन्हें **टेरीजियोफोरर्स या रेडिएलिया** (pterygiophores or radialia) कहते हैं। युग्मित फिन्स के अन्तर्गत **पेक्टोरल तथा पेल्विक फिन्स** आते हैं। अधिकांश कार्टिलेजिनस या कॉण्ड्रिक्थीज (chondrichthyes) मछलियों; जैसे– शार्क के प्रत्येक पेक्टोरल फिन के अन्तःकंकाल में तीन बेसेलिया (basalia) पाये जाते हैं, जिन्हें क्रमशः **प्रो, मीजो** तथा **मेटा–टेरीजियम** (pro, meso and meta-pterygium) कहते हैं। इनके चारों ओर व्यवस्थित अनेक **रेडिएलिया** या **सोमेक्टिडिया** (radialia or somactidia) पाये जाते हैं। बोनी या ऑस्टीक्थीज (bony or osteichthyes) मछलियों के फिन्स में बेसिलिया का अभाव होता है, जबकि रेडिएलिया या रेडिएल्स (radials) छोटे–छोटे ऑसिकिल्स (ossicles) में रिड्यूस्ड (reduced) होकर देहभित्ति में धँसे रहते हैं।

2.3.9 टेट्रापोडा (Tetrapoda)

सभी टेट्रापोड्स (amphibians, reptiles, birds and mammals) जन्तुओं में **पेण्टाडेक्टाइल लिम्ब या पाद** (pentadactyle limbs) पाये जाते हैं (जो मछलियों के युग्मित फिन्स के स्थान पर स्थापित होते हैं)। प्रत्येक टिपिकल पेण्टाडेक्टाइल लिम्ब में पाँच अंगुलियाँ या डैक्टाइल (dactyls or toes) पायी जाती हैं। सभी टेट्रापोड्स वर्टीब्रेट जन्तुओं की भुजाओं एवं टाँगों को देखने से ज्ञात होगा कि इनमें

अत्यधिक भिन्नता होती है, किन्तु इनके अन्तःकंकाल की मूल संरचना सभी टेट्रापोड्स में एक समान होती है। कूदना, आरोहण, दौड़ने, तैरने या उड़ने के स्वभाव के अनुरूप इन जन्तुओं की भुजाओं एवं टाँगों की हड्डियों की संख्या में क्रमिक ह्रास देखने को मिलता है।

कुछ टेट्रापोड्स में एक अथवा दोनों जोड़ी लिम्ब विलुप्त हो जाते हैं; जैसे– ऐम्फिबियन्स में सीसिलियन्स (caecilians) रेप्टाइल्स में सर्प तथा सर्पों के समान लिजार्डस् (lizards) पादहीन (limbless) टेट्रापोड्स के मुख्य उदाहरण हैं। जबकि ऐम्फिबियन्स में साइरन्स (sirens), रेप्टाइल्स में काइरोटिस (chirotes) नामक लिजार्ड तथा मैनेटीज एवं ड्यूगाँग (manatees and dugongs) आदि में केवल अग्रपाद (fore limbs) पाये जाते हैं। इनके अलावा पाइथन (pythons) तथा बोआ (boa) में केवल पश्चपाद (hind limbs) अवशेष के रूप में पाये जाते हैं।

टिपिकली (typically) प्रत्येक टेट्रापोड लिम्ब या पाद को निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–

1. **स्टाइलोपोडियम या ब्रेंकियम (Stylopodium or branchium)**– फोर लिम्ब या अग्रपाद में यह अपर आर्म या उपरिबाहु (upper arm) तथा हिण्ड लिम्ब या पश्चपाद में यह उरू (thigh) का निर्माण करता है। अग्रपाद में उपरिबाहु का निर्माण एक छड़ के आकार की ह्यूमरस (humerus) अस्थि से होता है, जबकि पश्चपाद में उरू फीमर (femur) अस्थि से बनता है।
2. **ज्यूगोपोडियम या ऐण्टीब्रेंकियम (Zeugopodium or anti-branchium)**– अग्रपाद में यह पूर्वबाहु (forearm) का तथा पश्चपाद में शैंक या जंघा (shank) का निर्माण करता है। अग्रपाद की पूर्वबाहु का निर्माण दो लम्बी समानान्तर हड्डियाँ–रेडियस तथा अल्ना (radius and ulna) से तथा पश्चपाद की जंघा का निर्माण दो लम्बी–टीबिया एवं फीबुला (tibia and fibula) हड्डियों से होता है।
3. **ऑटोपोडियम (Autopodium)**– इसके अन्तर्गत अग्रपाद का हस्त या मेनस (hand or manus) तथा पश्चपाद का पैर या पैस (foot or pes) आता है। इनमें से प्रत्येक को पुनः तीन निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है–

   (i) **बेसीपोडियम (Basipodium)**– यह अग्रपाद में हस्त की कलाई या कार्पस (wrist or carpus) का पश्चपाद में पैर के गुल्फ या टार्सस (ankle or tarsus) का निर्माण करता है। कलाई का निर्माण छोटी–छोटी हड्डियों – कार्पल्स (carpals) तथा गुल्फ का निर्माण टार्सल्स (tarsals) से होता है। सामान्यतः कलाई या कार्पल्स हड्डियों की तीन कतारें होती हैं–

   (a) **प्रॉक्सीमल या समीपस्थ कतार (Proximal row)**– इसमें तीन कार्पल्स होते हैं– रेडियस अस्थि के आधार पर **रेडिएल** (radiale), अल्ना के आधार पर **अल्नेयर** (ulnare) तथा इन दोनों के मध्य **इण्टरमीडिएट** (intermediate) कार्पल्स होते हैं।

अधिकांश रेप्टाइल्स एवं स्तनधारियों में कार्पल्स की समीपस्थ पंक्ति के पश्च या पार्श्व सिरे पर एक **पिसिफॉर्म** (pisciform) अस्थि पायी जाती है।

(b) मध्य कतार (Mesial or middle row)– इस कतार में दो कार्पल्स जिन्हें सेण्ट्रेल (centrales) कहते हैं, होते हैं।

(c) डिस्टल या दूरस्थ कतार (Distal row)– इस कतार में पाँच डिस्टल कार्पल्स या डिस्टेलिया (distal carpals or distalia) होते हैं।

इसी प्रकार पैर में गुल्फ या टार्सस में भी टार्सल्स की भी तीन कतारें पायी जाती हैं–

- **प्रॉक्सीमल कतार**– इसमें तीन टार्सल्स पाये जाते हैं। टिबिया के आधार पर **टिबिऐल या एस्ट्रागेलस** (tibiale or astragalus), फिबुला के आधार पर **फिबुलेयर या कैल्केनियम** (fibulare or calcaneum) तथा इन दोनों के मध्य इण्टरमीडिएट (intermediate) टार्सल होता है।
- **मध्य कतार**– इसमे दो **सेण्ट्रेल्स** (centrales) टार्सल्स होते हैं।
- **डिस्टल कतार**– इसमें पाँच **डिस्टल टार्सल्स** या **डिस्टेलिया** होते हैं।

(ii) मेटापोडियम (Metapodium)– यह हस्त की हथेली (palm) तथा पैर में तलवे (sole) का निर्माण करता है। हथेली का कंकाल पाँच लम्बी हड्डियों या मेटाकार्पल्स (metacarpals) से तथा तलवे का कंकाल इसी प्रकार पाँच लम्बी हड्डियों या मेटाटार्सल्स (metatarsals) से बना होता है।

(iii) एक्रोपोडियम (Acropodium)– इसके अन्तर्गत हाथ एवं पैर की अंगुलियाँ आती हैं। हाथ की अंगुलियों को डिजिट्स (digits) तथा पैर की अंगुलियों को **टोज** (toes) कहते हैं। हाथ एवं पैर की प्रत्येक अंगुली छोटी–छोटी हड्डियों की कतार से बनी होती हैं, जिन्हें **फैलेन्जेज** (phalanges) कहते हैं। अग्रपाद की प्रथम अंगुली को अंगूठा या पोलेक्स (thumb or pollex) तथा पाँचवी अंगुली को मिनिमस (minimus) कहते हैं। इसी प्रकार पश्चपाद की प्रथम अंगुली को हैलक्स (hallux) तथा पाँचवी अंगुली को **मिनिमस** कहते हैं।

टेट्रापोड्स में हस्त या मेनस का अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि इसमें कुछ हड्डियों के समेकित हो जाने से उनकी संख्या कम हो जाती है। आधुनिक टेट्रापोड्स में सेण्ट्रेल कार्पल्स या तो पूर्णतः विलुप्त होते हैं या फिर इनकी संख्या कम हो जाती है। चौथे एवं पाँचवें डिस्टल कार्पल्स सामान्यतः समेकित हो जाते हैं। कुछ में अंगुलियाँ तथा फैलेन्जेज की

संख्या कम हो जाती है तथा इनसे सम्बन्धित मेटाकार्पल्स भी अल्पविकसित या विलुप्त हो जाते हैं।

टिप्पणी

सारणी क्र. 2.5: अग्र एवं पश्चपाद की अस्थियाँ
(Skeletal Elements of Fore-limb and Hind-limb)

Parts	Fore-limb	Hind-limb
Stylopodium Zeugopodium Autopodium Basopodium Metapodium Acropodium	Humerus Radius, ulna 3 Proximal carpals 2 Centrales 5 Distal carpals 5 Metacarpals Phalanges of digits	Femur Tibia and fibula 3 Proximal tarsals 2 Centrales 5 Distal tarsals 5 Metatarsals Phalanges of toes

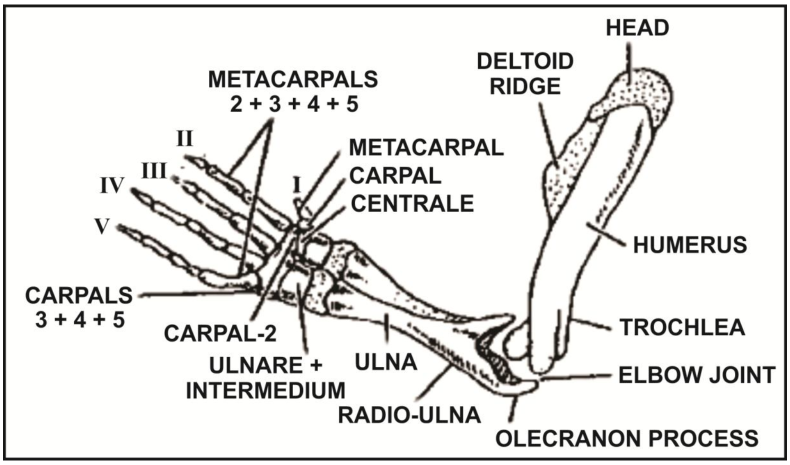

चित्र क्र. 2.30: Frog : Bones of Fore-limb

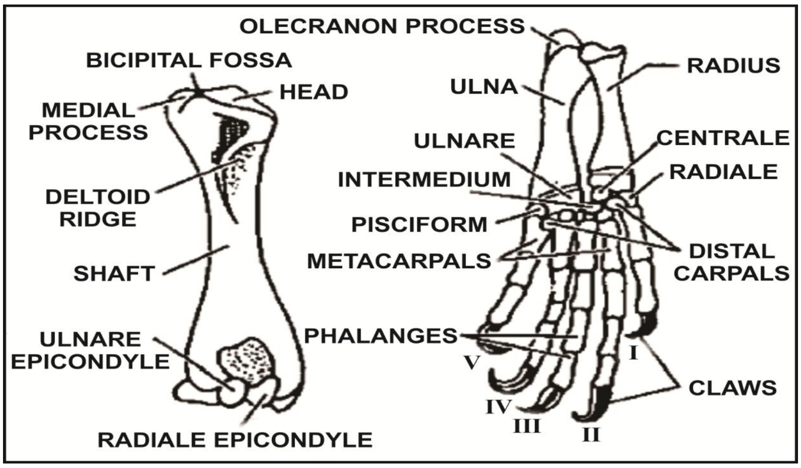

चित्र क्र. 2.31: Varanus : Bones of Fore-limb

टिप्पणी

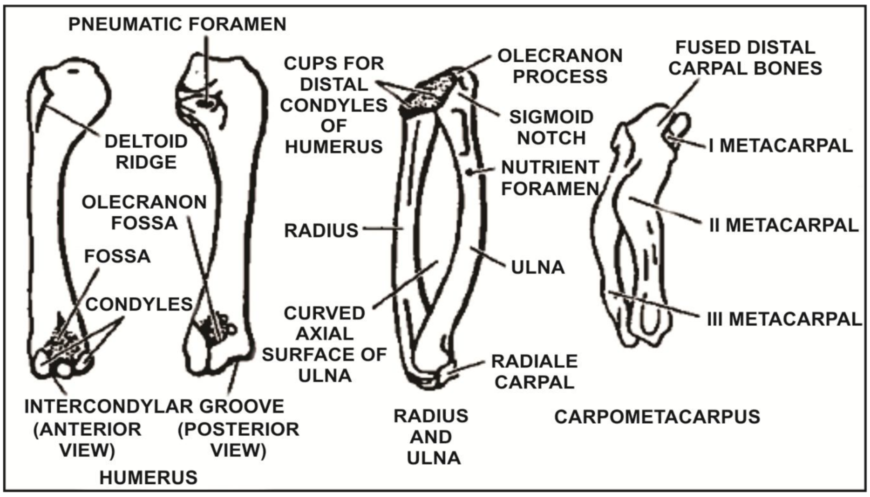

चित्र क्र. 2.32: Fowl : Bones of Fore-limb

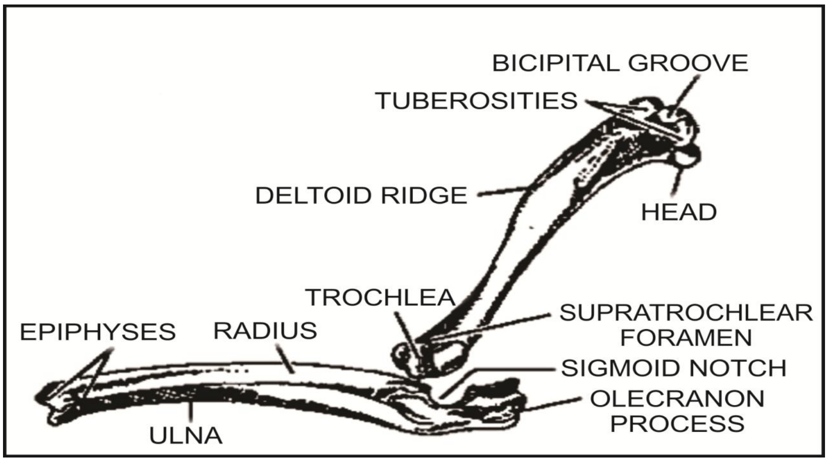

चित्र क्र. 2.33: Rabbit : Bone of Fore-limb

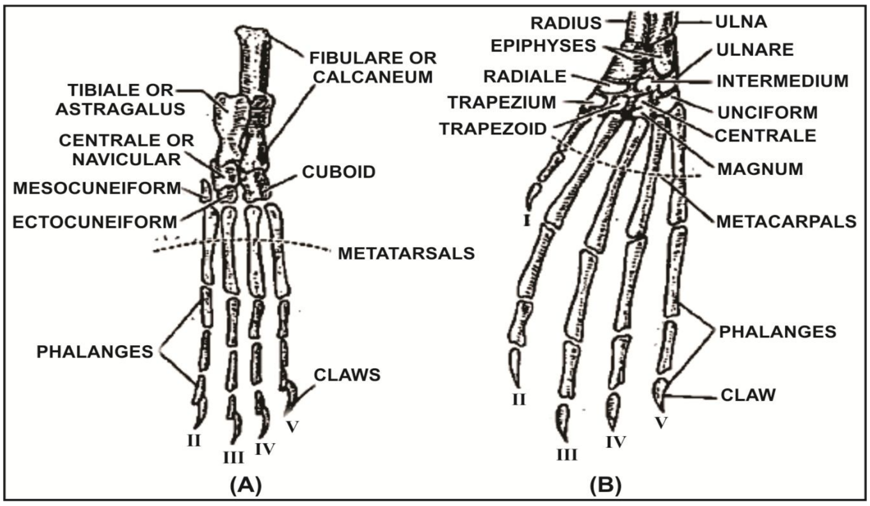

**चित्र क्र. 2.34: Rabbit : (A) Ankle and Foot Bones,
(B) Wrist and Palm Bones**

टिप्पणी

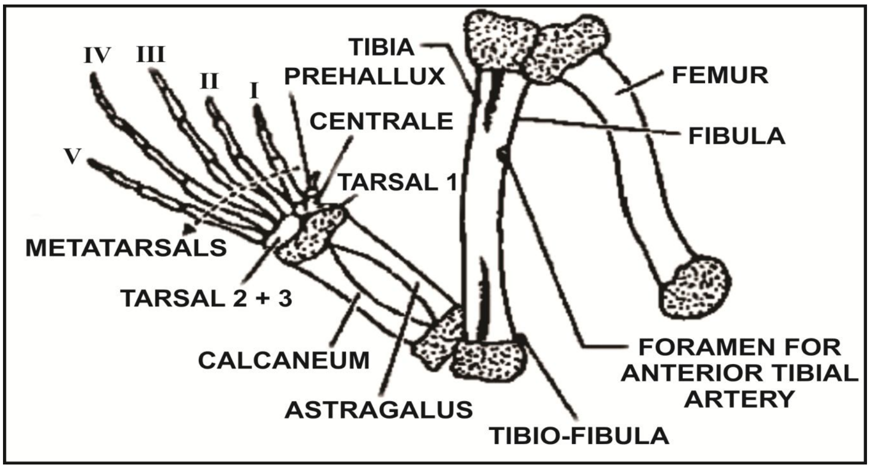

चित्र क्र. 2.35: **Frog : Bones of Hind-limb**

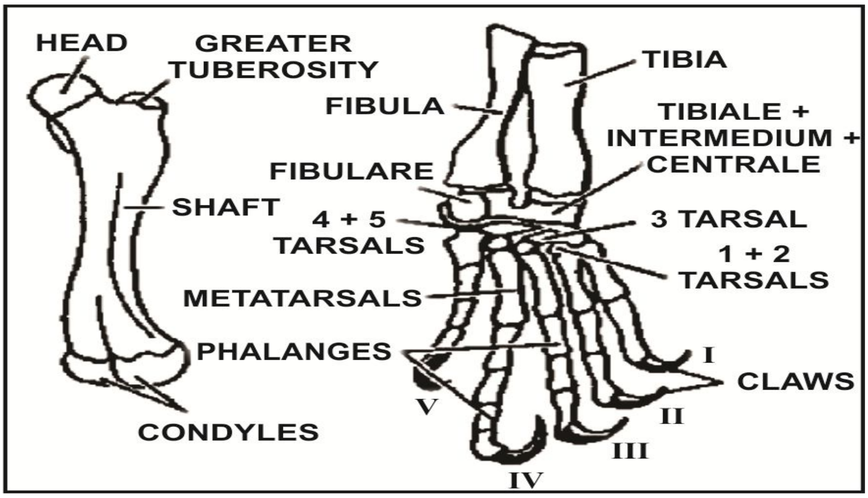

चित्र क्र. 2.36: **Varanus : Bones of Hind-limb**

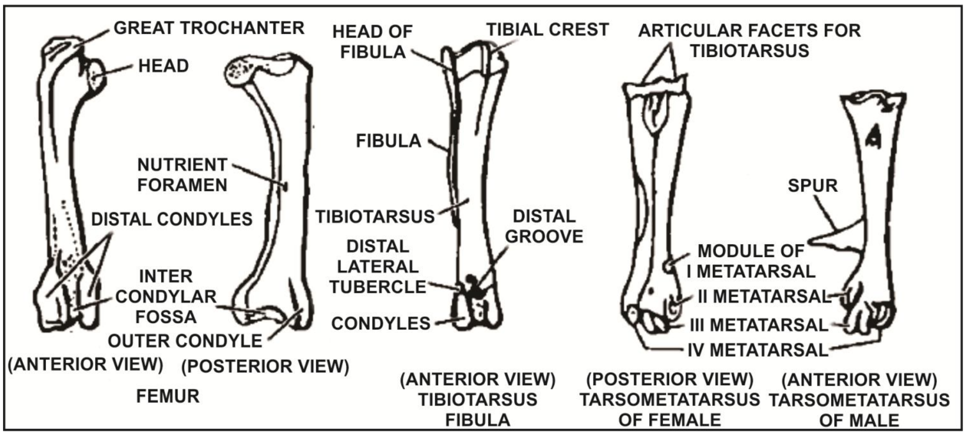

चित्र क्र. 2.37: **Fowl : Bones of Hind-limb**

टिप्पणी

सारणी क्र. 2.6: वर्टीब्रेट के विभिन्न वर्गों में अग्रपाद की अस्थियों का तुलनात्मक अध्ययन

(Comparative Study of Bones of Fore-limbs in Different Classes of Vertebrates)

Name of the Bones	Amphibia	Reptilia	Aves	Mammalia
	Frog (Rana)	Lizard (Varanus/Uromastix)	Pigeon/Fowl (Columba)	Rabbit (Ocryctolngus)
1. अग्रपाद की अस्थियाँ	इसके अग्रपाद में निम्नलिखित अस्थियाँ पायी जाती हैं– 1. ह्यूमरस 2. रेडियोअल्ना 3. कार्पल्स 4. मेटाकार्पल्स 5. फैलेन्जेज	निम्नलिखित अस्थियाँ पायी जाती हैं– 1. ह्ययूमरस 2. रेडियस तथा अल्ना 3. कार्पल्स 4. मेटाकार्पल्स 5. फैलेन्जेज	निम्नलिखित अस्थियाँ पायी जाती हैं – 1. ह्ययूमरस 2. रेडियस तथा अल्ना 3. कार्पल्स 4. कार्पोमेटाकार्पल्स 5. फैलेन्जेज	निम्नलिखित अस्थियाँ पायी जाती हैं – 1. ह्ययूमरस 2. रेडियस तथा अल्ना 3. कार्पल्स 4. मेटाकार्पल्स 5. फैलेन्जेज
2. ह्यूमरस	(i) यह अग्रपाद की अपर आर्म अस्थि है। यह छोटी, बेलनाकार तथा इसका शैफ्ट (shaft) कुछ वक्राकार होता है। (ii) प्रॉक्सीमल या समीपस्थ सिरा कार्टिलेज से ढका रहता है तथा एक गोल हैड का निर्माण करता है, जो पेक्टोरल गर्डिल की ग्लीनॉइड कैविटी में फिट होता है। हैड के नीचे एक स्पष्ट डेल्टॉइड रिज स्थित होता है। ट्यूबरोसिटी का अभाव होता है।	(i) अग्रपाद की अपर आर्म की अस्थि है। इसका शैफ्ट लम्बा, चपटा तथा दोनों सिरों पर फूला हुआ होता है। (ii) समीपस्थ सिरे पर एक छोटा हैड, एक मीडियल प्रवर्ध तथा एक डेल्टॉइड रिज पाया जाता है।	(i) अग्रपाद की अपर आर्म की अस्थि है। इसका शैफ्ट कुछ चपटा तथा वक्राकार होता है। (ii) समीपस्थ सिरा काफी चौड़ा एवं उभरा हुआ होता है। इस पर एक कॉनवैक्स हैड़ जिसके दोनों ओर एक–एक ट्यूबरोसिटीज पायी जाती है, हैड के नीचे एक न्यूमेटिक फोरामैन तथा एक स्पष्ट डेल्टॉइड रिज पाया जाता है।	(i) अग्रपाद की अपर आर्म की अस्थि है। इसका शैफ्ट दृढ़ एवं छड़ के आकार का होता है। (ii) समीपस्थ सिर एक बड़ा गोल हैड, दो ट्यूबरोसिटीज, एक बाइसिपीटल ग्रूव तथा एक छोटा डेल्टॉइड रिज पाया जाता है।
	(iii) डिस्टल या दूरस्थ सिरे पर रेडियो–अल्ना से सन्धि के लिए एक गोल कॉण्डाइल या कैपिटुलम तथा रिजैज (ridges) पाये जाते हैं।	(iii) दुरस्थ सिरे पर पुली के आकार के दो एपिकॉण्डाइल्स पाये जाते हैं, जो रेडियस तथा अल्ना से सन्धि करते हैं।	(iii) दूरस्थ सिरे पर रेडियस तथा अल्ना के सन्धि करने के लिए दो कॉण्डाइल्स तथा उनके मध्य एक एपिकॉण्डा इलर ग्रूव पाया जाता है।	(iii) दूरस्थ सिरे पर अल्ना से सन्धि करने के लिए एक पुली के समान ट्रॉक्लिया, एक ऑलिक्रेनन फोसा व उसमें स्थित एक सुप्रा – ट्रॉक्लियर फोरामैन पाया जाता है।
3. रेडियस तथा अल्ना	(i) ये अग्रपाद की फोर आर्म या पूर्वबाहु की अस्थियाँ हैं। ऐम्फिबियन्स में रेडियस तथा अल्ना लम्बवत एक–दूसरे से फ्यूज होकर एक छोटी कम्पाउण्ड अस्थि या रेडियो– अल्ना बनाते हैं।	(i) ये फोर आर्म की अस्थियाँ हैं। इन जन्तुओं में ये हड्डियाँ लम्बी तथा अलग–अलग होती हैं। रेडियस लगभग बेलनाकार एवं अल्ना से छोटी होती है। अल्ना अत्यन्त मजबूत होती है।	(i) ये फोर आर्म की हड्डियाँ हैं जो एक–दूसरे से पृथक् होती हैं। रेडियस सीधी, बेलनाकार तथा अल्ना से कुछ छोटी होती है। अल्ना लम्बी, दृढ़ तथा बाहर की ओर वक्राकार होती है।	(i) ये फोर आर्म की हड्डियाँ हैं। ये पृथक्, लम्बी, कुछ वक्र तथा खरगोश में एक–दूसरे से दृढ़ता से चिपटी रहती हैं। रेडियस छोटी तथा अल्ना बड़ी होती है।

	(ii) समीपस्थ सिरे पर एक खाँच पायी जाती है जिसमें ह्यूमरस कैपिटुलम फिट होता है। इसी सिरे पर अल्ना एक छोटे कोनिकल ऑलिक्रेनन प्रवर्ध में उभरी रहती है जो कोहनी के जोड़ का निर्माण करता है। दूरस्थ सिरा चपटा एवं चौड़ा तथा कार्टिलेज की पर्त से ढका रहता है जो कार्पल्स से जुड़ने के लिए दो आर्टिकुलर फैसेट्स का निर्माण करता है।	(ii) अल्ना के समीपस्थ सिरे पर एक ऑलिक्रेनन प्रवर्ध तथा इसके दूरस्थ सिरे पर एक कॉनवैक्स आर्टिकुलर फैसेट पाया जाता है जिससे कार्पल्स जुड़ते है। रेडियस के दूरस्थ सिरे पर कार्पल्स से जुड़ने के लिए एक कॉनकेव आर्टीकुलर फैसेट तथा एक स्टाइलॉइड प्रवर्ध पाया जाता है।	(ii) अल्ना समीपस्थ सिरा कॉनकेव तथा ऑलिक्रेनन प्रवर्ध बनाता है। इसका दूरस्थ सिरा कॉनवैक्स होता है जो कार्पल्स से जुड़ता है। रेडियस का समीपस्थ सिरा कॉनकेव होता है जिसमें ह्यूमरस का कॉण्डाइल फिट होता है। इसका दूरस्थ सिरा घुण्डी के समान होता है।	(ii) अल्ना के समीपस्थ सिरे पर एक स्पष्ट ऑलिक्रेनन प्रवर्ध तथा ह्यूमरस के ट्राक्लिया के लिए कॉनकेव सिगमॉइड नौच पाया जाता है। रेडियस तथा अल्ना दोनों के दूरस्थ सिरों पर एपिफाइसिस पायी जाती हैं जिससे कार्पल्स सन्धि कहते हैं।
4. कार्पल्स	ये कलाई की अस्थियाँ हैं। इनकी कलाई में छः छोटे कार्पल्स होते हैं जो क्रमशः दो कतारों (प्रत्येक में तीन–तीन) में व्यवस्थित रहते हैं। इनमें पिसिफॉर्म अस्थि अनुपस्थित होती हैं।	इनकी कलाई में 9 कार्पल्स पाये जाते हैं जो दो कतारों मे क्रमशः 3 एवं 5 की संख्या में व्यवस्थित रहते हैं। इन दो कतारों के मध्य में एक सेण्ट्रेल कार्पल स्थित रहता है। इनमें पिसिफॉर्म अस्थि पायी जाती है।	इनकी कलाई में रेडियस तथा अल्ना से जुड़े दो स्वतन्त्र कार्पल रेडिऐल तथा अल्नेयनर पाये जाते हैं जो समीपस्थ या प्रॉक्सीमल कतार का निर्माण करते हैं। दूरस्थ या डिस्टल कतार के कार्पल्स नीचे मेटाकार्पल्स से फ्यूज्ड रहते हैं। इनमें पिसिफॉर्म अस्थि अनुपस्थित रहती है।	इनकी कलाई में आठ कार्पल्स पाये जाते हैं जो तीन समीपस्थ, मध्य तथा दूरस्थ कतारों में क्रमशः 3, 1 तथा 4 की संख्या में व्यवस्थित रहते हैं। इनमें पिसिफॉर्म अस्थि पायी जाती है।
5. मेटा कार्पल्स	ये हथेली की अस्थियाँ हैं। इनकी हथेली में 5 लम्बी, बेलनाकार एवं छड़ के आकार की मेटाकार्पल्स पायी जाती हैं। इनमें अंगूठा या पोलैक्स का प्रथम मेटाकार्पल अविकसित होता है।	इनकी हथेली में 5 लम्बाकार सुविकसित मेटाकार्पल्स होते हैं।	इनकी हथेली एक ही अस्थि से बनती है जिसे कार्पोमेटाकार्पस कहते हैं। यह डिस्टल या दूरस्थ कार्पल्स तथा 3 मेटाकार्पल्स के आपस में समेकित हो जाने से बनती है। प्रथम मेटाकार्पल अविकसित जबकि द्वितीय एवं तृतीय मेटाकार्पल्स लम्बे तथा दोनों सिरों पर आपस में फ्यूज्ड रहते हैं।	इनकी हथेली 5 लम्बाकार एवं छड़ के समान मेटाकार्पल्स से बनती है, किन्तु अंगूठे या पोलैक्स की प्रथम मेटाकार्पल कम विकसित होती है।

टिप्पणी

6. फैलेन्जेज	ये अंगुलियों की छोटी–छोटी अस्थियाँ हैं। इनके हाथ में केवल 4 अंगुलियाँ होती हैं। अंगूठा या पोलेक्स अनुपस्थित होता है। टर्मिनल फैलेन्ज नाखून रहित होता है। इनके हाथ का फैलेन्जियल सूत्र– 0, 2, 2, 3, 3 होता है।	इनके ये 5 अंगुलियां की छोटी–छोटी अस्थियाँ हैं। अन्तिम फैलेन्ज में एक हॉर्नी पंजा होता है। इनके हाथ का फैलेन्जियल सूत्र– 2, 3, 4, 5, 3 होता है।	इनमें ये तीन पंजे रहित अंगुलियों की छोटी–छोटी अस्थियाँ हैं। इनके हाथ का फैलेन्जियल सूत्र– 1, 2, 1 होता है।	इनमें ये 5 पंजे युक्त अंगुलियों की छोटी–छोटी अस्थियाँ हैं। इनके हाथ का फैलेन्जियल सूत्र– 2, 3, 3, 3, 3 होता है।

सारणी क्र. 2.7: वर्टीब्रेट के विभिन्न वर्गों में पश्चपाद की अस्थियों का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparative Study of Bones of Hind-limbs in Different Classes of Vertebrates)

Name of the Bones	**Amphibia**	**Reptilia**	**Aves**	**Mammalia**
	Frog (Rana)	**Lizard (Varanus/Uromastix)**	**Pigeon/Fowl (Columba)**	**Rabbit (Oryctolagus)**
1. पश्चपाद की अस्थियाँ	इनके पश्चपाद में निम्नलिखित अस्थियाँ पायी जाती हैं– फीमर टीबियो–फिबुला, टार्सल्स, मेटाटार्सल्स, फैलेन्जेज।	निम्नलिखित अस्थियाँ पायी जाती हैं– फीमर टीबिया तथा फिबुला, टार्सल्स, मेटाटार्सल्स, फैलेन्जेज।	निम्नलिखित अस्थियाँ पायी जाती हैं– फीमर टीबियोटारसस तथा फिबुला, टार्सोमेटाटारसस, फैलेन्जेज।	निम्नलिखित अस्थियाँ पायी जाती हैं– फीमर टीबिया तथा फिबुला, टार्सल्स, मेटाटार्सल्स, फैलेन्जेज।
2. फीमर	(i) यह पश्चपाद की जाँघ की अस्थि है। इसका शैफ्ट लम्बा, बेलनाकार तथा कुछ वक्र होता है। इसके दोनों सिरे फूले तथा कैल्सिफाइड कार्टिलेज से ढके रहते हैं।	(i) यह पश्चपाद की जाँघ की अस्थि है। इसका शैफ्ट दृढ़ एवं लम्बा होता है तथा दोनों सिरों पर फूला हुआ होता है।	(i) यह पश्चपाद की जाँघ की अस्थि है। इसका शैफ्ट लम्बा, बेलनाकार, दृढ़ एवं कुछ वक्र होता है। इसके दोनों सिरे फूले होते हैं।	(i) पश्चपाद की जाँघ की अस्थि है। शैफ्ट लम्बा, दृढ़, बेलनाकार तथा दोनों सिरों पर फूला रहता है।
	(ii) इसके समीपस्थ सिरे पर एक गोल हैड पाया जाता है जो पेल्विक गर्डिल में स्थित एसिटाबुलम कैविटी के साथ बॉल एवं सॉकेट सन्धि का निर्माण करता है।	(ii) समीपस्थ सिरे पर पेल्विक गर्डिल की एसिटाबुलम कैविटी के साथ सन्धि करने के लिए एक बड़ा एवं गोल हैड तथा दो प्रवर्ध जिन्हें लैसर एवं ग्रेटर ट्रोकैन्टर्स कहते हैं, स्थित होते हैं।	(ii) समीपस्थ सिरे पर एसिटाबुलम कैविटी के लिए एक बड़ा गोल हैड, एक ग्रेटर ट्रोकैण्टर तथा इन दोनों के मध्य पेल्विक गर्डिल की इलियम अस्थि के ऐण्टीट्रोकैण्टर से जुड़ने के लिए एक फैसेट पाया जाता है।	(ii) समीपस्थ सिरे पर एक बड़ा स्पष्ट हैड जो एसिटाबुलम कैविटी में फिट होता है, पाया जाता है इसके अतिरिक्त स्तनियों की फीमर के समीपस्थ सिरे पर तीन–लैसर, ग्रेटर तथा तृतीय ट्रोकैण्टर्स पाये जाते हैं।
	(iii) अस्थि का दूरस्थ सिरा टीबियोफिबुला से सन्धि करता हैं।	(iii) दूरस्थ सिरा पुली के समान होता है जिस पर दो काण्डाइल्स तथा एक ट्यूबरोसिटी पायी जाती हैं। दोनों कॉण्डाइल्स क्रमशः टीबिया तथा फिबुला से सन्धि करते हैं।	(iii) दूरस्थ सिरा पुली के समान होता है, जिस पर टीबियो–टार्सल से जुड़ने के लिए दो कॉण्डाइल्स एवं एक ग्रूव पाया जाता है।	(iii) दूरस्थ सिरे पर टीबिया तथा फिबुला से जुड़ने के लिए दो कॉण्डाइल्स तथा एक ग्रूव पाया जाता है।

टिप्पणी

3. पटेला	इनमें यह अनुपस्थित होता है।	अनुपस्थित।	इनमें घुटने के जोड़ पर एक छोटी सैसमॉइड् अस्थि या पटेला पाया जाता है।	स्तनियों में घुटने के जोड़ पर एक स्पष्ट पटेला पाया जाता है।
4. टीबिया एवं फिबुला	(i) यह पश्चपाद की शैंक (shank) की अस्थि है। इन जन्तुओं में यह एक ही कम्पाउण्ड अस्थि है जिसे टीबियो–फिबुला कहते हैं। यह शरीर की सबसे लम्बी अस्थि है। शैफ्ट कुछ वक्र तथा दोनों सिरों पर फूला हुआ तथा चपटा होता हैं दोनों सिरे कार्टिलेज से ढके रहते हैं।	(i) इन जन्तुओं के शैंक में ये दोनों अस्थियाँ – टीबिया तथा फिबुला अलग–अलग होती हैं। टीबिया दृढ़ एवं कुछ वक्र, जबकि फिबुला बेलनाकार होती है।	(i) इन जन्तुओं में भी शैंक दो अलग–अलग अस्थियों–टीबिया तथा फिबुला से बनता है। टीबिया तथा प्रॉक्सीमल टॉर्सल्स आपस में फ्यूज होकर एक लम्बी, दृढ़ तथा कम्पाउण्ड – टीबियो–टार्सस अस्थि का निर्माण करते हैं जो इन जन्तुओं के शरीर की सबसे लम्बी अस्थि है। फिबुला पतली व बेलनाकार होती है जो अपने समीपस्थ सिरे पर फूली हुई, किन्तु दूरस्थ सिरे की ओर क्रमशः पतली होती चली जाती है। यह घुटने तक नहीं पहुँच पाती है।	(i) ये शैंक भाग की अस्थियाँ हैं जो एक–दूसरे से पृथक् होती हैं। टीबिया बड़ी, दृढ़ तथा सीधी होती है। फिबुला छोटी तथा पतली होती है जो अपने समीपस्थ सिरे पर स्वतन्त्र परन्तु दूरस्थ सिरे पर टीबिया से फ्यूज होकर संयुक्त टीबियो–फिबुला बनाती है जो शरीर में लम्बी हड्डी होती हैं।
	(ii) टीबिया के समीपस्थ सिरे पर एक नीमियल या टीबियल क्रैस्ट पाया जाता है। इसके दूरस्थ सिरे पर टार्सस के एस्ट्रोगैलस तथा कैल्केनियम के लिए फैसेट्स पाये जाते हैं।	(ii) टीबिया के समीपस्थ सिरे पर एक नीमियल क्रैस्ट एवं फीमर से जुड़ने के लिए दो फैसेट्स पाये जाते हैं। फिबुला का दूरस्थ सिरा उभरा तथा टार्सल से सन्धि करता है।	(ii) टीबियो – टार्सस के समीपस्थ सिरे एक स्पष्ट नीमियल क्रैस्ट तथा फीमर से जुड़ने के लिए दो फैसेट्स पाये जाते हैं। इसका पुली के समान दूरस्थ सिरा टार्सस से सन्धि करता है।	(ii) टीबिया के समीपस्थ सिरे पर एक छोटा एवं स्पष्ट नीमियल क्रैस्ट तथा फीमर के दो डिस्टल कॉण्डाइल्स से जुड़ने के लिए दो फैसेट्स पाये जाते हैं।
5. टार्सल्स	इनके टार्सल्स या गुल्फ (tarsus or ankle) में 4 टार्सल्स होते हैं जो क्रमशः दो–दो की संख्या में दो कतारों में व्यवस्थित रहते हैं। समीपस्थ कतार के दोनो टार्सल लम्बे तथा दोनों सिरों पर आपस में जुड़े रहते हैं। बाहरी समीपस्थ टार्सल को कैल्केनियम या फिबुलेयर कहते है। जो मोटा एवं दृढ़ होता है। भीतरी को एस्ट्रागैलस या टीबिऐल कहते हैं। यह पतला एवं वक्राकार होता हैं।	इनके टार्सल्स में 5 टार्सल्स होते हैं जिनमें से दो समीपस्थ कतार में तथा तीन दूरस्थ कतार में व्यवस्थित रहते हैं।	इनके टार्सल्स में कोई भी स्वतन्त्र टार्सल नहीं पाया जाता है। समीपस्थ कतार के टार्सल्स टीबियो–टार्सल से फ्यूज्ड रहते हैं, जबकि दूरस्थ कतार के टार्सल्स टार्सो–मेटाटार्सस से फ्यूज्ड रहते हैं।	इनके टार्सल्स में 6 टार्सल्स पाये जाते हैं समीपस्थ कतार में दो लम्बे टार्सल–एस्ट्रागैलस तथा कैल्केनियम होते हैं। मध्य की कतार में एक सैण्ट्रेल या नेविकुलर टार्सल पाया जाता है, जबकि दूरस्थ कतार में तीन टार्सल्स होते हैं।

7. मेटा टार्सल्स	ये पैरो के तलवे (sole) की हड्डियाँ हैं। इनके तलवों में 5 छड़नुमा मेटाटार्सल्स पाये जाते हैं जिनसे 5 अंगुलियाँ जुड़ी होती हैं।	इनमें भी पैरों के तलवों मे 5 छड़नुमा मेटाटार्सल्स पाये जाते हैं जिनमें से प्रत्येक एक अंगुली को अवलम्बित करता है।	इनके पैर के सभी दूरस्थ टार्सल्स तथा 2, 3 एवं 4 मेटाटार्सल्स आपस में फ्यूज होकर एक संयुक्त टार्सो–मेटाटार्सल्स अस्थि का निर्माण करते हैं। इसके समीपस्थ सिरे पर टीबियोटार्सस के सन्धि के लिए दो फैसेट्स पाये जाते हैं। दूरस्थ सिरे पर 3 पुली पायी जाती हैं जो प्रत्येक एक मेटाटार्सल को प्रदर्शित करती है। प्रथम में मेटाटार्सल अविकसित होता है।	खरगोश के पैर के तलुवे में 4 लम्बे मेटाटार्सल्स होते हैं (जबकि मनुष्य के तलुवे में 5 होते हैं) जिनमे से प्रत्येक एक अंगुली को अवलम्बित करता है। इसमें प्रामिमेटाटार्सल अनुपस्थित होता है, क्योंकि खरगोश के पैर में अंगूठा या हैलक्स नहीं पाया जाता है।
7. फैलेन्जेज	इनके पैर में 5 पंजेरहित अंगुलियाँ पायी जाती हैं जो छोटी–छोटी अस्थियों या फैलेन्जेज से बनी होती है। इनका फैलेन्जियल सूत्र– 2, 2, 3, 4, 3 होता है।	इनमें पैर में 5 पंजेयुक्त अंगुलियाँ पायी जाती हैं जो फैलेन्जेज से बनी होती हैं। इनका फैलेन्जियल सूत्र– 2, 3, 4, 5, 3 होता है।	इनके पैर में 4 पंजेयुक्त अंगुलियाँ पायी जाती हैं जो फैलेन्जेज से बनी होती हैं। पाँचवी अंगुली अनुपस्थित होती है। इनका फैलेन्जियल सूत्र– 2, 3, 4, 5 होता है।	खरगोश के पैर में 4 पंजेयुक्त अंगुलियाँ पायी जाती है। जो फैलेन्जेज से बनी होती हैं। इनमें अंगूठा या हैलक्स अनुपस्थित होता है। इनका फैलेन्जियल सूत्र– 0, 3, 3, 3, 3 होता है।

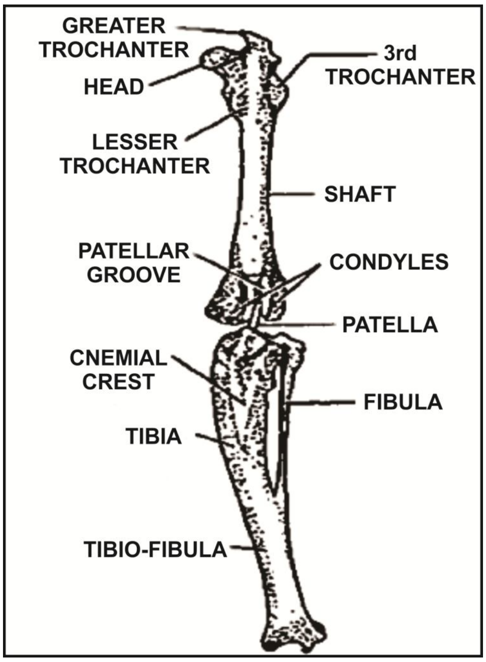

चित्र क्र. 2.38: **Rabbit : Bones of Hind-limb**

टिप्पणी

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

19. ऑब्ट्यूरेटर फोरामैन पाया जाता है–
    (अ) मेंढक की पेक्टोरल गर्डिल में
    (ब) मेंढक की पेल्विक गर्डिल में
    (स) पक्षी की पेक्टोरल गर्डिल में
    (द) स्तनियों की पेल्विक गर्डिल में।
20. ट्राइरेडिएट पेल्विक गर्डिल पायी जाती है–
    (अ) मेंढक में (ब) रेप्टाइल में
    (स) पक्षियों में (द) स्तनियों में।
21. ग्लीनॉइड गुहा पायी जाती है–
    (अ) श्रोणिमेखला में (ब) अंसमेखला में
    (स) फीमर में (द) रेडियो अल्ना में।
22. टार्सोमेटाटार्सल्स हड्डी पायी जाती है–
    (अ) सरीसृप (ब) पक्षी
    (स) उभयचर (द) मछली।
23. ऑलीक्रेनन प्रवर्ध पाया जाता है–
    (अ) रेडियस में (ब) अल्ना में
    (स) टीबिया में (द) फिबुला में
24. टिबियो टार्सस एवं फिबुला अस्थि पायी जाती हैं–
    (अ) रेप्टाइल के पश्चपाद में (ब) पक्षियों के पश्चपाद में
    (स) स्तनियों के पश्चपाद में (द) मेंढक के पश्चपाद में।
25. प्यूबिस सिम्फाइसिस मौजूद होता है–
    (अ) पेक्टोरल गर्डिल में (ब) पेल्विक गर्डिल में
    (स) खोपड़ी में (द) कशेरुक दण्ड में।
26. मछलियों के कौन से फिन्स जोड़ीदार होते हैं?
    (अ) डॉर्सल तथा एनल (ब) डार्सल तथा काउडल
    (स) पेल्विक तथा वेण्ट्रल (द) पेक्टोरल तथा पेल्विक।

टिप्पणी

27. फीमर कौन–सी हड्डी है?

(अ) अग्रपाद की (ब) पश्चपाद की

(स) पेल्विक गर्डिल की (द) पेक्टोरल गर्डिल की।

28. फरकुला बोन पायी जाती है–

(अ) स्तनियों मे (ब) पक्षियों में

(स) सरीसृपों में (द) उभयचरों में।

29. सही/गलत का निर्णय कीजिए–

एसिटाबुलम श्रोणिमेखला (pelvic girdle) में पाया जाता है।

30. अग्रपाद की अस्थियाँ है–

(अ) हयूमरस (ब) रेडिया अलना

(स) कार्पल्स (द) उक्त सभी।

2.4 कशेरुकियों में पाचन तन्त्र (Digestive System in Vertebrates)

सभी कशेरुकियों में आहार तन्त्र (alimentary system) पाया जाता है जो नलिकाकार आहार नाल या पाचन नलिका (digestive tube) का बना होता है। आहार का प्रवेश द्वार मुँह तथा अन्त मलद्वार (anal) या क्लोएकल छिद्र (cloacal aperture) होता है। भ्रौणिकीय (Embrylogical) दृष्टि से आहार नाल क्रमशः फोरगट (fore gut) या स्टोमोडियम (stomodaeum), मिड गट (mid gut) या मीजोडियम (mesodaeum) तथा हाइण्ड गट (hind gut) या प्रोक्टोडियम (proctodaeum) में विभक्त रहती है। फोर गट तथा हाइण्ड गट शरीर की बाह्य सतह की इनवैजीनेटैड हुई एक्टोडर्म (ectoderm) द्वारा आस्तरित होते है। मिडगट भ्रूण की मीजोडर्म (mesoderm) से विकसित होता है। सम्पूर्ण आहार नाल की भित्ति में ग्रन्थियाँ (glands) पायी जाती हैं जो कि विभिन्न प्रकार के पाचक एन्जाइम्स (digestive enzymes) स्त्रावित करती हैं। आहार नाल से पृथक् ग्रन्थियाँ जैसे यकृत (liver) एवं पैन्क्रियाज (pancreas) भी आहार नाल से सम्बन्धित रहती हैं।

टिप्पणी

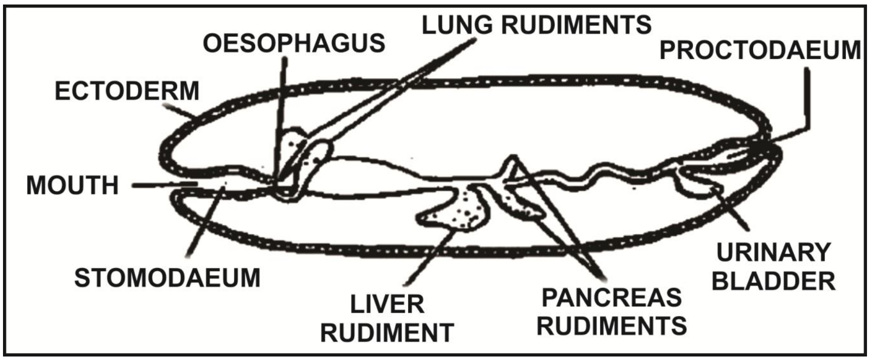

चित्र क्र. 2.39: Diagrammatic Representation of Vertical Section of Vertebrate Embryo Showing Alimentary Canal and its Derivatives

सबसे प्रारम्भिक आहार नाल एक सीधी नलिका थी, जिसकी चौड़ाई सभी स्थानों पर समान थी तथा यह विभिन्न क्षेत्रों में विभक्त नहीं थी किन्तु यह संरचना एवं कार्य के दृष्टिकोण से विभिन्न क्षेत्रों जैसे इसोफेगस (oesophagus), आमाशय (stomach) एवं आंत (intestine) में विभक्त थी। इसोफेगस संवहन क्षेत्र (conduction region) है जिसमें भोजन आंशिक रूप से पचता है या अप्रभावित रहता है। यह आमाशय (stomach) से जुड़ी रहती है जो भण्डारण (Storage) तथा पाचन का क्षेत्र है। अर्द्ध–पाचित भोजन (semi-digested food) आंत को भेजा जाता है जो मँथने तथा अवशोषण (trituration and absorption) का क्षेत्र है। आहार नाल के इन सामान्य विभाजनों में जन्तु के भोजन एवं आवश्यकतानुसार अनेक रूपान्तरण पाये जाते हैं।

आहार नाल की संरचना (Structure of alimentary canal)– आहार नाल का ल्युमैन (lumen) भित्ति द्वारा बँधा रहता है जिसकी मोटाई एवं संरचना विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग होती है। जैसे मिड गट में अंदर से बाहर की ओर क्रमशः चार पर्तें-म्यूकोसा (mucosa), सब–म्यूकोसा (sub-mucosa), पेशी स्तर (muscle layer) और सैरोसा (serosa) या पेरिटोनियम (peritoneum) पायी जाती हैं। म्यूकोसा या म्यूकस झिल्ली (mucous membrane) की उत्पत्ति एण्डोडर्म (endoderm) से होती है तथा यह तीन पर्तों की बनी होती है। सबसे अंदर की पर्त साधारण कॉल्युम्नर एपिथीलियम (simple columnar epithelium) होती है जो प्रायः इनवैजीनेट (Invaginate) होकर म्यूसिन या एन्जाइम सीक्रीटिंग ग्रन्थियाँ (Mucin or enzyme secreting glands) बनाती है। मध्य पर्त लेमिना प्रोप्रिया (lamina propia) कहलाती है जोकि विशेष प्रकार के संयोजी ऊतक की बहुत पतली झिल्ली होती है। यह बेसमेण्ट मैम्ब्रेन के ऊपर एपिथीलियल पर्त को आधार प्रदान करती है। इस पर्त में लिम्फेटिक ऊतक (lymphatic tissue), रक्त वाहिकाएँ (blood vessels) और तन्त्रिकाएँ (nerves) पायी जाती हैं। सबसे, बाहरी पर्त इरक्युलेरिस म्यूकोसा कहलाती है जो कि समतल माँसपेशियों एवं इलास्टिक संयोजी ऊतक (elastic connective tissue) की पतली पर्त होती है। यह दो छल्लों की बनी होती है। बाहरी छल्ला ऊर्ध्व पेशियों (longitudinal muscles) का तथा भीतरी छल्ला सरकुलर पेशियों (circular muscles) का बना होता है।

टिप्पणी

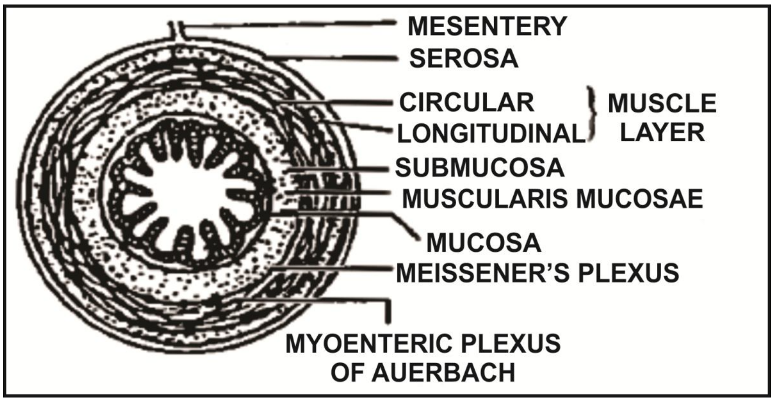

चित्र क्र. 2.40: Diagram Showing General Structures in a T. S. of Alimentary Canal

सबम्यूकोसा प्रायः सबसे मोटी पर्त होती है जो घनी, तन्य संयोजी ऊतक तन्तुओं की बनी होती है जिनके बीच–बीच में वसा ऊतक छितरे रहते हैं। रक्त और लिम्फ की पतली केशिकाएँ (capillaries) तथा तन्त्रिका तन्तु (Nerve fibres) सम्पूर्ण म्यूकोसा को काटते हैं। इण्टेस्टाइनल ग्रन्थियाँ (intestinal glands) सबम्यूकोसा में गहराई में धँसी रहती हैं। इन ग्रन्थियों का स्रावण सबम्यूकोसा में तन्त्रिका तन्तुओं द्वारा नियन्त्रित होता है। ये तन्त्रिका तन्तु मैसनर्स प्लैक्सस (Meissner's plexus) बनाते हैं जोकि सिम्पैथेटिक और पैरासिम्पैथेटिक तन्त्रिका तन्त्र (sympathetic and parasympathetic nervous system) से जुड़े रहते हैं। माँसपेशी का स्तर दो समतल माँसपेशी पर्तों का बना होता है। अंदर की पर्त सरकुलर तन्तुओं (circular fibres) की तथा बाह्य पर्त ऊर्ध्व तन्तुओं (longitudinal fibres) की बनी होती है। दोनों प्रकार की पर्तों में तन्तु पर्तों के नाम के अनुरूप नहीं होते अपितु दोनों पर्तों के तन्तु कुण्डलित रूप (spiral form) में होते हैं किन्तु आन्तरिक पर्त के तन्तु अत्यधिक निकट तथा बाह्य पर्त के तन्तु दूर–दूर स्थित होते हैं। दोनों पर्तों के कुछ तन्तु एक–दूसरे को क्रॉस करते हैं। दोनों माँसपेशियों की पर्त के मध्य मायोऐण्ट्रिक प्लैक्सस ऑफ ओरबैक (Myoenteric plexus of Auerbach) पाया जाता है जो माँसपेशियों के संकुचन को नियन्त्रित करता है। सिम्पैथेटिक और पैरासिम्पैथेटिक तन्त्रिकाएँ इस प्लैक्सस को जाती हैं।

वस्तुतः सैरोसा (Serosa) सीलोमिक एपिथीलियम (coelomic epithelium) की विसरल पर्त (visceral layer) होती है जोकि समस्त अन्तरांगों सहित आहार नाल के अधिकांश भाग को ढँके रहती है। यह चपटी मीजोथीलियल कोशिकाओं (mesothelial cells) की बनी होती है तथा अंगों के बीच घर्षण को कम करती है। इसोफेगस के अतिरिक्त, सम्पूर्ण आहार नाल डॉर्सल मीजेण्ट्री द्वारा लटकी रहती है। यह मीजेण्ट्री (mesentery) विसरल पेरीटोनियम (visceral peritoneum) की दोनों पर्तों के मध्य स्थित रहती है।

2.4.1 स्कॉलिओडॉन का पाचन तन्त्र (Digestive System of Scoliodon)

टिप्पणी

स्कॉलिओडॉन का पाचन–तन्त्र आहार नाल तथा पाचक ग्रन्थियों से मिलकर बना होता है–

अ. **आहार नाल (Alimentary Canal)**– स्कॉलिओडॉन की आहार नाल मुख से प्रारम्भ होकर गुदा (anus) तक फैली रहती है तथा निम्नलिखित भागों में विभाजित रहती है– (1) मुख, (2) मुख गुहिका, (3) फैरिंक्स, (4) इसोफेगस, (5) आमाशय, (6) आंत तथा (7) रैक्टम।

1. **मुख (Mouth)**– इसका मुख चौंड़ा एक अर्द्ध–चन्द्राकार छिद्र के रूप में होता है तथा सिर की वेण्ट्रल सतह पर स्थित रहता है एवं ऊपरी व निचले जबड़ों द्वारा घिरा रहता है। इसके जबड़ों में दाँत पाये जाते हैं जो एकसमान या होमोडॉण्ट, तिरछे, तेज तथा पीछे की ओर मुड़े होते हैं। ये दाँत जबड़ों के अस्तर की म्यूकस मेम्ब्रेन (mucous membhrane) में धँसे रहते हैं। इसका दन्तक्रम (dentition) हायोडॉण्ट (hyodont) तथा बहुवारदन्ती (polyphyodont) प्रकार का होता है, अर्थात् एक समय में दाँतों का एक ही समुच्चय (set) कार्यशील (functional) रहता है और जब ये दाँत टूटकर गिर जाते हैं तो उनके स्थान पर दूसरा समुच्चय (set) कार्यशील हो जाता है। ये दाँत भोजन को चबाने का कार्य नहीं करते बल्कि मुख में आये हुए शिकार को जकड़ने का कार्य करते हैं।

2. **मुख गुहिका (Buccal cavity)**– स्कॉलिओडॉन का अर्द्ध–चन्द्राकार मुख एक चौड़ी तथा डॉर्सो–वैण्ट्रली चपटी (dorsoventrally compressed) **मुख गुहिका** में खुलता है। इसका आन्तरिक अस्तर मोटी म्यूकस मेम्ब्रेन (thick mucous membrane) से बना होता है। म्यूकस मेम्ब्रेन गुहा के फर्श (floor) पर उठी हुई बेसीहायल (basihyal) के चारों ओर एक ठोस गद्दी के रूप में जिव्हा (toungue) का निर्माण करती है। जिव्हा में ग्रन्थियों तथा पेशियों का पूर्ण अभाव होता है। यह अग्र सिरे पर स्वतन्त्र होती है, जबकि पीछे की ओर यह मुख गुहिका के फर्श से जुड़ी रहती है। यह नॉन–प्रोट्रूसिबल (non-protrusible) या अबहिःसारी होती है तथा शिकार को केवल निगलने में सहायता करती है। मुख गुहिका की म्यूकस मैम्ब्रेन खुरदरी होती है। इस पर अनेक डर्मल डैण्टिकिल्स (dermal denticles) पाये जाते हैं। ऊपरी एवं निचले जबड़ों पर अनेक कतारें नुकीले दाँतों में पायी जाती हैं, जो पीछे की ओर मुड़े रहते हैं। ये शिकार को पकड़ते हैं तथा उसे बाहर निकलने से रोकते हैं, किन्तु ये भोजन को चबाने का कार्य नहीं करते।

टिप्पणी

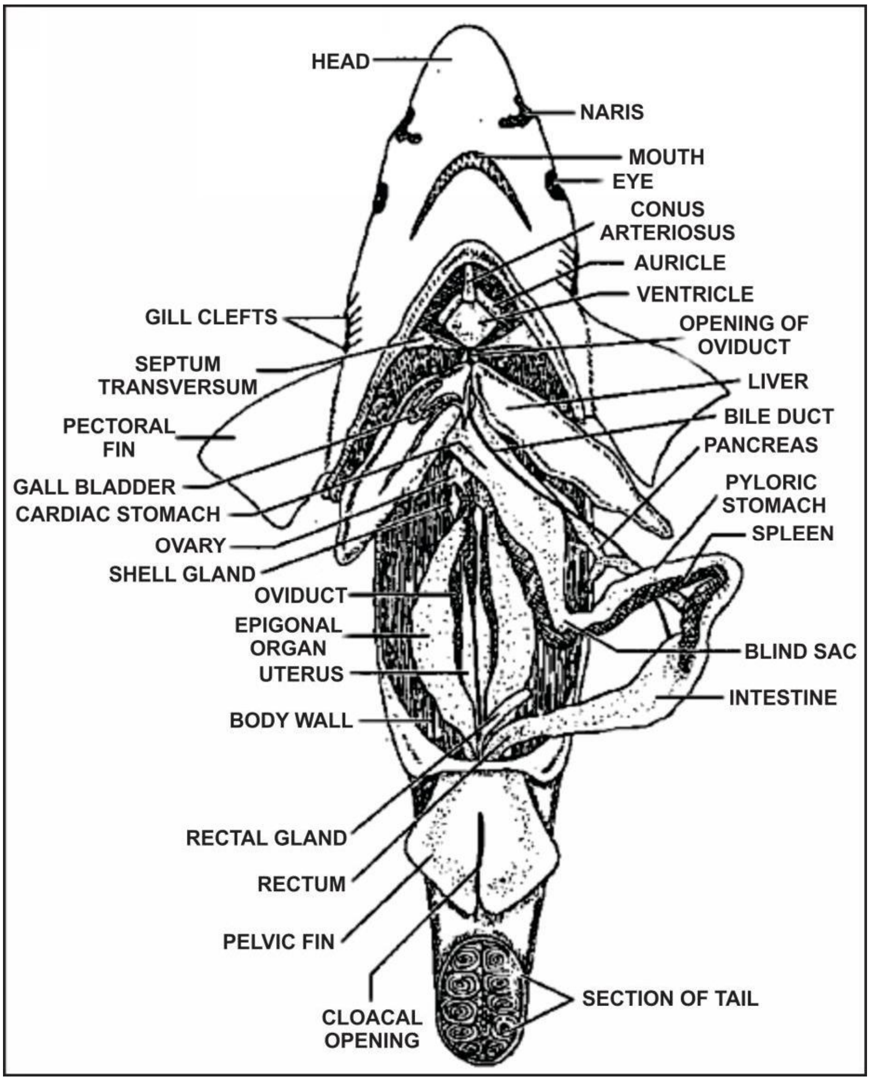

चित्र क्र. 2.41: Scoliodon : Dissection in Ventral View, Showing Viscera (Female)

3. **फैरिंक्स (Pharynx)**– मुख गुहिका पीछे फैरिंक्स में खुलती है। मुख गुहिका तथा फैरिंक्स में स्पष्ट भेद नहीं होता, फिर भी फैरिंक्स दो बातों में उससे भिन्न होता है–
   (a) इसका आन्तरिक स्तर एण्डोडर्म (endoderm) का बना होता है।
   (b) इसकी पार्श्व भित्तियों (lateral walls) पर गिल–स्लिट्स (gill-slits) पाये जाते हैं तथा भित्ति में ब्रैंकियल आर्चेज (branchial arches) होती हैं तथा इनसे सम्बन्धित पेशियाँ विशेष रूप से रूपान्तरित होकर श्वसन में सहायक होती हैं। ये पेशियाँ श्वसन कार्य (respiration) के लिए गिल–स्लिट्स को खोलने तथा बंद करने का कार्य करती हैं। फैरिंक्स की म्यूकस मेम्ब्रेन में डर्मल डेण्टिकिल्स (dermal denticles) पाये जाते हैं।

4. **इसोफेगस (Oesophagus)**– फैरिंक्स पीछे की ओर सँकरा होकर एक छोटी नलिका में खुलता है जिसे इसोफेगस (oesophagus) कहते हैं। इसकी भित्तियाँ मोटी तथा पेशीय (muscular) होती हैं। इसकी म्यूकस मेम्ब्रेन में लॉन्गिट्यूडिनल या लम्बवत् फोल्ड्स (longitudinal folds) पाये जाते है।

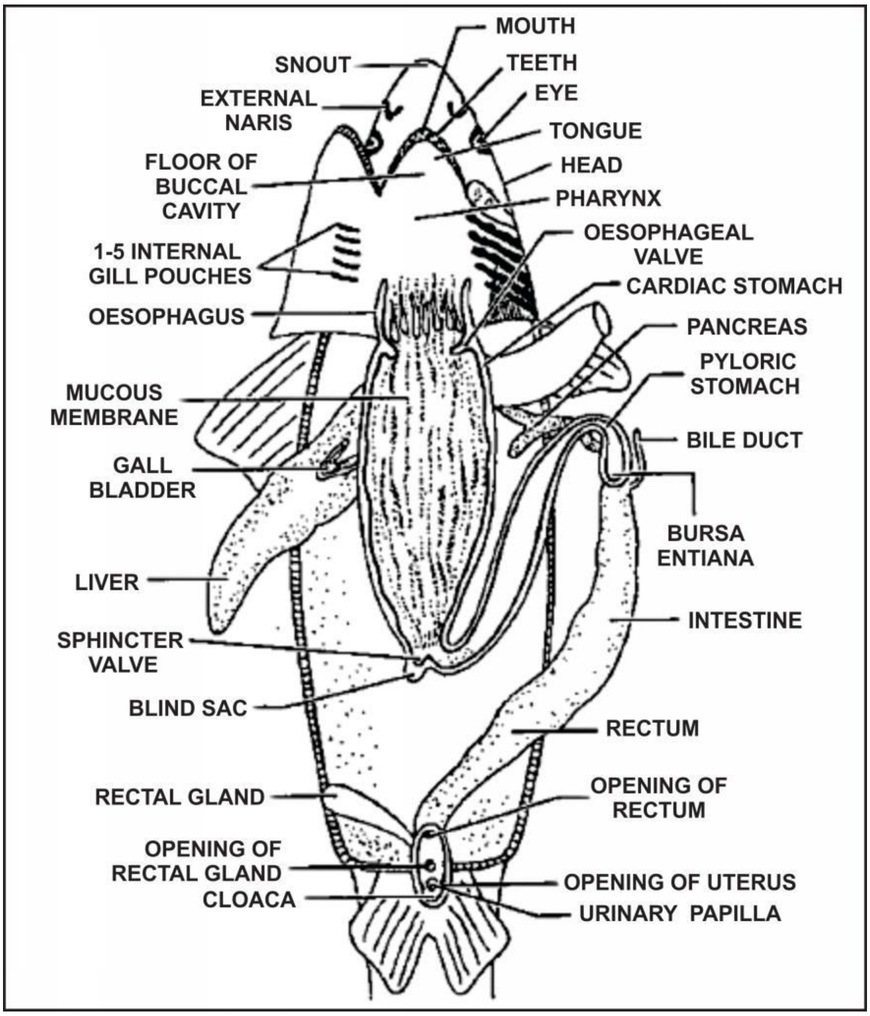

चित्र क्र. 2.42: Scoliodon : Digestive System in Ventral View

5. **आमाशय (Stomach)**– इसोफेगस पीछे की ओर उदर गुहा में स्थित एक बड़े तथा पेशीय **आमाशय** में खुलता है। ये दोनों एक अर्द्धचन्द्राकार स्फिंक्टर (semilunar sphincter) द्वारा एक–दूसरे से अलग रहते हैं। यह स्फिंक्टर म्यूकस मेम्ब्रेन का बना होता है। आमाशय (stomach) अंग्रेजी के 'J' की आकृति का होता है। इसका समीपस्थ (proximal) उपांग (limb) **कार्डियक आमाशय** (cardiac stomach) तथा दूरस्थ उपांग (distal limb) **पाइलोरिक आमाशय** (pyloric stomach) कहलाता है। कार्डियक तथा पाइलोरिक आमाशयों के मध्य एक कार्डियक कपाट (cardiac sphincter) होता

टिप्पणी

है। इन दोनों के सन्धिस्थल पर छोटे कोष के रूप में एक रचना उभरी रहती है जिसे ब्लाइण्ड सैक (blind sac) कहते हैं। कार्डियक आमाशय की आन्तरिक म्यूकस मेम्ब्रेन अनेक लॉन्गिट्यूडिनल फोल्ड्स (longitudinal folds) में विन्यसित रहती है। ये फोल्ड्स आगे की ओर इसोफेगस के फोल्ड्स से सतत रहते हैं तथा पीछे की ओर ब्लाइण्ड सैक में समाप्त हो जाते हैं।

पाइलोरिक आमाशय का आन्तरिक स्तर चिकना होता है, अर्थात् इसमें लॉन्गिट्यूडिनल फोल्ड्स का अभाव होता है, किन्तु इसके दूरस्थ सिरे पर कुछ फोल्ड्स होते हैं। इसका अन्तिम सिरा सँकरा होता है जो एक गोल व मोटी दीवारों वाली पेशीय रचना बनाता है जिसे **बरसा इण्टियाना** (Bursa intiana) कहते हैं। इसमें लॉन्गिट्यूडिनल फोल्ड्स पाये जाते हैं। बरसा इण्टियाना पीछे आंत (intestine) में खुलता है।

6. **आंत (Intestine)**– आमाशय पीछे की ओर आंत (intestine) में खुलता है। यह एक चौड़ी अत्यन्त छोटी नली के आकार की होती है। स्कॉलिओडॉन में आंत ड्यूओडिनम (duodenum) व इलियम (ileum) में भिन्नित नहीं होती। यह पीछे की ओर सीधी चलकर रैक्टम (rectum) में खुलती है। इसकी आन्तरिक सतह की म्यूकस मेम्ब्रेन एक सिरे से विस्तरित होकर **स्क्रॉल वाल्व** (scroll valve) बनाती है। इसका एक सिरा आंत की पूरी लम्बाई में उससे जुड़ा रहता है तथा दूसरा सिरा स्वतन्त्र रहता है। स्पाइरल वाल्व घड़ी के स्प्रिंग की तरह अनुदैर्ध्य से घूमकर लगभग 2 एण्टिक्लॉकवाइज चक्र (anticlockwise turns) बनाता है। यह वाल्व आंत की छोटी होने की कमी पूरी करता है अर्थात् शोषण सतह को बढ़ाने के साथ–साथ आंत से होकर गुजरने वाले भोजन की गति पर भी नियन्त्रण रखता है।

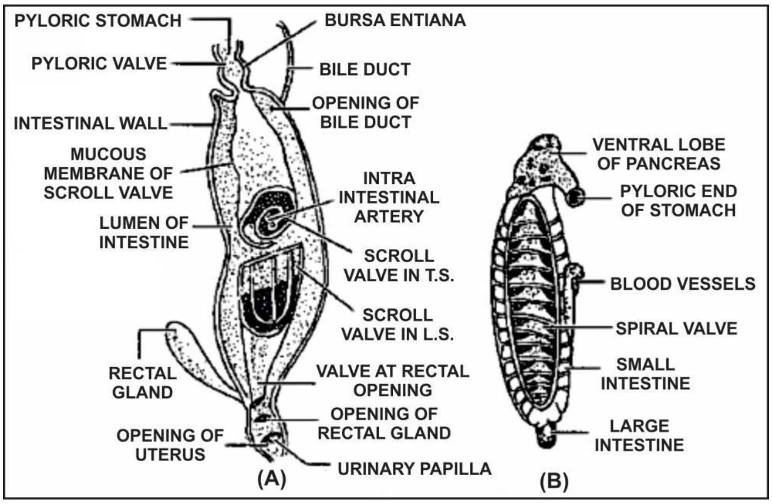

चित्र क्र. 2.43: Scoliodon : (A) Intestine; (B) Intestine of Squalusacanthias or Spiny after cut Open to Show Scroll Valve

7. **रैक्टम (Rectum)**– आंत पीछे की ओर मलाशय या रैक्टम (rectum) में खुलती है। यह आहार नाल का अन्तिम भाग है जो गुदा द्वारा **क्लोएका** (cloaca) में खुलता है। यह एक छोटा भाग होता है जिसके पृष्ठ भाग (dorsal side) में एक **रैक्टल ग्रन्थि** (rectal gland) या **सीकल ग्रन्थि** (caecal gland) स्थित होती है। क्लोएका में यूरिनोजेनाइटल नलिकाएँ (urinogenital ducts) भी खुलती हैं। क्लोएका शरीर के बाहर **क्लोएकल छिद्र** (cloacal opening) द्वारा खुलता है।

ब. **पाचन तन्त्र की ग्रन्थियाँ (Glands of Digestive System)**– स्कॉलिओडॉन में यकृत (liver), अग्न्याशय (pancreas), मलाशय ग्रन्थि (rectal gland) व प्लीहा (spleen) नामक पाचक ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं–

1. **यकृत (Liver)**– यकृत एक लम्बी पीले रंग की ग्रन्थि है जो उदर गुहा (abdominal cavity) में पीछे की ओर एक बड़े भाग तक फैली रहती है। इसमें दो पालियाँ (lobes) होती हैं जो आगे की ओर एक–दूसरे से जुड़ी रहती हैं। यहीं पर ये एक लिगामेण्ट (ligament) द्वारा उदर गुहा की दीवार से जुड़ती है। दायीं पाली (right lobe) में 'V' के आकार का एक **गाल बैडर** (gall bladder) स्थित होता है। इसमें यकृत द्वारा स्रावित बाइल संचित रहता है। दोनों लोब्स से छोटी–छोटी नलिकाएँ निकलकर एक **संयुक्त पित्त वाहिनी** (common bile duct) बनाती हैं, जो आंत में स्क्रॉल वाल्व की जड़ पर खुलती है। एक प्रौढ़ स्कॉलिओडॉन में बाइल डक्ट की लम्बाई लगभग 3 cm होती है।

2. **अग्न्याशय या पैन्क्रियाज (Pancreas)**– पैन्क्रियाज, आमाशय की दोनों भुजाओं के मध्य स्थित होता है। इसमें भी दो लोब्स पाये जाते हैं– (a) **पृष्ठ या डॉर्सल लोब** (dorsal lobe), तथा (b) **अधर या वेण्ट्रल लोब** (ventral lob)। डॉर्सल लोब कार्डियक आमाशय के पिछले भाग के ऊपर समान्तर स्थित रहता है तथा वेण्ट्रल लोब पाइलोरिक आमाशय के समीप स्थित होता है। **पैन्क्रिएटिक वाहिनी** (pancreatic duct) अग्न्याशय की पूर्ण लम्बाई में से होती हुई आंत में, बाइल डक्ट के छिद्र के ठीक विमुख (opposite) खुलती है।

3. **रैक्टल ग्रन्थि (Rectal gland)**– यह रैक्टम के पृष्ठ भाग (dorsal side) पर स्थित एक ब्लाइण्ड सैक की तरह पायी जाती है जो रैक्टम में खुलती है। यह अत्यन्त ही वैस्क्युलर (vascular) तथा लिम्फॉइड ऊतक (lymphoid tissue) की बनी होती है। इसका कार्य अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है।

4.. **प्लीहा (Spleen)**– प्लीहा दो लोब्स से बनी एक बड़ी ग्रन्थि होती है। इसका एक लोब कार्डियक आमाशय के बाह्य तल पर तथा दूसरा या दूरस्थ लोब पाइलोरिक आमाशय के समान्तर स्थित होता है। दूरस्थ लोब पतला व लम्बा होता है। इसका पाचन से कोई

सम्बन्ध नहीं होता है, क्योंकि यह एक लिम्फॉइड अंग है जो लिम्फोइट्स का निर्माण करता हैं।

टिप्पणी

2.4.2 मेंढक का पाचन तन्त्र (Digestive System of Frog)

मेंढक के पाचन तन्त्र में आहार नाल और पाचक ग्रन्थियाँ सम्मिलित हैं।

आहार नाल (Alimentary Canal)– यह लम्बी, कुण्डलित नलिका है जिसकी चौड़ाई विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग होती है। यह अगले सिरे पर मुँह (mouth) तथा पिछले पर अवस्कर द्वार (cloacal aperture) द्वारा खुलती है। इसमें मुखगुहा, फैरिंक्स (pharynx), इसोफेगस, आमाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत तथा क्लोएका आदि सम्मिलित हैं–

1. **मुख (Mouth)**– आहार नाल मुँह से शुरू होती है जोकि चौड़ा, दो जबड़ों से घिरा हुआ होता है। जबड़ों पर अचलायमान होंठ पाये जाते हैं। इसका ऊपरी जबड़ा स्थिर तथा निचला जबड़ा चलायमान होता है।
2. **मुख गुहा (Buccal cavity)**– मुँह चौड़ी, विशाल, उथली मुख गुहा में खुलता है। इसके सीलिएटेड कॉल्युम्नर एपिथीलियल अस्तर (ciliated columnar epithelial lining) में म्यूकस ग्रन्थियाँ (mucous glands) पायी जाती हैं जो भोजन के स्नेहन (Lubrication) हेतु म्यूकस (Mucous) स्रावित करती हैं। मेंढक में लार ग्रन्थियाँ नहीं पायी जातीं।

   (a) **दाँत (Teeth)**– निचला जबड़ा दन्तहीन (teethless) होता है किन्तु ऊपरी जबड़े में छोटे, शंक्वाकार, पीछे की ओर मुड़े हुए दाँत प्रीमैक्सिली (premaxillae) और मैक्सिली (maxillae) हड्डियों के प्रत्येक ओर पंक्ति में व्यवस्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त मुख गुहा की छत में दो छोटी–छोटी वोमर (vomer) नामक हड्डियों पर वोमेराइन दाँत (vomerine teeth) और पाये जाते हैं। दोनों प्रकार के दाँत शिकार को चबाने के काम नहीं आते किन्तु इनका कार्य शिकार को पकड़े रहना तथा फिसलकर बाहर आने से रोकना होता है। ये दाँत होमोडॉण्ट (homodont) तथा एक्रोडॉण्ट (acrodont) होते हैं।

   (b) **जीभ (Tongue)**– मुख गुहा के फर्श पर एक विशाल, माँसल, चिपकनी जीभ पायी जाती है। इनका अगला सिरा निचले जबड़े के अंदर के किनारे से जुड़ा रहता है। इसका पिछला सिरा स्वतन्त्र तथा द्विशाखित (bifid) होता है जिसे झटके से बाहर निकालने के बाद उसकी चिपकनी सतह से शिकार को पकड़कर जल्दी से मुख गुहा के अंदर खींच लेता है।

   (c) **आन्तरिक नासाछिद्र (Internal nostrils)**– मुख गुहा की छत में आगे की ओर प्रत्येक वोमेराइन दाँत सामने एक–एक आन्तरिक नासाछिद्र (internal nstril) पाया जाता है। इनके द्वारा नेजल गुहाएँ (nasal cavities) मुख गुहा में खुलती हैं। ये श्वसन में मदद करते हैं।

टिप्पणी

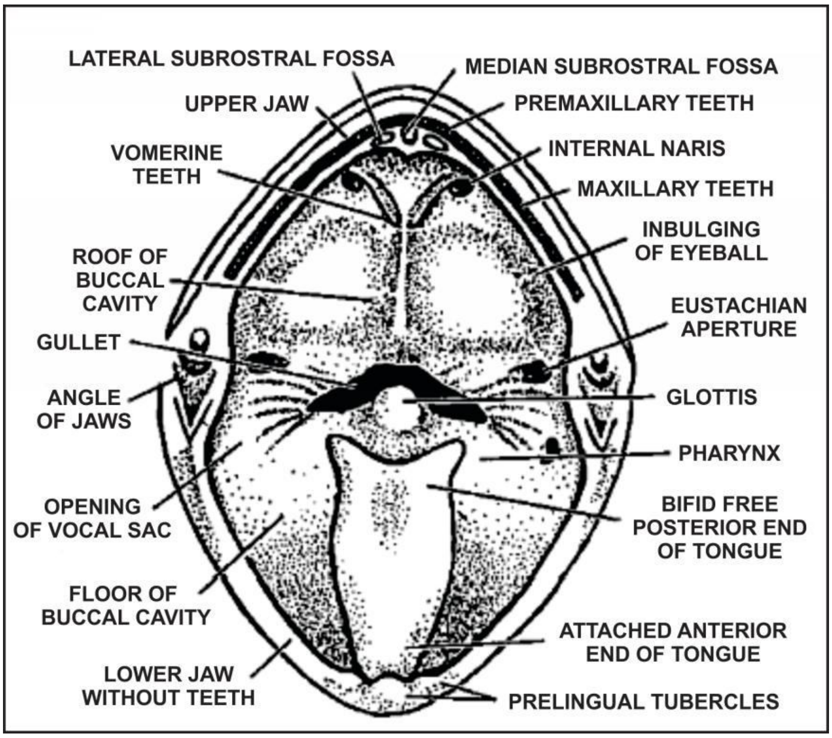

चित्र क्र. 2.44: **Buccopharyngeal Cavity of Frog**

(d) **नेत्र गोलकों के उभार (Bulging of eye balls)**– मुख गुहा की छत में वोमेराइन दाँतो के पीछे दो विशाल, अण्डाकार, हल्के पीले क्षेत्र पाये जाते हैं जो नेत्र गोलकों के उभार होते हैं।

3. **फैरिंक्स (Pharynx)**– मुख गुहा पीछे की ओर बिना किसी चिन्हांकन के फैरिंक्स (pharynx) से जुड़ी रहती है। अतः कभी–कभी दोनों भागों को बक्कोफैरिन्जियल गुहा (buccopharyngeal cavity) के नाम से भी पुकारते हैं। विभिन्न छिद्र फैरिंक्स में खुलते हैं। फैरिंक्स के फर्श पर एक उभर पाया जाता है जिसमें एक ऊर्ध्व झिरी जैसा छिद्र पाया जाता है जिसे ग्लॉटिस (glottis) कहते हैं जो लैरिंगो–ट्रेकियल कोष्ठ (laryngo-tracheal chamber) में खुलती है। फैरिंक्स की छत में दोनों पार्श्वों में यूस्टेकियल छिद्र (eustachial aperture) पाया जाता है जो मध्य कान में खुलता है। नर मेंढक में फैरिंक्स के आधार पर दोनों जबड़ों के जोड़ पर छोटा–सा वोकल सैक का मुँह पाया जाता है। फैरिंक्स पीछे की ओर एक चौड़े छिद्र गलैट (gullet) द्वारा इसोफेगस (oesophagus) में खुलता है।

4. **इसोफेगस (Oesophagus)**– यह छोटी चौड़ी अत्यधिक तन्य नलिका है जो आमाशय में खुलती है। इसका एपिथीलियल अस्तर ऊर्ध्व रूप में मुड़ा रहता है तथा उसमें कुछ म्यूकस ग्रन्थियाँ (mucous glands) पायी जाती है।

5. **आमाशय (Stomach)**– आमाशय देह गुहा में बायीं ओर स्थित रहता है तथा डॉर्सल बॉडी वाल (dorsal body wall) से एक मीजेण्ट्री

टिप्पणी

(mesentery) द्वारा जुड़ा रहता है जिससे मीसोगैस्टर (mesogaster) कहते हैं। यह लगभग 4 cm लम्बा, चौड़ा, वक्राकार थैला है जिसकी भित्तियाँ मोटी होती हैं। इसका अगला चौड़ा भाग कार्डियक स्टमक (cardiac stomach) तथा पिछला सँकरा भाग पायलोरिक स्टमक (pyloric stomach) कहलाता है। आमाशय की आन्तरिक भित्ति में अनेक भली–भाँति विकसित ऊर्ध्व मोड़ (longitudinal folds) पाये जाते हैं जो भोजन आने पर फैल जाते हैं। इसकी म्यूकस एपिथीलियम में अनेक बहुकोशिकीय गैस्ट्रिक ग्रन्थियाँ (gastric glands) तथा एक कोशिकीय ऑक्सिण्टिक ग्रन्थियाँ (Oxyntic glands) पायी जाती हैं जो क्रमशः पेप्सिनोजिन (pepsinogen) एन्जाइम तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल स्रावित करते हैं। आमाशय का पिछला या पायलोरिक सिरा (pyloric end) सँकरा तथा संकुचित होता है तथा इसके आंत में खुलने वाले मुँह पर एक वृत्तकार छल्ले जैसी स्फिंक्टर माँसपेशियाँ (sphincter muscles) पायी जाती हैं जिन्हें पायलोरिक वाल्व कहते हैं। आमाशय भोजन का भण्डारण तथा पाचन करता है।

6. **छोटी आंत (Small intestine)**– यह लगभग 30 cm लम्बी, पतली, सँकरी नलिका है जो मिड डॉर्सल बॉडी वाल (mid dorsal body wall) से मीजेण्ट्री द्वारा जुड़ा रहता है। यह दो भागों का बना होता है – अगला छोटा सँकरा भाग ड्यूओडिनम (duodenum) तथा बहुत लम्बा पिछला भाग इलियम (ileum)–

   (a) **ड्यूओडिनम (Duodenum)**– यह आमाशय के समान्तर आगे की ओर बढ़ी हुई 'U' के आकार की नलिका है। इसमें यकृत तथा पैन्क्रियाज से आकर एक कॉमन हीपेटोपैन्क्रिएटिक डक्ट (common hepatopancreatic duct) खुलती है जोकि पित्त तथा पैन्क्रिएटिक रस (pancreatic juice) लाती है।

टिप्पणी

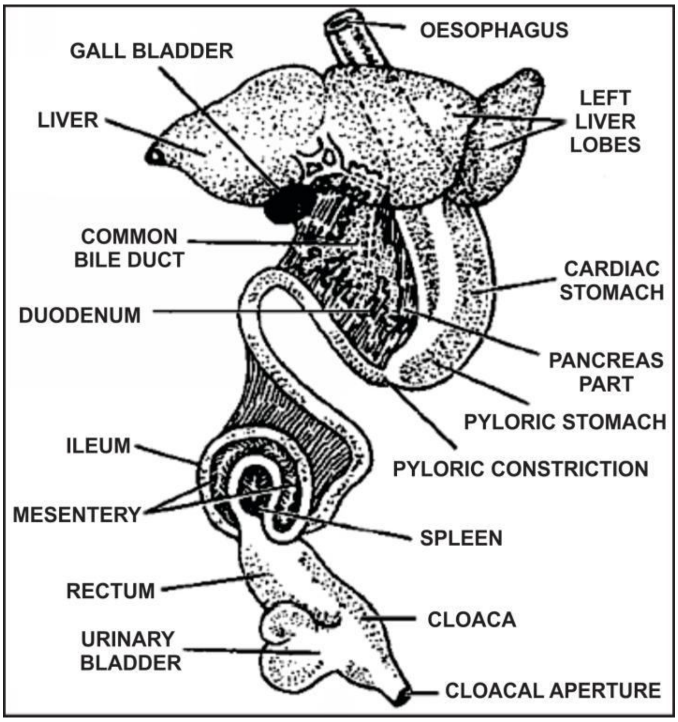

चित्र क्र. 2.45: **Frog : Digestive System**

(b) इलियम (Ileum)– यह आहार नाल का सबसे लम्बा भाग है तथा पिछले सिरे पर मलाशय (rectum) में खुलने से पहले कई छल्ले बनाता है। इसके आन्तरिक अस्तर में कई ऊर्ध्व मोड़ (longitudinal folds) पाये जाते हैं किन्तु इसमें उच्च कशेरुकियों जैसी सच्ची विलाई (villi), क्रिप्ट्स (crypts) तथा ग्रन्थियाँ (glands) नहीं पायी जातीं। भोजन का पाचन (digestion) तथा अवशोषण (absorption) छोटी आंत में होता है।

7. **बड़ी आंत या मलाशय (Large intestine or rectum)**– यह छोटी, चौड़ी, लगभग 4 cm लम्बी नलिका है जो सीधी होकर मलद्वार (anus) द्वारा क्लोएका (cloaca) में खुलती है। मलद्वार पर एनल स्फिंक्टर (anal sphincter) पाया जाता है। इसके अस्तर में अनेक ऊर्ध्व मोड़ (longitudinal folds) पाये जाते हैं। इसका कार्य मल का निर्माण करना, एकत्र करना तथा उसमें पानी की मात्रा कम करना होता है।

8. **क्लोएका (Cloaca)**– यह बड़ी अन्त का छोटा, सैक जैसा भाग है जिसमें मलद्वार (anus) तथा यूरिनोजिनाइटल छिद्र (urinogenital aperture) खुलते हैं। क्लोएका शरीर के पिछले सिरे पर क्लोएकल छिद्र (cloacal aperture) द्वारा बाहर खुलता है।

2.4.3 पाचक ग्रन्थियाँ (Digestive Glands)

आमाशय की गैस्ट्रिक ग्रन्थियों (glastric glands) तथा छोटी आंत की इण्टेस्टाइनल ग्रन्थियों के अतिरिक्त यकृत और पैन्क्रियाज दो ऐसी ग्रन्थियाँ हैं जो आहार नाल से सम्बन्धित होती हैं–

1. **यकृत (Liver)**– कशेरुकियों के शरीर में पायी जाने वाली यह सबसे बड़ी ग्रन्थि है। यह लाल भूरे रंग की बहुपिण्डीय ग्रन्थि है जो हृदय तथा फेफड़ों के निकट स्थित रहती है। मेंढक के यकृत में तीन पिण्ड होते हैं– बायाँ, दायाँ एवं मध्य। यकृत की अनेक बहुभुजीय कोशिकाएँ हरे रंग का ऐल्केलाइन द्रव (alikaline fluid) स्रावित करती हैं जिसे पित्त (bile) कहते हैं। पित्त बड़े, गोलीय हरे रंग की पतली भित्ति वाले पित्ताशय (gall-bladder) में एकत्र रहता है। पित्ताशय यकृत के पिण्डों के मध्य स्थित रहता है। पित्ताशय से निकली हुई सिस्टिक डक्ट (cystic duct) तथा यकृत के पिण्डों से निकली हुई हिपेटिक डक्ट (hepatic duct) एक–दूसरे से मिलकर कॉमन बाइल डक्ट (common bile duct) बनाती हैं। यह नलिका पैन्क्रियाज से होती हुई गुजरती है तथा इसमें पैन्क्रिएटिक डक्ट (pancreatic duct) भी मिल जाती है जिससे की हिपैटोपैन्क्रिएटिक नलिका (hepatopancreatic duct) बनती है जो ड्यूओडिनम (duodenum) में खुलती है। पित्त में पाचक रस नहीं होता, यह केवल वसाओं का पायसीकरण (emulsification) करता है। अतः यकृत सच्ची पाचक ग्रन्थि नहीं है।
2. **पैन्क्रियाज (Pancreas)**– यह अनियमित, अत्यधिक शाखान्वित, चपटी, पीले रंग की ग्रन्थि है जो आमाशय और ड्यूओडिनम के बीच की मीजेण्ट्री (mesentry) में स्थित होता है। यह एण्डो एवं एक्सोक्राइन (endo and exocrine) दोनों ही प्रकार की ग्रन्थि है। इसका एण्डोक्राइन भाग छितरे हुए लैंगरहैंस के द्वीप (Islets of Langerhans) का बना होता है जो इन्सुलिन (Insulin) हॉर्मोन स्रावित करता है। इसका एक्सोक्राइन भाग पैन्क्रिएटिक रस (pancreatic juice) स्रावित करता है जिसमें अनेक पाचक एन्जाइम्स पाये जाते हैं। पैन्क्रियाज की कोई स्वतन्त्र नलिका नहीं होती और इसका पैन्क्रिएटिक रस हीपेटोपैन्क्रिएटिक डक्ट (hepatopancreatic duct) द्वारा ड्यूओडिनम को पहुँचाया जाता है।

2.4.4 यूरोमैस्टिक्स का पाचन तन्त्र (Digestive System of Uromastix)

पाचन तन्त्र के अन्तर्गत आहार नाल तथा उससे सम्बन्धित पाँच ग्रन्थियाँ आती हैं–

A. **आहार नाल (Alimentary Canal)**– यूरोमैस्टिक्स की आहार नाल पूर्ण होती है। यह एक लम्बी नली है जो मुख से शुरू होकर पीछे क्लोएकल छिद्र में समाप्त होती है। इसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता हैं– (1) मुख तथा मुख गुहिका, (2) फैरिंक्स, (3) इसोफेगस, (4) आमाशय, (5) छोटी आंत, (6) बड़ी आंत तथा (7) क्लोएका।

1. **मुख तथा मुख गुहिका (Mouth and buccal cavity)**– मुख सिर के अग्र सिरे पर एक चौड़ी दरार के रूप में जबड़ों के मध्य स्थित होता है तथा ऊपरी एवं निचले माँसल लिप्स (upper and lower fleshy lips) द्वारा घिरा रहता है। दोनों लिप्स हॉनी स्केल्स से ढके रहते हैं। ऊपरी लिप का किनारा शार्प (sharp) होता है जो निचले लिप के गोल किनारे को ढके रहता है। मुख अंदर मुख गुहिका में खुलता है जो आगे सँकरी तथा पीछे चौड़ी होती है। यह अंदर से म्यूकस मेम्ब्रेन (mucous membrane) से आस्तरित रहती है तथा इसमें दाँत, जिव्हा तथा आन्तरिक नासिका छिद्र स्थित होते हैं–

   (a) दाँत (Teeth)– ऊपरी जबड़े की प्रीमैक्सिली, मैक्सिली तथा निचले जबड़े की डेण्टेरीज हड्डियों के बाहरी किनारों पर लगे होते हैं। मुख गुहिका की छत या पैलेट (palate) इडेण्टुलस (edentulous) या दन्तविहीन होता है। आयु बढ़ने के साथ–साथ दाँत घिसते रहते हैं। इसीलिए दोनों जबड़ों का आगे का भाग वयस्क लिजार्ड (lizard) में दन्तविहीन हो जाता है।

   (b) जिव्हा (Tongue)– मुख गुहिका की जमीन पर अपनी मिड–वैण्ट्रल लाइन से जुड़ी हुए एक सुविकसित माँसल, रफ (rough) तथा ट्राइएंगुलर (triangular) जिव्हा पायी जाती है। इसका अग्र सँकरा सिरा स्वतन्त्र, बाइफिड (bifid) या खाँचनुमा तथा पोट्रूसिबल (protrusible) होता है। इसका पश्च सिरा चौड़ा, फिक्स्ड (fixed) तथा चौड़ी खाँच के द्वारा बाइफरकेटेड (bifurcated) होता है। जिव्हा पर एक मिड–डॉर्सल ग्रूव होता है। यह ग्लैण्डुलर पैपिली से ढकी रहती है तथा इसमें टेस्ट बड्स (taste buds) होती हैं।

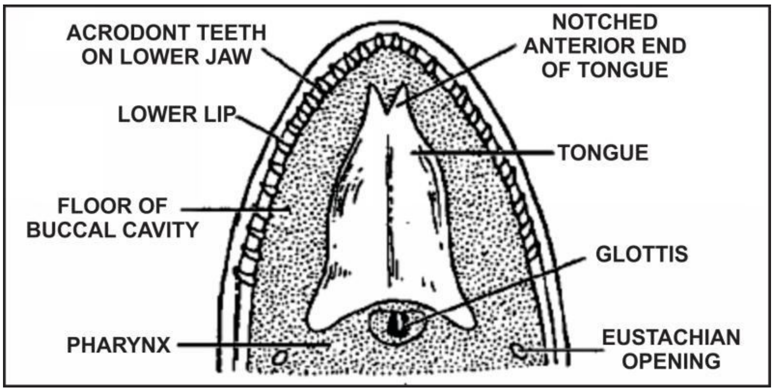

चित्र क्र. 2.46: Uromastix : Floor of Buccal Cavity with Tongue

   (c) आन्तरिक नासिका छिद्र (Internal nares)– सिर के स्नाउट के अग्र भाग पर बाहरी नासिका छिद्र स्थित होते हैं जो अंदर नेसल चैम्बर में खुलते हैं। नेसल चैम्बर मुख गुहिका में एक

जोड़ी आन्तरिक नासिका–छिद्रों के द्वारा खुलते हैं जो मुख गुहिका छत के अग्र भाग पर स्थित होते हैं।

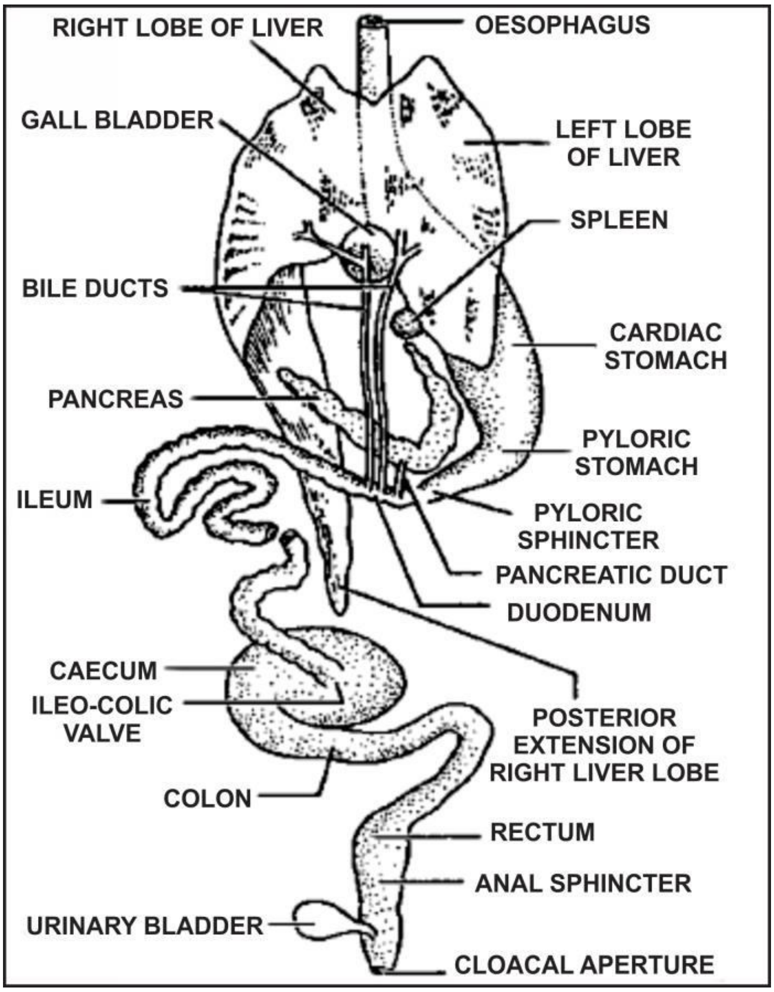

चित्र क्र. 2.47: **Uromastix : Alimentary Canal with Digestive Glands**

2. **फैरिंक्स (Pharynx)**– मुख गुहिका पीछे की ओर फैरिंक्स में खुलती है। यह एक छोटा पैसेज (passage) होता है जो एक चौड़ा छिद्र या **गुलेट** (gullet) के द्वारा पीछे की ओर इसोफेगस में खुलता है। फैरिंक्स की दीवार म्यूकस मेम्ब्रेन से आस्तरित रहती है जो लम्बवत् फोल्ड्स (longitudinal folds) के रूप में उभरी रहती है। फैरिंक्स के तल जमीन पर एक मीडियन लम्बवत् **स्लिट** (slit) जिसे **ग्लॉटिस** (glottis) कहते हैं, पाया जाता है। यह जिव्हा के पश्च बाइफरकेशन (bifurcation) के मध्य स्थित होता है तथा ट्रेकिया (trachea) में खुलता है। फैरिंक्स के दोनों ओर निचले जबड़े के जुड़ने के स्थान पर **यूस्टेकियन ट्यूब** (eustachian tube) के छोटे गोल छिद्र होते हैं।

3. **इसोफेगस (Oesophagus)**– यूरोमैस्टिक्स में इसोफेगस एक लम्बी, सँकरी तथा माँसल नलिका के रूप में होता है जो भोजन को निगलते समय काफी फैल सकता है। इसकी आन्तरिक सतह पर अनेक लम्बवत् फोल्ड्स पाये जाते हैं। इसोफेगस पीछे की ओर आमाशय में खुलता है।

4. **आमाशय (Stomach)**– आमाशय देह–गुहा में बायीं ओर स्थित होता है। यह लम्बा, नलिकाकार, मुड़े हुए सैक (sac) के आकार का तथा इसोफेगस से चौड़ा होता है। इसकी भीतरी सतह कॉनकेव तथा बाहरी कॉनवैक्स होती है। इसका अग्र भाग **कार्डियक आमाशय** (cardiac stomach) तथा पश्च भाग **पाइलोरिक आमाशय** (pyloric stomach) में विभाजित होता है। कार्डियक आमाशय बायें लिवर लोब की डॉर्सल सतह पर स्थित होता है। आमाशय देहगुहा की भीतरी दीवार से पैरिटोनियम के एक फोल्ड या **मीजोगेस्टर** (mesogester) से जुड़ा रहता है। आमाशय की दीवार मोटी तथा पेशीयुक्त होती है। इसका आन्तरिक म्यूकस स्तर (mucous lining) अनेक लम्बवत् फोल्ड्स में उभरा रहता है। ये फोल्ड्स कार्डियक आमाशय में सुविकसित, जबकि पाइलोरिक आमाशय में कम विकसित होते है। पाइलोरिक आमाशय के पश्च सिरे पर एक स्पष्ट कन्सट्रिक्शन (constriction) पाया जाता है जिसके अंदर एक सरकुलर पेशी या **पाइलोरिक स्फिंक्टर या वाल्व** (pyloric sphincter or valve) स्थित होता है जो पाइलोरिक आमाशय से भोजन को ड्यूओडिनम में जाने देता है, परन्तु भोजन को ड्यूओडिनम से आमाशय में वापस नहीं आने देता।

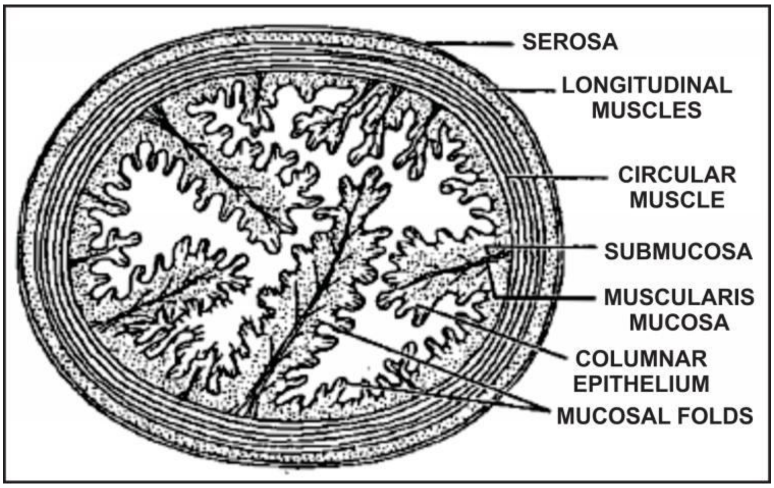

चित्र क्र. 2.48: Uromastix : T. S. of Cardiac Stomach

टिप्पणी

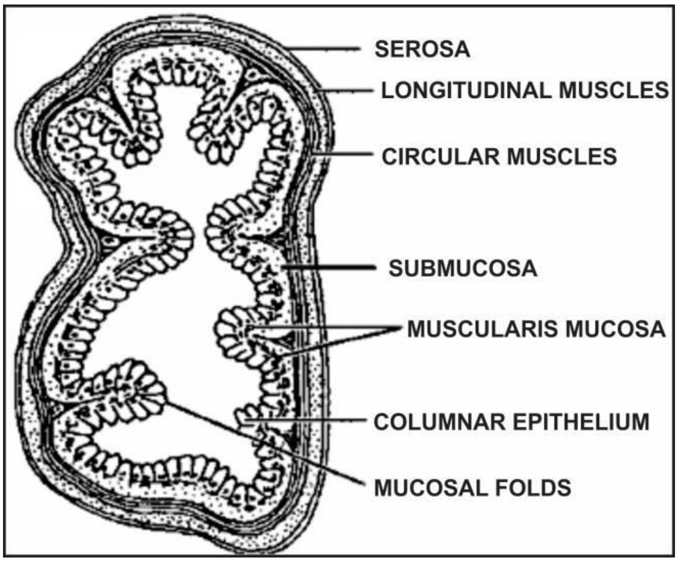

चित्र क्र. 2.49: **Uromastix : T. S. of Pyloric Stomach**

5. **छोटी आंत (Small intestine)**– छोटी आंत एक लम्बी, सँकरी तथा कुण्डलित नलिका के रूप में होती है जो अपने अग्र ड्यूओडिनम तथा **पश्च इलियम** भागों में विभाजित रहती है–
   (a) **ड्यूओडिनम (Duodenum)**– यह छोटी आंत का पहला भाग है जो लगभग 10 सेमी लम्बा होता है। यह 'U' के आकार में मुड़ा होता है। इनमें बाइल तथा पैन्क्रिएटिक नलिकाएँ (bile and pancreatic ducts) खुलती हैं। पीछे की ओर यह इलियम (ileum) में खुलता हैं।
   (b) **इलियम (Ileum)**– छोटी आंत का यह भाग लम्बा, सँकरा एवं कुण्डलित होता है जो ड्यूओडिनम तथा कोलन (colon) के मध्य में स्थित रहता है। इसकी आन्तरिक सतह पर पास–पास स्थित लहरनुमा लम्बवत् म्यूकस फोल्ड्स पाये जाते हैं जो स्रावण (secretion) तथा अवशोषण के लिए आंत के अंदर का क्षेत्रफल (area) बढ़ाते हैं। यह देहगुहा की डॉर्सल दीवार से डॉर्सल मीसेण्ट्री (dorsal mesentry) की सहायता से जुड़ी रहती है। पीछे की ओर यह बड़ी आंत (large intestine) में खुलती है।

टिप्पणी

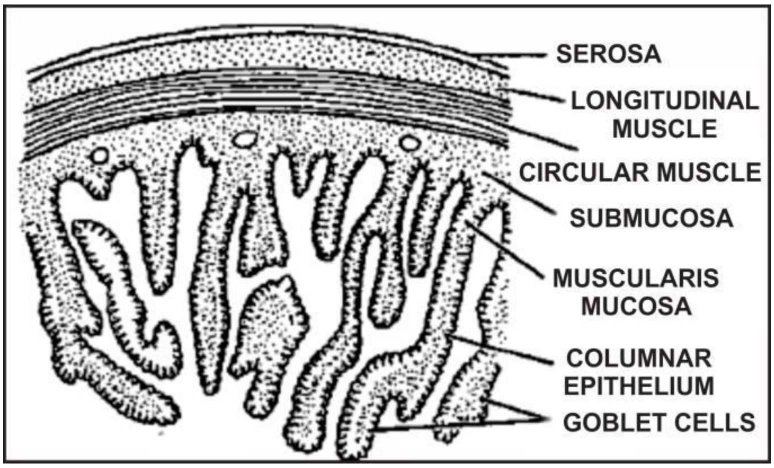

चित्र क्र. 2.50: **Uromastix : T. S. of Duodenum**

6. **बड़ी आंत (Large Intestine)**– बड़ी आंत निम्नलिखित दो भागों में विभाजित होती है– (a) कोलन, तथा (b) रैक्टम।

   (a) कोलन (Colon)– यह बड़ी आंत का समीपस्थ भाग (proximal part) है जो आगे की ओर इलियम से तथा पीछे की ओर रैक्टम से जुड़ा होता है। इसका अग्र भाग चौड़ा तथा पश्च भाग धीरे–धीरे सँकरा होता चला जाता है। कोलन तथा इलियम के सन्धि स्थल पर एक **ब्लाइण्ड पाउच** या **अन्ध थैली** (blind pouch) पायी जाती है जिसे सीकम (caecum) कहते हैं। सीकम एवं कोलन की दीवारें इलियम की दीवारों से पतली तथा लगभग सेमीट्रान्सपेरेण्ट (semitransparent) होती है। अंदर इलियम तथा कोलन के सन्धि–स्थल पर एक **इलियोकॉलिक वाल्व** (ileocolic valve) पाया जाता है।

   (b) रैक्टम (Rectum)– बड़ी आंत का दूरस्थ, सँकरा एवं मोटी दीवारयुक्त भाग रैक्टम (rectum) होता है जो ऊपर को बायीं ओर मुड़कर फिर पीछे की ओर मुड़ा होता है। रैक्टम पीछे की ओर क्लोएकल चैम्बर (cloacal chamber) में खुलता है। रैक्टम तथा क्लोएका के सन्धिस्थल पर **क्लोएको–रैक्टल वाल्व या स्फिंक्टर** (cloacorectal valve or sphincter) पाया जाता है।

7. **क्लोएका (Cloaca)**– यूरोमैस्टिक्स में क्लोएका नलिका के आकार का होता है। यह अंदर से एक जटिल संरचना बनाता है जिसमें तीन चैम्बर्स (chambers) पाये जाते हैं– (a) कोप्रोडियम, (b) यूरोडियम तथा (c) प्रोक्टोडियम।

   (a) कोप्रोडियम (Coprodaeum)– यह क्लोएका का समीपस्थ भाग है जिसमें अनेक कन्सट्रिक्शन्स या सिकुड़नें (constrictions) पायी जाती हैं। इस भाग में रैक्टम खुलता है। यह पीछे की ओर एक स्फिंक्टर (sphincter) के द्वारा यूरोडियम में खुलता है।

(b) **यूरोडियम (Urodaeum)**– यह क्लोएका का मध्य भाग है जिसमें मूत्र एवं जनन नलिका खुलती हैं। यह पीछे की ओर प्रोक्टोडियम में खुलता है।

(c) **प्रोक्टोडियम (Proctodaeum)**– यह क्लोएका का अन्तिम भाग है जो एक ट्रान्सवर्स छिद्र (transverse aperture) द्वारा बाहर खुलता है, जिसे **क्लोएकल एपर्चर** (cloacal aperture) कहते हैं। यह धड़ तथा पूँछ के सन्धिस्थल के वेण्ट्रल तल पर स्थित होता है।

क्लोएका मलमूत्र से जल की मात्रा को पुनः सोखने (reabsorption) में सहायक होता है। यह प्रक्रिया रेतीले इलाकों में पाये जाने वाले जन्तुओं में अत्यधिक लाभप्रद होती है जहाँ पानी की कमी बनी रहती है।

(B) पाचक ग्रन्थियाँ (Digestive Glands)– यूरोमैस्टिक्स में आहार नाल से सम्बन्धित पाँच ग्रन्थियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **सैलाइवरी ग्रन्थियाँ (Salivary glands)**– **कीथ** (Keith) के अनुसार यूरोमैस्टिक्स की मुख गुहिका में कुछ सैलाइवरी ग्रन्थियाँ स्थित होती हैं जो म्यूकस का स्रावण करती हैं।
2. **गैस्ट्रिक ग्रन्थियाँ (Gastric glands)**– ये आमाशय के अंदर उसकी म्यूकस मेम्ब्रेन में पायी जाती है। ये भोजन को पचाने के लिए आमाशय में गैस्ट्रिक रस (gastric juice) का स्रावण करती हैं।
3. **लिवर (Liver)**– लिवर में दो लोब्स पाये जाते हैं। यह गहरे लाल रंग का होता है। दायाँ लोब बड़ा तथा लम्बा होता है जबकि बायाँ लोब छोटा होता है। लिवर फेफड़ों के नीचे तथा हृदय के पश्च भाग में स्थित होता है। दोनों लोब्स के बीच में एक गाल ब्लैडर (gall bladder) स्थित रहता है। **गाल ब्लैडर** से एक सिस्टिक (cystic duct) डक्ट निकलती है। यह दायें लोब की हिपैटिक डक्ट (hepatic duct) से मिलकर **बाइल डक्ट** (bile duct) बनाती है जो आगे बढ़कर ड्यूओडिनम में खुलती है। बायें लोब से एक दूसरी बाइल डक्ट निकलकर ड्यूओडिनम में खुलती है। ये दोनों नलिकाएँ पैन्क्रिएटिक नलिका के छिद्र के पीछे अलग–अलग खुलती हैं।
4. **पैन्क्रियाज (Pancreas)**– पैन्क्रियाज एक सफेद, सँकरी तथा लम्बी ग्रन्थि होती है जो आमाशय तथा ड्यूओडिनम के बीच में स्थित होती है। इससे एक **पैन्क्रिएटिक डक्ट** निकलकर ड्यूओडिनम में बाइल डक्ट के सामने खुलती है।
5. **इण्टेस्टाइनल ग्रन्थियाँ (Intestinal glands)**– छोटी आंत के अंदर इसकी म्यूकस मेम्ब्रेन में छोटी–छोटी असंख्य इण्टेस्टाइनल ग्रन्थियाँ स्थित होती हैं जो आन्त्र में भोजन को पचाने के लिए इण्टेस्टाइनल रस (intestinal juice) का स्रावण करती हैं।

टिप्पणी

यूरोमैस्टिक्स का रुधिर परिवहन तन्त्र बंद (closed) प्रकार का होता है। यह निम्नलिखित भागों से मिलकर बना होता है– (i) हृदय, (ii) धमनी तन्त्र, (iii) शिरा तन्त्र तथा (iv) रुधिर।

2.4.5 कबूतर का पाचन तन्त्र (Digestive System of Pigeon)

कबूतर का पाचन तन्त्र अन्य पक्षियों की तरह अनेक लक्षणों में विशेष प्रकार का होता है तथा भोजन को शीघ्र पचाने के लिए रूपान्तरित होता है। यह आहार नाल तथा उससे सम्बन्धित पाचक ग्रन्थियों से मिलकर बनता है–

(A) आहार नाल (Alimentary Canal)– कबूतर की आहार नाल लम्बी, ट्यूबलर तथा कुण्डलित होती है जो मुख से प्रारम्भ होकर पीछे क्लोएकल छिद्र के द्वारा बाहर खुलती है। इसे स्पष्टता मुख एवं मुख गुहिका, फैरिंक्स, इसोफेगस एवं क्रॉप, आमाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत, क्लोएका एवं क्लोएकल छिद्र में विभाजित किया जा सकता है–

1. **मुख एवं मुख गुहिका (Mouth and buccal cavity)**– कबूतर में मुख चौड़ी दरार के रूप में पाया जाता है जो ऊपर तथा नीचे से बिना दाँत की हॉर्नी चोंच (horny beaks) से घिरा रहता है। मुख पीछे मुख गुहिका (buccal cavity) में खुलता है।

   इसकी मुख गुहिका में कोई विशेष लक्षण नहीं होते। यह अनियमित आकार की होती है। इसके तल (floor) पर एक लम्बी, तिकोनी तथा सँकरी व आगे से नुकीली जिव्हा (tongue) पायी जाती है, जिस पर कुछ ही टेस्ट बड्स (taste buds) स्थित होती हैं। मुख गुहिका पीछे की ओर फैरिंक्स में खुलती है।

2. **फैरिंक्स (Pharynx)**– मुख गुहिका का पश्च भाग फैरिंक्स कहलाता है। एक जोड़ी लम्बे छिद्र जो **पोस्टीरियर–नेयर्स** (posterior-nares) होते हैं, फैरिंक्स की छत पर पीछे की ओर खुलते हैं जो स्कल के पैलेटल फोल्ड्स के द्वारा ढँके रहते हैं। पोस्टीरियर नेयर्स के ठीक पीछे मध्य में एक **फैरिंगोटिम्पेनिक** या **यूस्टेकियन ट्यूब** (pharyngotympanic or eustachian tube) का छिद्र स्थित होता है। फैरिंक्स की तली पर एक अण्डाकार छिद्र पाया जाता है। जो लिप्स (lips) या फोल्ड्स से घिरा रहता है, इसे **ग्लॉटिस** (glottis) कहते हैं। ग्लॉटिस पीछे की ओर फेफड़ों (lungs) की ट्रैकियल ट्यूब्स (tracheal tubes) में खुलता है। फैरिंक्स पीछे की ओर इसोफेगस (oesophagus) में खुलता है।

3. **इसोफेगस एवं क्रॉप (Oesophagus and crop)**– फैरिंक्स पीछे की ओर एक लम्बी, लचीली तथा मोटी दीवार की एक नली में खुलता है, जिसे **इसोफेगस या गुलेट** (oesophagus or gullet) कहते हैं। यह पीछे की ओर गर्दन से होता हुआ आमाशय में खुल जाता है।

टिप्पणी

क्रॉप (Crop)– गर्दन के आधार पर तथा स्टरनम के ठीक सामने इसोफेगस का मध्य भाग एकदम फूलकर एक बाइलोब्ड (bilobed) थैलीनुमा (sac-like) रचना बनाता है, जिसे **क्रॉप** कहते हैं। क्रॉप की दीवार पतली तथा लचीली होती है। यह एक भोजन रिजरवॉयर (food reservoir) की तरह कार्य करता है, जिसमें कबूतर शीघ्रता से निगले हुए सूखे तथा कड़े भोजन के दानों (foodgrains) को नम तथा कोमल (moistened and softened) बनाने के लिए संग्रहीत करते हैं।

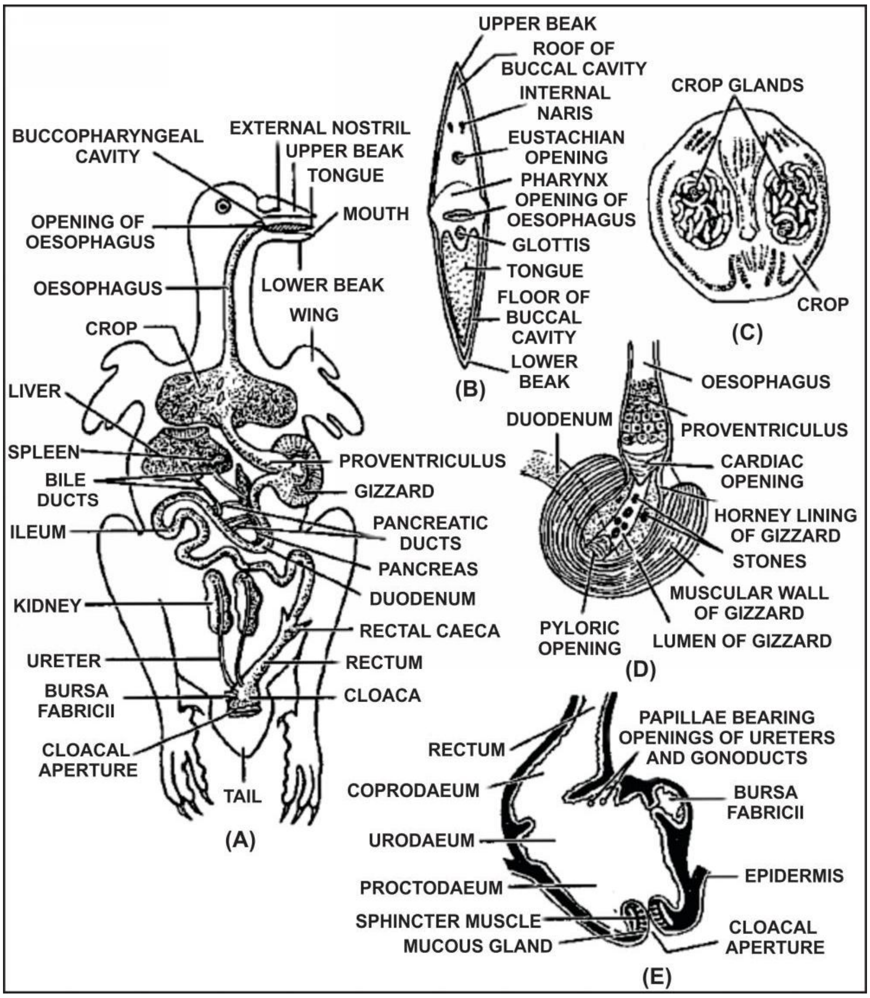

चित्र क्र. 2.51: Pigeon : Digestive System : (A) Alimentary Canal, (B) Buccopharyngeal Cavity, (C) Internal Structure of Crop after cut Open, (D) Sagittal Section of Stomach, (E) Structure of Cloaca (in Longitudinal Section)

कबूतर में नर और मादा दोनों में क्रॉप की आन्तरिक स्तर की एपिथीलियल कोशिकाएँ प्रजनन काल में मोटी होकर लिपिड्स (lipids) के साथ स्क्वेमस कोशिकाओं (squamous cells) में रूपान्तरित होकर अपने शिशुओं या चूजों को पिलाने के लिए

पिजिअन या क्रॉप मिल्क (pigeon or crop milk) का स्रावण करती है। पिजिअन मिल्क क्रॉप में ग्रन्थियों के द्वारा स्रावित नहीं होता बल्कि, क्रॉप की आन्तरिक एपिथीलियल कोशिकाओं के रूपान्तरण तथा उनके डिजेनेरेशन के द्वारा स्रावित होता है। कबूतर इस स्रावित पिजिअन मिल्क को अपने शिशु पक्षियों को फीड कराने को अपनी चोंच द्वारा उनके मुख में उँडेल देते हैं। ये अपने शिश पक्षियों को तब तक पिजिअन मिल्क पर फीड (feed) कराते हैं, जब तक वे अपना भोजन स्वयं लेने में समर्थ नहीं हो जाते। प्रोलैक्टिन (prolactin) हॉर्मोन जो पिट्यूटरी ग्रन्थि के ऐण्टीरियर लोब में स्रावित होता है, इन पक्षियों के क्रॉप में पिजिअन मिल्क के स्रावण (secretion) को नियन्त्रित करता है। यह अत्यधिक पौष्टिक होता है, क्योंकि इसमें जल, वसा, प्रोटीन, कैल्शियम तथा लैक्टोज (lactose) आदि पाये जाते हैं। इसमें वसा 35% होती है, जबकि गाय के दूध में यह 3 से 5 ही होती है। क्रॉप के अंदर कुछ म्यूकस–ग्रन्थियाँ भी पायी जाती हैं। क्रॉप के पीछे इसोफेगस पुनः मोटी दीवार की नलिका के रूप में होता है जो अपने पश्च सिरे द्वारा आमाशय में खुलता है।

4. **आमाशय (Stomach)**– कबूतर का आमाशय स्पष्ट रूप से दो भागों में बँटा रहता है– एक ऐण्टीरियर ग्लैण्डुलर प्रोवैण्ट्रिकुलस (glandular proventriculus) तथा दूसरा पोस्टीरियर पेशीय वैण्ट्रिकुलस या गिजर्ड (muscular ventriculus or gizzard)–

   (a) **प्रोवैण्ट्रिकुलस (Proventriculus)**– यह आमाशय का अग्र छोटा, ट्यूबुलर तथा ग्रन्थिल (tubular and glandular) भाग है जो इसोफेगस से थोड़ा ही चौड़ा होता है। इसकी दीवार मोटी एवं पेशीयुक्त होती है। इसके अंदर गैस्ट्रिक ग्रन्थियाँ (gastric glands) पायी जाती हैं जो भोजन को पचाने के लिए गैस्ट्रिक रस (gastric juice) का स्रावण करती हैं। इसके दायीं ओर एक ओवल एवं लाल रंग की रचना, जिसे **स्प्लीन** (spleen) कहते हैं, पैरिटोनियम के द्वारा इससे जुड़ी रहती है। प्रोवैण्ट्रिकुलस अन्य कशेरुकी जन्तुओं के कार्डियक आमाशय (cardiac stomach) के समतुल्य होता है। प्रोवैण्ट्रिकुलस गिजर्ड में कार्डियक ओपनिंग के द्वारा खुलता है।

   (b) **वैण्ट्रिकुलस या गिजर्ड (Ventriculus or Gizzard)**– गिजर्ड आमाशय का पश्च भाग है जो अन्य कशेरुकी जन्तुओं के पाइलोरिक आमाशय (pyloric stomach) के समतुल्य होता है। यह बड़ा, कड़ा तथा लेटरल तलों से चपटा एवं एक बाइकॉनवैक्स लैंस (biconvex lens) के आकार का होता है। इसकी दीवार मोटी एवं अत्यधिक पेशीय होती है। इसकी दीवार की पेशियाँ दो टैण्डन्स (tendons) पर केन्द्रित रहती हैं। इसके

अंदर की छोटी एवं सँकरी गुहा एपिथीलियम (epithelium) से आस्तरित रहती है, जो मोटी, रफ (rough), हॉर्नी तथा पीले या हरे रंग की होती है। गिजर्ड की गुहा में सदैव ग्रिट (grit) या छोटी–छोटी कंकड़ियाँ (pebbles) स्थित रहती हैं जो पक्षियों द्वारा निगली होती हैं। ये कंकड़ियाँ गिजर्ड के अंदर भोजन को तोड़ने तथा पीसने में सहायक होती हैं। इस प्रकार गिजर्ड एक शक्तिशाली चक्की (grinding apparatus) का कार्य करता है।

गिजर्ड अपने पीछे छोटी आंत में खुलता है। यह ओपनिंग (opening) एक स्फिंक्टर (sphincter) से घिरा होता है, जिसे **पाइलोरिक वाल्व या पाइलोरस** (pyloric valve or pylorus) कहते हैं।

5. **छोटी आंत (Small intestine)**– कबूतर में मिड–गट (mid-gut) या छोटी आंत की लम्बाई 75 cm होती है जो अग्र ड्यूओडिनम तथा पश्च इलियम में विभाजित होती है–

   (a) **ड्यूओडिनम (Duodenum)**– यह छोटी आंत का प्रथम या अग्र भाग है जो गिजर्ड के डॉर्सल तल से निकलता है। इस प्रकार गिजर्ड का पाइलोरिक ओपनिंग (pyloric opening) जो ड्यूओडिनम में खुलता है, गिजर्ड में स्थित प्रोवैण्ट्रिकुलस के कार्डियक ओपनिंग (cardiac opening) के पास ही स्थित रहता है। ड्यूओडिनम स्पष्ट रूप से एक 'U' के आकार की नलिका होती है, जिसकी दोनों भुजाओं के मध्य पैन्क्रियाज (pancreas) स्थित रहता है। ड्यूओडिनम में तीन पैन्क्रिएटिक डक्ट्स (pancreatic ducts) तथा दो बाइल डक्ट्स (bile ducts) खुलती हैं।

   (b) **इलियम (Ileum)**– छोटी आंत का ड्यूओडिनम के पीछे का भाग इलियम कहलाता है। यह लम्बी, कुण्डलित (coiled) तथा एक से व्यास की होती है। इसकी अंदर की एपिथीलियल लाइनिंग (epithelial lining) पर असंख्य छोटे–छोटे अंगुलियों के आकार के उभार पाये जाते हैं जिन्हें **विलाई** (villi) कहते हैं। विलाई इलियम की आन्तरिक सतह के क्षेत्रफल (area) को स्रावण (secretion) तथा अवशोषण (absorption) के लिए अत्यधिक बढ़ा देती है। इलियम का पश्च भाग बड़ी आंत में खुलता है।

6. **बड़ी आंत (Large intestine)**– इलियम के पीछे के भाग बड़ी आंत कहलाता है। इलियम और बड़ी आंत का व्यास एक–सा ही होता है। इन दोनों के सन्धि–स्थल पर ऊपर एक जोड़ी छोटे, नुकीले, अन्ध थैले (blind pouches) जिन्हें **रेक्टल या कॉलिक सीकी** (rectal or colic caecae) कहते हैं, स्थित होते हैं, जो शायद पचे हुए भोजन में से कुछ जल का अवशोषण करते हैं। कबूतर में

बड़ी आंत अत्यन्त ही छोटी नलिका के रूप में होती है, क्योंकि इन पक्षियों में फीकल (faecal) पदार्थ थोड़ी ही मात्रा में बनता है। यह अग्र **रैक्टम** तथा **क्लोएका** में विभाजित रहता है–

(a) रैक्टम (Rectum)– यह एक सँकरी नलिका, जो लम्बाई में लगभग 4 cm होती है, के रूप में होती है। इसका व्यास इलियम के ही बराबर होता है। यह पश्च सिरे से क्लोएका में खुलती है। इसका यह ओपनिंग (opening) एक स्फिंक्टर (sphincter) के द्वारा घिरा रहता है।

(b) क्लोएका (Cloaca)– आहार नाल का अन्तिम या टर्मिनल भाग क्लोएका कहलाता है जो बड़ी आंत का अन्तिम भाग होता है। यह एक बड़ा तथा स्पष्ट चैम्बर (chamber) होता है जो अंदर से निम्नलिखित तीन चैम्बर्स में विभाजित रहता है– **(i) अग्र कॉप्रोडियम (coprodaeum)**– जिसमें रैक्टम खुलता है। **(ii) छोटा मध्य यूरोडियम (urodaeum)**– जिसमें यूरेटर्स तथा जनन–नलिकाएँ खुलती हैं। **(iii) पश्च प्रोक्टोडियम (proctodaeum)**– जो शरीर से बाहर **क्लोएकल छिद्र** (cloacal aperture) द्वारा खुलता है।

2.4.6 बर्सा फैब्रिसाई (Bursa Fabricii)

क्लोएका की डॉर्सल सतह पर लिम्फैटिक टिशू का एक ब्लाइण्ड पाउच (blind pouch of lymphatic tissue) स्थित होता है, इसे **बर्सा फैब्रिसाई** (bursa fabricii) कहते हैं। यह अंदर से एण्डोडर्म से आस्तरित रहता है तथा क्लोएका के प्रोक्टोडियम में खुलता है। इसके कार्य के विषय में अनुमान है कि पक्षियों की शिशु अवस्था में यह लिम्फोसाइट्स (lymphocytes) का निर्माण करता है तथा एण्टीबाडीज बनाकर क्लोएका की बाहरी संक्रमण से रक्षा करता है, परन्तु वयस्क पक्षियों में यह जननांगों के परिपक्व होते ही लुप्त हो जाती है। पक्षियों में इसे **क्लोएकल थाइमस** (cloacal thymus) भी कहते हैं, क्योंकि यह थाइमस ग्रन्थि से समानता रखती है।

पाचक ग्रन्थियाँ (Digestive Glands)– कबूतर में निम्नलिखित पाचन ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं–

1. **बक्कल ग्रन्थियाँ (Buccal glands)**– कबूतर की मुख गुहिका में **सैलाइवरी ग्रन्थियों** (salivary glands) का पूर्ण अभाव होता है, परन्तु जिव्हा के नीचे एक **मीडियन सब–लिंगुअल ग्रन्थि** (median sublingual glands) तथा एक जोड़ी **म्यूकस ग्रन्थियाँ** (mucous glands) मुख के किनारों पर स्थित होती हैं। ये ग्रन्थियाँ म्यूकस का स्राव करती हैं जो भोजन को गीला करने का कार्य करता है।

   कुछ म्यूकस ग्रन्थियाँ जिव्हा (tongue) के ऊपर भी स्थित होती हैं।

2. **गैस्ट्रिक ग्रन्थियाँ (Gastric glands)**– प्रोवैण्ट्रीकुलस की गुहा में एपिथीलियल स्तर में अनेक **गैस्ट्रिक ग्रन्थियाँ** स्थित होती हैं जो

टिप्पणी

गैस्ट्रिक रस (gastric juice) के साथ **पैप्टिक एन्जाइम्स** (peptic enzymes) का स्रावण करती हैं।

3. **लिवर (Liver)**– कबूतर का लिवर बड़ा ठोस (compact) गहरे लाल रंग का तथा द्विपिण्डिक (bilobed) होता है। इसका दायाँ लोब बायें से बड़ा होता है। प्रत्येक लिवर लोब से एक–एक बाइल डक्ट (bile duct) निकलती है। बायें लिवर लोब की बाइल डक्ट ड्यूओडिनम के प्रॉक्सिमल तथा दायें लोब की बाइल डक्ट ड्यूओडियम के डिस्टल सिरे में खुलती है। **गाल ब्लैडर** (gall bladder) कबूतर में सामान्यतः अनुपस्थित होता है, किन्तु कुछ पक्षियों तथा कबूतर की कुछ जातियों में यह उपस्थित होता है। लिवर बाइल रस (bile juice) का स्रावण करता है जो भोजन के पाचन में सहायक होता है।

4. **पैन्क्रियाज (Pancreas)**– पैन्क्रियाज एक ठोस तथा लाल रंग की ग्रन्थि होती है, जो ड्यूओडिनम की दोनों भुजाओं के मध्य स्थित रहती है। इससे तीन **पैन्क्रिएटिक डक्ट्स** (pancreatic ducts) निकलकर ड्यूओडिनम की डिस्टल भुजा में खुलती हैं। इसमें **पैन्क्रिएटिक रस** (pancreatic juice) का स्रावण होता है, जिसमें भोजन के पाचन के लिए अनेक एन्जाइम्स होते हैं।

5. **इण्टेस्टाइनल ग्रन्थियाँ (Intestinal glands)**– छोटी आंत के एण्डोथीलियल स्तर में अनेक **इण्टेस्टाइनल ग्रन्थियाँ** पायी जाती हैं, जो भोजन के पाचन के लिए विभिन्न एन्जाइम्स का स्रावण करती हैं।

2.4.7 लीपस का पाचन तन्त्र (Digestive System of Lepus)

A. आहार नाल (Alimentary Canal)– लीपस एक **हर्बिवोरस** (herbivorous) या शाकाहारी स्तनी है। शाकाहारी कशेरुकी जन्तुओं में आहार नाल अपेक्षाकृत अधिक लम्बी होती है। इसलिए लीपस की आहार नाल कार्निवोरस (carnivorous) या माँसाहारी मेंढक की आहार नाल से अधिक लम्बी होती है। यह मुख्यतः चार भागों में विभाजित होती है– (1) बक्कोफैरिन्जियल गुहिका, (2) इसोफेगस, (3) आमाशय तथा (4) आंत।

1. **बक्कोफैरिन्जियल गुहिका (Buccopharyngeal cavity)**– लीपस की बक्कोफैरिन्जियल गुहिका सँकरी तथा गहरी होती है जो आगे अनुप्रस्थ दरारनुमा मुखद्वार से बाहर खुलती है। मुखद्वार ऊपर और नीचे से चल होंठो से घिरा रहता है। ऊपरी होंठ मध्य से कटा होने के कारण इसके ऊपरी जबड़े के **इन्साइजर्स दाँत** बाहर से दिखायी देते हैं। बक्कोफैरिन्जियल गुहिका का कठोर पैलेट के पीछे का भाग **फैरिंक्स** (pharynx) या ग्रसनी कहलाता है जो गलेट (gullet) या निगलद्वार द्वारा इसोफेगस में खुलता है।

2. **इसोफेगस या ग्रासनली (Oesophagus)**– फैरिंक्स, गलेट या निगलद्वार द्वारा आहार नाल के दूसरे भाग, इसोफेगस (oesophagus) में खुलता है। ग्रीवा के कारण लीपस में इसोफेगस की लम्बाई मेंढक के

इसोफेगस से अधिक होती है। लीपस में यह ग्रीवा तथा थोरैक्स भागों से गुजरता हुआ, नीचे **डायफ्राम** (diaphragm) को भेदकर उदर गुहा (abdominal cavity) में प्रवेश करता है, जहाँ यह बायीं ओर स्थित आमाशय में खुल जाता है। इस प्रकार आमाशय इसोफेगस के द्वारा बक्कोफैरिन्जियल गुहिका से जुड़ा रहता है। इसोफेगस की दीवार मोटी, पेशीय और संकुचनशील होती है। इसकी भीतरी सतह अनेक लम्बवत् फोल्ड्स (longitudinal folds) में उठी रहती है। भोजन के आने पर ही इसकी गुहा फैलती है, अन्यथा यह फोल्ड्स के कारण सिकुड़ी या बंद रहती है। इसोफेगस की दीवार में किसी प्रकार की पाचन ग्रन्थियाँ नहीं होतीं, परन्तु म्यूकस ग्रन्थियाँ (mucous glands) अवश्य होती हैं जो इसकी गुहा को लसदार तथा नम बनाये रखती हैं, जिससे भोजन सुगमता से पीछे फिसलता हुआ आमाशय में पहुँच जाता है। इस प्रकार इसोफेगस का मुख्य कार्य भोजन को मुख से प्राप्त कर आमाशय तक पहुँचाना है।

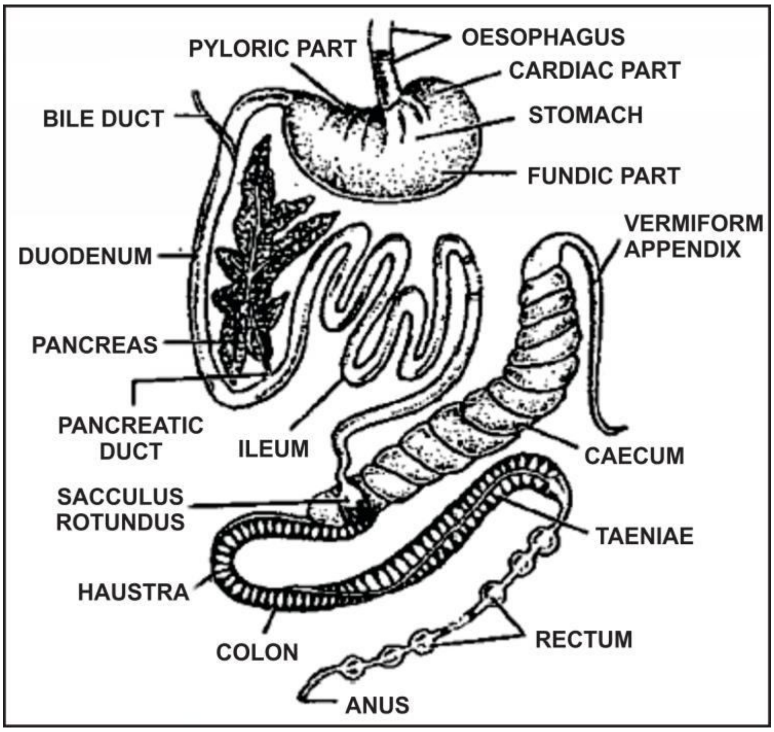

चित्र क्र. 2.52: **Alimentary Canal of Lepus or Rabbit**

इसोफेगस की औतिक रचना (Histological Structure of the Oesophagus)– यद्यपि कार्यों के अनुसार, आहार नाल की विभिन्न भागों में, दीवार की औतिक रचना में कुछ विभिन्नताएँ होती हैं, लेकिन सभी भागों की दीवार की मूल रचनात्मक रूपरेखा (basic structural plan) एक ही होती है। इसमें बाहर से भीतर की ओर पाँच– **सिरोसा, पेशीय स्तर, सब–म्यूकोसा, मस्कुलोरिक म्यूकोसी** तथा **म्यूकोसा** स्तर होते हैं। इसोफेगस की अनुप्रस्थ काट में ये सभी स्तर दिखायी देते हैं–

(i) **सिरोसा (Serosa)**– यह इसोफेगस का बाहरी स्तर है। यह चपटी, शल्की (squamous) कोषाओं की महीन, इकहरी पर्त का बना होता है। यह वास्तव में सीलोमिक गुहिका का **विसरल पेरिटोनियम** (visceral peritoneum) स्तर ही होता है।

(ii) **पेशी स्तर या मस्कुलेरिस एक्सटर्ना (Muscle layer or Muscularis externa)**– यह अनैच्छिक पेशियों से बना मोटा स्तर होता है जो दो भागों में बँटा होता है– **(a) बाहरी लम्बवत् पेशी स्तर (outer longitudinal muscle layer)**– यह सिरोसा के नीचे स्थित होता है, तथा **(b) भीतरी वर्तुल पेशी स्तर (inner circular muscle layer)**– यह मोटा स्तर है जो लम्बवत् पेशी स्तर के नीचे होता है। इसोफेगस के अग्र भाग में तिरछी पेशियों के बण्डल्स (oblique muscle bundles) का अतिरिक्त स्तर होता है।

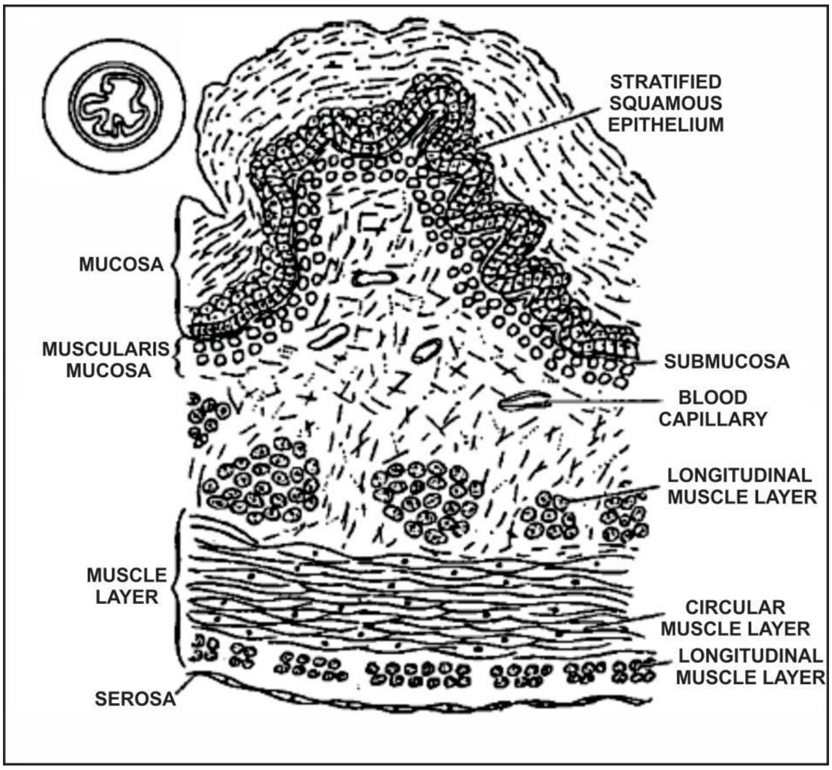

चित्र क्र. 2.53: T. S. of Oesophagus of Lepus or Rabbit

(iii) **सब–म्यूकोसा (Sub-mucosa)**– यह सघन संयोजी ऊतकों का बना एक मोटा स्तर है जो पेशी स्तर के नीचे स्थित होता है। इसमें कुछ रुधिर वाहिनियाँ तथा **इसोफेजियल म्यूकस ग्रन्थियाँ** होती हैं।

(iv) **मस्कुलेरिस म्यूकोसी (Muscularis mucosae)**– यह स्तर म्यूकोसा के आधार पर स्थित होता है। इसोफेगस में यह पतला तथा केवल लम्बवत् पेशियों से बना होता है।

(v) **म्यूकोसा (Mucosa or Mucous membrane)**– यह सबसे अंदर का स्तर है जो **स्ट्रेटिफाइड स्क्वैमस एपिथीलियल** (stratified

टिप्पणी

squamous epithelial) कोशिकाओं के इकहरे स्तर का बना होता है। इस स्तर द्वारा म्यूकस स्रावित होता है जो इसोफेगस की भीतरी दीवार को लसीला तथा चिकना रखता है।

3. **आमाशय (Stomach)**– आमाशय डायाफ्राम के नीचे उदर–गुहा में बायाँ ओर स्थित रहता है। यह आहार नाल का सबसे चौड़ा भाग तथा आकार में द्विपालिक थैली (bilobed sac) के समान होता है। इसका बायाँ पिण्ड लगभग गोलाकार तथां दाहिने पिण्ड से बड़ा होता है। **आमाशय को तीन भागों में बाँटा जा सकता है– (i) कार्डियक भाग (cardiac part)**– यह आमाशय का बायाँ बड़ा तथा गोलाकार पिण्ड है जिसमें इसोफेगस खुलता हे। आमाशय तथा इसोफेगस के संगम या द्वार पर एक स्फिंक्टर (sphincter) होती है जिसे **कार्डियक स्फिंक्टर या कार्डिया** (cardiac sphincter or cardia) कहते हैं। यह स्फिंक्टर भोजन को आमाशय में तो आने देता है, परन्तु आमाशय से इसोफेगस में वापस नहीं जाने देता। **(ii) पाइलोरिक भाग (pyloric part)**– यह आमाशय का दायाँ छोटा पिण्ड है। **(iii) फण्डिक भाग (fundic part)**– यह आमाशय का सबसे बड़ा व मुख्य भाग है जो कार्डियक तथा पाइलोरिक भागों के बीच, में होता है। आमाशय का पाइलोरिक भाग एक छिद्र जिसे **पाइलोरस** (pylorus) कहते हैं, के द्वारा छोटी आंत के सबसे पहले भाग – ड्यूओडिनम (duodenum) में खुलता है। इस छिद्र पर एक स्फिंक्टर होता है जिसे **पाइलोरिक स्फिंक्टर या वाल्व** (pyloric sphincter or valve) कहते हैं जो आमाशय से भोजन को ड्यूओडिनम में जाने देता है, परन्तु भोजन को ड्यूओडिनम से आमाशय में वापस नहीं आने देता।

आमाशय की औतिक रचना (Histological Structure of Stomach)– आमाशय की दीवार की रचना इसोफेगस की दीवार की भाँति होती है, किन्तु आमाशय की दीवार में निम्न विशेषताएँ होती हैं–

(i) आमाशय की दीवार आहार नाल के अन्य भागों से अधिक मोटी होती है, इसका कारण पेशीय तथा म्यूकोसा (mucosa) का मोटा स्तर है।

(ii) इसकी दीवार के **पेशी स्तर** (muscular layer) में पेशियों के तीन स्तर **लम्बवत्** (longitudinal) **वर्तुल** (circular) तथा **तिरछी** (oblique) पेशियाँ (muscles) होती हैं।

(iii) **सब म्यूकोसा** (sub-mucosa) का स्तर पतला होता है।

(iv) **मस्कुलेरिक म्यूकोसी** (muscularis mucosae) कम विकसित तथा लम्बवत् और वर्तुल पेशियों से मिलकर बनता है।

(v) **म्यूकोसा** (mucosa) का स्तर अधिक मोटा तथा कोमल होता है। आमाशय के म्यूकोसा या म्यूकस मेम्ब्रेन में अनेक लम्बवत् फोल्ड्स (longitudinal folds) होते हैं। इन फोल्ड्स के बीच–बीच में म्यूकोसा का स्तर गहरे गर्तो (pits) में धँसा रहता है। म्यूकोसा के ये गर्त गैस्ट्रिक या जठर ग्रन्थियों (gastric glands) का निर्माण करते

टिप्पणी

हैं। प्रायः सभी स्तनियों में आमाशय के क्षेत्रों के अनुसार गैस्ट्रिक ग्रन्थियाँ निम्न चार प्रकार की होती हैं–

(a) **इसोफेजियल ग्रन्थियाँ (Oesophageal glands)**– ये ग्रन्थियाँ इसोफेगस के द्वार के आस–पास स्थित होती हैं।

(b) **कार्डियक ग्रन्थियाँ (Cardiac glands)**– ये आमाशय के कार्डियक भाग में स्थित होती हैं।

(c) **पाइलोरिक ग्रन्थियाँ (Pyloric glands)**– ये पाइलोरिक भाग में पायी जाती हैं।

ये तीनों प्रकार की ग्रन्थियाँ केवल म्यूकस (mucous) का स्रावण करती हैं, क्योंकि इनमें म्यूकस का स्रावण करने वाली गॉब्लेट कोशिकाएँ (goblet cells) होती हैं।

(d) **फण्डिक ग्रन्थियाँ (Fundic glands)**– ये फण्डिक भाग में स्थित सबसे अधिक विकसित गैस्ट्रिक ग्रन्थियाँ हैं। प्रत्येक फण्डिक ग्रन्थि की रचना में अग्रांकित चार प्रकार की कोशिकाएँ भाग लेती हैं–

जुगाली करने वाले चौपाया– स्तनियों में आमाशय चार कक्षों में बँटा और संरचना में सबसे जटिल होता है। ऊँटों के आमाशय में दो कक्षों के थैलीनुमा प्रवर्धों में शरीर के मेटाबॉलिज्म के फलस्वरूप बना जल भरा रहता है जो आठ गैलन तक होता है।

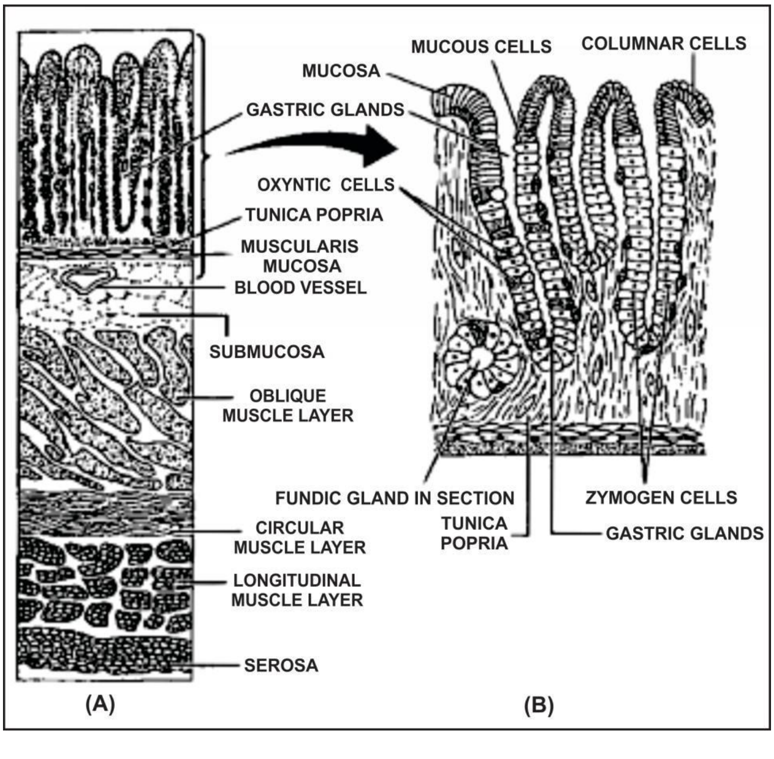

चित्र क्र. 2.54: **(A) T.S. of Stomach (Fundic Part) of Lepus or Rabbit, (B) T.S. Through Fundic Gastric Gland**

- **म्यूकस या श्लेष्मिक कोशिकाएँ (Mucous cells)**– ये फण्डिक ग्रन्थियाँ ग्रीवा में स्थित होती हैं तथा म्यूकस (mucous) का स्रावण करती हैं।

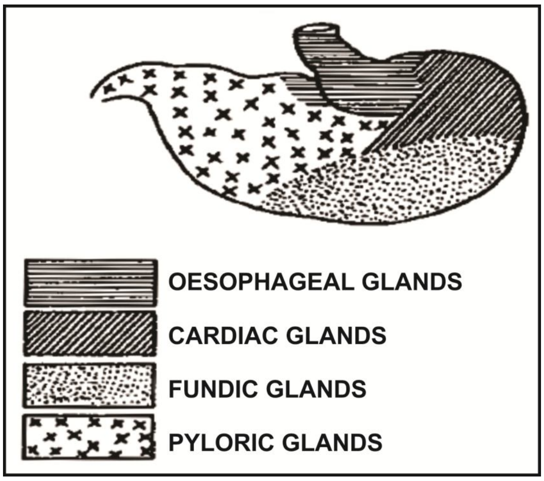

चित्र क्र. 2.55: **Stomach of Lepus or Rabbit, Showing Distribution of Gastric Gland**

- **जाइमोजन कोशिकाएँ (Zymogen cells)**– ये घनाकार कोशिकाएँ हैं जो ग्रन्थियों के आधार भाग में अधिक होती हैं। ये दो प्रकार के प्रोएन्जाइम्स (निष्क्रिय एन्जाइम्स) पेप्सिनोजन एवं प्रोरैनिन (pepsinogen and prorennin) का स्रावण करती हैं।
- **ऑक्जिण्टिक या पैराएटल कोशिकाएँ (Oxyntic or Parietal cells)**– ये चपटी कोशिकाएँ हैं जो जाइमोजन कोशिकाओं के बीच एकल रूप में स्थित होती हैं। ये हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) का स्रावण करती हैं।
- **आरजेण्टाफिन कोशिकाएँ (Argentaffin)**– इनका कार्य अभी अनिश्चित है।

4. **आंत (Intestine)**– आमाशय के पीछे आहार नाल का शेष भाग आंत (intestine) कहलाता है। **हर्बिवोरस** (herbivorous) शाकाहारी होने के कारण लीपस में आंत की लम्बाई लगभग चार मीटर होती है। शाकाहारी भोजन में पोषक पदार्थ कम मात्रा में होते हैं। इसीलिए इन जन्तुओं को भोजन की अधिक मात्रा और इसे पचाने के लिए लम्बी आंत की आवश्यकता होती है। आंत दो मुख्य भागों में विभाजित होती है– (i) छोटी आंत, और (ii) बड़ी आंत–

   (i) छोटी आंत (Small intestine)– यह आंत का प्रथम भाग है जो आमाशय के पीछे लम्बी व कुण्डलित नलिका के रूप में तथा उदर गुहा के अधिकाश भाग को घेरे रहती है। यह दो भागों में विभक्त होती है– (a) ड्यूओडिनम, तथा (b) इलियम।

टिप्पणी

(a) ड्यूओडिनम या ग्रहणी (Duodenum)– यह छोटी आंत का प्रारम्भिक भाग है जो पाइलोरस (pylorus) से निकलकर 'U' आकार की आकृति बनाता हुआ बायीं ओर मुड़ा रहता है। इसकी लम्बाई लगभग 15 cm होती है। ड्यूओडिनम की दोनों भुजाओं के बीच में मीसेण्ट्री द्वारा सधी हुई, गुलाबी रंग की छिटकी हुई ग्रन्थि स्थित होती है जिसे **पैन्क्रियास** (Pancreas) या **अग्न्याशय** कहते हैं। यह ग्रन्थि पैन्क्रिएटिक वाहिनी (pancreatic duct) द्वारा ड्यूओडिनम की दूरस्थ भुजा में खुलती है।

(b) इलियम (Ileum)– यह छोटी आंत का दूसरा भाग है जिसकी लम्बाई लगभग दो से ढाई मीटर होती है। यह भाग कुछ सँकरा तथा अत्यन्त कुण्डलित नली (coiled tube) की तरह उदर गुहा के अधिकांश भाग में फैला तथा मीसेण्ट्री द्वारा पृष्ठ देह–भित्ति से सधा रहता है। इसका अगला सिरा ड्यूओडिनम से जुड़ा रहता है।

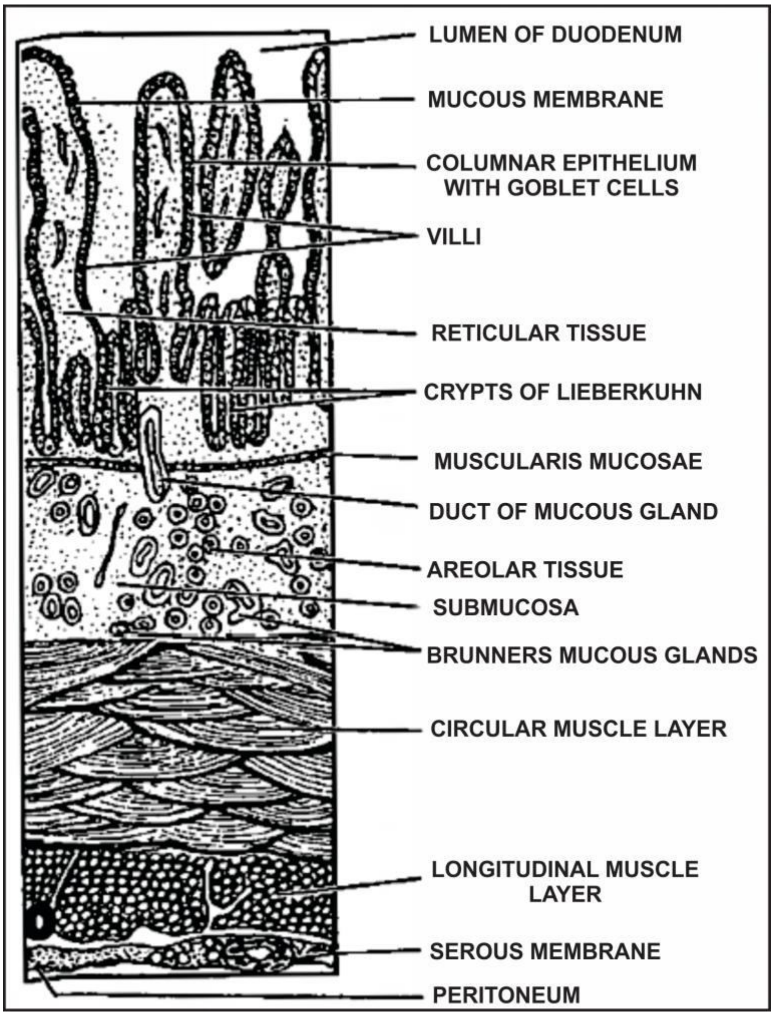

चित्र क्र. 2.56: **T. S. Duodenum of Lepus or Rabbit**

(a) **छोटी आंत की औतिक रचना (Histological Structure of Small Intestine)**– इसकी दीवार में इसोफेगस तथा आमाशय की तरह पाँच स्तर होते हैं, लेकिन अग्र रचनाओं में यह इनसे भिन्न होती है– (i) छोटी आंत की दीवार में पेशी स्तर का **वर्तुल–पेशी स्तर** (circular-muscle layer) अधिक मोटा तथा **मस्कुलेरिस म्यूकोसी** कम विकसित होती है। (ii) भीतरी स्तर या **म्यूकोसा** (mucosa) में अनेक वृत्ताकार या सर्पिल फोल्ड्स (spiral folds) होते हैं। यही फोल्ड्स असंख्य अंगुलीनुमा उभारों के रूप में उभरे होते हैं जिन्हें **विलाई** (iii) या **रसांकुर** कहते हैं। विलाई में रुधिर तथा लिम्फ कोशिकाओं का जाल फैला रहता है। मेंढक की अपेक्षा, लीपस में विलाई अधिक विकसित और संख्या में भी अधिक होते हैं। इन्हीं विलाई के कारण आंत का अवशोषण क्षेत्र (absorbtive surface) लगभग आठ गुना बढ़ जाता है। (iv) छोटी आंत के म्यूकोसा में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं– (a) विलाई के बीच–बीच में म्यूकोसी एपिथीलियम (mucosae epithelium) भीतर मस्कुलेरिस म्यूकोसी स्तर तक धँसकर सामान्य नालाकार **आंतीय ग्रन्थियों** (Simple tubular intestinal glands) का निर्माण करती हैं जिन्हें **लीबरकुन की दरारें** (crypts of Lieberkuhn) कहते हैं। **ब्रूनर ग्रन्थियाँ** (Brunner's glands), जो शाखित तथा सब–म्यूकोसा (sub-mucosa) में स्थित होती हैं। इन ग्रन्थियों में म्यूकस (mucous) का स्रावण होता हे। ब्रूनर ग्रन्थियाँ महीन नलिकाओं के द्वारा लीबरकुन की दरारों में खुलती हैं। लीबरकुन ग्रन्थियाँ छोटी आंत के प्रायः सभी भागों में पायी जाती हैं। इनमें एक प्रकार का पाचक रस बनता है जिसे **सक्कस एण्टेरिकस** (succus entericus) या आंतिय रस कहते हैं। ब्रून ग्रन्थियाँ केवल ड्यूओडिनम में मिलती हैं। (iv) छोटी आंत की पूरी म्यूकोसी एपिथीलियम के आधार पर आंतीय–ग्रन्थियों के बीच में जगह–जगह पीले रंग की लिम्फ ग्रन्थियाँ मिलती हैं जिन्हें **पियर्स ग्रन्थियाँ** (Peyer's patches) कहते हैं। इन ग्रन्थियों से लिम्फोसाइट्स रुधिर कोशिकाएँ बनती हैं जो आंत की गुहा में बराबर आती रहती हैं, जहाँ ये हानिकारक बैक्टीरिया आदि का भक्षण कर इन्हें नष्ट करती हैं।

इलियम (ileum) का अन्तिम भाग फूलकर एक छोटी–सी अण्डाकार रचना बनाता है जिसे **सैकुलस रोटण्डस** (sacculus rotundus) कहते हैं। यह एक ओर बड़ी आंत तथा दूसरी ओर सीकम में खुलता है।

(b) **बड़ी आंत (Large intestine)**– आंत का यह भाग उदर गुहा में सबसे पीछे स्थित होता है। इसमें तीन स्पष्ट भाग होते हैं– (i) सीकम, (ii) कोलन, तथा (iii) रैक्टम।

(i) **सीकम (Caecum)**– लीपस में सीकम लगभग 45 cm लम्बी तथा मोटी नली के रूप में होता है। यह ठीक उसी स्थान से निकलता है जहाँ सैकुलस रोटण्डस बड़ी आंत में खुलता है। इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है– (a) **प्रॉक्सिमल भाग** (proximal part) या

समीपस्थ भाग जो अधिक लम्बा, कोमल तथा जगह–जगह फूला हुआ रहता है तथा (b) **डिस्टल या दूरस्थ भाग** (distal part) – यह सीकम का अन्तिम सिरे वाला भाग है जो 10 से 15 cm लम्बा, सँकरा तथा अन्ध नाल (blind tube) की तरह का होता है अर्थात् सिरे पर बंद रहता है। इस भाग को **वर्मीफॉर्म ऐपेण्डिक्स** (vermiform appendix) कहते हैं। सीकम प्रायः शाकाहारी स्तनियों में भली प्रकार विकसित तथा लम्बा होता है। इसकी गुहा में कुछ ऐसे बैक्टीरिया तथा प्रोटोजोअन्स रहते हैं जो सेल्यूलोज नामक एन्जाइम का संश्लेषण करके भोजन में उपस्थित सेल्युलोज (cellulose) को पचाते हैं। सैकुलस रोटण्डस मे एक **इलियो–सीकल वाल्व** (ileo-caecal valve) होता है जिसके कारण भोजन पहले सीकम में आता है फिर वहाँ से लौटकर बड़ी आंत में जाता है। सैकुलस रोटण्डस तथा वर्मीफार्म ऐपेण्डिक्स की दीवार में लिम्फ–ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं। इनमें बने लिम्फोसाइट रुधिर कोशिकाएँ भोजन में उपस्थित हानिकारक बैक्टीरिया आदि का भक्षण करके उन्हें नष्ट करती हैं।

(ii) **कोलन (Colon)**– यह भी सैकुलस रोटण्डस से निकलता है। इसकी भी लम्बाई लगभग 45 cm होती है। कोलन की मध्य सतह पर तीन लम्बवत् पेशीय बैण्ड्स (longitudinal muscular bands) होते हैं, जो कोलन के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले रहते हैं। इन बैण्ड्स को **पेशीय टीनी** (muscular taeniae) कहते हैं। इन पेशीय टीनी के दाहिनी तथा बायीं ओर कोलन की गुहा बाहर की ओर फूली हुई अनेक छोटी–छोटी थैलियाँ बनाती हैं, जिन्हें **हॉस्ट्रा** (haustra) कहते हैं, जिनकी वजह से कोलन की गुहा का क्षेत्र बढ़ जाता है। पूरे कोलन की दीवार की भीतरी सतह पर म्यूकोसी स्तर में म्यूकस ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं जिनसे इसकी गुहा चिकनी तथा लसीली बनी रहती है।

(iii) **रैक्टम या मलाशय (Rectum)**– बड़ी आंत का तीसरा भाग लगभग 67 cm लम्बा रैक्टम (rectum) है। रैक्टम की गुहा थोड़ी–थोड़ी दूरी पर गाँठों के समान फूली रहती है। इनका अन्तिम भाग **ऐनल–कैनाल** (anal-canal) कहलाता है जो गुदा (anus) से बाहर खुलता है। रैक्टम की भीतरी सतह पर लम्बवत् फोल्ड्स (longitudinal folds) होते हैं। एनल–कैनाल की दीवार में स्फिंक्टर पेशी (sphincter muscles) होती हैं जो इस कैनाल तथा गुदा को सामान्यतः बंद रखती हैं। गुदा धड़ के पश्च छोर पर पूँछ की जड़ के ठीक नीचे स्थित होती है। बड़ी आंत की दीवार में सभी पाँच स्तर होते हैं, लेकिन भीतरी सतह पर विलाई (villi) नहीं होती। म्यूकोसी एपिथीलियम में **गॉब्लेट कोशिकाएँ तथा अवशोषी कोशिकाएँ** (goblet and absorptive cells) पायी जाती हैं। गॉब्लेट कोशिकाएँ म्यूकस (mucous) का स्राव करती हैं जिससे रैक्टम की

गुहा चिकनी बनी रहती है। अवशोषी कोशाएँ बिना पचे हुए भोजन में जल तथा लवणों का अवशोषण करती हैं।

B. पाचन ग्रन्थियाँ (Digestive Glands)– आहारनाल की मैस्ट्रिक तथा आन्त्रिक ग्रन्थियों के अतिरिक्त दो बड़ी ग्रन्थियाँ और होती हैं– (1) यकृत तथा (2) अग्न्याशय या पैन्क्रियाज। भ्रूणीय विकास में ये आहार नाल से ही बनते हैं। ये पाचक रसों का स्रावण करती हैं। इसीलिए इन्हें पाचन ग्रन्थियाँ (digestive glands) कहते हैं–

1. **यकृत या जिगर (Liver)**– कशेरुकी जन्तुओं में यह शरीर की सबसे बड़ी तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थि है। लीपस में यह डायफ्राम के ठीक पीछे उदर–गुहा में मीसेण्ट्री द्वारा सधी रहती है। यह चॉकलेटी रंग की कोमल परन्तु ठोस रचना होती है। स्तनियों में सम्पूर्ण यकृत पाँच **पिण्डों या लोब्स** (lobes) का बना होता है। इसमें से तीन पिण्ड बायीं ओर तथा दो दाहिनी ओर होते हैं। दाहिने पिण्डों में पिछला कुछ चौकोर–सा **कॉडेट** (caudate) और अगला, सबसे बड़ा, दाहिना केन्द्रीय (right central) पिण्ड होता है। बायें पिण्डों में पीछे सबसे छोटा **स्पाइजीलियन** (spigelian), मध्य में बड़ा और चौकोर–सा बायाँ **पार्श्व** (left lateral) तथा आगे अण्डाकार–सा **बायाँ केन्द्रीय** (left central) पिण्ड होते हैं। पित्ताशय या **गाल ब्लैडर** (gall bladder) दाहिने केन्द्रीय पिण्ड से सटा हुआ स्थित होता हे। यह हरे रंग की तथा पतली दीवार की एक थैलीनुमा रचना है जिसमें यकृत द्वारा स्रावित पित्त या **बाइल** (bile) भरा रहता है। इसलिए यह हरे रंग का दिखता है। पित्ताशय से एक पतली **सिस्टिक** या **पित्ताशय वाहिनी** (cystic duct) निकलती हैं, जिसमें विभिन्न पिण्डों से छोटी–छोटी **हिपेटिक** या **यकृती वाहिनियाँ** (hepatic ducts) निकलकर खुलती हैं। इस प्रकार एक बड़ी **कॉमन बाइल या सामान्य पित्तवाहिनी** (common bile duct) बन जाती हैं जो ड्यूओडिनम के समीपस्थ (proximal) भाग में आकर खुलती है।

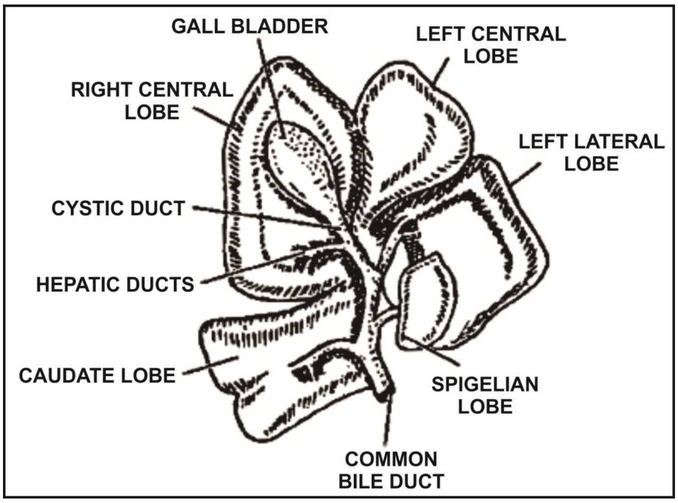

चित्र क्र. 2.57: Liver and Gall bladder of Lepus or Rabbit

यकृत की औतिक रचना (Histological Structure of Liver)– यदि यकृत के किसी पिण्ड के भाग की अनुप्रस्थ काट का सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन करें तो इसमें निम्न रचनाएँ दिखायी देती हैं–

(i) यकृत का प्रत्येक पिण्ड अनेक छोटे–छोटे बहुभुजीय (polyhedral) पिण्डकों से मिलकर बना होता है। इन पिण्डकों को हिपेटिक लोब्यूल्स या पिण्डक (Hepatic lobules) कहते हैं।

(ii) प्रत्येक हिपेटिक लोब्यूल पास वाले लोब्यूल से संयोजी–ऊतक की एक पतली झिल्ली द्वारा अलग रहता है। मनुष्य तथा सूअर आदि स्तनियों में ये झिल्लियाँ प्रत्येक लोब्यूल के चारों ओर एक स्पष्ट खोल बनाती हैं जिसे **ग्लिसन्स कैप्सूल** (Glisson's capsule) कहते हैं। ग्लिसन्स कैप्सूल लीपस के यकृत में सुविकसित नहीं होता।

(iii) प्रत्येक लोब्यूल के केन्द्र में एक **केन्द्रीय वैन्यूल** (central venule) होती है जो लोब्यूल की अक्ष (axis) बनाती है। यह हिपेटिक शिरा की शाख होती है।

(iv) प्रत्येक हिपेटिक लोब्यूल के ग्लिसन्स कैपसूल के प्रत्येक कोण पर, तीन महीन नलिकाओं का एक समूह होता है, जिसे **पोर्टल ट्राएड** (Portal traid) कहते हैं। प्रत्येक ट्राएड में आहार नाल से आने वाली हिपेटिक **पोर्टल शिरा** (Hepatic portal vein) तथा **हिपेटिक धमनी** (Hepatic artery) की एक–एक शाखा और एक **इण्टर लोबुलर हिपेटिक डक्ट्यूल** (Inter lobular hepatic ductule) होती है। प्रत्येक ट्राएड चारों ओर से एक संयोजी ऊतक के आवरण से घिरा रहता है जिसे **पेरिवैस्कुलर फाइब्रस कैप्सूल** (Perivascular fibrous capsule) कहते हैं।

(v) **हिपेटिक कोशिकाएँ या यकृत कोशिकाएँ (Hepatic cells)**– हिपेटिक कोशिकाएँ बहुभुजीय होती हैं। इन्हें **हिपैटोसाइट्स** (Hepatocytes) भी कहते हैं। इनका निर्माण भ्रूणीय एण्डोडर्म से होता है। यकृत में इनके विन्यास के बारे में थोड़ा मतभेद है, किन्तु आम विचारधारा के अनुसार प्रत्येक **लोब्यूल** (lobule) में **केन्द्रीय वैन्यूल** (central venule) के चारों ओर हिपेटिक कोशिकाएँ लड़ी या **हिपेटिक कॉर्ड्स** (hepatic cords) की तरह क्रमबद्ध होती हैं। प्रत्येक लड़ी में हिपेटिक कोशिकाओं की दो पंक्तियाँ होती हैं जिनके बीचो–बीच महीन बाइल या **पित्त–कैनेलिकुलाई** (Bile-canaliculi) फैली रहती हैं जो आपस में जुड़कर एक **बाइल कोशिका** (bile capillary) का निर्माण करती हैं। विभिन्न लड़ियों के बीच–बीच में अनियमित आकार के महीन **वीनस साइनूसॉयड्स या शिरा पात्रक** (Venous sinusoids) फैले रहते हैं।

टिप्पणी

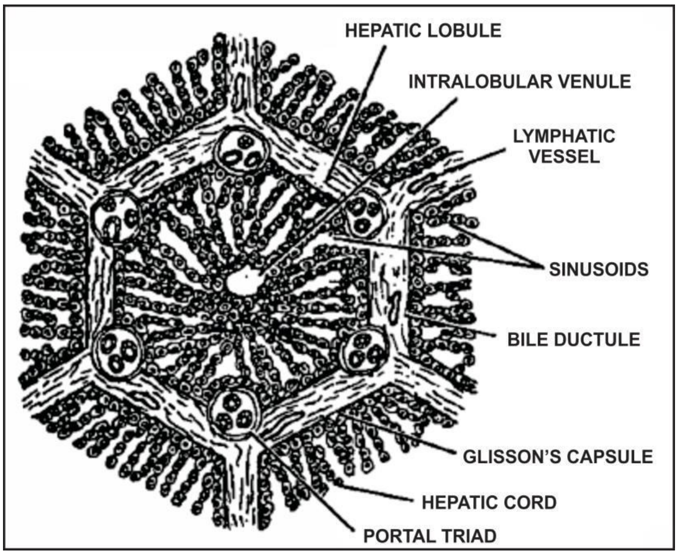

चित्र क्र. 2.58: A part of Section of Lepus or Rabbit's Liver, Glisson's Capsules Shown as Developed in Pig

2.4.8 यकृत की रचना के बारे में आधुनिक मत (Structure of Liver According to Modern Concept)

जैड रुबान (Z. Hruban) तथा **एच. स्विफ्ट** (H. Swift) ने **1964** में और **सी. ब्रूनी** (C. Bruni) तथा **के.आर. पोर्टर** (K.R. Porter) ने 1955 में स्तनियों के यकृत का गहन अध्ययन करके यह पता लगाया है कि– (i) स्तनियों में यकृत **लोब्यूल** (lobule) में **हिपेटिक कोशिकाएँ** (hepatic cells) प्लेट्स या शीट्स (plates or sheet) के रूप में व्यवस्थित रहती हैं जिन्हें **हिपेटिक लैमिनेट** (hepatic laminate) कहते हैं। प्रत्येक हिपेटिक लैमिनेट इकहरी कोशिकाओं की पर्त से बनी होती है। ये लैमिनेट्स यकृत की पूर्ण लम्बाई व चौड़ाई में फैली रहती हैं तथा जगह–जगह ये हिपेटिक कोशिकाओं की **तिरछी इण्टरलैमिनर पट्टियों** (oblique interlaminar bridges) द्वारा आपस में जुड़ी होती हैं। (ii) इन लैमिनेट्स के बीच–बीच के स्थानों को **हिपेटिक लैक्यूनी** (hepatic lacunne) कहते हैं जिनमें वीनस **साइनूसॉयड्स** या **शिरा पात्रक** (Venous sinusoids) फैले रहते हैं। लैमिनेट्स में उपस्थित छिद्रों द्वारा निकटवर्ती शिरापात्र आपस में सम्बन्धित रहते हैं। (iii) प्रत्येक **पोर्टल ट्राएड** (portal traid) भी चारों ओर से इकहरी हिपेटिक कोशिकाओं की बनी प्लेट या लैमिनेट से घिरा होता हैं। इन प्लेटों में उपस्थित छिद्रों द्वारा ट्राएड की पोर्टल शिरा, हिपेटिक धमनी तथा बाइल–डक्टयूल्स (bile-ductules) आर–पार फैली रहती हैं। इस प्रकार यकृत की काट में जो हिपेटिक कोशिकाओं की लड़ियाँ (hepatic cords) दिखायी देती हैं, वासतव में हिपेटिक–लैमिनेट्स (hepatic-laminates) की काट हैं। (iv) **यकृत लोब्यूल्स** (hepatic lobules) में हिपेटिक–लैमिनेट्स या हिपेटिक लड़ियों की बीच–बीच में फैले हिपेटिक साइनूसॉयड्स (hepatic sinusoids), रुधिर कोशिकाओं से चौड़े होते हैं तथा **एण्डोथीलियम** (endothelium) से आस्तरित होते हैं। इनमें उपस्थित अनेक **फैगोसाइटिक कोशिकाएँ** (phagocytic cells) निष्क्रिय एवं मृत

टिप्पणी

लाल रुधिर कोशिकाओं (RBC) का भक्षण करके इनके **हीमोग्लोबिन** (haemoglobin) का विखण्डन करती रहती हैं। इन फैगोसाइटिक कोशिकाओं को **स्टीलेट या कुफ्फर कोशिकाएँ** (stellate or Kuffer's cells) कहते हैं। (v) **इण्ट्रालोबुलर वीनस साइनूसॉयड्स** (intralobular venous sinusoids) पोर्टल ट्राएड की पोर्टल शिरा की शाखाओं से निकलते हैं और लोब्यूलस (lobules) की केन्द्रीय शिराओं में खुलते हैं। ये केन्द्रीय शिराएँ आपस में मिलकर अन्त में एक जोड़ी **हिपेटिक शिराएँ** (hepatic veins) बनाती हैं जो यकृत से निकलकर **पश्च वेना–केवा** (posterior vena-cava) में खुलती हैं। (vi) **पोर्टल ट्राएड** (portal traid) में स्थित **इण्टरलोबुलर, हिपेटिक डक्ट्यूल्स** या वाहिकाओं से अनेक **इण्ट्रालोबुलर हिपेटिक कोशिकाएँ** निकलकर प्रत्येक हिपेटिक लोब्यूल में घुसती हैं और बहुभुजीय फन्दों का ऐसा जाल बनाती हैं कि जाल का प्रत्येक फन्दा एक हिपेटिक कोशिका को घेरे होता है। यकृत के प्रत्येक पिण्ड की सारी **इण्टरलोबुलर हिपेटिक डक्ट्यूल्स** मिलकर एक बड़ी **हिपेटिक डक्ट** (hepatic duct) बनाती हैं। इस प्रकार यकृत के प्रत्येक पिण्ड से एक हिपेटिक डक्ट निकलती है। ये सारी **हिपेटिक डक्ट्स, सिस्टिक डक्ट** (cystic duct) में खुलती हैं।

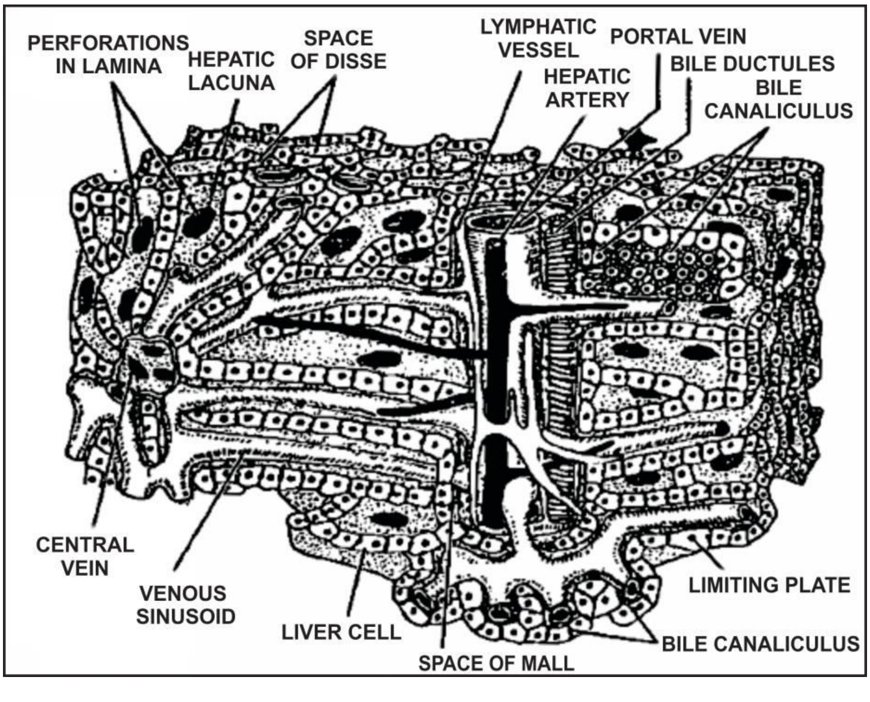

चित्र क्र. 2.59: Structure of Liver According to the Modern View or Concept

2.4.9 यकृत के कार्य (Functions of Liver)

1. **पित्त का स्रावण (Secretion of bile)**– पित्त या बाइल (bile) का स्रावण करना यकृत का मुख्य कार्य है। यह एक हरे रंग का **क्षारीय** (alkaline) द्रव होता है।

2. **ग्लाइकोजेनेसिस (Glycogenesis)**– ऐसिमिलेशन (assimilation) या स्वांगीकरण के समय जब रुधिर में ग्लूकोज (glucose) की मात्रा अधिक हो जाती है तो हिपेटिक कोशिकाएँ ग्लूकोज की बढ़ी हुई मात्रा को **ग्लाइकोजन** (glycogen) में बदलकर इसका संचय कर लेती हैं। इस क्रिया को ग्लाइकोजेनेसिस कहते हैं।
3. **ग्लाइकोजिनोलिसिस (Glycogenolysis)**– इस क्रिया के अन्तर्गत जब रुधिर में ग्लूकोज की मात्रा कम हो जाती है तो संचित ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में बदलकर रुधिर में मुक्त कर दिया जाता है।
4. **ग्लाइकोनियोजेनेसिस (Glyconeogenesis)**– इस क्रिया के अन्तर्गत हिपेटिक कोषाएँ आवश्यकता पड़ने पर अमीनो अम्ल, फेटी एसिड्स तथा ग्लिसरॉल आदि को ग्लूकोज में बदलकर रुधिर में मुक्त कर देती हैं।
5. **वसा का संचय (Storage of fats)**– हिपेटिक कोशाएँ वसा–मेटाबॉलिज्म (fat-matabolism) में भी महत्वपूर्ण भाग लेती हैं और कुछ वसाओं का संचय भी करती हैं।
6. **डीऐमीनेशन (Deamination)**– इस क्रिया के अन्तर्गत हिपेटिक कोशिकाएँ आवश्यकता से अधिक अमीनो अम्लों को रुधिर से लेकर उन्हें अमोनिया एवं पाइरुविक अम्ल में तोड़ देती हैं।
7. **यूरिया का संश्लेषण (Synthesis of urea)**– डीऐमीनेशन प्रक्रिया तथा शरीर की कोशिकाओं में प्रोटीन मेटाबॉलिज्म के फलस्वरुप बनी अमोनिया को हिपेटिक या यकृत कोशिकाएँ CO_2 के साथ संयोजित करके यूरिया में बदल देती हैं। इसी यूरिया को गुर्दे (kidneys) रुधिर से अलग करके इसे मूत्र के साथ बाहर निकाल देते हैं।

$$2NH_3 + CO_2 \rightarrow CO(NH_2)_2 + H_2O$$

8. **टॉक्सिक या विषैले पदार्थों का डीटॉक्सिफिकेशन (Detoxification of toxic substances)**– आंत में उपस्थित बैक्टीरिया (bacteria) विषैले पदार्थ उत्पन्न करते हैं जो हिपेटिक–पोर्टल शिरा के रक्त में मिलकर यकृत में पहुँचते हैं। यहाँ हिपेटिक कोशिकाएँ इन पदार्थों के विष को नष्ट या निष्क्रिय करके इन्हें प्रभावहीन बना देती हैं। शरीर कोषाओं में मेटाबॉलिज्म के फलस्वरूप बने हानिकारक **प्रूसिक अम्ल** (prussic acid) को हिपेटिक कोशिकाएँ रुधिर से अलग करके इसे निष्क्रिय बनाती रहती हैं।
9. **लाल रुधिर कणिकाओं का निर्माण तथा विखण्डन (Formation of RBC and Destruction of dead RBC)**– कशेरुकी जन्तुओं का भ्रूणावस्था में यकृत **हीमोपोयटिक** (haemopoietic) ऊतक होता है अर्थात् यह लाल रुधिर कणिकाओं (RBC) का निर्माण करता है। किन्तु वयस्क अवस्था में यकृत की **कुफ्फर कोशिकाएँ** (Kupffer's cells) मृत या निष्क्रिय लाल रुधिर कणिकाओं को नष्ट करके इनके हीमोग्लोबिन

को बाइल पिगमेण्ट्स में बदलती हैं जो बाइल या पित्त के साथ ड्यूओडिनम में पहुँचकर मल के साथ शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

10. **एन्जाइम का स्रावण (Secretion of enzymes)**– हिपेटिक कोशिकाएँ शरीर में प्रोटीन, वसाओं तथा कार्बोहाइड्रेट्स आदि के मेटाबॉलिज्म के लिए कुछ महत्वपूर्ण एन्जाइम का स्रावण करती हैं।
11. **हिपैरिन का स्रावण (Secretion of heparin)**– रुधिर को जमने से रोकने के लिए हिपेटिक कोशिकाएँ हिपेरिन का स्रावण करती हैं।
12. **अकार्बनिक पदार्थों का संग्रह (Storage of Inorganic substances)**– यकृत या हिपेटिक कोशिकाएँ लौह, ताँबा आदि पदार्थों का संचय करती हैं।
13. **विटामिन्स का संश्लेषण एवं संचय (Storage and synthesis of vitamins)**– हिपेटिक कोशिकाएँ विटामिन A का संश्लेषण करके इसे तथा विटामिन– D और B_{12} का संचय करती हैं।
14. **प्लाज्मा प्रोटीन्स का संश्लेषण (Synthesis of plasma proteins)**– हिपेटिक कोशिकाएँ **प्रोथ्रॉम्बिन** (prothrombin) तथा **फाइब्रिनोजन** (fibrinogen) नामक प्लाज्मा प्रोटीन्स का संश्लेषण करती हैं जिनकी चोट लगने पर रुधिर के थक्के के जमने में महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं।
15. **यकृत लिम्फ** निर्माण का महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है।
16. **जीवाणुओं का भक्षण (Phagocytosis)**– रक्त में उपस्थित हानिकारक जीवाणुओं का हिपेटिक–कोशिकाएँ भक्षण करके इन्हें नष्ट कर देती हैं। इस क्रिया को **फैगोसाइटोसिस** (phagocytosis) कहते हैं।

2.4.10 पैन्क्रियाज या अग्न्याशय (Pancreas)

यकृत की अपेक्षा यह कहीं छोटी ग्रन्थि है। यह ड्यूओडिनम की दो भुजाओं के मध्य में मीसेण्ट्री द्वारा सधी रहती है तथा आकार में अनियमित पत्ती की तरह चपटी, कोमल और गुलाबी रंग की होती है। यह मिक्सड् (mixed) ग्रन्थि है, अर्थात् इसमें दो भिन्न प्रकार के ग्रन्थिल भाग होते हैं– (i) **एक्सोक्राइन भाग** (Exocrine part), यह ग्रन्थि का प्रमुख ऊतक भाग है तथा (ii) **एण्डोक्राइन भाग** (Endocrine part), यह एक्सोक्राइन भाग में जगह–जगह कोशिकाओं के समूह के रूप में होता है। इन कोशिकाओं के समूह को लैंगरहेन्स की द्वीपिकाएँ (Islets of Langerhans) कहते हैं–

(i) **एक्सोक्राइन भाग (Exocrine part)**– यह शाखान्वित तथा पिण्डकों (lobules) के रूप में होता है जिन्हें **पैन्क्रिएटिक पिण्डक** (pancreatic lobules) कहते हैं। इसके पिण्डक, यकृत के पिण्डकों की तरह बिलकुल सटे नहीं रहते, वरन् इनके बीच में संयोजी ऊतक (connective tissue) भरा होता है। प्रत्येक पिण्डक एक नालाकार या फ्लास्कनुमा खोखली रचना होती है जिसकी दीवार इकहरी स्तम्भी, घनाकार (cuboidal) ग्रन्थिल एपिथीलियम कोशाओं से बनी होती है। प्रत्येक पिण्डक की

गुहा एक छोटी नलिका से जुड़ी होती है। ग्रन्थिल कोशिकाओं में बना हुआ **पैन्क्रिएटिक रस** (pancreatic juice) पिण्डक की गुहा में एकत्र होकर पिण्डकों की छोटी–छोटी नलिकाओं में आता है। सारे पिण्डकों की नलिकाएँ आपस में मिलकर एक बड़ी **पैन्क्रिएटिक डक्ट** (pancreatic duct) बनाती हैं जो ड्यूओडिनम की दूरस्थ भुजा में खुलती हैं। इसके छिद्र पर एक स्फिंक्टर पेशी होती है जिसे ओडाई का स्फिंक्टर (sphincter of odi) कहते हैं।

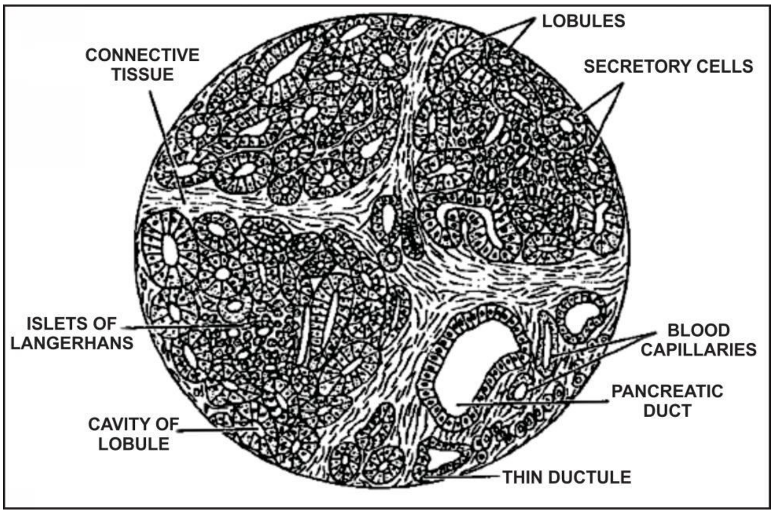

चित्र क्र. 2.60: T. S. of Pancreas of Lepus or Rabbit

(ii) एण्डोक्राइन भाग (Endocrine part)– पैन्क्रिएटिक पिण्डों (pancreatic lobules) के बीच जहाँ–तहाँ पर विशेष कोशिकाओं के सघन, गोल या अण्डाकार समूह स्थित रहते हैं जिनको लैंगरहैन्स के समूह या **द्वीपिकाएँ** (Islets of Langerhans) कहते हैं। इनकी संख्या पैन्क्रियाज में 10 लाख से भी अधिक होती है। प्रत्येक द्वीपिका या समूह में रुधिर केशिकाओं का जाल बिछा रहता है तथा द्वीपिका की कोशिकाएँ इन रुधिर केशिकाओं के चारों ओर छोटे–छोटे समूहों या लड़ियों में व्यवस्थित रहती हैं। ये कोशिकाएँ दो प्रकार की होती हैं– एल्फा (alpha- α) तथा बीटा (beta- β) कोशिकाएँ जो क्रमशः ग्लूकैगॉन तथा इन्सुलिन हॉर्मोस का स्रावण करती हैं।

टिप्पणी

सारणी क्र. 2.8: कशेरुकियों की आहार नाल की तुलना (Comparison of Alimentary Canal of Vertebrates)

क्र. No.	लक्षण (Characters)	मत्स्य (Fishes) (e.g. Scoliodon)	उभयचरी (Amphibia) (e.g. Rana)	सरीसृप (Reptilia) (e.g. Uromastyx)	पक्षी (Aves) (e.g. Columba)	स्तनधारी. (Mammalia) (e.g. Oryctolages)
1.	मुख्य भाग (Major Parts)	(i) मुख गुहा (Buccal cavity) (ii) फैरिंक्स (Pharynx) इसोफेगस (Oesophagus) आमाशय (Stomach) आंत (Intestine) क्लोएका (Cloaca)	मत्स्य के समान	मत्स्य के समान	मत्स्य के समान	क्लोएका के अतिरिक्त सभी भाग मत्स्य के समान। क्लोएका अनुपस्थित।
2.	मुँह (Mouth)	सिर के अधर तल पर। छोटा, अर्द्ध–चन्द्राकार (crescentic) या अर्द्ध–अण्डाकार (Semi-oval) तथा जबड़ों से घिरा हुआ।	सिरे पर सिर के अगले किनारे के साथ–साथ बडा, अर्द्ध–वृत्तीय, झिरी जैसा तथा जबड़ों से घिरा हुआ।	उभयचरी के समान	सिरे पर V के आकार का जबड़ों तथा कठोर चोंच द्वारा घिरा हुआ।	सब'टर्मिनल (Sub-terminal) छोटा, अनुप्रस्थ झिरी जैसा जबड़ों से घिरा हुआ।
3.	जबड़े तथा होंठ (Jaws and lips)	निचला जबड़ा (lower jaw) चलायमान, होंठ अनुपस्थित, जबडें काँटेदार त्वचा से ढँके हुए।	निचला जबड़ा चलायमान (movable) होंठ कठोर, अचलायमान (immovable) एवं शल्कहीन	निचला जबड़ा चलायमान होंठ कठोर, अचलायमान, शल्कों से ढँके हुए।	निचला जबड़ा चलायमान होंठ अनुपस्थित, कठोर चोंच मुँह को ढके हुए।	निचला जबड़ा चलायमान होंठ चलायमान, बालयुक्त उपरी होंठ कटा हुआ (cleft) तथा वाइब्रिसी (vibrissae) युक्त।
4.	दाँत (Teeth)	तेज (sharp) होमोडॉण्ट (homodont) दोनों जबड़ों में कई पंक्तियों में पीछे की ओर निर्दिष्ट दाँत उपस्थित। दाँत रूपान्तरित प्लेकॉइड शुल्क (placoid Scales) होते हैं तथा जीवन भर पुराने दाँतो के टूटने के बाद उनके स्थान पर नये दाँत निकल आते है। पॉलीफायोडॉण्ट (polyphydont)	दाँत छोटा, शंक्वाकार, (conical) एक्रोडॉण्ट (acrodont) पॉलीफायोडॉण्ट (polyphyod-ont), होमो–डॉण्ट (homodont) तथा केवल उपरी जबड़े में एक ही पंक्ति में उपस्थित।	दाँत छोटे, शंक्वाकारएक्रो डॉण्ट, तथा प्ल्यूरोडॉण्ट (Pleurodont) दोनों जबड़ों में एक – एक पंक्ति में उपस्थित	छोनों जबड़ों में दाँत पूर्णतः अनुपस्थित।	दाँत अनेक प्रकार के (हैटरोडॉण्ट) (Heterdont) सोकिट (socket) में लगें हुए (थीकोडॉण्ट) (Thecodont), जीवन में दो बार ही निकलते हैं। (डाइ–फायोडॉण्ड) (diphyodont)। दोनों जबड़ों में उपस्थित।
5.	डाइस्टेमा (Diastema)	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	एक दाँत विहीन स्थान इन्सीजर एवं प्रीमोलर दाँतों के बीच स्थित होता है जिसे डाइएस्टमा कहते है।

6.	दंत सूत्र (Dental formula)	प्रदर्शित नहीं।	प्रदर्शित नहीं।	प्रदर्शित नहीं।	प्रदर्शित नहीं	$i\frac{2}{1}, c\frac{0}{0}, Pm\frac{3}{2}, m\frac{3}{2} = 28$
7.	दाँतो के कार्य (Functions of teeth)	शिकार पकड़ना।	शिकार पकड़ना।	शिकार पकड़ना।	–	भोजन पकड़ना, काटना एवं चबाना।
8.	मुख गुहा (Buccal cavity)	गुहीय (spacious) डॉर्सोवैण्ट्रली चपटी (dorsoventrally flattened)	बडी चौडी एवं उथली।	टागे की ओर सँकरी, किन्तु पीछे की ओर चौडी।	सँकरी, तिकोनी जैसी।	कडी एवं गुहीय
9.	वैस्टीब्यूली (Vestibulae)	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	मुँह एक सँकरे स्थान में खुलता हैं जो जबड़ें, होंठ और गालों द्वारा घिरा रहता है। इस स्थान को वैस्टीब्यूली कहते हैं।
10.	पैलेट (Palate)	अनुपस्थित, स्कल (skull) ही मुख गुहा की छत बनाता है।	मत्स्य की भाँति	छिपकलियों एवं साँपों में अनुपस्थित किन्तु मिथ्या पैलेट (psedo-palate) क्रोको डिलियन्स में उपस्थित।	अपूर्ण, लेट्रल फोल्ड्स द्वार निर्मित किन्तु ये मोड मध्य में एक–दूसरे से मिलते नहीं हैं।	एक द्वितीयक (secondary palate) पैलेट पाया जाता है जो मुख गुहा की छत बनाता है।
11.	जीभ (Tongue)	छोटी, ग्रन्थिहीन, नॉन–मस्क्यूलर (non-muscular), नॉन–प्रोट्रुसिबिल (non-protrusible), एवं आधार पर जुड़ी हुई। भोजन पकड़ने में प्रयोग नही की जाती। स्वाद कलिकाएँ (taste buds) अनुपस्थित	बडी, माँसल एव चिपचिपी। अगली सिरे पर जुड़ी हुई। पिछला सिरा स्वतन्त्र, द्विशाखित (bifid) अत्यधिक प्रोट्रुसिबिल (protrusible) तथा शिकार (मच्छर) पकडने में प्रयोग की जाती है। कुछ स्वाद कलिकाएँ उपस्थित।	बडी, लगभग तिकोनी, माँसल ग्रन्थिल (glandular) मिडवैण्ट्रली जुड़ी हुई। अगला सिरा स्वतन्त्र, द्विशाखित एवं प्रोट्रुसिबिल, स्वाद कलिकाओ युक्त महीन पैपिली उपस्थित।	जीभ बडी, सँकरी, लगभग तिकोनी, जुडी हुई व नॉन प्रोट्रुसिबिल, कठोर महीन प्रवर्द्धो से ढकी हुई। कुछ स्वाद कलिकाएँ उपस्थित।	बडी, माँसल, मिडवैण्ट्रल, (mid) (ventrally) जुड़ी हुई। मिडवैण्ड्रल सतह पर गड्ढा उपस्थित। अगला सिरा स्वतन्त्र, गोल एवं प्रोट्रुसिबिल। स्वाद कलिकाएँ युक्त 4 प्रकार के पैपिला उपस्थित।
12.	आन्तरिक नासाछिद्र (Internal-nares)	अनुपस्थित।	छोटे व दो, मुख गुहा की छत में आगे की ओर वोमेराइन (vomerine) दाँतो के निकट खुलते है।	छोटे, दो, गोल, अगले सिरे के निकट मुख गुह की छत में खुलते है।	छोटे झिरी जैसे, मुख गुहा में पिछले सिरे पर या फैरिंक्स में खुलते है।	मुख गुहा में नहीं खुलते किन्तु फैरिंक्स (Pharynx) की छत में या मुख गुहा के पिछले भाग में खुलते है।

टिप्पणी

13.	फैरिंक्स (Pharynx)	मुख गुहा पिछले बड़ें फैरिंक्स मे संलयित हो जाती है।	मुखगुहा बिना किसी चिन्हांकन (demarcat-ion) के छोटे से फैरिंक्स से जुडी रहती है।	मुख गुहा पीछे की ओर एक चौडे फैरिंक्स में संलयित हो जाती है।	मुख गुहा पीछे की ओर फैरिन्जियल गुहा में संलयित हो जाती है।	फैरिंक्स छोटा व सँकरा होता है तथा नेजोफैरिंक्स (nasophar-ynx) ऑरो–फैरिंक्स (oropharynx)
14.	गिल स्लिट्स (Gillslits)	फैरिन्जियल भित्ति की प्रत्येक पार्श्व ओर में एक छिद्र जैसा स्पाइरेकिल (spiracle) तथा पाँच वर्टीकल गिल (vertical gill slits) स्लिट्स पायी जाती है।	स्पाइरेकिल एवं गिल स्लिट्स अनुपस्थित।	उभयचरी के समान।	उभयचरी के समान।	उभयचरी के समान।
15.	युस्टेकियन नलिका (Eustachian tube)	अनुपस्थित।	दोनों पार्श्वों में जबड़ों के कोण के निकट एक–एक चौडी यूस्टेकियन ओपनिंग पायी जाती है।	छत के दोनों पार्श्वों में एक एक यूस्टेकियन ट्यूब की ओपनिंग पायी जाती है।	छत के मध्य में आन्तरिक नासाछिद्रों के पीछे एक यूस्टे–कियन ओपनिंग पायी जाती है।	नैजो–फैरिन्जियल भित्ति के पार्श्वो में एक–एक अण्डाकार ओपनिंग ऑफ यूस्ट–कियन ट्यूब पायी जाती है।
16.	ग्लॉटिस (Glottis)	अनुपस्थित।	मुख गुहा के फर्श पर मध्य में एक झिरी जैसी ओपनिंग या ग्लॉटिस पायी जाती है जोकि लैरिन्गो–ट्रैकियत चैम्बर (laryngotra-cheal chamber) में खुलती है। अनुपस्थित	फर्श पर उपस्थित झिरी जैसी ग्लॉटिस ट्रैकिया में खुलती है।	फैरिंक्स के फर्श पर अण्डाकार ग्लॉटिस पायी जाती है जिसमें होंठ भी होते है।।	लैरिन्गो–फैरिंक्स के फर्श पर मध्य में उर्ध्व झिरी जैसी ग्लॉटिस पायी जाती है जोकि लैरिंक्स (larynx) से जुडी रहती है।
17.	ऐपीग्लॉटिस (Epiglottis)	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	एक दो पिण्ड वाला कार्टिलेजिनस फ्लेप ग्लॉटिस के उपर पाया जाता है जो भोजन को ग्लॉटिस (Glottis) में जाने से रोकता है।
18.	अन्य बक्को फैरिन्जियल संरचनाएँ (Other buccophar-yngeal structures)	फैरिंक्स की म्यूकस लाइनिंग में डर्मल डैण्टिकिल्स (dermal denticles) पाये जाते है।	नर मेंढक में दोनों पार्श्व छोरों पर जबड़ों के कोण (jaw angle) के निकट फैरिंक्स के फर्श में ओपनिंग ऑफ	फैरिंक्स की म्यूकस लाइनिंग (mucous lining) खींचे जा सकने योग्य लम्बवत् मोड़ में पायी जाती है।	नेजल चेम्बर (nasal chamber) आन्तरिक नासाछिद्रों (Internal nares) के द्वारा	नेजल चेम्बर आन्तरिक नासाछिद्र (internal nares) के द्वारा लैरिन्गो फैरिंक्स (lyningo-

			वोकल सैक (opening of vocal sac) पाये जाते है। मुख गुहा की छत पर आई बाल्स (eye balls) के उभार पाये जाते है।		फैरिंक्स की छत में खुलता है।	pharynx) की छत में खुलते है।
19.	इसोफेगस (Oeso-phagus)	छोटी, चौडी, मॉंसल भित्ति वाली नलिका जिसमें लम्बवत् म्यूकस के मोड़ (longitudinal mucous folds) पाये जाते है और यह कार्डियक स्टमक में खुलती है। इसोफेगस एवं कार्डियक स्टमक के जोड़ पर इसो फैजियल वाल्व (oesophageal valve) या स्फिंक्टर पाया जाता है।	छोटी, चौडी, मॉंसल, म्यूकस के लम्बवत् मोड़ (longitu-dinal folds of mucous) सहित, अत्यधिक खींचे जा सकने योग्य (Highly distensible) तथा फैरिंक्स एवं आमाशय से स्पष्ट रूप से पृथक् नहीं।	लम्बी, सॅकरी, मॉंसल, म्यूकस के लम्बवत् मोड़ जा सकने योग्य (highly distensible) क्रॉप रहित।	लम्बी, चौड़ी, मॉंसल मोटी भित्ति वाली तथा खींचे जा सकने योग्य। स्टर्नम (sternum) के सामने इसका मध्य भाग बडा, दो पिण्ड युक्त (bilobed) पतली भित्ति वाला, तन्य क्रॉप (crop) बनाता है।	लम्बी, सॅकरी, मॉंसल, तन्य क्रॉप रहित, समान चौडाई की नलिका जो कि आमाशय में खुलती है।
20.	आमाशय (Stomach)	बड़ा, मॉंसल 'U' व 'S' या के आकार का लम्बे, चौड़े, प्रोक्सिमल (proximal) कार्डियक स्टमक (cardiac stomach) एवं छोटे, सॅंकरे डिस्टल (Distal) पायलोरिक स्टमक (pyloric stomach) में विभक्त। स्टमक के दोनों भाग एक ब्लाइण्ड सैक (blind sac) एवं स्फिक्टर वाल्स (sphincter valve) द्वारा पृथकता लम्बवत् म्यूकस (longitudinal mucous folds) मोड़ कार्डियक भाग में भलीभॉंति विकसित।	बड़ा, चौड़ा, वक्राकार, मॉसल तथा देहगुहा में बायीं ओर स्थित आमाशय का अगला कार्डियक एवं पिछला पायलोरिक भाग बाहयतः चिन्हित नहीं। ब्लाइण्ड सैक (blind sac) एवं कार्डियक वाल्स (cardisc valve) अनुपस्थित।	आमाशय लम्बा, नलिका कार (tubular) या तर्कुरूप (spindle-shaped) देहगुहा में बायीं ओर स्थित। कार्डियक एवं पायलोरिक भाग बाहयतः अस्पष्ट। लम्बवत् म्यूकस मोड़ कार्डियक स्टमक में भलीभॉंति विकसित।	आमाशय छोटा तथा अगले प्रोवैण्ट्रीकुलस (proventri culus) एवं पिछले गिजर्ड में विभक्त। प्रोवेण्ट्री कुलस सॅकरा एवं ग्रन्थिल (glandulaf) होता है तथा गिजर्ड (gizzard) मोटी व कठोर एपिथीलियम से आस्तरित होता है।	आमाशय बड़ा, सेम के बीज के आकार का देहगुहा में शरीर के बायीं ओर अनुप्रस्थ रूप में स्थित होता है। आमाशय अग्र कार्डियक, (cardiac) मध्य फंडिक (fundic) एवं पश्च पायलोरिक भागों में विभक्त रहता है।
21.	बर्सा एण्टीना (Bursa entiana)	पायलोरिक स्टमक पायलोरिक वाल्व से होकर एक छोटे गोलाकार, मोटी भित्ति वाले मॉंसल कोष में खुलता है जिसे बर्सा एण्टिएना कहते हैं।	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित

22.	गिजर्ड (Gizzard)	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	उपस्थित। इसकी गुहा में भोजन पीसने हेतु चमकिले पत्थर (pebbles) एवं कंकड उपस्थित जोकि भोजन को पीसने में मदद करते है।	अनुपस्थित
23.	आंत (Intestine)	छोटी, सीधी एवं चौडी। छोटी एवं बड़ी आंत में विभक्त नहीं।	लम्बी, कुण्डलित एवं सँकरी नलिका। छोटी एवं बड़ी आंत में विभक्त	उभयचरी जैसी।	उभयचरी जैसी।	उभयचरी जैसी।
24.	छोटी आंत (Small intestine)	बाहयतः ड्यूओडिनम एवं छोटी आंत में भिन्नित नहीं।	ड्यूओडिनम एवं इलियम भलीभाँति भिन्नित।	उभयचरी के समान।	उभयचरी के समान।	उभयचरी के समान।
25.	ड्यूओडिनम (Duodenum)	अनुपस्थित	सीधी नलिका जो 'U' आमाशय के साथ जैसी संरचना बनाती है। एक कॉमन हीपैटोपैन – न्क्रियाटिक (Common hepatopancr-eatic) डक्ट द्वारा पित्त (Bile) एवं पैन्क्रिएटिक रस इसमें लाया जाता है।	सीधी नलिका जिसमें पित्त एवं पैन्क्रिएटिक रस अलग–अलग नलिकाओं द्वारा आते है।	'U' के आकार की नलिकाएँ एवं तीन पैन्क्रि–एटिक नलिकाएँ खुलती हैं।	पृथक 'U' के आकार का लूप (Loop) जिसमें एक एक पित्त एवं पैन्क्रिएटिक नलिका खुलती है।
26.	इलियम (Ileum)	भिन्नित नहीं	छोटी एवं कुण्डलित	उभयचरी के समान	लम्बी और कुण्डलित	अत्यधिक लम्बी एवं कुण्डलित
27.	वाल्व एवं विलाई (Valves and villi)	आंत की म्यूकस लाइनिंग लम्बवत् स्क्रोल या स्पाइरल वाल्स (longitudinal scroll or spiral valve) के रूप में जुड़ी हुई।	म्यूकस लाइनिंग अनेक लम्बवत् मोड़ बनाती है, किन्तु स्पाइल वाल्व एवं विलाई अनुपस्थित होती है।	लम्बवत् मोड़ पाये जाते है, किन्तु वाल्व एवं विलाई अनुपस्थित होते है।	आन्तरिक सतह पर अनेक अंगुली जैसे प्रवर्द्ध या विलाई (villi) पायी जाती है। स्पाइरल वाल्व अनुपस्थित।	आन्तरिक सतह पर अनेक भली भाँति विकसित विलाई पायी जाती है। स्पाइरल वाल्व अनुपस्थित।

28.	सैकुलस रोटेण्डस (sacculus rotundus)	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	इलियम का डिस्टल सिरा (distal end) फैला हुआ सैकुलस रोटण्डस बनाता है।
29.	सीकम (caecum)	अनुपस्थित	अनुपस्थित	छोटी एवं बड़ी आँत के मध्य एक बड़ा सीकम एवं इलियो–कोलिक वाल्व (ileocolic valve) पाया जाता है।	छोटी एवं बड़ी आंत के जोड़ पर एक जोड़ा छोटे शंक्वाकार रेक्टल या कोलिक सीका (rectal or colicarea) पाये जाते है।	एक बड़ा, पतली भित्ति वाला, स्पाइरली बना हुआ सीकम पाया जाता है जिसमें सैकुलस इलियो–सीकल वाल्स (ileocaecal valve) के द्वारा खुलता है।
30.	वर्मीफॉर्म अपैण्डिक्स (Vermiform appendix)	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित	डिस्टल सिरे पर सीकम बंद वर्मीफार्म अपैण्डिक्स के रूप में पाया जाता है।
31.	बड़ी आंत (Large intestine)	आंत का अन्तिम भाग सँकरा व छोटा मलाशय (rectum) बनाता है जो क्लोएका में खुलता है।	इसका मलाशय छोटा किन्तु चौड़ा होता है तथा वह क्लोएका में खुलता है।	छोटी होती हैं तथा इसका अगला सिरा पतली भित्तियों वाला सँकरा कोलन (colon) एवं पिछला सिरो मोटी भित्तियों वाला रैक्टम (Rectum) बनाता है जोकि क्लोएका में खुलता है।	बड़ी आंत छोटी किन्तु चौडी रैक्टम rectum बनाती है जोकि क्लोएका में खुलता है।	बड़ी आंत अत्याधिक लम्बी होती है जिसका अगला सिरा सैक्यूलेटैड कोलन (sacculated colon) तथा पिछला सिरा दानेदार रैक्टम बनाता है।
32.	रैक्टल ग्रन्थि (Rectal gland)	एक नलिकाकार रैक्टल ग्रन्थि पृष्ठ तल पर रैक्टम में खुलती है। इसका कार्य अज्ञात है।	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित
33.	क्लोएका एवं, ऐब्डोमिनल पोर्स (Cloaca and abdominal pores)	रैक्टम पीछे की ओर साधारण क्लोएका में मलद्वार द्वारा (anus) खुलता है जिस पर एनल स्फिंक्टर (anal sphincter) लगे रहते है। इसमें यूरीनोजिना–इटल छिद्र (urinogenital apertures) और एक जोड़ा एब्डोमिनल छिद्र भी पाये जाते है।	रैक्टम मलद्वार द्वारा एक कोष्ठीय क्लोएका में खुलता है। मलद्वारा पर एनल स्फिंक्टर उपस्थित। एब्डोमिनल छिद्र अनुपस्थित।	क्लोएका तीन कोष्ठों कॉप्रोडियम यूरोडियम एवं प्रोक्टोडियम में विभक्त रहता है। मलद्वार कॉप्रोडियम में खुलता है। एनल स्फिंक्टर पाया जाता है। एब्डोमिनल छिद्र अनुपस्थित।	सरीसृप की भाँति।	क्लोएका अनुपस्थित। रैक्टम सीधा शरीर के बाहर खुलता है। एनल स्फिंक्टर उपस्थित। एब्डोमिनल पोर्स अनुपस्थित।

टिप्पणी

34.	बर्सा फैब्रिसाई (Bursa fabricii)	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	नवजात पक्षियों में प्रोक्टो–डियम की पृष्ठ सतह से लगा हुआ एक बंद थैला पाया जाता है जिसे बर्सा फैब्रिसाई कहते है।	अनुपस्थित।
35.	क्लोएकल छिद्र (Cloacal aperture)	क्लाएका मिडवैण्ट्रल उर्ध्व झिरी (mid-ventral longitudinal slit) द्वारा पैल्विक पखनों (pelvic fins) के मध्य खुलता है।	क्लोएका ट्रंक के पश्च पादों के मध्य एक वत्तीय (circular) क्लोएकल छिद्र द्वारा खुलता है।	क्लोएकल छिद्र मिडवैण्ट्रली अनुप्रस्थ झिरी के रूप में पूँछ के आधार पर खुलता है।	क्लोएकल छिद्र मिडवैण्ट्रली अनुप्रस्थ झिरी के रूप में पूँछ के आधार पर खुलता है तथा इसके चारों ओर होट भी पाये जाते है।	क्लोएकल छिद्र अनुपस्थित।

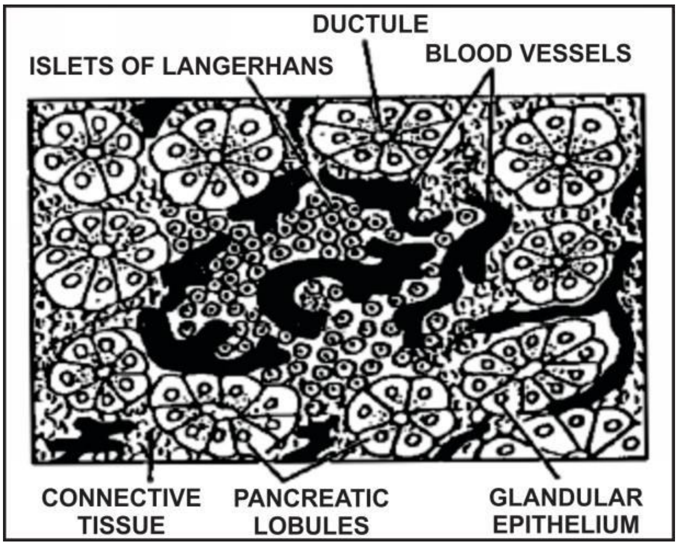

चित्र क्र. 2.61: A Magnified Part of चित्र क्र. 2.60 to Show an Islet of Langerhans

लैंगरहैन्स की द्वीपिकाओं में वैज्ञानिकों ने हाल ही में एक तीसरी प्रकार की कोशिकाओं का पता लगाया है जिन्हें **डेल्टा कोशिकाएँ** (delta cells) कहते हैं। ये कोशिकाएँ सम्भवतः **पैन्क्रिएटिक गैस्ट्रिन** (pancreatic gastrin) तथा **सीरोटोनिन** (serotonin) हॉर्मोन्स का स्रावण करती हैं जिनका कार्य अभी अनिश्चित है।

टिप्पणी

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

31. कबूतर के लिए दूध उत्पन्न होता है–
    (अ) मादा कबूतर के क्रॉप में
    (ब) नर कबूतर के क्रॉप में
    (स) दोनों के क्रॉप में
    (द) किसी के क्रॉप में नहीं।

32. कबूतर दाना चुगते समय–
    (अ) उड़ता है
    (ब) दोनो टाँगो पर तेज चलता है
    (स) फुदकता है
    (द) धीरे चलता है।

33. यूरोमैस्टिक्स में गाल ब्लैडर पाया जाता है–
    (अ) दायें लिवर लोब में
    (ब) बायें लिवर लोब में
    (स) दोनों के बीच में
    (द) तीसरे लोब में।

34. स्क्रॉल वाल्व पाया जाता है–
    (अ) स्कॉलओडॉन में (ब) मेंढक में
    (स) यूरोमैस्टिक्स में (द) कबूतर में

35. खरगोश के दाँत हैं–
    (अ) प्ल्यूरोडॉण्ट (ब) थीकोडॉण्ट
    (स) एक्रोडॉण्ट (द) लीफोडॉण्ट।

2.5 श्वसन तन्त्र का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Account of Respiration)

2.5.1 कशेरुकों में श्वसन तन्त्र (Respiratory System)

श्वसन (Respiration) एक विधि होती है जिसके द्वारा गैसों का विनिमय या गैसों का आदान–प्रदान प्राणियों के शरीर में कार्बन पदार्थों के ऑक्सीकरण के कारण होता है। इस विधि के द्वारा ऑक्सीजन को ग्रहण किया जाता है और कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकाली जाती है। कार्यिकी की दृष्टि से प्राणियों में दो प्रकार का श्वसन पाया जाता है– **बाह्य** (External) एवं **आन्तरिक** (Internal) । प्राणी के रक्त (Blood) और बाह्य वातावरण के बीच गैसों का विनिमय (ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड) **बाह्य श्वसन** (External respiration) कहलाता है। इस गैस विनिमय के हेतु प्राणी या तो त्वचा (Skin) का उपयोग करता है या फिर ऐसे विशेष अंग– **फेफड़े** (Lungs) एवं **गिल्स** (Gills) का जिसमें रक्त केशिकाओं (Blood capillaries) का जाल फैला होता है। गैसों का विनिमय, विसरण के नियमों के अनुसार होता है, गैस अर्धपारगम्य झिल्ली (Semipermeable membrane) के द्वारा पृथक् रहती है।

आन्तरिक श्वसन (Internal respiration) के अन्तर्गत **ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड** का रक्त केशिकाओं (Blood capillaries) **एवं ऊतकों** (Tissues) **के बीच विनिमय होता है।**

बाह्य श्वसन (External respiration) हेतु तीन दशाएँ होना आवश्यक है–

(अ) **पतली रक्त केशिकाओं (Blood capillaries)**– तथा जल से युक्त बड़ी रक्त वाहिकामय (Vascularised) श्वसन सतह होनी चाहिए, जिसमें से ऑक्सीजन ली जा सके और CO_2 को बाहर निकाला जा सके। इस प्रकार की सतह गिल्स (Gills) एवं फेफड़ों के द्वारा प्रदाय की जाती है।

(ब) **श्वसन सतह का सम्पर्क एक ऑक्सीजन युक्त वातावरण (Respiratory surface in contact with oxygenic environment)**– वायु एवं जल से सदैव होना चाहिए। इसी के साथ श्वसन सतहों की झिल्ली (Membrane) पतली एवं सदैव नम होनी चाहिए जिसके कारण O_2 श्वसन सतह पर घुलाई जा सके। यह स्थिति गिल्स एवं फेफड़ों में मिलती है। गिल्स हमेशा पानी के सम्पर्क में रहते हैं या जल में डूबे रहते हैं, फेफड़ों में श्लेष्म (Mucus) का अस्तर (Lining) होता है जिसमें रक्त के पहुँचने के पूर्व ही O_2 घुल जाती है।

(स) **श्वसन वर्णक (Respiratory pigment)**– का होना आवश्यक है, जो O_2 को प्राप्त कर सके। इसके अतिरिक्त श्वसन माध्यम (Respiratory medium) का होना आवश्यक है जिसके द्वारा गैसों का विनिमय हो सके। उपर्युक्त सभी दशाएँ कशेरुक प्राणियों के श्वसन तन्त्र के द्वारा पूर्ण की जाती हैं।

आन्तरिक श्वसन (Internal respiration) को **ऊतकीय श्वसन** (Tissue respiration) भी कहते हैं। ऊतकीय श्वसन में कोशिकीय कार्बोहाइड्रेटों (Carbohydrates) का इस प्रकार उपयोग किया जाता है कि ऑक्सीकरण के कारण CO_2 एवं H_2O उत्पन्न होता है और ऊर्जा (Energy) निकलती है। उपर्युक्त सब कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य में पाए जाने वाले **श्वसन एन्जाइमों** (Respiratory enymes) के द्वारा होने वाली रासायनिक क्रियाओं की एक सम्मिश्र श्रृंखला से सम्पन्न होता है। सभी कशेरुक प्राणियों की कोशिकाओं में ATP (ऐडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट = Adenosine triphoshpate) पाया जाता है, जिसमें ऊर्जा संचित रहती है जो चयापचय क्रियाओं के हेतु प्रदाय की जाती है। ऊतकीय श्वसन में ATP के अणु उत्पन्न होते है।

श्वसन क्रिया को सम्पन्न करने के लिए कशेरुक प्राणियों में **दो प्रकार के श्वसन** अंग पाए जाते हैं अर्थात् वह श्वसन अंग जो जलीय जीवन के लिए तथा **थलीय जीवन** एवं **वायवीय जीवन** (Aerial life) के लिए अनुकूलित (Adapted) हों। कार्डेट्स (Chordates) में यह श्वसन अंग अपने अकशेरुक पूर्वजों से आनुवंशिक नहीं हुए हैं बल्कि इन कार्डेट्स प्राणियों ने अपने ही श्वसन अंगों को निर्मित किया है। कशेरुक प्राणियों–निम्न कशेरुकों में **ग्रसनी क्लोम दरार** (Pharyngeal gill slits) **गिल्स** (Gills) में श्वसन अंग होते हैं एवं कुछ विकसित तथा उच्च श्रेणी के कशेरुक प्राणियों में **फेफड़े** (Lungs) श्वसन अंग होते हैं। कुछ प्राणियों में **गिल्स/क्लोम** (Gills) एवं **फेफड़े** (Lungs) दोनों पाए जाते हैं। इन दो मुख्य श्वसन अंगों के अतिरिक्त कुछ कशेरुक प्राणियों में **सहायक श्वसन अंग** (Accessory respiratory organs) भी पाए जाते है। यह सहायक श्वसन अंग–**त्वचा** (Skin), **अतिक्लोम श्वसन अंग** (Extra branchial respiratory organs), **तरण आशय** (Swim bladder), **पीतक कोष** (Yolk sac), **ऐलेण्टायस** (Allantois), **ग्रसनी अन्धवर्ध** (Pharyngeal diverticulum) एवं **पेक्टोरल बहिर्वृद्धियाँ** (Pectoral outgrowths) आदि होते हैं।

2.5.2 गिल्स/क्लोम (Gills)

यह श्वसन अंग जलीय श्वसन अंग हैं, अर्थात् यह श्वसन अंग जल में घुली हुई O_2 को ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं।

गिल्स/क्लोम (Gills) मछलियों एवं ऐम्फिबियन्स (Amphibians) में पाए जाते हैं। गिल्स, ग्रसनी (Pharynx) के युग्मित, एण्डोडर्मिक अन्धवर्ध (Endodermic diverticula) की श्रृंखला के रूप में विकसित होती हैं। भ्रूणीय परिवर्धन के समय ग्रसनी की पार्श्व भित्तियों से एक श्रृंखला में 6 या अधिक द्विपार्श्विक बहिर्वलन उत्पन्न होते हैं। इनको **ग्रसनी प्रकोष्ठ** (Gill pouches) कहते हैं। दोहरी झिल्ली के लुप्त हो जाने से, गिल प्रकोष्ठ क्लोम दरारों (Gill slits) में परिवर्तित हो जाते हैं। क्लोम दरारों के बीच के क्षेत्र से ब्रेन्कियल चापें (Branchial arches) विकसित

टिप्पणी

होती हैं। प्रत्येक चाप में ग्रसनीय एण्डोडर्म अस्तर एवं बाह्य एक्टोडर्मल आवरण पाया जाता है। प्रत्येक चाप का शंकु (Cone) मीसोडर्मल (Mesodermal) होता है। श्वसन पथ के आन्तरिक अस्तर में लैमिली/फिलामेण्ट्स के रूप में वलन विकसित होते हैं जो अधिक वाहिकामय (Vascularised) होते हैं। इस सम्पूर्ण संरचना को **गिल्स** (Gills) कहते हैं।

गिल्स जो सामान्यतया मछलियों के मुख्य श्वसन अंग हैं तथा कुछ ऐम्फिबियन्स में भी पाए जाते हैं, दो प्रकार के होते हैं–

(अ) बाह्य गिल्स (External gills),

(ब) आन्तरिक गिल्स (Internal gills)

(अ) बाह्य गिल्स (External gills)– इस प्रकार के गिल्स **ऐम्फिबियन्स की लार्वा** अवस्था में पाए जाते हैं। यह गिल्स ग्रसनी चापों (Branchial arches) की बाहरी सतह को ढँकने वाली त्वचा से उत्पन्न होते हैं और एक्टोडर्मी (Ectodermal) आवरण वाले बाह्य गिल्स निर्मित हो जाते हैं। यह गिल्स विशाखित, सूत्राकार (Filamentous) गुच्छों के रूप में शरीर की बाहरी सतह पर शीर्ष और धड़ के मिलने के स्थान के पार्श्व में स्थित होते हैं और श्वसनीय (respiratory) होते हैं। इस प्रकार के गिल्स सामान्यतया भ्रूणीय अवस्था में ही पाए जाते हैं। इस कारण इनको **भ्रूणीय गिल्स** (Embryonic gills) भी कहते हैं।

पूँछ युक्त (Tailed) **ऐम्फिबियन्स** में बाह्य गिल्स जीवनपर्यन्त पाए जाते हैं। यह सूत्रों के गुच्छों के रूप में III, IV एवं V ग्रसनी चाप (Branchial arch) पर विकसित होते हैं। इन गिल्स पर **पक्ष्माभी एपीथीलियम** (Ciliated epithelium) का आवरण होता है। यह गिल्स क्लोम पेशियों (Branchial muscles) के द्वारा गतिशील होते हैं। **प्रोटीयस** (Proteus), **नेक्ट्यूरस** (Necturus) एवं **साइरन** (Siren) ऐम्फिबियन्स में तीन जोड़ी बाह्य गिल्स सम्पूर्ण पाए जाते हैं। **ऐम्बाइस्टोमा** (Ambyostoma) के लार्वा – **ऐक्सोलोटल** (Axolotl larva) में तीन जोड़ी बाह्य गिल्स पाए जाते हैं।

ऐन्यूरा (Anura) के भ्रूण– टैडपोल लार्वा (Tadpole larva) में बाह्य गिल्स पाए जाते हैं, इनका सीधा सम्बन्ध जल से होता है, इनकी सतही एपीथीलियम के द्वारा गैसों का आदान–प्रदान होता है। कुछ समय त्पश्चात् एक **प्रच्छद** या **आपरकुलम** (Operculum) बन जाता है जो बाह्य गिल्स को ढँक लेता है। इस कारण गिल्स एक्टोडर्मी (Ectodermal) आस्तर वाले **प्राच्छद कक्ष** (Opercular chamber) के अंदर बंद हो जाते हैं। यह बाह्य गिल्स शीघ्र ही विघटित हो जाते हैं। आन्तरिक गिल्स का एक सैट उन्हीं ग्रसनी चापों से बन जाता है।

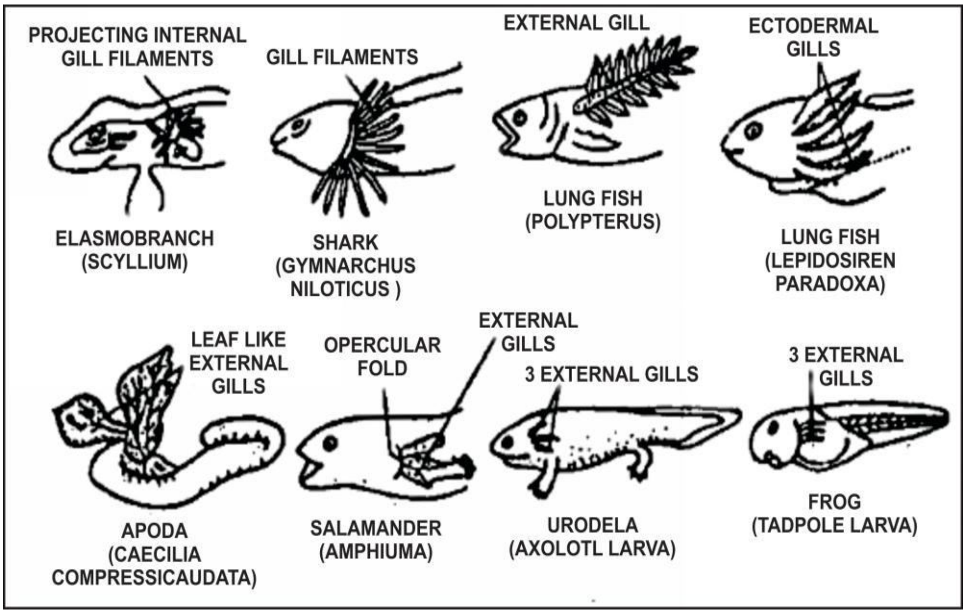

चित्र क्र. 2.62: Respiratory System : External Gills in Vertebrate Animals

पूँछ वाले एवं पूँछ विहीन ऐम्फिबियन्स में कायान्तरण के समय बाह्य गिल्स समाप्त हो जाते हैं।

बाह्य गिल्स (External gills) जिनको **भ्रूणीय गिल्स** भी कहते हैं, **लैम्प्रे** (Lamprey) के भ्रूणों/लार्वा में, कुछ मछलियों– **पॉलिप्टेरस** (Polypterus), **लेपिडोसाइरन** (Lepidosiren) एवं कुछ **टीलियोस्ट** (Teleost) मछलियों के **भ्रूणों** में बाह्य गिल्स पाए जाते हैं।

फुफ्फसीय मछलियों (Lung fishes) **लेपिडोसाइरन** (Lepidosiren) एवं **प्रोटोप्टेरस** (Protopterus) में चार जोड़ी पिच्छाकार (Pinnate) बाह्य गिल्स पाए जाते हैं। **प्रोटोप्टेरस** (Protopterus) मछली में एक जोड़ी भ्रूणीय गिल्स, कायान्तरण के समय लुप्त हो जाते हैं। शेष तीन जोड़ी गिल्स ऱ्हासित रूप में जीवन पर्यन्त उपस्थित रहते हैं।

इलास्मोब्रेन्क मछलियों की लार्वल अवस्था में **बाह्य गिल्स** सूत्राकार (Filamentous) होते है जो ग्रसनी चापों से समेकित होते हैं। यह जल के सीधे सम्पर्क में रहते हैं। बाह्य झिल्लीमय सतह के द्वारा गैसों का आदान–प्रदान होता है। कुछ अस्थिल मछलियों के लार्वा में भी बाह्य गिल्स, सूत्राकार रूप में पाए जाते हैं। इलास्मोबैंन्क एवं अस्थिल मछलियों में कायान्तरण के पश्चात् बाह्य गिल्स लुप्त हो जाते हैं और आन्तरिक गिल्स नामक गिल्स का एक नया सैट इन्हीं ग्रसनी चापों पर निर्मित हो जाता है।

टिप्पणी

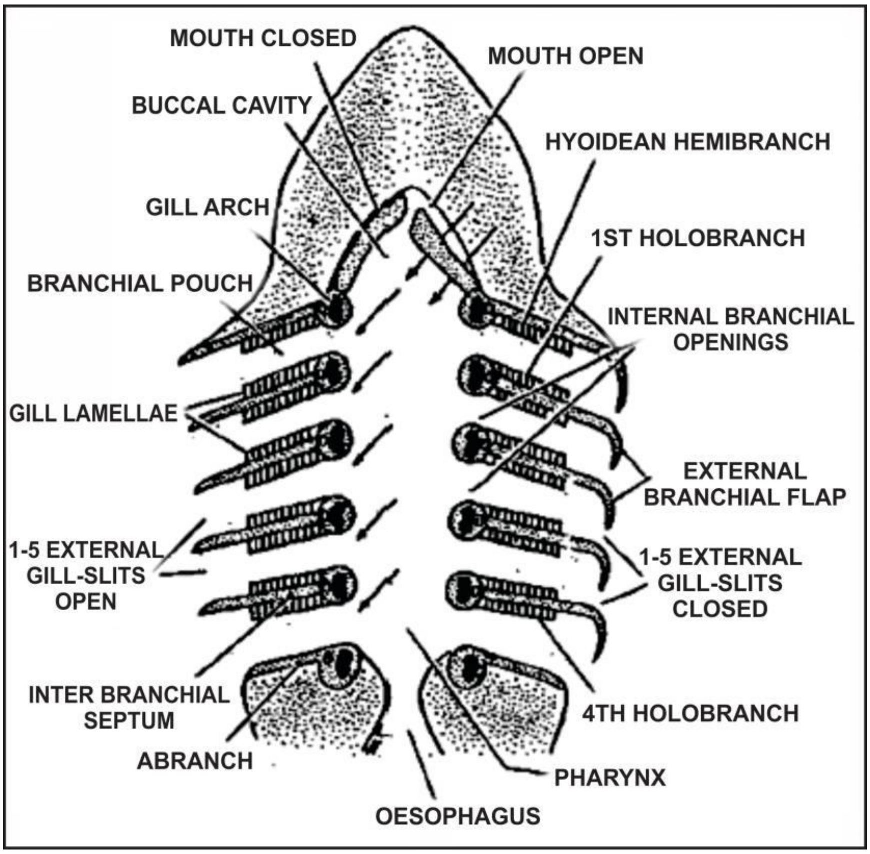

चित्र क्र. 2.63: **Respiratory System : Mechanism in Fishes**

(ब) आन्तरिक गिल्स (Internal gills)– ग्रसनी (Pharynx) की युग्मित एण्डोडर्मी बहिर्वृद्धियाँ (Endodermal outgrowths/evagination) सतह की एक्टोडर्म की अन्तर्वृद्धियों (Ectodermal invagination) से जुड़ने से **ग्रसनी कोष्ठ** के रूप में होती है। इनको **गिल कोष्ठ** (Gill pouch) कहते हैं। यह कोष्ठ अंदर की तरफ से ग्रसनी में खुलता है तथा दूसरे छिद्र के द्वारा बाहर की ओर खुलता है, इसको **क्लोम दरार/गिल दरार** (Gill cleft) कहते हैं। इन क्लोम दरारों के अंदर गिल्स (Gills) सूत्रों के रूप में (Filaments) होते हैं। प्रत्येक दो क्लोम दरारों के मध्य एक मीजोडर्मल (Mesodermal) **अन्तरा गिल पट** (Inter gill septum) होता है। इसकी आवरण एपीथीलियम सतह अनेक **गिल सूत्रों** (Gill filaments) या क्लोम पटलिकाओं के रूप में स्थित होती है। यह गिल सूत्र अत्यधिक रूप में स्थित होती है। यह गिल सूत्र अत्यधिक रूप से वाहिकामय (Vascularised) होती है। गिल सूत्र (Gill filaments) अन्तरा गिल पट के एक ओर या दोनों ओर पाए जाते हैं। अन्तरागिल पट के अंदर की ओर एक **आलम्बी ग्रसनी चाप** होती है। **उदाहरण– साइक्लोस्टोम्स** (Cyclostomes) एवं **मछलियाँ** (Fishes) इन प्राणियों में गिल्स के द्वारा गैसों का आदान–प्रदान होता है। अन्तरा गिल पट (Inter gill septum) के केवल एक तरफ पाए जाने वाले गिल सूत्र (Gill filaments) **आधा गिल/हेमीब्रेन्क** (Hemibranch) बनाते हैं। जब अन्तरा

गिल पट के दोनों ओर गिल सूत्र पाए जाते हैं तो गिल्स को **पूर्ण गिल** (Holobranch) कहते हैं। जब क्लोम दरार की अग्र भित्ति पर अर्ध गिल पाया जाता है उसको अग्र **रन्ध्र अर्धगिल** (Pretrematic hemibranch) कहते हैं और जब अर्धगिल क्लोम दरार की पश्च भित्ति पर पाया जाता है तब उसको पश्च रन्ध्र अर्धगिल (Post trematic hemibranch) कहते हैं।

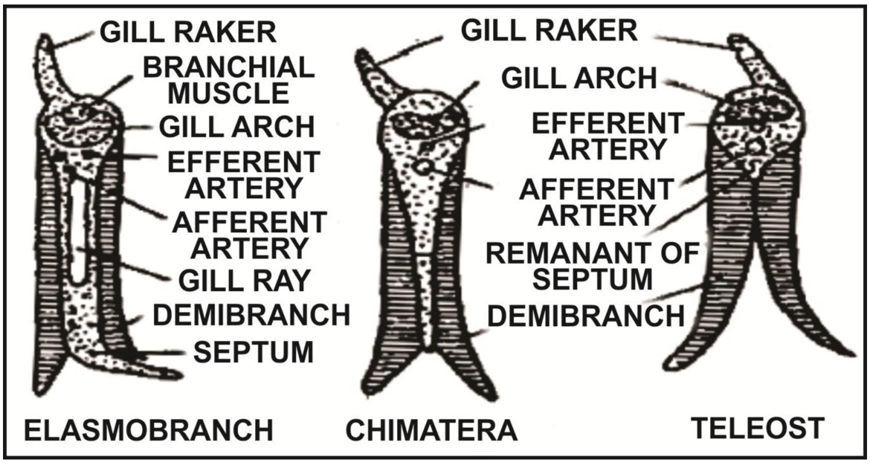

चित्र क्र. 2.64: Respiratory System : Types of Gills in Fishes

मछलियाँ के विभिन्न समूहों में आन्तरिक गिल्स निम्नलिखित प्रकार से पायी जाती हैं–

1. **इलास्मोब्रेन्क (Elasmobranch)**– इन मछलियों में गिल्स, ग्रसनी के पार्श्व में स्थित होते हैं, परन्तु **स्केट्स** (Skates) एवं **रेज** (Rays) में गिल्स, अधर सतह (Ventral side) पर स्थित होते हैं। इन मछलियों में **प्राच्छद / आपरकुलम** (Operculum) अनुपस्थित होता है। इन मछलियों में गिल्स स्वतन्त्र रूप से बाहर खुलती हैं और एक दूसरे अन्तरा गिल पट द्वारा पृथक् रहती हैं और गिल्स की सुरक्षा भी करती हैं, क्योंकि अन्तरा गिल पट अर्धगिलों के बाहर की ओर भी निकले रहते हैं। प्रत्येक ग्रसनी चाप से अंदर की ओर अंगुली समान प्रवर्ध निकले रहते हैं। इन प्रवर्धों को गिल **रेकर्स** (Gill rakers) कहते हैं। इन गिल रेकर्स के द्वारा भेजन एवं अन्य पदार्थों को गिल दरारों से अंदर प्रवेश करने के लिए रोकते हैं। ग्रसनी चाप से छोटी–छोटी उपास्थिमय **गिल रेज** (Gill rays) की एक पंक्ति निकलती है जो अन्तरा गिल पट को आलम्ब प्रदान करती है।

   इन इलास्मोब्रेन्क मछलियों में प्रथम गिल प्रकोष्ठ (Gill pouch) रूपान्तरित हो जाता है तथा बाहर की ओर एक श्वास **रन्ध्र** (Spiracle) में खुलता है। श्वास रन्ध्र में अल्पविकसित गिल सूत्र (Gill filaments) होते हैं जो श्वसन का कार्य नहीं करते हैं। इस प्रकार के गिल्स को **कूट गिल / स्यूडोगिल्स** (Pseudobranch) कहते हैं। इलास्मोब्रेन्क में 5 जोड़ी क्लोम दरारें होती हैं।

2. **टीलियोस्ट (Teleost)**– या **अस्थिल मछलियों** में 5 जोड़ी क्लोम दरारें होती हैं। इन मछलियों में गिल की संरचना इलास्मोब्रेन्क के समान होती

टिप्पणी

है। इन मछलियों में अन्तरा गिल पट (Inter branchial septum) या तो अल्पविकसित या पूर्णरूप से अनुपस्थित होता है। इलास्मोब्रेन्क मछलियों के गिल्स से अस्थिल मछलियों के गिल्स निम्नलिखित रूप से भिन्न होते हैं–

(a) वास रन्ध्र (Spiracle) अनुपस्थित होता है।

(b) अन्तरा गिल पट या तो अल्पविकसित या अनुपस्थित होता है।

(c) गिल्स के ऊपर एक **प्राच्छद/ढक्कन** (Operculum) होता है। यह हॉयड चाप से बनता है। प्राच्छद क्लोम दरारों को ढँके रहता है और एक प्राच्छद कक्ष को बनाता है। यह प्राच्छ कक्ष एक छिद्र के द्वारा बाहर की ओर खुलतें हैं।

(d) अस्थिल मछलियों में अर्धगिल अनुपस्थित होता है।

3. **फुफ्फुस मछली (Lung fishes)**– फेफड़ों वाली मछलियों में अर्धगिल (Hemibranch) की संख्या में कमी होती है। **लेपिडोसाइरन** (Lepidosiren) में तीन जोड़ी, **निओसेरेटोडस** (Neoceratodus) में चार जोड़ी तथा **प्रोटोप्टेरस** (Protopterus) में दो जोड़ी गिल्स पाए जाते हैं। गिल्स की संरचना इलास्मोब्रेन्क मछलियों के समान होती है। **डिप्नोई** (Dipnoi) में आन्तरिक गिल्स अनुपस्थित होते हैं।

4. **ऐम्फिबियन्स (Amphibians)– सरीसृप प्राणियों में भ्रूणीय विकास** (Embryonic development) के समय **पाँच जोड़ी** ग्रसनी कोष्ठ (Gill pouch) पाए जाते हैं। **पक्षी एवं स्तनी प्राणियों** में **चार जोडी** ग्रसनी कोष्ठ पाए जाते हैं। सरीसृप, **पक्षी** एवं **स्तनी** प्राणियों ऐम्नियोट्स (Amniotes) में प्रथम कोष्ठ मध्य कान एवं यूस्टेशियन नलिका में विभेदित होता है तथा शेष कोष्ठ वयस्क प्राणियों में लुप्त हो जाते हैं। ऐम्नियोट्स प्राणियों के ग्रसनी कोष्ठों पर गिल्स कभी भी विकसित नहीं होती है। ऐम्फिबियन्स में प्रथम एवं अन्तिम ग्रसनी कोष्ठ अन्ध–प्रवर्ध (Diverticulum) के रूप में होते हैं, इन पर **गिल** दरारें/क्लोम दरारें (Gil clefts) कभी भी नहीं बनती हैं, II, III, IV ग्रसनी कोष्ठों की भित्तियों पर छिद्र होते है जो बाहर की ओर खुलते हैं।

ग्रसनी के पश्च भाग में श्वास नलिका/ट्रेकिया के छिद्र घाँटीद्वार (Glottis) होता है। **घाँटीद्वार** से ही श्वास नलिका प्ररम्भ होती है। श्वास नलिका का प्रारम्भिक भाग चौड़ा हो जाता है, इसको **लैरिंग्स** (Larynx) कहते हैं। लैरिंग्स के पीछे के नलाकार भाग को **वायुनलिका/श्वास नलिका/ट्रेकिया** (Trachea) कहते हैं। ट्रेकिया की शाखाएँ फेफड़ो में प्रवेश करती है।

2.5.3 फेफड़े (Lungs)

थलीय कशेरुक प्राणियों के आवश्यक श्वसन अंग फेफड़े होते हैं। फेफड़े अधिक लचीले एवं प्रसारशील होते हैं। फेफड़ों का उद्गम–भ्रूण (Embryo) में ग्रसनी की भित्ति से एक खोखली वृद्धि बाहर की ओर विकसित होती है जिसको फेफड़ा कोष या थैला (Pulmonary sac) कहते हैं। यह पीछे की ओर वृद्धि करता जाता है

और दो भागों में विभाजित (दायें एवं बायें भाग में) हो जाता है। इन विभाजित भागों पर मीजोडर्म एक आवरण बनाती है। इस प्रकार फेफड़े निर्मित होते हैं। फेफड़ों की आन्तरिक **एण्डोडर्मी एपीथीलियम** (Endodermal epithelium) उभरकर कंटकों (Ridges) का जाल (Network) बना लेती है। इस कारण वायु के आदान–प्रदान की क्रिया के हेतु खुली **रक्त वाहिकामय** बन जाती है। रक्त एवं वायु एक पतली झिल्ली के द्वारा पृथक् होते हैं, जिससे वायु का आदान–प्रदान हो सके।

फेफड़ो के विकास में सामान्य भाग **लैरिंग्स** (Larynx) एवं **ट्रेकिया** (Trachea) विकसित होते है। लैरिंग्स ग्लॉटिस (Glottis) या घाँटीद्वार द्वारा ग्रसनी में खुलता है। वायु नलिका/ट्रेकिया (Trachea) पश्च सिरे पर **श्वसनियों** (Bronchi) में विभाजित होती है, एक–एक शाखा प्रत्येक फेफड़े में जाती है। फेफड़े के अंदर प्रत्येक श्वसनी (Bronchi) **श्वसनिकाओं** (Bronchioles) में विभाजित होकर एक विशाल जाल तन्त्र बनाती है। श्वसनिकाएँ श्वसन सतह पर पहुँच अनेक **कूपिकाओं** (Alveoli) को बनाती है। कूपिकाओं की भित्ति पतली एवं रक्त वाहिकामय (Vascularised) होती है। इन कूपिकाओं में गैसों का आदान–प्रदान/विनिमय (Exchange) होता है।

फेफड़ों (Lungs) के उद्गम के बारे में विभिन्न मत हैं। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार एक जोड़ा गिल कोष्ठ (Gill pouch) जो त्वचा तक पहुँचने में असफल रहे, वह फेफड़ों में परिवर्तित हो गए। अन्य वैज्ञानिकों के मतानुसार मछलियों के वाताशय (Air bladder) से फेफड़ों की उत्पत्ति हुई है। कुछ वैज्ञानिकों ने उपर्युक्त मतों को मिलाकर कहा कि वाताशय की उत्पत्ति स्वयं रूपान्तरित गिल कोष्ठों से हुई है। अतः फेफड़ों की उत्पत्ति गिल कोष्ठों से मान्य की जाती है। विभिन्न कशेरुक समूह के प्राणियों में फेफड़े विभिन्नता को दर्शाते हैं।

डिप्नोई (Dipnoi)– इन मछलियों में फेफड़े पाए जाते हैं, इसी कारण इन मछलियों को फुफ्फुसीय मछली कहते हैं। **न्यूसेरेटोडस** (Neoceratodus) में केवल एक फेफड़ा पाया जाता है। **प्रोटोप्टेरस** (Protopterus) एवं **लेपिडोसाइरन** में एक जोड़ी फेफड़ें पाए जाते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से यह सामान्य संरचना होती है जिसमें पट एवं **क्रॉस पट** (Septa and Cross septa) पाए जाते हैं। इन फेफड़ों का उपयोग तब किया जाता है जब पानी गन्दा हो और गिल्स श्वसन क्रिया करने में अनुपयोगी हों, गैसों का आदान–प्रदान नहीं कर सकें।

टिप्पणी

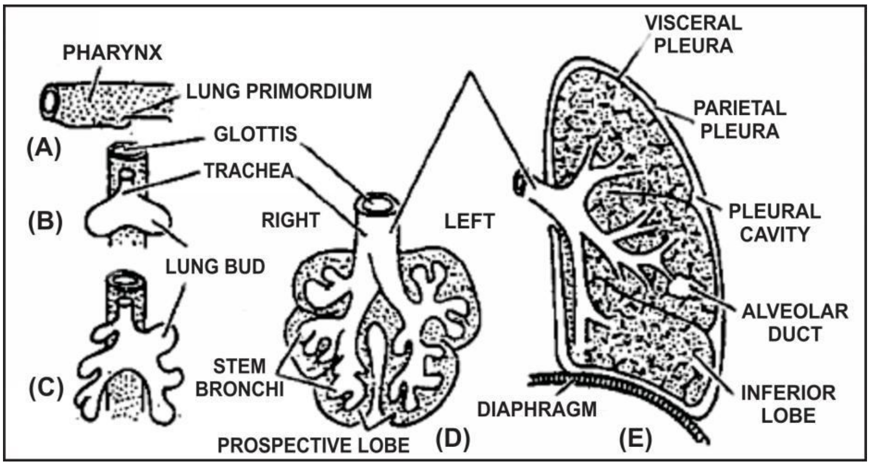

चित्र क्र. 2.65: **Respiratory System : Internal Structure of Lungs of Tetrapoda**

2.5.4 प्रतिनिधि कशेरुकों का श्वसन तन्त्र (Respiratory System of Representative Vertebrates)

1. मछलियाँ (Fishes)

श्वसन तन्त्र (Respiratory System)– स्कॉलियोडॉन श्वसन के लिए पानी में घुलनशील ऑक्सीजन पर निर्भर रहती है, इस कारण ग्रसनी दरारें (Visceral clefts) ब्रैन्कियल/क्लोम दरारों (Branchial/gill clefts) में रूपान्तरित होती है, जिसमें क्लोम/गिल्स (Gills) स्थित होते हैं। पानी में घुलनशील ऑक्सीजन क्लोम दरारों के क्लोम/गिल्स में परिभ्रमित रक्त द्वारा अवशोषित हो जाती है और रक्त में घुली हुई कार्बन डाइऑक्साइड पानी में छोड़ दी जाती है। पानी मुख गुहा, ग्रसनी एवं गिलकोष्ठों (Gill pouches) में से होता हुआ शरीर से बाहर निकल जाता है। परिभ्रमण में जल गिल कोष्ठों में स्थित क्लोम/गिल्स को नम और धोता चला जाता हे। स्कॉलियोडॉन में श्वसन जलीय (Aquatic) होता है।

श्वसन अंग (Respiratory organs)– स्कॉलियोडॉन में श्वसन अंग, ग्रसनी की पार्श्व भित्ति में स्थित **पाँच** जोड़ी पार्श्व **क्लोम/गिल कोष्ठ** (Gill pouches) होते हैं। यह पार्श्व में एक क्रमबद्ध श्रृंखला के रूप में स्थित होते हैं। प्रत्येक क्लोम कोष्ठ अग्र–पृष्ठीय रूप (Antero-dorsally) में पिचका होता है और **आन्तरिक क्लोम छिद्र** (Internal branchial aperture) द्वारा ग्रसनी की गुहिका में एवं एक संकीर्ण **बाहरी क्लोम छिद्र** (External branchial aperture) द्वारा शरीर के बाहर की ओर खुलता है। बाहरी क्लोम छिद्र को सामान्य रूप से **क्लोम दरार** या **गिल छिद्र** (Gill clefts/gill slits) कहते हैं। प्रत्येक दो क्लोम कोष्ठ एक पेशीय तन्तु के **अन्तरा क्लोम पट** (Inter-branchial septum) के द्वारा पृथक् रहते हैं। अन्तरा क्लोम पट बाहर क्लोम पटलिकाओं के काफी आगे की ओर निकल जाते हैं और पीछे की ओर मुड़कर पटलिकाओं (Lamellae) की रक्षा भी करते हैं। प्रत्येक पट का आन्तरिक या ग्रसनी भाग ब्रैन्कियल चाप या क्लोम छड़ (Branchial arch or gill bars) के द्वारा आश्रित रहता है तथा शेष भाग क्लोम रेज

(Gill rays) की पंक्तियों द्वारा आश्रित होता है जो ब्रैन्कियल चाप के पश्च सिरे से विकसित होती हैं। पट में तन्त्रिका रज्जु एवं रक्त वाहिनियाँ पायी जाती है।

प्रत्येक क्लोम कोष्ठ (Gill pouch) की अग्र एवं पश्च भित्ति की श्लेष्म झिल्ली अस्तर क्रमबद्ध क्षैतिज वलनों (Horizontal folds) में उभार बन जाते हैं जिनको **ब्रैन्कियल पटलिकाएँ/क्लोम पटलिकाएँ/लैमिली** (Branchial/gill lamellae) कहते हैं। प्रत्येक क्लोम कोष्ठ में क्लोम पटलिकाओं की दो पंक्तियाँ होती हैं, एक अग्र एवं दूसरी पश्च दिशा में। प्रत्येक पंक्ति **अर्ध गिल/डेमीब्रैन्क/हेमीब्रैन्क** (Demibranch/Hemibranch) को बनाते हैं, इस कारण प्रत्येक क्लोम कोष्ठ में दो अर्ध गिल होती हैं। दो अर्ध गिल पट, ब्रैन्कियल चाप एवं ब्रैन्कियल अर्र सहित मिलकर **पूर्ण गिल होलोब्रैन्क** (Holobranch) को बनाते हैं। प्रत्येक पूर्ण गिल का पश्च अर्ध गिल, अग्र अर्ध गिल की अपेक्षा बड़ा होता है।

स्कॉलियोडॉन में चार **पूर्ण गिल/होलोब्रैन्क** (Holobranch) पाये जाते हैं। **प्रथम या हायोइड चाप** (Hyoid arch) एक अर्ध गिल (Hemibranch) को बनाती है क्योंकि इसमें **क्लोम–पटलिकाएँ** (Gill lamellae) केवल पश्च सिरे पर पायी जाती हैं। प्रथम चार ब्रैन्कियल चापें (Branchial arches) एक पूर्ण **क्लोम/होलोब्रैन्क** (Holobranch) को आलम्ब प्रदान करती हैं, लेकिन अन्तिम या पाँचवीं ब्रैन्कियल चाप (Branchial arch) एक शाखा होती है, जिसमें क्लोम पटलिकाएँ (Gill lamellae) नहीं पायी जाती हैं।

प्रत्येक क्लोम पटलिका (Gill lamellae) एक पत्ती समान संरचना होती है जो ब्रैन्कियल चाप (Branchial arch) से समेकित होती है और बाहर की ओर स्वतन्त्र रूप से स्थित होती है। यह अत्यधिक रूप से रक्त केशिकाओं द्वारा अभिरंजित होती है। प्रत्येक में अत्यधिक कोटर पाये जाते हैं जो अभिवाही ब्रैन्कियल वाहिनियों (Afferent branchial vessels) के द्वारा रक्त प्राप्त करती हैं और अपवाही ब्रैन्कियल वाहिनियों (Efferent branchial vessels) के द्वारा रक्त को वापस भेजती हैं।

रक्त प्रदाय (Blood supply)– प्रत्येक क्लोम–कोष्ठ (Gill pouch) में वेण्ट्रल महाधमनी (Ventral aorta) से निकलने वाली **अभिवाही ब्रैन्कियल वाहिनी** (Afferent branchial artery) के द्वारा रक्त प्रदाय किया जाता है। प्रत्येक क्लोम कोष्ठ (Gill pouch) से ऑक्सीकृत रक्त को **अपवाही ब्रैन्कियल वाहिनी** (Efferent branchial vessel) के द्वारा एकत्रित कर पृष्ठीय महाधमनी (Dorsal aorta) में पहुँचाती है। कुल पाँच जोड़ी अभिवाही एवं नौ जोड़ी अपवाही ब्रैन्कियल वाहिनियाँ पायी जाती है। प्रत्येक क्लोम/गिल – कोष्ठ में 5 जोड़ी ब्रैन्कियल तन्त्रिकाएँ पहुँचती हैं जो 9 वीं एवं 10 वीं कपालीय तन्त्रिकाओं से निकलती हैं।

श्वास रन्ध्र (Spiracles)– स्कॉलियोडॉन में गिल/क्लोम कोष्ठों (Gill pouches) के अतिरिक्त एक जोड़ी **श्वास रन्ध्र** (Spiracles) पाये जाते हैं। प्रत्येक पार्श्व की **मेण्डिबुलर एवं हायोड चापों** (Mandibular - Hyoid arch) के मध्य एक श्वास रन्ध्र (Spiracles) होता है। प्रत्येक श्वास रन्ध्र/स्पाइरेकल ग्रसनी में बने अवशोषी गर्त होते हैं और उनमें न तो पटलिकाएँ (Lamellae) ही होती हैं

और न ही बाह्य क्लोम छिद्र होते हैं, लेकिन छिद्र के द्वारा ग्रसनी में खुलते हैं। स्पाइरेकिल/श्वास रन्ध्र में अवशोषी क्लोम–कोष्ठ (Gill pouch) क्लोम पटलिकाविहीन होता है।

श्वसन की क्रिया–विधि (Mechanism of Respiration)– मुख गुहिका की श्वसन गति के द्वारा एक निरन्तर जलधारा उत्पन्न होती है। जलधारा, मुख, मुख गुहिका, ग्रसनी (Pharynx) एवं गिल कोष्ठों (Gill pouches) से होकर बाह्य क्लोम छिद्रों के द्वारा शरीर के बाहर निकल जाती है। जल की निरन्तर जलधारा **ब्रैन्कियल** (Branchial) एवं **हाइपोब्रैन्कियल** (Hypobranchial) पेशियों के निरन्तर एकान्तर रूप में संकुचन एवं शिथिलन के द्वारा मुख गुहिका के खुलने एवं बंद होने के कारण होती रहती है।

श्वसन विधि निम्न दो चरणों में– प्रथम **प्रश्वसन/इन्सपाइरेशन** (Inspiration) एवं **उच्छ्श्वसन/एक्सपाइरेशन (Expiration)** में पूर्ण होती है–

(i) प्रश्वसन/इन्सपाइरेशन (Inspiration)– प्रश्वसन के समय मुख गुहिका का फर्श हाइपोब्रैन्कियल पेशियों (Hypobranchial muscles) के संकुचन द्वारा नीचे की ओर हो जाता है जिससे मुख गुहिका के आयतन में वृद्धि होती है। मुख खुलता है, जल प्रवेश कर मुख गुहिका को भर देता है। हाइपोब्रैन्कियल पेशियों के संकुचन के कारण ग्रसनी गुहिका (Pharyngeal cavity) के आयतन बढ़ जाने के कारण क्लोम दरारें (Gill slits) एवं बाह्य ब्रैन्कियल छिद्र (External Branchial opening) बंद हो जाते हैं। ग्रसनी गुहिका में पानी भर जाता है।

(ii) उच्छ्श्वसन/एक्सपाइरेशन (Expiration)– अभिवर्तनी/ऐडक्टर (Adductor) पेशियों के संकुचन के कारण मुख बंद हो जाता है और ब्रैन्कियल चापें (Branchial arches) संकुचित होती हैं और जलधारा बलपूर्वक गिल–कोष्ठों (Gill pouches) में प्रवेश करती है और क्लोम दरारों में पहुँचकर, क्लोम पटलिकाओं के ऊपर से बहती है और बाह्य क्लोम छिद्रों के द्वारा बाहर को निकल जाती है। पटलिकाओं से बाहर जाने के पूर्व सबसे पहले रक्त का सम्पर्क सबसे अधिक ऑक्सिजन (O_2) सान्द्रण (Concentration) और सबसे कम कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) सान्द्रण से होता है। इस प्रकार रक्त और जल के बीच ऑक्सिजन (O_2) एवं कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) का विनिमय होता है। इस प्रकार जलधारा निरन्तर मुख द्वारा ग्रसनी में आती रहती है और क्लोम छिद्रों के द्वारा बाहर निकलती रहती है।

श्वसन की कार्यिकी (Physiology of Respiration)– श्वसन विधि के समय स्वच्छ समुद्री जल क्लोम/गिल कोष्ठों में श्वसनीय जलधारा के द्वारा प्रवेश करती है। जलधारा के जल में ऑक्सीजन घुलनशील रूप में होती है। क्लोम पटलिकाओं (Gill lamellae) में उपस्थित रक्त केशिकाओं (Blood capillaries) की पतली पारगम्य झिल्लीमय भित्ति (Permeable membranous walls) के द्वारा जल की ऑक्सीजन जल से पृथक् होती है। रक्त केशिकाओं की पतली पारगम्य भित्ति के द्वारा जल की **ऑक्सीजन** रक्त में **एण्डोस्मोसिस/अन्तःप्रसरण** (Endosmosis)

के द्वारा विसरित हो जाती है। इस समय रक्त की **कार्बन डाइऑक्साइड** पानी में **एक्सोस्मोसिस/बाह्य प्रसरण** (Exosmosis) के द्वारा चली जाती है। अतः रक्त के द्वारा ऑक्सीजन शरीर के प्रत्येक भाग को पहुँचायी जाती है। शिरा रक्त (Venous blood) के द्वारा जो कार्बन डाइऑक्साइड क्लोम/गिल्स (Gills) में लायी जाती है वह जल के द्वारा बाहर जाने वोली श्वसनीय जलधारा के साथ बाहर निकाल दी जाती है। थोड़े ही समय में क्लोम/गिल्स की केशिकाओं (Capillaries) के अंदर रक्त पूर्ण चक्कर/परिसंचरण पूर्ण कर लेता हे। इस कारण गैसों का विनिमय (Exchange of gases) अति शीघ्र होता है। ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड के बीच एवं चारों तरफ के जलीय माध्यम की सान्द्रता के स्तर में भौतिक सान्द्रता (Physical concentration) को बनाए रखा जाता है। रक्त के अंदर हमेशा ही CO_2 की अधिक मात्रा होती है जो श्वसनीय झिल्ली के द्वारा कम सान्द्रता वाले जलीय माध्यम में विसरित होती रहती है। रक्त में O_2 की कमी होती है और पानी से विसरित होती है जहाँ इसकी सान्द्रता अधिक होती है।

2. ऐम्फिबिया (Amphibia)

श्वसन तन्त्र (Respiratory System)– मेंढक एक उभयचर प्राणी है, इसमें श्वसन तीन प्रकार से होता है–

(A) त्वचीय – श्वसन (Cutaneous respiration)

(B) मुखीय – श्वसन या मुख – ग्रसनी श्वसन (Buccal respiration or Bucco-pharyngeal respiration),

(C) फुफ्फसीय श्वसन (Pulmonary respiration)

(A) त्वचीय – श्वसन (Cutaneous respiration)– मेंढक (Frog) की त्वचा एक महत्वपूर्ण श्वसन अंग होती है, जो सदैव नम व त्वचीय धमनी (cutaneous artery) की अनेक शाखाओं से युक्त होती है, जिसमें ऑक्सीजन रहित रक्त पाया जाता है। ग्रन्थिल स्रावों (Glandular secretions) द्वारा ये नम बनी रहती है। त्वचा पारगम्य (Permeable) भी होती है। इसमें गैसों का आदान–प्रदान सम्भव है। वायु की ऑक्सीजन पहले त्वचा की नमी में घुल जाती है, फिर विसरण द्वारा त्वचा से होती हुई रक्त में चली जाती है। शुद्ध रक्त की CO_2 विसरित (Diffuse) होकर त्वचा से बाहर निकलकर वायु में मिल जाती है। शुद्ध रक्त (Oxygenated blood) त्वचीय–शिरा (Cutaneous vein) द्वारा मेंढक के हृदय में चला जाता है।

(B) मुख – श्वसन (Buccal respiration)– मेंढक भूमि पर या जल पर उतरते समय जब सिर का अग्र भाग थूथन (Snout) को हवा में निकाले हुए होता है तब श्वसन मुख श्वसन विधि के द्वारा होता है। मेंढक की मुख गुहा का फर्श (Floor) निरन्तर उठता एवं गिरता रहता है जिसकी वजह से बाह्य नासाद्वारों (External nares) से वायु मुख गुहा में आती एवं बाहर की ओर जाती रहती है। मुख गुहिका की श्लेष्म झिल्ली (Mucus membrane) का अस्तर पतला एवं गैसों के लिए पारगम्य (Permeable) होता है। श्लेष्म (Mucus) के द्वारा आस्तर नम बना रहता है तथा इसमें

टिप्पणी

रक्त केशिकाओं (Blood capillaries) का जाल बिछा रहता है। यह अस्तर भी गैसों के आदान–प्रदान के लिए उपयुक्त है। जब वातावरण की वायु मुख गुहिका में आती है तब उसमें से ऑक्सीजन (O_2) श्लेष्म (Mucus) में घुल जाती है एवं विसरित होकर रक्त में चली जाती है। कार्बन डाइऑक्साइड बाहर चला जाता है।

(C) फुप्फुसीय श्वसन (Pulmonary respiration)– सामान्य स्थिति में मेंढक में फुप्फुसीय श्वसन नहीं होता है केवल **टर्र–टर्र** की ध्वनि करते समय या ऑक्सीजन की अधिक आवश्यकता के समय ही फेफड़ों के द्वारा श्वसन होता है।

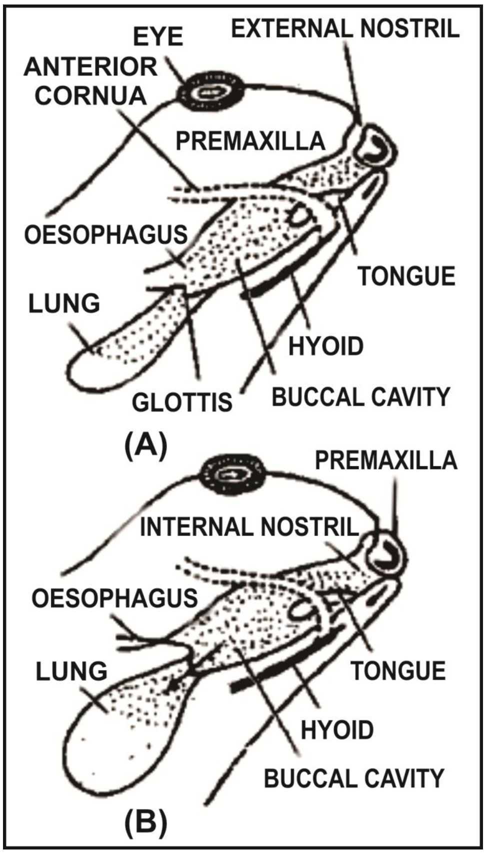

चित्र क्र. 2.66: (A) Buccal Cavity Enlarged, (B) Buccal Cavity Reduced. Mechanism of Bucco-pharyngeal Respiration

फेफड़े (Lungs)– संख्या में **दो** होते हैं, इनका रंग हल्का बैंगनी (Purple) होता है। इनकी भित्ति पतली, रक्तवाहिकामय (Vascularised) होती है। फेफड़े लचीले, थैले के समान होते हैं जो हृदय के दोनों ओर स्थित होते हैं। इनकी भित्ति की बाह्य सतह पेरिटोनियम (Peritoneum) की एवं आन्तरिक सतह **शल्की उपकला** के स्तर की होती हैं। इन दोनों स्तरों के बीच में प्रत्यास्थ तन्तुमय संयोजी ऊतक एवं अरेखित पेशी तन्तु (Unstriated muscle fibre) होते हैं। आन्तरिक स्तर अंदर की ओर अनेक टेढ़े–मेढ़े उभारों के रूप में होती है। इसके

कारण आन्तरिक स्तर शहद की मक्खी के छत्ते के समान दिखाई पड़ता है। इन उभारों के कारण फेफड़े के अवकाशिका, **कूपिकाओं** (Alveoli) में विभाजित रहते हैं। कूपिकाओं की भित्ति में अनेक रक्त केशिकाएँ पायी जाती हैं। वातावरण से आने वाली वायु इन्हीं कूपिकाओं में भरती है।

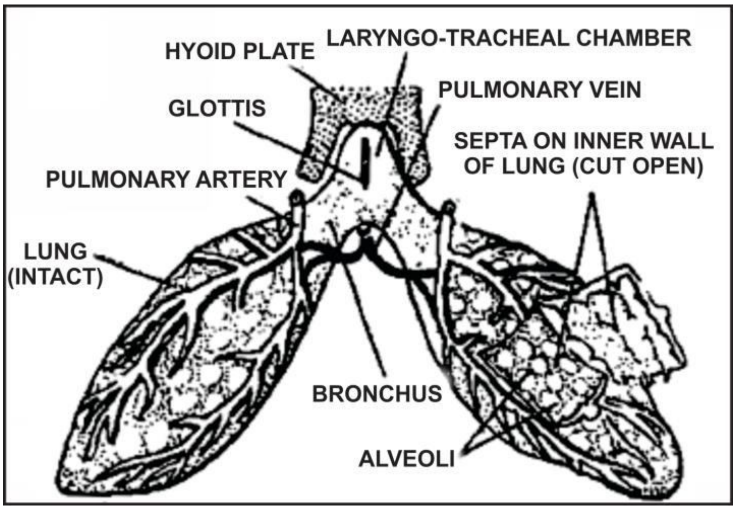

चित्र क्र. 2.67: Lungs of Frog

कण्ठ–श्वसन–नलिका कक्ष (Laryngeotracheal chamber)– फेफड़े अग्र भाग की ओर एक छोटे से कक्ष (Chamber) में खुलते हैं। इसको कण्ठ–श्वसन–नलिका पथ कहते हैं। यह कण्ठ **लैरिंक्स** (Larynx) एवं **ट्रेकिया** (Trachea) दोनों का ही कार्य करता है। कण्ठ–श्वसन–नलिका की भित्ति **पाँच उपास्थियों** (Cartilages) द्वारा सधी रहती है। ऊपर की ओर तथा पार्श्वों में एक युग्मित प्याले समान उपास्थि के चपटे टुकड़े होते है, इनको **ऐरिटिनाएड़** (Arytenoid) कहते हैं। प्रत्येक ऐरिटिनाएड़ के आगे की ओर एक उपास्थि **प्री–ऐरिटिनाएड़** (Pre-arytenoid) होती है। दोनो ऐरिटिनाएड़ उपास्थियाँ **घाँटी** (Glottis) को घेरे रहती है। ऐरिटिनाएड़ के ऊपर की ओर एक अंगूठी समान उपास्थि– **क्रिकाइड** (Cricoid) होती है। बाह्म नासाछिद्र थूथन (Snout) पर स्थित युग्मित छिद्र होते हैं जो खोपड़ी के घ्राण **सम्पुट** (Olfactory capsule) में स्थित **नासा वेश्मों** (Nasal chambers) में खुलते हैं। नासा वेश्म आन्तरिक नासा छिद्रों के द्वारा मुख ग्रसनी गुहिका में खुलते हैं। यह गुहिका **घाँटी** (Glottis) में खुलती है।

टिप्पणी

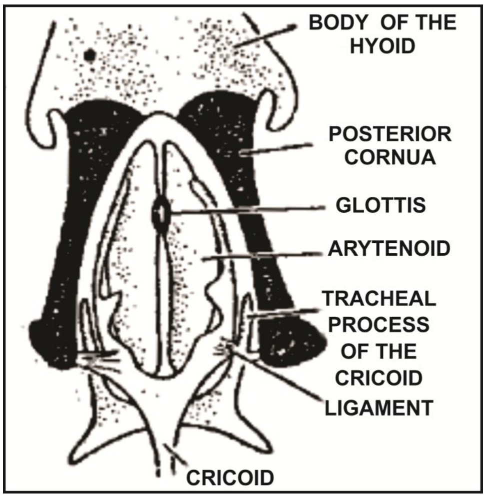

चित्र क्र. 2.68: Frog : Skeleton of Larynx of Frog

श्वसन कार्य–विधि (Mechanism of Respiration)– मेंढक में फुप्फुसीय श्वसन निम्नलिखित तीन चरणों में पूर्ण होती है–

(a) अन्तः श्वसन (Aspiration)– इस विधि के समय वायु बाहर से मुख गुहिका में आती है। मुख एवं घाँटी द्वार (Glottis) बंद रहते हैं। मुख गुहिका का फर्श नीचे की ओर गिरता है जब स्र्टनोहायल पेशियाँ (Sternohyal muscles) संकुचन करती हैं। इन पेशियों के संकुचन से मुख गुहिका का आयतन बढ़ जाता है। अतः बाहर की वायु नासाछिद्रों में होकर गुख गुहा में आ जाती है।

(b) प्रश्वसन (Inspiration)– इस विधि के अन्तर्गत वायु मुख गुहिका से फेफड़ों में जाती है। इस समय मुख द्वार एवं नासा द्वार बंद रहते हैं। अब मुख गुहिका का फर्श ऊपर उठने से वायु दाब बढ़ जाता है, जिसके कारण घाँटी द्वार खुल जाता है और वायु फेफड़ों में चली जाती है। इसी समय फेफड़े (Lungs) फैलते हैं और वायु को अंदर लेते हैं। मुख गुहिका का फर्श ऊपर की ओर उठाने का कार्य पैट्रोहायल (Petrohyal) पेशियाँ करती हैं। ये पेशियाँ एक ओर हॉयड (Hyoid) एवं दूसरी ओर खोपड़ी की स्क्वैमोज़ल (Squamosal) से जुड़ी रहती हैं। इन पेशियों के संकुचन से मुख गुहिका का फर्श ऊपर की ओर उठता है। निचले जबड़े की **मैण्टोमेकेलियन** (Mentomechalian) अस्थियाँ ऊपर की ओर उठकर ऊपरी जबड़े की प्री–मैक्सिला (Pre-maxilla) अस्थि को धक्का देकर बाह्म नासाछिद्रों को बंद करती हैं।

(c) निःश्वसन (Expiration)– मुख द्वार एवं नासा छिद्र बंद रहते हैं। फर्श नीचे की ओर गिरता है, फेफड़े की वायु फेफड़ों से मुख गुहिका में आ जाती है। इसी समय फेफड़ों से संकुचन होता है। अब निचले जबड़े की मेण्टोमेकेलियन अस्थि नीचे की ओर आती है। प्री–मैक्सिला (Pre-maxilla) अपने पूर्व स्थान पर आती है, जिसके कारण नासाछिद्र खुल जाते हैं। घाँटी द्वार बंद हो जाता है। मुख गुहिका का फर्श ऊपर की ओर उठता

टिप्पणी

है, मुख गुहिका की वायु नासाछिद्रों के द्वारा बाहर की ओर निकल जाती है।

फेफड़ों के अंदर कुछ समय के लिए वायु रुकती है, इसी समय वायु की ऑक्सीजन विसरण द्वारा रक्त केशिकाओं (Blood capillaries) में पहुँच जाती है। बदले में कार्बन डाइऑक्साइड रक्त से फेफड़ो में आ जाती है। निःश्वसन के समय यह कार्बन डाइऑक्साइड बाहर जाने वाली वायु के साथ ही शरीर से बाहर की ओर चली जाती है।

3. सरीसृप (Reptiles)

श्वसन तन्त्र (Respiratory System)– यूरोमैस्टिक्स में **श्वसन फुप्फुसीय** (Pulmonary) होता है। भ्रूण की अस्थायी ग्रसनी क्लोम दरारों (Pharyngeal gill slits) की भित्तियों में सूक्ष्म पैपिला होते हैं, जो गिल–सूत्रों (Gill filaments) के अवशेष हैं। यूरोमैस्टिक्स में क्रियाशील क्लोम/गिल्स (Gills) का अभाव होता है।

यूरोमैस्टिक्स (Uromastix) में शुद्ध वायु श्वसन पथ (Respiratory passage) के द्वारा फेफड़ों में पहुँचती है। फेफड़ों में गैस विनिमय (Gaseous exchange) के पश्चात् अशुद्ध वायु फेफड़ों से श्वसन पथ के द्वारा शरीर के बाहर निकल जाती है।

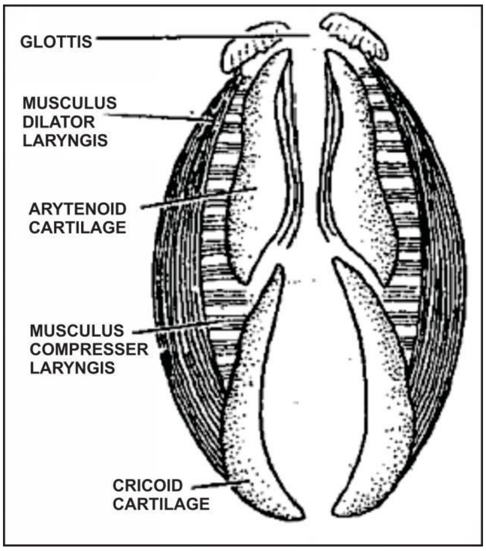

चित्र क्र. 2.69: Uromastix : L. S. of Larynx

यूरोमैस्टिक्स के श्वसन तन्त्र में दो प्रमुख भाग आते हैं– श्वसन पथ एवं श्वसन अंग (Respiratory passage and Respiratory organs)–

1. **श्वसन पथ (Respiratory passage)**– श्वसन पथ के अन्तर्गत नासाछिद्र (Nostrils), लैरिंक्स (Larynx), ट्रेकिया (Trachea) एवं उसकी शाखाएँ आती हैं।

टिप्पणी

नासाछिद्र (Nostrils)– श्वसन पथ बाह्य नासाछिद्रों (External nares) से प्रारम्भ होता है। यह एक जोड़ी थूथन (Snout) के अग्र–पृष्ठीय (Anterodorsal) सतह पर मुख से थोड़ा ऊपर स्थित होते हैं। **बाह्य नासाछिद्र,** अंदर की ओर छोटे–छोटे थैलों में खुलते हैं, इन थैलों को **नासाकक्ष** या **गन्ध थैले** (Nasal sacs or olfactory sacs) कहते हैं। यह नासाकक्ष खोपड़ी में खुलते हैं। नासाकक्ष पीछे की ओर एक जोड़ी गोल **आन्तरिक नासाछिद्रों** (Internal nares) के द्वारा सिर में स्थित **मुख ग्रसनी गुहिका** (Bucco-pharyngeal cavity) में खुलते हैं। नासाकक्ष आन्तरिक रूप से श्लेष्म झिल्ली (Mucus membrane) से आस्तरित रहते हैं, जो यूरोमैस्टिक्स के मिट्टी में बिल खोदने के समय एक कपाट (Valve) समान कार्य कर छिद्र को बंद कर देती हैं।

लैरिंक्स (Larynx)– मुख ग्रसनी गुहिका के फर्श पर जीभ के आधारीय द्विशाखन के मध्य एक छोटा मध्य अनुदैर्ध्य छिद्र (Longitudinal aperture) घाँटी (Glottis) में स्थित होता है। घाँटी एक छोटे मध्य कक्ष लैरिंक्स में खुलता है। लैरिंक्स की भित्ति को आश्रय देने के लिए एक अपूर्ण वलय **क्रिकॉइड** (Cricoid) एवं दो **ऐरिटिनॉइड** (Aretynoid) उपास्थियाँ होती हैं ऐरिटिनॉइड उपास्थि लैरिंक्स की अग्र–पार्श्व भित्ति में स्थित होती है। पीछे की ओर यह दोनों उपास्थियाँ क्रिकॉइड उपास्थि की अग्र पार्श्व दिशा में संधिस्थ रहती हैं तथा आगे की ओर अपनी–अपनी दिशा के घाँटी ओष्ठों को आलम्बन प्रदान करती हैं। इन उपास्थियों के अतिरिक्त लैरिंक्स में दो जोड़ी पेशियाँ होती हैं – **लैरिंक्स प्रसार पेशी** (Musculus dilator laryngis) एवं **लैरिंक्स सम्पीडन पेशी** (Musculus compressor laryngis)। इन दोनों पेशियों में से दूसरी पेशी **संकुचनीय** (Sphincter) का कार्य करती है तथा प्रथम पेशी लैरिंक्स को खोलने का कार्य करती है।

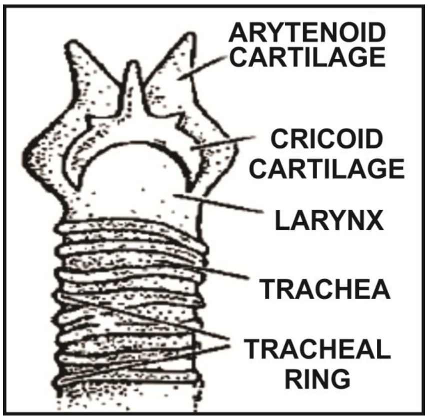

चित्र क्र. 2.70: Uromastix : Larynx

ट्रेकिया (Trachea)– लैरिंक्स पीछे की ओर वायुनलिका या ट्रेकिया में खुलती हैं। ट्रेकिया एक लम्बी बेलनाकार नलिका है जो ग्रीवा (Neck) के अधरीय दिशा में पीछे की ओर चलती जाती है। ट्रेकिया की पूर्ण लम्बाई में

इसकी भित्ति में पूर्ण उपास्थिमय छल्लों की कड़ी (Chain) का आलम्ब बना होता है। इन उपास्थिमय छल्लों के कारण ट्रेकिया पिचक नहीं सकती है। ट्रेकिया के कुछ छल्ले द्विशाखित होते हैं। पीछे की ओर ट्रेकिया हृदय के आधारीय भाग तक पहुँचकर दो संकीर्ण छोटी नलिकाओं **श्वसनियों / ब्रोन्काई** (Bronchii) में विभाजित हो जाती है। ब्रोन्काई की भित्ति में भी पूर्ण उपास्थिमय छल्ले होते हैं। प्रत्येक ब्रोन्काई अपनी ओर के फेफड़ें (Lungs) में प्रवेश करती है। ब्रोन्काई अपने द्वारा शाखाओं में विभाजित नहीं होती और न ही **अन्तः फुप्फुसीय** प्रसार को बनाती है।

2. **श्वसन अंग (Respiratory organs)**– यूरोमैस्टिक्स के मुख्य श्वसन अंग फेफड़े होते हैं। फेफड़े एक जोड़ी **वक्षीय गुहिका** (Thoracic cavity) में हृदय के दोनों ओर एक–एक स्थित होते हैं। दोनों फेफड़े समान होते हैं। फेफड़े (Lung) लम्बा तर्कुरूपी (Fusiform) पतली भित्ति वाले नारंगी रंग के लचीले थैले होते हैं। फेफड़ों के पीछे के सिरे फेफड़ों के रिक्त होने पर नुकीले और वायु से भरे होने पर गोल दिखाई देते हैं। प्रत्येक फेफड़े का आन्तरिक स्तर छोटे–छोटे कंटकों (Ridges) या पटों (Septa) के जाल के रूप में उभरा रहता है। इन कंटकों के मध्य में **कूपिकाएँ** (Alveoli) गर्त के रूप में होती हैं। यह कंटक फेफड़े के अग्र भाग में पश्च भाग की अपेक्षा संख्या में अधिक तथा पास–पास होते हैं। इन कंटकों की उपस्थिति के कारण फेफड़ों की श्वसन सतह में वृद्धि होती है। फेफड़ों की भित्तियों एवं कूपिकाओं में **रक्त केशिकाएँ** (Blood capillaries) होती हैं। कूपिकाओं एवं रक्त केशिकाओं के मध्य गैसों का आदान–प्रदान होता है। रक्त केशिकाएँ फेफड़े के अग्र भाग में पश्च भाग की अपेक्षा अधिक होती हैं। इस कारण फेफड़ों का अग्र भाग पश्च भाग की अपेक्षा अधिक श्वसनीय होता है।

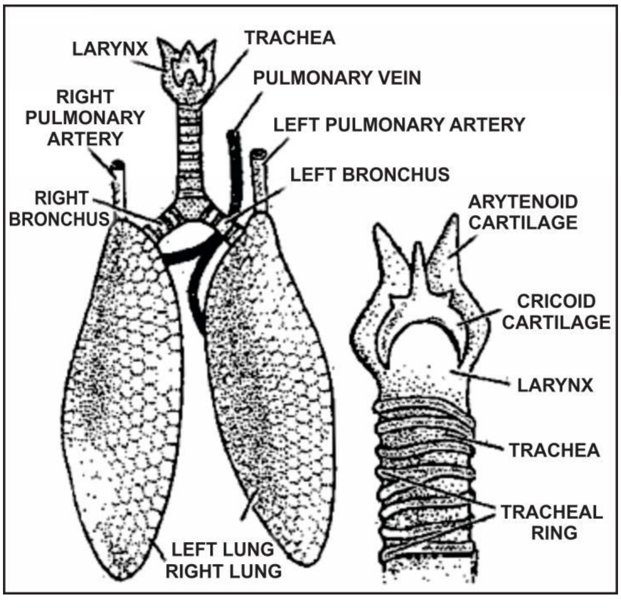

चित्र क्र. 2.71: Uromastix : Respiratory Organs (Lungs) (Ventral View)

टिप्पणी

श्वसन की क्रिया–विधि (Mechanism of Respiration)– यूरोमैस्टिक्स में फुप्फुसीय श्वसन पसलियों (Ribs) एवं पसलियों की पेशियों (Rib muscles) के द्वारा पूरा होता है। पेशियों के मध्य **अन्तरा–पर्शुक पेशियाँ** (Intercostal muscles) पायी जाती हैं। इन पेशियों के संकुचन और प्रसार के द्वारा पसलियों को आगे और पीछे की ओर गति प्रदान की जाती है जिसके कारण प्ल्यूरोपेंरिटोनियल गुहिका (Pleuro-peritoneal cavity) का आयतन बढ़ता या घटता है। गुहिका में वृद्धि होने पर फेफड़े फैलते है और बाहर की शुद्ध वायु नासाछिद्रों, मुख गुहिका, घाँटी, ट्रेकिया एवं ब्रोन्काई में से होती हुई फेफड़ों में भर जाती है। गैसों का विनिमय (Gaseous exchange) कूपिकाओं की पतली नम भित्तियों एवं रक्त केशिकाओं (Blood capillaries) के मध्य होता है। गैसों के विनिमय के पश्चात फेफड़ों का आयतन घटने पर फेफड़े दबते हैं और वायु उसी मार्ग से शरीर के बाहर चली जाती है।

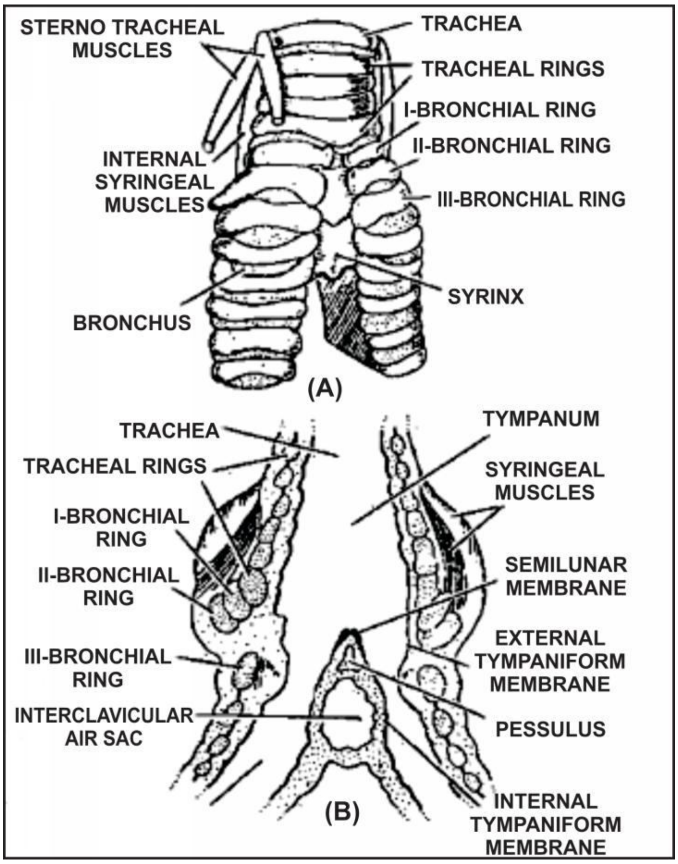

चित्र क्र. 2.72: (A) Syrinx External,
(B) Diagrammatic L. S. Section of Syrinx

4. पक्षी (Aves)

श्वसन तन्त्र (Respiratory System)– पक्षियों और कबूतर में श्वसन **फुप्फुसीय** (Pulmonary) होता है तथा इसमें **श्वसन पथ** (Respiratory passage), **श्वसन अंग** (Respiratory organs) या **फेफड़े** तथा **वायु कोष** (Air sacs) होते हैं।

टिप्पणी

श्वसन पथ (Respiratory passage)– इसके अन्तर्गत नासाछिद्र (Nostrils), नासीय थैले ग्लॉटिस/घाँटी द्वार (Glottis), **लैरिंक्स** (Larynx), **श्वास नलिका** (Trachea) एवं **सिरिंक्स** (Syrinx) आते है–

1. **नासाछिद्र एवं नासीय थैले (Nostrils and Nasal sacs)**– एक जोड़ी **झिर्री समान** (Slit like) **बाह्य नासाछिद्र** (External nares) ऊपरी चोंच के आधार पर स्थित होते हैं। इसके ऊपर एक कोमल **संवेदनात्मक झिल्ली** (Sensitive membrane) **प्राच्छद या सेरी** (Operculum or Cere) पायी जाती है जो बाह्य नासाछिद्रों को ढँके रहती है। बाह्य नासाछिद्र छोटे आकार के नासीय थैलों (Nasal sacs) में खुलते हैं, जो आन्तरिक नासाछिद्रों या **कोएनी** (Choanae) द्वारा ग्रसनी (Pharynx) में खुलते हैं। ग्लॉटिस/घाँटीद्वार (Glottis) जीभ के आधार पर स्थित होती है और ग्लॉटिस एक ह्रासित (Reduced) लैरिंक्स में खुलती है। लैरिंक्स श्वास नलिका का पृथक् भाग होता है।
2. **लैरिंक्स (Larynx)**– कबूतर में लैरिंक्स कम विकसित होता है। इसमें स्वर–रज्जु (Vocal cords) अनुपस्थित होने के कारण यह भाग ध्वनि उत्पन्न नहीं करता है। लैरिंक्स की भित्ति क्रिकॉयड उपास्थि (Cricoid cartilage) के द्वारा आलम्बित होती है। थायरॉइड उपास्थित (Thyroid cartilage) अनुपस्थित होती है। क्रिकॉयड उपास्थि चार भागों में विभाजित होती है, दो भाग ऊपर की ओर होते है, जिनको प्रोक्रिकॉइड (Procricoid) कहते हैं। यह भाग कुछ ही पक्षियों में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त लैरिंक्स में आंशिक अस्थिभूत (Partially ossified) **ऐरिटिनॉइड** (Aretynoid) भी पायी जाती है। लैरिंक्स पीछे की ओर श्वास नलिका (Trachea) में खुलते हैं।
3. **श्वास नलिका (Trachea)**– ट्रैकिया लम्बी लचीली नलिका होती है जो गर्दन से होकर गुजरती है। यह श्वास नलिका गर्दन के लगभग मध्य क्षेत्र में क्रॉप (Crop) की उपस्थिति के कारण कुछ बाई ओर हटकर आगे बढ़ती है। वक्ष गुहिका (Thoracic cavity) में प्रवेश करने के पूर्व श्वास नलिका फैलकर सिरिंक्स (Syrinx) को बनाती है। इसके पश्चात् श्वास नलिका, **श्वसनियों** (Bronchi) में विभाजित होती है। श्वसनिका (Bronchi) प्रत्येक फेफड़े में प्रवेश करती है। श्वास नलिका एवं श्वसनिका में पूर्ण उपास्थिमय ट्रेकियल छल्ले (Tracheal rings) पाये जाते है जो आंशिक रूप में कैल्सीयुक्त (Calcified) एवं आंशिक रूप से अस्थिमय (Ossified) होते हैं।
4. **सिरिंक्स (Syrinx)**– यह भाग केवल पक्षियों में पाया जाता है। इसको **स्वरकोष** (Sound box) भी कहते है। सिरिंक्स में दो श्वसनियों (Bronchi) के अर्ध छल्लों तथा अन्तिम तीन श्वासनलियों के छल्लों का आलम्ब मिलता है। इस कारण सिरिंक्स फैलकर एक गूँजने वाला कक्ष बन जाता है, जिसको टिम्पेनम (Tympanum) भी कहते है। इसकी श्लेष्म झिल्ली (Mucus membrane) प्रत्येक पार्श्व में एक कुशन समान संरचना बनाती है। दोनों श्वसनिकाओं के जंक्शन भाग पर एक उपास्थि की छड़ होती है।

इसको **पेसुलस** (Pessulus) कहते हैं। प्रत्येक श्वसनी की श्लेष्म झिल्ली आन्तरिक भित्ति के साथ सम्बन्ध बनाते हुए **आन्तरिक पटरूपी झिल्ली** (Internal tympaniform membrane) बनाती है और बाह्य भित्ति से सम्बन्ध बनाती हुई एक **बाह्य पटरूपी झिल्ली** (External tympaniform membrane) बनाती है। इन पटरूपी झिल्लियों के बीच अर्धचन्द्र झिल्ली (Semilunar membrane) के बिल्कुल नीचे एक अन्तरा क्लैविकल–वायुथैला (Inter-clavicular air sac) बंद होता है। इन झिल्लियों की गति का कार्य करना दो जोड़ी पेशियों द्वारा होता हैं–

(i) एक जोड़ी **आन्तरिक सिरिंक्स पेशियाँ** (Internal syringeal muscles) होती हैं जो ट्रैकिया के साथ–साथ स्थित होती है और सिरिंक्स से सम्बन्धित होती हैं।

(ii) दूसरी **जोड़ी स्टर्नम श्वासनली पेशियाँ** (Sterno tracheal muscles) होती हैं, जो स्टर्नम से निकलकर श्वसनलिका तक जाती हैं। इन पेशियों के द्वारा झिल्लियों का तनाव नियन्त्रित किया जाता है। ध्वनि/स्वर (Sound) तब ही निकलती है जब निःश्वास के समय फेफड़ों से बाहर निकलती हुई वायु इन पटरूपी झिल्लियों के बीच में से बलपूर्वक निकलती हुई स्वरकोष्ठों/स्वर रज्जुओं को कम्पित (Vibrate) करती हैं। स्वर का **तारत्व/पिच** (Pitch) स्टर्नम–श्वासनलिका एवं आन्तरिक सिरिंक्स पेशियों द्वारा कम और अधिक होता रहता है।

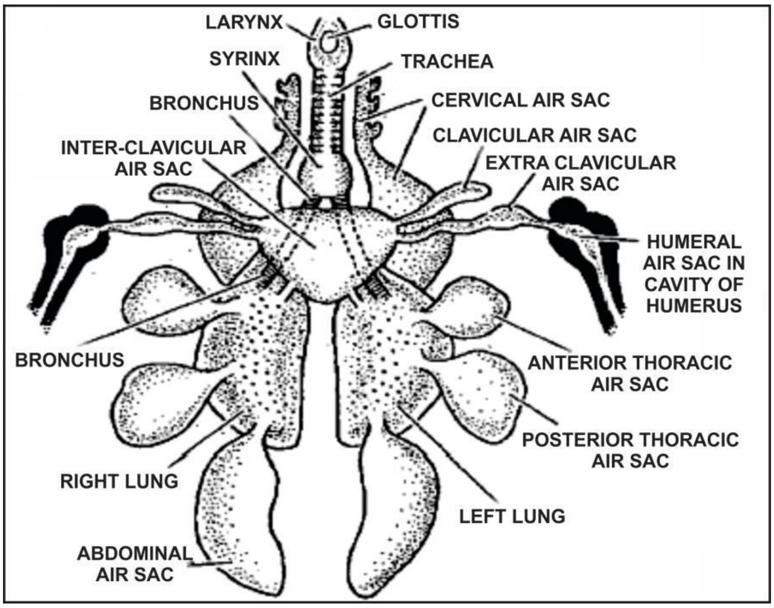

चित्र क्र. 2.73: **Lungs and Air Sacs**

5. **फेफड़े (Lungs)**– कार्यिकीय दृष्टि से पक्षियों के फेफड़े सभी कशेरुकीय प्राणियों की अपेक्षा अत्याधिक दक्ष होते हैं। पक्षियों में फेफड़े हमेशा पृथक् प्ल्यूरल गुहिका (Pleural cavity) में स्थित होते हैं और फेफड़ों की वायु

टिप्पणी

वाहिनियाँ इस प्रकार आपस में जुड़ी रहती हैं कि कोई भी वाहिनी, फेफड़ें में अन्ध सिरे (Blind end) में समाप्त नहीं होती है।

पक्षियों/कबूतर में फेफड़े छोटे, स्पन्जी, लोचरहित (Non-elastic) अत्यधिक संवहनी (Highly vascular) होते हैं तथा इनकी प्रसार क्षमता कम होती है। फेफड़े पसलियों (Ribs) और वक्ष की कशेरुकाओं (Vertebrates) को कसकर जकड़े होते है और उसके ऊपर कोई पेरिटोनियमी (Peritoneal) आवरण नहीं होता हैं। इनकी अधर सतह (Ventral side) एक श्वास तन्तु की पेरिटोनियमी झिल्ली से ढँकी रहती है, जिसको **प्ल्यूरा** (Pleura) या **फुप्फुसीय एपोन्यूरोसिस** (Pulmonary aponeurosis) कहते हैं। **पर्शुका फुप्फुसीय** (Costal pulmonary) पेशियाँ पंख समान होती हैं और कशेरुकीय एवं स्टर्नमी पसलियों के सन्धि स्थल से निकलती हैं और फुप्फुसीय एपोन्यूरोसिस से जाकर चिपक जाती हैं।

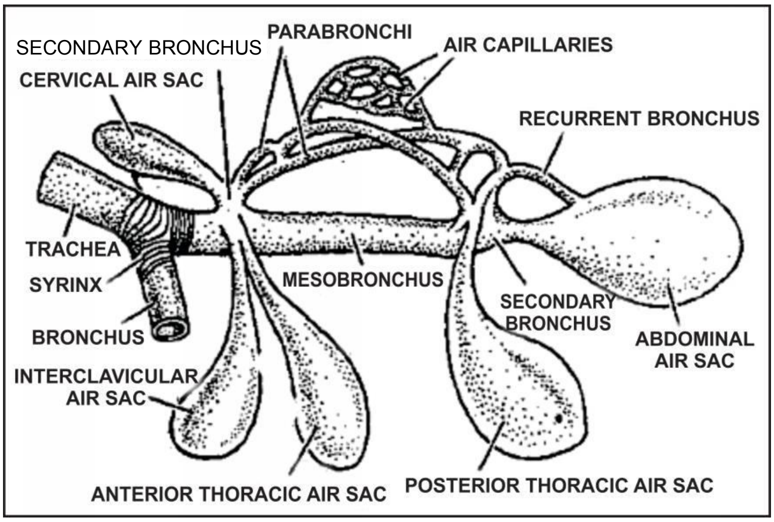

चित्र क्र. 2.74: Lungs and Origin of Air Sac

मुख्य **श्वसनी** (Bronchus) फेफड़े में मध्य अधर सतह से प्रविष्ट होती है तथा दूरस्थ सिरे तक निरन्तर पायी जाती है। श्वसनी (Bronchus) का वह भाग जो फेफड़े के अंदर रहता है, **मध्य श्वसनी** (Mesobronchus) कहलाता है। मध्य श्वसनी अनेक पार्श्वीय या **द्वितीयक श्वसनियों** (Secondary bronchii) में विभाजित हो जाती है। यह समान व्यास वाली छोटी–छोटी नलिकाओं द्वारा सम्बन्धित रहती है, जिनको **तृतीयक** (Tertiary) या **परा–श्वसनियाँ** (Para bronchii) कहते हैं। परा श्वसनियाँ लूप बनाती हैं जो एक–दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं और **प्रत्यावर्ती** (Recurrent) या आगे बनने वाली श्वसनियों से जुड़ी रहती हैं। फेफड़े में परा श्वसनियों को घेरते हुए **षट्भुजाकार** (Hexagonal) क्षेत्र पाये जाते हैं, इनमें एक–दूसरे से जाल बनाती हुई रक्त वाहिकाएँ/केशिकाएँ (Blood capillaries) होती है और साथ ही साथ **वायु केशिकाओं** (Air capillaries) का एक तन्त्र पाया जाता है, जो पराश्वसनियों की शाखाएँ

टिप्पणी

होती हैं। वायु केशिकाओं (Air capillaries) का अस्तर (Lining) बनाती हुई एक रक्त वाहिकामय श्वसन झिल्ली (Vascular respiratory membrane) होती है, इनका रक्त केशिकाओं से सम्पर्क होता है जिससे गैसों का विनिमय (Gaseous exchange) हो सके। कबूतर के फेफड़े में श्वसनियों (Bronchus), पराश्वसनियों (Para bronchii) और वायु केशिकाओं (Air capillaries) का परस्पर संचारी तन्त्र बना होता है, जिससे अनेक वायु पथ बन जाते हैं जिनमें वायु का परिसंचरण (Circulation) होता रहता है।

6. **वायु कोष (Air sacs)**– मध्य श्वसनी (Mesobronchus) में से द्वितीयक श्वसनियाँ (Secondary bronchii) निकलती हैं, जिनमें से कुछ विभाजित होकर पराश्वसनियाँ (Para bronchii) बनाती हैं। प्रत्येक फेफड़े में पाँच श्वसनियाँ बिना विभाजित हुए सीधी फेफड़े की भित्ति में से बाहर निकल जाती हैं, उनकी **श्लेष्म झिल्ली** (Mucus membrane) फैलकर बड़े आकार के **वायु थैले** (Air sacs) बना लेती है, इनमें से तीन द्वितीयक श्वसनियाँ छोटी और दो लम्बी होती हैं। वायु थैले/या वायु कोष आन्तरांग और हड्डियों में फैले रहते हैं। वायु कोषों (Air sacs) की भित्ति पतली होती है और इनमें कम मात्रा में रक्त संवाहित होता है, इनमें अनॉक्सीजनित रक्त (Deoxygenated blood) नहीं पहुँचता है। यह पेशियों में तथा शरीर के विभिन्न भागों के आन्तरांगों पर स्थित होते हैं। वायु कोषों को जाने वाली द्वितीयक श्वसनियों से छोटी **प्रत्यावर्ती श्वसनिया** (Recurrent bronchii) निकलती हैं, जो वायु कोषों को फेफड़ों की परा श्वसनियाँ एवं वायु केशिकाओं से जोड़ती हैं, वायु कोषों से शुद्ध वायु इन्हीं प्रत्यावर्ती श्वसनियों के द्वारा फेफड़ों में वापस लौटती है। कबूतर में निम्नलिखित वायु कोष (Air sacs) पाये जाते हैं–

(i) **उदरीय वायु कोष**– एक जोड़ी उदर (Abdomen) के पृष्ठीय/डॉर्सल सतह में, वृक्कों (Kidneys) के अधर/वेण्ट्रल सतह पर छोटी आंतों की कुण्डलियों (Intestinal coils) में स्थित होता है। यह वायु कोष फेफड़े के दूरस्थ सिरे से निकलता है।

(ii) **पश्च वक्षीय वायु कोष (Posterior thoracic air sacs)**– एक जोड़ी, वक्षीय गुहिका के पश्च भाग में, उदरीय वायु कोष के सामने स्थित होते हैं। प्रत्येक वायु कोष फेफड़े के पश्च सिरे को ढँके रखता है तथा उसके बाहरी पश्च कोष पर उसमें खुलता है।

(iii) **अग्र वक्षीय वायु कोष (Anterior thoracic air sacs)**– एक जोड़ा, छाती के अग्र भाग से निकलता है तथा पसलियों और पेरिकॉर्डियम (Pericardium) के साथ निकट सम्पर्क बनाये रखता है। इसकी वेण्ट्रल सतह तिरछी झिल्ली पट से ढँकी रहती है।

(iv) **ग्रीवा वायु कोष (Cervical air sacs)**– गर्दन के आधार से एक जोड़ा ग्रीवा वायु कोष, कशेरुक दण्ड (Vertebral column) के दोनों

टिप्पणी

पार्श्व भागों में स्थित होते हैं। प्रत्येक ग्रीवा वायु कोष से छोटी–छोटी लघु कोशिकाएँ समान शाखाएँ निकलती हैं जो गर्दन में जाती हैं।

(v) **अन्तरा–क्लैविकलीय वायु कोष (Inter-clavicular air sac)**– एक मध्यस्थ कोष जिसकी स्थिति फर्कुला (Furcula) की दोनों शाखाओं के बीच के कोण में होती है। इस मध्यस्थ अन्तरा क्लैविकलीय वायु कोष के प्रत्येक पार्श्व से दो नलिकाकार **सहायक** (Auxillary) या **अक्षीय** (Axillary) कोष निकलते हैं, जिनमें से एक कोष, एक वातरन्ध्र के द्वारा ह्यूमेरस (Humerus) हड्डी में चला जाता है। यह वायु कोष दोनों फेफड़ों की द्वितीयक श्वसनियों से जुड़ा रहता है।

वायु कोषों के कार्य (Functions of Air Sacs)– वायु कोषों की भित्ति पतली और चिकनी होती है तथा इसमें कम रक्त सप्लाई होता है। अतः वायु कोषों का गैसों के विनिमय से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है, यह निम्नलिखित कार्य करते हैं–

1. यह वायु कोष, वायु का संग्रह करते हैं, धौकनियों का काम करते हैं और यह प्रश्वसन (Inspiration) के समय वायु को ग्रहण करते हैं और निःश्वसन (Expiration) के समय बाहर निकालते हैं जिससे कि फेफड़े शुद्ध वायु को ग्रहण कर सकते है। अतः गैसों का विनिमय फेफड़ों में प्रश्वसन (Inspiration) एवं निःश्वसन (Expiration) दोनों समय होता है। अतः वायु कोष, फेफड़ों की क्रियाशीलता के महत्व को बढ़ाते हैं।
2. यह वायु कोष, ठण्डा करने की विधि को विकसित कर, शरीर के तापक्रम को बनाये रखते हैं।
3. यह शरीर के आपेक्षिक घनत्व (Specific gravity) को कम करते हैं और शरीर को हल्का, उड्डयन योग्य बनाते हैं। यह देखा गया है कि अच्छी उड़ान करने वाले पक्षियों में यह वायु कोष अत्यधिक रूप से सुविकसित होते हैं।
4. वायु कोष भीतरी वाष्पन के द्वारा देह की गर्मी को बाहर निकालते हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार अग्र वायु कोष (Anterior air sac) उड़ान के समय ज्यादा सक्रिय होते हैं। पश्च वक्षीय और उदरीय वायु कोष, तब ज्यादा सक्रिय नहीं होते हैं जब पक्षी उड़ान पर नहीं होता है। पश्चीय वायु कोषों में प्रश्वसन (Inspiration) के समय वायु मध्य श्वसनी (Mesobronchus) से आकर भरती है, निःश्वसन (Expiration) के समय वायु प्रत्यावर्ती श्वसनिकाओं (Recurrent bronchii) से होकर फेफड़ों में, फिर वहाँ से अग्र वायु कोषों में जाती हैं।

श्वसन की कार्य–विधि (Mechanism of Respiration)– कबूतर एवं अन्य पक्षियों में श्वसन क्रिया में अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं। कबूतर में निःश्वास (Expiration) की क्रिया सक्रिय रूप में होती है न कि प्रश्वास (Inspiration) की क्रिया। श्वाच्छोश्वास (Breathing) क्रिया एक **'चूषक पम्प'**

(Suction pump) के समान है और श्वसन क्रिया का अध्ययन विश्राम करते समय (At rest) तथा उड़ते समय (Flying) किया जाता है।

विश्राम के समय (At Rest)– विश्राम करते समय कबूतर में प्रश्वसन (Inspiration) की क्रिया कास्टल–फुप्फुसीय (Costal-pulmonary) पेशियों या इण्टरकॉस्टल (Intercostal) पेशियों के द्वारा सम्पन्न होती है। यह पेशियाँ स्टर्नम को नीचे दबाती हैं और वक्षीय एवं उदरीय गुहिकाएँ (Thoracic and abdominal cavity) फैल जाती हैं तथा फेफड़ों पर दाब कम होने से श्वसन मार्ग द्वारा शुद्ध वायु फेफड़ों में खींच ली जाती है। वायु वायुकोषों में भी पहुँच जाती है, जहाँ से कुछ वायु हड्डियों में पहुँच जाती है। प्रश्वसन में वायु का मार्ग इस प्रकार होता है–

नासाछिद्र → ग्लॉटिस → श्वासनली → श्वसनियाँ → मध्य श्वसनियाँ

↓

जहाँ प्रश्वसन की क्रिया पूर्ण होती है ← वायु केशिकाएँ ← पराश्वसनियाँ ← द्वितीयक श्वसनियाँ

निःश्वसन के समय इण्टरकॉस्ट पेशियाँ शिथिल होकर स्टर्नम को अपनी वास्तविक स्थिति में ले आती है। उदरी पेशियाँ संकुचित होती है जिससे वक्षीय गुहिका एवं उदरीय गुहिका का आयतन कम हो जाता है, जिससे वायु बलपूर्वक फेफड़ों में से बाहर को चली जाती है तथा वायु कोषों (Air sacs) की शुद्ध वायु प्रत्यावर्ती श्वसनियों (Recurrent bronchii) के द्वारा फेफड़ों की केशिकाओं में आती है, इस प्रकार वायु केशिकाओं में प्रश्वसन के साथ–साथ निःश्वसन के समय भी शुद्ध वायु प्रवेश करती है और गैस विनिमय होता है। अन्त में भी यह वायु श्वसन मार्ग से बाहर निकल जाती है। फेफड़ों में अवशेषी वायु नहीं रहती है और रक्त का ऑक्सीकरण (Oxygenation) तीव्रता से पूर्णरूप में होता है।

उड्डयन के समय (During Flight)– उड्डयन के समय कंकाल (Skeleton) दृढ़ रखा जाता है, स्टर्नम (Sternum) अचल हो जाता है। पसलियाँ (Ribs) अचल बन जाती हैं जिससे कि पंखों (Wings) के बीच का पूरा दृढ़ आलम्ब (Support) मिल सके। इस समय श्वसन पंखों (Wings) के स्ट्रोक/गति (Stroke) एवं पीठ के उठने और नीचे आने/अवनमन द्वारा होता है। उड्डयन की अंस **पेशियों/पेक्टोरल पेशियों** (Pectoral muscles) की गति से– (i) वक्षीय एवं उदरीय गुहिकाओं (Thoracic and abdominal cavities) का आयतन कम या अधिक होता है। (ii) आयतन अधिक होने पर प्रश्वसन (Inspiration) एवं आयतन कम होने पर निःश्वसन (Expiration) की क्रिया होती है। वायु को फेफड़ों में आगे–पीछे धकेलते रहते हैं। (iii) स्टर्नम के कशेरुक दण्ड (Vertebral column) की ओर उठने और नीचे गिरने के द्वारा, पक्षी जितना तेज़ उड़ता है, श्वसन नलिकाओं में वायु का परिसंचरण (Circulation) भी उतना ही तेज़ होता है। रक्त का वायवीकरण पूर्ण रूप से होता है, इसी कारण यह सम्भव होता है कि पेशियाँ अधिक क्रियाशील रूप में कार्य कर सके और शरीर के उच्च

तापक्रम को सुचारु रूप से रखा जा सकें कबूतर में श्वसन दर 29 बार प्रति मिनट होती है।

5. स्तनी (Mammals)

शशक के श्वसनांग (Respiratory Organs of Rabbit)– स्तनी प्राणियों के शरीर के जिन अंगों में ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइ–ऑक्साइड का आदान–प्रदान होता है, या वह जो इन गैसों के विनिमय में किसी भी प्रकार की सहायता करते हैं, उनको **श्वसनांग** (Respiratory organs) कहते हैं। श्वसन कार्य के अनुसार श्वसन अंग दो प्रकार के होते हैं– **(i) आवश्यक श्वसन अंग (Essential respiratory organs)**– इसके अन्तर्गत फेफड़े (Lungs) आते हैं। फेफड़ें के अंदर रक्त केशिकाओं में रक्त तथा वायु में ऑक्सिजन (O_2) एवं कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) का विनिमय होता है। **(ii) सहायक अंग (Accessory organs)**– यह अंग शुद्ध वायु को बाहर से फेफड़ों तक एवं फेफड़ों की अशुद्ध वायु को शरीर से बाहर निकालने में सहायता करते हैं। यह सहायक अंग हैं– नासा छिद्र (Nostrils), नासा पथ (Nasal passage), वायु नलिका (Wind pipe), लैरिंक्स (Larynx), ट्रैकिया (Trachea), तथा ब्रोंकिओल्स (Bronchioles) आदि। शशक के श्वसन अंग शुद्ध वायु को वातावरण से फेफड़ों में पहुँचाते हैं और फेफड़ों की अशुद्ध वायु को शरीर के बाहर निकालने में सहायक होते हैं।

नासिका एवं श्वसन–मार्ग (Nose and Nasal Passage)– शशक के थूथन (Snout) के ऊपरी होंठ पर दो तिरछे **बाह्य नासाछिद्र** (External nostrils) होते हैं। ऊपर के होंठ में कटाव के कारण यह मुखद्वार से सम्बन्धित दिखाई देते हैं जो भीतर की ओर **नासावेश्मों** (Nasal chambers) में खुलते हैं। प्रत्येक नासावेश्म एक खड़ी पट्टी **नासापट्ट** (Nasal septum) द्वारा पृथक् होता है। ये नासावेश्म मुख–ग्रासन गुहिका के पीछे की ओर **कण्ठद्वार** (Glottis) के पास नासाग्रसनी (Nasopharynx) में खुलते हैं। प्रत्येक नासामार्ग भीतर से तीन भागों में विभेदित रहता है– **प्रघ्राण** या **प्रकोष्ठ** (वेस्टीब्यूल – Vestibule), घ्राण भाग (Olfactory region) तथा श्वसन भाग (Respiratory region)–

1. **प्रघ्राण या प्रकोष्ठ (Vestibule)**– यह बाह्य नासाछिद्र के पीछे का छोटा सा चौड़ा भाग है जो भ्रूणीय एक्टोडर्म (Embryonic ectoderm) से बनी सामान्य त्वचा से ढँका रहता है। इसमें बाल, सेवेसियस तथा स्वाद ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं।
2. **घ्राण एवं श्वसन भाग (Olfactory and Respiratory regions)**– यह मुख गुहा की छत पर स्थित होते है और तालु (Palate) द्वारा इनकी गुहा मुख गुहिका से पृथक् होती है। नासा कक्षों की छत नेसल अस्थियों से बनी होती है। प्रत्येक नासामार्ग की गुहा में इसकी पृष्ठ दीवार से **नेजल** (Nasal), वेण्ट्रल दीवार से **मैक्सिलरी** (Maxillary) तथा लेटरल दीवारों से **एथमॉयड** (Ethmoid) नामक हड्डियाँ सर्पिल मार्ग (Spiral passage) के रूप में उभरी रहती है। इन अस्थियों को सम्मिलित रूप में **टर्बाइनल अस्थियाँ** (Turbinal bones) कहते हैं। नासामार्ग महीन श्लेष्मिक कला

टिप्पणी

(Mucus membrane) से ढँका रहता है। यह श्लेष्मिक कला रोमाभिविहीन तथा संवेदी (गन्धग्राही) होती है। इसे **घ्राण एपीथीलियम या श्नीडेरियन कला** (Olfactory epithelium or Schneiderian membrane) कहते हैं। एपीथीलियम के नीचे बहुकोशिकी श्लेष्म (Mucus) तथा सीरस (Serous) ग्रन्थियाँ होती हैं तथा रक्त/केशिकाओं (Capillaries) का घना जाल फैला रहता है। नासामार्ग की इस जटिल रचना के निम्नलिखित लाभ हैं–

(i) टर्बाइनल अस्थियाँ नासामार्ग को चक्करदार बनाकर इसके भीतरी क्षेत्रफल को बढ़ा देती हैं। अतः इस लम्बे चक्करदार मार्ग से गुजरते समय वायु का ताप शरीर के ताप के बराबर हो जाता है।

(ii) श्लेष्म (म्युकस) के कारण नासामार्ग नम व लसदार रहता है। अतः शुष्क वायु नम हो जाती है।

(iii) वायु के साथ आये बैक्टीरिया, वाइरस तथा धूल के कण आदि श्लेष्म तथा प्रकोष्ठ (वेस्टीब्यूल) के बालों में फँसकर रुक जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध वायु ही फेफड़ों तक पहुँचती है।

(iv) श्नीडेरियन कला (Schneiderian membrane) घ्राण–ज्ञान का काम करती है।

3. **फैरिंक्स (Pharynx)**– श्वसन पथ पीछे की ओर फैरिंक्स में आन्तरिक नासा द्वार के द्वारा खुला है। फैरिंक्स में दो छिद्र होते हैं– **(i) गलेट (Gullet)**– यह आहार नाल से सम्बन्धित होता है। **(ii) ग्लॉटिस (Glottis)**– इसके द्वारा फेरिंक्स वायुनलिका में खुलता है।

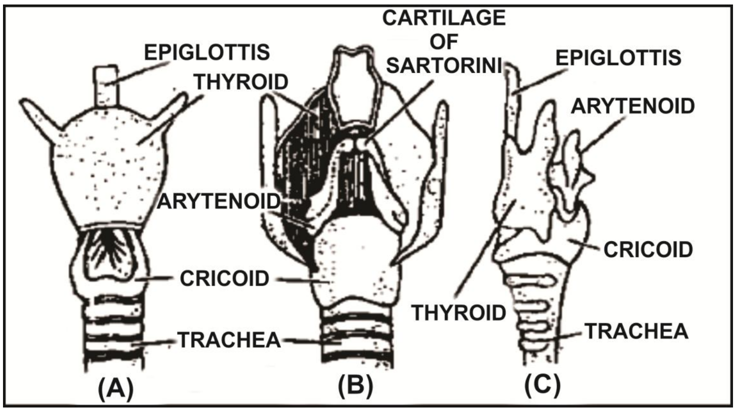

चित्र क्र. 2.75: Rabbit Trachea : (A) Dorsal View; (B) Internal/Larynx Structure; (C) Lateral View

स्वर – यन्त्र (Larynx)– शशक के श्वास नाल के अग्र सिरे पर एक छोटी–सी चार उपास्थियों की बनी बक्सेनुमा रचना होती है जिसे **स्वर – यन्त्र** (लैरिंक्स – Larynx) कहतें हैं, जो कण्ठद्वार (Glottis) द्वारा ग्रसनी (Pharynx) में खुलता है। यह ग्रसनी तथा श्वास नाल के बीच वायु के आवागमन में एक संकोचक (Sphincter) की भाँति तथा ध्वनि–उत्पादन अंग (Sound production

टिप्पणी

organ) की भाँति कार्य करता है। इसकी दीवार में उपस्थित चारों उपास्थियाँ, झिल्लियों तथा स्नायुओं (Ligaments) द्वारा परस्पर सधी रहती हैं। लैरिंक्स की निम्नलिखित उपास्थि हैं–

1. **थाइरॉयड (Thyroid)**– यह लैरिंक्स में सबसे आगे स्थित बड़ी व चौड़ी छल्लेनुमा हायलाइन (Hyaline) उपास्थि (Cartilage) है। पृष्ठ सतह (Dorsal surface) की ओर यह अधूरी होती है। इसके अग्र–पृष्ठ कोणों (Latero-dorsal angle) से एक–एक प्रवर्ध निकलकर हायड (Hyoid) के पश्च प्रवर्धों (पोस्टीरियर कार्न्युइ – Posterior cornuae) पर सधे रहते हैं। थाइरॉयड के अग्र–अधर सिरे पर घाँटी–ढापन (Epiglottis) की पतली, लचीली व तन्तुमय उपास्थि (Fibrous cartilage) आगे ग्रसनी में बढ़ जाती है जो कण्ठ द्वार (ग्लोटिस) को भोजन निगलते समय बंद रखती है।
2. **क्रिकॉयड (Cricoid)**– यह थाइरॉयड उपास्थि के पीछे स्थित छोटी, मोटी तथा पूर्ण छल्लेनुमा हायलाइन उपास्थि (Hyaline cartilage) है। इसका पृष्ठ भाग चौड़ा तथा अधर (वेण्ट्रल) भाग सँकरा होता है।
3. **ऐरीटिनॉयड (Arytenoids)**– यह क्रिकॉयड के अग्र–पृष्ठीय (एण्टीरो–डार्सल) भाग से लगी दो छोटी हायलाइन उपास्थियाँ हैं। प्रत्येक ऐरीटिनॉयड के स्वतन्त्र सिरे पर लचीली तन्तुमय उपास्थि की एक छोटी घुण्डी होती है। इसे **सेण्टोरिनी** की **उपास्थि** (Cartilage of santorini) कहते हैं।

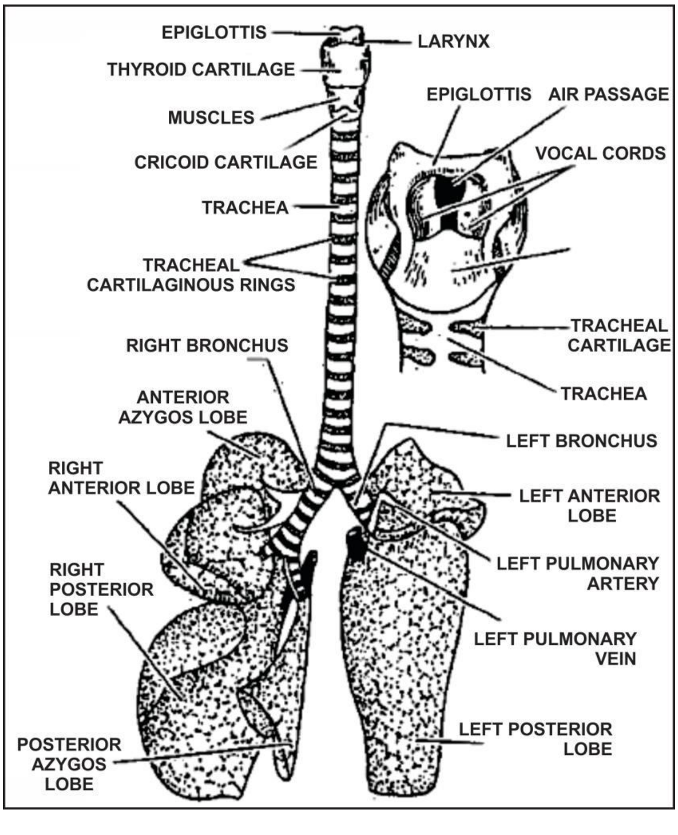

चित्र क्र. 2.76: **Respiratory System of Rabbit**

टिप्पणी

कण्ठ द्वार (ग्लोटिस) से क्रिकॉयड उपास्थि के पश्च सिरे तक फैली गुहा को **कण्ठ–कोष** (Laryngeal chamber) कहते हैं। यह श्लेष्मिका द्वारा स्तरित होती है। इसमें दो जोड़ी झिल्लीनुमा **स्वर–तन्तु** (Vocal cords) होते हैं। स्वर–तन्तुओं (Vocal cords) की प्रथम जोड़ी ऐरीटिनॉयड उपास्थियों के अग्र सिरों से तथा द्वितीय जोड़ी ऐरीटिनॉयड के पश्च सिरों से थाइरॉयड उपास्थि तक फैली रहती है। इनको क्रमशः मिथ्या **स्वर–तन्तु** (False vocal cords) तथा **वास्तविक स्वर–तन्तु** (True vocal cords) कहते हैं। मिथ्या स्वर–तन्तु मोटे व गुलाबी रंग के तथा वास्तविक स्वर–तन्तु महीन व सफेद होते हैं। इन दोनों जोड़ी स्वर–तन्तुओं के बीच दरार को **घाँटीद्वार** (Glottis) कहते हैं। वायु के आवागमन से इन स्वर–तन्तुओं में कम्पन उत्पन्न होता है जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है।

वायु नाल (Wind Pipe)– कण्ठ द्वार (ग्लोटिस) के पीछे की ओर एक लम्बी श्वास नाल जुड़ी रहती है जो ग्रीवा से होती हुई वक्ष भाग में पहुँचकर द्विशाखित (Bifid) हो जाती है। इस श्वास नाल को **ट्रैकिया** (Trachea) कहते है।

यह पतली भित्ति वाली अर्धपारदर्शक (Semi-transparent) **लम्बी नलिका** है जो कण्ठ से प्रारम्भ होती है और गर्दन में से होती हुई ग्रीवा में ग्रास नली (Oesophagus) के वेण्ट्रल सतह से चिपकी हुई चलती है तथा वक्ष गुहा में पहुँचकर दायीं तथा बायीं श्वसनियों (Bronchii) में बँट जाती है। प्रत्येक ओर की श्वसनी (ब्रोन्की) अपने–अपने ओर के फेफड़ो में प्रवेश कर जाती है।

ब्रोन्कस– संरचना में यह ट्रैकिया के समान ही होते हैं। यह फेफड़ों में प्रवेश करने के पश्चात् अनेक छोटी–छोटी महीन शाखाओं में विभाजित हो जाती है जो **ब्रोन्किओल्स** (Bronchioles) कहलाते हैं। इन पर भी अधूरे उपास्थीय छल्ले (Cartilaginous rings) होते हैं, जो इनको पिचकने से रोकते हैं। शशक में दायें (Right) ओर चार तथा बायीं ओर (Left side) केवल दो शाखाएँ होती हैं, क्योंकि शशक के फेफड़ों में क्रमशः दाहिनी ओर चार तथा बाईं ओर दो पालियाँ (Lobes) होती हैं। प्रत्येक ब्रोन्किओल्स फेफड़ों की एक–एक पालि में प्रवेश कर जाती हैं। प्रत्येक ब्रोन्किओल्स स्वयं भी महीन 2–3 शाखाओं में विभक्त होती हैं, इनको **श्वसन श्वसनिकाएँ** (Respiratory bronchioles) कहते हैं। इन नलिकाओं में उपास्थीय छल्ले अनुपस्थित होते हैं। प्रत्येक श्वसन श्वसनिका भी 2–11 तक महीन शाखाओं में विभाजित होती है। इन शाखाओं को **कूपिका वाहिनियाँ** (Alveolar ducts) कहते हैं। प्रत्येक कूपिका वाहिनी का अन्तिम सिरा फूलकर थैलीनुमा संरचनाएँ बनाता है। इनको कूपिका कोष (Alveolar Sac) कहते है। प्रत्येक कूपिका वाहिनी में 6–8 कूपिका कोष या वायु कोष होते है। यह भीतर की ओर से श्लेष्मिक कला (Mucous membrane) द्वारा स्तरित होती है। इसकी अनुप्रस्थ काट (Transverse section) में भीतर से बाहर की ओर जो स्तर दिखायी देते हैं वे इस प्रकार हैं–

(a) सबसे भीतर की ओर आधार कला (Basement membrane) पर सधी **स्यूडोस्तृत रोमाभि एपीथीलियम** (Pseudostratified ciliated

epithelium) होती है। इसकी कोशिकाएँ स्तम्भी (Columnar) तथा चूषक (Goblet) प्रकार की होती हैं।

(b) मध्य स्तर लचीले तन्तुओं की बनी एक वेण्ट्रल सतह होती है।

(c) सबसे बाहर ढीले–से संयोजी ऊतक का बना मोटा अधःश्लेष्मिका (Submucosa) स्तर होता है जिसमें अनेक बहुकोशिकीय श्लेष्म ग्रन्थियाँ होती है। इस स्तर में थोड़ी–थोड़ी दूर पर 'C' के आकार के उपास्थीय छल्ले (Cartilaginous rings) स्थित होते हैं। प्रत्येक छल्ले के चारों ओर एक तन्तुमय कला (Fibrous membrane) का आवरण होता है। ये छल्ले श्वास नाल को पिचकने से रोकते हैं ताकि वायु के आवागमन में रुकावट पैदा न हो।

फेफड़े (Lungs)– प्रमुख श्वसन अंग एक जोड़ी फेफड़े (Lungs) होते हैं जो वक्ष गुहा (Thoracic cavity) में हृदय तथा मिडियास्टर्नम (Mediasternum) के दोनों ओर एक–एक स्थित होते हैं। प्रत्येक फेफड़ा अपने आकार की प्लूरल गुहा (pleural cavity) में फिट रहता है। प्लूरल गुहा के चारों ओर प्लूरल मेम्ब्रेन (Pleural membrane) का आवरण होता है। प्लूरल गुहा में एक लसदार तरल पदार्थ **प्लूरल द्रव** (pleural fluid) भरा रहता है।

तिरछी खाँचों द्वारा दायाँ तथा बायाँ फेफड़ा क्रमशः चार तथा दो असमान लोब्स (Lobes) में बँटा रहता है। फेफड़े के लोब्स को आगे से पीछे की ओर क्रमशः **अग्र एजाइगौस** (Anterior azygos), **दाहिना अग्र** (Right anterior), **दायाँ पश्च** (Right posterior) तथा **पश्च एजाइगौस** (Posterior azygos) कहते हैं। बाएँ फेफड़े के पिण्डों को आगे से पीछे की ओर क्रमशः **बायाँ अग्र** (Left anterior) तथा **बायाँ पश्च** (Left posterior) **लोब** (Lobe) कहते हैं।

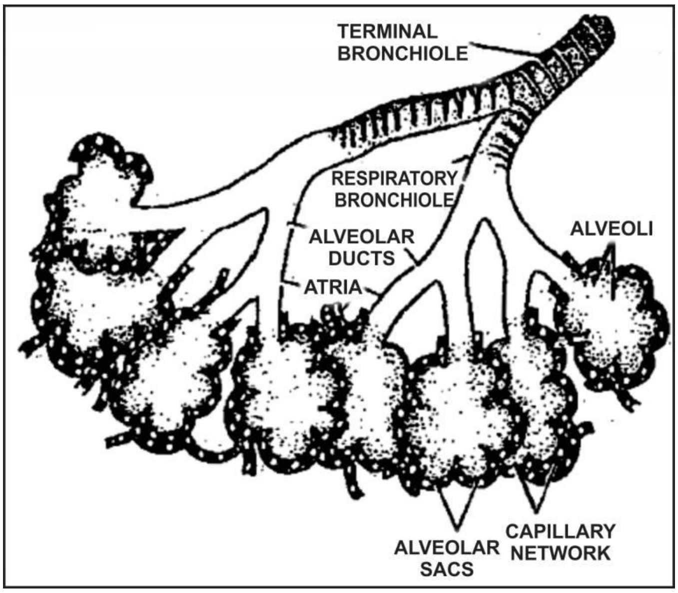

चित्र क्र. 2.77: Division of a Bronchiole

टिप्पणी

फेफड़ों की औतिकी रचना (Histological Structure of Lungs)– फेफड़े की अनुप्रस्थ काट का जब अध्ययन करते हैं तो इसमें निम्नलिखित संरचनाएँ दिखाई पड़ती हैं–

इसकी भित्ति के सबसे बाहर की स्तर विसरल प्लूरा (Visceral pleura) होती है। इस स्तर के नीचे लचीले तन्तुमय संयोजी ऊतक (Connective tissue) का ढीला सा स्तर होता है। यह भीतर की ओर फैलकर फेफड़े की प्रत्येक पालि को अनेक छोटे–छोटे बहुभुजीय पालियों में विभक्त करता हैं। इसमें केशिकाएँ (Blood Capillaries) पायी जाती हैं।

श्वसन (Respiration)– इस क्रिया में वायु का फेफड़ो में पहुँचना तथा श्वसन के उपरानत वायु का बाहर निकलना शामिल है।

स्तनियों के फेफड़े लचीले व पेशीविहीन होते हैं, अतः इनका सिकुड़ना तथा फैलना स्वयं नहीं होता है। इनका सिकुड़ना तथा फैलना वक्ष गुहा (Thoracic cavity) के सिकुड़ने तथा फैलने पर निर्भर करता है।

वक्ष गुहा एक बंद बक्सेनुमा रचना है जो पृष्ठ तल पर कशेरुक दण्ड (Vertebral column) द्वारा, स्टर्नम द्वारा, पार्श्व में पसलियों द्वारा, आगे की ओर ग्रीवा द्वारा तथा पीछे की ओर डायफ्राम द्वारा घिरी रहती है। डायफ्राम पेशी तन्तुओं की बनी एक प्लेटनुमा रचना है जो उदर गुहा को वक्ष गुहा से पृथक् करती है। यह सामान्य अवस्था में गुम्बदाकार (Dome shaped) होती है। इस पर अरीय पेशियाँ लगी रहती हैं। प्रत्येक दो पसलियों (Ribs) के बीच दो–दो प्रमुख तिरछी पेशियों (Oblique muscles) की पट्टियाँ लगी रहती हैं। ये निम्नलिखित प्रकार की होती हैं–

(i) अन्तःअन्तरापर्शुक पेशियाँ (Internal intercostals muscles)– इनका पिछला सिरा पिछली पसली पर बाहर की ओर तथा अगला सिरा अगली पसली पर भीतर की ओर लगा रहता है।

(ii) बाह्य अन्तरापर्शुक पेशियाँ (External intercostals muscles)– यह पेशियाँ अगली पसली के अधर भाग तथा पिछली पेशी के पृष्ठ भाग से जुड़ी रहती हैं।

श्वास–क्रिया में एक बार वातावरण की वायु फेफड़ों तक पहुँचती है। इसे **निःश्वसन** (Inspiration) कहते हैं तथा फेफड़ों में भरी वायु का वापस बाहर निकलना उच्छ्वसन (Expiration) कहलाता है।

टिप्पणी

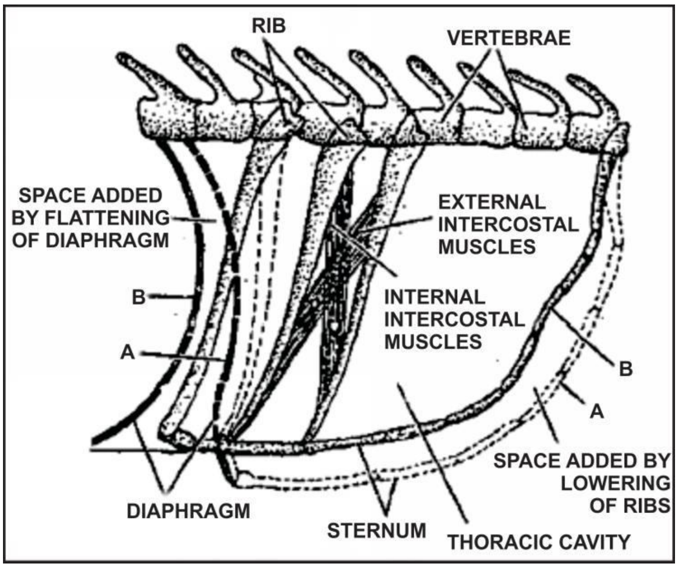

चित्र क्र. 2.78: **Mechanism of Breathing**

निःश्वसन (Inspiration)– इस क्रिया में डायफ्राम की अरीय (Radial) पेशियाँ सिकुड़ती हैं जिससें यह सीधा तन जाता है तथा बाह्य अन्तरापर्शुक पेशियों (External intercostals muscles) में भी कुछ संकुचन होता है, फलस्वरूप पसलियाँ उठकर थोड़ा बाहर की ओर फैलती हैं जिससे स्टर्नम थोड़ा बाहर की ओर खिसक जाता है और वक्ष गुहा का आयतन थोड़ा बढ़ जाता है, परिणामस्वरूप फेफड़ों में भरी वायु का दबाव बाहर की वायु से 1 mmHg कम हो जाता है। अतः वायु अधिक दबाव से कम दबाव की ओर चलने के सिद्धान्त पर नासिका तथा श्वसन मार्ग से होती हुई फेफड़ों में भर जाती है। ऑक्सीजन की अधिक सान्द्रता वाली स्वच्छ वायु फेफड़ों में पहुँचकर वायु कोषों में भर जाती है।

उच्छ्वसन (Expiration)– निःश्वसन (इन्सपाइरेशन) के पश्चात सभी सम्बन्धित पेशियाँ शिथिल होती हैं जिससे पसलियाँ वापस अपने स्थान पर आ जाती हैं और डायफ्राम पुनः गुम्बदाकार हो जाता है। इससे वक्ष गुहा का आयतन घट जाता है। वक्ष गुहा के आयतन के घटने से फेफड़ों पर दबाव पड़ता है। इस दबाव के कारण फेफड़े भी सिकुड़ते हैं जिससे फेफड़ों में भरी वायु का दबाव बाहरी वायु दाब से 1 mmHg बढ़ जाता है जिसके कारण इनमें भरी वायु वापस श्वसन मार्ग से बाहर निकल जाती है।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

36. वायवीय श्वसन में–

(अ) ऑक्सीजन अंदर ली जाती है

(ब) कार्बन डाइऑक्साइड अंदर ली जाती है

(स) ऑक्सीजन को बाहर निकाला जाता है

(द) कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर निकला जाता है।

टिप्पणी

37. खरगोश के दाँये फेफड़े में ________ होता है।

    (अ) 1 पालि　　(ब) 4 पालि

    (स) 5 पालि　　(द) 6 पालि।

38. श्वसन विधि ________ से सम्बन्धित होती है।

    (अ) ऑक्सीजन के अन्तःग्रहण

    (ब) ऑक्सीजन को मुक्त करने

    (स) CO_2 को मुक्त करने

    (द) ऊर्जा को मुक्त करने।

39. निम्नलिखित में से कौन ट्रैकिया के संकोचन को रोकता है?

    (अ) पसलियाँ　　(ब) पेशियाँ

    (स) उपस्थिमय चक्रिका　　(द) डायफ्राम

40. ग्लोटिस एक द्वार होता है जो ________ पर पाया जाता है।

    (अ) ग्रसनी　　(ब) मुख

    (स) ट्रैकिया　　(द) डायफ्राम।

41. स्तनी प्राणियों में निम्नलिखित में से कौनसी संरचना फेफड़ों के श्वसन सतह में वृद्धि करती है–

    (अ) एल्वियोली　　(ब) एट्रियम

    (स) एल्वियोली नलिकाएँ　　(द) ब्रोन्कियोल्स।

2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.	(ब)	15.	(स)	29.	(ब)
2.	(अ)	16.	(अ)	30.	(स)
3.	(द)	17.	(ब)	31.	(स)
4.	(स)	18.	(अ)	32.	(ब)
5.	(स)	19.	(द)	33.	(अ)
6.	(स)	20.	(द)	34.	(अ)
7.	(अ)	21.	(ब)	35.	(ब)

8.	(ब)	22.	(ब)	36.	(द)
9.	(स)	23.	(ब)	37.	(ब)
10.	(ब)	24.	(ब)	38.	(द)
11.	(अ)	25.	(ब)	39.	(स)
12.	(ब)	26.	(ब)	40.	(अ)
13.	(द)	27.	(द)	41.	(अ)
14.	(ब)	28.	(ब)		

2.7 सारांश (Summary)

अध्यावरण (त्वचा) एक संगठित समग्र अंग है। मूल रूप से एपिडर्मिस तथा डर्मिस से बना होता है। सम्पूर्ण एपीडर्मिस एक आधारीय झिल्ली (Basement membrane) पर सधी रहती है तथा चर्म/डर्मिस से पृथक् रहती है।

कई कशरुकियों मे डर्मिस, डर्मल हड्डियों को बनाती है। जो कि मछलियों मे प्रमुखतः से पाई जाती है। स्थलीय कशेरुकियों की एपीडर्मिस केराटाइनाइज्ड परत बनाती है, जिसे स्ट्रेटम कॉर्नियम कहते है।

कॉर्टिलेजिनस मछलियों में प्लॉकाइड स्केल (शल्क) उपस्थित होते है। बोनी फिशेस (हड्डी युक्त मछली) में कॉसकॉइड शल्क (Cosntrid scales) तथा गॉनाइड शल्क (Ganoid scale) पाए जाते है। टीलीयोस्ट (Teleosts) में दो प्रकार के शल्क (Scales) होते हैं–

- साइक्लॉइड (Cycloid)
- टिमॉइड (Ctenoid scales)

उभयचरों की त्वचा श्वसन के लिए विशेषीकृत होती है। अर्थात् इनमें त्वचीय श्वसन (Cutaneaous respiration) पाया जाता है। साथ ही इनकी त्वचा में म्यूकस ग्रन्थि और जहर ग्रन्थ्रियाँ (Poison Gland) भी उपस्थित रहती है। कभी–कभी क्रोमेटोफोर (Chromatophores) उभयचर प्राणियों की त्वचा की एपिडर्मिस में पाए जा सकते है।

सरीसृप मे कैराटिनाइजेशन अधिक पाया जाता है। त्वचीय ग्रन्थियाँ सरीसृप प्राणियों के शरीर में कुछ भागों तक ही सीमित होती है। कई छिपकलियों में अरु ग्रन्थियाँ जाँघों के पास पाई जाती। मगरमच्छ तथा कछुओं मे गन्ध ग्रन्थियाँ होती है।

पंख अन्य सभी कशेरुकियों से पक्षियों को अलग करते है। पक्षियों की त्वचा में यूरोपीगियल ग्रन्थि पूँछ के आधार मे तथा लवणीय ग्रन्थि सिर के आधार पर होती है।

स्तनधारियों की त्वचा की एपीडर्मिस बाल नाखून या ग्रन्थियों में विशेषीकृत होती है। कैरेटिनोसाइट्स एपीडर्मिस की सबसे प्रमुख कोशिका प्रकार है। स्तनियों

की त्वचा का रंग मेलेनिन वर्णक के कारण होता है। स्तनधारियों में मुख्यतः दो प्रकार की ग्रन्थियाँ होती है सीबेशियस एवं स्वेद ग्रन्थि। जो कि गन्ध तथा स्तन ग्रंन्थि से व्युत्पन्न हुई होती है।

बाल, पंजे, खुर, सींग, एंटलर एवं त्वचीय कवच अध्यावरणीय विशेषीकृत व्युत्पन्न होते है।

2.8 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **ब्लबर (Blubber):** व्हेल स्तनी, डॉलफिन, सीलों में त्वचा की वसा एक मोटे स्तर का रूप ले लेती है। इसको ब्लबर कहते हैं। यह वसा न केवल संग्रहीत खाद्य पोषण पदार्थ है बल्कि शरीर के ताप को भी नियन्त्रित करती है।
- **हैचिंग एंजाइम (Hatching enzymes):** मछलियों तथा मेंढक के कोशिकाओं से एक प्रकार के एन्जाइम निकलते है, जिससे इनके चारों ओर की उपस्थित झिल्ली फटकर पृथक् हो जाती है और यह बाहर निकलकर स्वतन्त्र हो जाती है, इन एन्जाइम को हैचिंग एंजाइम कहते है।
- **कान का मोम (Ear wax):** झेरूमिनस रूपांतरित स्वेदग्रन्थि होती है। यह ग्रन्थियाँ एक छिद्र के द्वारा त्वचा की बाहरी सतह पर खुलती है। यह ग्रन्थि कान की बाहय कर्ण गुहिका के भाग में पाई जाती है। इस ग्रन्थि का स्त्रावण मोम के समान होता है। जिसको कान का मोम कहते हैं, जो कान की धूल से रक्षा करता है।
- **विषमस्थानी अस्थियाँ (Heterotropic bones):** कुछ कशेरुक प्राणियों में कुछ विशेष प्रकार की अस्थियाँ पाई जाती है जो कि न तो चर्मास्थि कंकाल में आती है और नही अन्तःकंकाल में। इन अस्थियों को विषमस्थानी अस्थियाँ कहते है। **उदाहरण**– कण्डरास्थि, हृदयस्थि, ठोस अस्थि आदि।
- **विष बोन (Wish bone):** क्लेविकल (Clavicle) एक जोड़ी पतली घुमावदार हड्डियाँ होती है, जो अपने फैले हुए ऊपरी सिरों के द्वारा स्केपुला एवं कोरेकॉइड से समेकित होती है। वेन्ट्रल सतह पर दोनों क्लैविकल, इण्टर क्लेविकल्स के साथ मिलकर एक पार्श्वतः सम्पीडित डिस्क बनाती है, इस प्रकार बनी हुई चिमटी समान हड्डी को विष बोन कहते है।
- **एसिटाबुलम (Acetabulum):** इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस इन तीन हड्डियों के मिलने से एक छिड युक्त गहरा गर्त बनता है जिसे एसिटाबुलम कहते है। जिसमे पश्च पाद की फीमर का शीर्ष भाग स्थित होता है।
- **ओब्टयूरेटर छिद्र (Obturator Foramen):** प्यूकिमेंस एवं इरिचयम के बीच मे एसिटाबुलम के पीछे एक छिद्र होता है। जिसे ओब्ट्यूरेटर छिद्र कहते हैं।

- **ट्रौक्लियाँ (Trochlea):** हयूमरस का दूरस्थ सिरा पुली के समान होता है जो प्रवर्ध के साथ कोहनी (Elbow) बनाता हैं। इस सिरे का ट्रोक्लियाँ कहते है। ट्रोक्लियाँ की खाँच को ऑलीक्रेनन खाँच कहते है।

2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Question and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. त्वचा के मुख्य कार्यों का वर्णन कीजिये।
2. खरगोश (स्तनी) की त्वचा की खड़ी काट का चित्र बनाइये।
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये–
   (i) एपीडर्मल ग्रन्थियाँ
   (ii) त्वचा के डेरिवेटिव्स
   (iii) पक्षी त्वचा के रूपान्तरण
   (iv) डाउन और फाइलोप्ल्यूम फैदर
   (v) कबूतर एवं खरगोश की त्वचा के अनुप्रस्थ काट
   (vi) त्वचा क्या है? त्वचा के कार्यों का वर्णन कीजिए।
   (vii) पक्षी में पाये जाने वाले विभिन्न त्वचा रूपान्तरणों का वर्णन कीजिए।
   (viii) पक्षियों में पिच्छ के वर्धन का वर्णन कीजिए।
4. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (i) स्तनधारी की श्रोणिमेखला
   (ii) सरीसृप की श्रोणिमेखला
   (iii) पक्षियों की श्रोणिमेखला
   (iv) फर्कुला हड्डी
   (v) पक्षी के अंशमेखला
   (vi) स्तनियों की अंशमेखला।
5. मेखला क्या है?
6. अंसमेखला तथा श्रोणिमेखला में क्या अन्तर हैं?
7. निम्नलिखित के स्वच्छ व नामांकित चित्र बनाइए–
   (i) खरगोश की टीबियो फिबुला
   (ii) पक्षी एवं सरीसृप की श्रोणिमेखला
   (iii) सरीसृप एवं एवीज की अंशमेखला
   (iv) पक्षी की अंशमेखला
   (v) मेंढक की पेल्विक गर्डिल
   (vi) मेंढक की अंशमेखला

(vii) रैबिट की श्रोणिमेखला
(viii) खरगोश की अंशमेखला
(ix) सरीसृप की श्रोणिमेखला
(x) एक कशेरुकी की अंशमेखला
(xi) पक्षी का ह्यूमरस उपांगास्थि
(xii) खरगोश की अग्रभुजा की हड्डिया
(xiii) पक्षी व स्तनी की श्रोणिमेखला
(xiv) उभयचर व रेप्टाइल फीमर

8. श्रोणिमेखला का महत्व समझाइए।
9. ऐम्फिबिया के अग्रपाद की हड्डियों का वर्णन कीजिए।
10. टिप्पणी निखिए–
    (i) कोलोन (Colon)
    (ii) गिजर्ड (Gizzard)
    (iii) यकृत (Liver)
    (iv) पैन्क्रियाज (Pancreas)
    (v) पैन्क्रियाज के रस
    (vi) स्क्रॉल वाल्व
    (vii) स्तनी की यकृत की संरचना
    (vii) यकृत की औतिक रचना एवं कार्य
    (viii) कबूतर का पाचन तन्त्र
    (ix) स्तनियों में पाचन तन्त्र
11. मछली या मेंढक की आहार नाल का नामांकित चित्र बनाइए।
12. मछली में स्क्रॉल वाल्व क्या है? समझाइए।
13. कबूतर के आहार नाल का स्वच्छ नामांकित चित्र बनाइए।
14. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) वायु कोष
    (ii) वायु नलिका
    (iii) लेरिंक्स
    (iv) क्लोम/गिल्स
15. नामांकित चित्र बनाइए–
    (i) कबूतर के वायु कोष
    (ii) कबूतर का लेरिंक्स
    (iii) कबूतर में वक्ष एवं फेफड़ों का वर्णन
    (iv) खरगोश की ट्रैकिया।

टिप्पणी

16. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–
    (i) खरगोश की वायुनाल
    (ii) खरगोश में श्वसन विधि
    (iii) सिरिंक्स
    (iv) कबूतर के वायु कोष
    (v) त्वचीय श्वसन
    (vi) लेरिंक्स।
17. खरगोश के श्वसन अंगों का संक्षिप्त में वर्णन करो।
18. कबूतर के वायु कोषों का वर्णन करो।
19. खरगोश के फेफड़ों का वर्णन करो।
20. यूरोमेस्टिक्स के फेफड़ों का वर्णन करो।
21. यूरोमेस्टिक्स एवं खरगोश के लेरिक्स का वर्णन करो।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. अध्यावरण क्या है? रेप्टाइल्स, पक्षी तथा स्तनधारियों की अध्यावरण का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
2. कशेरुकी की प्रारूपी त्वचा का वर्णन कीजिए तथा उसकी स्तनधारी एवं पक्षी की त्वचा से तुलना कीजिये।
3. एक मछली, एक उभयचरी तथा एक स्तनधारी की अध्यावरण की उदग्र काट का नामांकित चित्र बनाइये। प्रत्येक के चार महत्वपूर्ण लक्षण लिखिये।
4. वर्टीब्रेट जन्तुओं में इन्टैगुमेण्ट के विभिन्न डेरिवेटिव्स का वर्णन कीजिये।
5. सरीसृप, पक्षियों तथा स्तनधारियों की त्वचा का तुलनात्मक वर्णन कीजिये।
6. पक्षी एवं स्तनधारी की त्वचा का वर्णन कीजिये।
7. कबूतर और खरगोश की त्वचा के अनुप्रस्थ काट के नामांकित चित्र बनाइये और दोनों में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
8. रेप्टाइल्स, पक्षियो एवं स्तनधारियो की त्वचा का तुलनात्मक वर्ण कीजिए।
9. पृष्ठवेशियों में त्वचा के विकास का वर्णन कीजिए।
10. मेंढक तथा सांडे की त्वचा की रचना का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
11. पृष्ठवेशियों की त्वचा एवं इसके रूपान्तरण का वर्णन कीजिए।
12. उभयचर एवं स्तनधारी की त्वचा की तुलना कीजिए।
13. टेट्रापोड्स में गर्डिल्स के उद्भव का वर्णन कीजिए। रेप्टाइल, पक्षी एवं स्तनियों की पेक्टोरल गर्डिल्स का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
14. वर्टीब्रेट्स में पेल्विक गर्डिल्स का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
15. ऐम्निओटा (Amniota) में पेल्विक गर्डिल्स का तुलनात्मक विवरण कीजिए।
16. रेप्टाइल की अंशमेखला की संरचना का वर्णन करते हुए उसकी तुलना पक्षी एवं स्तनधारी से कीजिए।

17. मुर्गे व शशक की श्रोणिमेखला का विस्तृत वर्णन कीजिए।
18. उभयचर, सरीसृप, पक्षी तथा स्तनधारी की श्रोणिमेखला का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
19. सरीसृप, पक्षी एवं स्तनधारी की श्रोणिमेखला (पेल्विक गर्डिल्स) का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
20. मेंढक या मछली की श्रोणि मेखला का वर्णन कीजिए।
21. सरीसृप, पक्षी तथा स्तनधारी की अंशमेखला का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
22. कबूतर एवं खरगोश में अंसमेखलाओं की अस्थियों का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
23. चतुष्पादी जन्तुओं में मेखला का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
24. पक्षी और स्तनधारी के अंशमेखला का सचित्र तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
25. उभयचर, सरीसृप व पक्षी की श्रोणिमेखला का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
26. सरीसृप तथा पक्षी की श्रोणिमेखला का वर्णन कीजिए।
27. सरीसृप, पक्षी एवं स्तनधारी की श्रोणिमेखला का नामांकित चित्र बनाइए।
28. पक्षी व स्तनधारी की श्रोणिमेखला की तुलना कीजिए।
29. मेंढक व छिपकली की अंशमेखला का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
30. वैरेनस तथा मुर्गे की अंशमेखला के नामांकित चित्र बनाइए।
31. मेंढक व खरगोश की पेक्टोरल गर्डिल का सचित्र वर्णन कीजिए।
32. टेट्रापोड्स के पश्चपादों के कंकाल का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
33. रेप्टाइल, पक्षी एवं स्तनियों के अग्र या पश्चपादों के कंकाल का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
34. पक्षियों तथा स्तनधारियों की श्रोणिमेखला के नामांकित चित्र बनाइए।
35. उभयचर और स्तनी की श्रेणिमेखला का वर्णन और तुलना कीजिए।
36. ऐम्फिबिया, रेप्टिलिया और मैमेलिया में पेक्टोरल गर्डिल का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
37. किन्ही दो कशेरुकियों की पेक्टोरल गर्डिल का नामांकित चित्र बनाइए।
38. सरीसृप एवं स्तनधारी की श्रोणिमेखला का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
39. एक पक्षी तथा स्तनधारी की आहारनाल का तुलनात्मक वर्णन कीजिए। यह भी लिखिए कि ये अपने भोजन ग्रहण करने की आदत कि लिए किस प्रकार अनुकूलित हैं?
40. स्कॉलिओडॉन के पाचन तन्त्र तथा भोजन ग्रहण करने की विधि का वर्णन कीजिए।
41. कबूतर के पाचन तन्त्र का वर्णन कीजिए।
42. छिपकली तथा पक्षी के पाचन तन्त्र का वर्णन कीजिए तथा यह बताइए कि ये कैसे अपने भोजन ग्रहण करने हेतु उपयुक्त हैं।
43. विभिन्न कशेरुकियों की आहार नाल का नामांकित चित्र बनाइए।

44. कशेरुकियों की आहार नाल का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
45. ऐम्फिबिया एवं मैमेलिया वर्गों की आहार नाल का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
46. निम्नलिखित में से किन्हीं दो की आहार नालों की संरचना का तुलनात्मक वर्णन कीजिए–
    (i) मेंढक (ऐम्फिबिया)
    (ii) यूरोमैस्टिक्स (रेप्टाइल्स)
    (iii) खरगोश (मैमेल)
47. रेप्टाइल, पक्षी एवं स्तनी के पाचन तन्त्र का सचित्र तुलनात्मक विवरण दीजिए।
48. पक्षियों के पाचन तन्त्र का वर्णन कीजिए।
49. पक्षी एवं स्तनियों के पाचन तन्त्र का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
50. मछली व पक्षी की आहार नाल का नामांकित चित्र बनाइए।
51. मछली तथा ऐम्फिबिया के पाचन तन्त्र का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
52. एम्फिबिया व पक्षी के पाचन तन्त्र की तुलना कीजिए।
53. कबूतर एवं यूरोमैस्टिक्स के श्वसन तन्त्र का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
54. कबूतर के श्वसन अंगों का वर्णन करो।
55. मेंढक के श्वसन अंगों का वर्णन कीजिए और इसकी तुलना यूरोमैस्टिक्स से कीजिए।
56. खरगोश के श्वसन अंगों का वर्णन कीजिए। इसकी तुलना कबूतर से कीजिए।
57. कशेरुक प्राणियों में श्वसन अंग (फेफड़ों) का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
58. यूरोमैस्टिक्स, कबूतर एवं खरगोश के श्वसन तन्त्र का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
59. यूरोमैस्टिक्स के श्वसन अंगों का वर्णन कीजिए।
60. स्कॉलियोडॉन में श्वसन तन्त्र का वर्णन कीजिए एवं इसकी तुलना मेंढक से कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Cytology – C.B. Powar
2. Principle of Physiology & Anatomy – Tor-Tora
3. Animal Physiology – Goyal & Sastry
4. Animal Physiology and Biochemistry – Eckert and Ramelils
5. Animal Physiology and Biochemistry – Dr. K.V. Sastry

टिप्पणी

इकाई 3 कॉर्डेटस के विभिन्न तन्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Account of Various Systems in Chordates)

संरचना (Structure)

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 कशेरुकियों में परिसंचरण तन्त्र
  3.2.1 हृदय
  3.2.2 कशेरुकियों के विभिन्न वर्गों में हृदय का अध्ययन
  3.2.3 कशेरुकियों में ऐओर्टिक आर्चेज
  3.2.4 कशेरुकियों में ऐओर्टिक आर्चेस का रूपान्तरण
3.3 कशेरुकियों में तन्त्रिका तन्त्र : मस्तिष्क
  3.3.1 तन्त्रिका तन्त्र का विभाजन
  3.3.2 कशेरुकियों का केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र
  3.3.3 विभिन्न कशेरुकियों में मस्तिष्क का अध्ययन
3.4 मूत्रजनन तन्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
  3.4.1 कशेरुकी गुर्दे एवं वाहिनियाँ
  3.4.2 प्रतिनिधि कशेरुकों का उत्सर्जी तन्त्र
  3.4.3 विभिन्न कशेरुक प्राणियों में जनन अंगों का अध्ययन
3.5 स्तनियों में प्लेसन्टेशन
  3.5.1 प्लेसेन्टा
  3.5.2 भ्रुण का इम्प्लांटेशन
  3.5.3 प्लेसेन्टा का वर्गीकरण
  3.5.4 प्लेसेन्टा की कार्यिकी एवं कार्य
3.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय (Introduction)

निम्नस्तरीय शारीरिक संगठन मे प्राणियों – छोटे एककोशीय (Unicellular) एवं सरल बहुकोशीकीय प्राणियों में पोषण पदार्थ या भोजन, ऑक्सीजन, हॉर्मोन्स एवं अन्य उपयोगी पदार्थों का आदान–प्रदान विसरण विधि के द्वारा होता है, लेकिन गति से प्रचलन करने वाले विकसित देहगुहीक प्राणियों (Coelomate animals) – कशेरुकों (Vertebrates) में पोषण विधि, हार्मोन्स (Hormones) प्रतिजैविक (Antibodies) एन्जाइम्स एवं विटामिन्स को प्रत्येक भाग में तीव्र एवं प्रभावी रूप से ले जाने के लिए प्रारंभिक देहगुहिका (Bodycavity) में एक विस्तृत संवहनी तन्त्र (System) रूपांतरित होती है। संवहनी तन्त्र विभिन्न उपयोगी पदार्थों को शरीर के विभिन्न भागों में ले जाता है तथा उत्सर्जी पदार्थों को विभिन्न भागों से एकत्रित करके उत्सर्जी अंगों (Excretory organs) तक ले जाता है। शरीर के अंदर विभिन्न पदार्थों का वह संवहन, परिवहन/संचरण (Circulation) कहलाता है। इस संवहन तन्त्र में अंग एवं वाहिनियाँ (Vessels) होती है, जिनमें एक तरल पदार्थ–रक्त लसिका (Lymph) एवं जल संवाहित होता रहता है। इस तरल पदार्थ में घुलकर पोषण पदार्थ, उत्सर्जी पदार्थ, गैसेस–ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य पदार्थ शरीर के अंदर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते है। प्राणियों के शरीर में पाए जाने वाले इन द्रव पदार्थों को दैहिक/शरीर द्रव (Body fluid) कहते है।

प्रत्येक जीवधारी को जीवन (Life) बनाये रखने के लिए शरीर के भीतरी तथा बाहरी वातावरणीय दशाओं मे निरंतर होते रहने वाले परिवर्तनों के अनुसार प्रतिक्रिया करनी होती है। जीवन के लिए इसकी अनेक उपापचयी क्रियाओं (Metabolic activities) में पूर्ण समन्वय (Coordination) तथा समाकलन (Integration) आवश्यक होता है।

जन्तु शरीर में इस समन्वय तथा समाकलन को बनाए रखने के लिए दूरसंचार तारों की भाँति पूर्ण शरीर में महीन धागों के समान तन्त्रिकाएँ (Nerves) फैली रहती है। ये वातावरणीय उद्दीपत्तों (Stimulus) को संवेदी अंगों से ग्रहण कर विद्युत – आवेगों या प्रेरणाओं (Electrical impulses) के रूप में तीव्रता के साथ इनका प्रसारण (Conduction) करके शरीर के विभिन्न अंगों, धागों तथा ग्रन्थियों आदि के बीच समन्वय स्थापित करती है।

प्राणियों के शरीर में तन्त्रिका को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का कार्य तन्त्रिका ऊतक के द्वारा किया जाता है। यह तन्त्रिका ऊतक (Nervous tissue) भ्रूण की एक्टोडर्म (Ectoderm) के साथ विकसित होता है तथा शरीर के संपूर्ण भागों में फैला रहता है। तन्त्रिका ऊतक (Nervous tissue) तन्त्रिका कोशिकाओं या न्यूरॉन्स (Neurons) तन्त्रिका तन्तुओं (Nervefibre) एवं न्यूरोग्लिया (Neuroglea) से निर्मित होता है।

कशेरुक प्राणियों में मूत्रोजनन तन्त्र में उत्सर्जन और ऑस्मोरेग्यूलेशन जैसी दोनों होमियोस्टैटिक प्रक्रिया जो कि उत्सर्जी अंगों जैसे कि गुर्दे और मुत्रवाहिनी नलिकाओं के द्वारा होती है। मूत्रजनन तन्त्र एवं प्रजनन तन्त्रों का संरचनात्मक दृष्टि से अधिक निकट सम्बन्ध रहता है। जननांग प्रणाली में जननेंद्रिय और

जननांग नलिकाएँ, मादाओं में अण्डाणु तथा पुरूषों मे शुक्राणु उत्पन्न करते है जो इस नलिका के द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते है। कार्यात्मक दृष्टि से उत्सर्जन एवं प्रजनन तन्त्र दोनों परस्पर इतने निकट होते है कि दोनों तन्त्रों – उत्सर्जन (Excretory) एवं प्रजनन (Reproduction) का अध्ययन एक साथ करना आवश्यक होता है।

विवपेरस/जरायुज (Viviparous) प्राणियों मे अण्डे में पोषण पदार्थ या संग्रहीत भोजन की मात्रा नहीं के बराबर होती है। इस कारण भ्रुण के विकास के समय भ्रुण पोषण के हेतु पुर्णतः मादा/माँ (Mother) पर आश्रित होता है। इस कारण इन प्राणियों में भ्रूण गर्भाशय (Uterous) के अंदर विकसित होता है। भ्रुण गर्भाशय की भित्ति से सम्बन्धित होकर उससे जन्म तक अपरा (Placenta) के द्वारा पोषण प्राप्त करता हैं। पूर्ण विकसित अपरा/प्लेसेन्टा केवल युथेरियन प्राणियों (Eutherian) में पाया जाता है। अन्य स्तनी प्राणी–प्रोटोथीरिया (Prototheria) या मोनोट्रीम्स (Monotremes) प्राणी अण्डे (Eggs) देते है। इन अण्डों मे पीतक की मात्रा अधिक होती है। मेटाथीरिया (Metatheria) या मार्सुपियल्स (Marsupials) स्तनी प्राणियों में भ्रुण (Embryo) अपरिपक्व (Immature) अवस्था में जन्म लेता है, लेकिन कुछ मार्सुपियल प्राणियों मे पीतक कोष अपरा (Yolk sac placenta) पाया जाता है।

उदाहरण– डैस्यूरस (Dasyarus) एवं पैरामील्स (Parameles)। इन प्राणियों मे अपरा (Placenta) के साथ–साथ आदिम ऐलेन्टाइक अपरा (Primitive allantoic Placenta) पाया जाता है जो कि ऐलेन्टोकोरियन (Allantoch- orian) द्वारा निर्मित होता है।

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित व्याख्या की विस्तृत जानकारीयाँ पा सकते है–

- कशेरुकियों में परिसंचरण तन्त्र
- कशेरुकियों में तन्त्रिका तन्त्र : मस्तिष्क
- मूत्रजनन तन्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
- स्तनियों में प्लेसेन्टेशन

3.2 कशेरुकियों में परिसंचरण तन्त्र (Circulatory System in Vertebrates)

शारीरिक कार्यों के लिए ऊर्जा की अति आवश्यकता होती है। ऊर्जा के लिए जन्तु भोजन ग्रहण करता है। भोजन मुखद्वार से प्रवेश कर आहार नाल तक पहुँचता है, जहाँ उसका रासायनिक क्रियाओं द्वारा पाचन होता है तथा अपचित भोजन का मल के रूप में मलद्वार द्वारा त्याग कर दिया जाता है। ऊर्जा के लिए, आहार नाल में

भोजन को पचाने मात्र से कोई लाभ नहीं जब तक कि इन पचे हुए पोषक पदार्थों को आहार नाल से शरीर की सभी कोशिकाओं में पहुँचाने की व्यवस्था न हो। क्योंकि ऑक्सीजन की उपस्थिति में पोषक पदार्थों से ऊर्जा का उत्पादन शरीर की कोशिकाओं में ही होता है, अतः जन्तु–शरीर में आवश्यक पोषक पदार्थों को शरीर कोशिकाओं तक ले जाने के लिए नलिकाओं से बना एक तन्त्र होता है। जिसे **परिसंचरण तन्त्र (circulatory system)** कहते हैं। शरीर एवं वातावरण के बीच तथा शरीर के विभिन्न ऊतकों के बीच पदार्थों का निरन्तर **रासायनिक आदान प्रदान** इसी तन्त्र के माध्यम से होता है। अतः यह तन्त्र, पाचन–तन्त्र से पोषक पदार्थों, श्वसन–अंगों से ऑक्सीजन, एण्डोक्राइन ग्रन्थिओं से हॉर्मोन्स को शरीर की कोशिकाओं में वितरण करने तथा कोशिकाओं से कार्बन डाइऑक्साइड को श्वसन अंगों में और यूरिया, आदि उत्सर्जी पदार्थों को उत्सर्जन अंगों में पहुँचाने का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त यह तन्त्र **होम्योस्टैसिस (homeostasis)** का कार्य भी करता है। इस कार्य के अन्तर्गत यह तन्त्र ऊतकों में कोशिकाओं के चारों ओर के तरल वातावरण की रासायनिक एवं भौतिक दशाओं को सुनिश्चित स्तर पर स्थायी बनाये रखता है। इन महत्वपूर्ण कार्यों को करने के लिए परिसंचरण तन्त्र में दो प्रकार के तरल होते हैं– **(i) रक्त (blood)** तथा **(ii) लिम्फ या लसिका (lymph)**। ये दोनों ही तरल जन्तु के शरीर के अंदर एक–दूसरे से पृथक् अनेक छोटी–छोटी वाहिनियों द्वारा शरीर की कोशिकाओं के चारों ओर फैले रहते हैं। अतः परिसंचरण तन्त्र को दो स्पष्ट भागों में बाँटा जाता है–

1. रुधिर परिसंचरण तन्त्र (Blood vascular or circulatory system),
2. लिम्फ या लसिका तन्त्र (lymphatic system)

1. **रुधिर परिसंचरण तन्त्र (Blood vascular system)**– यह तन्त्र सभी कशेरुकी जन्तुओं में **हृदय, धमनियों, शिराओं, रुधिर केशिकाओं** तथा **रुधिर** (heart, arteries, veins, capillaries and blood) से मिलकर बना होता है–

   (i) रुधिर (Blood)– यह लाल रंग का तरल पदार्थ है जो **रुधिर प्लाज्मा** (blood plasm) तथा स्वतन्त्र रुधिर कोशिकाओं या **रुधिर कणिकाओं** (bloodcorpuscles) से मिलकर बना होता है।

   (ii) हृदय (heart)– यह एक रूपान्तरित नलिका के रूप में होता है जिसकी दीवारें अत्यन्त ही पेशीय होती हैं जो शरीर के सभी भागों में रुधिर को पहुँचाने के लिए नियमित रूप से संकुचित एवं फैलती रहती हैं।

   (iii) धमनियाँ (arteries)– ये वे रुधिर वाहिनियाँ हैं जो हृदय से ऑक्सिजिनेटेड रुधिर को लेकर शरीर के विभिन्न अंगों को वितरित करती हैं।

   (iv) शिराएँ (veins)– ये शरीर के विभिन्न अंगों से डीऑक्सीजिनेटेड या अशुध्द रुधिर को एकत्रित करके हृदय में लाती हैं।

टिप्पणी

(iv) केशिकाएँ (capillaries)– ये अत्यन्त छोटी–छोटी पतली दीवारों से बनी नलिकाएँ हैं जो सबसे छोटी धमनियों या आर्टिरियोल्स (arterioles) को सबसे छोटी शिराओं या वैन्यूल्स (venules) से जोड़ती हैं। इस प्रकार के रुधिर परिसंचरण तन्त्र को जिसमें रुधिर केशिकाओ, धमनियों तथा शिराओं में होकर बहता है, बंद प्रकार का रुधिर परिसंचरण तन्त्र कहते हैं जो सभी कशेरुकी जन्तुओं में पाया जाता है।

2. **लिम्फ या लसिका तन्त्र (Lymphatic system)**– यह तन्त्र साइक्लोस्टोम्स तथा कार्टिलेजिनस मछलियों को छोड़कर सभी कॉर्डेट जन्तुओं में पाया जाता है जो लिम्फ एवं लिम्फ नलिकाओं से मिलकर बना होता है–

(i) लिम्फ (Lymph)– यह एक ऊतकीय तरल (tissue fluid) होता है जो शरीर अंगों की ऊतक की कोशिकाओं के मध्य स्थित इण्टरसैलुलर स्थानों (intercellular spaces) में पाया जाता है। यह रुधिर प्लाज्मा की तरह का होता है, किन्तु इसमें लाल रुधिर कणिकाओं (RBC) तथा कुछ प्रोटीन्स का अभाव होता है।

(ii) लिम्फ केशिकाएँ (Lymph capillaries)– ये छोटी–छोटी लिम्फ नलिकाओं से बना जाल होता है, जो लिम्फ को एकत्रित करती है।

(iii) लिम्फ नलिकाएँ (Lymph vessels)– ये बड़ी एवं पतली दीवारयुक्त नलिकाएँ हैं जो लिम्फ केशिकाओं के आपस में जुड़ने से बनती हैं तथा अन्त में शिराओं में खुलती हैं।

(iv) लिम्फ नोड्स (Lymph nodes)– ये केवल स्तनियों में लिम्फ नलिकाओं के ऊपर पायी जाती हैं जिनमें रुधिर की लिम्फोसाइटस (Lymphocytes) का निर्माण होता है।

कशेरुकी जन्तुओं के विकास के दौरान इनके रुधिर परिसंचरण तन्त्र में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। ये सभी परिवर्तन इन जन्तुओं के जलीय माध्यम से स्थलीय माध्यम में आने से या इनके गिल्स के फेफड़ों में बदल जाने से सम्बन्धित है, क्योंकि स्थलीय जीवनयापन करने के लिए इन्हें एक शक्तिशाली एवं उच्च दाब पर कार्य करने वाले रुधिर परिसंचरण तन्त्र की आवश्यकता हुई।

3.2.1 हृदय (Heart)

कशेरुकियों में हृदय का विकास (Evolution of Heart in Vertebrates)

सभी कशेरुकियों में हृदय एक अयुग्मित अंग है, किन्तु इसकी उत्पत्ति बाइलेटरल है। भ्रूण (embryo) के विकास के समय मीजेनकाइम (mesenchyme) फैरिंक्स के नीचे **एण्डो कॉर्डियल कोशिकाओं** (endocardial cells) के एक समूह का निर्माण करता है जो बाद में एक जोड़ी पतली **एण्डोथीलियल ट्यूब्स** (endothelial tubes) में परिवर्तित हो जाता है। ये दोनों एण्डोथीलियल ट्यूब्स

आपस में फ्यूज होकर एक **एण्डोकार्डियल ट्यूब** (endocardial tube) का निर्माण करती है, जो फैरिंक्स के नीचे लम्बाई में व्यवस्थित रहती है। बोनी मछलियों, रेप्टाइल्स तथा पक्षियों में एण्डोकार्डियल ट्यूब दो विटैलाइन शिराओं के आपस में मिलने से बनती है, जबकि स्तनियों मे यह केवल एक एण्डोथीलियल ट्यूब से बनती है। स्प्लैन्कनिक मीसोडर्म (splanchnic mesoderm) जो एण्डोडर्म के नीचे स्थित होती है, एण्डोकार्डियल ट्यूब के चारों ओर लम्बाई में फोल्डेड (folded) हो जाती है। इस प्रकार एण्डोकार्डियल ट्यूब एक दो स्तरीय ट्यूब में परिवर्तित हो जाती है जो हृदय का निर्माण करती है। इसमें स्पलैन्कनिक मीसोडर्म का बाहरी स्तर मोटा होकर हृदय के पेशीय स्तर या **मायोकार्डियम** (myocardium) तथा एक बाहरी पतले **एपिकॉर्डियम** या विसरल पैरिकार्डियम (epicardium or visceral pericardium) स्तर का निर्माण करता है। वास्तविक एण्डोकार्डियल ट्यूब हृदय के अंदर का स्तर या **एण्डोकार्डियम** (endocardium) का निर्माण करती है। सर्वप्रथम हृदय एक सीधी ट्यूब के आकार का होता है, जो बाद में लम्बाई में बढ़कर एक ‘S’ के आकार की नलिका में बदल जाता है। इसके पश्चात् नलिका की गुहा के विभाजन, इसकी दीवार में विभिन्न मोटाई के विकसित होने तथा इसके अंदर वाल्व्स (valves) के विकसित होने के फलस्वरूप यह तीन या चार चैम्बर के हृदय में बदल जाती है। इस प्रकार कशेरुकियों का हृदय एक मूल ढाँचे के अनुसार बना होता है। यह एक थैलियों की संरचना है जिसकी दीवारें पेशीय होती हैं। यह शिराओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों से अशुद्ध रुधिर को प्राप्त करता है तथा रुधिर को धमनियों के द्वारा शरीर के विभिन्न भागों को वितरित करता है।

3.2.2 कशेरुकियों के विभिन्न वर्गों में हृदय का अध्ययन (Study of Heart in Different Classes of Vertebrates)

A. एककक्षीय हृदय (Single-Chambered Heart)

सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalochordata)– प्रारम्भिक **कॉर्डेट**; जैसे– **ब्रैंकियोस्टोमा** (Branchiostoma) में एक वास्तविक हृदय का पूर्ण अभाव होता है। इसके स्थान पर फैरिंक्स के वैण्ट्रल तल पर स्थित **वैण्ट्रल ऐओर्टा** (ventral arorta) पेशीयुक्त तथा संकुचनशील (muscular and contractile) होकर हृदय जैसा कार्य करता है। कुछ जन्तुशास्त्री **ब्रैंकियोस्टोमा** में इसी को **एककक्षीय हृदय** की संज्ञा देते हैं।

इसी एककक्षीय हृदय से कशेरुकियों के हृदयों का विकास हुआ है। अतः प्रारम्भिक कॉर्डेट से उच्च कार्डेट्स के हृदय में निम्नलिखित प्रोग्रैसिव रूपान्तरण (progressive modification) मिलते हैं–

(i) कार्डियल ट्यूब कन्सट्रिक्शन (constriction) के फलस्वरूप हृदय के चैम्बर्स या कोशों का निर्माण करती है।

(ii) प्रत्येक चैम्बर्स के मध्य में विभाजक (partition) दीवार के बनने पर दो अलग–अलग चैम्बर्स में बँटने की कोशिश करता है।

टिप्पणी

(iii) मछलियों एवं ऐम्फिबियन्स में हृदय धीरे–धीरे सिर के पीछे के भाग में तथा एम्नियोट्स (amniotes) में गर्दन के लम्बी होने एवं फेफड़ों के बनने के फलस्वरूप थोरेसिक गुहा में स्थानान्तरित हो जाता है।

B. द्विकक्षीय या सिंगल सर्किट वीनस हृदय (Two-Chambered or Single Circuit Venous Heart)

(a) साइक्लोस्टोम्स (Cyclostomes)– कशेरुकी जन्तुओं में हृदय की सबसे साधारणतम संरचना साइक्लोस्टोम्स, जैसे लैम्प्रे तथा हैग–फिश (lamprey and hag-fish) में देखने को मिलती है। इनके हृदय में स्थित चारों कक्ष या चैम्बर्स क्रमबध्द रूप से एक कतार में व्यवस्थित रहते हैं, जो क्रमशः **साइनस वेनोसस** (sinus venosus), **एट्रियम** (atrium), **वैण्ट्रिकिल** (ventricle) तथा एक छोटा **कोनस आर्टीरियोसस** (conus arteriosus) होते हैं। इनमें इसी क्रम में रुधिर बहता है। यह इन जन्तुओं की देहगुहा में अन्य आन्तरिक अंगों के साथ ही स्थित होता है।

(b) इलास्मोब्रैंक्स (Elasmobranchs)– अधिकांश कार्टिलेजिनस मछलियों, में जैसे **स्कॉलिओडॉन** (Scoliodon) या डॉगफिश का हृदय एक प्रारूपिक तथा विशिष्ट प्रकार का होता है। इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती हैं–

(i) यह पेशीय तथा डॉर्सोवैण्ट्रली मुड़ी एक 'S' के आकार की नलिका के रूप में होता है जिसमें चार कक्ष या चैम्बर्स क्रमबद्ध रूप से एक कतार में व्यवस्थित रहते हैं। इनमें से साइनस वेनोसस तथा कोनस आर्टीरियोसस **सहायक चैम्बर्स** (accessory chambers) होते हैं। केवल एट्रियम तथा वैण्ट्रिकिल (atrium and ventricle) ही हृदय के **वास्तविक चैम्बर्स** (true chambers) होते हैं। अतः मछलियों में हृदय **दो कक्षीय चैम्बर्स** (two-chamberd heart) का ही माना जाता है।

(ii) साइनस वेनोसस की दीवारें पतली होती हैं। यह बड़ी शिराओं जैसे कामन कॉर्डिनल तथा हिपेटिक शिराओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों से वीनस या अशुद्ध रुधिर को एकत्रित करता है तथा अग्र सिरे पर **साइनोएट्रियल छिद्र** (sino-atrial aperture) द्वारा एट्रियम में खुलता है। इस छिद्र पर एक जोड़ी वाल्व्स (valves) पाये जाते हैं।

(iii) एट्रियम एक बड़ा पतली, लचीली एवं पेशीय दीवार वाला चैम्बर होता है जो वैण्ट्रिकिल के डॉर्सल तल पर स्थित होता है। यह अपने वैण्ट्रल तल पर एक **एट्रियो–वैण्ट्रिकुलर छिद्र** (atrio-ventricular aperture) द्वारा वैण्ट्रिकिल में खुलता है। यह छिद्र एक जोड़ी वाल्व्स (valves) द्वारा सुरक्षित रहता है।

(iv) वैण्ट्रिकिल की दीवार अत्यन्त मोटी एवं पेशीय होती है। यह आगे की ओर एक सँकरी तथा पेशीय दीवारों वाली नलिका में खुलता है जिसे **कोनस आर्टीरियोसस** (conus arteriosus) कहते हैं जिसकी गुहा

में **सैमिलुनर वाल्व्स** (semilunar valves) की एक सीरीज (series) स्थित होती है। हृदय में स्थित सभी वाल्व्स रुधिर प्रवाह को पीछे बढ़ने से रोकते हैं।

(v) मछलियों का हृदय एक छोटी **पैरिकार्डियल गुहिका** (pericardial cavity) में स्थित होता है। मछलियों में ट्रान्सवर्स सैप्टम में एक जोड़ी छिद्र पाये जाते हैं जिनके द्वारा पैरीकार्डियल गुहिका देहगुहा में खुलती है। कोनस आर्टीरियोसस का अग्र भाग वैण्ट्रल ऐओर्टा (ventral aorta) का निर्माण करता है।

(c) टीलिओस्ट्स (Teleosts)– टीलिओस्ट्स या बौनी मछलियों का हृदय इलास्मोब्रैंक मछलियों के ही समान होता है। कुछ काण्ड्रोस्टीयाई (Condrostei) जैसे **पॉलिप्टैरस** (Polypterus) तथा होलोस्टीयाई (Holostei) जैसे **लैपिडोस्टीयस** (Lepidosteus) मछलियों के हृदय में कोनस आर्टीरियोसस कुछ लम्बा होता है तथा इसमें अनेक वाल्व्स होते हैं, किन्तु टीलिओस्टीयाई (Teleostei) मछलियों के हृदय में निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती हैं–

(i) इनके हृदय में कोनस के वैण्ट्रिकिल से फ्यूज (fuse) हो जाने के कारण यह अत्याधिक रिड्यूस्ड (reduced) या अनुपस्थित होता है। इसके अंदर केवल एक जोड़ी सेमिलुनर वाल्व्स (semilunar valves) पाये जाते हैं। इसके स्थान पर वैण्ट्रल ऐओर्टा का वह भाग जो कोनस से सम्बन्धित होता है, अत्याधिक फुलकर पेशीय हो जाता है। इस भाग को **बल्बस आर्टीरियोसस** (bulbus arteriosus) कहते हैं। इसकी दीवार लचीली होती है तथा वैण्ट्रिकिल के सिकुड़ने पर यह एक गुब्बारे की तरह फूल जाता है।

(ii) मछलियों का हृदय छोटा तथा दो कक्षीय (two-chambered) होता है, इसलिए इसमें रुधिर परिवहन का केवल एक ही सर्किट (single circuit of blood-circulation) होता है। क्योंकि यह शरीर के विभिन्न भागों से केवल नॉन–ऑक्सीजेनेटैड या अशुध्द रुधिर को ही प्राप्त करके उसे ऑक्सीजेनेशन या शुध्दीकरण के लिए गिल्स में पम्प (Pump) करता रहता है। जहाँ से यह डॉर्सल ऐओर्टा द्वारा एकत्रित करके शरीर के विभिन्न भागों को वितरित कर दिया जाता है। इस प्रकार के हृदय को **ब्रैंकियल या वीनस** (branchial or venous) हृदय कहते हैं।

C. तीन–कक्षीय हृदय (Three-Chambered Heart)

(a) डिप्नोई (Dipnoi)– ये वायु में श्वसन करने वाली मछलियाँ हैं। इसीलिए इन्हें लंग–मछलियाँ (lung fishes) कहते हैं। इनके हृदय में निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती हैं–

(i) इनके श्वसन तन्त्र के फेफड़ों (lungs) की उपस्थिती के कारण इनके हृदय तथा ऐओर्टिक आर्चेज अत्याधिक रूपान्तरित होते है। इन

टिप्पणी

जन्तुओं में रुधिर फेफड़ों या स्विम ब्लैडर (lungs or swim bladder) में ऑक्सीकृत या शुध्द होकर शरीर के अन्य भागों को वितरित होने की बजाय पहले सीधा हृदय में आता है। अतः इनके हृदय में शरीर के विभिन्न भागों से एकत्रित किया हुआ अशुध्द या अनॉक्सीकृत तथा फेफड़ों से एकत्रित किया हुआ शुध्द या ऑक्सीकृत दोनों ही रुधिर आते हैं।

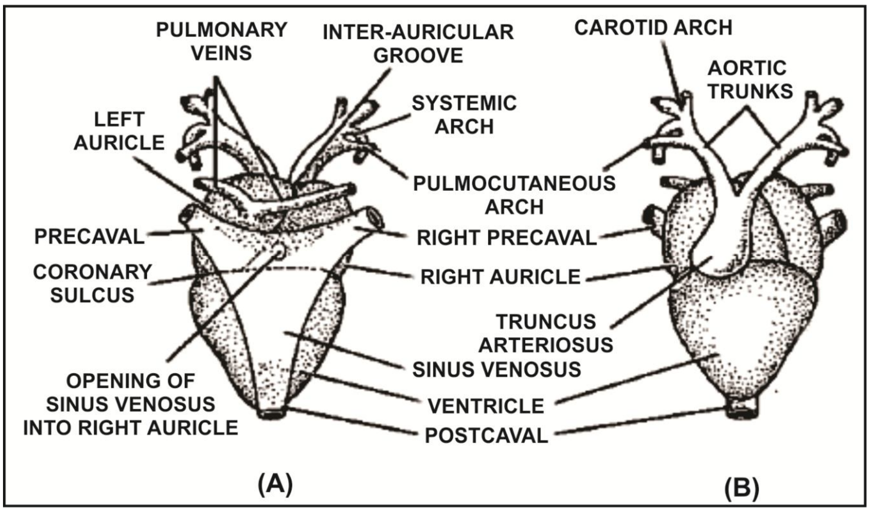

चित्र क्र. 3.1: **Heart of Frog : (A) Dorsal View, (B) Ventral View**

(ii) हृदय में ऑक्सीकृत तथा अनॉक्सीकृत रुधिर को आपस में मिलने से रोकने के लिए लंग–मछलियों के हृदय की एट्रियम (atrium) की गुहा एक अपूर्ण **इण्टर – ऑरिकुलर सेप्टम** (incomplete inter-auricular septum) के द्वारा दायें एवं बायें ऑरिकिल्स में विभाजित रहती है। इन मछलियों में यह सेप्टम एक छिद्र, जिसे **फोरामेन ओवेल** (foramen ovale) कहते हैं, के द्वारा छिद्रित रहता है जिसके द्वारा दोनों ऑरिकल्स एक–दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं।

(iii) इसी प्रकार हृदय का वैण्ट्रिकिल भी आंशिक रूप से विभाजित रहता है।

(iv) कोनस आर्टीरियोसस स्पाइरल (spiral) क्रम में मुड़ा हुआ होता है तथा अंदर से एक हॉरिजॉण्टल सेप्टम (horizontal septum) द्वारा डॉर्सल एवं वैण्ट्रल भागों में विभाजित रहता है। इस प्रकार के हृदय को **ट्रान्जिशनल हृदय** (transitional heart) कहते हैं, क्योंकि अपूर्ण विभाजन के फलस्वरूप इसमें ऑक्सीकृत या शुध्द तथा अनॉक्सीकृत या अशुध्द रुधिर आपस में मिश्रित हो जाते हैं।

टिप्पणी

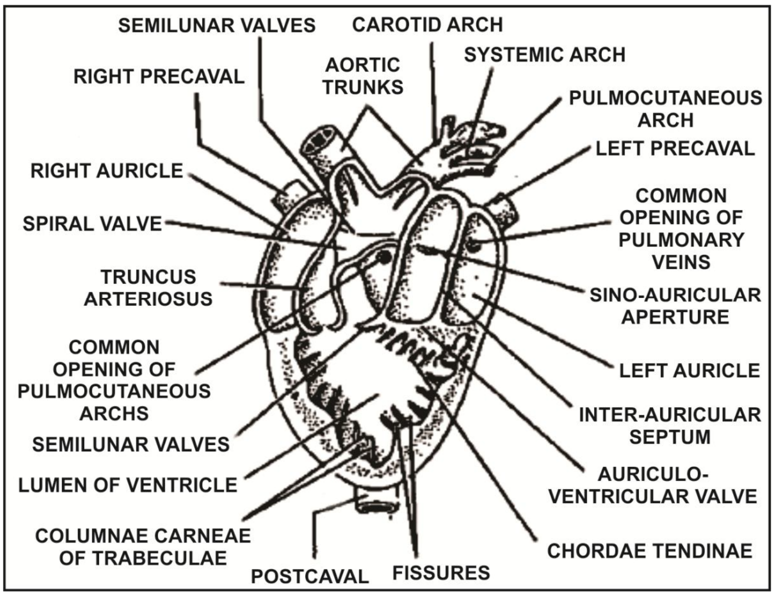

चित्र क्र. 3.2: L.S. of Heart

(b) एम्फिबिया (Amphibia)– एम्फिबियन्स का हृदय मछलियों के हृदय की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। इनके हृदय की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैं–

(i) इनके हृदय में एट्रियम (जो मछलियों में हृदय के डॉर्सल तल पर स्थित होता है) आगे की ओर धकेल दिये जाने के फलस्वरूप वैण्ट्रिकिल के सामने या ऐण्टीरियर सिरे पर स्थित होता है।

(ii) साइनस वेनोसस – दायें एट्रियम के डॉर्सल तल पर स्थित होता है। ऐम्फिबियन्स के हृदय में ये सभी परिवर्तन कार्डियक ट्यूब 'S' के आकार में ऐंठन की तरह मुड़ने (twisting of cardiac tube into 'S' shaped) के फलस्वरूप होते हैं। इनके हृदय में दोनों एट्रिया या आलिन्दों के मध्य स्थित **इण्टरऑरिकुलर सैप्टम** पूर्ण होता है तथा **फोरामेन ओवेल** अनुपस्थित होता है जिसके फलस्वरूप दायें एट्रियम का अशुद्ध रुधिर बायें एट्रियम के शुद्ध रुधिर से पूर्णतया अलग रहता है।

(iii) साइनस वेनोसस के दोनों लेटरल साइड्स में **प्रीकेवाल शिराएँ** या **डक्टस क्यूविराई** (precaval veins or ducts cuvierie) तथा इसके पिछले सिरे की ओर **पोस्टकेवाल शिरा** (postcaval) खुलती है। साइनस वेनोसस **साइनो–एट्रियल छिद्र** (sino-atrial aperture) जो दो फ्लेप के समान **साइनोएट्रियल वाल्व** (sino-atrial valve) के द्वारा नियन्त्रित रहता है, के द्वारा दायें ऑरिकिल में खुलता है। बायें ऑरिकिल में एक गोल छिद्र के द्वारा **पल्मोनरी शिरा** (pulmonary vein) खुलती है। दोनों ऑरिकिल्स एक ही कॉमन **एट्रियो–वैण्ट्रिकुलर छिद्र** (common atrio-ventricular

टिप्पणी

aperture) जो **एट्रियो–वैण्ट्रिकुलर वाल्व** द्वारा नियन्त्रित रहता हैं, के द्वारा वैण्ट्रिकल में खुलते हैं।

(iv) इनके हृदय में एक ही अविभाजित वैण्ट्रिकिल होता है, किन्तु इसकी दीवार मोटी एवं पेशीय (muscular) होती है तथा अंदर इसकी गुहा ट्रैबीकुली (trabeculae) में उभरी रहती है जिसके कारण वैण्ट्रिकिल की गुहा में दोनों शुद्ध एवं अशुद्ध रुधिर बहुत ही कम मात्रा में आपस में मिश्रित हो पाते हैं।

(v) एन्यूरन्स ऐम्फिबियन्स में **कोनस या ट्रंकस आर्टीरियोसस** (conus or truncus arteriosus) वैण्ट्रिकिल से इसके बायें एण्टीरो–वैण्ट्रल तल से निकलता है। इसके अग्र एवं पश्च सिरों पर अंदर तीन–तीन **सैमिलुनर वाल्वस** (semilunar valves) होते हैं। इसकी अंदर की गुहा एक **स्पाइरल वाल्व** (spiral valve) के द्वारा **केवम–पल्मोकुटेनियम** तथा **केवम–ऐओर्टिकम** (Cavum-pulmocutaneum and Cavum-aorticum) नामक दो भागों में लम्बवत् विभाजित रहती है जो अशुद्ध रुधिर को **पल्मोनरी आर्च** तथा शुद्ध रुधिर को **सिस्टेमिक** आर्च में भेजने का कार्य करते हैं।

(vi) यूरोडिला ऐम्फिबियन्स में हृदय की रचना निम्न कोटि की होती है। इनके हृदय का एट्रियम भी दो चैम्बर्स में विभाजित रहता है, किन्तु इण्टर–ऑरिकुलर सैप्टम सामान्यतः छिद्रित होता है। कोनस अल्पविकसित (reduced) होता है तथा **बल्बस आर्टीरियोसस** (bulbus arteriosus) के रूप में पाया है। इसमें स्पाइरल वाल्व का अभाव होता है।

(c) रेप्टाइल्स (Reptiles)– रेप्टाइल्स का हृदय ऐम्फिबियन्स की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। इनके हृदय में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं–

(i) इनका हृदय अधिक शक्तिशाली एवं पेशीय होता है। इनके हृदय में दो ऑरिकिल्स तथा दो अपूर्ण रूप से विभाजित वैण्ट्रिकिल्स पाये जाते हैं। दोनों ऑरिकिल्स के मध्य इण्टर–ऑरिकुलर सैप्टम पूर्ण होता है तथा दोनों ऑरिकिल्स अलग–अलग एट्रियो–वैण्ट्रिकुलर छिद्र द्वारा अपने–अपने वैण्ट्रिकिल्स से सम्बन्धित रहते हैं। प्रत्येक एट्रियो–वैण्ट्रिकुलर वाल्व द्वारा नियन्त्रित रहता है।

(ii) साइनस वेनोसस सभी रेप्टाइल्स के हृदय में पाया जाता है जो टर्टिल्स (turtles) में बड़ा, सर्पों व लिजर्ड्स (snake and lizards) में छोटा तथा क्रोकोडाइल्स (crocodiles) के हृदय में अंदर स्पष्ट होता है।

(iii) अधिकांश रेप्टाइल्स में वैण्ट्रिकिल आंशिक रूप से एक **अपूर्ण इण्टर–वैण्ट्रिकुलर सैप्टम** (incomplete inter-ventricular septum) से विभाजित रहता है, जो शुद्ध एवं अशुद्ध रुधिर के आपस में मिश्रित होने को कम करता है। क्रोकोडाइल्स में यह सैप्टम पूर्ण होता है,

टिप्पणी

अतः इनमें दो ऑरिकिल्स तथा दो वैण्ट्रिकिल्स अर्थात् इनमें एक **चार–कक्षीय** (four-chambered) शक्तिशाली हृदय पाया जाता है। फिर भी इनमें शुद्ध एवं अशुद्ध (oxygenated and deoxygenated) रुधिर का पूर्ण रूप से पृथ्कीकरण नहीं हो पाता है, क्योंकि दायें एवं **बायें सिस्टैमिक ऐओर्टी** (right and left systemic aortae) जो क्रमशः ऑर्टीरियल या शुद्ध तथा वीनस या अशुद्ध रुधिर को ले जाते हैं, आपस में जुड़कर **डॉर्सल ऐओर्टा** (dorsal aorta) का निर्माण करते हैं, फलस्वरूप शरीर के विभिन्न भागों को वितरण होने से पहले ही दोनों प्रकार के रुधिर मिश्रित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त दोनों सिस्टैमिक ऐओर्टी अपने आधार पर एक छिद्र, जिसे **फोरामेन ऑफ पैनिजी** (Forman of Panizzeae) कहते हैं, से आपस में जुड़े रहते हैं, अतः इसके द्वारा भी दोनों ऐओर्टी का कुछ रुधिर आपस में मिश्रित हो जाता है।

(iv) इन जन्तुओं का भ्रूणीय अवस्था का कोनस तथा वैण्ट्रल ऐओर्टा वयस्कों में तीन शाखाओं **पल्मोनरी तथा दायें एवं बायें सिस्टैमिक ट्रंकस** (pulmonary and right and left systemic truncus) में विभाजित हो जाता है।

हृदयों के बारे में उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि तीन–कक्षीय ऐम्फिबियन्स हृदय (जिसमें दो ऑरिकिल्स तथा एक वैण्ट्रिकिल होता है) तथा आंशिक रूप से चार–कक्षीय रेप्टिलियन हृदय (जिसमें दो ऑरिकिल्स तथा अपूर्ण रूप से विभाजित दो वैण्ट्रिकिल्स होते हैं) में शरीर के विभिन्न भागों को वितरण होने से पहले ही ऑर्टिरियल (शुद्ध) तथा वीनस (अशुद्ध) रुधिर का आंशिक रूप से मिश्रण हो जाता है। इस प्रकार इन दोनों ही वर्गों के हृदय **ट्रान्जिशनल हृदयों** (Transitional hearts) को दर्शाते हैं तथा साथ ही मछलियों के दो कक्षीय हृदय (जिसमें सिंगल सरकुलेशन पाया जाता है) तथा पक्षियों तथा स्तनियों के चार–कक्षीय हृदय (जिसमें डबल सरकुलेशन तथा आर्टिरियल एवं वीनस रुधिर पूर्णतया अलग–अलग रहते हैं) के बीच एक मध्यावस्था (midway) को प्रदर्शित करते हैं।

D. चार–कक्षीय, डबल–सरकिट पल्मोनरी हृदय (Four-Chambered, Double-Circuit Pulmonary Hearts)

पक्षी एवं स्तनधारी (Birds and Mammals)– इनके हृदय में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं–

(i) पक्षियों एवं स्तनधारियों में वैण्ट्रिकिल पूर्णतया विभाजित होता है, अतः इनके हृदय में दो ऑरिकिल्स तथा दो वैण्ट्रिकिल्स पाये जाते हैं, अर्थात् इनका हृदय पूर्णतया चार–कक्षीय होता है।

(ii) बायाँ ऑरिकिल फेफड़ों से ऑक्सीकृत या शुद्ध रुधिर प्राप्त करके बायें वैण्ट्रिकिल को देता है जो इसे सिस्टेमिक सरकुलेशन (systemic circulation) के द्वारा सम्पूर्ण शरीर से एकत्रित अनॉक्सीकृत या अशुद्ध रुधिर को प्राप्त करके उसे दायें वैण्ट्रिकिल को देता है जिसे वह

ऑक्सीजैनेशन (oxygenation) या शुद्धीकरण के लिए फेफड़ों में पम्प करता है। इस प्रकार इन जन्तुओं के हृदय में डबल सरकुलेशन (double circulation) पाया जाता है, जिसमें ऑक्सीकृत या शुद्ध तथा अनॉक्सीकृत या अशुद्ध रुधिर का लेशमात्र भी मिश्रण नहीं हो पाता। इस प्रकार के हृदय को **पल्मोनरी हृदय** (pulmonary hearts) कहते हैं जो पक्षियों एवं स्तनधारियों मे ही पाया जाता है।

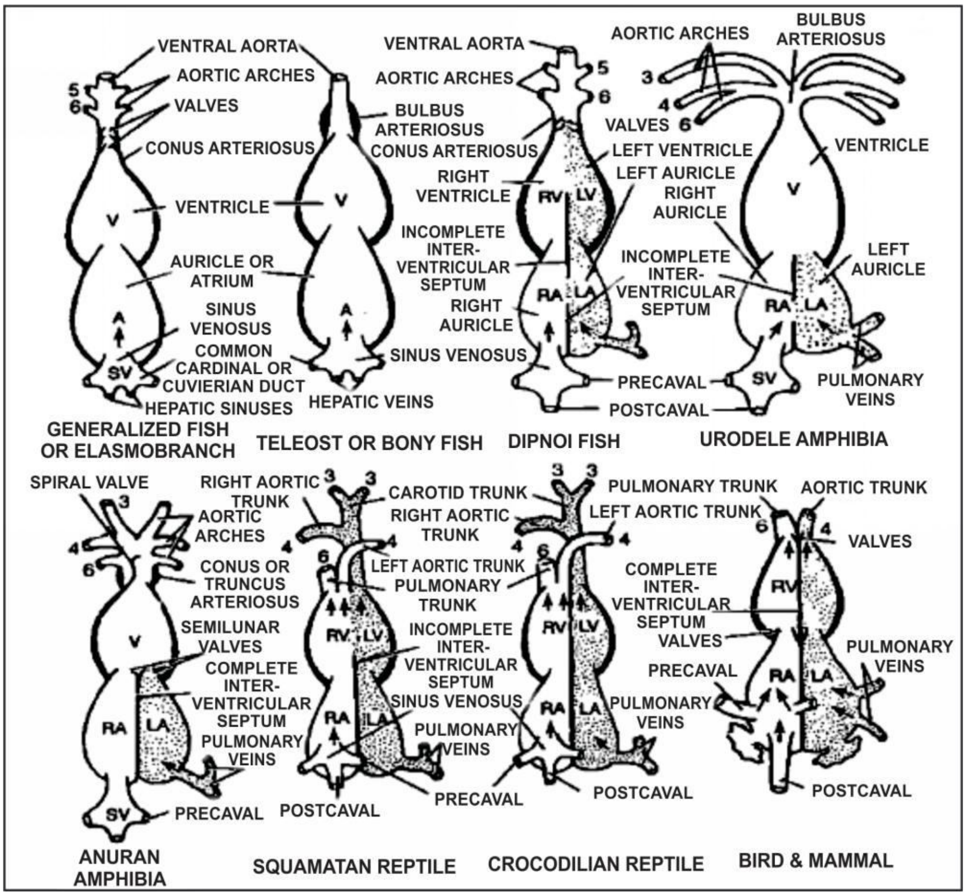

चित्र क्र. 3.3: Evolutionary Successive Modification of Heart in different Classes of Vertebrates : LA = Left Auricle. LV = Left Ventricle. RA = Right Auricle RV = Right Ventricle. SV = Sinus Venosus. Shaded chambers contain Oxygenated blood. 1 – 6 Represents Aortic arches

(iii) इनके हृदय में साइनस वेनोसस का पूर्ण अभाव होता है (जो वास्तव में दायें ऑरिकल की दीवार में पूर्णरूप से समेकित हो जाता है)। अतः दायें ऑरिकल के अंदर दोनों प्रीकेवाल तथा पोरटकेवाल सीधे अपने अलग–अलग छिद्रों से खुलकर अशुद्ध रुधिर को इसमें डालते हैं। इसी प्रकार बायाँ ऑरिकिल फेफड़ो को शुद्ध रुधिर को पल्मोनरी शिराओं के द्वारा प्राप्त करता है।

(iv) प्रिमिटिव या प्रारम्भिक कोनस ऑर्टीरियोसस इनके हृदय में पूर्णतया **एक पल्मोनरी ऐओर्टा** तथा **एक सिस्टैमिक ऐओर्टा** द्वारा विस्थापित (replaced) हो जाता है। पल्मोनरी ऐओर्टा दायें वैण्ट्रिकिल से अशुद्ध रुधिर को फेफड़ों में ले जाता है, जबकि सिस्टेमिक ऐओर्टा बायें वैण्ट्रिकिल से निकलकर शुद्ध रुधिर को शरीर के सभी भागों को वितरित करता हैं। दोनों ऐओर्टी के आधार पर सैमिलुनर वाल्व्स पाये जाते हैं जो रुधिर को एओर्टी में जाने देते हैं, किन्तु वैण्ट्रिकिल्स में वापस आने से रोकते हैं।

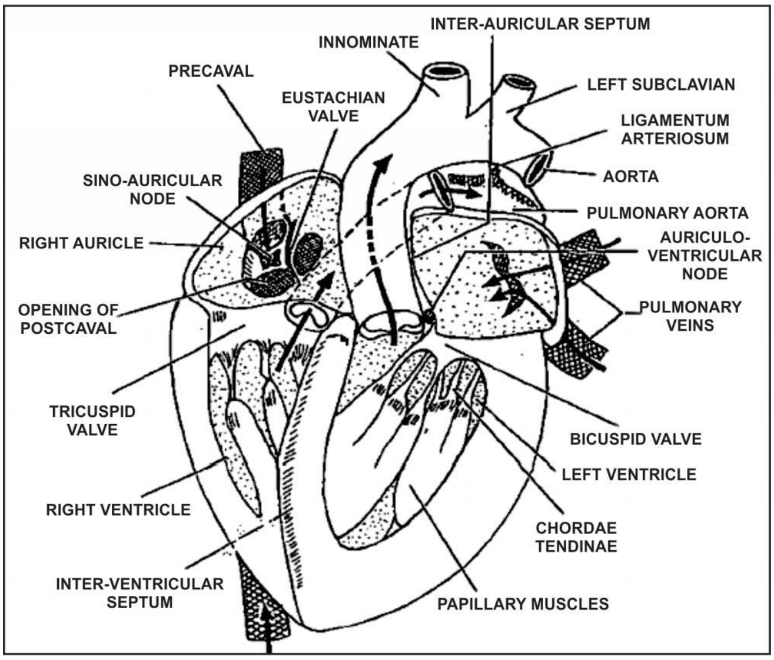

चित्र क्र. 3.4: Rabbit : L.S. Heart (Diagrammatic)

3.2.3 कशेरुकियों में ऐओर्टिक आर्चेज (Aortic Arches in Vertebrates)

भ्रूणीय ऐओर्टिक आर्चेज का आधारीय प्लान (Basic Plan of Embryonic Aortic Arches)– एक टिपिकल कशेरुकी के भ्रूण में आर्टिरियल या धमनी तन्त्र **एक वैण्ट्रल ऐओर्टा** (ventral aorta), एक **डॉर्सल ऐओर्टा** (dorsal aorta) तथा छः **जोड़ी ऐओर्टिक आर्चेज** (aortic arches) जो वैण्ट्रल ऐओर्टा को डॉर्सल ऐओर्टा से जोड़ते हैं, से मिलकर बनता है। हृदय से रुधिर वैण्ट्रल ऐओर्टा में आता है जो मिड वैण्ट्रली फैरिंक्स के नीचे आगे की ओर बढ़ता है तथा शरीर के अग्र भाग या सिर में एक जोड़ी **बाहरी कैरोटिड ऑर्टिरीज** (external carotid arteries) में विभाजित हो जाता है। वैण्ट्रल ऐओर्टा से निश्चित दूरी पर छः जोड़ी **ऐओर्टिक आर्चेज** निकलते हैं जो प्रत्येक सम्बन्धित गिल–क्लैफ्ट (gill-cleft) के सामने स्थित विसरल आर्च की बाहरी सतह स्थित होते है। प्रथम एओर्टिक आर्च को मैण्डिबुलर आर्च (mandibular arch), द्वितीय जोड़ी को हॉयोइड ऐओर्टिक आर्च तथा बाकी के आर्चों को तृतीय, चतुर्थ, पाँचवीं तथा **छठवीं**

जोड़ी ऐओर्टिक ऑर्चेज कहते हैं। प्रत्येक **ऐओर्टिक आर्च एक वैण्ट्रल एफ्फेरैण्ट ब्रैंकियल आर्टरी** (ventral afferent branchial artery) जो अशुद्ध या वीनस (venous) रुधिर को गिल्स को देती है तथा **एक डॉर्सल इफ्फेरैण्ट ब्रैंकियल आर्टरी** जो गिल्स से शुद्ध या ऑक्सीजिनेटेड रुधिर को एकत्रित करता है, से मिलकर बना होता है। प्रत्येक ओर की सभी **इफ्फेरैण्ट ब्रैंकियल आर्टरीज डॉर्सल** तल पर स्थित उसी ओर की लेटरल डॉर्सल ऐओर्टा या **रेडिक्स में** (lateral dorsal aorta or radix) खुलती हैं जो आगे सिर में **आन्तरिक कैरोटिड आर्टरी** के रूप में फैला रहता है। दोनों ओर के दोनों डॉर्सल ऐओर्टी फैरिंक्स के ठीक पीछे आपस में मिलकर **एक मीडियन डॉर्सल ऐओर्टा** बनाते हैं जो शरीर की पूर्ण लम्बाई में तथा पीछे पुच्छ भाग में **कॉडल** ऐओर्टी के रूप में फैला रहता है। इससे अनेक शाखाएँ निकलकर शरीर के विभिन्न भागों तथा आहार नाल को रुधिर देती हैं।

सारणी क्र. 3.1: कशेरुकी के विभिन्न वर्गों में हृदय का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study of Heart in different Classes of Vertebrate)

	Fish	**Amphibia**	**Reptilia**	**Aves**	**Mammalia**
Charac-ters	**Dog fish** *(Scoliodon)*	**Frog** *(Rana)*	**Lizard** *(Uromastix)*	**Pigeon** *(Columba)*	**Rabbit** *(Oryctola-gus)*
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**
1. शरीर में हृदय की स्थिति	इनमें हृदय फैरिंक्स के मिड वैण्ट्रल तल पर पैरिकार्डियल गुहा में बंद रहता है जो पैरिटोनियल या उदर गुहा से एक सेप्टम ट्रान्सवरसम से अलग रहती है तथा पैरिटोनियल कैनाल द्वारा उदर गुहा से सम्बन्धित रहती है।	हृदय थोरैसिक गुहा में इसोफेगस के मिड वैण्ट्रल तल पर स्थित रहता है। इनमें सैप्टम ट्रान्सवरसम अनुपस्थित होता है।	हृदय थोरैसिक गुहा में स्टरनम के ऊपर मिड–वैण्ट्रल तल पर स्थित होता है। सैप्टम ट्रान्सवरसम अनुपस्थित होता है।	हृदय थौरैसिक गुहा में मिड वेण्ट्रल तल पर स्थित तथा यकृत पिण्ड़ो से घिरा रहता है।	हृदय थोरैसिक गुहा में दोनों प्ल्यूरल गूहाओं के मध्य पैरिकार्डियल गुहा में बंद रहता है।
2. साइज एवं आकार	छोटा, S–के आकार का तथा डॉर्सो–वेण्ट्रली मुड़ा होता है।	छोटा, कोनिकल या कुछ तिकोना होता है।	छोटा, कुछ–कुछ तिकोना होता है।	अपेक्षाकृत बड़ा तथा कोनिकल होता है।	बड़ा तथा नाशपाती के आकार का होता है।

टिप्पणी

3. पैरिका–र्डियम	हृदय द्विस्तरीय मैम्ब्रेनस पैरिकार्डियम के अंदर सुरक्षित रहता है।	मछली के समान होता है।	हृदय द्विस्तरीय सैक की तरह पतली, ट्रान्सपैरेण्ट मैम्ब्रेनस पैरिकार्डियल के अंदर सुरक्षित रहता है।	रेप्टाइल के समान होता है।	हृदय पूर्ण रूप से दो–स्तरीय मैम्ब्रेनस सैक के आकार की पैरिकार्डियल से घिरा रहता है।
4. चैम्बर्स	इनका हृदय में एक साइनस वेनोसस, एक ऑरिकल, एक वैण्ट्रिकिल तथा एक कोनस ऑर्टीरियोसस होता है। ये चारों कक्ष एक ही कतार में व्यवस्थित रहते हैं। इनमें ऑरिकल तथा वैण्ट्रिकिल ही वास्तविक हृदय के चैम्बर्स होते हैं, अतः डॉगफिश का हृदय **दो–कक्षीय** होता है।	इनका हृदय **तीन–कक्षीय** होता है जो दो ऑरिकल्स तथा एक वैण्ट्रिकिल से मिलकर बना होता है। इनके अलावा इनके हृदय में साइनस वेनोसस तथा ट्रंकस–ऑर्टीरियोसस उपस्थित होता है।	इनका हृदय भी **तीन–कक्षीय** (लेकीन अपूर्ण रूप से **चार–कक्षीय**) होता है। इसमें दो ऑरिकिल्स तथा अपूर्ण रूप से विभाजित वैण्ट्रिकिल होता है। साइनस वेनोसस उपस्थित होता है।	इनका हृदय पूर्ण रूप से **चार–कक्षीय** होता है, जो दो ऑरिकिल्स तथा दो वैण्ट्रिकिल से मिलकर बना होता है। वैण्ट्रिकिल्स का विभाजन ऊपर दिखायी नहीं देता है।	स्तनियों का हृदय भी पूर्ण रूप से **चार–कक्षीय** होता है तथा दो ऑरिकल्स तथा दो वैण्ट्रिकिल्स से मिलकर बना होता है। चारों कक्ष ऊपर से स्पष्ट दिखायी देते हैं।
5. साइनस वेनोसस	तिकोना, वैण्ट्रिकिल के पश्च भाग के ऊपर अनुप्रस्थ दिशा में फैला रहता है तथा पैरिकार्डियल दीवार से जुड़ा रहता है। यह शरीर के विभिन्न भागों से रुधिर को दो	तिकोना तथा दायें ऑरिकिल की डॉर्सल दीवार पर स्थित होता इसमें शरीर के विभिन्न भागों से तीन **वेनी केवी** (Venae Cavae) दो अग्र प्रीकेवाल	इनमें यह महीन दीवार वाली बड़ी बाइलोब्ड (bilobed) रचना है जो अनुप्रस्थ दिशा में ऑरिकिल्स के डॉर्सल तल पर जुड़ी रहती है। इसका निर्माण **दो प्रीकेवाल** तथा एक पश्च	इनके हृदय में साइनस वेनोसस अनुपस्थित होता है, क्योंकि यह दाहिनी ऑरिकल में पूर्ण रूप से समेकित हो जाता है।	इनके हृदय में भी साइनस वेनोसस अनुपस्थित होता है, क्योंकि इनमें भी यह दाहिने ऑरिकल की दीवार में पूर्ण रूप से बाहर इन दोनों के

	लेटरल **डक्टाई – क्युविराई** (Ducti-cuvieri) तथा दो **पश्च हिपेटिक साइनसस** (Hepatic cuvieri) के द्वारा प्राप्त करता है।	तथा एक पश्च **पोस्टकेवाल** द्वारा अशु) रुधिर आता है।	पोस्टकेवाल के आपस में समेकित होने से होता है।		आपस में मिलने का स्थान एक **सलकस टर्मिनेलिस ग्रूव** तथा हृदय के अंदर स्थित **क्रिस्टा – टर्मिनेलिस** पेशीय रिज के द्वारा निरूपित किया जाता है।
5. सइनू– एट्रियल छिद्र	जिस छिद्र द्वारा साइनस वेनोसस ऑरिकिल में खुलता है, उसे साइनू – एट्रियल छिद्र कहते हैं। डॉगफिश में ऑरिकिल के भाग में खुलता है तथा एक जोड़ी मैम्ब्रेनस वाल्व्स के द्वारा नियन्त्रित रहता है।	इनके हृदय में साइनस वेनोसस दाहिने ऑरिकिल में इसकी डॉर्सल दीवार में एक बड़े अण्डाकार साइनू– एट्रियल छिद्र के द्वारा खुलता है जो एक जोड़ी फ्लैप के आकार के वाल्व्स द्वारा नियन्त्रित रहता है।	इनके हृदय में भी साइनस वेनोसस दाहिने ऑरिकल की दीवार में एक अण्डाकार साइनू– एट्रियल छिद्र द्वारा खुलता है जो पेशीय लिप्स के द्वारा नियन्त्रित रहता है (**भाटिया**, 1929 के अनुसार लिजार्ड में यह छिद्र बिना वाल्व्स के होते हैं)।	इनके हृदय में साइनस वेनोसस अनुपस्थित होता है। अतः तीनों वेनी केवी, दो प्रीकेवाल एवं एक पोस्ट– केवाल अपने अलग–अलग छिद्रों से सीधे दाहिने ऑरिकल में खुलते हैं। पोस्ट–केवाल का एक छिद्र एक युस्टेकियन वाल्व के द्वारा नियन्त्रित रहता है।	इनके हृदय में भी साइनस वेनोसस अनुपस्थित होता है। अतः इनके हृदय में भी तीनों वेनी केवी अपने अलग– अलग छिद्रों से दाहिने ऑरिकिल में खुलते हैं। इनमें पोस्टकेवाल का छिद्र एक रूडिमैण्टरी (rudiment-ary) यूस्टेकियन वाल्व के द्वारा नियन्त्रित रहता है।
7. ऑरि– किल्स या एट्रिया	इनके हृदय में केवल एक ऑरिकुलम, जो कुछ तिकोने आकार का होता है, पाया जाता है। इसकी दीवार पतली, स्पॉन्जी तथा	हृदय में दो (दायाँ एवं बायाँ) ऑरिकिल्स जो लगभग चौकोर आकार के होते हैं, पाये जाते हैं। दोनों ऑरिकिल्स अंदर	हृदय में दो ऑरिकिल्स जो अंदर एक पूर्ण **इण्टर – ऑरिकुलर सैप्टम** से अलग रहते हैं पाये जाते हैं। दाहिने ऑरिकिल से इसकी डॉर्सल	इनके हृदय में दो ऑरिकिल्स जो एक– दूसरे से पूर्णतया **इण्टर ऑरिकुलर सेप्टम** से अलग रहते हैं, पाये जाते हैं। इनके दाहिने	दो ऑरिकिल्स तथा एक– दूसरे से पूर्ण तया **इण्टर– ऑरिकल्स सैप्टम** सें अलग रहते हैं। इनके सैप्टम पर फोसा ओवेलिस

	कुछ पेशीय होती है।	से एक पूर्ण **इण्टर–ऑरिकुलर सैप्टम** से अलग रहते हैं। इनकी दीवारें पतली तथा बिना पेशीय प्रवर्धों की होती हैं।	ऐण्टीरो–मीडियल सतह से छोटा **वर्टिकुलम** निकला रहता है। इनकी दीवारें पतली तथा आन्तरिक स्तर से अनेक छोटे–छोटे पेशीय रिजेज निकले होते हैं।	ऑरिकिल में ऐण्टीरो–मीडियल डाइवर्टिकुलम अनुस्थित होता है। इनकी दीवारें अपेक्षाकृत मोटी तथा आन्तरिक स्तर पेशीय रिजेज में उठा रहता है	पाया जाता है। दाहिने ऑरिकिल में डाइवर्टि–कुलम अनुपस्थित होता है। इनकी दीवारें कुछ मोटी तथा आन्तरिक स्तर पेशीय रिजेज के जाल में जिसे **मस्कुलाई पेक्टिनेटाइ** कहते हैं, में रूपान्तरित होता है।
8. ऑरिकुलर अपैन–डिक्स	ऑरिकिल की प्रत्येक लेटरल साइड वैण्ट्रिकिल के पीछे कर्ण के आकार के प्रवर्ध जिसे **ऑरिकुलर एपैनडेजेज** कहते हैं, निकले रहती हैं।	इनमें ये प्रवर्ध अनुपस्थित होते हैं।	इनमें भी अनुपस्थित होते हैं।	इनमें भी अनुपस्थित होते हैं।	इनमें प्रत्येक ऑरिकिल पीछे की ओर एक फूली हुई रचना बनाता है, जिसे **ऑरिकुलर अपैनडिक्स** कहते हैं जो अपनी ओर के वैण्ट्रिकिल के कुछ भाग को ढके रहता है।
9. पल्मोनरी शिरा	डॉगफिश में यह शिरा अनुपस्थित होती है। इसलिए यह ऑरिकिल के अंदर नहीं खुलती।	इनके बायें ऑरिकिल में एक कॉमन पल्मोनरी शिरा एक छोटे छिद्र द्वारा शुद्ध रुधिर को डालती है।	इनके बायें ऑरिकिल में एक सामान्य पल्मोनरी शिरा एक छिद्र के द्वारा खुलती है जो फेफड़ो से शुद्ध रुधिर को लाती है।	इनके बायें ऑरिकिल में चार पल्मोनरी शिराएँ एक ही कॉमन छिद्र के द्वारा खुलकर फेफड़ो से लाये शुद्ध रुधिर को इसमें डालती हैं।	इनमें दो पल्मोनरी शिराएँ फेफड़ों से लाये कुछ रुधिर को एक ही कॉमन छिद्र द्वारा बायें ऑरिकिल को देती हैं।

टिप्पणी

10. ऑरि–कुलो – वैण्ट्रि–कुलर छिद्र एवं वाल्व्स	इनके हृदय में ऑरिकिल वैण्ट्रिकिल की डॉर्सल दीवार से एक **ऑरिकुलो–वैण्ट्रिकुलर** छिद्र के द्वारा खुलता है। यह छिद्र एक मैम्ब्रेनस वाल्व्स के द्वारा नियन्त्रित रहता है।	दोनों ऑरिकिल्स पीछे की ओर वैण्ट्रिकिल में केवल एक ही कॉमन बड़े **ऑरिकुलो वैण्ट्रिकुलर छिद्रों** द्वारा खुलते हैं। यह छिद्र इनमें दो जोड़ी फ्लैप के आकार के वाल्व्स के द्वारा नियन्त्रित रहता है।	दोनों ऑरिकिल अपने अलग–अलग दायें एवं बायें **ऑरिकुलो वैण्ट्रिकुलर छिद्रों** के द्वारा अपूर्ण विभाजित वैण्ट्रिकल में खुलते हैं। प्रत्येक छिद्र एक **सैमील्युनर फ्लेप** की तरह के वाल्व द्वारा नियन्त्रित रहता है।	दोनों ऑरिकिल अपने अलग–अलग दायें एवं बायें गोलाकार **ऑरिकुलो–वैण्ट्रिकुलर छिद्रों** के द्वारा अपने–अपने दायें एवं बायें वैण्ट्रिकिल्स में खुलते हैं। दायाँ छिद्र एक बड़े पेशीय फील्ड के आकार के वाल्व जबकि बायाँ छिद्र **बाइकस्पिड वाल्व** जो दो मैम्ब्रेनस फ्लेप्स का बना होता है, से नियन्त्रित रहता है।	इनके हृदय में भी दो अलग–अलग **ऑरिकुलो वैण्ट्रिकुलर** छिद्र होते हैं। दायाँ छिद्र **ट्राइकस्पिड वाल्व** (जो तीन तिकोने फ्लेप्स का बना होता है) तथा बायाँ छिद्र **वाइकस्पिड** या **मिट्रल वाल्व** (जो दो फ्लेप्स का बना होता है) से नियन्त्रित रहते हैं।
11. वैण्ट्रि–किल्स	वैण्ट्रिकिल एक छोटा, शंक्वाकार तथा मोटी दीवार वाला चैम्बर है जो साइनस वेनोसस तथा ऑरिकिल के वैण्ट्रल तल पर स्थित होता है। इसमें **इण्टर–वैण्ट्रिकुलर सैप्टम** का अभाव होता है।	वैण्ट्रिकिल छोटा, शंक्वाकार, अविभाजित तथा मोटी दीवार वाला चैम्बर है जो ऑरिकिल्स के पीछे स्थित होता है। इसमें **इण्टर–वैण्ट्रिकुलर सैप्टम** का अभाव होता है।	वैण्ट्रिकिल छोटा, शंक्वाकार तथा मोटी दीवार वाला चैम्बर है जो ऑरिकिल्स के पीछे स्थित होता है। इसकी गुहा एक अपूर्ण एवं स्पष्ट तिरछे पेशीय सैप्टम के द्वारा एक बड़े **केवम डॉर्सल** तथा एक छोटे केवम वैण्ट्रेल या **पल्मोनेल में** विभाजित रहती है।	इनके हृदय में दो वैण्ट्रिकिल्स पाये जाते हैं, जो एक वर्टिकल **इण्टर–वैण्ट्रिकुलर सैप्टम** के द्वारा एक–दूसरे से पूर्ण रूप से अलग रहते हैं। इनमें एक बायाँ तथा एक दायाँ वैण्ट्रिकिल होता है। इनकी दीवारें अत्याधिक मोटी एवं पेशीय होती हैं।	इनके हृदय में भी दो (दायाँ एवं बायाँ) वैण्ट्रिकिल्स पाये जाते हैं, जो एक वर्टिकल **इण्टर–वैण्ट्रिकुलर सैप्टम** के द्वारा एक–दूसरे से पूर्ण रूप से अलग रहते हैं। इनकी दीवारें भी अत्याधिक मोटी–एवं पेशीय होती हैं।

12. कॉलुम्नी कार्नी	इनके वैण्ट्रिकिल में इनका अभाव होता है।	वैण्ट्रिकिल की आन्तरिक स्तर से इसकी गुहा में अनेक अनियमित आकार के रिजेज (Ridges) निकले होते हैं, इन्हें **कॉलुम्नी कार्नी** कहते हैं।	इनके वैण्ट्रिकिल के आन्तरिक स्तर पर ये रिजेज स्पष्ट एवं सुविकसित होते हैं।	इनके वैण्ट्रिकिल की आन्तरिक दीवार पर **कॉलुम्नी कॉर्नी** पेशीय बार्स के रूप में होते हैं, जिनके कारण वैण्ट्रिकिल्स की गुहा वलन के रूप में दिखाई देती है।	इनके वैण्ट्रिकिल की आन्तरिक दीवार पर **कॉलुम्नी कॉर्नी** अनियमित पेशीय रिजेज के रूप में होती हैं।
13. कॉर्डी टैण्डिनी	इनकी वैण्ट्रिकिल की गुहा में पेशीय एवं तन्तुवत् स्ट्रैण्ड्स या वलन होते हैं जिन्हें **कॉर्डी टैण्डिनी** कहते हैं। इन्हीं के कारण वैण्ट्रिकिल की रचना स्पंज जैसी होती है।	इनमें ऑरिकुलो–वैण्ट्रिकुलर वाल्व्स वैण्ट्रिकिल की आन्तरिक दीवार से **कार्डी टैण्डिनी** के द्वारा जुड़े रहते हैं।	इनमें ऑरिकुलो–वैण्ट्रिकुलर वाल्व्स वैण्ट्रिकिल की आन्तरिक दीवार से **कार्डी टैण्डिनी** के द्वारा जुड़े रहते हैं।	इनके हृदय में भी ऑरिकुलो–वैण्ट्रिकुलर वाल्व्स मजबूत **कॉर्डी टैण्डिनी** के द्वारा वैण्ट्रिकिल की दीवार से जुड़े होते हैं।	इनके हृदय में **ट्राइकस्पिड** तथा **बाइकस्पिड वाल्व्स** के स्वतन्त्र सिरे पैपिलरी पेशियों से लम्बे **कॉर्डी–टैण्डिनी** धागों से जुड़े होते हैं।
14. पैपिलरी पेशियाँ	इनके हृदय में इनका अभाव होता है।	इनमें भी इनका अभाव होता है।	इनमें भी ये अनुपस्थित होते हैं।	इनके वैण्ट्रिकिल्स में **पैपिलरी पेशीयाँ** स्पष्ट प्रोजेक्शन के रूप में होती हैं जो वैण्ट्रिकिल की दीवार से निकली रहती हैं।	इनके वैण्ट्रिकिल्स में **पैपिलरी पेशियाँ** बड़ी, कोनिकल, निपल के आकार की होती हैं, जो वैण्ट्रिकिल की दीवार से निकली होती हैं।

15. ट्रंकस या कोनस आर्टी–रियोसस	इनके हृदय में कोनस आर्टीरियोसस एक सुदृढ़, अविभाजित पेशीय नलिका के रूप में होता है, जो वैण्ट्रिकिल के अग्र भाग से निकलता है। इसकी गुहा में दो अनुप्रस्थ **सैमिलुनर वाल्व्स** की कतार होती हैं। प्रत्येक कतार में एक **मीडियन डॉर्सल** तथा दो **वैण्ट्रोलेटरल वाल्व्स** होते हैं। प्रत्येक कतार की मीडियन डॉर्सल वाल्व के दोनों ओर एक–एक **सहायक वाल्व्स** (accessory valves) और होते हैं। इस प्रकार अनुप्रस्थ कतार में वाल्व्स की संख्या पाँच होती है। इसमें स्पाइरल वाल्व का अभाव होता है।	ट्रंकस आर्टीरियोसस एक नाशपाती के आकार की नलिका होती है जो वैण्ट्रिकिल के दाहिने वैण्ट्रिल भाग के अग्र सिरे से निकलती है। इसकी गुहा **तीन सैमिलुनर वाल्व्स** की कतार के द्वारा एक डिस्टल **साइनेन्जियम** तथा एक **प्रॉक्सीमल पाइलेन्जियम** चैम्बर्स में विभाजित रहती है। पाइलेन्जियम एक **स्पाइरल वाल्व** के द्वारा एक **केवम पल्मोकुटे–नियम** तथा एक **केवम एऑर्टिकम** में पुनः विभाजित होता है।	इनके हृदय में भी कोनस आर्टीरियोसस अनुपस्थित होता है।	इनके हृदय में भी कोनस आर्टीरियोसस अनुपस्थित होता है।	स्तनियों के हृदय में भी कोनस आर्टीरियोसस अनुपस्थित होता है।

टिप्पणी

16. ऐऑर्टिक आर्चेज	इनमें कोनस आर्टीरियोसस के अग्र भाग से **वैण्ट्रल ऐऑर्टा** निकलता है जो पाँच जोड़ी ऐऑर्टिक आर्चेज का निर्माण करता है।	इनमें ट्रंकस आर्टीरियोसस अपने अग्र सिरे पर दो– दायें एवं बायें ट्रंक्स में विभाजित होता है। प्रत्येक ओर का ट्रंक बाद में तीन ऐओर्टिक आर्चेज– **कॉमन कैरोटिड, सिस्टैमिक** तथा **पल्मोकुटे–नियस** का निर्माण करता है। इस प्रकार इनमें तीन जोड़ी ऐऑर्टिक आर्चेज पाये जाते हैं। वैण्ट्रल ऐओर्टा अनुपस्थित होता है।	इनके हृदय में **तीन ऐओर्टिक आर्चेज** होते हैं, जो सीधे वैण्ट्रिकिल से उद्‌गमित होते हैं। इनमें **एक पल्मोनरी** आर्च जो केवम पल्मोनेल से तथा दो दायें एवं बायें **सिस्टैमिक आर्चेज** जो केवल डॉर्सल से निकलते हैं, होते हैं, वैण्ट्रल ऐओर्टा का इनमें अभाव होता है।	इनके हृदय में केवल दो **ऐओर्टिक आर्चेज** होते हैं। इनमें **एक पल्मोनरी आर्च** जो दाहिने **वैण्ट्रिकिल** से तथा एक **दाहिना सिस्टैमिक आर्च जो बायें वैण्ट्रिकिल** से निकलता है, होता है। इनमें **वैण्ट्रल ऐऑर्टा** अनुपस्थित होता है।	स्तनियों के हृदय में भी **दो ऐओर्टिक आर्चेज** होते हैं। इनमें एक **पल्मोनरी आर्च** जो दाहिने वैण्ट्रिकिल से तथा एक **बायाँ सिस्टैमिक आर्च** जो बायें वैण्ट्रिकिल से निकलता है, होता है। **वैण्ट्रल ऐओर्टा** अनुपस्थित होता है।
17. फोरामैन ऑफ पैनिजी	इनके हृदय में अनुपस्थित होता हैं।	अनुपस्थित	उपस्थित। दोनों सिस्टैमिक आर्चेज जहाँ एक–दूसरे को क्रॉस करते हैं, उस बिन्दु पर यह फोरामैन पाया जाता है।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।

18. हृदय की कार्यिकी	इनका हृदय शरीर के विभिन्न भागों से केवल वीनस या अशुद्ध रुधिर को प्राप्त करता है जिसे यह शुद्ध होने के लिये केवल गिल्स को पम्प्स करता है। इस प्रकार के हृदय को **वीनस हार्ट** कहते हैं तथा इस प्रकार के सरकुलेशन को **सिंगल सरकुलेशन** कहते हैं।	इनका हृदय वीनस तथा ऑक्सीकृत दोनों ही प्रकार के रूधिर को प्राप्त करता है। यह शरीर के विभिन्न भागों को मिश्रित रुधिर सप्लाई करता है। इस प्रकार के हृदय को **ट्रान्जिशनल** हृदय कहते है, किन्तु इनमें भी **सिंगल सरकुलेशन** पाया जाता है।	इनके अपूर्ण विभाजित वैण्ट्रिकिल में वीनस एवं ऑक्सीकृत रुधिर कुछ आपस में मिश्रित हो जाते हैं। अतः इनका हृदय भी **ट्रान्जिशनल हृदय** कहलाता है किन्तु इनमें भी **सिंगल सरकुलेशन** पाया जाता है।	इनका हृदय पूर्ण रूप से चार–कक्षीय होने के कारण वीनस एवं ऑक्सीकृत रुधिर पूर्णतया अलग–अलग रहते हैं। अतः इनका हृदय अधिक शक्तिशाली होता है एवं इनमें **डबल सरकुलेशन** पाया जाता है।	पक्षियों की तरह स्तनियों का हृदय भी पूर्ण रूप से चार–कक्षीय होता है। अतः इनमें भी वीनस एवं ऑक्सीकृत रुधिर एक–दूसरे से पूर्ण रूप से अलग–अलग रहते हैं। इनमें भी **डबल सरकुलेशन** पाया जाता है। वीनस रुधिर पल्मोनरी आर्च के द्वारा फेफड़ों को शुद्ध होने के लिए दिया जाता है, जबकि ऑक्सीकृत रुधिर शरीर के विभिन्न भागों को सिस्टैमिक आर्च द्वारा वितरित कर दिया जाता है।

3.2.4 कशेरुकियों में ऐओर्टिक आर्चेस का रूपान्तरण (Modification of Aortic Arches in Vertebrates)

विभिन्न वयस्क कशेरुकियों में आर्टिरियल सिस्टम उनके भ्रूणीय ऐओर्टिक आर्चेज से भिन्नता रखता है, किन्तु भ्रूणीय परिवर्धन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह वयस्कों में मुख्यतः उसी टिपिकल कशेरुकी भ्रूणीय आधार पर बना होता है। विभिन्न कशेरुकी समूहों में ऐओर्टिक आर्चेज की संख्या प्रोग्रैसिवली (progressively) घटती चली जाती है, जिसके कारण यह विभिन्न समूहों में अत्याधिक रूपान्तरित या परिवर्तित हो जाता है। कशेरुकी समूहों में ऐओर्टिक आर्चेज का रूपान्तरण उनके हृदय की जटिलता तथा श्वसन अंगों में होने वाले रूपान्तरणों से सम्बन्धित है, जिसको हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

1. **प्रिमिटिव कशेरुकियों में ऐओर्टिक आर्चेज (Aortic arches in Primitive vertebrates)**– ब्रैंकियोस्टोमा या ऐम्फिऑक्सस *(Branchiostoma or Amphioxus)* में लगभग 60 जोड़ी ऐओर्टिक आर्चेज उपस्थित होते हैं जिनके द्वारा वैण्ट्रल ऐओर्टा, डॉर्सल ऐओर्टी से जुडा रहता है। पेट्रोमाइजोन *(Petromyzon)* में ऐओर्टिक आर्चेज की संख्या सात जोड़ी पायी जाती है,

टिप्पणी

जबकि कुछ अन्य साइक्लोस्टोम्स में ऐओर्टिक आर्चेज की संख्या 6 जोड़ी (मिक्सीन = *Myxine* में) से लेकर 15 जोड़ी (ऐप्टेट्रिटस = *Eptatretus* में) तक पायी जाती है।

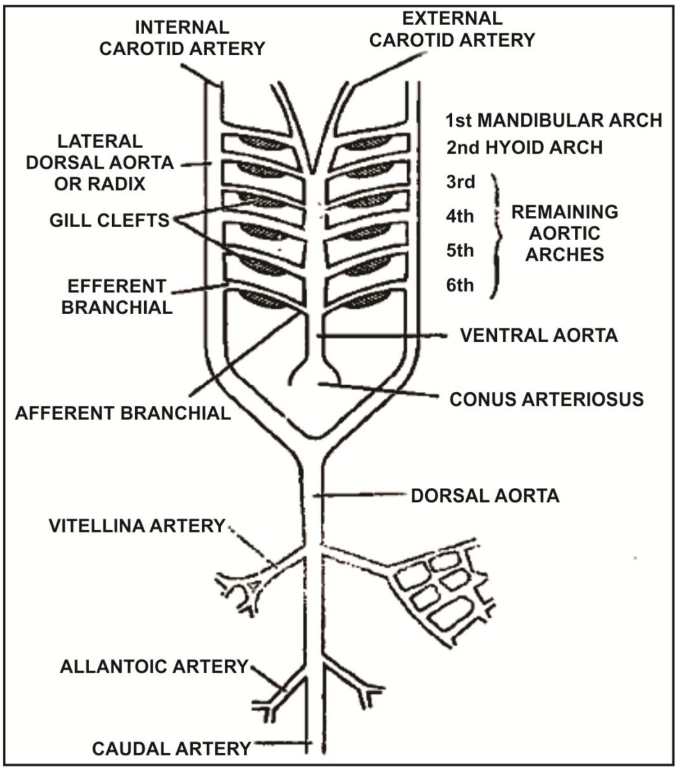

चित्र क्र. 3.5: **Basic Plan of Main Arterial Channels of a Typical Vertebrate Embryo**

2. **मछलियों में ऐओर्टिक आर्चेज (Aortic arches in fishes)**– प्रिमिटिव इलास्मोब्रैंक या कार्टिलेजिनस मछली (जैसे हिप्टेंकस = *Heptanchus)* में सात जोड़ी ऐओर्टिक आर्चेज पायी जाती हैं। अधिकांश मछलियों के भ्रूण (embryos) ऐओर्टिक आर्चेज के प्रिमिटिव प्लान को दर्शाते हैं। इनमें इनकी संख्या छः जोड़ी या इससे अधिक पायी जाती है। इनमें से प्रत्येक आर्च गिल (gill) में से गुजरता है। लेकिन वयस्क मछलियों में ऐओर्टिक आर्चेज की संख्या घटकर 4 या 5 जोड़ी हो जाती है। इलास्मोब्रैंक में शार्क मछलियों में 5 जोड़ी (II, III, IV, V and VI) ऐओर्टिक कार्यशील होते हैं, क्योंकि इनमें प्रथम जोड़ी गिल–स्लिट स्पाइरेकिल (spiracle) का निर्माण करता है जो गिल की तरह कार्यशील नहीं होता हैं। अतः इनमें प्रथम या मैण्डिबुलर आर्च (mandibular arch) अनुपस्थित होता है या यह इफ्फेरैण्ट स्यूडोब्रैंकियल आर्टरी (efferent pseudobranchial artery) के रूप में रहता है।

टिप्पणी

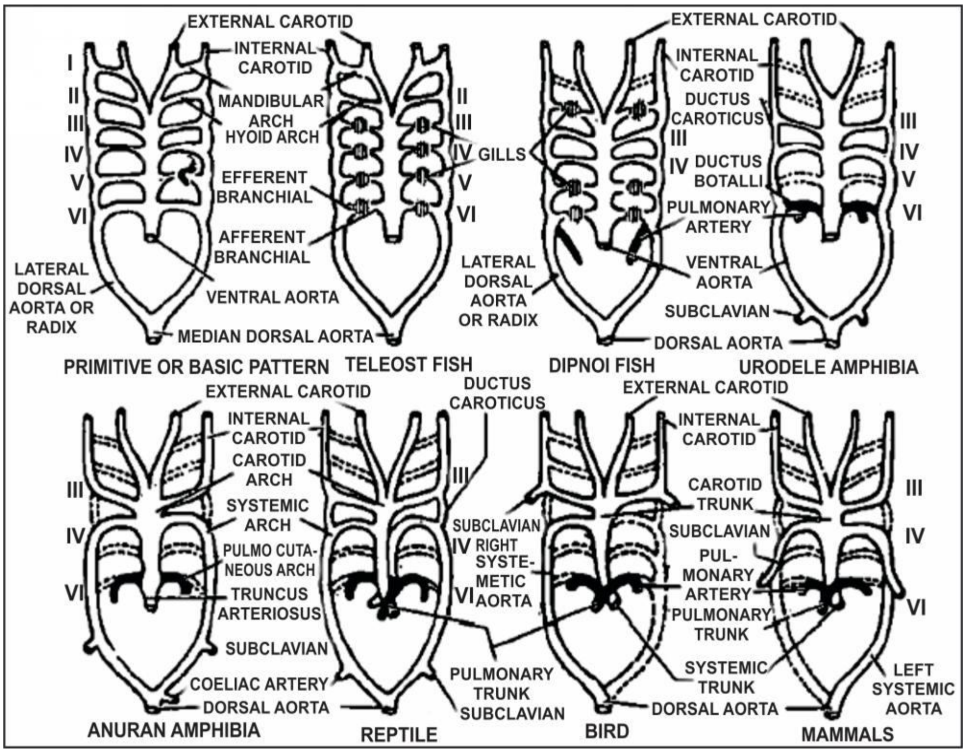

चित्र क्र. 3.6: Modification of Aortic Arches in different Representative of Vertebrates

इलास्मोब्रेंक के विपरित अधिकांश टीलिओस्ट्स या बौनी मछलियों (teleosts or bony fishes) में I तथा II आर्चेज अस्पष्ट या अनुपस्थित होते हैं, इसीलिए इन मछलियों में केवल 4 जोड़ी (III, IV, V तथा VI ऐओर्टिक आर्चेज कार्यशील अवस्था में पाये जाते हैं।

पॉलिप्टेरस *(Polypterus)* तथा लंगफिश (lungfish, class Disponi) में गिल्स अत्यन्त ही अविकसित अवस्था में पाये जाते हैं। इसीलिए इनमें दोनों ओर छठवें आर्च में एक पल्मोनरी आर्टरी (pulmonary artery) निकलती है जो ऐयर ब्लैडर या फेफड़े (air bladder or lung) को रुधिर देती है।

इलास्मोब्रेंक तथा लंगफिश में प्रत्येक ऐओर्टिक आर्च स्प्लिट (split) करके प्रत्येक गिल में एक एफ्फेरैण्ट आर्टरीज का निर्माण करता है, जबकि टीलिओस्ट या बौनी मछलियों में प्रत्येक आर्च प्रत्येक गिल में एक एफ्फेरैण्ट तथा एक इफ्फेरैण्ट आर्टरीज का निर्माण करता है। इसके विपरित टैट्रापोड्स (tetrapods) में आन्तरिक गिल्स का अभाव होता है। इसीलिए इन जन्तुओं में ऐओर्टिक आर्चेज एफ्फेरैण्ट तथा इफ्फेरैण्ट आर्टरीज में विभाजित नहीं होते हैं। इसी कारण सभी टैट्रापोड्स में I तथा II ऐओर्टिक आर्चेज पूर्णतया लुप्त हो जाते हैं।

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.2: Comparison of Aortic Arches in Vertebrates

ऐओर्टिक आर्चेज का नाम	पाइसेस (Pisces)		ऐम्फि–बिया (Amp-hibia)	रेप्टाइल्स (Reptiles)	एवीज (Aves)	मैमेलिया (Mamm–alia)
	इलास्मो–ब्रैंक (Elasm-obranch)	टीलि–ओस्ट (Tele–ost)				
I. प्रथम ऐओर्टिक या मैण्डिबुलर आर्च	विलुप्त या इफ्फेरैण्ट स्यूडो–ब्रैंकियल आर्टरी के रूप में।	न्हासित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित
II. द्वितीय ऐओर्टिक या हॉयोडियन आर्च		न्हासित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित
III. तृतीय ऐओर्टिक या प्रथम ब्रैंकियल आर्च	प्रत्येक ऐओर्टिक आर्च एक एफ्फेरैण्ट ब्रैंकियल आर्टरी में विभाजित हो जाता है।	प्रत्येक ऐओर्टिक आर्च एक एफ्फे–रैण्ट ब्रैंकियल आर्टरी में विभाजित हो जाती है।	कैरोटिड ट्रंक	कैरोटिड ट्रंक जो दायें सिस्टैमिक से विकसित होता है। यह डक्टस कैरोटिकस द्वारा सिस्टैमिक से जुड़ा रहता है।	कैरोटिड ट्रंक जो दायें सिस्टैमिक से विकसित होता है।	कैरोटिड ट्रंक जो बायें सिस्टैमिक से विकसित होता है।
IV. चौथा ऐओर्टिक या द्वितीय ब्रैंकियल आर्च			सिस्टैमिक आर्च	सिस्टैमिक आर्च जो दायें सिस्टैमिक से अलग हो जाती है तथा बायीं सिस्टैमिक के बायीं ओर से विकसित होती है।	दायीं सिस्टैमिक बनी रहती है; बायीं अनुपस्थित होती है।	बायीं सिस्टैमिक बनी रहती है; दायीं अनुपस्थित रहती है।
V. पाँचवा ऐओर्टिक या द्वितीय ब्रैंकियल आर्च			विलुप्त हो जाती है	अनुपस्थित	अनुपस्थित	अनुपस्थित

VI. छठवाँ ऐओर्टिक या चौथा ब्रैंकियल आर्च			पल्मोकुटे–नियस आर्च	पल्मोनरी आर्टरी का वैण्ट्रल ऐओर्टा से सम्बन्ध नही होता हैं।	पल्मोनरी आर्टरी का वैण्ट्रल ऐओर्टा से सम्बन्ध नहीं होता।	पल्मोनरी आर्टरी अलग दाहिने वैण्ट्रिकिल से विकसित होती है।
वैण्ट्रल ऐओर्टा	उपस्थित	उपस्थित	ट्रंकस आर्टिरियो सस	दो सिस्टैमिक तथा एक पल्मोनरी ऐओर्टा के रूप में पृथक् हो जाता है।	एक सिस्टैमिक तथा एक पल्मोनेरी ऐओर्टा के रूप में पृथक् हो जाता है।	ऐवीज की तरह ही होता है।

3. **एम्फिबियन्स में एओर्टिक आर्चेज (Aortic arches in Amphibians)**– आन्तरिक गिल्स के पूर्णतया समाप्त होने और फेफड़े के मुख्य श्वसन अंगों के रूप में विकसित होने के कारण ऐम्फिबियन्स के ऐओर्टिक आर्चेज में उसी के अनुरूप परिवर्तन या रूपान्तरण हुए हैं।

यूरोडेल्स (urodales) या पुच्छीय ऐम्फिबियन्स (tailed amphibians), जैसे नेक्ट्यूरस, साइरन तथा ऐम्फियूमा *(Necturus, Siren and Amphiuma)* सामान्यतः जल में वास करते हैं। अतः फेफड़ों के अलावा इनमें स्थाई रूप से बाह्म गिल्स (external gills) और पाये जाते हैं। इनमें सामान्यतः चार जोड़ी ऐओर्टिक आर्चेज (III, IV, V तथा VI) पाये जाते हैं। इनमें ऐओर्टिक आर्च का पाँचवाँ जोड़ा अत्याधिक अविकसित या अनुपस्थित होता है। अतः पुच्छीय ऐम्फिबियन्स में 4 से 3 जोड़ी ऐओर्टिक आर्चेज पाये जाते हैं। III आर्च **कैरोटिड आर्चेज** (carotid arches) तथा IV **आर्च सिस्टेमिक आर्चेज** (systemic arches) का निर्माण करता है। रेडिक्स या लेटरल **डॉर्सल ऐओर्टा** (radix or lateral dorsal aorta) III तथा IV आर्चेज के मध्य एक वैस्क्यूलर कनैक्शन (vascular connection) जिसे **डक्टस कैरोटिकस** (ductus caroticus) कहते हैं, के रूप में बना रहता है। VI and V आर्च दोनों ओर **पल्मोकुटेनियस आर्च या आर्टरी** (pulmo-cutaneous arch or artery) का निर्माण करता है, जो त्वचा और फेफड़ों को रुधिर सप्लाई करता है VI आर्च का जो भाग पल्मोनरी आर्टरी और लेटरल डॉर्सल ऐओर्टा के मध्य एक कनैक्शन के रूप में रहता है, **डक्टस बोटेलाई या डक्टस आर्टिरियोसस** (ductus botalli or ductus arteriosus) कहलाता है।

एक ऐन्यूरन या पुच्छविहीन (anuran or tail less) ऐम्फिबियन लार्वा (larva), जैसे मेंढक का टैडपोल लार्वा, में बाह्म गिल्स की उपस्थिती के कारण ऐओर्टिक आर्चेज एक वयस्क यूरोडेल (urodale) की ही तरह व्यवस्थित रहते हैं। मेटामॉर्फोसिस (metamorphosis) में जब टैडपोल लार्वा वयस्क मेंढक में बदलता है, तो इसमें गिल्स समाप्त होकर फेफड़ों का

विकास होता है। उस समय इसमें I, II तथा V एओर्टिक आर्चेज भी लुप्त हो जाते हैं। डक्टस कैरोटिकस भी लुप्त हो जाता है, जिसके फलस्वरूप सिर के भाग में शुद्ध या ऑक्सीजिनेटेड रुधिर केवल III या कैरोटिड आर्च के द्वारा जाता है। प्रत्येक ओर का सिस्टैमिक या चौथा आर्च आपस में मिलकर **डॉर्सल ऐओर्टा** (dorsal aorta) का निर्माण करता है जो सिर तथा फेफड़ों को छोड़कर शरीर के सभी भागों को शुद्ध रुधिर का वितरण करता है। वयस्क ऐन्यूरन (मेंढक) में डक्टस आर्टिरियोसस भी लुप्त हो जाता है जिसके कारण छठवाँ या पल्मोकुटेनियस आर्च अशुद्ध रुधिर को शुद्ध होने के लिए केवल फेफड़ों एवं त्वचा को देता है। इस प्रकार सभी वयस्क ऐन्यूरन्स (anurans) में केवल तीन जोड़ी कार्यशील ऐओर्टिक आर्चेज (III, IV तथा VI) पाये जाते हैं जो उच्च कशेरुकियों या ऐम्निओट्स (amniotes) में भी पाये जाते हैं।

4. **रेप्टाइल्स में ऐओर्टिक आर्चेज (Aortic arches in Reptiles)**– रेप्टाइल्स पूर्णतया टैरेस्ट्रियल या स्थलीय (terrestrial) कशेरुकी जन्तु हैं जिनमें गिल्स का पूर्ण अभाव होता है तथा इनकी जगह इनमें श्वसन के लिए फेफड़े पाये जाते हैं। सभी रेप्टाइल्स में तीन जोड़ी कार्यशील III, IV तथा VI ऐओर्टिक आर्चेज पाये जाते हैं, किन्तु इनमें गर्दन का लम्बा होना, देहगुहा हृदय का पश्च भाग में शिफ्ट (shift) होना तथा वेण्ट्रिकिल के अपूर्ण विभाजन के कारण ऐओर्टिक आर्चेज में निम्नलिखित रूपान्तरण पाये जाते हैं–

   (i) पूर्ण वेण्ट्रल ऐओर्टा तथा कोनस (conus) लम्बाई में स्प्लिट (split) होकर केवल तीन ट्रंक्स (trunks) **दो ऐओर्टिक या सिस्टैमिक तथा एक पल्मोनरी** का निर्माण करते हैं।

   (ii) IV या दायाँ **सिस्टैमिक आर्च बायें वैण्ट्रिकिल** से निकलता है जो सिर के भाग को रुधिर देने के लिए शुद्ध या ऑक्सिजिनेटेड रुधिर कैरोटिड आर्च (III) को देता है।

   (iii) **IV या बायाँ सिस्टैमिक आर्च** दायें वैण्ट्रिकिल से निकलकर मिश्रित रुधिर को शरीर के अन्य भागों को बाँटने के लिए डॉर्सल ऐओर्टा को देता है।

   (iv) **VI या पल्मोनरी ट्रंक** भी दायें वैण्ट्रिकिल से निकलता है जो डिऑक्सीजिनेटेड रुधिर को शुद्ध होने के लिए फेफड़ों को देता है।

   (v) इनमें डक्टस कैरोटिकस तथा डक्टस आर्टिरियोसस अनुपस्थित होता हैं। लेकिन डक्टस कैरोटिकस कुछ सर्पो (snakes) तथा लिजर्ड (जैसे– यूरोमैस्टिक्स) में पाया जाता है तथा डक्टस आर्टिरियोसस टर्टिल्स (turtles) में उपस्थित होता है तथा स्फीनोडॉन *(Sphenodon)* में दोनों ही उपस्थित होते हैं। रेप्टाइल्स मिश्रित रुधिर के कारण ऐम्फिबियन्स की तरह शीत – रुधिरीय (cold-blooded) होते हैं।

टिप्पणी

5. **पक्षी एवं स्तनियों में ऐओर्टिक आर्चेज (Aortic arches in Birds and Mammals)**– पक्षी एवं स्तनी दोनों ही गर्म–रुधिर (warm-blooded) जन्तु है। क्योंकि इन दोनों में वैण्ट्रिकिल का पूर्ण विभाजन होता है जिसके कारण इनमें शुद्ध तथा अशुद्ध रुधिर एक–दूसरे से पूर्ण अलग रहते हैं, अर्थात् इनमें मिश्रित रुधिर नहीं होता है। इनके भ्रूण में छः जोड़ी आर्चेज का विकास होता है, किन्तु वयस्कों में केवल तीन जोड़ी – III, IV तथा VI ऐओर्टिक आर्चेज पाये जाते हैं। इनके ऐओर्टिक आर्चेज में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं–

   (i) वैण्ट्रल ऐओर्टा के स्थान पर दो स्वतन्त्र या ट्रंक्स – **सिस्टैमिक तथा पल्मोनरी** पाये जाते हैं।

   (ii) इनमें एक ही **सिस्टैमिक ऐओर्टा** पाया जाता है जो IV आर्च को निरूपित करता है। पक्षियों में दायाँ सिस्टैमिक ऐओर्टा तथा स्तनियों में बायाँ सिस्टिमिक ऐओर्टा होता है जो दोनों में ही बायें वैण्ट्रिकिल से निकलता है तथा इसमें शुद्ध या ऑक्सीजिनेटेड रुधिर होता है। पक्षियों तथा स्तनियों में डॉर्सल ऐओर्टा का निर्माण इसी एक ही सिस्टैमिक ऐओर्टा से होता है।

   (iii) दूसरे सिस्टैमिक आर्च का बचा हुआ भाग इन दोनों कशेरुकी जन्तुओं में **सबक्लेवियन आर्टरी** के रूप में रहता है। पक्षियों में यह दायीं ओर पायी जाती है।

   (iv) तीसरा आर्च, लेटरल तथा वैण्ट्रल ऐओर्टी के बचे भागों सहित **कैरोटिड आर्टिरीज** (Carotid arteries) को निरूपित करता है जो सिस्टैमिक ऐओर्टा से निकलती है।

   (v) VI वाँ आर्च एक ही पल्मोनरी ट्रंक का निर्माण करता है जो दाहिने वैण्ट्रिकिल से डिऑक्सीजिनेटेड या अशुद्ध रुधिर को शुद्ध होने के लिए फेफड़ों को देता हैं

   (vi) भ्रूणीय **डक्टस कैरोटिकस** तथा **डक्टस आर्टिरियोसस** भी लुप्त हो जाते हैं। इनमें डक्टस आर्टिरियोसस बंद हो जाता है, किन्तु कुछ में यह जन्म होने तक एक **थिन लिगामेण्ट ऑफ बोटेलाई या लिगामेण्टम आर्टिरियोसम** (thin ligament of Botalli or ligamentum arteriosum) के रूप में रहता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि निम्न कशेरुकियों से उच्च कशेरुकियों में एओर्टिक आर्चेज की संख्या में क्रमिक ऱ्हास (gradual reduction) होता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

1. मैण्डिबुलर तथा हायऑइड आर्च पाये जाते हैं–
   (अ) मैण्डिबुलर मछलियों में (ब) टीलिओस्ट मछलियों में
   (स) प्रिमिटिव कॉर्डेट में (द) ऐम्फिबिया में।
2. सभी वर्टीब्रेट में तृतीय ऐओर्टिक आर्च कैरोटिड आर्च में बदल जाता है, केवल एक को छोड़कर–
   (अ) टीलिओस्ट मछलियों में (ब) ऐम्फिबियन्स में
   (स) पक्षियों में (द) स्तनियों में।
3. सिस्टैमिक आर्च अनुपस्थित होता है–
   (अ) एन्युरा तथा रेप्टाइल में (ब) डिप्नोई मछलियों में
   (स) रेप्टाइल तथा पक्षियों में (द) पक्षी तथा स्तनियों में।
4. वाल्व्स आर्टिरियोसस पाया जाता है–
   (अ) इलास्मोब्रॅक हृदय में (ब) एन्यूरन के हृदय में
   (स) टीलिओस्ट के हृदय में (द) यूरोडेला के हृदय में।
5. क्रोकोडाइल का हृदय होता है–
   (अ) दो–कक्षीय (ब) तीन कक्षीय
   (स) अपूर्ण रूप से चार–कक्षीय (द) पूर्ण रूप से चार–कक्षीय।
6. फोरामैन पैनिजी पाया जाता है
   (अ) ऐम्फिबियन हृदय में (ब) रेप्टिलियन हृदय में
   (स) पक्षियों के हृदय में (द) स्तनधारियों के हृदय में।
7. कोरोनरी सलकस पाया जाता है–
   (अ) स्तनियों के हृदय मे
   (ब) पक्षियों के स्कल में
   (स) स्तनियों एवं रेपिटलियन के हृदय में
   (द) रेप्टिलियन के हृदय में।
8. फोसा ओवेलिस पाया जाता है–
   (अ) स्तनियों के स्कल में (ब) पक्षियों के स्कल में
   (स) रेप्टाइल के स्कल में (द) स्तनियों के हृदय में।

9. ट्राइकस्पिड एवं बाइकस्पिड वाल्व्स पाये जाते हैं–
   (अ) स्तनियों एवं पक्षियों के हृदय में
   (ब) रेप्टाइल के हृदय में
   (स) स्तनियों की धमनियों में
   (द) स्तनियों के हृदय में।

10. S.A. Node की उत्पत्ति होती है–
   (अ) ऑरिकुलर की दीवार से
   (ब) कोनस की दीवार मे
   (स) वेण्ट्रिकिल की दीवार से
   (द) साइनस वेनोसस की भ्रूणीय दीवार से।

11. वीनस हृदय पाया जाता है–
   (अ) मछलियों में (ब) ऐम्फिबियन्स में
   (स) रेप्टिलियन्स में (द) स्तनियों में।

12. ट्रान्जिशनल हृदय पाया जाता है–
   (अ) मछलियों में
   (ब) ऐम्फिबियन्स में
   (स) रेप्टिलियन्स में
   (द) ऐम्फिबियन्स तथा रेप्टिलियन्स में।

13. वैण्ट्रल ऐओर्टा पाया जाता है–
   (अ) मछलियों के हृदय में (ब) ऐम्फिबियन्स के हृदय में
   (स) रेप्टिलियन्स के हृदय में (द) स्तनियों के हृदय में।

14. कशेरुकियों में कौन–सा ऐओर्टिक आर्च, केरेटिड आर्च में बदल जाता है?
   (अ) I (ब) III
   (स) IV (द) IV।

15. मनुष्य के हृदय में कक्ष होते हैं–
   (अ) दो (ब) तीन
   (स) चार (द) उक्त सभी।

3.3 कशेरुकियों में तन्त्रिका तन्त्र : मस्तिष्क (Nervous System in Vertebrates : Brain)

उत्तेजनशीलता (excitement) जीवद्रव्य (protoplasm) का साधारण गुण है किन्तु यह गुण तन्त्रिका कोशिका के जीवद्रव्य में अन्य कोशिकाओं की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। तन्त्रिका कोशिकाएँ तन्त्रिका ऊतकों की इकाई हैं। इन कोशिकाओं में उत्तेजित होकर उद्दीपनों (stimulus) को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की शक्ति भी बहुत अधिक होती है।

न्यूरॉन अथवा तन्त्रिका कोशिका की संरचना (Structure of neuron or nerve cells)– एक न्यूरॉन निम्न तीन भागों में विभक्त रहता है–

1. **साइटॉन या तन्त्रिका काय (Cyton or cell body)**– यह न्यूरॉन का मुख्य भाग है जिसमें अंदर एक केन्द्रक (nucleus) पाया जाता है।
2. **डैण्ड्रॉन्स (Dendrons)**– साइटॉन से अनेक प्रवर्ध (processes) निकलते हैं जिन्हें डैण्ड्रॉन्स (dendrons) कहते है, इन डैण्ड्रॉन्स से निकलने वाली पतली शाखाएँ डैण्ड्राइट्स कहलाती है।
3. **एक्सॉन (Axon) या न्यूरैक्सिस (Neuraxis)**– एक प्रवर्ध अन्य प्रवर्धों से बड़ा तथा लम्बा होता है जिसे एक्सॉन कहते हैं। एक्सॉन के न्यूरोफाइब्रिल्स (neurofibrils) एक गाढ़े द्रव में पड़े रहते हैं जिसे **एक्सोप्लाज्म** (axoplasm) कहते हैं। उद्दीपन डैण्ड्राइट्स से डैण्ड्रॉन में होता हुआ साइटॉन में पहुँचता है तथा वहाँ से फिर एक्सॉन में होकर आगे बढ़ता है। एक्सॉन की अन्तिम शाखाओं के सिरे पर छोटे–छोटे बटन पाये जाते हैं जिन्हें अन्तिम (terminal buttons) या सिनेप्टिक नॉब्स (synaptic knobs) कहते हैं। ये नॉब्स दूसरी तन्त्रिका कोशिका के साइटॉन से निकलने वाले डैण्ड्राइट्स के अत्याधिक निकट स्थित रहते है।

   इस प्रकार एक्सॉन्स टर्मिनल बटन्स तथा दूसरी तन्त्रिका कोशिका के डैण्ड्राइट के बीच स्थित इस गैप (gap) को सिनाप्स (synapse) कहते हैं।

प्रत्येक तन्त्रिका तन्तु के ऊपर एक झिल्ली चढ़ी रहती है जिसे न्यूरीलेमा (neurilemma) कहते हैं तथा न्यूरीलेमा एवं एक्सॉन के बीच में एक वसामय स्तर होता है जिसे माइलिन या मैड्यूलरी शीथ (myelin or medullary sheath) कहते हैं। मैड्यूलरी शीथ कुछ दूरी पर टूटी रहती है, इन स्थानों को **नोड्स ऑफ रेनवियर** (Nodes of Ranvier) कहते हैं।

मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड (spinal cord) में न्यूरॉन्स (neurons) के अतिरिक्त न्यूरोग्लिया (neuroglia) नामक कोशिकाएँ भी पैकिंग कोशिकाओं के रूप में न्यूरॉन्स के मध्य में पायी जाती हैं। इन कोशिकाओं में शाखान्वित प्रवर्ध (branched processes) पाये जाते हैं तथा ये संयोजी ऊतक (connective tissue) की भाँति कार्य करती हैं किन्तु सच्चा संयोजी ऊतक नहीं पाया जाता है।

3.3.1 तन्त्रिका तन्त्र का विभाजन (Division of Nervous System)

तन्त्रिका तन्त्र तीन भागों में विभक्त किया गया है–

टिप्पणी

1. **केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (Central nervous system or CNS)**– इसके अन्तर्गत मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड आते हैं।

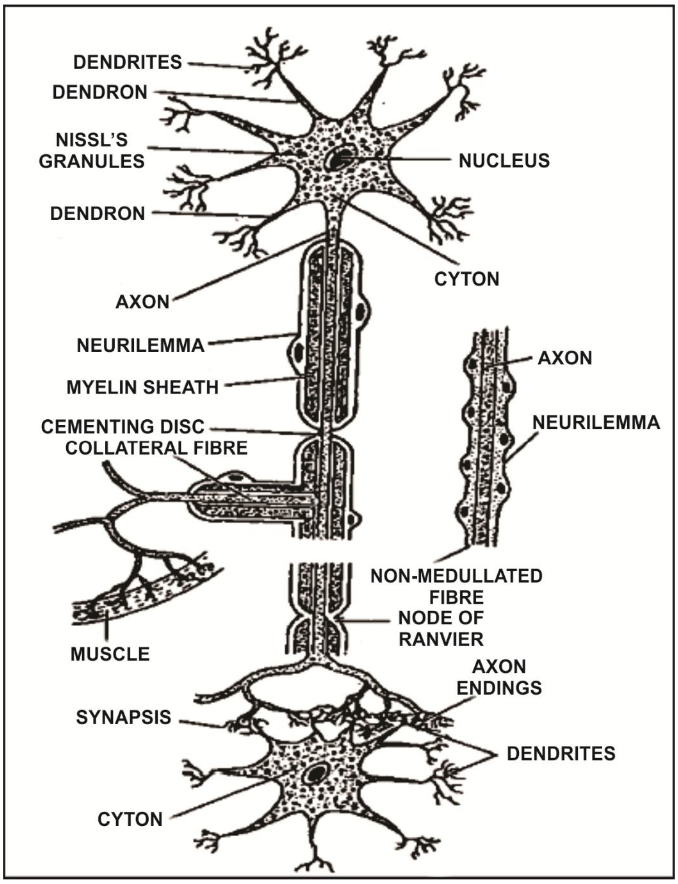

चित्र क्र. 3.7: Nerve Cell or Neuron

2. **पेरीफेरल तन्त्रिका तन्त्र (Peripheral nervous system)**– मस्तिष्क से निकलने वाली 10 या 12 जोड़ी क्रेनियल तन्त्रिकाएँ (cranial nerves) तथा स्पाइनल कॉर्ड (spinal cord) से निकलने वाली अनेक स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (spinal nerves) इसके अन्तर्गत आती हैं।
3. **ऑटोनामिक तन्त्रिका तन्त्र (Autonomic nervous system)**– इसके अन्तर्गत स्मूथ तथा कार्डियक पेशियों (smooth and cardiac muscles) तथा ग्रन्थियों की तन्त्रिकाएँ आती हैं। इस तन्त्र का सम्बन्ध शरीर की अनैच्छिक या ऑटोमैटिक (involuntary or automatic) गतिविधियों से होता है। जैसे आहार नाल की पेरीस्टालसिस (Peristalsis of alimentary canal) तथा हृदय का स्पन्दन (heart beating)। इस तन्त्र को पेरीफेरल तन्त्रिका तन्त्र का ही एक भाग माना जाता है अतः कभी–कभी दोनों का अध्ययन साथ–साथ भी किया जाता है।

3.3.2 कशेरुकियों का केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (Central Nervous System of Vertebrates)

टिप्पणी

मस्तिष्क का विकास (Development of Brain)

कशेरुकी भ्रूण में न्यूरल ट्यूब का अग्र भाग फूलकर मस्तिष्क का निर्माण करता है, जिसे एनसिफेलॉन (encephalon) कहते है। भेद, वृद्धि तथा दो खॉच (constrictions) के द्वारा एनसिफेलॉन एक कतार के रूप में **तीन प्रारम्भिक सैरीब्रल वैसिकिल्स** (three primary cerebral vesicles) में विभाजित हो जाता है,

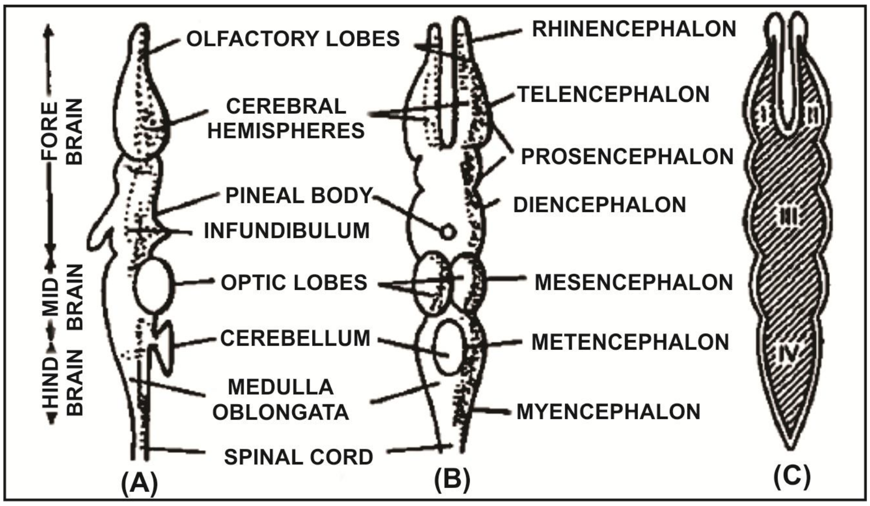

चित्र क्र. 3.8: (Pattern of Generalised Vertebrate Brain)
(A) Lateral View, (B) Dorsal view, (C) H.L.S. Showing Ventricles

जिन्हें क्रमशः **अग्र मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क तथा पश्च मस्तिष्क** (forebrain, midbrain and hindbrain) कहते हैं। ये ही तीन भाग वयस्क – मस्तिष्क (adult brain) के तीनों मुख्य भागों– **(i) प्रोसैनसिफेलॉन** (Prosencephalon = forebrain), **(ii) मीजैनसिफेलॉन** (Mesencephalon = midbrain) तथा **(iii) रॉम्बैनसिफेलॉन** (Rhombencephalon = hindbrain) का निर्माण करते हैं। इन्हीं पाँच सबडिविजन्स में विभिन्न वृद्धि (thickening and foldings) के द्वारा कशेरुकी जन्तुओं में वयस्क मस्तिष्क के विभिन्न भागों का विकास होता है। वयस्क मस्तिष्क के विभिन्न भागों की गुहाओं को **वैण्ट्रिकिल्स** (Ventricles) कहते हैं जो मस्तिष्क के पीछे स्थित स्पाइनल कॉर्ड (spinal cord) की गुहा से सम्बधित रहती हैं। एक कशेरुकी के वयस्क मस्तिष्क के विभिन्न भागों तथा उनसे सम्बन्धित रचनाओं को इसी अध्याय में सारणी क्र. 3.3 में दर्शाया गया है।

3.3.3 विभिन्न कशेरुकियों में मस्तिष्क का अध्ययन (Study of Brain in Different Vertebrates)

टिप्पणी

सभी कशेरुकी जन्तुओं–मछली से लेकर मनुष्य तक, में मस्तिष्क की संरचना एक ही बेसिक आर्किटेक्चरल प्लान (basic architectural plan) पर आधारित है। हालांकि, विभिन्न कशेरुकी जन्तुओं में मस्तिष्क की आकृती में पायी जाने वाली विभिन्नता इन जन्तुओं के स्वभाव तथा व्यवहार से सम्बधित है, जिसे हम लोग इन जन्तुओं के मस्तिष्क के तुलनात्मक अध्ययन से निम्न प्रकार समझ सकते हैं–

1. **सिफेलोकॉर्डेट्स (Cephalochordates)**– एम्फिऑक्सस *(Amphioxus)* में मस्तिष्क एक अग्र **प्रोसैनसिफेलॉन या सैरीब्रल वैसिकल** (Prosencephalon or Cerebral vesicle) जिसमें एक बड़ी वैण्ट्रिकिल गुहा स्थित होती है, के रूप में होता है। इसकी गुहा एपनडाइमल कोशिकाओं के लम्बे प्रवर्ध तथा सीलिया से आस्तरित रहती है। यह कशेरुकी जन्तुओं की तरह अग्र, मध्य तथा पश्च मस्तिष्क में विभाजित नहीं होता है।

2. **साइक्लोस्टोम्स (*Cyclostomes*)**– साइक्लोस्टोम्स में मस्तिष्क अत्याधिक प्रिमिटिव तथा स्पष्ट रूप से सब–डिविजन्स में विभाजित नहीं होता है। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

   (i) इसमें दोनो **ऑल्फैक्टरी लोब्स** (Olfactory lobes) स्पष्ट होते हैं, किन्तु **सैरीब्रल हैमिस्फीयर** (Cerebral Hemispheres) अत्याधिक छोटे होते हैं।

   (ii) सैरीब्रल हैमिस्फीयर की गुहाएँ या लेटरल वैण्ट्रिकिल्स अविकसित होती हैं।

   (iii) **पेट्रोमाइजॉन** *(Petromyzon)* में **पीनिअल ऐपेरेटस** तथा **पैरापीनिअल बॉडी** (Pineal apparatus and Parapineal or parietal body) सुविकसित होती है, जो **मिक्सिन** *(Myxine)* में प्रायः अनुपस्थित होती है। पीनिअल ऐपेरेटस से **एपिथैलेमस** (epithalamus) जुड़ा रहता हैं जो दो **हैबिन्यूली गैंग्लिआ** (habinulae ganglia) से मिलकर बना होता है।

   (iv) दो **ऑप्टिक लोब्स** (Optic lobes), अस्पष्ट रूप से विभाजित रहते हैं।

   (v) **मैड्यूला ऑब्लांगटा** (Medulla oblongata) सुविकसित, जबकि **सैरीबैलम** (Cerebellum) छोटा तथा एक अनुप्रस्थ डॉर्सल बैण्ड के रूप में होता है।

   (vi) **डाइनसिफैलॉन** (Diencephalon) के **हाइपोथैलेमस** (Hypothalamus) **के इनफण्डिबुलम** से एक सुविकसित **पिट्यूटरी बॉडी** या **हाइपोफासिस** (Hypophysis) जुड़ी रहती है।

टिप्पणी

3. **मछलियाँ (Fishes)**– मछलियों में मस्तिष्क साइक्लोस्टोम्स की अपेक्षा अत्याधिक विकसित तथा स्पष्ट रूप से सब–डिविजन्स में विभाजित होता है–

(i) **इलास्मोब्रैंकस् या कार्टिलेजिनस मछलियाँ (Elasmobranchs or Cartiaginous fishes)**– इनके मस्तिष्क में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं–

(a) इन मछलियों में; जैसे– **स्कॉलिओडॉन** तथा डॉग फिश *(Scoliodon)*, **ऑल्फैक्टरी लोब्स** बड़े तथा सैरीब्रम से छोटे होते है तथा मजबूत ऑल्फैक्टरी ट्रैक्ट या पैडन्किल्स (Olfactory tract or peduncles) से जुड़े रहते हैं।

(b) **ऑप्टिक लोब्स** या **पेलियम** (Pallium) सामान्यतः मध्य आकार के होते हैं। मध्य मस्तिष्क की गुहा या ऑप्टोसील (optocoel) सुविकसित होती है।

(c) एक वैस्क्युलर (vascular) संवेदी अंग जिसे **सक्कस वॉस्कुलोसस** (saccus vasculossus) कहते हैं, पिट्यूटरी ग्रन्थि से जुड़ा रहता है तथा साथ ही **सैरीबैलम** (Cerebellum) से एक फाइबर–टैक्ट (fibre tract) के द्वारा (connected) रहता है।

(d) मछलियों के जल में तैरने के स्वभाव के कारण, इनमें **सैरीबैलम** (Cerebellum) मुख्यतः बड़ा एवं सुविकसित होता है।

(e) जल में तैरते समय शरीर को सन्तुलित रखने के लिए सैरीबैलम के कार्य को असिस्ट (assist) करने के लिए इनमें **रैस्टीफॉर्म बॉडीज** (Restiform bodies) सुविकसित होती है जो मैड्यूला के एण्टीरोलेटरल (antero-lateral) तलों पर स्थित रहती है।

(ii) **ऑस्टीक्थीज या बोनी मछलियाँ (Osteichthyes or bony fishes)** इनके मस्तिष्क में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं–

(a) बोनी मछलियों में मस्तिष्क, इलास्मोब्रैंक मछलियों की अपेक्षा अधिक विशेषीकृत होता है। इनमें **ऑल्फैक्टरी लोब्स, सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स** तथा **डाइनसिफैलॉन** छोटे आकार के होते हैं।

(b) **ऑप्टिक लोब्स** तथा **सैरीबैलम** अत्याधिक बड़े आकार के रूप में विकसित होते हैं। कुछ बोनी मछलियों में **रैस्टीफॉर्म बॉडीज** उपस्थित हैं।

(c) **मैड्यूला** की सतह पर **वेगल लोब्स** (vagal lobes or unusual bulges) पाये जाते हैं।

(d) आधुनिक बोनी मछलियों में पैरापीनिअल बॉडी अनुपस्थित होती है।

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.3: Showing General Sub-divisions, Parts and Associated Structures of Vertebrate Brain

Division	Sub-Divisions	Parts	Cavity	Associated Structures
Prosen-cephalic or Forebrain	A. Telen-cephalon	(a) Rinen-cephalon	I[st] Ventricle or Rhinocoel	(i) Olfactory lobes (ii) Olfactory bulbs (iii) Olfactory tracts (iv) Palaeocortex pallium
		(b) Cerebral Hemi-spheres	II[nd] or Lateral Ventricles or Paracoels ↓ Foramen of Monro	(i) Corpora striata (ii) Corpus callosum (iii) Neocortex on pallium (iv) Paraphysis
	B. Dien-cephalon	(a) Roof or Epithalamus	III[rd] Ventricle or Diocoel	(i) Pineal apparatus (ii) Parapineal apparatus (iii) Habenulae
		(b) Sides or Optic Thalami		
		(c) Hypoth-alamus or Floor		(i) Optic chiasma (ii) Median eminence (iii) Infundibulum (iv) Hypophysis (Pituitary) (v) Saccus vasculosus (vi) Mammary bodies (vii) Anterior choroid plexus
II. Mesen-cephalon or Middrain		Floor or Crura cerebri	Optocoel or Iter or Cerebral Aqueduct	(i) Optic lobes (ii) Auditory lobes (iii) Cerebral peduncles

III. Rhomben-cephalic or Hindbrain	A. Meten-cephalon	Cerebellum		(i) Trapezoid body (ii) Pons
	B. Myelen-cephalon	Medulla Oblongata	IVth Ventricle or Metacoel	(i) Restiform bodies (ii) Pyramids

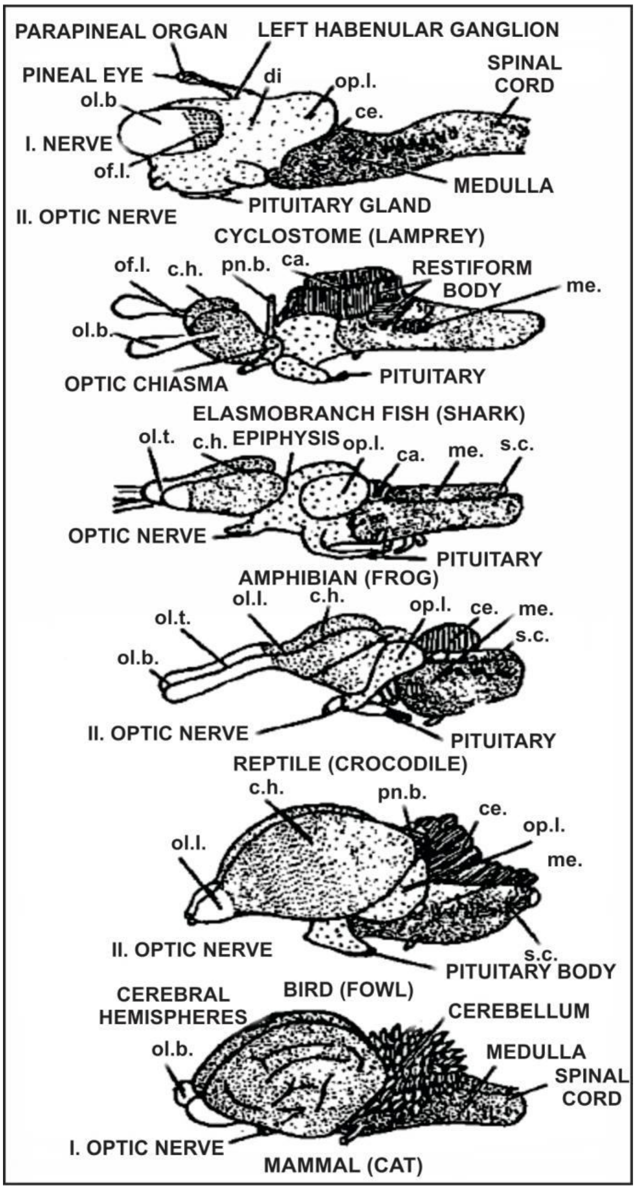

चित्र क्र. 3.9: Brain of Representative Vertebrates in Lateral view : ce.-cerebellum, c.h.-cerebral hemisphere, di.-diencephalon inf.-infundibulum. m-medulla oblongata. ol. b.-olfactory bulb, ol. l.-olfactory lobe, ol. t.-olfactory tract. op. l.-optic lobe. pi.-pituitary.pn.b.-pineal body.sc.-spinal cord

टिप्पणी

4. **ऐम्फिबिया (Amphibia)**– ऐम्फबियन मस्तिष्क, जैसे– मेंढक, मछलियों से निम्नलिखित लक्षणों में भिन्न होता है–

(i) इनमें ऑल्फैक्टरी लोब्स छोटे तथा ऑप्टिक लोब्स बड़े होते है जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि इनमें सूँघने की शक्ति कम तथा देखने की क्षमता अधिक होती है।

(ii) सैरीब्रल हैमिस्फीयर की गुहा में जमीन पर **कॉर्पस स्ट्राइएटम** या **पैलियोस्ट्राइएटम** (Corpus striatum or Paleostriatum) सुविकसित होता है तथा इसमें संवेदी नर्व फाइबर्स अधिक होते हैं। इनमे लोकोमोशन (locomotion) की कॉम्प्लैक्स ऐक्टिविटीज (activities), हाइबरनेशन तथा ब्रीडिंग (breeding) के कारण सैरीब्रल हैमिस्फीयर मछलियों में सुविकसित होते हैं।

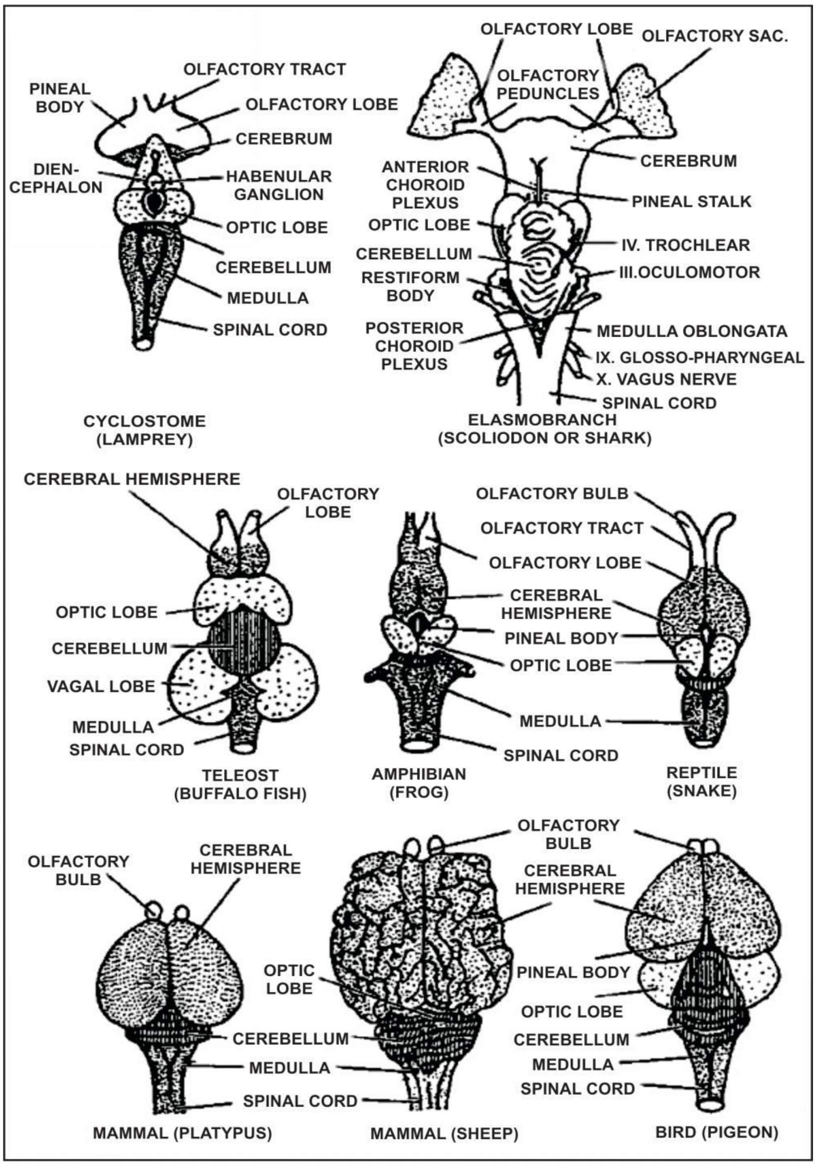

चित्र क्र. 3.10: **Brain of Representative Vertebrates in Dorsal View**

(iii) **सैरीबैलम** अविकसित तथा अनुप्रस्थ बैण्ड के रूप में होता है।

(iv) **मैड्यूला** भी छोटा होता है।

(v) प्रायः सभी आधुनिक ऐम्फिबियन्स में एक छोटी पीनियल बॉडी पायी जाती है।

5. रेप्टिलियन्स (Reptilians)– रेप्टिलियन का मस्तिष्क ऐम्फिबियन्स से अधिक विकसित होता है, क्योंकि ये स्थलीय जीवन–यापन करते हैं। इनका मस्तिष्क निम्नलिखित मुख्य लक्षणों में ऐम्फिबियन्स से भिन्नता प्रदर्शित करता है–

(i) इनके मस्तिष्क में **टैलैनसिफेलॉन** (telencephalon) आकार में अधिक बढ़कर मस्तिष्क के मुख्य भाग के रूप में होता है। **ऑल्फैक्टरी लोब्स** लम्बे तथा सैरीब्रल हैमिस्फीयर से **ऑल्फैक्टरी ट्रैक्ट** द्वारा जुड़े रहते हैं।

(ii) सैरीब्रल हैमिस्फीयर, ऐम्फिबियन्स से अधिक विकसित एवं बड़े होते हैं, क्योंकि इनके अंदर **कॉर्पस स्ट्राइएटम** अत्याधिक मोटे होते हैं।

(iii) **पैरापीनिअल बॉडी जिसे पैराइटल नेत्र** (parietal eye) भी कहते हैं, **स्फीनोडॉन** *(Sphenodon)* तथा कुछ आधुनिक लिजर्ड्स (lizards) में अब भी पायी जाती है, किन्तु अन्य रेप्टाइल्स में यह अनुपस्थित या वेस्टिजिअल (vestigial) रूप में रहती है।

(iv) इनके मस्तिष्क में ऑप्टिक लोब्स के पीछे, एक जोड़ी **ऑडिटरी लोब्स** जो ठोस होते हैं, पाये जाते हैं।

(v) मस्तिष्क का तीसरा वैण्ट्रिकिल सॅकरा तथा **सैरीब्रल एक्यूडक्ट** (Cerebral aqueduct) के रूप में होता है।

(vi) **सैरीबैलम** कुछ नाशपाती के आकार का तथा ऐम्फिबियन्स से बड़ा होता है।

6. पक्षी (Birds)– पक्षीयों का मस्तिष्क रेप्टिलियन मस्तिष्क से चौड़ा, बड़ा तथा लम्बाई में कुछ छोटा होता है। यह रेप्टिलियन मस्तिष्क से निम्नलिखित लक्षणों में भिन्नता रखता है–

(i) सूँघने के संवेदी अंग कम विकसित होने के कारण इनके मस्तिष्क में ऑल्फैक्टरी लोब्स अत्याधिक छोटे होते है।

(ii) दोनों **सैरीब्रल हैमिस्फीयर** अत्याधिक बड़े, चिकने तथा पीछे की ओर डाइनसिफेलॉन पर फैलकर सैरीबैलम से मिले रहते हैं। **पैलियम** पतली, किन्तु अंदर **कॉपर्स स्ट्राइएटम** अत्याधिक बड़े आकार के होते हैं जिसके कारण हैमिस्फीयर्स की गुहाएँ या लेटरल वैण्ट्रिकिल्स सँकरे हो जाते हैं।

(iii) **डाइनसिफेलॉन** की लेटरल दीवारों या **ऑप्टिक थैलेमाई** (optic thalami) के अधिक विकसित हो जाने के कारण, **तीसरा वैण्ट्रिकल** भी सँकरा होता है।

टिप्पणी

(iv) तीव्र दृष्टि के विकसित होने के कारण, इनके मस्तिष्क में **ऑप्टिक लोब्स** भी अत्याधिक बड़े तथा लेटरली (laterally) स्थित होते हैं। बाइपीडल चलन, अनेक पेशीय क्रियाविधियों तथा उड़ते समय या पर्चिंग (perching) के समय शरीर को सन्तुलित करने के लिए इनके मस्तिष्क में **सैरीबैलम** अत्याधिक विकसित होता है। इसकी सतह पर अनेक **फोल्डस या फ्लोकुलाई** (folds or flocculi) पाये जाते हैं।

7. **स्तनधारी (Mammals)**– सभी कशेरुकी जन्तुओं में स्तनधारी का मस्तिष्क सबसे बड़ा एवं रचना में जटिल होता है। अन्य कशेरुकी जन्तुओं से यह निम्नलिखित लक्षणों में भिन्नता रखता है–

(i) सेरीब्रल हैमिस्फीयर्स– प्रोटोथीरियन स्तनधारियों में ये रेप्टाइल्स की तरह छोटे तथा चिकने होते हैं। मैटाथीरियन्स स्तनधारियों में ये बड़े तथा चिकने होते हैं, किन्तु यूथीरियन या उच्च स्तनधारियों में ये अत्याधिक बड़े, लोब्स में विभाजित तथा **सैरीब्रल कॉर्टेक्स** जो ग्रे–मैटर (grey matter) का बना होता है, अत्याधिक मोटा होता है। शशक में सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स की सतह चिकनी होती है, किन्तु अन्य स्तनधारियों; जैसे– मनुष्य तथा भेड़ में हेमिस्फीयर्स की सतह अत्याधिक कॉन्वोल्यूटैड (convoluted) या **एलिवेशन्स या गायराई** (elevations or gyri) में उठी रहती है जो दरारें या **सलसाई** (furrows or Sulci) से अलग रहती हैं। इस प्रकार के फोल्डिंग (folding) से सैरीब्रल कॉर्टेक्स की सतह का क्षेत्रफल जिसके ग्रे–मैटर में न्यूरॉन्स (neurons) की संख्या अधिक होती है, बढ़ जाता है।

सारणी क्र. 3.4: कशेरुकी के विभिन्न वर्गों में मस्तिष्क का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparatives Study of Brain in different Classes of Vertebrate)

Characters	Fish Dogfish *(Scoliodon)*	Amphibia Frog *(Rana)*	Reptilia Lizards *(Urom-astix)*	Aves Pigeon *(Columba)*	Mammalia Rabbit *(Oryctolagus)*
1	2	3	4	5	6
1. क्रेनियम (Cranium)	मस्तिष्क कार्टिलेजिनस क्रेनियम के अंदर बंद रहता है।	इनमें मस्तिष्क बोनी क्रेनियम के अंदर बंद रहता है।	इनमें भी क्रेनियम बोनी होता है।	क्रेनियम बोनी।	क्रेनियम बोनी।

टिप्पणी

2. आकार तथा मस्तिष्क के मुख्य भाग (Shape and main parts of brain)	मस्तिष्क साधारणतया लम्बा, चपटा, चौड़ाई से तिगुना लम्बा तथा अग्र, मध्य एवं पश्च मस्तिष्क में विभाजित।	मस्तिष्क लम्बा, चपटा तथा अग्र, मध्य एवं पश्च मस्तिष्क में विभाजित।	मस्तिष्क मेंढक की तरह लम्बा, किन्तु मेंढक से कुछ बड़ा एवं चौड़ा तथा अग्र, मध्य एवं पश्च मस्तिष्क में विभाजित।	मस्तिष्क अपेक्षाकृत बड़ा तथा रचना में रेप्टाइल्स से जटिल। चौड़ाई से कुछ ही लम्बा तथा अग्र, मध्य एवं पश्च मस्तिष्क में विभाजित।	मस्तिष्क बड़ा जटिल तथा अत्याधिक विकसित। चौड़ाई तथा लम्बाई में लगभग बराबर। अग्र, मध्य एवं पश्च मस्तिष्क में विभाजित।
3. मैनिनजीज (Meninges)	मस्तिष्क के ऊपर केवल एक ही मैम्ब्रेन पायी जाती है। इसे **मैनिन्क्स प्रिमिटिवा** (Meninx primitiva) कहते हैं।	मस्तिष्क दो मैम्ब्रेन्स के द्वारा सुरक्षित रहता है, एक अंदर पतली **पायामेटर** (inner piamater) तथा दूसरी बाहरी मोटी **डूरामेटर** (durama-ter) के द्वारा।	इनके मस्तिष्क के ऊपर मैम्ब्रेन्स ऐम्फिबिया के ही समान है।	इनका मस्तिष्क भी दो मैम्ब्रेन्स से सुरक्षित रहता है। अंदर की मैम्ब्रेन को **पाया – अरैकनॉयड** (piaarach-noid) तथा बाहर की मैम्ब्रेन को **डूरामेटर** कहते हैं।	स्तनियों का मस्तिष्क तीन मैम्ब्रेन्स द्वारा सुरक्षित रहता है अंदर की मैम्बैन को पायामेटर, मध्य की मैम्ब्रैन को अरैकनॉयड तथा बाहर की मैम्ब्रेन को डूरामेटर कहते हैं।

सारणी क्र. 3.5: Prosencephalon or Fore-brain
(A) Olfactory Lobes

1	2	3	4	5	6
1. स्थिती (Position)	मछली में ये सैरीब्रम के ऐण्टीरो–लेटरल भागों से जुड़े रहते हैं, अतः दोनों ऑल्फैक्टरी लोब्स के मध्य अधिक दूरी रहती है।	ऐम्फिबिया में ये सैरीब्रम के सामने एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं।	रेप्टाइल्स में ये सैरीब्रम के सामने पास–पास स्थित होते हैं तथा सैरीब्रम से ऑल्फैक्टरी ट्रैक्ट द्वारा जुड़े रहते हैं।	पक्षियों में ये सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स के आगे जुड़े रहते हैं तथा इनका अधिकांश भाग इन्हीं हैमिस्फीयर्स के नीचे ढका रहता है।	मैमल्स में ये स्पष्ट रूप से सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स के अग्र भाग से जुड़े रहते हैं तथा इनका आधा भाग हैमिस्फीयर्स के नीचे रहता है।

टिप्पणी

2. आकार तथा साइज (Shape and Size)	मछलियों में ये अत्याधिक विकसित, बड़े आकार के बाइलोब्ड होते हैं। इसीलिए मछलियों में मस्तिष्क को **नोज–मस्तिष्क** (Nose-brain) कहते हैं। ये जन्तु गन्ध के लिए अत्यन्त संवेदनशील होते हैं।	ऐम्फिबियन्स में ये छोटे एवं गोलाकार होते हैं। ये जन्तु गन्ध के लिए अधिक संवेदनशील नहीं होते हैं।	गन्ध के लिए अधिक संवेदनशील न होने के कारण, रेप्टाइल्स में भी ये छोटे एवं कम विकसित होते हैं।	पक्षियों में ये छोटे तथा कोनिकल होते हैं। ये भी गन्ध के लिए कम संवेदनशील होते है।	मैमल्स में ये लम्बे एवं छोटे होते हैं।
3. ऑल्फैकटरी लोब्स के भाग (The parts of Olfactory lobes)	प्रत्येक ऑल्फैक्टरी लोब एक **ऑल्फैक्टरी टैक्ट** या **पैडन्किल** (Olfactory tract or peduncle) तथा एक बाइलोब्ड **ऑल्फैक्टरी बल्ब** (Olfactory bulb) में विभाजित रहता है।	ऐम्फिबियन्स में ऑल्फैक्टरी लोब्स ट्रैक्ट तथा बल्ब में विभाजित नहीं होते हैं।	रेप्टाइल्स में प्रत्येक ऑल्फैक्टरी लोब एक लम्बे पैडन्किल (peduncle) तथा एक छोटे नोड्यूल (nodule) के आकार के ऑल्फैक्टरी बल्ब में विभाजित रहते है।	पक्षियों में ऑल्फैक्टरी लोब्स पैडन्किल तथा ऑल्फैक्टरी बल्ब में विभाजित नहीं होते हैं।	इनमें प्रत्येक ऑल्फैक्टरी लोब एक मुगदर के आकार के ऑल्फैक्टरी बल्ब तथा ऑल्फैक्टरी ट्रैक्ट में विभाजित रहता है। ट्रैक्ट का भाग हैमिस्फीयर के नीचे ढका रहता है।
4. ऑल्फैक्टरी सैक से सम्बन्ध (Relation with Olfactory sac)	मछलियों में ऑल्फैक्टरी बल्ब, ऑल्फैक्टरी सैक (Olfactory sac) से सीधे सम्बधित रहते हैं।	ऐम्फिबियन्स में ऑल्फैक्टरी बल्ब, ऑल्फैक्टरी सैक से सीधे सम्बन्धित नहीं होते हैं।	ऑल्फैक्टरी बल्ब का ऑल्फैक्टरी सैक से समीपस्थ सम्बन्ध नहीं होता है।	पक्षियों में भी ऑल्फैक्टरी बल्ब का ऑल्फैक्टरी सैक से सीधा सम्बन्ध नहीं होता है।	स्तनधारियों में ऑल्फैक्टरी बल्ब का ऑल्फैक्टरी या **नेजल सैक** से सीधा या समीपस्थ सम्बन्ध होता है।

5. **ऑल्फैक्टरी वैण्ट्रिकिल (Olfact-ory Ventric-les)**	ऑल्फैक्टरी लोब्स की गुहा को ऑल्फैक्टरी वैण्ट्रिकिल या राइनोसील (rhinocoels) कहते हैं। मछलियों में यह अधिक चौड़ी या विकसित है।	ऐम्फिबियन्स में राइनोसील छोटी तथा सँकरी होती है।	रेप्टाइल्स में भी राइनोसील सँकरी होती है।	पक्षियों के ऑल्फैक्टरी लोब्स में राइनोसील गुहा अनुपस्थित होती है।	इनके ऑल्फैक्टरी लोब्स में राइनोसील गुहा उपस्थित होती है।

सारणी क्र. 3.6: (B) Cerebral Hemispheres or Cerebrum

1. **आकार एवं साइज (Shape and size)**	मछलियों में सैरीब्रम बड़ा तथा चौकोर होता है। यह बायें एवं दायें सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स मे विभाजित नहीं होते, अतः इनमें मीडियन ग्रूव अनुपस्थित होता है।	ऐम्फिबियन्स में सैरीब्रम मीडियन दरार द्वारा दो (left and right) लम्बे एवं ओवल (oval) सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स में विभाजित रहता हैं।	रेप्टाइल्स में भी सैरीब्रम दो ओवल सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स में मीडियन दरार के द्वारा विभाजित रहता है।	पक्षियों मे सैरीब्रम दो अत्याधिक बड़े नाशपाती के आकार के सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स में एक गहरी सैजिटल दरार (sagittal fissure) द्वारा विभाजित रहते हैं जो आगे से ऑल्फैक्टरी लोब्स तथा पीछे से डाइन-सिफैलॉन को ढके रहते हैं।	मैमल्स में दोंनो सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स नाशपाती के आकार के तथा अत्याधिक विकसित एवं बड़े होते हैं जो एक गहरी सैजिटल दरार द्वारा एक–दूसरे से पृथक् रहते है। इनका अग्र भाग ऑल्फैक्टरी लोब्स को तथा पिछला भाग मध्य मस्तिष्क को ढके रहता है।
2. **न्यूरोपोर (Neurop-ore)**	मछलियों में सैरीब्रम के मिडवैण्ट्रल तल पर टर्मिनल तन्त्रिकाओं के लिए एक **न्यूरोपोर** (neuropore) छिद्र होता है।	ऐम्फिबियन्स में यह छिद्र अनुपस्थित होता है।	रेप्टाइल्स में भी यह अनुपस्थित होता है।	पक्षियों में भी यह अनुपस्थित होता है।	स्तनधारियों मे भी यह अनुपस्थित होता है।
3. **सतह (Surface)**	मछलियों में सैरीब्रम की सतह चिकनी होती है। इस पर फोल्ड्स	ऐम्फिबियन्स में सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स की सतह मछलियों	रेप्टाइल्स में भी सतह चिकनी तथा फोल्ड्स एवं दरारें	पक्षियों में हैमिस्फीयर्स की सतह कम चिकनी किन्तु फोल्ड्स एवं	स्तनधारियों में प्रत्येक हैमिस्फीयर पर **सिलवियन, राइनल** तथा

टिप्पणी

	एवं दरारें अनुपस्थित होती हैं।	जैसी ही होती हैं।	अनुपस्थित होती हैं।	दरारों का पूर्ण अभाव होता है।	**हिप्पोकैम्पल दरारें** होती हैं जिसके फलस्वरूप प्रत्येक हैमिस्फीयर **फ्रण्टल, राइनल, पैराइटल, टैम्पोरल तथा हिप्पोकैम्पल** लोब्स में विभाजित रहता है।
4. **सैरीब्रल कॉर्टेक्स** **(Cerebral cortex)**	मछलियों के सैरीब्रम में यह अनुपस्थित होता है, क्योंकि ग्रे–मैटर सैरीब्रम की गुहा या लेटरल वैण्ट्रिकिल को आस्तरित करता है।	ऐम्फिबियन्स के हैमिस्फीयर्स में सैरीब्रल कॉर्टेक्स प्रारम्भिक अवस्था को दर्शाता है।	रेप्टाइल्स के हैमिस्फीयर्स में यह कम विकसित होता है।	पक्षियों के हैमिस्फीयर्स में यह स्तनधारियों से कम विकसित होता है।	स्तनधारियों के हैमिस्फीयर्स में सैरीब्रल कॉर्टेक्स सुविकसित होता है, अर्थात् स्तनधारियों के हैमिस्फीयर्स का बहरी मोटा स्तर ग्रे–मैटर का बना होता है।
5. **पैलियम** **(Pallium)**	सैरीब्रम की छत या पैलियम (roof or pallium) मछलियों में अत्यन्त कम विकसित होती है।	ऐम्फिबियन्स सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स में पैलियम मछलियों की अपेक्षा कुछ ठीक विकसित होती है।	रेप्टाइल्स के हैमिस्फीयर्स में पैलियम ऐम्फिबियन्स की अपेक्षा और अधिक विकसित होती है।	पक्षियों के हैमिस्फीयर्स में पैलियम स्तनधारियों की अपेक्षा कम विकसित होती है।	स्तनधारियों के सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स में पैलियम अत्याधिक सुविकसित होती है।
6. **कॉरपोरा स्ट्रिएटा** **(Corpora striata)**	मछलियों में सैरीब्रम की वेण्ट्रो–लेटरल दीवारें – या **कॉरपोरा स्ट्रिएटा** अत्यन्त कम विकसित होती है।	ऐम्फिबियन्स में ये मछलियों की अपेक्षा अधिक विकसित होती हैं।	रेप्टाइल में ये मोटी एवं सुविकसित होती हैं।	पक्षियों में ये मोटी तथा अत्याधिक विकसित होती हैं।	स्तनधारियों के हैमिस्फीयर्स में ये तुलनात्मक दृष्टि से कम विकसित होती हैं।

7. **कॉरपस कैलोसम (Corpus callosum)**	मछलियों के सैरीब्रम में अनुपस्थित।	अनुपस्थित	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	केवल स्तनधारियों के सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स में उपस्थित होता है। **कॉरपस कैलोसम** तन्त्रिका ऊतक से बनी एक अनुप्रस्थ बैण्ड के रूप में होता है जो दोनों हैमिस्फीयर्सको एक–दूसरे से अंदर से जोड़े रहता है।
8. **लेटरल वैण्ट्रिकिल्स (Lateral ventricles)**	लेटरल वैण्ट्रिकिल्स को **पैरासील्स** (paracoeles) भी कहते हैं जो सैरीब्रम की गुहाएँ कहलाती हैं। मछलियों के सैरीब्रम में यह चौड़ी एवं अशाखित होती हैं।	ऐम्फिबियन्स के हैमिस्फीयर्स में भी ये अशाखित होती हैं।	रेप्टाइल्स के हैमिस्फीयर्स में भी ये अशाखित होती हैं।	पक्षियों के हैमिस्फीयर्स में भी ये अशाखित होती हैं।	स्तनधारियो के सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स में ये सुविकसित तथा शाखित होती हैं।

सारणी क्र. 3.7: (C) Diencephalon

1. **आकार एवं साइज (Shape and Size)**	मछलियों में डाइन-सिफेलॉन छोटा एवं सँकरी आकृति का होता है। इसका डॉसर्ल तल सैरीबैलम के अग्र भाग के नीचे ढका रहता है।	ऐम्फिबियन्स में डाइनसिफेलॉन छोटा तथा रॉम्बॉयडल (rhombiodal) आकृति का होता है। इसका डॉसर्ल तल सैरीबैलम के द्वारा ढका नहीं होता है।	रेप्टाइल्स में डाइनसिफेलॉन छोटा तथा गोलाकार आकृति का होता है। इसका डॉर्सल भाग सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स तथा ऑप्टिक लोब्स के द्वारा ढका रहता है।	पक्षियों में डाइन–सिफेलॉन का डॉर्सल भाग सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स तथा सैरीबैलम के द्वारा ढका रहता है।	स्तनधारियों में डाइन–सिफेलॉन प्रायः पूर्णरूप से सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स के पिछले बढ़े हुए भागों से ढका रहता है।

टिप्पणी

2. एपिफा– इसिअल ऐपरेटस (Epiphyseal Apparatus)	मछलियों में डाइनसिफेलान की डॉर्सल सतह या छत से एपिफाइसिअल ऐपरेटस एक लम्बे **पीनियल स्टॉक** (pineal stalk) जिसके सिरे पर एक गोल **पीनियल बॉडी** (pineal body) स्थित होती है, के रूप में जुड़ा रहता है। इसमें **पेराइटल अंग** (parietal organ) का अभाव होता है।	मेंढक में **पीनियल स्टॉक** छोटा होता है। टैडपोल (tadpole) लार्वा में इसके सिरे पर एक छोटी, गोल **पीनियल बॉडी** स्थित रहती है, किन्तु वयस्क मेंढक में पीनियल बॉडी इससे अलग होकर स्कल (Skull) के ऊपर स्थित रहती है। **पैराइटल अंग** का इसमें भी अभाव होता है।	रेप्टाइल्स में एपिफा– इसिअल ऐपरेटस एक ऐण्टीरियर **पैराइटल अंग** तथा एक पोस्टीरियर **पीनियल बॉडी** के रूप में होता है।	पक्षियों में **पीनियल स्टॉक** छोटा तथा वर्टीकल (vertical) होता है। **पीनियल बॉडी** छोटी, गोल तथा कोमल अंग के रूप में होती है। पैराइटल अंग अनुपस्थित होता है।	स्तनधारियों में **पीनियल स्टॉक** लम्बा तथा पीछे की ओर झुका रहता है। **पीनियल बॉडी** छोटी एवं गोलाकार होती है। पैराइटल अंग अनुपस्थित होता है।
3. इन– फण्डिबुल (Infun- dibulum)	मछलियों में **इनफण्डिबुलम** एक खोखली उभार जैसी रचना है जो डाइनसिफेलॉन के वैण्ट्रल तल से निकलती है तथा ऑप्टिक किएज्मा (optic chiasma) के पीछे स्थित होती है। यह एक बड़े **मीडियन लोब** (median lobe) तथा दो लेटरल छोटे **इन्फीरियर लोब्स** (inferior lobes) जो पीछे पतली दीवार के बने **सैक्कस वैस्कुलोसस** (Saccus vasculosus) में उभरे रहते हैं, से मिलकर बना होता है।	मेंढक में **इनफण्डिबुलम** एक बड़े मीडियन बाइलोब्ड (bilobed) रचना के रूप में होता है। इसमें इन्फीरियर लोब्स तथा सैक्कस वैस्कुलोसस अनुपस्थित होते हैं।	रेप्टाइल्स में इनफण्डिबुलम डाइनसिफेलॉन के वैण्ट्रल तल पर तथा ऑप्टिक किएज्मा के पीछे उभार के रूप में होता है। इसमें इन्फीरियर लोब्स तथा सैक्कस वैस्कुलोसस अनुपस्थित होते हैं।	पक्षियों में भी इनफ– ण्डिबुलम छोटा तथा बिना इन्फीरियर लोब्स तथा सैक्कस वैस– कुलोसस के होता हैं।	स्तनधारी में इनफ– ण्डिबुलम छोटा तथा बिना इन्फीरियर लोब्स तथा सैक्कस वैस्कुलोसस के होता है।

4. पिट्यूटरी बॉडी (Pituit-ary body)	मछलियों मे मीडियन इनफण्डिबुलर लोब के पश्च भाग में एक ओवल **हाइपोफाइसिस** (hypophysis) रचना जुड़ी रहती है। ये दोनों भाग मिलकर **पिट्यूटरी बॉडी** का निर्माण करते हैं।	मेंढक में **हाइपोफाइसिस** एक ओवल एवं चपटी रचना होती है जो इनफण्डिबुलम के पश्च भाग में स्थित होती है। ये दोनों भाग मिलकर मेंढक में **पिट्यूटरी बॉडी** का निर्माण करते हैं। इनमें भी यह रचना अनुपस्थित होती है।	रेप्टाइल्स में भी इनफण्डि–बुलम एवं पश्च हाइपोफाइसिस मिलकर **पिट्यूटरी बॉडी** का निर्माण करते हैं।	पक्षियों में वैण्ट्रल इनफण्डि–बुलम तथा पश्च हाइपोफासिस मिलकर **पिट्यूटरी बॉडी** का निर्माण करते हैं।	स्तनधारियों में इनफण्डि–बुलम, पश्च हाइपो–फाइसिस तथा एक इण्टर–मीडिएट लोब मिलकर **पिट्यूटरी बॉडी** का निर्माण करते हैं।
5. कॉर्पस एल्बिकैन्स (Corpus albicans)	मछलियों के डाइनसिफेलॉन में यह रचना अनुपस्थित होती हैं।		रेप्टाइल्स में भी यह अनुपस्थित है।	पक्षियों में भी यह अनुपस्थित होती है।	स्तनधारियों में पिट्यूटरी के पीछे एक छोटी गोल रचना स्थित होती है जिसे **कॉर्पस एल्बिकैनस** या **कॉपर्स एल्बिकैन्स** या **कॉर्पस मैमिलैरी** (corpus mammillare) कहते हैं।
6. मिडिल कॉमिश्योर (Middle comm-issure)	डाइनसिफेलॉन की गुहा को डायोसील (diocoel) कहते हैं। यह लेटरली ऑप्टिक **थैलेमाई** (opticthalami) से घिरी रहती है, किन्तु मछलियों में इन थैलेमाई को अंदर से आपस में जोड़ने वाले मिडिल कॉमिश्योर का अभाव होता है।	ऐम्फिबियन्स में भी ऑप्टिक थैलेमाई उपस्थित होती हैं, किन्तु **मिडिल कॉमिश्योर** अनुपस्थित होता है।	रेप्टाइल में भी ऑप्टिक थैलेमाई उपस्थित, किन्तु **मिडिल कॉमिश्योर** अनुपस्थित होता है।	पक्षियों में भी **मीडिल कॉमिश्योर** अनुपस्थित होता है।	स्तनधारियों में दोनों ऑप्टिक थैलेमाइ–डायोसील में आपस में **मिडिल कॉमिश्योर** के द्वारा जुड़ी रहती है।

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.8: (D) Mesencephalon or Mid-brain

1	2	3	4	5	6
1. **ऑप्टिक लोब्स** **(Optic lobes)**	मछलियों में मध्यमस्तिष्क डॉर्सली दो बड़े खोखले **ऑप्टिक लोब्स** या **कॉरपोरा बाइजैमिना** (Corpora bigemina) से मिलकर बना होता है। इनके अंदर की गुहा को **ऑप्टोसील** (optocoel) कहते हैं। इनका अधिकांश भाग सैरीबैलम के द्वारा ढका रहता है।	ऐम्फिबियन्स में मध्य–मस्तिष्क दो बड़े लेटरल गोलाकार एवं खोखले **ऑप्टिक लोब्स** या **कॉरपोरा–बाइजैमिना** से मिलकर बना होता है। इनमें **ऑप्टोसील** सुविकसित होती है। इनका डॉर्सल तल किसी भाग के द्वारा ढका हुआ नहीं होता है।	रेप्टाइल्स में मध्य मस्तिष्क का निर्माण दो मीडियम, ओवल डॉर्सोलेटरल खोखले **ऑप्टिक लोब्स** या **कॉरपोरा बाइजैमिना** से मिलकर होता है। **ऑप्टोसील** सुविकसित तथा डॉर्सली ये किसी भाग द्वारा ढके नहीं होते हैं।	पक्षियों में दोनों **ऑप्टिक लोब्स** या **कॉरपोरा बाइजैमिना** अत्याधिक बड़े, खोखले, गोलाकार तथा सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स और सैरीबैलम के आपस में मिलने के कारण लेटरली स्थित तथा एक–दूसरे से **ऑप्टिक कॉमिश्योर** (Optic commissure) के द्वारा जुड़े रहते हैं। **ऑप्टोसील** सुविकसित होती है।	स्तनधारियों में मध्य–मस्तिष्क **चार छोटे, ठोस** एवं **गोलाकार ऑप्टिक लोब्स** या **कारपोरा क्वाड्रि–जैमिना** (Corpora quadrige-mina) से मिलकर बने होते हैं जो अधिकांशतः से मिलकर बने होते हैं जो अधिकांशतः सैरीब्रल हैमिस्फीयर्स के द्वारा ढके रहते हैं। ऑप्टोसील अनुपस्थित।
2. **क्रूरा सैरीब्राई** **(Crura cerebri)**	मछलियों के मध्य–मस्तिष्क या ऑप्टिक लोब्स की जमीन या **क्रूरा सैरीब्राई** कम यह विकसित होती है तथा भाग वैण्ट्रली अधिकांशतः इन्फीरियर लोब्स तथा सैक्कस के द्वारा ढका रहता है।	ऐम्फिबियन्स में **क्रूरा सैरीब्राई** ऑप्टिक लोब्स के नीचे लम्बवत् होकर डाइन–सिफेलॉन को मेड्यूला से जोड़ते हैं तथा इनका कुछ भाग पिट्यूटरी से ढका रहता है।	रेप्टाइल्स में **क्रूरा सैरीब्राई** मोटी किन्तु अपेक्षाकृत कम विकसित होती हैं।	पक्षियों में **क्रूरा सैरीब्राई** रेप्टाइल्स की तरह होती हैं।	स्तनधारियों में **क्रूरा सैरीब्राई** अन्य कशेरुकियों की अपेक्षा अधिक विकसित होती हैं।

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.9: Rhombencephalon or Hind-Brain

(A) Cerebellum

1	2	3	4	5	6
1. आकार तथा साइज (Shape and Size)	मछलियों में **सैरीबैलम** रॉम्बॉयडल (rhomboidal), लम्बा तथा बड़े आकार का होता है। इसका अग्र डॉर्सल भाग मध्य–मस्तिष्क तथा डाइनसिफेलॉन तथा पश्च डॉरसल भाग मैड्यूला को ऊपर से ढके रहता है।	ऐम्फिबियन्स में **सैरीबैलम** छोटा, सँकरा डॉरसल बैण्ड के रूप में ऑप्टिक लोब्स के ठीक पीछे होता है।	रेप्टाइल्स में **सैरीबैलम** छोटा, चपटा, सैमिसर कुलर रिज (semi-circular ridge) के रूप में होता है।	पक्षियों में **सैरीबैलम** अत्याधिक बड़ा, अग्र एवं पश्च दिशा में लम्बा होता है। इसका अग्र भाग मध्य – मस्तिष्क को तथा पश्च भाग मैड्यूला को ऊपर से ढके रहता है।	स्तनधारियों में **सैरीबेलम** अन्य सभी कशेरुकियों से अत्याधिक बड़ा तथा ट्रान्सवर्सली लम्बा (transversely elongated) होता है। इसका अग्र भाग मध्य मस्तिष्क तथा पश्च भाग मैड्यूला को ऊपर से ढके रहता है।
2. विभाजन (Division)	मछलियों में **सैरीबैलम** दो अनुप्रस्थ दरारों की सहायता से **तीन लोब्स** में विभाजित रहता है।	मेंढक में यह अविभाजित रहता है।	रेप्टाइल्स में भी यह अविभाजित रहता है।	पक्षियों में **सैरी–बैलम तीन लोब्स** में विभाजित रहता है। एक बड़ा **मीडियन वर्मिस** (vermis) तथा दो छोटे **लेटरल फ्लोकुलाई** (flocculi)।	स्तनधारियों में **सैरीबैलम** पाँच लोब्स में विभाजित रहता है। एक मीडियन **वर्मिस, दो लेटरल लोब्स**, तथा **दो फ्लोकुलम**।
3. सतह (surface)	मछलियों के **सैरीबैलम** की डॉरसल सतह पर अनियमित फोल्ड्स (folds) पाये जाते हैं।	मेंढक के **सैरीबैलम** की सतह चिकनी तथा बिना फोल्ड्स के होती है।	रेप्टाइल्स में भी **सैरीबैलम** की सतह चिकनी होती है।	पक्षियों में सैरीबैलम की सतह चारों ओर से फोल्ड्ड (folded) होती है।	स्तनधारियों में सैरीबैलम की सतह चारों ओर से अत्याधिक फोल्डेड (folded) होती है।
4. वैण्ट्रिकिल (Ventricle)	सैरीबैलम की गुहा को **एपिसील** (epicoel) कहते हैं। मछलियों के सैरीबैलम	ऐम्फिबियन्स के सैरीबैलम में गुहा अत्याधिक छोटी होती है।	रेप्टाइल्स के सैरीबैलम में भी गुहा छोटी होती हैं।	पक्षियों का सैरीबैलम ठोस होता है, अर्थात् गुहा अनुपस्थित होती है।	स्तनधारियों के सैरीबैलम में गुहा सँकरी एवं शाखित होती है।

	में **एपिसील** अत्याधिक बड़ी या सुविकसित होती है।				
5. **आर्बरविटी (Arbour vitae)**	मछलियों के सेरीबैलम में आर्बर विटी अनुपस्थित होत हैं।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	अनपस्थित।	स्तनधारियों के सैरीबैलम के अंदर स्थित **ह्वाइट मैटर** (white matter) बाहरी **ग्रे–मैटर** (grey matter) के अंदर वृक्ष की तरह शाखित होता है, जिसे **आर्बर विटी** कहते हैं।
6. **पॉन्सवैरोलाई (Pons-varolii)**	मछलियों में यह अनुपस्थित होता है।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	अनुपस्थित।	स्तनधारियों के सैरीबैलम में **पॉन्सवैरोलाई** उपस्थित होती है। यह एक तन्त्रिका ऊतक की मजबूत वैण्ट्रल अनुप्रस्थ बैण्ड (band) के रूप में होती है जो सैरीबैलम की दोनों लेटरल साइड्स को आपस में जोड़ती है।

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.10: (B) Medulla Oblongata

1	2	3	4	5	6
1. आकार एवं साइज (shape and size)	मछलियों में **मैड्यूला ऑब्लांगेटा** बड़ा, तिकोना, खोखला तथा पीछे की ओर सँकरा होता है। इसकी गुहा को **मेटासील** (metacoel) कहते हैं। इसका आगे का कुछ भाग सैरीबैलम के द्वारा ढका रहता है।	ऐम्फिबियन्स में **मैड्यूला** छोटा, कोनिकल (conical) तथा खोखला होता है।	रेप्टाइल्स में मैड्यूला छोटा, तिकोना एवं खोखला होता है।	पक्षियों में **मैड्यूला** छोटा, खोखला तथा डॉरसली सैरीबैलम के द्वारा ढका रहता है।	स्तनधारियों में **मैड्यूला** चौड़ा, तिकोने आकार का तथा खोखला होता है। पीछे का भाग सँकरा होता है। मैड्यूला का कुछ अग्र भाग सैरीबैलम के द्वारा ढका होता है।
2. **रैस्टिफॉर्म बॉडीज (Restiform bodies)**	मछलियों में मैड्यूला के अग्र भाग के दोनों ओर एक–एक पतली दीवार की अनियमित खोखली रचनाएँ स्थित होती हैं। ये रचनाएँ रैस्टिफॉर्म बॉडीज कहलाती हैं।	ऐम्फिबियन्स के मैड्यूला में ये रचनाएँ अनुपस्थित होती हैं।	रेप्टाइल्स में भी ये अनुपस्थित होती है।	पक्षियों में भी ये रचनाएँ अनुपस्थित होती हैं।	स्तनधारियों में भी इन रचनाओं का पूर्ण अभाव होता है।
3. **वैण्ट्रल फ्लैक्सर (Ventral flexure)**	मछलियों में यह अनुपस्थित होता है।	ऐम्फिबियन्स में भी यह अनुपस्थित होता हैं।	रेप्टाइल्स में मैड्यूला तथा स्पाइनल कॉर्ड (spinal cord) वैण्ट्रल फ्लैक्सर पर आपस में मिले रहते हैं।	पक्षियों में भी रेप्टाइल्स की तरह वैण्ट्रल फ्लैक्सर स्पष्ट होता है।	स्तनधारियों में वैण्ट्रल फ्लैक्सर अनुपस्थित होता है।

स्तनधारियों में दोनों हैमिस्फीयर्स अंदर से एक–दूसरे से एक अनुप्रस्थ स्तनधारियों फाइबर्स की बैण्ड, जिसे **कॉर्पस कैलोसम** (Corpus callosum) कहते हैं, के द्वारा जुड़े रहते हैं। यह यूथीरियन्स स्नतधारियों का एक विशेष लक्षण होता है जो अन्य और किन्हीं

टिप्पणी

कशेरुकी जन्तुओं (प्रोटोथीरियन एवं मैटाथीरियन में भी) के मस्तिष्क में नहीं पाया जाता।

(ii) **आल्फैक्टरी लोब्स** छोटे किन्तु स्पष्ट तथा हैमिस्फीयर्स से ढके रहते हैं।

(iii) **डाइनसिफेलॉन** तथा मध्य मस्तिष्क भी हैमिस्फीयर्स से ढके रहते हैं। स्तनधारियों में **ऑप्टिकलोब्स** ठोस एवं संख्या में चार होते हैं, जिन्हें **कॉर्पोरा क्वाड्रिजैमिना** (Corpora quadrigemina) कहते हैं। स्तनधारियों में तीसरा वैण्ट्रिकिल या मध्य मस्तिष्क का **आइटर** (iter) एक लेटरली चपटे वर्टिकल गुहा के रूप में होता है, जिसे **सैरीब्रल एक्यूडक्ट** (Ceribral aqueduct) कहते हैं।

(iv) **सैरीबैलम** अत्याधिक बड़े, फोल्डेड् (folded) तथा मध्य मस्तिष्क एवं मैड्यूला के ऊपर तक फैले रहते हैं। यह एक **वर्मिस** (Vermis), **दो लेटरल फ्लोकुलाई** (Lateral flocculi) तथा उनके मशरूम (mushroom) के आकार के प्रवर्धों या **पैराफ्लोकुलाई** (Paraflocculi) के रूप में होता है।

(v) स्तनधारियों के पश्च मस्तिष्क में अन्य मुख्य लक्षण के अन्तर्गत **पिरेमिड्स** (Pyramids) आते हैं जो वॉलण्टेरी मोटर इम्पल्स (voluntary motor impulse) को हायर सैण्टर या **पॉन्स वैरोलाई** (Pons varoli) जिसके नर्व फाइबर्स विपरित हैमिस्फीयर्स तथा सैरीबैलम को क्रॉस करते हैं तथा अनुप्रस्थ फाइबर्स की **ट्रैपैजॉइड बॉडी** (Trapezoid body) जो ध्वनि इम्पल्स को रिले (relay) करती हैं, को ले जाते हैं।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

16. स्तनियों के मस्तिष्क का वह भाग जो पेशीय सामंजस्य को सन्तुलित करता है–

(अ) प्रमस्तिष्क (ब) अनुमस्तिष्क
(स) कॉपर्स कैलोसम (द) मैड्यूला।

17. मेंढक या शशक की रचना में आइटर या सिल्वियस की ऐक्वाडक्ट कहाँ पायी जाती है?

(अ) हृदय में (ब) मस्तिष्क में
(स) वृक्क में (द) कर्ण में।

18. मस्तिष्क है–

(अ) एक्टोडर्मी (ब) मीसोडर्मी
(स) एक्टोडर्मी एवं मीसोडर्मी (द) एण्डोडर्मी।

टिप्पणी

19. तीसरा वैण्ट्रिकिल होता है–

(अ) हृदय में (ब) मस्तिष्क में

(स) वृक्क में (द) यकृत में।

20. मॉनरो का छिद्र किस–किस के बीच होता है?

(अ) मस्तिष्क एवं मेरुरज्जु (ब) तीसरा एवं चौथा वैण्ट्रिकिल

(स) डायोसील एवं आइटर (द) पार्श्व एवं तीसरा वैण्ट्रिकिल।

21. शशक के मस्तिष्क में वह भाग जो मेंढक में नही होता है–

(अ) हाइपोथैलेमस (ब) पिट्यूटरी

(स) मैड्यूला (द) कॉपर्स कैलोसम।

22. कार्पस कैलोसम पाया जाता है–

(अ) उभयचर (ब) सरीसृप

(स) स्तनी (द) पक्षी।

23. मस्तिष्क अंग है–

(अ) पाचन तन्त्र का (ब) श्वसन तन्त्र का

(स) तन्त्रिका तन्त्र का (द) संवहन तन्त्र का।

3.4 मूत्रजनन तन्त्र का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Account of Urinogenital System)

चयापचय क्रियाओं (Metabolic activities) से शरीर में विभिन्न पदार्थों एवं उपजात पदार्थों को उत्पन्न किया जाता है, आवश्यक पदार्थों को शरीर के द्वारा उपयोग कर लिया जाता है। अन्य शेष पदार्थों एवं उपजात पदार्थों का उपयोग नहीं किया जाता है, वह पदार्थ शरीर के लिए अनुपयोगी पदार्थ होते हैं। यह अनुपयोगी या अपशिष्ट पदार्थ हैं– कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon di-oxide), नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ (Nitrogenous products), अमोनिया (Ammonia), यूरिया (Urea), यूरिक अम्ल (Uric acid), वर्णक (Pigments), क्रिएटिनीन (Creatinine) एवं क्रिएटाइन (Creatine) तथा कुछ अकार्बनिक लवण (Inorganic salts)। कार्बन डाइऑक्साइड अनुपयोगी गैस होने के कारण त्वचा (Skin), गिल्स (Gills) एवं फेफड़ों (Lungs) द्वारा शरीर के बाहर निकाल दी जाती है। अन्य नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ यदि शरीर में एकत्रित होते रहे तो विषाक्तता (Toxicity) को उत्पन्न करेंगे जिसके कारण प्राणी की मृत्यु भी हो सकती है, अतः इन अपशिष्ट नाइट्रोनयुक्त पदार्थों को शरीर में स्थित **वृक्क/गुर्दे/किडनी** (Kidney) के द्वारा

टिप्पणी

शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। गुर्दों का कार्य केवल अपशिष्ट पदार्थों का निष्कासन ही नहीं होता है, बल्कि यह शरीर में पानी की मात्रा का नियमन भी करते हैं।

कशेरुक प्राणियों में **मूत्रजनन तन्त्र** (Urinogenital system) में उत्सर्जी (Excretory) एवं प्रजनन तन्त्रों का संरचनात्मक दृष्टि से अत्याधिक निकट सम्बन्ध रहता है। इसमें समान नलिका होती है इस कारण दोनों को एक साथ मूत्रजनन (Urogenital or Urinogenital) **तन्त्र** के रूप में माना जाता है। विकास की दृष्टि से दोनों तन्त्रों में पृथक्–पृथक् होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रजनन तन्त्र के द्वारा अण्डाणु (Ovum) एवं शुक्राणु (Sperms) उत्पन्न किये जाते हैं जो कि नलिका के द्वारा शरीर से बाहर निकाले जाते हैं, जबकि गुर्दे के द्वारा अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकाला जाता है, लेकिन वाहिनियाँ (Ducts), भ्रूणीय (Embryonic) एवं कार्यात्मक (Functional) दृष्टि से परस्पर इतने निकट होती हैं– मुख्यतः नर प्राणियों (Males) में दोनों तन्त्रों– उत्सर्जन (Excretory) एवं प्रजनन (Reproduction) का अध्ययन एक साथ करना आवश्यक होता है। इस **अध्याय में केवल कशेरुक प्राणियों के उत्सर्जन तन्त्र का वर्णन किया गया है**। कशेरुक प्राणियों में मुख्य उत्सर्जी अंग **वृक्क** (Kidney) होते हैं।

3.4.1 कशेरुकी गुर्दे एवं वाहिनियाँ (Vertebrate Kidneys and Ducts)

सभी कशेरुक प्राणियों के उत्सर्जी अंगों को **वृक्क/गुर्दे/किडनी (Kidneys)** कहते हैं। इनकी संख्या दो होती हैं। यह **देहगुहिका** (Coelom) के पृष्ठ भाग में उपस्थित होती हैं।

(अ) संरचना एवं उत्पत्ति (Structure and Origin)

कशेरुक प्राणियों की प्रत्येक किडनी में अत्याधिक संख्या मे **मूत्रधर नलिकाएँ/यूरिनिफेरस ट्यूब्यूल्स** (Uriniferous tubules) होती है। इन नलिकाओं को **नेफ्रॉन्स** (Nephrons) भी कहते हैं। इन नलिकाओं की उत्पत्ति मीसोडर्म (Mesoderm) के विशेष भाग **मीसोमीयर** (Mesomere) या **नेफ्रोटोम** (Nephrotome) से होती है। यह सम्पूर्ण धड़ के प्रत्येक पार्श्व भाग में स्थित रहता है। आदिम अवस्था (Primitive stage) में प्रत्येक मीसोमीयर/नेफ्रोटोम में अग्र सिरे से प्रारम्भ होकर एक श्रृंखला क्रम में **मूत्रधर नलिकाएँ** निर्मित होती जाती हैं। प्रत्येक मूत्रधर नलिका में अग्रलिखित भाग पाये जाते हैं–

1. पेरिटोनियल कीप (Peritoneal funnel)
2. मैल्पीजी काय/पिण्ड (Malpighian body)
3. नलिका (Tubule)

1. **पेरिटोनियल कीप (Peritoneal funnel)**– मूत्रधर नलिका के प्रारम्भिक भाग को **पेरिटोनियल कीप** कहते हैं। यह एक रोमाभि (Ciliated) संरचना होती है जो कि एक चौड़े छिद्र नेफ्रोस्टोम – (Nephrostome वृक्क मुख) या **सीलोम मुख** (Coelomostome) द्वारा देहगुहा/सीलोम में

टिप्पणी

खुलती है। कुछ वैज्ञानिकों के द्वारा पेरिटोनियल कीप को ही नेफ्रोस्टोम भी कहा गया है। **नेफ्रोस्टोम** युक्त भ्रूणीय वृक्क नलिकाएँ भ्रूणीय विकास तक ही पायी जाती हैं या भ्रूण (Embryo) लार्वा (Larva) अवस्था तक ही सीमित रहती है। एक रोमाभि (Ciliated) नलिका होती है जो कि एक अनुदैर्ध्य एकत्रकारी वाहिनी (Duct) में खुलती है।

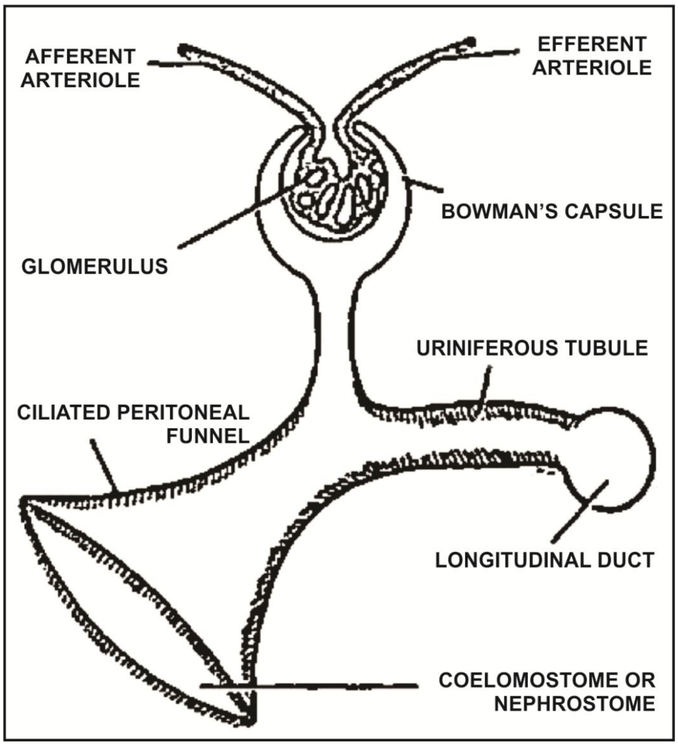

चित्र क्र. 3.11: **Urinogenital System : Structure of Embryonic Tubule**

2. **मैल्पीजी काय/पिण्ड (Malpighian body)**– यह एक दोहरी भित्ति वाली कुप्पी या प्याले के आकृति का होता है जिसको **बोमन सम्पुट** (Bowman's capsule) कहते हैं। इसके **अंदर अन्तराधमनीय रक्त** केशिकाओं (Inter arterial blood capillaries) का जाल होता है जिसको **ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) कहते हैं। इस रक्त केशिकाओं के जाल या ग्लोमेरुलस में रक्त का निःस्पन्दन (Ultrafiltration) होता है। बोमन सम्पुट एवं ग्लोमेरुलस दोनों को मिलाकर **मैल्पीजियन सम्पुट/मैल्पीजियन कैप्सूल** (Malpighian capsule) कहते हैं। ग्लोमेरुलस (Glomerulus) में रक्त को लाने वाली वाहिनी को **अभिवाही धमनिका** (Afferent arteriole) कहते हैं और **अपवाही धमनिका** (Efferent arteriole) के द्वारा रक्त ग्लोमेरुलस से बाहर की ओर जाता है। जिन मछलियों में ग्लोमेरुलस पाया जाता है उस किडनी को **ग्लोमेरुलर** (Glomerular) किडनी कहते हैं। कुछ मछलियों में **मैल्पीजी काय** (Malpighian body) अनुपस्थित होता है। इस प्रकार की किडनी को **एग्लोमेरुलर किडनी** (Aglomerular kidney) कहते हैं।

टिप्पणी

3. **नलिका (Tubule)**– मैल्पीजी काय के पश्च नलाकार भाग को नलिका (Tubule) कहते हैं। नलिका के भाग से **स्त्रावण** (Secretion) एवं पुनःशोषण (Reabsorption) होता है। नलिका के कोशिकाओं द्वारा अनेक पदार्थों का स्त्रावण होता है तथा कुछ लाभप्रद पदार्थों का अवशोषण होता है जो कि रक्त को वापस किया जाता है। भ्रूणीय विकास के समय भ्रूणीय किडनी में सभी नलिकाएँ कुण्डलित (Convoluted) होती हैं और खण्डयुक्त (Segmented) होती हैं। यह सभी नलिकाएँ एक अनुदैर्ध्य (Longitudinal) नलिका में खुलती हैं। वयस्क कशेरुक प्राणियों में नलिका (Coiled) कुण्डलित होती है।

उपर्युक्त सभी संरचनाएँ एक संयोजी ऊतक (Connective tissue) के आवरण या सम्पुट (Capsule) में घिर कर अवकिडनी/अववृक्क को निर्मित करती है।

(ब) वृक्क एवं उनकी वाहिनियाँ (Kidneys and their Ducts)

1. **आर्किनेफ्रॉस (Archinephros)**– यह एक अत्याधिक आदिम प्रकार की वृक्क/किडनी (Primitive kidney) है। यह शरीर में देहगुहा (Coelom) की पूरी लम्बाई में व्यवस्थित खण्डयुक्त (Segmented) नलिकाएँ होती थीं, प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी। प्रत्येक नलिका एक **पेरिटोनियल कीप** (Peritoneal funnel) एवं **नेफ्रोस्टोम** (Nephrostome) द्वारा देहगुहा में पृथक्–पृथक् रूप से खुलती थी। प्रत्येक पेरिटोनियल कीप में **बोमन सम्पुट** (Bowman's Capsule) के अंदर **ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) बंद होता था। प्रत्येक ऐसे वृक्क की नलिकाएँ एक सामान्य वाहिनी में खुलती थीं और यह सामान्य वाहिनी अन्त में अवस्कर (Cloaca) में खुलती थी। इस प्रकार के वृक्क/किडनी को **पूर्ण नेफ्रॉस/होलोनेफ्रॉस** (Holonephros) कहते हैं तथा इसकी वाहिनी को **आर्किनेफ्रिक वाहिनी/होलोनेफ्रॉस** (Holonephros) कहते हैं तथा इसकी वाहिनी को **आर्किनेफ्रिक वाहिनी/आद्यनेफ्रॉस वाहिनी** (Archinephric duct) कहते हैं। **उदाहरण– मिक्सीन** *(Myxine)* एवं कुछ **ऐपोडा ऐम्फिबियन्स** (Apoda-Amphibians) वर्तमान में पाये जाने वाले कशेरुक प्राणियों में आर्किनेफ्रिक वृक्क नहीं पाये जाते हैं। वर्तमान कशेरुक प्राणियों में मूत्रधर नलिकाएँ (Uriniferous tubules) आगे से पीछे की दिशा में दो या तीन अवस्थाओं में क्रमिक रूप से निर्मित होती है। यह अवस्थाएँ हैं– **प्रोनेफ्रॉस** (Pronephros), **मीसोनेफ्रॉस** (Mesonephros) एवं **मेटानेफ्रॉस** (Metanephros) उपर्युक्त तीनों प्रकार की अवस्थाएँ **आदिम वृक्क** या **आर्किनेफ्रिक वृक्क** से विकसित हुई हैं।

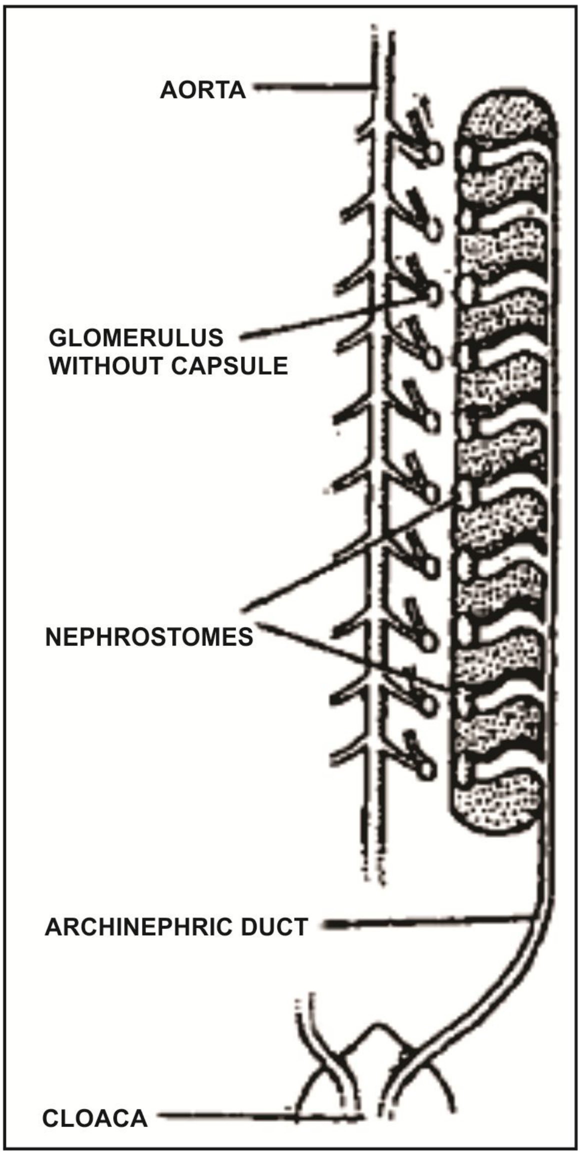

चित्र क्र. 3.12: Urinogenital System : Archinephros

2. **प्रोनेफ्रॉस (Pronephros)**– यह कशेरुक प्राणियों के शरीर के अग्र भाग में स्थित होती है तथा मीसोमीयर (Mesomere) के अग्र भाग से **मूत्रधर नलिकाओं** (Uriniferous tubules) का विकास होता है। इसमें प्रत्येक खण्ड (Somite) में एक जोड़ी मूत्रधर नलिकाएँ होती हैं तथा कुल 1–13 मूत्रधर नलिकाएँ होती हैं। प्रत्येक नलिका में एक **ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) होता है। प्रत्येक नलिका के पास **बोमन सम्पुट** (Bowman's capsule) एवं **पेरिटोनियल कीप** (Peritoneal funnel) नहीं होते हैं। जब ग्लोमेरुलस बिना बोमन सम्पुट के देहगुहा (Coelom) में खुलते हैं तब उनको **बाह्य ग्लोमेरुलस** (External glomerulus) कहते हैं, लेकिन कुछ **ग्लोमेरुलस** के चारों ओर घेरे हुए बोमन सम्पुट होता है, इसको **अन्तःग्लोमेरुलस/आन्तरिक ग्लोमेरुलस** (Interal glomerulus) कहते हैं।

टिप्पणी

प्रत्येक **प्रोनेफ्रॉस** (Pronephros) की मूत्रधर नलिकाएँ (Uriniferous tubules) एक सम्मिलित सामान्य वाहिनी **प्रोनेफ्रिक वाहिनी** (pronephric duct) में अपने पदार्थों को डालकर बाहर की ओर भ्रूणीय अवस्कर (Embryonic cloaca) में खुलती है। कुछ में एक बड़ी गुहिका होती है जिसको **प्रोनेफ्रॉस गुहिका/प्रोनेफ्रिक कक्ष** (Pronephric chamber) कहते हैं। ग्लोमेरुलस (Glomerulus) इन प्रोनेफ्रिक कक्ष में खुलते हैं जहाँ वह आपस में मिलकर एक **संयुक्त ग्लोमेरुलस** बनाते हैं, इसको **ग्लोमस** (Glomus) कहते हैं।

उदाहरण– सायक्लोस्टोम्स (Cyclostomes), **मछलियाँ** (fishes) एवं **ऐम्फिबियन्स** (Amphibians) के भ्रूणीय क्रियात्मक (Functional) वृक्क।

सरीसृप (Reptiles), **पक्षियों** (Birds) एवं **स्तनी प्राणियों** (Mammals) में यह अक्रियात्मक (Non-functional) वृक्क भ्रूणीय जीवन में विकसित होती है। केवल वयस्क वृक्क के रूप में यह **मिक्सीन** (Myxine) एवं कुछ **टीलियोस्ट** (Teleosts) मछलियों में पायी जाती है जहाँ **मीसोनेफ्रॉस** भी पायी जाती है।

3. **मीसोनेफ्रॉस (Mesonephros)**– इस प्रकार के वृक्क को **वोल्फियन काय** (Wolffian body) भी कहते हैं। इनकी उत्पत्ति भी खण्डीय (Segmental) होती है और नेफ्रॉटोम्स (Nephrotomes) के उस भाग से विकसित होती है जो कि प्रोनेफ्रॉस के पश्च भाग में स्थित होते हैं। प्रत्येक नलिका में एक **पेरिटोनियल कीप** (Peritoneal funnel) होती है जो कि देहगुहिका (Coelom) में खुलती है। इस कीप में **बोमन सम्पुट** (Bowman's capsule) में बंद **ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) होता है। **मीसोनेफ्रिक मूत्रधर नलिकाएँ** (Mesonephric uriniferous tubules) पूर्व स्थित प्रोनेफ्रिक वाहिनी से समेकित होती है, इसको अब **मीसोनेफ्रिक वाहिनी** (Mesonephric duct) या **वोल्फियन वाहिनी** (Wolffian duct) कहते हैं। इनमें फिर मुकुलन (Budding) के द्वारा विभाजन होता है जिससे प्रत्येक खण्ड में इन नलिकाओं की संख्या अधिक हो जाती है। इस कारण खण्डीय व्यवस्था (Segmental arrangement) समाप्त हो जाती है। विभाजन के पश्चात् बनने वाली मीसोनेफ्रॉस नलिकाओं में पेरिटोनियल कीप का अभाव होता है।

मीसोनेफ्रॉस, वयस्क क्रियाशील वृक्कों के रूप में कुछ **सायक्लोस्टोम** (Cyclostomes), **मछलियों एवं ऐम्फिबियन्स** (Amphibians) में पाये जाते हैं।

सरीसृपों (Reptiles), पक्षियों (Birds) एवं स्तनी (Mammals)– ऐम्नियोट (Amniote) प्राणियों में मीसोनेफ्रॉस वृक्क केवल भ्रूणीय अवस्था में ही क्रियाशील होते हैं। मोनोट्रीम (Monotream) स्तनी प्राणियों को छोड़कर शेष ऐम्नियोट (Amniote) प्राणियों की भ्रूणीय अवस्था में मूत्रधर नलिका में पेरिटोनियल कीप का अभाव होता है। वयस्क ऐम्नियोट प्राणियों में मीसोनेफ्रॉस वृक्क ऱ्हासित हो जाते हैं या लुप्त हो जाते हैं।

टिप्पणी

अनऐम्निओट्स (Anamniotes) में मीसोनेफ्रॉस वृक्क, ऐम्नियोट प्राणियों की भ्रूणीय अवस्था के मीसोनेफ्रॉस वृक्क के समान होता है। अनऐम्निओट्स में प्रोनेफ्रॉस के पीछे शेष बचे सम्पूर्ण नेफ्राटोम से होता है तथा देहगुहा की पूर्ण लम्बाई में निरन्तर रहता है। इसके विपरीत ऐम्नियोट प्राणियों के भ्रूण में मीसोनेफ्रॉस की उत्पत्ति केवल मध्य भाग से होती है, यह देहगुहा की पूर्ण लम्बाई में निरन्तर नहीं रहती है। इस कारण वयस्क अनऐम्नियोट्स में इन वृक्कों को **ओपिस्थोनेफ्रॉस** (Opisthonephros) कहते हैं।

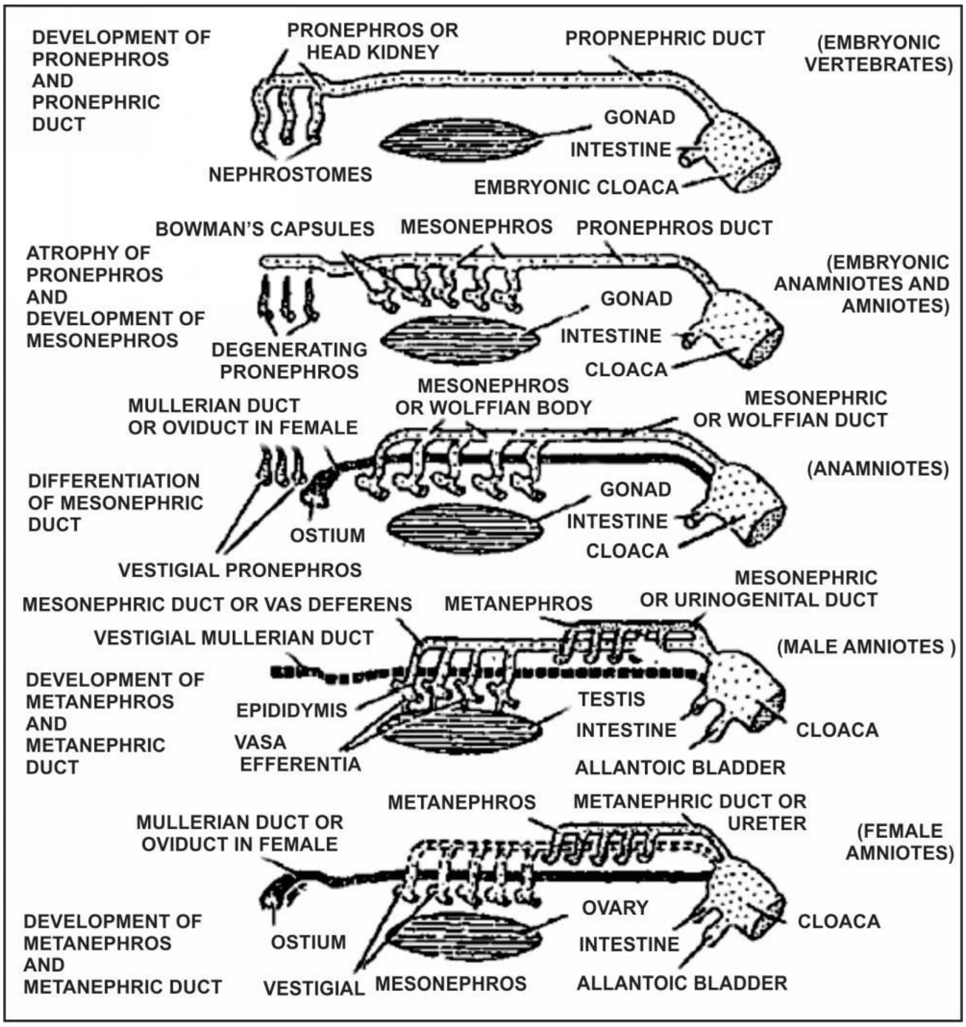

चित्र क्र. 3.13: Urinogenital kidney : Evolution of Kidney in Vertebrates

मीसोनेफ्रिक वृक्क (Mesonephric kidney) मछलियों एवं ऐम्फिबियन्स में विकास के साथ **प्रोनेफ्रिक वाहिनी** (Pronephric duct) पश्च भाग से वोल्फियन वाहिनी के अग्र भाग तक लम्बाई में दो नलिकाओं में विभाजित हो जाती है। एक नलिका जो कि वोल्फियन काय (Wolffian body) से सम्बन्ध बनाए रखती है उसको **लेडिग वाहिनी** (Leydig duct) कहते हैं जो कि उत्सर्जी नलिका के रूप में कार्य करती है। दूसरी नलिका को

मुलेरियन नलिका (Mullerian duct) कहते हैं। यह नलिका मादा प्राणी में अण्डवाहिनी (Oviduct) को बनाती है। कुछ अन्य कशेरुक प्राणियों में प्रोनेफ्रिक वाहिनी कभी भी विभाजित नहीं होती है, लेकिन मीसोनेफ्रिक वाहिनी होती है और लेम्प्रे *(Lamprey)*, इलास्मोब्रैन्क *(Elasmobranch)* अस्थिल मछलियों (Bony fishes) एवं ऐम्फिबियन्स (Amphibians) के दोनों लैंगिक प्राणियों में उत्सर्जी पदार्थों को उत्सर्जित करती है। **इलास्मोब्रेन्क** एवं **ऐम्फिबियन्स** के नर प्राणियों में नलिका के द्वारा शुक्राणुओं (Sperms) को भी संवाहित किया जाता है और वृषणों (Testes) से अग्र मूत्रधर नलिकाओं (Uriniferous tubules) के द्वारा संयोजन बनाती है और उन नलिकाओं का उत्सर्जी कार्य समाप्त हो जाता है और यह नलिका प्रजनन कार्य को ग्रहन करती है। सरीसृप, पक्षिओं एवं स्तनी प्राणियों में मीसोनेफ्रिक नलिका पायी जाती है और यह नलिका नर प्राणियों मे **शुक्रवाहिनी/वासा डेफ्रेन्स** (Vasa deferens) कहलाती है। मादा प्राणियों में मीसोनेफ्रिक वाहिनी केवल उत्सर्जी पदार्थों को ले जाती है। इलास्मोब्रेन्क मछलियों की प्रोनेफ्रिल नलिका की विभाजित नलिका मुलरियन नलिका, **अण्डवाहिनी/ओवीडक्ट** (Oviduct) रूप में कार्य करती है।

4. **मेटानेफ्रॉस (Metanephros)**– यह वृक्क केवल सरीसृप, पक्षी एवं स्तनी (Reptiles, Birds and Mammals) प्राणियों की वयस्क अवस्था में पायी जाती है जो कि मीसोनेफ्रॉस के पश्च **नेफ्रोटोम** (Nephrotome) के पश्च भाग से निर्मित होती है। **ऐम्निओट्स** प्राणियों में वृक्क की उत्पत्ति दो स्त्रोतों से होती है – प्रथम अवस्कर (Cloaca) के निकट से मीसोनेफ्रिक वाहिनी (Mesonephric duct) से एक बहिर्वृद्धि (Outgrowth) निकलती है और यह नेफ्रोटोस की ओर वृद्धि करती चली जाती है और फिर वह शाखाओं में विभाजित हो जाती है। इन शाखाओं के द्वारा वृक्क में एकत्रकारी नलिकाएँ एवं केलिक्स (Calyx) का निर्माण किया जाता है। नलाकार का बहिर्वृद्धि समीपस्थ भाग (Proximal part) **मूत्रवाहिनी** (Ureter) या **मेटानेफ्रिक वाहिनी** (Metanephric duct) में परिवर्तित हो जाता है। नेफ्रोटोम (Nephrotome) के द्वारा वृक्क में मूत्रधर वाहिनियाँ बनती हैं। इनमें हजारों नलिकाएँ होती हैं और खण्डीय व्यवस्था (Segmental arrangement) का अभाव होता है।

   मेटानेफ्रीक नलिकाएँ (Metanephric duct) लम्बी अधिक कुण्डलित (Coiled) हो जाती हैं। इन नलिकाओं के **बोमन सम्पुट** (Bowman's capsule) में **ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) बंद रहते हैं। इन नलिकाओं में पेरिटोनियल कीप (Peritoneal funnel) अनुपस्थित होती है, इस कारण इन नलिकाओं का देहगुहा से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। यह सरीसृप, पक्षियों एवं स्तनी प्राणियों के क्रियाशील वृक्क होते हैं तथा इनके द्वारा उत्सर्जन एवं प्रजनन का कार्य एक–दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। मेटानोफ्रास वृक्क में मूत्रधर नलिकाओं (Uriniferous tubules) की संख्या अत्याधिक होती है और अत्याधिक कुण्डलित होते हैं। प्रत्येक मूत्रधर नलिका में एक पतली भित्ति से बना 'U' आकार का **हैनले लूप** (Henle's

loop) होता है, जो समीपस्थ (Ptoximal) एवं दूरस्थ कुण्डलित नलिका के मध्य में होता है। हैनले का लूप सरीसृप एवं पक्षियों में अनुपस्थित होता है एवं स्तनी प्राणियों में अधिक विकसित होता है। स्तनी प्राणियों की किडनी/वृक्क में **बाह्य कार्टेक्स** (Cortex) एवं **आन्तरिक मेडूला** (Inner medulla) भाग पाया जाता है। साथ ही पिरेमिडस भी पाये जाते हैं जिनमें मूत्रधर नलिकाएँ खुलती हैं।

कशेरुकी प्राणियों के गुर्दे में उत्सर्जन क्रिया तीन चरणों में होती है– (i) ग्लोमेरुलस (Glomerulus) से **निःस्पन्दन** (ii) कुण्डलित नलिका में ग्लोमेरुलस निःस्पन्दनीय पदार्थ से उपयोगी पदार्थों का **चयनात्मक अवशोषण** (Selective reabsorption), (iii) कुण्डलित नलिका की कोशिकाओं एवं नलिकाओं की अवकोशिका या अन्तराकोशिकीय स्थान में, पदार्थों का **स्त्रावण** (Secretion)। जलीय कशेरुक प्राणियों (Aquatic vertebrate animals) में वृक्कों या किडनी का कार्य जल को बाहर निकालना जोकि शरीर में अवशोषित होता रहता है, तनुरूप (Dilute) में अमोनिया (Ammonia) को शरीर से बाहर निकालना होता है। थलीय कशेरुक प्राणियों में वृक्क/किडनी का मुख्य कार्य शरीर में जल सन्तुलन को बनाये रखना तथा अपशिष्ट पदार्थों–यूरिया, यूरिक अम्ल को बाहर निकालना होता है।

(क) मूत्राशय (Urinary Bladder)

कशेरुक प्राणियों में **मूत्राशय** एक थैले समान संरचना होती है जिसके द्वारा मूत्र (Urine) को एकत्रित करने का कार्य किया जात है। कशेरुक प्राणियों में मूत्राशय तीन प्रकार के होते हैं–

1. **मछलियों (Fishes)**– में मूत्राशय, **मीजोनेफ्रिक वाहिनियों** के अन्तिम भाग के फूल जाने से निर्मित होता है, या अवस्कर (Cloaca) के अन्धवर्ध (Diverticulum) से जुड़ने के कारण निर्मित होता है। इलास्मोब्रेन्क मछलियों (Elasmobranch) में यह मूत्राशय, रेक्टल ग्रन्थियों (Rectal glands) के समजात है तथा डिप्नोई में एक अन्धवर्ध (Diverticulum) वोल्फियन नलिका के खुलने से पूर्व में निकला रहता है। यही मूत्राशय होता है।
2. **उभयचरी (Amphibians)**– प्राणियों में मूत्राशय में मूत्राशय, अवस्कर (Cloaca) की अधर भित्ति के एक अन्धवर्ध से निर्मित होता है। इस कारण उत्सर्जी पदार्थों को मूत्राशय के द्वारा अवस्कर में जाना पड़ता है।
3. **एम्निओट्स *(Amniotes)* प्राणियों**– सरीसृप, पक्षी एवं स्तनी प्राणियों की भ्रूणावस्था में एक थैले समान ऐलेण्टाइस (Allantois) विकसित होता है, जोकि श्वसन एवं उत्सर्जन का कार्य करता है। जन्म के समय यह ऐलेण्टाइस समाप्त हो जाता है। वयस्क प्राणियों में मूत्राशय का निर्माण ऐलण्टाइस के स्तम्भ से होता है इस कारण इसको **ऐलेण्टोइक आशय** (Allantoic bladder) कहते हैं।

4. **वयस्क सरीसृपों प्राणि**– सर्प (Snakes) एवं मगरमच्छों (Crocodiles) एवं **पक्षियों** में मूत्राशय का अभाव होता है तथा मूत्रवाहिनियाँ सीधे अवस्कर (Cloaca) में खुलती हैं। रूहनी प्राणियों में मूत्राशय पाया जाता है और मूत्रवाहियाँ मूत्राशय में खुलती हैं।

3.4.2 प्रतिनिधि कशेरुकों का उत्सर्जी तन्त्र (Excretory System of Representative Vertebrates)

(अ) स्कॉलियोडॉन (Scoliodon)

उत्सजर्न तन्त्र (Excretory System)

उत्सर्जी अंग (Excretory organs)– नर स्कॉलियोडॉन में उत्सर्जी अंगों के अन्तर्गत **वृक्क** (Kidney), मूत्र वाहिनियाँ (Ureters) एवं **मूत्रजनन साइनस** (Urinogenital sinus) आते हैं। **वृक्क** (Kidney), **मीसोनेफ्रिक** (Mesonephric), प्रकार के होते हैं, यह एक जोड़ी होते हैं। प्रत्येक वृक्क एक लम्बी चपटी रिबन समान ग्रन्थिल संरचना है। प्रत्येक वृक्क शरीर की मध्य रेखा के प्रत्येक पार्श्व सतह पर पेरिटोनियम (Peritoneum) के पृष्ठ सतह पर स्थित होता है। दोनों वृक्क देहगुहा (Body cavity) में यकृत की जड़ से लेकर पूरी लम्बाई में, अवस्कर छिद्र (Cloacal aperture) के पार्श्व सतह तक फैले रहते हैं। प्रत्येक वृक्क में दो भाग होते हैं– प्रथम अग्र पतला भाग इसको **जनन वृक्क** (Genital kidney) या **शीर्ष मीसोनेफ्रोस** कहते हैं। दूसरा मोटा भाग जिसको **वृक्कीय मीसोनेफ्रोस** (Renal mesonephros) या **पुच्छीय मीसोनेफोस** (Caudal mesonephros) कहते हैं। पश्च वृक्कीय मीसोनेफ्रोस पार्श्व रूप से सम्पीडित होता है। यही भाग मुख्य उत्सर्जी भाग होता है।

वृक्क का अग्र भाग अपेक्षाकृत संकीर्ण होता है और जनन उत्पादों के संवहन का कार्य करता है, इस भाग को **एपिडिडिमस** (Epididymus) कहते हैं, इस भाग में उत्सर्जी नलिकाएँ नहीं होती हैं, यह भाग पेरिटोनियम के नीचे देह गुहिका में जाता है। वृक्क का पश्च उत्सर्जी भाग अनेक कुण्डलित ग्रन्थिमय नलिकाओं का बना होता है। प्रत्येक **वृक्क** नलिका में एक **केशिकागुच्छ/ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) को घेरे हुए एक **बोमन कैप्सूल** (Bowman's capsule) एवं एक कुण्डलित **वृक्क नलिका** (Renal tubule) होती है। वृक्क की अनेक कुण्डलित नलिकाएँ एक सम्मिलित **संग्रहित नलिका** (Collecting tubule) मे खुलती है। संग्रहित नलिकाएँ पृथक्–पृथक् रूप से एक **मूत्रवाहिनी** (Ureter) में खुलती हैं, जो कि अन्त में एक मूत्रजनन पेपिला पर स्थित अवस्कर छिद्र (Cloacal aperture) के द्वारा शरीर के बाहर खुलती है। वृक्क नलिका में एक प्रकार की क्रिया–विधि पायी जाती है, जिसके यूरिया के अवशोषण के लिए एक खण्ड (Segment) परिवर्धित होता है, जिसमें ग्लोमेरुलस द्वारा यूरिया का पुनः अवशोषण (Reabsorption) होता है।

टिप्पणी

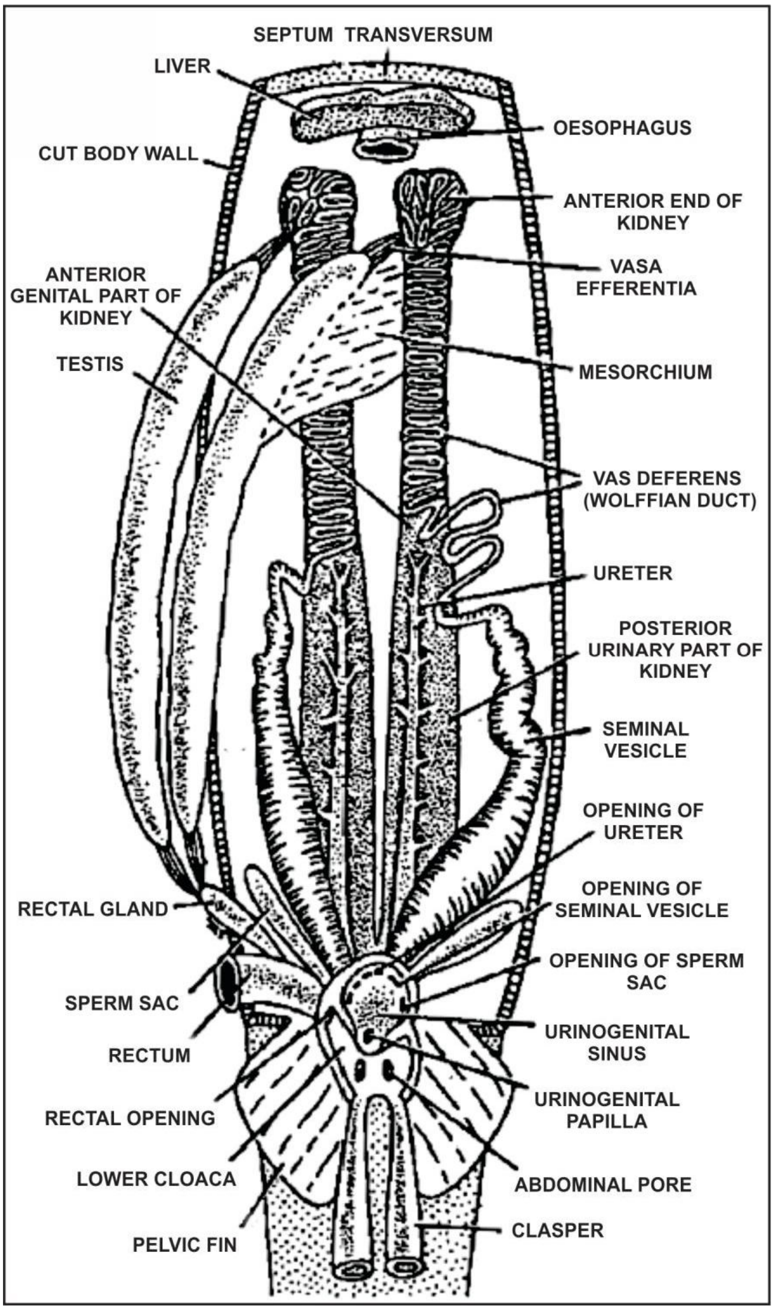

चित्र क्र. 3.14: *Scoliodon* : Male Urinogenital Organs

मादा स्कॉलियोडॉन के वृक्क/किडनी के दो भाग होते हैं– प्रथम अग्र भाग जो कि अल्पविकसित एवं ऱ्हासित होकर एक लम्बे संकीर्ण सूत्र के रूप में होता है, यह अग्र भाग मादा में कार्यविहीन एवं अवृक्कीय (Non-renal) होता है। दूसरा पश्च भाग चौड़ा होता है। इसमें कुण्डलित मूत्रधर नलिकाओं की संहिताएँ होती हैं। मादा में वुल्फियन नलिका (Wolffian duct) अनुपस्थित होती है, केवल मूत्रवाहिनी (Ureter) वृक्क के आन्तरिक सीमान्त से निकलती है। दोनों दिशा की मूत्रवाहिनीयाँ आपस में मिलकर एक संयुक्त मूत्रवाहिनी में खुलती हैं और संयुक्त

मूत्रवाहिनी, मूत्र साइनस (Urinary sinus) में खुलती है। **मूत्र साइनस,** पैपिला पर बने एक छिद्र के द्वारा अवस्कर (Cloaca) में खुलता है।

टिप्पणी

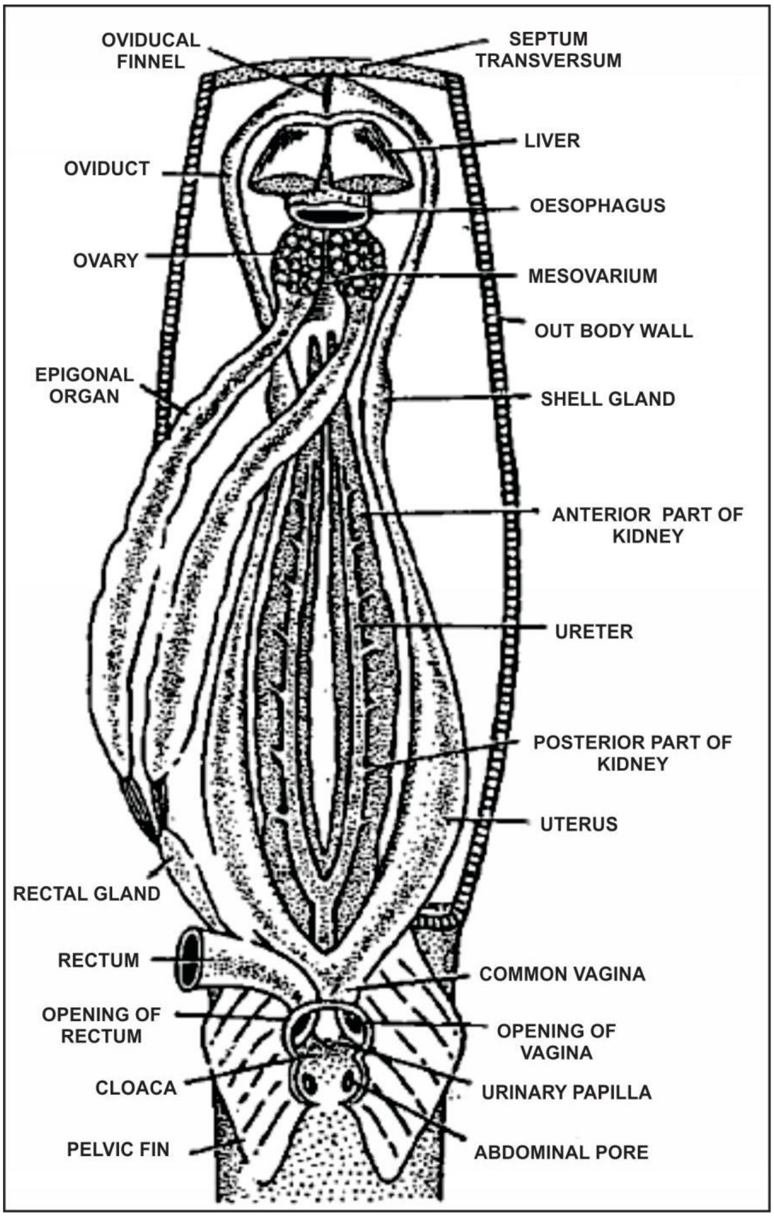

चित्र क्र. 3.15: Scoliodon : Female Urinogenital Organs

(ब) मेंढक (Frog)

उत्सर्जन तन्त्र (Excretory System)

नर एवं मादा मेंढक (Frog) दोनों में उत्सर्जी तन्त्र समान होते हैं। एक जोड़ी **वृक्क** (Kidneys), एक जोड़ी **यूरेटर,** (Ureter), एक **मूत्राशय** (Urinary bladder) एवं एक **अवस्कर** (Cloaca) होते हैं।

वृक्क (Kidney)– मेंढक में वृक्क का एक जोड़ा देहगुहिका के पृष्ठीय भाग में कशेरुक दण्ड (Vertebral column) के दोनों ओर स्थित होता है। वृक्क लाल भूरे रंग के होते हैं तथा इनका आकार लम्बा व चपटा अण्डाकार सा होता है। वृक्क देहगुहा में लसिका कोटर (Lymph sinus) में स्थित रहते हैं। प्रत्येक वृक्क का बाह्य सीमान्त उत्तल (Convex) एवं आन्तरिक सीमान्त सीधा एवं झुर्रीदार या कटावदार होता है। वृक्क की अधर सतह पर लम्बी कुछ कटी–फटी, पीले रंग की एक **एड्रीनल ग्रन्थि** (Adrenal gland) या **सुप्रा रीनल ग्रन्थि** (Supra renal gland) होती है। यह एक अन्तःस्त्रावी (Endocrine gland) ग्रन्थि होती है। प्रत्येक वृक्क के बाह्य एवं पश्च सिरे से एक नलिका शुरू होती है जिसे **मूत्रवाहिनी** (Ureter) कहते हैं। **नर मेंढक** में इस नलिका को मूत्रजनन वाहिनी (Urinogenital duct) कहते हैं, क्योंकि यह मूत्र के अतिरिक्त नर युग्मक **शुक्राणुओं** (Sperms) को भी बाहर निकालती है। दोनों ओर की मूत्र वाहिनीयाँ पीछे की ओर जाकर अवस्कर के पृष्ठीय भाग में दो पृथक् छिद्रों द्वारा खुल जाती हैं। **अवस्कर** (Cloaca) की अधर भित्ति से एक द्विपालित (Bilobed) थैली – **मूत्राशय** (Urinary bladder) संलग्न होती है। इस थैली में मूत्र का स्थायी संग्रह होता है।

सारणी क्र. 3.11: विभिन्न कशेरुकी प्राणियों के उत्सर्जी तन्त्रों की तुलना
(Comparison of Excretory Systems of Different Vertebrates)

क्र. No.	स्कॉलियोडॉन (Scoliodon)	मेंढक (Frog)	यूरोमेस्टिक्स (Uromastix)	कबूतर (Pigeon)	खरगोश (Rabbit)
1.	उत्सर्जी तन्त्र/ मूत्रतन्त्र (Urinary system) के अन्तर्गत एक जोड़ी **वृक्क** (Kidneys) एक जोड़ी **मूत्रवाहिनी** (Urinary duct) एवं **मूत्रजनन साइनस** (Urinogenital sinus) जिसमें मूत्रवाहिनी के दो छिद्र होते हैं, अंग आते हैं।	उत्सर्जी/ **मूत्रतन्त्र** (Urinary system) के अन्तर्गत निम्नलिखित अंग– एक जोड़ी **वृक्क** (Kidneys), एक जोड़ी **यूरेटर** (Ureter) एवं द्विपालित (Bilobed) **मूत्राशय** (Urinary bladder) एवं **मूत्र छिद्र** आते हैं।	उत्सर्जी/ **मूत्रतन्त्र** के अन्तर्गत निम्नलिखित अंग – एक जोड़ी **वृक्क** (Kidneys), एक जोड़ी **यूरेटर** (Ureter) एवं दो उत्सर्जी छिद्र (Urinary apertures) **मूत्र छिद्र** आते हैं।	उत्सर्जी/**मूत्र तन्त्र** के अन्तर्गत निम्नलिखित अंग– एक जोड़ी **वृक्क** (Kidneys), एक जोड़ी **यूरेटर** (Ureter) एक जोड़ी **मूत्र छिद्र** (Urinary apertures) आते हैं।	उत्सर्जी/ मूत्रतन्त्र के अन्तर्गत निम्नलिखित अंग– एक जोड़ी वृक्क (Kidneys), एक जोड़ी यूरेटर (Ureters) एक मूत्राशय यूरेथ्रा (Urethra) एवं दो उत्सर्जी छिद्र (Urinary apertures) मूत्र छिद्र (Urinary apertures) आते हैं।

टिप्पणी

2.	दो रिबन समान वृक्क पाये जाते हैं जो कि देहगुहा के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले होते हैं। यह मध्य पृष्ठीय रेखा के दोनों ओर स्थित होते हैं। अग्र भाग को **जनन भाग** (Genital part) या **लेडिग भाग** (Leydig part) कहते हैं। वृक्क का शेष भाग **उत्सर्जी भाग** होता है। वयस्क प्राणी की किडनी **ओपिस्थोनेफ्रिक** (Opisthone-phric) प्रकार की होती है।	किडनी या वृक्क चपटे मध्यम आकार के, गहरे लाल रंग के दो पालियुक्त (Lobed) होते हैं। वृक्क देहगुहा में पश्च दिशा की ओर कशेरुक दण्ड के दोनों ओर स्थित होते हैं। वयस्क प्राणी की किडनी **मीसोनेफ्रिक** (Mesonep-hric) प्रकार की होती है।	किडनी या वृक्क चपटे पालियुक्त (Lobed) चाकलेट रंग के होते हैं। यह कशेरुक दण्ड के दोनों ओर देहगुहा के श्रोणि क्षेत्र (Pelvic region) में पाये जाते हैं। अग्र चौड़े अर्धांश या पालि स्वतन्त्र होते हैं, जबकि वृक्क के पश्च भाग आपस में मिलकर 'V' की आकृति के होते हैं। वृक्कों के पश्च भाग आपस में पूर्णतः जुड़े नहीं होते हैं। वयस्क प्राणियों की किडनी/वृक्क **मेटानेफ्रिक** (Metanephric) प्रकार की होती है।	किडनी या वृक्क बड़े आकार के, पालियुक्त (Lobulated) गहरे लाल रंग के अंग होते हैं। यह देहगुहा के श्रोणि क्षेत्र (Pelvic region) में स्थित होते हैं। वयस्क प्राणी में वृक्क **मेटानेफ्रिक** (Metanep-hric) प्रकार के होते हैं।	किडनी या वृक्क संख्या में दो सेम के बीज के आकार के देहगुहा में उदर गुहिका के मध्य में स्थित होते हैं। यह कशेरुक दण्ड के दोनों ओर शरीर की पृष्ठीय देहभित्ति से आलम्बित रहते हैं। दायें वृक्क, बायें वृक्क की अपेक्षा कुछ आगे की ओर स्थित होता है। प्रत्येक किडनी/वृक्क में दो भाग होते हैं – बाह्य भाग **कार्टेक्स** (Cortex) एवं आन्तरिक **मेडूला** (Medula) वयस्क प्राणी में किडनी **मेटानेफ्रिक** (Metane-phric) प्रकार की होती है।

3.	**मूत्रवाहिनी (Urinary duct)** संगृहीत नलिकाओं के द्वारा बनती है। दोनों दिशा की मूत्रवाहिनी आपस में मिलकर सामान्य मूत्रवाहिनी बनाती हैं। दोनों दिशा की मूत्रवाहिनी पृथक् रूप से मूत्रोजनन साइनस (Urinogenital sinus) में खुलती है।	प्रत्येक किडनी वक्र की बाह्य सतह से यूरेटर (Ureter) निकलती है। दोनों **यूरेटर** पीछे की ओर चलकर पृथक् छिद्रों से अवस्कर (Cloaca) में खुलते हैं।	प्रत्येक किडनी/वृक्क की बाहरी सतह से **यूरेटर** (Ureter) निकालती है। यह पीछे की ओर चलकर अवस्कर के मध्य भाग **यूरोडियम** (Urodaeum) में पृथक् मूत्र छिद्रों के द्वारा खुलते हैं।	प्रत्येक किडनी या वृक्क की अधर सतह से एक छोटी वाहिनी– **यूरेटर** (Ureter) निकालती है। यह पीछे की ओर चलकर अवस्कर के मध्य भाग **यूरोडियम** (Urodaeum) में पृथक् छिद्रों से खुलते हैं।	प्रत्येक किडनी के आन्तरिक क्षेत्र **हाइलम** (Hilum) से एक संकरी यूरेटर निकलती है, पीछे की ओर चलकर दोनों यूरेटर पृथक् रूप से **मूत्राशय** (Urinary bladder) में खुलते हैं। मूत्राशय की गर्दन **यूरेथ्रा** (Urethra) में खुलती है। यूरेथ्रा नर प्राणी बाहर की ओर शिश्न (Penis) के शीर्ष पर स्थित छिद्र के द्वारा खुलती है। यूरेथ्रा मादा प्रणाली में **क्लाइटोरिस** (Clitoris) के पीछे मूत्र छिद्र के द्वारा बाहर खुलता है।
4.	**मूत्राशय (Urinary bladder)** अनुपस्थित होता है।	एक पतला द्विपालित मूत्राशय पाया जाता है। यह अस्थाई रूप से मूत्र का संग्रह करता है। अन्तराल में शरीर से बाहर निकालता है। यह पश्चान्त्र (Hind gut) के अधरीय एण्डोडर्मल अन्धवर्ध के रूप में होता है।	एक थैले समान पतली भित्ति वाली संरचना **मूत्राशय** (Urinary bladder) होती है।	**मूत्राशय** (Urinary bladder) अनुपस्थित होता है।	**मूत्राशय** (Urinary bladder) एक पतली भित्ति वाली मध्य पेशीय थैली होती है। इसकी गर्दन को यूरेथ्रा (Urethra) कहते हैं, इसके द्वारा मूत्र शरीर से बाहर निकलता है।

वृक्क के अनुप्रस्थ (Transverse) एवं लम्बवत् काटों (Longitudinal sections) के अन्तर्गत–बाह्य सतह पर **पेरिटोनियम** (Peritoneum) का एक स्तर होता है जो कि आवरण का कार्य करता है। सम्पूर्ण वृक्क (Kidney) सूक्ष्म कुण्डलित व नालाकर संरचनाओं के द्वारा भरा रहता है जो कि आपस में एक संयोजी ऊतक के द्वारा बँधे रहते हैं। इनको वृक्क नलिकाएँ (Uriniferous tubule) कहते हैं। आन्तरिक किनारे पर **नेफ्रोस्टोम** (Nephrostome) पाये जाते हैं जो कि देहगुहा के द्रव में से उत्सर्जी पदार्थों का अवशोषण करते हैं। टैडपोल लार्वा में क्रियाशील होते हैं तथा वयस्क मेंढक में ये अक्रियाशील होते हैं।

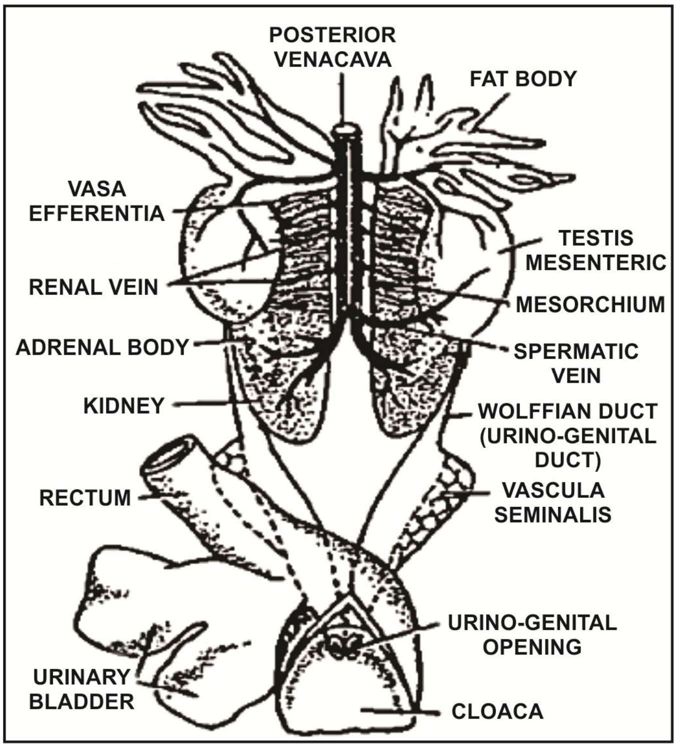

चित्र क्र. 3.16: Excretory Organs of Frog

प्रत्येक वृक्क नलिका में एक सिरा एक प्याले समान होता है जिसको **बोमन सम्पुट** (Bowman's capsule) कहते हैं। इसकी भित्ति ग्रन्थिल एपीथीलियम (Glandular epithelium) के दो स्तरों की बनी होती है। सम्पुट के अंदर रक्त कोशिकाओं का एक गुच्छा स्थित होता है जिसे **ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) कहते हैं। ग्लोमेरुलस एवं बोमन सम्पुट को सम्मिलित रूप से **मैलपिजियल सम्पुट** (Malpighian capsule) कहते हैं। बोमन सम्पुट के पीछे की नलिका सँकरी होकर **ग्रीवा** (Neck) कहलाती है। ग्रीवा के पीछे नलिका वृक्क के पृष्ठ सतह की ओर जाकर फिर लौटती है। अधर सतह पर कई कुण्डल (Coils) बनाकर फिर पृष्ठ सतह की ओर जाकर एक **अनुप्रस्थ संग्रह नलिका** (Transverse collecting tubule) में खुलती है। यह संग्रहन नलिका पृष्ठ सतह पर मूत्रवाहिनी में खुलती है तथा पार्श्व में अनुप्रस्थ नलिकाएँ एक लम्बी–नलिका–**बिडर (Bider canal)** में खुलती है। यह मादा में अनुपस्थित होती है। प्रत्येक वृक्क में **वृक्क धमनी** (Renal

artery) अनेक महीन शाखाओं – **अभिवाही वृक्क धमनिका** (Afferent renal arteriole) में बँट जाती है। प्रत्येक अभिवाही वृक्क धमनिका बोमन सम्पुट के अंदर ग्लोमेरुलस (Glomerulus) का रूप ले लेती है। ग्लोमेरुलस से एक **अपवाही वृक्क धमनिका** (Efferent renal arteriole) को बनाती है जो कि ग्लोमेरुलस से निकलकर **वृक्क निवाहिका शिरा** (Renal portal vein) एवं **वृक्क शिराओं** की केशिका जाल में खुल जाती है।

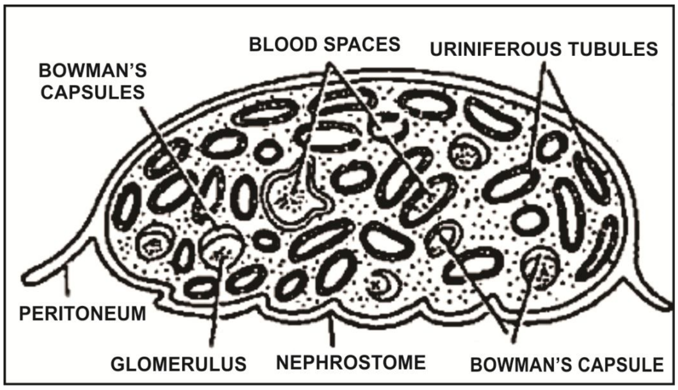

चित्र क्र. 3.17: T.S. of Kidney of Frog

(क) यूरोमैस्टिक्स (Uromastix)

उत्सर्जन तन्त्र (Excretory System)

अन्य कशेरुकों के समान यूरोमैस्टिक्स में भी उत्सर्जी एवं जनन अंगों का संरचनात्मक दृष्टि से अत्याधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः इन दोनों तन्त्रों का एक साथ ही अध्ययन किया जाता है।

उत्सर्जी तन्त्र नर एवं मादा यूरोमैस्टिक्स में समान होते हैं। इसमें एक जोड़ी **वृक्क** (Kidney), एक जोड़ी – **मूत्रवाहिनियाँ** (Ureter) एवं एक **मूत्राशय** (Urinary bladder) आते हैं।

वृक्क (Kidney)– एक जोड़ी संहत (Depressed) चाकलेटी–भूरे रंग की लम्बी संरचना होती है, यह देहगुहा के पश्च क्षेत्र में पृष्ठीय भित्ति के निकट सम्पर्क में स्थित होते हैं। यह मध्य रेखा के दायें–बायें बने रहते हैं। यूरोमैस्टिक्स के वृक्क मेटानेफ्रिक (Metanephric) प्रकार के होते हैं। दोनों वृक्क पेरिटोनियल झिल्ली (Peritoneal membrane) के द्वारा ढके होते हैं।

टिप्पणी

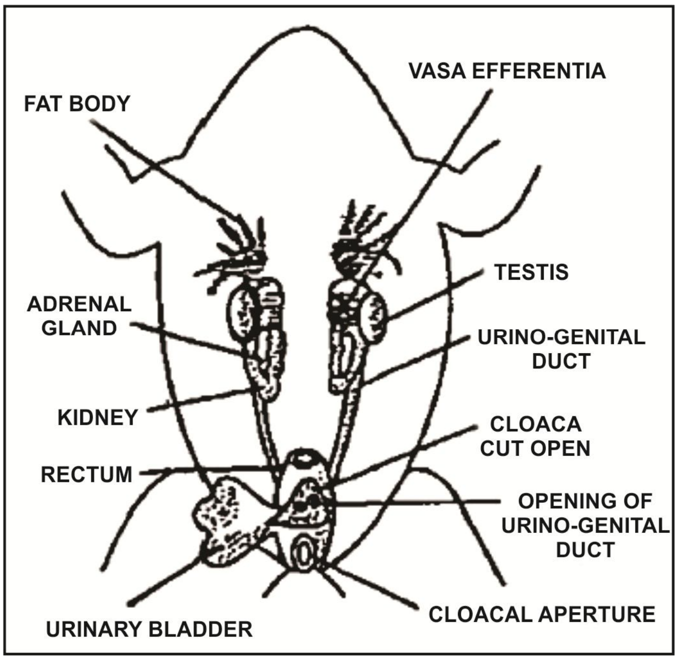

चित्र क्र. 3.18: **Uriniferous Tubule of Frog**

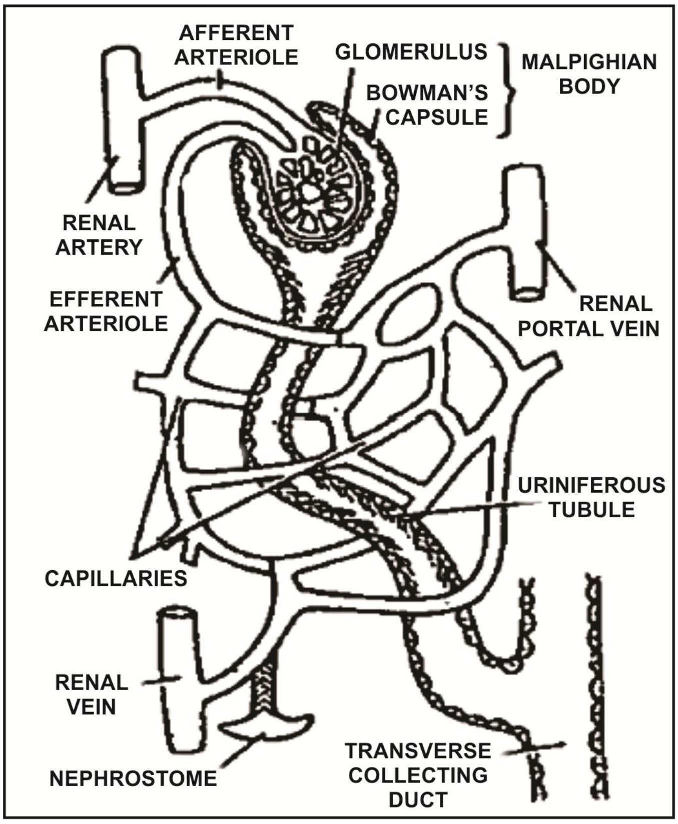

चित्र क्र. 3.19: **Uriniferous Tubule of Frog**

टिप्पणी

प्रत्येक वृक्क का अग्र भाग चौड़ा एवं पश्च भाग सँकरा होता है। वृक्क का अग्र भाग चौड़ा और कुछ दूर–दूर स्थित होता है, लेकिन पश्च भाग मिलकर 'V' की आकृति बना लेता है।

दोनों वृक्कों का समेकन अपूर्ण होता है, क्योंकि दोनों पश्च वृक्क संयोजी ऊतक की गद्दी समान पट (Septa) के द्वारा पृथक् रहते हैं। प्रत्येक वृक्क (Kidney) अनेक लम्बा सँकरा कुण्डलित (Coiled) सूक्ष्म मूत्र नलिकाओं (Nephrons /uriniferous tubules) का बना होता है। मूत्र नलिकाओं के अतिरिक्त वृक्क में संयोजी ऊतक में उपस्थित अनेक रक्त केशिकाएँ (Blood capillaries), पेशी तन्तु (Muscle fibres) एवं तन्त्रिका तन्तु (Nerve fibre) पाये जाते हैं।

मूत्रवाहिनियाँ/यूरेटर्स (Ureters)– प्रत्येक वृक्क (Kidney) से एक छोटी कोमल सँकरी मूत्रवाहिनी अग्रीय एक तिहाई भाग के समीप, अधर पार्श्वीय (Ventro-lateral) सतह से निकलती है। प्रत्येक नलिका पीछे की ओर जाकर अवस्कर कक्ष के विशेष भाग यूरोडियम (Urodaeum) में उत्सर्जी पदार्थों को पहुँचाती है। मूत्रवाहिनी के छिद्र यूरोडियम में स्थित पृथक्–पृथक् स्थित अंकुरकों (Papillae) पर स्थित होते हैं।

मूत्राशय (Urinary bladder)– यह पतली भित्ति युक्त, अवस्कर के यूरोडियम की अधर भित्ति से सम्बन्धित एक मूत्राशय होता है। मूत्राशय में उत्सर्जी तरल पदार्थ–मूत्र एकत्रित होता है। मूत्राशय में जल का अवशोषण करने के पश्चात्, उत्सर्जी पदार्थ, मूत्र अर्ध ठोस अवस्था में शरीर से बाहर निकाला जाता है।

(ख) पक्षी/कबूतर (Bird/Pigeon)

उत्सर्जी अंग (Excretory Organs)

नर एवं मादा दोनों में उत्सर्जी अंग समान होते हैं, उत्सर्जी अंगों के अन्तर्गत एक जोड़ी **वृक्क** (Kidney) एवं एक जोड़ी यूरेटर (Ureter) आते हैं। उड्डयन अनुकूलन के कारण मूत्राशय (Urinary bladder) का अभाव होता है। मूत्राशय केवल शुतुरमुर्ग (Ostrich) में पाया जाता है।

वृक्क/गुर्दे (Kidneys)– कबूतर एवं अन्य पक्षियों में वृक्क, मेटानेफ्रिक (Metanephric) प्रकार के होते हैं। **वृक्क** देहगुहा के पश्च भाग में पृष्ठीय देहभित्ति से सम्बन्धित रहते हैं तथा श्रोणि मेखलाओं (Pelvic girdles) के खोखले गर्तों में धँसे रहते हैं। इनकी अधर/वेण्ट्रल सतह पेरिटोनियम झिल्ली के आवरण से ढकी रहती है।

टिप्पणी

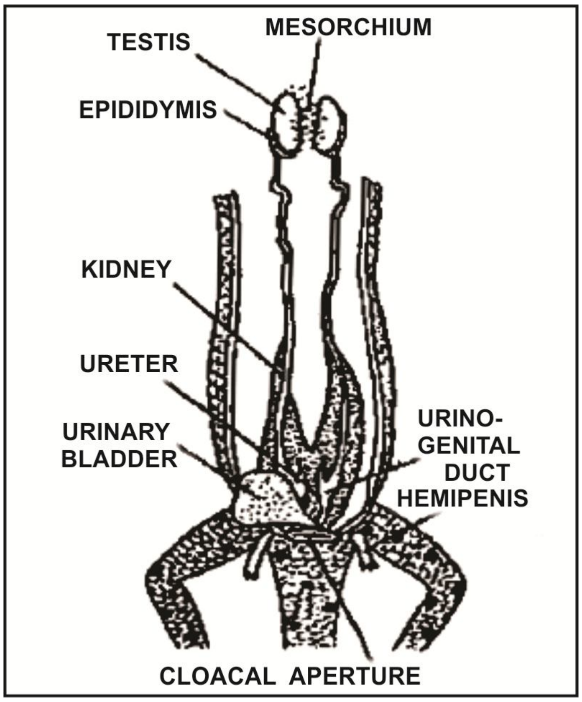

चित्र क्र. 3.20: **Excretory Organ of Uromastix**

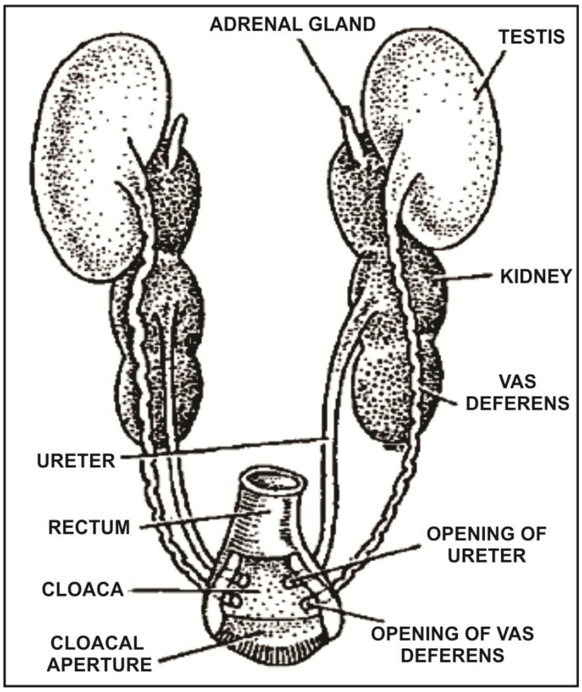

चित्र क्र. 3.21: **Pigeon : Male Excretory Organs**

कबूतर के वृक्क/गुर्दे संख्या में दो, गहरे भूरे, चपटे, (Trilobed) त्रिपालित होते हैं जिनमें एक अग्र पालि, एक मध्य एवं एक पश्च पालि होती है। प्रत्येक वृक्क की अग्र पालि से सम्बन्धित एक छोटी अनुलम्बित, धागे समान पीली सी **एड्रीनल ग्रन्थि** (Adrenal gland) होती है। वृक्क की प्रत्येक पालि, अनेक

छोटे पिण्डकों (Lobules) में भिन्नित होती है। प्रत्येक पिण्डक में पास–पास स्थित अत्याधिक संख्या में कुण्डलित (Coiled) **मूत्रधर नलिकाएँ/यूरीनिफेरस ट्यूबूल** (Uriniferous tubules) पायी जाती हैं। यह नलिकाएँ एक दूसरे से संयोजी ऊतक (Connective tissue) के द्वारा सटी होती हैं। प्रत्येक मूत्रधर नलिका में विशिष्ट भाग **हेनले का लूप** (Henle's loop) पाया जाता है, जहाँ पानी का पुनः अवशोषण (Reabsorption) होता है। इस कारण मूत्र का सान्द्रण (Concentration) होता है। मूत्रधर नलिका में ग्लोमेरुलस (Glomerulus), रक्त को छानता है तथा छनकर निकला हुआ फिल्ट्रेट (Filtrate) हेनले के लूप में से निकलता है जहाँ पर उसमें से जल का पुनः अवशोषण हो जाता है तथा गाढ़ा मूत्र, यूरिक अम्ल (Uric acid) के रूप में मूत्र–वाहिनियों में से होकर अवस्कर में आता है।

यूरेटर (Ureter)– एक जोड़ी सँकरी सीधी नलिका होती है जो कि वृक्क की अग्र पालि की अधर सतह से निकलती है। प्रत्येक यूरेटर पीछे की ओर जाकर अवस्कर (Cloaca) के बीच के कक्ष **यूरोडियम** (Urodaeum) में खुलती है। यूरेटर में प्रत्येक वृक्क की सभी मूत्रधर नलिकाएँ अपनी ओर की **मूत्रवाहिनी/यूरेटर** में खुलती हैं।

सभी पक्षी **यूरिकोटेलिक** (Uricotelic) प्राणी होते हैं, क्योंकि इन पक्षियों का उत्सर्जी अन्त उत्पाद यूरिक अम्ल (Uric acid) या यूरेट (Urate) होते हैं। वृक्कों से निकला अर्ध ठोस मूत्र अवस्कर (Cloaca) में आता है, अवस्कर में सान्द्रित मूत्र का अधिकांश जल अवशोषित कर लिया जाता है। मूत्र, यूरिक अम्ल सफेद कणिकाओं के रूप में, जिसे **ग्वानो** (Guano) कहते हैं, अवस्कर से बाहर निकाल दिया जाता है।

(ग) खरगोश (Rabbit)

उत्सर्जी तन्त्र (Excretory System)

जन्तु–शरीर में विभिन्न उपापचयी क्रियाओं (Metabolic activities) के फलस्वरूप हानिकारक नाइट्रोजीनस वर्ज्य पदार्थ (Nitrogenous waster products) बनते हैं जो शरीर के लिए हानिकारक होते हैं। इन अवांछनीय पदार्थों को उत्सर्जी पदार्थ (Excretion products) कहते हैं। अतः इनको शरीर से बाहर निकालने की क्रिया को **उत्सर्जन** (Excretion) कहते हैं तथा इसमें भाग लेने वाले अंगों को **उत्सर्जी अंग** (Excretory organs) कहते हैं। ये अंग मिलकर उत्सर्जी तन्त्र (Excretory system) बनाते हैं। शशक के प्रमुख उत्सर्जी अंग एक जोड़ी **वृक्क** (किडनी – Kidneys) मेटानैफ्रिक (Metanephric) प्रकार के होते हैं जो पश्च उदरगुहा (Abdominal cavity) में कशेरुक दण्ड (Vertebral column) के दायें–बायें लगे रहते हैं। दोनों किडनी एक ही तल में न होकर थोड़ा ऊपर–नीचे होती है। दायीं किडनी बायीं किडनी से थोड़ा नीचे स्थित होती है। दोनों वृक्क उदर गुहा की पृष्ठ दीवार से **पेरीटोनियम** (Peritoneum) की झिल्ली द्वारा सधे रहते हैं। इस झिल्ली को **मीसोर्चियम** (Mesorchium) कहते हैं।

प्रत्येक किडनी गहरे लाल रंग की सेम के बीज की आकृति की होती है। यह बाहर की ओर उत्तल (Convex) तथा भीतर की ओर अवतल (Concave) होती है। इस कान्केव सतह पर गड्ढेनुमा भाग को **हाइलस** (Hilus) कहते हैं। इसी भाग से वृक्क में वृक्कीय धमनी (Renal artery) प्रवेश करती है तथा वृक्क शिरा (Renal vein) एवं मूत्रवाहिनी (Ureter) किडनी से बाहर निकलती है।

शशक में मूत्रवाहिनियाँ (Ureters) निकलकर उदर गुहा के पश्च भाग में स्थित मूत्राशय (Urinary bladder) में पृथक्–पृथक् छिद्रों द्वारा खुलती हैं। मूत्राशय एक बड़ी अण्डाकार थैलीनुमा रचना है जो पीछे की ओर सँकरा होकर मूत्रमार्ग (Urethra) बनाता है। इसमें मूत्र एकत्र होता है। मूत्र के आगे बढ़ने के लिए मूत्रवाहिनी की पेशीय दीवारों में क्रमाकुंचन (Peristaltic movement) भी होता है।

वृक्कों की आन्तरिक रचना (Internal Structure of Kidneys)– वृक्क के चारों ओर तन्तुमय (Fibrous) संयोजी ऊतक का महीन खोल (रीनल कैप्सूल – Renal capsule) होता है। प्रत्येक वृक्क असंख्य महीन कुण्डलित नलिकाओं का बना होता है। इन नलिकाओं को **वृक्क नलिकाएँ** (Uriniferous tubules of Nephrons) कहते हैं। ये संयोजी ऊतक में परस्पर ठसी रहती हैं। ये लम्बी, पतली, कुण्डलित व स्त्रावी (Secretory) होती हैं। प्रत्येक नलिका का प्रारम्भिक भाग एक दोहरी दीवार की प्यालेनुमा रचना बनाता है जो **बोमन्स सम्पुट** (Bowman's capsule) कहलाता है। इसके गर्त में रुधिर केशिकाओं (Blood capillaries) का एक गुच्छा–सा होता है, जिसे **ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) कहते हैं। इस पूर्ण रचना को **मैल्पीजियन सम्पुट** (Malpighian capsule) कहते हैं। सम्पुट की पूर्ण दीवार इकहरी एपीथीलियम की बनी होती है। प्रत्येक वृक्क नलिका (यूरीनीफेरस ट्यूबूल – Uriniferous tubule) को निम्नलिखित तीन भागों में बाँट सकते हैं–

1. **प्रथम कुण्डलित भाग (Proximal convoluted part)**– यह मोटा, छोटा, तथा सम्पुट (Capsule) से एक छोटी–सी ग्रीवा (Neck) द्वारा जुड़ा रहता है। यह इकहरी एपीथीलियम के स्तर से बना होता है।
2. **हेन्ले लूप (Henle's loop)**– यह मध्य वाला लम्बा, पतला और 'U'/'V' की भाँति होता है। इसकी एक भुजा अवरोही (Descending) तथा दूसरी आरोही (Ascending) होती है।
3. **अन्तिम दूरस्थ कुण्डलित भाग (Distal convoluted part)**– यह वृक्क नलिका (Collecting tubule) का दूरस्थ छोटा व मोटा भाग जो संग्रह नलिका में खुलता है।

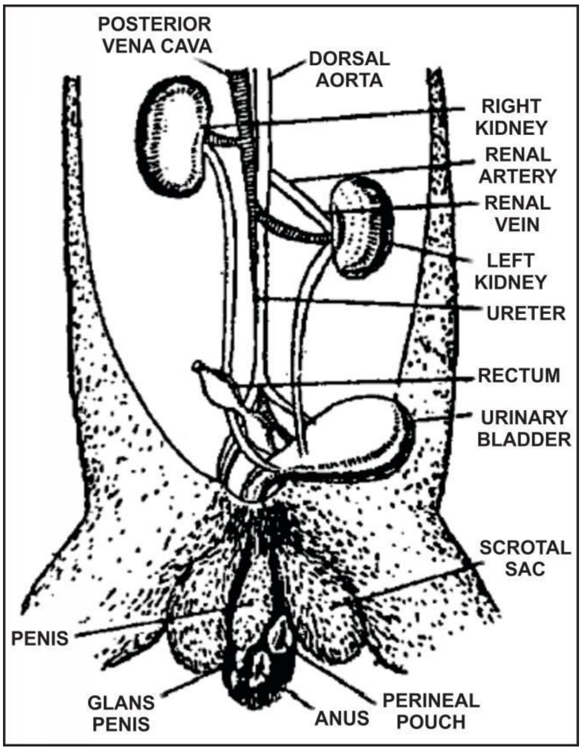

चित्र क्र. 3.22: Excretory System of Male Rabbit

वृक्क (किडनी – Kidney) की क्षैतिज अनुलम्ब काट में किडनी के स्पष्ट दो भाग दिखाई पड़ते हैं – बाहरी या परिधीय भाग **वल्कुट** (**कॉर्टेक्स** – Cortex) तथा भीतरी भाग **मेड्यूला** (Medulla) होता है। स्त्रावी नलिका का बोवमैंस सम्पुट, दूरस्थ कुण्डलित भाग वल्कुट (Cortex) तथा हैन्ले के लूप वाला भाग मेड्यूला में स्थित होता है।

मेड्यूला का मध्य भाग एक स्पष्ट वृक्क अंकुर (रीनल पेपिला – Renal papilla) के रूप में वृक्कनाभि की ओर उभरा रहता है। वल्कुट भाग मेड्यूला में कंगूरों के समान मेड्यूला के बाहरी भाग मे धँसा रहता है। इन्हें **बरटिनी के वृक्क स्तम्भ** (Renal column of Bertini) कहते हैं। इसी के कारण मेड्यूला का बाहरी भाग वल्कुट (Cortical) भाग में उभार के रूप में दिखायी देता है जिन्हें **पिरैमिड्स** (Pyramids) कहते हैं।

कई वृक्क नलिकाएँ मिलकर पिरैमिड्स में स्थित संग्रह नलिका में (Collecting ducts) खुलती हैं। ये संग्रह नलिकाएँ मिलकर एक मोटी संग्रह नलिका **बेलिनी की नलिका** (Duct of Bellini) बनाती हैं। ये वृक्क अंकुर (Renal papilla) के शिखर पर मूत्रवाहिनी (Ureter) में खुलती है। मूत्रवाहिनी का प्रारम्भिक भाग चौड़ा, कीपनुमा होता है, जिसे **पैल्विस** (Pelvis) कहते हैं।

वृक्क नलिका की दीवार में एकहरी एपीथीलियम तथा इसके बाहर महीन आधार कला का आवरण होता है। प्रथम कुण्डलित तथा हेन्ले के प्रारम्भिक भाग में इसकी कोशिकाएँ अवशोषी (Absorptive) होती हैं तथा इनके स्वतन्त्र सिरे पर अनेक सूक्ष्मांकुर (Microvilli) निकले रहते हैं। वृक्क धमनी (Renal artery)

हाइलस (Hilus) वाले भाग से वृक्क में प्रवेश कर वल्कुट (Cortex) प्रदेश में अनेक छोटी–छोटी धमनिकाओं (Arterioles) में बँट जाती है। प्रत्येक धमनिका ग्लोमेरुलस (Glomerulus) में पहुँचकर केशिकाओं में बँट जाती है अतः इसे **अभिवाही धमनिका** (Afferent arteriole) कहते हैं। दूसरी ओर ये ग्लोमेरुलस से बाहर निकलती हैं जिसे **अपवाही धमनिका** (Efferent arteriole) कहते हैं। ये धमनिका सम्पुट (Capsule) से निकलकर पुनः केशिकाओं में बँट जाती है जो अपनी वृक्क नलिका के चारों ओर एक **परिनलिका जालक** (Peritubular capillary plexus) बनाती हैं। इसकी केशिकाएँ पुनः मिलकर **शिराका** (Venule) बनाती हैं जो परस्पर मिलकर कई बड़ी शिराएँ (Veins) बनाती हैं। अन्त में सभी शिराएँ मिलकर **वृक्क शिरा** (Renal vein) बनाती हैं जो हाइलस वाले भाग से बाहर निकलकर पश्च महाशिरा (Postcaval) में खुलती हैं।

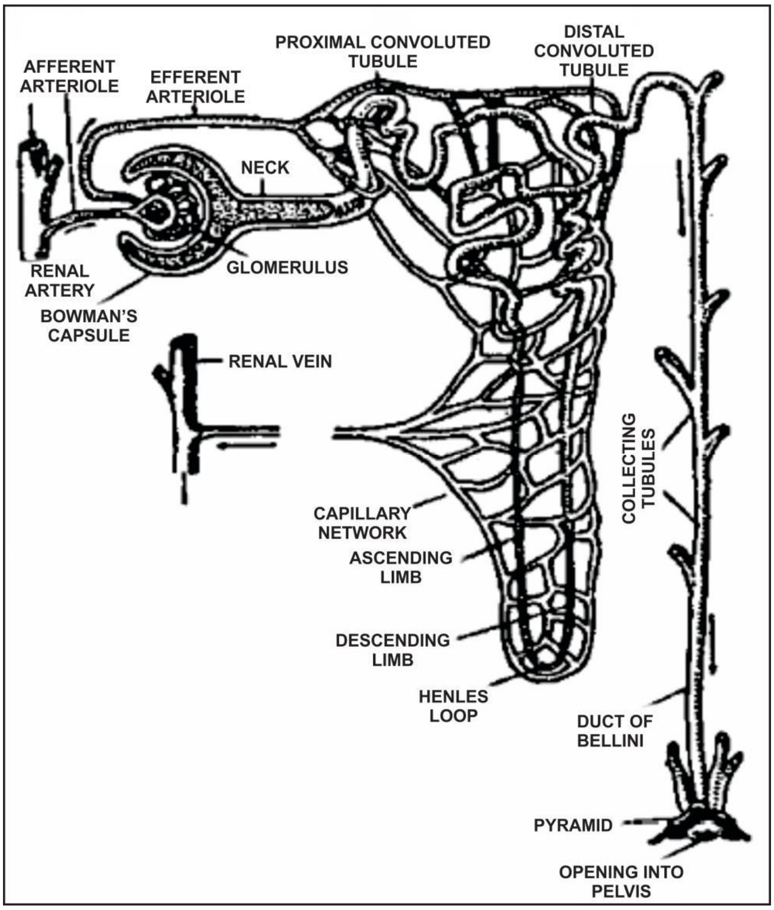

चित्र क्र. 3.23: Uriniferous Tubule

मूत्रवाहिनी (Ureter) मोटी दीवार की सँकरी नलिकानुमा होती है। इसकी भीतरी स्तर की कोशिकाएँ रोमाभि एपीथीलियल (Ciliated epithelial) होती हैं जिनके कारण उत्पन्न तरंग–गति से मूत्रवाहिनी में पीछे की ओर बढ़ता है। मूत्र धीरे–धीरे **मूत्राशय** (Urinary bladder) में एकत्र होता रहता है। मूत्राशय की दीवार त्रिस्तरीय (Three layered) होती है। भीतर की ओर भंजमय श्लेष्मिका

(Folded mucous membrane), मध्य में पेशी स्तर तथा सबसे बाहर पेरीटोनियम (Peritoneum) की बनी सीरमी कला (Serous membrane) होती हैं। पेशियाँ अरेखित होती हैं।

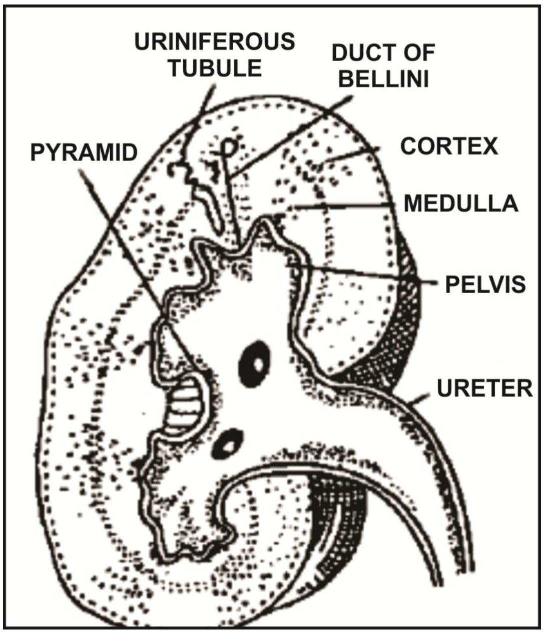

चित्र क्र. 3.24: **Horizontal Vertical Section of Kidney of Rabbit**

शशक के अन्य उत्सर्जी अंग (Other Excretory Organs of Rabbit)

1. **यकृत, प्लीहा तथा आंत (Liver, Spleen and Intestine)**– यकृत कोशिकाएँ रक्त से आवश्यकता से अधिक अमीनो अम्ल को लेकर अमोनीकरण (Deamination) द्वारा अमोनिया तथा जल में विघटित कर देती हैं तथा इस अमोनिया को CO_2 के साथ संयोग कराकर यूरिया बनाती हैं।

   प्लीहा (Spleen) तथा यकृत की **कुफ्फर कोशिकाएँ** (Kupffer's cells) मृत रुधिराणुओं के हीमोग्लोबिन का विखण्डन कर बिलीरूबिन (Bilirubin) एवं बिल्वर्डिन (Bilverdin) नामक पित्त वर्णक (Bile pigments) बनाती हैं जो आंत में पहुँचकर मल के साथ बाहर निकल जाता है।

2. **त्वचा (Skin)**– त्वचा की स्वेद ग्रन्थियाँ (Sweat glands) रुधिर कोशिकाओं के रक्त से जल, CO_2, यूरिया, लवण आदि ग्रहण कर पसीने के रूप में बाहर निकालती हैं।

3. **फेफड़े (Lungs)**– श्वसन क्रिया में बनी CO_2 का अधिकांश भाग फेफड़ों द्वारा उच्छ्वास (Expiration) की क्रिया में बाहर निकाला जाता है।

3.4.3 विभिन्न कशेरुक प्राणियों में जनन अंगों का अध्ययन (Study of Genital Organs in Different Vertebrates)

टिप्पणी

(अ) नर जनन अंग (Male Genital Organs)

1. **स्कॉलियोडॉन (Scoliodon)**– इस मछली में लिंग पृथक् होते हैं। नर स्कॉलियोडॉन में मैथुन अंग **क्लास्पर्स** (Claspers) होते हैं। यह शुक्राणुओं (Sperrms) को मादा के जनन पथ (Genital tract) में पहुँचाता है।

   वृषण (Testes)– एक जोड़ी लम्बे वृषण, यकृत (Liver) से लेकर **मलाशय ग्रन्थि** (Rectal gland) तक स्थित होते हैं। वृषण, मलाशय ग्रन्थि से ऊतकों के द्वारा जुड़ा रहता है। वृषण शरीर की पृष्ठीय देहभित्ति से एक **पेरिटोनियल झिल्ली** (Peritoneal membrane) के द्वारा जुड़े रहते हैं।

   वृषण के अंदर **शुक्रधर नलिकाएँ** (Seminiferous tubules) होती हैं। इन नलिकाओं के बीच–बीच में **अन्तराली कोशिकाएँ** (Interstitial cells) पायी जाती हैं जिनसे नर हार्मोन – **टेस्टॉस्टेरोन** (Testosterone) स्त्रावित होता है। शुक्रधर नलिकाएँ **जननिक एपिथीलियम** (Germinal epithelium) से आस्तरित होती हैं।

   प्रत्येक वृषण से अनेक महीन **शुक्र अपवाहिकाएँ** (Vasa efferentia) निकलती हैं, यह वाहिकाएँ लीडिग ग्रन्थि से होते हुए **शुक्रवाहिका** (Vasa defferentia) में खुलती हैं। शुक्र वाहिका एक सँकरी, कुण्डलित नलिका होती है जोकि **एपिडिडाइमिस** में से निकलकर पश्च भाग की ओर निरन्तर चलकर एक चौड़े **शुक्राशय** (Sperm sac) को बनाती है। शुक्रवाहिनी एवं शुक्राशय दोनों मीजोनेफ्रिक का रूपान्तरित स्वरूप हैं। दोनों ओर के शुक्राशय स्वतन्त्र रूप से मूत्रजनन साइनस (Urinogenital sinus) में खुलते हैं। **मूत्रजनन साइनस** अवस्कर (Cloca) में खुलते हैं।

टिप्पणी

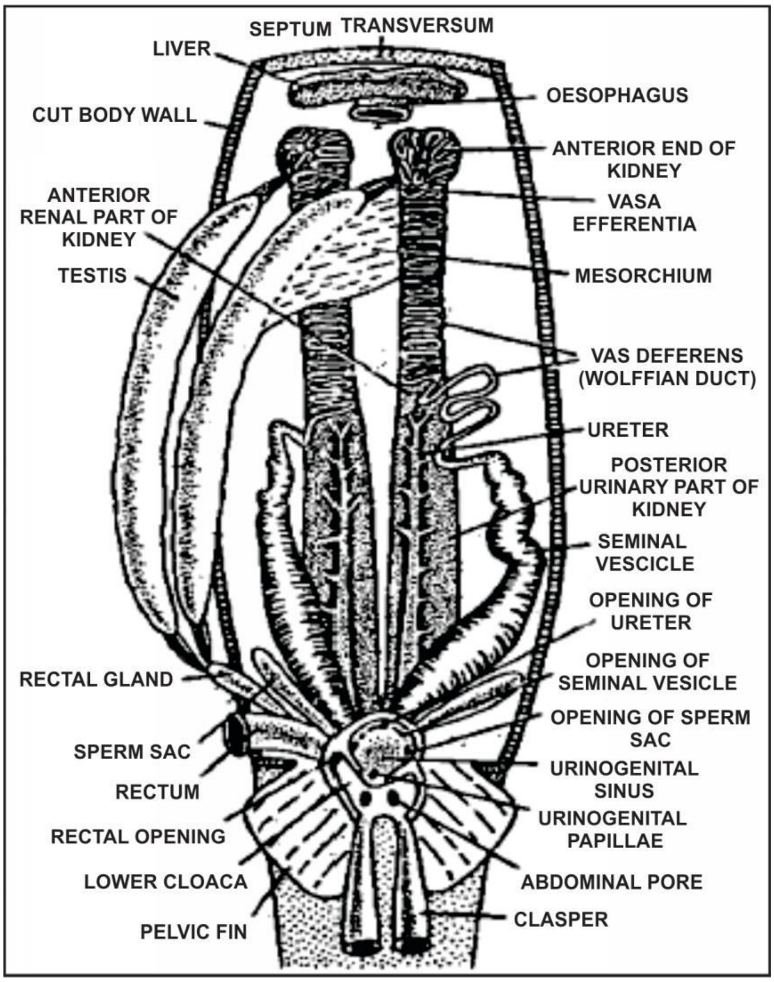

चित्र क्र. 3.25: **Genital System : Male Genital Organs of *Scoliodon***

नर स्कॉलियोडॉन में अवस्कर से सम्बन्धित एक जोड़ी खाँचयुक्त (Grooved) **आलिंगक/क्लास्पर्स/मैथुन अंग** (Claspers) होते हैं। मैथुन के समय एक आलिंगक एक ही बार में मादा के अवस्कर में डाला जाता है। एक जोड़ी लम्बे **साइफन** (Siphons) होते हैं जोकि क्लास्पर्स की खाँचों (Grooves) में खुलते हैं। समुद्र का पानी साइफनों के अंदर पहुँच जाता है और मैथुन क्रिया के समय शुक्राणुओं (Sperms) को मादा के अवस्कर में पहुँचाने का कार्य करता है।

2. **मेंढक (Frog)**– मेंढक एक उभयचरी (Amphibian) प्राणी है। मेंढक में नर जनन अंगों (Genital organs) के अन्तर्गत– एक जोड़ी **वृषण** (Testes), **शुक्र अपवाहिकाएँ** (Vasa efferentia), **बिडर नाल** (Bidder's canal) एवं मूत्रोजनन नलिका (Urinogenital canal) आते हैं।

वृषण (Testes)– एक जोड़ी, बेलनाकार (Cylindrical) हल्के पीले रंग की संरचना होती है। प्रत्येक वृषण, वृषण योजिनी – **मीसोर्चियम** (Mesorchium) द्वारा लटके रहते हैं। प्रत्येक वृषण के अग्र सिरे के पास अंगुली समान प्रवर्ध निकले रहते हैं। इनको **वसा काय** (Fat bodies) कहते हैं। इनका नाम **कार्पोरा ऐडिपोजा** (Corpora adiposa) है। प्रत्येक

टिप्पणी

वृषण में अनेक महीन कुण्डलित नलिकाएँ – **शुक्रधर नलिकाएँ** (Seminiferous tubules) होती हैं। शुक्रधर नलिकाओं के बीच–बीच में **अन्तराली कोशिकाएँ** (Interstitial cells) पायी जाती हैं जोकि नर हॉर्मोन्स को स्त्रावित करती हैं। इन कोशिकाओं को **लेडिग कोशिकाएँ** (Leydig cells) भी कहते हैं।

वृषण के आन्तरिक किनारे से 10–12 पतली नलिकाएँ – **शुक्र अपवाहिकाएँ** (Vasa efferentia) निकलती हैं, यह वृक्क में प्रवेश कर **बिडर नलिका** (Bidder's canal) में खुलती हैं। बिडर नलिका, वृक्क से पश्च सिरे पर **संगृहीत नलिकाओं** (Collecting tubules) में खुलती है जोकि यूरेटर में खुलती हैं।

मूत्रोजनन नलिका, वृक्क से बाहर आने पर एक थैली समान संरचना के रूप में होती है जिसे शुक्राशय (Seminal vesicle) कहते हैं, इसमें शुक्राणु बाहर जाने से पूर्व कुछ समय के लिए संगृहीत रहते हैं। शुक्राणु अवस्कर द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं।

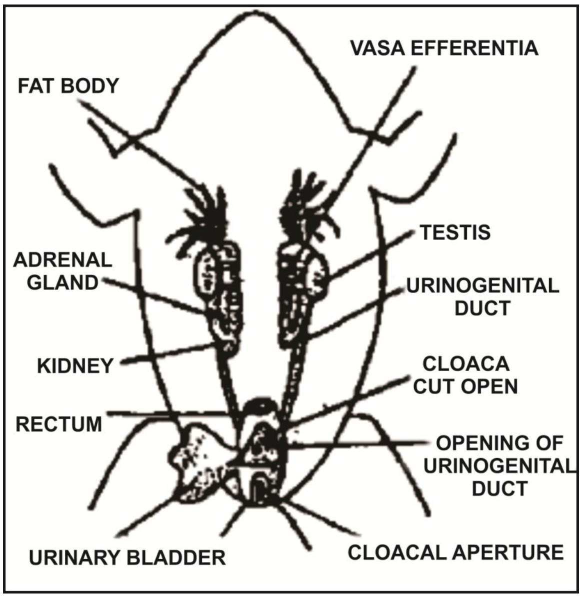

चित्र क्र. 3.26: Genital System : Male Genital Organs of Frog

3. **सरीसृप (Reptilia)– उदाहरण यूरोमेस्टिक्स *(Uromastix)*–** सरीसृप प्राणियों में लैंगिक अंग पृथक्–पृथक् प्राणियों में पाये जाते हैं। लैंगिक द्विरूपता (Sexual dimorphism) पायी जाती हैं। नर यूरोमेस्टिक्स में **जनन अंग** निम्नलिखित प्रकार से होते हैं–

   एक जोड़ी **वृषण** (Testes) **शुक्र वाहिनी** (Vasa deferens) एवं अर्ध **शिश्न** (Hemi penis)।

   वृषण (Testes)– यूरोमेस्टिक्स में दो सफेद, अण्डाकार वृषण होते हैं जोकि दोहरी पेरिटोनियम आवरण– **मीसोंचियम** (Mesorchium) के द्वारा उदर में निलम्बित रहते हैं। वृषण में महीन–महीन **शुक्र अपवाहिकाएँ**

टिप्पणी

(Vasa efferentia) निकलकर **एपिडिडिमिस** (Epididymis) में पहुँचती हैं। शुक्र अपवाहिकाएँ मीसोनेफ्रॉस (Mesonephros) की मूत्रधर नलिकाओं की बहिवृध्दियाँ (Outgrowth) हैं। एपिडिडिमिस मीसोनेफ्रॉस का अवशेषी भाग होता है। शुक्रधर नलिकाओं (Seminiferous tubules) के बीच–बीच में अन्तराली कोशिकाएँ (Interstitial cells) या लेडिग कोशिकाएँ (Leydig cells) होती हैं जो नर हॉर्मोनस को स्त्रावित करती हैं।

शुक्र वाहिनी (Vasa deferens)– यह नलिकाएँ वृषण से निकलकर पश्च दिशा में अवस्कर तक स्थित होती हैं। अवस्कर (Cloaca) के यूरोडियम में यूरेटर के छिद्रों के आगे की दिशा में खुलती हैं। शुक्र वाहिनी का अग्र सिरा अधिक कुण्डलित होकर एपिडिडिमिस के (Epididymis) रूप में होता है। एक सफेद धागे समान महीन अवशेषी मुलेरियन नलिका (Mullerian duct) प्रत्येक शुक्र वाहिनी के समानान्तर वृषण से अवस्कर तक पायी जाती है।

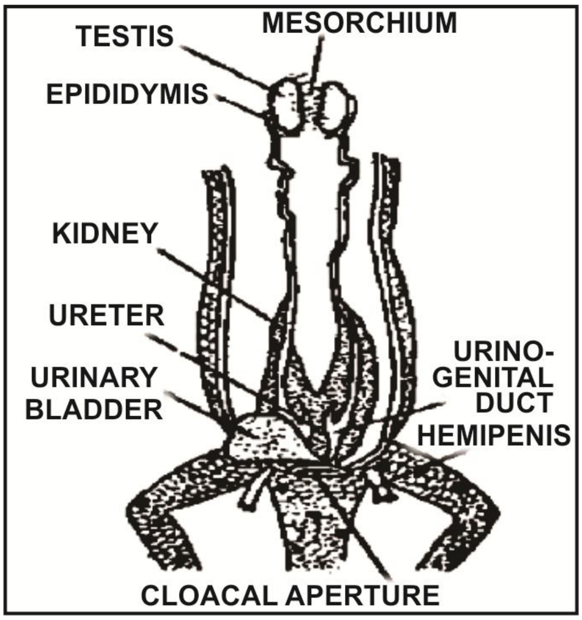

चित्र क्र. 3.27: Genital System : Male Genital Organs of Uromastix

अर्ध्य शिश्न/हेमिपेनिस (Hemipenis)– यह एक जोड़ी मैथुन अंग अवस्कर की अधर दिशा में उपस्थित होते हैं। यह उत्थानशील ऊतक (Erectile tissue) के बने होते हैं। यह मैथुन के समय नलाकार (Tubular) होते हैं, इनका समीपस्थ (Proximal) सिरा एक वृन्त (Stalk) एवं दूरस्थ सिरा स्वतन्त्र शीर्ष (Head) के रूप में होता है। वृन्त में एक खाँच मध्यस्थ दिशा में होती है जोकि शुक्र वाहिनी के छिद्र से प्रारम्भ होकर अर्ध शिश्न के शीर्ष के सिरे पर समाप्त होती है और शुक्राणुओं को मादा के अवस्कर में संवाहित करती है।

टिप्पणी

4. **पक्षी (Birds)– (कबूतर – Pigeon)–** पक्षियों में नर जनन अंग निम्नलिखित प्रकार से होते हैं– एक जोड़ी **वृषण** (Testes), एक जोड़ी **शुक्र वाहिनियाँ** (Vasa deferens) एवं **अवस्कर** (Cloaca)।

वृषण (Testes)– (एक जोड़ी, अण्डाकार और सफेद वृषण,) वृषण योजनी के द्वारा वृक्क के अग्र सिरे से जुड़ा होता है। जननकाल में वृषण का आकार अत्याधिक बड़ा होता है। प्रत्येक वृषण (Testes) में अनेक महीन कुण्डलित **शुक्रधर नलिकाएँ** (Seminiferous tubules) होती हैं। इन नलिकाओं के बीच–बीच में **अन्तराली कोशिकाएँ** या **लेडिग कोशिकाएँ** (Interstitial cells or Leydig cells) होती हैं जोकि नर हॉर्मोन्स को स्त्रावित करती हैं।

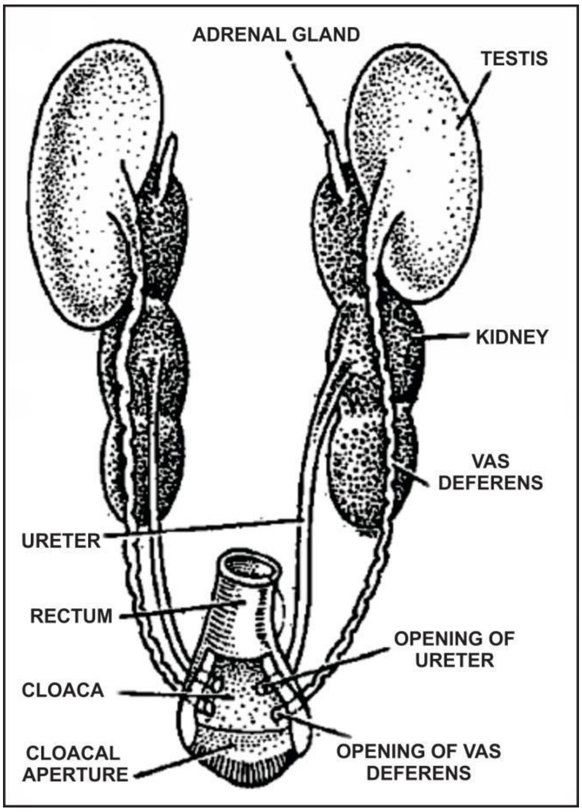

चित्र क्र. 3.28: Genital System : Male Genital Organs in Birds

प्रत्येक वृषण से एक कुण्डलित **वोल्फियन नलिका** (Wolffian canal) निकलती है, इसका अग्र सिरा **एपिडिडिमिस** (Epididymis) और शेष भाग **शुक्र वाहिनी** (Vasa deferens) का होता है। शुक्रधर नलिकाएँ एपिडिडिमिस में खुलती हैं। शुक्र वाहिनी पश्च दिशा में चलकर अवस्कर के यूरोडियम में अंदर की ओर स्थित **पैपिला** पर खुलती है। शुक्र वाहिनी का पश्च भाग फूलकर **शुक्राशय** (Seminal vesicle) को बनाता है। इसमें शुक्राणु संगृहीत रहते हैं।

पक्षियों में मैथुन अंग केवल शुतुरमुर्ग (Ostrich), बत्तख (Ducks) एवं हंसों (Swans) में पाये जाते हैं, शेष पक्षियों में अनुपस्थित होता है।

5. **स्तनी (Mammals)– (खरगोश Rabbit)** स्तनी प्राणियों में नर जनन अंगों के अन्तर्गत – **जनन नलिका/यूरेथ्रा** (Genital canal or urethra), एक जोड़ी **वृषण (Testes)**, **एपिडिडिमिस** (Epididymis), **शुक्र वाहिनी** (Vasa deferens), **शिश्न** (Penis) आते हैं।

वृषण (Testes)– नर स्तनी प्राणी में दो अण्डाकार वृषण, उदर गुहिका (Abdominal cavity) के बाहर वृषण कोषों (Scrotal sacs) में स्थित होती हैं। वृषण कोषों की भित्ति से स्नायु–**गुबर्नेकुलम** (Gubernaculum) द्वारा संलग्न होती है। वृषण कोषों की गुहिका, **वृषण कोष पट्ट** (Septum scroti) द्वारा अर्धांशों में विभाजित होती है। वृषण कोषों की गुहिका उदर गुहिका से एक पतली **इंग्वीनल नलिका** (Inguinal canal) से सम्बन्धित रहती है।

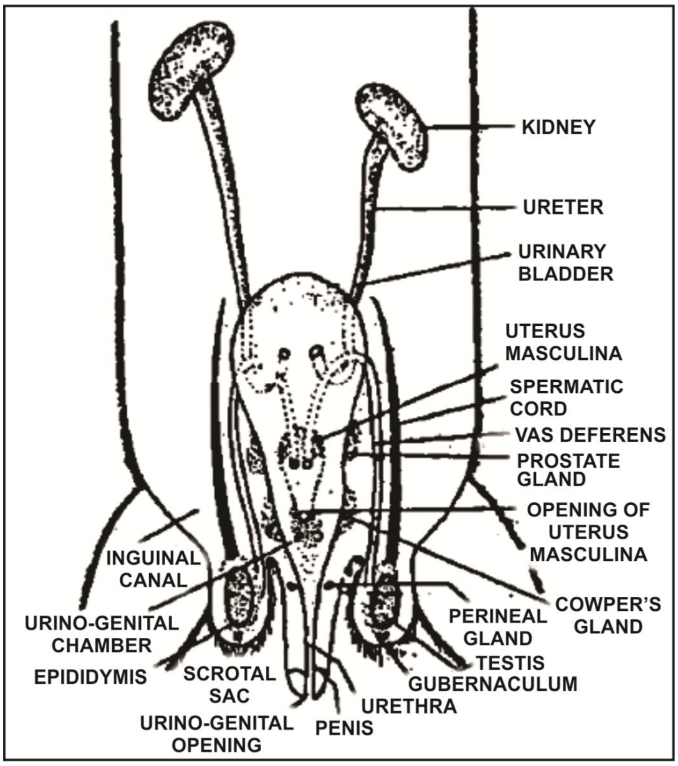

चित्र क्र. 3.29: **Genital System : Male Genital Organs of Rabbit**

प्रत्येक वृषण, एक ऊतक के सम्पुट (Capsule) द्वारा बंद रहता है जिसे **श्वेत कंचुक/ट्यूनिका ऐल्बूजीनिया** (Tunica albuginea) कहते हैं। वृषण के अंदर **शुक्रधर नलिकाओं** की संहति (Seminiferous tubules) होती है, इन नलिकाओं के बीच–बीच में **अन्तराली कोशिकाओं** (Interstitial cells) या **लेडिग कोशिकाएँ** (Leydig cells) होती हैं जोकि नर हॉमोन्स को स्त्रावित करती हैं। शुक्रधर नलिकाओं का अस्तर

टिप्पणी

जननिक एपिथीलियम (Germinal epithelium) का बना होता है। इन जननिक एपिथीलियम की कोशिकाओं के बीच में **सर्टोली कोशिकाएँ** (Sertoli cells) होती हैं जो शुक्राणुओं को पोषण प्रदान करती हैं।

प्रत्येक वृषण की आन्तरिक दिशा का आधा भाग घेरता हुआ एक **एपिडिडिमिस** (Epididymis) होता है जोकि मीसोनेफ्रॉस का अवशेषी भाग होता है। एपिडिडाइमिस निम्नलिखित भागों में विभेदित होता है– **कार्पस एपिडिडिमिस** (Corpus epididymis) मध्ययी भाग, **केपट एपिडिडिमिस** (Caput epididymis) शीर्ष भाग एवं **कॉडा एपिडिडिमिस** (Cauda epididymis) पुच्छीय भाग।

प्रत्येक वृषण में शुक्रधर नलिकाएँ वृषण गुहिका के एक तन्त्र **रेटेटेस्टीज/वृषण जाल** (Rete testes) में खुलती हैं। वृषण जाल से शुक्र अपवाहिकाएँ (Vasa efferentia) निकलकर एपिडिडिमिस के शीर्ष भाग में खुलती हैं। एपिडिडिमिस के पश्च/पुच्छीय सिरे से एक शुक्र वाहिका (Vasa deferentia) निकलती है जोकि इंग्वीनल नलिका में से होकर उदर गुहिका में पहुँचती है तथा अपनी ओर की मूत्रनलिका के ऊपर से घूमकर जाती है और मूत्र मार्ग में खुलती है।

मूत्र मार्ग या मूत्रजनन नलिका नर मैथुन अंग **शिश्न** (Penis) में खुलती हैं। शिश्न एक बेलनाकार पेशीय संकुचनशील संरचना होती है। शिश्न की अधर दिशा में **स्पन्जी काय** (Corpus spongiossum) होता हैं और इसके ऊपर एक जोड़ी **रक्तधर काय** (Corpus cavernosa) होते हैं। स्पन्जी काय का अग्र भाग शिश्न का अन्तिम सिरा होता है जिसको **शिश्न मुण्ड/ग्लान्स पेनिस** (Glans penis) कहते हैं। ग्लान्स पेनिस/शिश्न मुण्ड एक ढीले त्वचा के वलन–**पर्प्यूस/शिश्न मुण्ड छद** (Perpuce) से ढका होता है।

शिश्न के अंदर एक शिश्न अस्थि कार्निवोर (Carnivore), चमगादड़ों (Bats), रोडेन्ट्स (Rodents), व्हेल (Whale) आदि प्राणियों में पायी जाती है।

उपर्युक्त संरचनाओं के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं। **प्रोस्टेट ग्रन्थि** (Prostate gland) – यह तरल स्त्रावित करती है जिसमें शुक्राणु तैरते हैं। **काउपर्स ग्रन्थि** (Cowpers gland) – इसको **बल्बो यूरेथ्रल ग्रन्थि** (Bulbo-urethral gland) भी कहते हैं। यह मूत्रमार्ग में खुलती है और एक क्षारीय द्रव स्त्रावित करती है। **पेरिनियल ग्रन्थि** (Perineal gland) गुदा (Anus) के नीचे खुलती है और गन्धजन स्त्राव स्त्रावित करती है। **मलाशय ग्रन्थि**/रेक्टल ग्रन्थि (Rectal gland) गुदा के दोनों ओर पायी जाती है।

(ब) मादा जनन अंग (Female Genital Organs)

टिप्पणी

1. **स्कॉलियोडॉन (Scoliodon)**– मादा स्कॉलियोडॉन में **जनन अंग** (Genital organs) एक जोड़ी **अण्डाशय** (Ovary), एक जोड़ी **अण्डवाहिनियाँ** (Oviducts) एवं **अवस्कर** (Cloaca) आदि होते हैं।

   अण्डाशय (Ovary)– एक जोड़ी, प्रत्येक वृक्क के सामने **मीसोवेरियम** (Mesovarium) से संलग्न देहगुहा (Body cavity) में निलम्बित रहते हैं। अण्डाशय से गोलपुटक (Follicle) बाहर की ओर उभरे रहते हैं, प्रत्येक पुटक में एक अण्डाणु (Ovum) होता है। पुटक कोशिकाओं (Follicular cells) के द्वारा मादा हॉर्मोन्स **ईस्ट्रोजेन** (Oesterogen) स्त्रावित होते हैं। प्रत्येक अण्डाशय (Ovary) से एक नलाकार ऊतकी कड़ियाँ – **एपिगोनल अंग** (Epigonal organs) निकलकर **मलाशय ग्रन्थि** (Rectal glands) से संयोजन करते हैं।

   अण्डवाहिनी (Oviduct)– प्रत्येक अण्डवाहिनी एक लम्बी, मोटी भित्ति वाली पेशीय नलिका होती है। यह वाहिनियाँ देहगुहा की पूरी लम्बाई में स्थित होती हैं। दोनों अण्डवाहिनियों के संकरे अग्र सिरे अण्डाशय के आगे **अनुप्रस्थ पट्टिका** (Septum transversum) के पास परस्पर समेकित होते हैं। प्रत्येक अण्डवाहिनी के अग्र सिरे पर एक छिद्र ऑस्टियम (Ostium) होता है। प्रत्येक अण्डवाहिनी पश्च सिरे की ओर चलती जाती है और कुछ दूरी पर फूलकर एक **कवच ग्रन्थि** (Shell gland) को बनाती है। यह अण्डाणु के चारों ओर ऐल्ब्यूमेन को स्त्रावित करती है। कवच ग्रन्थि के पश्चात् अण्डवाहिनी फैलकर एक **गर्भाशय** (Uterus) का रूप ले लेती है। दोनों ओर के गर्भाशय आपस में मिलकर योनि (Vagina) को बनाते हैं। **योनि** (Vagina) एक चौड़े छिद्र के द्वारा अवस्कर (Cloaca) में खुलती है। खुलने के स्थान पर एक कपाट (Valve) होता है।

2. **उभयचरी (Amphibian)**– मेंढक (Frog) – मादा मेंढक के वृक्क (Kidney) **ओपिस्थोनेफ्रिक** (Opisthonephric) प्रकार के होते हैं, जो कि दुहगुहा के पृष्ठीय भाग में एक लसिका साइनस (Lymph sinus) में पड़े रहते हैं। मादा मेंढक में वृक्क की संरचना नर मेंढक के समान होती है। मादा मेंढक में भी एक जोड़ी वृक्क (Kidney), एक जोड़ी यूरेटर एवं एक **अवस्कर** (Cloaca) होता है।

   मादा मेंढक के जनन तन्त्र में एक जोड़ी **अण्डाशय** (Ovary) एवं एक जोड़ी अण्डवाहिनियाँ (Oviducts) होती हैं।

   अण्डाशय (Ovary)– अनियमित आकार के दो अण्डाशय थैले समान होते हैं। अण्डाशय की गुहिका पटों (Septum) के द्वारा कक्षों में विभाजित होती है। प्रत्येक अण्डाशय एक अण्डाशय योजिनी – **मीसोवेरियम** (Mesovarium) के द्वारा पृष्ठीय उदर भित्ति से आलम्बित रहता है। प्रत्येक अण्डाशय में एक जननिक **एपिथीलियम** (Germinal epithelium) बाह्य एकल स्तर के रूप में पायी जाती है जोकि एक **सम्पुट** (Capsule) में बंद होती है।

टिप्पणी

अण्डाशय के आन्तरिक भाग में विकास की विभिन्न अवस्थाओं में **अण्डाणु** (Ovum) होते हैं। अण्डाशय का आकार एवं परिपक्व अण्डाणुओं की संख्या जननकाल (Breeding season) में अत्याधिक होती है।

प्रत्येक अण्डाशय के अग्र भाग में अनेक शाखित अंगुली समान **वसा कायें** (Fat bodies) पायी जाती हैं।

प्रत्येक अण्डाशय के पार्श्व में एक **अण्डवाहिनी** (Oviduct) होती है। यह अण्डवाहिनी, लम्बी, कुण्डलित ग्रन्थिल नलिकाएँ होती हैं। दोनों अण्डवाहिनी ग्रसिका (Oesophagus) के पार्श्व में स्थित होती हैं। ग्रसिका के पार्श्व में प्रत्येक अण्डवाहिनी एक **रोमाधि कीप** (Ciliated funnel) या **ऑस्टिम** (Ostium) के द्वारा खुलती है। रोमाभि के पीछे एक कुण्डलित मोटी भित्ति वाली अण्डवाहिनी होती है। अण्डवाहिनी पश्च सिरे पर फूलकर एक पतली भित्ति युक्त **अण्डकोष** (Ovisac) बनाती है, जोकि एक संकीर्ण छिद्र द्वारा अवस्कर में एक पैपिला पर खुलता है।

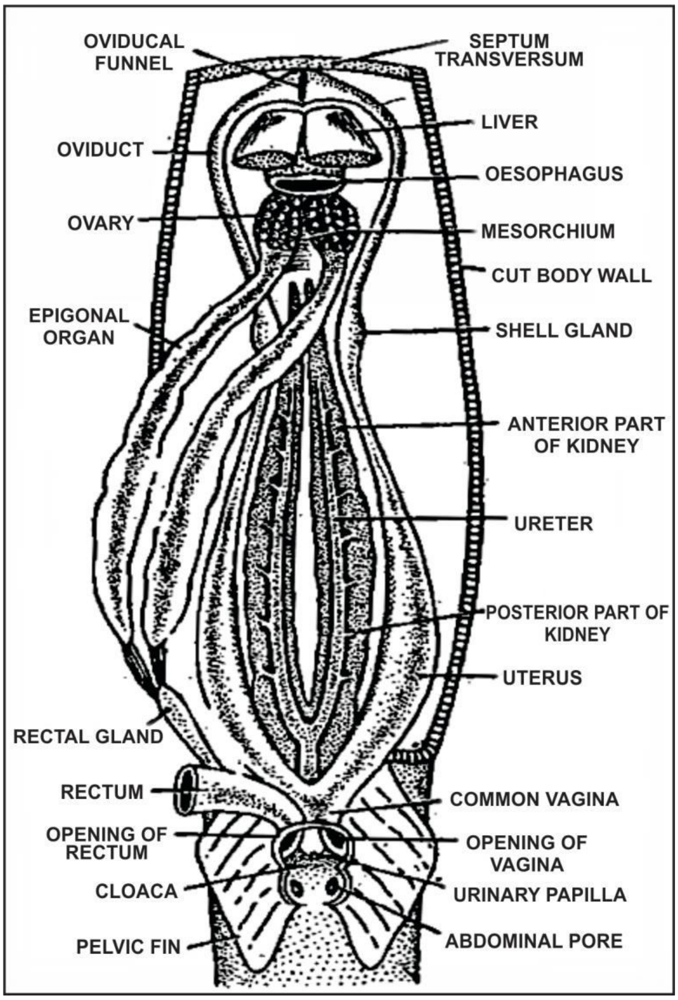

चित्र क्र. 3.30: Genital System : Female Genital Organs of Scolidon

3. **सरीसृप – (Reptiles)– यूरोमेस्टिक्स** (Uromastix) में मादा जनन अंग निम्नलिखित होते हैं– एक जोड़ी **अण्डाशय** (Ovary) एक जोड़ी **अण्डवाहिनी, गर्भाशय** (Uterus), योनि (Vagina) तथा **अवस्कर** (Cloaca)।

   अण्डाशय (Ovary)– यूरोमैस्टिक में दो थैले समान, अण्डाकार संरचना होती है। अण्डाशय उदर गुहा (Body cavity) में वृक्कों के काफी अग्र भाग में स्थित होती हैं। प्रत्येक अण्डाशय में गोल–गोल उभार पाये जाते हैं जोकि अण्डकोशिकाओं के कारण होता है। प्रत्येक अण्ड कोशिकाएँ, एक पीतक युक्त **अण्ड** (Ovum) एवं उसको घेरे हुए पुटीय कोशिकाओं से निर्मित होती है। अण्ड पुटिकाओं के फटने से उदर गुहिका में चले जाते हैं। यहाँ से अण्डाणु अण्डवाहिनियों में चले जाते हैं।

   अण्डवाहिनी (Oviduct) लम्बी पतली भित्ति वाली नलिका होती है। अण्डवाहिनी उदर गुहिका की पूरी लम्बाई में स्थित होती है। इसके अग्र सिरे पर रोमीय, पतली भित्ति वाली **कीप** (Funnel) होती है। इसके पीछे एक कुण्डलित मोटी भित्ति वाली एक ग्रन्थिल अण्डवाहिनी होती है, जोकि पीछे चलती जाती है और अवस्कर के **यूरोडियम** (Urodaeum) में खुलती है। अण्डवाहिनी वृक्क के पास फूलकर कवच ग्रन्थि (Shell gland) में विभेदित होती है। अण्डवाहिनी का अन्तिम भाग योनि (Vagina) कहलाता है।

4. **पक्षी (Birds)**– मादा कबूतर में जनन तन्त्र के अन्तर्गत एक **अण्डाशय** (Ovary), एक **अण्डवाहिनी** (Oviduct), **गर्भाशय** (Uterus) एवं **योनि** (Vagina) अंग आते हैं।

   अण्डाशय (Ovary)– मादा कबूतर में केवल एक **बायाँ अण्डाशय** (Left Ovary) होता है। दायें अण्डाशय एवं दायें अण्डवाहिनी की अनुपस्थिती या ऱ्हासित होने पर पक्षी के शरीर का भार/वजन घट जाता है, यह स्थिति उड़ने के लिए लाभप्रद है। बायाँ अण्डाशय अण्डाकार, अनियमित आकार की संरचना है जोकि बायें वृक्क/किडनी की अग्रपाली से दोहरी झिल्ली **मीसोवेरियम** (Mesovarium) के द्वारा संलग्न रहता है। जननकाल में अण्डाशय के आकार में वृध्दि हो जाती है। अण्डाशय की बाह्म सतह पर अनेक पीतकीय (Yolked) अण्डयुक्त (Ovum) अण्ड पुटिकाएँ (Ovarian follicles) उभरी होती हैं। अण्ड पुटिकाओं द्वारा मादा हॉर्मोन–ईस्ट्रोजन (Oesterogens) का स्त्रावण होता है। यह हॉर्मोन्स मादा के सहायक लैंगिक लक्षणों/अंगों को उसके व्यवहार को रूपान्तरित करते हैं। अण्डोत्सर्ग (Ovulation) विधि के द्वारा अण्डे बाहर देहगुहा में पहुँचते हैं। देहगुहा से अण्डे **ऑस्टियम** (Ostium) छिद्र के द्वारा अण्डवाहिनी (Oviduct) में पहुँच जाते हैं।

   अण्डवाहिनी (Oviduct)– कबूतर एवं पक्षियों में केवल बायीं अण्डवाहिनी पायी जाती है। यह अण्डवाहिनी लम्बी, कुण्डलित, मोटी भित्ति युक्त पेशीय संरचना होती है। यह नलिका/वाहिनी शरीर में **मीसोट्यूबेरियम**

टिप्पणी

(Mesotubarium) के द्वारा पृष्ठीय भित्ति से संलग्न रहती है और देहगुहा में आलम्बित रहती है।

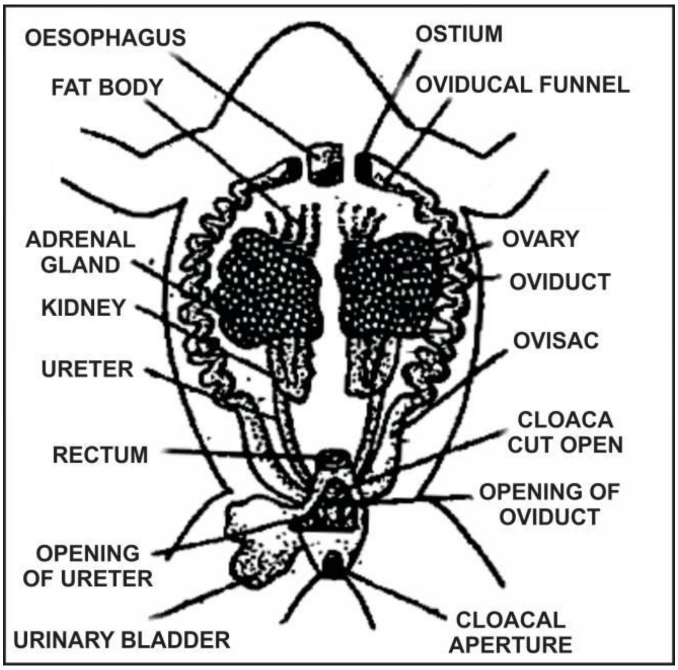

चित्र क्र. 3.31: **Genital System : Female Genital Organs of Frog**

अण्डवाहिनी का अग्र सिरा फैली हुई पेशीय, रोमीय, सीलोमी कीप (Funnel) होती है। इसके सीमान्त में रोमीय झालर होती है। कीप पीछे को निरन्तर रहती है। अगला भाग इस्थमस (Isthmus) होता है, इसकी भित्ति ऐल्ब्यूमेन (Albumen) को स्त्रावित करती है। इसके बाद का भाग कवच ग्रन्थि (Shell gland) या **गर्भाशय** (Uterus) होता है। इसमें **अण्डावरणी/निडामेण्टल ग्रन्थियाँ** (Nidamental glands) होती हैं। कैल्सीयुक्त कवच (Calcareous shell) को स्त्रावित होती हैं। अण्डवाहिनी का अन्तिम भाग पेशीय होता है। इसको योनि (Vagina) कहते हैं, इसकी श्लेष ग्रन्थियाँ, श्लेष्म स्त्रावित कर अण्डनिष्कासन में सहायता करती हैं। योनि (Vagina) अवस्कर (Cloaca) के यूरोडियम (Urodaeum) में खुलती है।

5. **स्तनी (Mammals)– खरगोश** (Rabbit) – मादा खरगोश के जनन तन्त्र के अन्तर्गत – एक जोड़ी **अण्डाशय** (Ovary), एक जोड़ी **अण्डवाहिनी** (Oviduct)/**फैलोपियन** नलिका (Fallopian tube), एक **गर्भाशय** (Uterus) एवं एक **योनि** (Vagina) तथा सहायक ग्रन्थियाँ – **बर्थोलिन्स ग्रन्थि** (Bertholin's glands) **पेरिनियल** (Perineal) एवं **मलाशयी/रेक्टल** ग्रन्थियाँ (Rectal glands) आती हैं।

अण्डाशय (Ovary)– एक जोड़ी ठोस अण्डाकार संरचना होती है। अण्डाशय **मीसोवेरियम** (Mesovarium) झिल्ली के द्वारा उदर गुहिका की पृष्ठीय भित्ति से संलग्न रहती है।

टिप्पणी

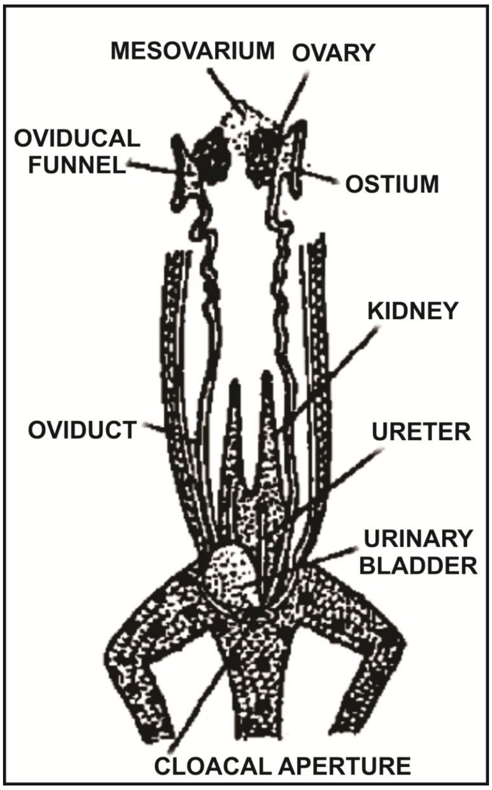

चित्र क्र. 3.32: **Genital System : Female Genital Organs of Uromastix**

प्रत्येक अण्डाशय दोहरे स्तर के खोल के द्वारा ढका होता है। बाहरी स्तर महीन चपटी स्तर – **ट्यूनिका ऐल्ब्यूजीनिया** (Tunica albuginea) होती है। इस स्तर के नीचे **जननिक एपिथीलियम** (Germinal epithelium) कोशिकाओं का स्तर होता है। अण्डाशय का शेष भाग संयोजी ऊतक (Connective tissue) का बना होता है। अण्डाशय की संयोजी ऊतक की स्तर एवं सर्पिल कोशिकाओं की स्तर दोनों मिलकर **स्ट्रोमा** (Stroma) निर्मित करते हैं। संयोजी ऊतक में रक्त केशिकाएँ, तन्त्रिका तन्तु (Nerve fibres), लसिका केशिकाओं के साथ **अण्ड पुटिकाएँ** (Ovarian follicles) विकास की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में होती हैं। अण्ड पुटिकाओं की एक केशिका वृध्दि कर **अण्ड कोशिका** (Oocyte) बनती है। अन्य कोशिकाएँ अण्ड कोशिका के चारों ओर एक कोशिकीय स्तर बनाती हैं। पुटक कोशिकाओं से मादा लैंगिक हॉर्मोन्स स्त्रावित होता है। परिपक्व पुटिकाएँ अण्डाशय के आवरण के समीप आकर फट जाती हैं तथा इनमें से **अण्डाणु** (Ovum) बाहर आकर उदरगुहा में आ जाते हैं।

अण्डवाहिनी / फैलोपियन नलिका (Fallopian tube)– फैलोपियन नलिका का स्वतन्त्र सिरा अण्डाशय के समीप स्थित होता है। यह सिरा कीप समान (Funnel like) चौड़ा होता है तथा इसे **ऑस्टियम** (Ostium) कहते हैं, इसका किनारा रोमीय झालरदार होता है। इसको **फिम्ब्रियेटेड कीप** (Fimbriated funnel) कहते हैं। इसका पश्च भाग लम्बा, कुण्डलित होता है। यह नलिका अंदर से पेशीय वलित होती है एवं कोशिकाएँ ग्रन्थित

टिप्पणी

(Glandular) एवं रोमीय (Ciliated) होती हैं। प्रत्येक दिशा की फैलोपियन नलिका पेशीय होता है। इसको यूटेरी (Uteri) कहते हैं।

गर्भाशय (Uterus)– दोनों दिशा की यूटेरी (Uteri) आपस में परस्पर जुड़कर एक चौड़ी पेशीय मोटी भित्ति वाली संरचना बनाती हैं, इसको **गर्भाशय** (Uterus) कहते हैं। यह गर्भाशय रक्त वाहिकामय (Vascularised) होता है। गर्भाशय की भित्ति का आन्तरिक स्तर **एण्डोमेट्रियम** (Endometrium) कहलाता है। गर्भाशय मलाशय के पृष्ठीय सतह पर स्थित योनि (Vagina) में खुलता है।

योनि (Vagina)– एक थैली समान संरचना होती है। इसकी भित्ति पेशीय, अति संकुचनशील (Contractile) होती है। योनि की अधर सतह पर **मूत्राशय** (Urinary bladder) स्थित होता है। योनि एवं मूत्राशय के परस्पर मिलने से एक सामान्य वेश्म बनता है। इसको **मूत्रोजनन वेश्म/साइनस** (Urinogenital sinus) या प्रघात/वेस्टीब्यूल (Vestibule) कहते हैं। मूत्रोजनन वेश्म उदर गुहिका में पीछे की ओर एक दरार समान छिद्र – **मूत्रोजनन छिद्र** (Urinogenital aperture) या वल्वा/भग (Vulva) के द्वारा बाहर की ओर खुलता है। वल्वा के किनारे/सीमान्त मांसल **ओष्ठों** (Labia) के रूप में होते हैं। वल्वा की अधर सतह पर एक अवशेषी पेशी संरचना भग शिश्न या क्लाइटोरिस (Clitoris) स्थित होता है। यह शिश्न नर खरगोश के शिश्न के समजात होता है।

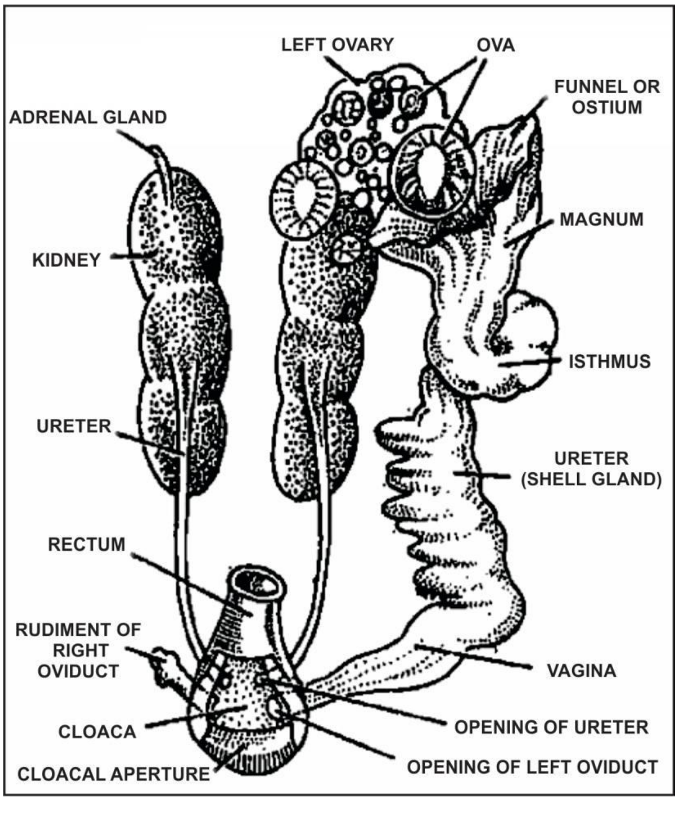

चित्र क्र. 3.33: **Genital System : Female Genital Organs of Pigeon**

बर्थोलिन्स ग्रन्थि (Bertholin's gland)– मलाशय के बीच मूत्रोजनन वेश्म (Urinogenital sinus) की सतह पर स्थित होती है। इसके द्वारा स्त्रावित द्रव मूत्रोजनन वेश्म को क्षारीय एवं लसदार बनाता है।

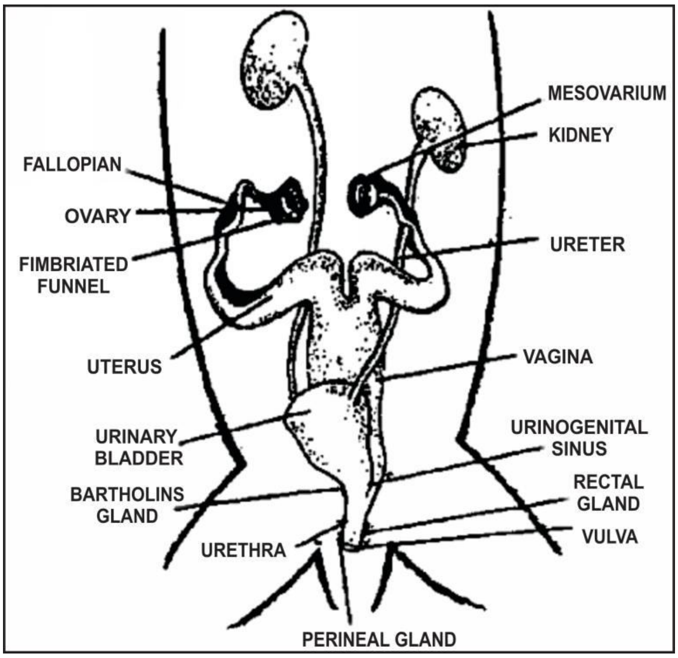

चित्र क्र. 3.34: Genital System : Female Genital Organs of Rabbit

सारणी क्र. 3.12: कशेरुकी प्राणियों के प्रजनन तन्त्र की तुलना (Comparison of Reproductive System of Vertebrate Animals)

क्र. No.	स्कॉलियोडॉन (Scoliodon)	मेंढक (Frog)	यूरोमेस्टिक्स (Uromastix)	कबूतर (Pigeon)	खरगोश (Rabbit)
1	2	3	4	5	6
1.	मछलियों – स्कॉलियोडॉन में **लैंगिक द्विरूपता** (Sexual dimorphism) पायी जाती है। नर स्कॉलियोडॉन में आलिंगक/क्लास्पर्स या गोनोपोडिया (Gonopodia) पाये जाते हैं, मादा मे नहीं।	लैंगिक द्विरूपता (Sexual dimorphism) पायी जाती है लेकिन कोई भी **बाह्य जैनिटेलिया** (External genitalia) नहीं पायी जाती है।	नर यूरोमेस्टिक्स में पश्च गुदा **कोष्ठ** (Post anal pouch) पाये जाने के कारण **लैंगिक द्विरूपता** (Sexual dimorphism) पायी जाती है।	लैंगिक द्विरूपता (Sexual dimorphism) पायी जाती है लेकिन कोई भी **बाह्य जैनिटेलिया** (External genitalia) नहीं पायी जाती है।	लैंगिक द्विरूपता (Sexual dimorphism) **बाह्य जैनेटेलिया** पायी जाती है। (External genitalia) प्रमुख लक्षण है।
2.	नर जनन तन्त्र (Male genital system) के अन्तर्गत एक	नर जनन तन्त्र (Male genital system) के अन्तर्गत एक	नर जनन तन्त्र (Male genital system) के अन्तर्गत – एक	नर जनन तन्त्र (Male genital system) के	नर जनन तन्त्र (Male genital system) के

टिप्पणी

	जोड़ी वृषण (Testes), **शुक्र अपवाहिका** (Vasa efferentia), **शुक्र वाहिका** (Vasa deferens), **युग्मित एपिडिडिमिस** (Epididymis), **युग्मित शुक्राशय** (Seminal vesicle), एक **जनन साइनस** (Genital sinus) **शुक्राणु कोष** (Sperm sac) आते है।	जोड़ी **वृषण** (Testes), शुक्र अपवाहिका (Vasa efferentia), दो **जनन वाहिनियाँ** (Genital ducts) एवं अवस्कर (Cloaca) आते है।	जोड़ी **वृषण** (Testes), दो **शुक्र वाहिकाएँ** (Vasa deferentia), दो **मैथुन अंग** (Copulatory organs) या **अर्ध शिश्न** (Hemipenis), दो **जनन छिद्र** आते (Genital apertures) हैं।	अन्तर्गत – एक जोड़ी **वृषण** (Testes), एक जोड़ी शुक्र वाहिकाएँ (Vasa deferential), दो **शुक्राशय** (Vesicual seminalis) एवं दो **नर जनन छिद्र** (Genital apertures) आते वृषण बायें की अपेक्षा आगे की ओर स्थिर होता है।	अन्तर्गत एक जोड़ी **वृषण** (Testes), दो एपिडिडिमिस (Epididymis) दो **शुक्रवाहिका** (Vasa-deferentia), एक **शिश्न** (Penis), एक **जनन छिद्र** (Genital opening) एवं कुछ सहायक ग्रन्थियाँ आते हैं।
3.	देहगुहा में **वृषण** स्थित होते हैं प्रत्येक वृषण लम्बा, ग्रन्थिल अंग होता है, यह यकृत के आधार से मलाशय/रेक्टल ग्रन्थि (Rectal gland) तक स्थित होती है। प्रत्येक **वृषण मीसोर्चियम** (Mesorchium) के द्वारा आलम्बित होता है।	वृषण (Testes) दो लम्बे, क्रीम/सफेद रंग के अंग होते हैं। यह वृक्क की अधरीय सतह से एक झिल्ली के वलन **मीसोर्चियम** (Mesorchium) से जुड़े रहते हैं।	वृषण (Testes) अण्डाकार संरचना होती है। यह शरीर की पृष्ठीय देहभित्ति से संलग्न रहते हैं। दायाँ वृषण बायें की अपेक्षा आग की ओर स्थित होता है।	वृषण बड़े अण्डाकार संरचना होती है और किडनी से अग्र सतह की अधर सतह से जुड़े रहते है। प्रत्येक वृषण के ऊपर पेरिटोनियल झिल्ली का आवरण पाया जाता है।	प्रत्येक वृषण सफेद अण्डाकार संरचना होती है। यह देहगुला में भ्रूणीय अवस्था में स्थित रहती है। वयस्क अवस्था में उदरगुहा के बाहर वृषण कोषों (Scrotal sac) में स्थित होते हैं।
4.	वृषण में असंख्य नलिकाएँ (Tubuses) होती हैं, जोकि वृषण कीं पूर्ण लम्बाई में एक केन्द्रीय नलिका में खुलती हैं और **शुक्र अपवाहिकाओं** (Vasa deferentia) में खुलती है। शुक्र वाहिका एक कुण्डलित नलिका है, यह	वृषण की अग्र नलिकाएँ **शुक्र अपवाहिकाओं** (Vasa efferentia) को बनाती हैं। यह नलिका शुक्राणुओं को वृक्क के अंदर **बिडर नलिका** (Bidder's canal) में संवाहित करती हैं। बिडर नलिका, **शुक्र वाहिका**	वृषण में कुछ अग्रनलिकाएँ, शुक्र वाहिकाएँ (Vasa efferentia) बनाती हैं। यह वाहिकाएँ वोल्फियन नलिका (Wolfian duct) से सम्बन्धित होती हैं। इस नलिका का अग्र भाग शुक्र वाहिका (Vasa	वृषण में शुक्रधर नलिकाएँ (Seminiferous tubules) मिलकर शुक्र वाहिकाएँ (Vasa efferentia) बनाती हैं जोकि छोटे एपिडिडिमिस (Epididymis) से जुड़ती हैं	स्तनी प्राणियों के वृषण में अधिक शुक्र अपवाहिकाएँ (Vasa-efferentia) होती हैं जोकि एपिडिडिमिस (Epididymis) में खुलती हैं। एपिडिडिमिस के पश्च सिरे से एक सीधी शुक्र वाहिका

	एपिडिडिमिस नलिका को बनाती है। **शुक्र** वाहिका विशेषीकृत होकर फूलती है और **शुक्राशय** (Seminal vesicle) को बनाती है। दोनों शुक्राशय एक सामान्य **जनन साइनस** (Genital sinus) में खुलते हैं। साइनस, अवस्कर में एक पैपिला पर स्थित छिद्र के द्वारा खुलता है। **शुक्राणु कोष** (Sperm sac) पाये जाते हैं।	(Vasadeferens) या आर्किनेफ्रिक वाहिनी (Archinephric duct) से जुड़ती हैं। दोनों ओर की शुक्र वाहिका फूलकर शुक्राशय (Seminal vesicle) को बनाती हैं। दोनों शुक्र वाहिका पृथक् रूप से खुलती हैं। वसा काय (Corpora adiposa) भी वृषण से सम्बन्धित रहते हैं। शुक्र कोष (Sperm sac) अनुपस्थित होते हैं। शुक्राशय शुक्राणुओं को संगृहीत करते हैं। वृक्क की अधर सतह पर **एड्रीनल/सुप्रारीनल** ग्रन्थि स्थित होती है।	deferentia) होता है जोकि कुण्डलित होकर एपिडिडिमिस (Epididymis) को बनाती हैं। फिर शुक्र वाहिका सीधी होकर अवस्कर के यूरोडियम में खुलने के पूर्व अपनी दिशा की यूरेटर (Ureter) से मिलती है। वृषण के पश्च पार्श्व सतह पर एड्रीनल ग्रन्थि (Adrenal gland) पायी जाती है।	और शुक्र वाहिका (Vasa deferentia) के रूप में यूरेटर के समानान्तर स्थित होती है। यह अवस्कर के मध्य भाग यूरोडियम में स्थित छोटी पैपिला पर छिद्र के द्वारा खुलती है।	(Vasa deferentia) निकलती है। शुक्र वाहिका उदर गुहिका में जाकर मूत्राशय (Urinary bladder) में पृथक् छिद्र के द्वारा खुलती है। एपिडिडिमिस तीन भागों में विभाजित होता है—केपट एपिडिडिमिस (Caput Epididymis) कार्पस एपिडिडिमिस (Carpus epididymis) काडा एपिडिडिमिस (Cauda epididymis)।
5.	वृषण में जो शुक्राणु (Sperms) बनते हैं वह शुक्र अपवाहिकाओं (Vasa efferentia) के द्वारा शुक्र वाहिका (Vasa deferens) में पहुँचते हैं और शुक्राशय (Seminal vesicle) में संगृहित रहते हैं। एक सामान्य जनन साइनस (Genital sinus), क्लैस्पर्स साइफन शुक्राणुओं को शरीर से बाहर निकालने में	प्रत्येक वृषण में जो शुक्राणु उत्पन्न होते हैं। शुक्र अपवाहिकाओं (Vasa efferenrtia) के द्वारा यूरेटर (Ureter) में पहुँचते हैं जहाँ से यह सामान्य जनन छिद्र (Genital aperture) के द्वारा बाहर निकलते हैं। अवस्कर में मैथुन अंग अनुपस्थित होते हैं। मिथ्या मैथुन या ऐम्प्लेक्सस	प्रत्येक वृषण में जो शुक्राणु बनते हैं वह **एपिडिडिमिस** के द्वारा शुक्रवाहिका या **वासा डेफ्रेन्शिया** (Vasa deferentia) में पहुँचते हैं। शुक्रवाहिका से शुक्राणु जनन नलिका के द्वारा अवस्कर में पहुँचते हैं। **अर्ध शिश्न** (Hemipenis) दो बहिवर्जित कोषों के रूप में पाये जाते	प्रत्येक वृषण मे जो शुक्राणु बनते हैं, वह शुक्र अपवाहिकाओं/शुक्र वाहिकाओं के द्वारा **शुक्राशय** (Vesicula seminalis) में पहुँचते हैं, जहाँ वह अस्थायी रूप से संगृहित रहते हैं। अन्त में अवस्कर छिद्र (Cloacal aperture) के द्वारा मैथुन के समय	वृषण में बने शुक्राणु **शुक्र अपवाहिका** के द्वारा एपिडिडमस में पहुँचते हैं, फिर **शुक्र वाहिका** (Vasa deferens) के द्वारा यूरेथ्रा (Urethra) में पहुँचते हैं। मैथुन के समय शिश्न के सिरे पर स्थित जनन छिद्र के द्वारा मादा की योनि में संवाहित होते

टिप्पणी

	सहायता करते हैं।	(Amplexus) पाया जाता है	हैं। यह शुक्राणुओं को मैथुन के समय बाहर निकालते हैं।	मादा के अवस्कर में संवाहित होते हैं। मैथुन अंगो का अभाव होता है। मैथुन के समय नर एवं मादा के **प्रोक्टोडियम** (Proctod-aeum) बहिवर्जित होकर मैथुन के समय आपस में रगड़ते है।	हैं। नर में प्रोस्टेट ग्रन्थि, यूरेथ्रा, शुक्राणु, रज्जु एवं यूरेटर भी पाया जाता है।
6.	आन्तरिक निषेचन (Internal fertilization) पाया जाता है।	बाह्य निषेचन (External fertilization) पाया जाता है।	आन्तरिक निषेचन पाया जाता है।	आन्तरिक निषेचन पाया जाता है।	आन्तरिक निषेचन पाया जाता है।
7.	**मादा जनन तन्त्र** (Female genital system) के अन्तर्गत एक जोड़ी **अण्डाशय** (Ovary), एक जोड़ी अण्डवाहिनी (Oviduct), 2 कवच ग्रन्थियाँ, 2 यूरेटरी (Uteri), योनि (Vagina) एवं अवस्कर (Cloaca) होते हैं।	**मादा जनन तन्त्र** के अन्तर्गत एक जोड़ी **अण्डाशय** (Ovary), एक जोड़ी **अण्डवाहिनी,** एक जोड़ी यूटेरी एवं अवस्कर आते हैं।	**मादा जनन तन्त्र** के अन्तर्गत एक जोड़ी **अण्डाशय** (Ovary), एक जोड़ी **अण्डवाहिनी, कीप** (Funnel) एक जोड़ी कीप **कवच ग्रन्थि योनि** (Vagina) एवं अवस्कर आते हैं।	**भ्रूण** में **2 अण्डाशय** (Ovary), **2 अण्डवाहिनी** पाये जाते हैं। वयस्क पक्षियों में **दायाँ** अण्डाशय, दायीं अण्डवाहिनी लुप्त हो जाती है। केवल बायाँ अण्डाशय एवं बायीं अण्डवाहिनी पायी जाती है। एक गर्भाशय, योनि एवं **अवस्कर** पाये जाते हैं।	**मादा जनन तन्त्र** के अन्तर्गत एक जोड़ी **अण्डाशय,** एक जोड़ी अण्डवाहिनी, दो यूटेरी (Uteri), **योनि** (Vagina) **भग** (Vulva) **क्लाइटोरिस** (Clitoris) एवं **काउपर्स ग्रन्थि, प्रोस्टेट ग्रन्थि,** वेसिकुला सेमाइनेलिस आते हैं।

8.	यकृत के आधार पर अण्डाशय (Ovary) स्थित होते हैं। शरीर की पृष्ठीय देहभित्ति से **मीसोवेरियम** (Mesovarium) के द्वारा आलम्बित (Suspended) होते हैं। **एपिगोनल अंग** (Epigonal organs) प्रत्येक अण्डाशय को मलाशय ग्रन्थि से जोड़ती है।	अण्डाशय अनियमित आकार के पालियुक्त (Lobed) तथा मीसोवेरियम के द्वारा आलम्बित होते हैं।	एक जोड़ी सफेद अण्डाशय, अण्डाकार, संरचनाएँ एक–दूसरे से आगे की ओर स्थित होती हैं। शरीर की पृष्ठीय देहभित्ति से **मीसोवेरियम** के द्वारा आलम्बित रहती हैं।	केवल बायाँ अण्डाशय पाया जाता है। देहगुहा के पश्च भाग में शरीर की पृष्ठीय भित्ति से **मीसोवेरियम** के द्वारा आलम्बित होती है। यह अण्डाकार अनियमित एवं गोलाकार उभार सामान्य सतह पर पाये जाते हैं।	अण्डाशय आकार में छोटे, अण्डाशय संरचना शरीर की पृष्ठीय भित्ति से उदर के पश्च क्षेत्र में कशेरुक दण्ड के दोनों ओर मीसोवेरियम से आलम्बित होती है।
9.	**अण्डवाहिनी** (Oviducts) लम्बी नलिकाएँ शरीर की पूर्ण लम्बाई में **सेप्टम ट्रान्सवर्सम** (Septum transversum) एवं अवस्कर के मध्य स्थित होती है। इनके अग्र सिरे मध्य पृष्ठीय रेखा में यकृत के पास आपस में मिलते हैं जिससे दोनों अण्डवाहिनियाँ सीलोम में एक बड़े मध्ययी अनुदैर्ध्य नलिका– **ऑस्टियम नलिका** (Ostium tube) के द्वारा खुलती है। ऑस्टियम के पीछे प्रत्येक अण्डवाहिनी पीछे की ओर जाकर **कवच ग्रन्थि** (Shell gland) बनाती है। पीछे दोनों अण्डवाहिनियाँ,	हृदय के पास प्रत्येक दिशा में एक कीप (Funnel) समान संरचना होती है जिसे **इन्फण्डीबुलम** (Infundibul-um) कहते हैं। प्रत्येक अण्डवाहिनी अधिक कुण्डलित होती है और यूरेटर से पृथक् होती है। पीछे की ओर फूलकर गर्भाशय को बनाती है। दोनों यूटेरी पीछे आपस में मिलकर अवस्कर में पृष्ठीय सिरे पर खुलती हैं।	प्रत्येक दिशा की **अण्डवाहिनी** (Oviduct) पतली भित्ति की चपटी नलिकाएँ हैं। प्रत्येक नलिका का अग्र सिरा कीप (Funnel) समान संरचना के रूप में होता है। प्रत्येक **अण्डवाहिनी** पीछे की ओर सीधी होती है और पश्च सिरे पर फूलकर **कवच ग्रन्थि** (Shell gland) को या **अण्डकोष** (Ovisac) को बनाती है। अण्डवाहिनी का अन्तिम सिरा **योनि** (Vagina) को बनाता है जो अवस्कर के मध्य भाग यूरोडियम में खुलती है।	बायीं अण्डवाहिनी लम्बी, पेशीय, विशेषीकृत एवं कुण्डलित नलिका है और कई और कई क्षेत्रों में विभाजित होती है। प्रथम भाग को कीप (Funnel) जिसमें चौड़ा मुख – **ऑस्टियम** (Ostium) होता है। इसका सीमान्त झालरदार (Fimbriated) होता है। इसके बाद का भाग ग्रन्थिल जोकि ऐल्ब्यूमेन को स्त्रावित करता है। एक छोटा नलाकार भाग इस्थमस (Isthmus) जोकि	प्रत्येक अण्डवाहिनी में एक झालरदार (Fimbriat-ed) **कीप** होती है। यह फैलेपियन नलिका से संलग्न रहती है। प्रत्येक अण्डवाहिनी का मध्य भाग गर्भाशय कहलाता है। यह चौड़ा पेशीय होता है। दोनों ओर के गर्भाशय पीछे की ओर एक नलिका **योनि** (Vagina) में खुलते हैं, निम्न गर्भाशय **सर्विक्स** (Cervix) कहलाता है। यूरेथ्रा खुलकर **प्रघात** (Vestibule) को बनाती है। यह पीछे

टिप्पणी

	पृथक्– पृथक् यूटेरी (Uteri) को बनाती है। जोकि मिलकर योनि (Vagina) को बनाती है। योनि अवस्कर में खुलती है।			गर्भाशय में खुलता है। अण्डवाहिनी का अन्तिम भाग **योनि** (Vagina) कहलाता है। यह अवस्कर के मध्य भाग यूरोडियम में खुलती है।	की ओर दरार रूपी छिद्र **भग** (Vulva) के द्वारा बाहर खुलता है। शिश्न के समजात **क्लाइटोरिस** (Clitoris) मादा में होता है। यह छड़ समान अवशेषी संरचना है। **बर्थोलिनीस** ग्रन्थि पायी जाती है जोकि एक क्षारीय ग्रन्थि पायी जाती है जोकि एक क्षारीय द्रव स्त्रावित करती है जो अम्लीयता को उदासीन करता है।
10.	परिपक्व अण्डाणु (Ova) अण्ड पुटिकाओं की कोशिकाओं के द्वारा घिरा रहता है। पुटक कोशिकाओं के फटने से अण्डाणु देहगुहा में स्वतन्त्र हो जाते हैं। ओस्टियम के द्वारा अण्डाणु अण्डवाहिनी में प्रवेश करता है। निषेचन अण्डवाहिनी के ऊपरी भाग में होता है।	अण्डाशय की भित्ति के फटने से अण्डाणु (Ovum) देहगुहा में पहुँचते हैं। अण्डवाहिनी में इन्फण्डीबुलम के द्वारा अण्डाणु पहुँचता है और ऐल्ब्यूमेन के द्वारा ढका होता है। अण्डाणु पानी में संवाहित हो जाते हैं।	अण्डाशय की भित्ति के फटने से अण्डाणु देहगुहा में स्वतन्त्र हो जाते हैं। इन्फण्डीबुलम के द्वारा अण्डाणु, अण्डवाहिनी में पहुँचते हैं और बाद में ऐल्ब्यूमेन से ढक जाते हैं। जैसे ही यह नीचे आते हैं $CaCO_3$ के आवरण से ढक जाते हैं। अण्डे थल पर दिये जाते हैं।	देहगुहा में अण्डाणु पुटिकाओं की सतह पर स्थित स्टिग्मा (Stigma) के फटने से पहुँचते हैं। इन्फण्डीबुलम के द्वारा अण्डाणु अण्डवाहिनी में प्रवेश करते हैं। पीछे की ओर अण्डवाहिनी में जाते हुए ऐल्ब्यूमेन के द्वारा ढक जाते हैं। अण्डे घोंसलों (Nests) में दिये जाते हैं।	अण्डाशय की भित्ति के फटने से अण्डाणु देहगुहा में स्वतन्त्र हो जाते हैं। इनफण्डीबुलम के द्वारा अण्डवाहिनी में प्रवेश करते हैं। भ्रूण की स्थापना गर्भाशय में होती है। शिशुओं को जन्म देते हैं।

एक–एक जोड़ीयाँ पेरीनीयल (Perineal) एवं मलाशय ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं। इसके द्वारा गन्धयुक्त द्रव स्त्रावित किया जाता है जिसके कारण नर मादा की ओर आकर्षित होता है।

3.5 स्तनियों में प्लेसन्टेशन (Placentation in Mammals)

3.5.1 प्लेसेन्टा (Placenta)

विभिन्न स्तनधारियों में भ्रुण पोषण की विधि भिन्न–भिन्न होती है। प्रोटोथीरियन या मोनोट्रीम्स (Prototherian or Monotremes) स्तनधारी जैसे– ट्रैकीग्लोसस, ऑर्नीथोरिंकस (Trachyglossus ornithorhynchus) रेप्टाइल्स एवं पक्षियों की तरह ओविपरस (oviparous) स्वभाव के होते हैं अर्थात् ये स्तनी अण्डे वाले होते हैं। इनके अण्डे बड़े, अत्याधिक योक वाले तथा कवच (shell) के अंदर बंद रहते हैं। इनमें परिवर्धित भ्रुण का पोषण अण्डे में सुरक्षित पोषक पदार्थ या योक के द्वारा ही होता है। अतः इनमें यूटेराइन गैस्टेशन का निर्माण नहीं (no uterine gestation and no formation of placenta) होता है।

इसके विपरीत अन्य सभी स्तनधारी (Metatheria and Eutherian) विविपैरस (viviparous) अर्थात् शिशु को जन्म देने वाले होते हैं। इनमें शिशुओं का परिवर्धन इण्ट्रायूटेराइन अर्थात् मादा या माँ के यूटेरस में होता है। इन स्तनधारियों के अण्डाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं तथा इनमें योक की मात्रा निषेचन के पश्चात् परिवर्धन के लिए केवल दो या तीन दिन तक के लिए ही होती है अर्थात् इनके अण्डाणु में योक बहुत ही कम मात्रा में पाया जाता है। इसलिए इनके अण्डाणु एलीथसल या माइक्रोलसिथल प्रकार के होते हैं। इसलिए वर्धन के समय विविपैरस स्तनधारियों के भ्रुण (foetus) पोषण के लिए अपना पोषक पदार्थ माता की यूटेरस या गर्भाशय की दीवार से लेते हैं, क्योंकि इनका वर्धन माता के यूटेरस के अंदर होता है। पोषण की यह विधि इन विविपैरस स्तनियों में एक विशेष अंग के निर्माण के द्वारा होती है, जिसे प्लेसेन्टा कहते हैं, जिसके द्वारा विकसित भ्रुण माता के यूटेरस की दीवार के साथ एक समीपस्थ सम्बन्ध स्थापित करता है।

प्लेसेन्टा की परिभाषा (Definition of Placenta)– प्लेसेन्टा को हम इस प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं – वह संरचना जिसके द्वारा विविपैरस स्तनियों में विकसित भ्रुण अपना पोषक पदार्थ मेटरनल यूटेराइन रुधिर (maternal uterine blood) से प्राप्त करते हैं तथा जिसका निर्माण दोनों भ्रुणीय तथा मेटरनल ऊतकों के इंटरलॉकिंग (interlocking) से होता है, प्लेसेन्टा कहलाती है। इसका जो भाग भ्रुण से बनता है, उसे फीटल प्लेसेन्टा (foetal placenta) तथा जो भाग यूटेराइन दीवार से बनता है उसे मेटरनल प्लेसेन्टा (maternal placenta) कहते हैं। अतः प्लेसेन्टा या प्लेसन्टेशन को हम इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं – यह मेटरनल यूटेराइन की दीवार के कुछ भाग तथा भ्रुण की कोरियोनिक मैम्ब्रेन या ट्रोफोब्लास्ट प्लेसेन्टा (maternal placenta) कहते हैं। कुछ या सम्पूर्ण भाग के मध्य वह घनिष्ठ सम्बन्ध (intimate relation) करता है जो माता के यूटेरस में विकसित

टिप्पणी

भ्रुण के पोषण, श्वसन एवं उत्सर्जन में सहायक होता है। सभी विविपैरस स्तनियों में भ्रुणीय कोरियोन (chorion) तथा एलेण्टॉइस (allantois) वृद्धि प्राप्त करके भ्रुण के पोषण, श्वसन तथा उत्सर्जन को संचालित करने के लिए मेटरनल यूटेराइन दीवार के ऊतक से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करते हैं।

सर्वप्रथम विलियम हार्वे (William Harvey) ने 1657 में प्लेसेन्टा को मेटरनल ऊतक का एक विस्तारित भाग समझकर परिभाषित किया था। मॉसमैन (Mossman) ने 1937 में प्लेसेन्टा को फीटल मैम्ब्रेन्स व यूटेराइन म्यूकोसा (uterine mucosa) के मध्य की एक संयुक्त संरचना बताया जिसके द्वारा विकसित भ्रुण एवं मेटरनल ऊतक के मध्य फिजियोलॉजिकल आदान–प्रदान (physiological exchange) होता है।

3.5.2 भ्रुण का इम्प्लांटेशन (Implantation of Foetus or Embryo)

विविपैरस स्तनियों में प्लेसेन्टा के निर्माण में प्रथम प्रक्रिया विकसित भ्रुण का माता के भ्रुण की अंदर की दीवार से उसका जुड़ना होता है, जिसे इम्प्लांटेशन (implantation) कहते हैं। यह प्रक्रिया भ्रुण के कोरियोनिक ट्रोफोब्लास्ट के एक विशेष भाग से छोटी–छोटी अंगुलियों के आकार के प्रवर्ध या ट्रोफोब्लास्टिक विलाई के बनने से होती है। ये विलाई मेटरनल यूटेरस की दीवार पर आकर उसके अंदर किप्टस या गड्ढों में प्रवेश करके यूटेरस की दीवार से सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं। इम्प्लांटेशन सामान्यतः निम्नलिखित तीन में से कोई भी एक प्रकार का हो सकता है–

(i) सेन्ट्रल इम्प्लांटेशन (central implantation),
(ii) कॉनसैण्ट्रिक इमप्लाण्टेशन (concentric implantation) तथा
(iii) इण्टरस्टिशियल इमप्लाण्टेशन (interstitial implantation), निम्न चित्र में दर्शाया गया है

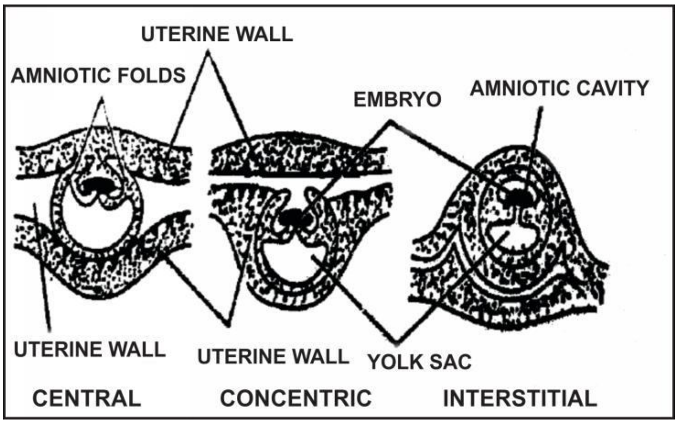

चित्र क्र. 3.35: Mode of Uterine Implantation of Foetus in Mammal

3.5.3 प्लेसेन्टा का वर्गीकरण (Classification of Placenta)

टिप्पणी

स्तनियों में प्लेसेन्टा को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं–

(अ) एक्स्ट्रा भ्रुणीय मैम्ब्रेन्स के आधार पर (Types of Placenta According to Extra - Embryonic Membranes Involved)– भ्रुणीय मैम्ब्रेन्स के आधार पर स्तनियों में प्लेसेन्टा निम्नलिखित तीन प्रकार का पाया जाता है–

1. **योक–सैक या विटैलाइन प्लेसेन्टा (Yolk and sac or Vitelline Placenta)–** इस प्रकार के प्लेसेन्टा को ऑम्फेलॉइडियन प्लेसेन्टा (Omphaloidean Indian placenta) भी कहते हैं जो अधिकांशतः मेटाथीरिया या मारसूपियल्स (Metatheria or marsupials) स्तनियों, जैसे कंगारू (Macropus) तथा ओपोसम (Didelphys) में पाया जाता है। यह योक–सैक तथा कोरियोन से बनता है। योक–सैक, जो ब्लास्टोसिस्ट (blastocyst) के निचले भाग से विकसित होता है।

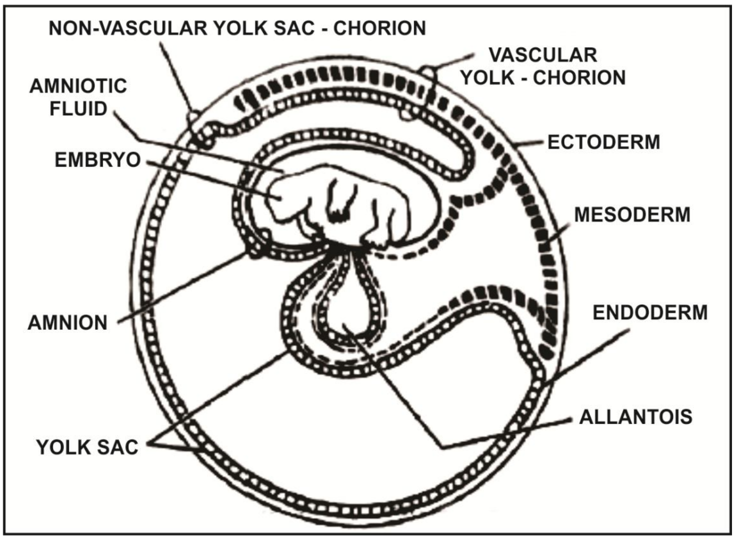

चित्र क्र. 3.36: V.S. Showing Yolk Sac and Allantoic Placenta in Mammal

अत्याधिक बड़ा तथा सामान्य रूप से सम्पूर्ण भ्रुण और ऐम्नियोन को अपने अंदर बंद किये रहता है। योक–सैक की दीवार कोरियोन या ट्रोफोब्लास्ट से सीधे सम्पर्क में रहती है जिससे ट्रोफोब्लास्टिक विलाई (trophoblastic villi) निकलकर यूटेराइन की दीवार में प्रवेश कर जाती है। योक–सैक की दीवार में अनेक विटैलाइन रुधिर वाहिनियाँ विकसित हो जाती हैं, जो यूटेरस की दीवार से भोज्य–पदार्थ का अवशोषण करके विकसित भ्रुण को प्रदान करती हैं। इस प्रकार यह प्लेसेन्टा भ्रुण को पोषित करता है। इसमें एलेण्टाइस अविकसित रहता है तथा कोरियोन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

टिप्पणी

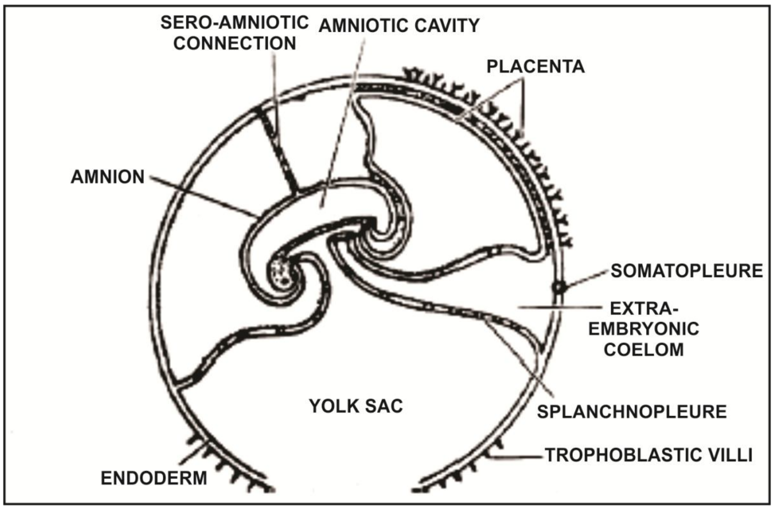

चित्र क्र. 3.37: **Yolk - Sac Placenta in *Opossum***

मेटाथीरिया स्तनियों में इस प्लेसेन्टा का सम्बन्ध यूटेरस की दीवार से काफी कमजोर या ढीला होता है। इसमें युटेराइन म्यूकोसा से यूटेराइन दूध (uterine milk) भी स्रावित होता है जिसको विकसित भ्रुण अवशोषित करता रहता है।

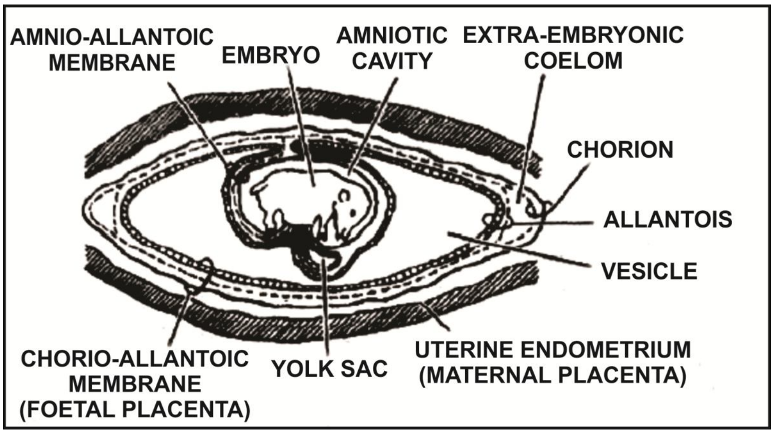

चित्र क्र. 3.38: **Allantois or Allanto and Chorionic**

2. **ऐलेण्टॉइक प्लेसेन्टा (Allantoic placenta)**– यह वास्तविक प्लेसेन्टा (true placenta) होता है जो अधिकांश यूथीयन (Eutherian) या उच्च स्तनियों में पाया जाता है तथा विकसित भ्रुण का मुख्य पोषक अंग होता है। यह ऐलेण्टॉइस तथा कोरियोन से मिलकर बनता है। ऐलेण्टॉइस एक सैक के आकार का उभार होता है जिसका विकास भ्रुण की हाइण्ड गट (hind gut) से होता है। इसका आन्तरिक स्तर एण्डोडर्म से जबकि बाहरी स्तर स्प्लेंक्निक मीसोडर्म से बना होता है। जैसे–जैसे ऐलेण्टॉइस आकार में बढ़कर एक्स्ट्रा भ्रुणीय गुहा में फैलता जाता है, इसकी स्प्लेंक्निक

मीसोडर्म कोरियोन के एक निश्चित भाग से नीचे आकर इसकी सोमेटिक मीसोडर्म से पूर्ण रूप से समेकित हो जाती है। इस स्तर या एरिया को जो ऐलेण्टॉइस तथा कोरियोन के समेकित होने से बनता है, ऐलेन्टो–कोरियन स्तर या एरिया (allanto - chorion layer or area) कहते हैं। इसमें अत्याधिक रुधिर वाहिनियाँ विकसित हो जाती हैं तथा इसके ऊपर छोटे–छोटे अंगुलियों जैसे प्रवर्ध या ट्रोफोब्लास्टिक विलाई का निर्माण हो जाता है। यूटेराइन दीवार में इनके लिए क्रिप्ट्स (crypts) या गड्ढे बन जाते है जिनमें ये विलाई प्रवेश करके ऐलेण्टॉइक प्लेसेन्टा का निर्माण करती हैं। जो पोषक पदार्थ मेटरनल रुधिर (maternal blood) ऐलेण्टॉइक प्लेसेन्टा के द्वारा अवशोषित किये जाते हैं वे विकसित भ्रुण को ऐलेण्टॉइक रुधिर वाहिनियों द्वारा प्रदान कर दिये जाते हैं।

इस प्रकार का प्लेसेन्टा यूथीरिया स्तनियों में ही पाया जाता है, किन्तु पिरेमीलस (Perameles) या बैंडीकूट (bandicoot) जो एक मेटाथीरिया स्तनी है, में भी एक प्रिमिटिव ऐलेण्टॉइक प्लेसेन्टा पाया जाता है। परन्तु इसके साथ इसमें योक–सैक प्लेसेन्टा भी पाया जाता है।

3. **कोरियोनिक प्लेसेन्टा (Chorionic placenta)**– कोरियोनिक प्लेसेन्टा मनुष्य एवं कपियों (man and apes) में पाया जाता है जो केवल केरियोन से विकसित होता है। इसमें ऐलेण्टॉइस अविकसित या अत्यन्त छोटा होता है जो अम्बिलिकल कॉर्ड (Umbilical cord) या बॉडी स्टॉक (body stalk) में धँसा रहता है। फिर भी इसकी मीसोडर्म तथा रुधिर–वाहिनियाँ कोरियन विलाई तक पहुंचकर यूटेराइन क्रिप्ट्स या गड्ढों में प्रवेश कर जाती है तथा कोरियोनिक प्लेसेन्टा को बनाने में सहायक होती है।

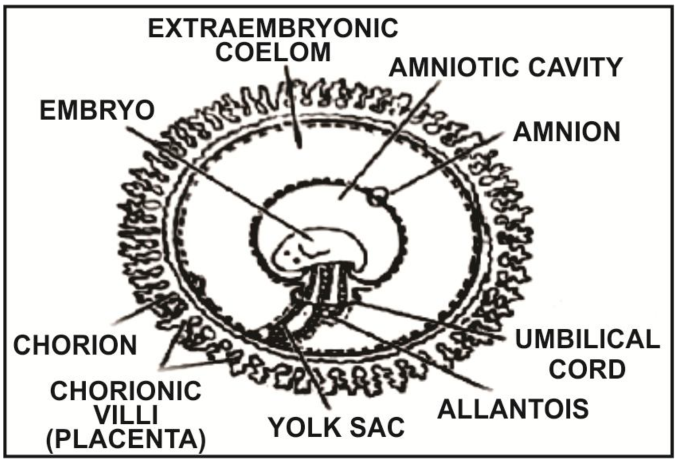

चित्र क्र. 3.39: **Chorionic Placenta of Man**

(ब) प्लेसेन्टा का आकार एवं विलाई के वितरण के आधार पर (Types of Placenta According to Shape and Distribution of Villi)– प्लेसेन्टा के आकार व पर उपस्थित विलाई के वितरण, भ्रुण तथा मेटरनल ऊतक के मध्य सम्पर्क एवं जन्म के समय प्लेसेन्टा के व्यवहार के आधार पर ऐलेण्टॉइक प्लेसेन्टा (जो वास्तविक प्लेसेन्टा होता है) को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

1. **नॉन–डैसिडुएट प्लेसेन्टा (Non-deciduate placenta)–**

   (i) इस प्रकार के ऐलेण्टॉइक प्लेसेन्टा में ट्रोफोब्लास्टिक विलाई साधारण तथा अशाखित होती हैं। यूटेराइन दीवार में क्रिप्ट्स भी अशाखित होते हैं।

   (ii) भ्रुणीय विलाई एवं यूटेराइन क्रिप्टस या दीवार के मध्य सम्बन्ध घनिष्ठ प्रकार का नहीं होता है।

   (iii) अतः शिशु के जन्म के समय भ्रुण विलाई यूटेराइन क्रिप्ट्स से बिना किसी हानि के निकल आती हैं अर्थात् शिशु के जन्म के समय यूटेराइन ऊतक का कोई भी भाग क्षतिग्रस्त नहीं होता है और न ही कोई रक्तस्त्राव होता है। इस प्रकार के प्लेसेन्टा को नॉन–डैसिडुएट प्लेसेन्टा कहते हैं। विलाई के वितरण के आधार पर यह निम्न प्रकार का होता है–

   (a) डिफ्यूज नॉन–डैसिडुएट प्लेसेन्टा (Diffuse non-deciduate placenta)– इस प्रकार के प्लेसेन्टा में विलाई ऐलेण्टो– कोरियोन की सम्पूर्ण सतह पर समान रूप से बिखरी पायी जाती है। **उदाहरण–** सुअर, घोड़ा, लीमर, व्हेल (pig, horse, lemur, whale) आदि।

   (b) कॉटिलिडनरी नॉन–डैसिडुएट प्लेसेन्टा (Cotyledonary non-deciduate placenta)– इस प्रकार के प्लेसेन्टा में ऐलेण्टो – कोरियोन की सतह पर विलाई अलग–अलग गुच्छों या कॉटिलिडन्स (cotyledons) में व्यवस्थित रहती हैं। **उदाहरण–** बकरी, भेड़, गाय, हिरन (goat, sheep, cow, deer) आदि।

   (c) इंटरमीडिएट नॉन–डैसिडुएट प्लेसेन्टा (Intermediate Non-deciduate placenta)– इसमें विलाई समूहों या कॉटिलिडन्स के साथ–साथ ऐलेण्टो–कोरियोन भी पायी जाती हैं। **उदाहरण–** ऊँट, जिराफ (camel, giraffe) आदि।

2. **डैसिडुएट प्लेसेन्टा (Deciduate placenta)–**

   (i) इस प्रकार के ऐलेण्टॉइक प्लेसेन्टा में ट्रोफोब्लास्टिक विलाई जटिल तथा शाखित होती हैं। यूटेराइन क्रिप्ट्स भी शाखित बनते हैं।

(ii) भ्रुणीय विलाई एवं यूटेराइन क्रिप्ट्स के मध्य का सम्बन्ध अत्यन्त ही घनिष्ठ होता है।

(iii) इसीलिए शिशु के जन्म के समय जब भ्रुणीय विलाई यूटेराइन क्रिप्ट्स से अलग होकर बाहर आती हैं तो वे यूटेराइन दीवार के कुछ ऊतक को भी अपने साथ खींच लाती हैं, अर्थात् शिशु के जन्म के समय इस प्रकार के प्लेसेन्टा के साथ यूटेराइन दीवार के ऊतक भी क्षतिग्रस्त होते हैं तथा साथ ही रक्तस्राव भी होता है। भ्रुण को प्लेसेन्टा के साथ बाहर आये यूटेराइन दीवार के क्षतिग्रस्त ऊतक को डैसिडुआ (Decidua) कहते है। इसीलिए इस प्रकार के प्लेसेन्टा को डैसिडुएट प्लेसेन्टा कहते हैं। यह प्लेसेन्टा भी अग्रांकित प्रकार का होता है–

(a) **जोनरी डैसिडुएट प्लेसेन्टा (Zonary deciduate placenta)**– इस प्रकार के प्लेसेन्टा में विलाई ऐलेण्टो–कोरियन की सतह पर एक या दो रिंग के आकार के जोन्स (ring like zones) जो अपूर्ण या पूर्ण दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं, में व्यवस्थित रहती हैं। **उदाहरण**– रैकून (Racoon), बिल्ली, कुत्ता, सील, हाथी (cat, dog, seal, elephant) आदि।

(b) **डिस्कॉइडल डैसिडुऐट प्लेसेन्टा (Discoidal deciduate placenta)**– इस प्रकार के प्लेसेन्टा में विलाई ऐलेण्टो–कोरियोन की डॉर्सल सतह पर एक सर्कुलर डिस्क या प्लेट के रूप में व्यवस्थित रहती हैं। **उदाहरण**– इन्सैक्टिवोरस, चमगादड़, रोडेंट्स (चूहा आदि), खरगोश, भालू (insectivores, bats, rodent like rat and mouse, rabbit, bear) आदि।

(c) **मेटाडिस्कॉइडल डैसिडुऐट प्लेसेन्टा (Metadiscoidal deciduate placenta)**– इस प्रकार के प्लेसेन्टा में विलाई ऐलेन्टी–कोरियन सतह पर पहले तो बिखरी हुई व्यवस्थित होती हैं, किन्तु बाद में वे एक या दो डिस्क्स या प्लेट्स में सीमित होकर व्यवस्थित हो जाती हैं। **उदाहरण**– मनुष्य में मोनोडिस्कॉइडल तथा बन्दरों एवं कपियों में बाइडिस्कॉइडल।

टिप्पणी

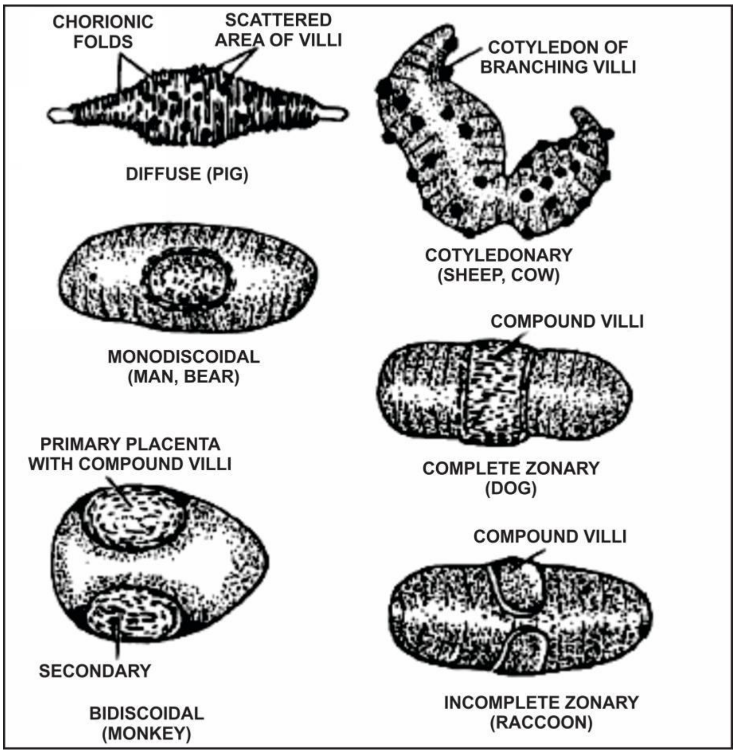

चित्र क्र. 3.40: Classification of Placenta According to Distribution of Villi: (i) Diffuse Pig, (ii) Cotyledonary-sheep, (iii) Zonary-dog, (iv) Discoidal-bear, (v) Metadiscoidal and Monkey

3. **कॉण्ट्रा–डैसिडुएट प्लेसेन्टा (Contra and deciduate placenta)**– इस प्रकार के प्लेसेन्टा में भ्रुणीयक्षविलाई यूटेराइन क्रिप्ट्स में इतनी घनिष्ठता में जुड़ी रहती हैं कि शिशु के जन्म के समय भ्रुणीय विलाई का कुछ भाग यूटेराइन क्रिप्ट्स में ही छूट जाता है जो बाद में मेटरनल ल्यूकोसाइट्स (maternal leucocytes) द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। **उदाहरण**– बैण्डिकूट या पिरैमीलीस (Bandicoot or Perameles), मोल (Mole), टाल्पा (Talpa)।

(क) हिस्टोलॉजी के आधार पर (Histological Types of Placenta)– प्लेसेन्टा में भ्रुणीय एवं मेटरनल रुधिर आपस में मिश्रित नहीं होते हैं। इन दोनों रुधिर स्ट्रीम्स (blood streams) को पृथक् रखने के लिए प्लेसेन्टा में निम्नलिखित छः ऊतक अवरोधक (tisue barriers) या मैम्ब्रेन्स कार्य करती हैं–

1. Endothelium of maternal blood vessels
2. Uterine connective tissue
3. Uterine epithelium
4. Chorionic epithelium or trophoblastic ectoderm
5. Chorionic and allantoic mesoderm and
6. Endothelium of foetal blood vessels

टिप्पणी

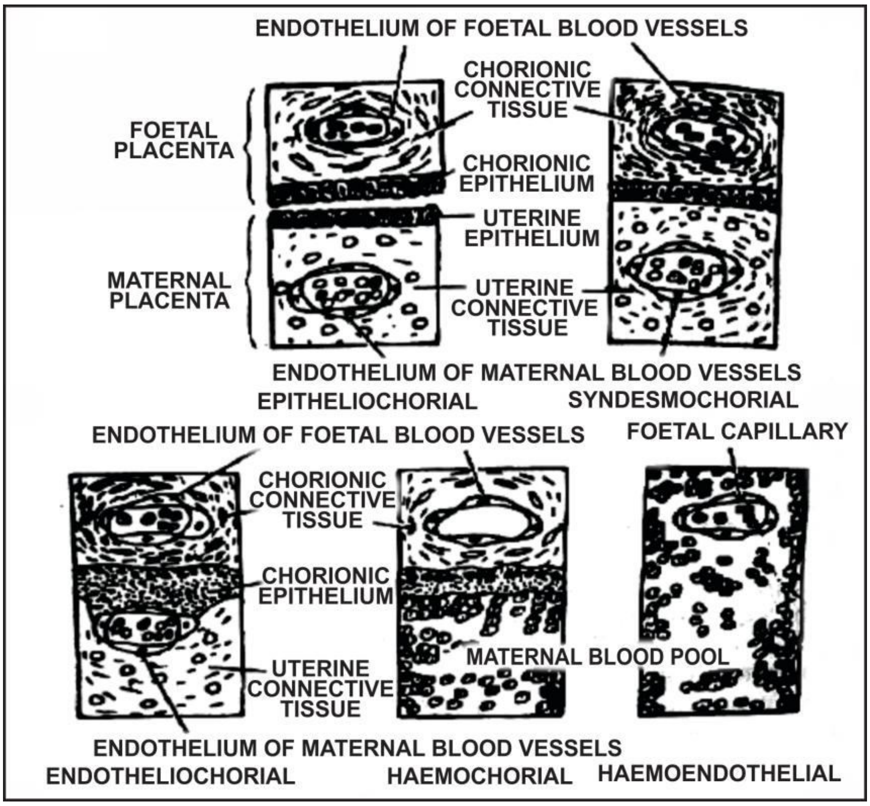

चित्र क्र. 3.41: Histological Types of Placenta in Mammals

फीटल एवं मेटरनल स्ट्रीम्स के मध्य आवश्यक पदार्थों का आदान–प्रदान विसरण (diffusion) के द्वारा इन्हीं ऊतक अवरोधों के द्वारा होता है। प्लेसेन्टा की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए फीटल एवं मेटरनल रुधिर स्ट्रीम्स के मध्य उपस्थित ऊतक अवरोधों की संख्या को कम करना आवश्यक हो जाता है जो स्वयं प्लेसेन्टा में प्राकृतिक रूप से घटित होता है। भिन्न–भिन्न स्तनियों में इन ऊतक अवरोधों की संख्या को कम करना आवश्यक हो जाता है ग्रास (Grosser) के अनुसार निम्नलिखित पाँच प्रकार के हिस्टोलॉजिकल प्लेसेन्टा स्तनियों में पाये जाते हैं–

1. **एपिथीलियो–कोरियल प्लेसेन्टा (Epithelio-chorial type of placenta)**– हिस्टोलॉजिकली सबसे साधारण प्रकार का प्लेसेन्टा होता है जिसमें सभी छः ऊतक अवरोधक (tissue barriers) उपस्थित होते है। स्तानियों में इसे सबसे प्रिमिटिव प्लेसेन्टा माना जाता है। **उदाहरण**– सुअर, लीमर्स (Pigs, Lemurs) आदि।
2. **सिनडैस्मो–कोरियल प्लेसेन्टा (Syndesmo-chorial placenta)**– इसमें केवल यूटेराइन एपिथीलयम का न्हास होता है जिसके कोरियोनिक एपिथीलियम या ट्रोफोब्लास्टिक एक्टोडर्म यूटेराइन कनैक्टिव ऊतक (connective tissues) के सीधे सम्पर्क में आ जाती है। **उदाहरण**– पशु, भेड़ (cattle, sheep) आदि।

टिप्पणी

3. **एण्डोथीलियो–कोरियल प्लेसेन्टा (Endothelio-chorial placenta)**– इसमें यूटेराइन एपिथीलियम के साथ–साथ यूटेराइन कनैक्टिव ऊतक का भी ऱ्हास हो जाता है जिसके फलस्वरूप भ्रुणीय कोरियोनिक एपिथीलियम मेटरनल रुधिर वाहिनियों की एण्डोथीलियल स्तर के सीधे सम्पर्क में आ जाती हैं। **उदाहरण**– मांसाहारी स्तनी जैसे– बिल्ली, कुत्ता बंज, (dogs) आदि।

4. **हीमो–कोरियल प्लेसेन्टा (Haemo–chorial placenta)**– इस प्रकार के प्लेसेन्टा में मेटरनल तक का एपिथीलियम एवं कनैक्टिव ऊतक के साथ–साथ रुधिर वाहिनियों की दीवार की एण्डोथीलियम का भी ऱ्हास हो जाता है जिससे कोरियोनिक एपिथीलियम तथा भ्रुणीय की विलाई की रुधिर वाहिनियाँ मेटरनल रुधिर साइनसस (blood sinuses) डूबा रहता है। **उदाहरण**– मनुष्य, कपि, बन्दर (man, apes, monkeys) तथा कुछ कोटभक्षी एव कुछ रोडेंट्स (some insectivores and rodents) स्तनी।

5. **हीमो–एण्डोथीलियल प्लेसेन्टा (Haemo-endothelial placenta)**– इस प्रकार के प्लेसेन्टा में मेटरनल ऊतक के साथ–साथ कोरियोनिक एपिथीलियम तथा मीसोडर्म या कनैक्टिव ऊतक का भी ऱ्हास हो जाता है। जिससे धारणीय रुधिर वाहिनियाँ सीधी मेटरनल रुधिर साइनस के सम्पर्क में आ जाती हैं। **उदाहरण**– चूहे, गिनी–पिग, खरगोश (rats, guinea-pig, rabbit) आदि।

3.5.4 प्लेसेन्टा की कार्यिकी एवं कार्य (Physiology and Functions of Placenta)

प्लेसेण्टेशन के अन्तर्गत भ्रुणीय एवं मेटरनल रुधिर–परिवहनों को एक–दूसरे के इतने समीप लाया जाता है कि भ्रुण को पोषण, श्वसन एवं उत्सर्जन क्रिया सुचारु रूप से संचालित हो सकें। हालांकि, इन दोनों के रूधिरधर–परिवहनों का मिश्रण नहीं होता है, अर्थात् भ्रुण का रुधिर माता के रुधिर में या माता का रुधिर भ्रुण में संचारित नहीं होता। दोनों के रुधिरों के मध्य आवश्यक पदार्थों का आदान–प्रदान विसरण के द्वारा ऊतक अवरोधों माध्यम से होता है जो वास्तव में एक अल्ट्रा–फिल्ट्रेशन (ultra-filtration) का कार्य करते हैं। केवल वांछित पदार्थ ही प्लेसेन्टा के द्वारा भ्रुण में विसरित हो पाते हैं।

इसलिए प्लेसेन्टा के निम्नलिखित मुख्य कार्य होते हैं–

1. यह विकसित भ्रुण का पोषण करता है।
2. भ्रुण के श्वसन में सहायता करता है अर्थात् भ्रुण को ऑक्सीजन पहुँचाता है।
3. प्लेसेन्टा भ्रुण के लिए एक उत्सर्जी अंग की तरह कार्य करता है। भ्रुण से बने नाइट्रोजीनस उत्सर्जी पदार्थ प्लेसेन्टा के कनैक्टिव ऊतकों में एकत्रित होते रहते हैं, जहाँ से ये मेटरनल रुधिर में वितरित होते रहते हैं।

4. प्लेसेन्टा भ्रुण को मेटरनल यूटेराइन दीवार से चिपकाने का कार्य करता है।
5. प्लेसेन्टा भ्रुण को मेटरनल ऊतक के मध्य एक ऊतक अवरोध बनकर भ्रुण की रक्षा करता है तथा साथ ही यह वांछित आवश्यक पदार्थों को भ्रुण में जाने देता है।
6. यह ग्लूकोज को ग्लाइकोजन या संचित भोजन के रूप में एकत्रित करके भ्रुण के लिए यकृत की तरह कार्य करता रहता है।
7. यह प्रोटीन के भ्रुण में जाने से पहले उनका पाचन करता है।
8.. यह माता की ओवरी (ovaries) को उत्तेजित करके एक प्रकार का हॉरमोन स्रावित करवाता है। जो गर्भावस्था (pregnancy) को बनाये रखता है।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

24. मनुष्य में किस प्रकार का प्लेसेन्टा पाया जाता है?

(अ) हीमो–एण्डोथीलियल (ब) हीमो–फोरियल

(स) सिनडैस्मो–कोरियल (द) एपिथीलियो–कोरियल।

25. खरगोश में किस प्रकार का प्लेसेन्टा पाया जाता है?

(अ) कॉण्ट्रा–डेसिडुएट (ब) नॉन–डैसिडएट

(स) सिनडैस्मो–कोरियल (द) एपिथीलियो–कोरियल।

26. कॉर्नीवोरस स्तनियों में प्लेसण्न्टा होता है?

(अ) डिस्कॉइडल (ब) जोनरी–डैसिडुएट

(स) मेटा–डिस्कॉइडल (द) कोई नहीं।

27. वास्तविक प्लेसेन्टा होता है?

(अ) योक–सैक प्लेसेन्टा (ब) ऐम्नियोन

(स) ऐलेण्टॉइक (द) कोई नहीं।

3.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.	(अ)	10.	(द)	19.	(ब)
2.	(ब)	11.	(अ)	20.	(ब)
3.	(स)	12.	(द)	21.	(द)
4.	(स)	13.	(अ)	22.	(स)
5.	(द)	14.	(ब)	23.	(स)
6.	(ब)	15.	(स)	24.	(ब)

7.	(स)	16.	(अ)	25.	(स)
8.	(द)	17.	(ब)	26.	(ब)
9.	(द)	18.	(अ)	27.	(स)

टिप्पणी

3.7 सारांश (Summary)

शारीरिक कार्यों के लिए ऊर्जा की अति आवश्यकता होती है। ऊर्जा के लिए जन्तु भोजन ग्रहण करता है। भोजन मुखद्वार से प्रवेश कर आहार नाल तक ही पहुँचता है, जहाँ उसका रासायनिक क्रियाओं द्वारा पाचन होता है तथा अपचित भोजन का मल के रूप में मलद्वार द्वारा त्याग कर दिया जाता है। ऊर्जा के लिए, आहार नाल में भोजन को पचाने मात्र से कोई लाभ नहीं, जब तक कि इन पचे हुए पोषक पदार्थों को आहार नाल से शरीर की सभी कोशिकाओं में पहुँचाने की व्यवस्था न हो, क्योंकि ऑक्सीजन की उपस्थिति में पोषक पदार्थों से ऊर्जा का उत्पादन शरीर की कोशिकाओं में ही होता है। अतः जन्तु–शरीर में आवश्यक पोषक पदार्थों को शरीर कोशिकाओं तक ले जाने के लिए नलिकाओं से बना एक तन्त्र होता है। अतः जन्तु–शरीर में आवश्यक पोषक पदार्थों को शरीर कोशिकाओं तक ले जाने के लिए नलिकाओं से बना एक तन्त्र होता है। जिसे परिसंचरण तन्त्र (circulatory system) कहते हैं।

3.8 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **कशेरुकी (Vertebrates)**: ऐसे प्राणी जिनके शरीर में कई खण्डों वाला मेरुदण्ड पाया जाता हैं। इन्हे रीढ़ वाले जन्तु भी कहते हैं।
- **परिसंचरण तन्त्र (Circulatory system)**: परिसंचरण तन्त्र (Circulatory System) जन्तु–शरीर में आवश्यक पोषक पदार्थों को शरीर की कोशिकाओं तक ले जाने के लिए नलिकाओं से बना एक तन्त्र होता है। शरीर एवं वातावरण के बीच तथा शरीर के विभिन्न ऊतकों के बीच पदार्थों का निरन्तर रासायनिक आदान प्रदान इसी तन्त्र के माध्यम से होता है।
- **तन्त्रिका तन्त्र (Nervous system)**: जिस तन्त्र के द्वारा विभिन्न अंगों का नियन्त्रण और अंगों और वातावरण में सामन्जस्य स्थापित होता हैं उसे तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) कहते हैं। तन्त्रिका तन्त्र में मस्तिष्क, मेरुरज्जु और इनमें निकलने वाली तन्त्रिकाओं की गणना की जाती है।
- **ऐओर्टिक आर्चेस (Aortic arches)**: महाधमनी (Aorta) शरीर की सबसे बड़ी तथा मुख्य धमनी है, जो हृदय के बाएँ निलय (ventricle) से आरंभ होती है तथा जिसमें से ऑक्सीजन मिश्रित रक्त सारे शरीर की ऊतकों में ऑक्सीजन का संचरण करता है।
- **प्लेसेन्टेशन (Placentation)**: वह संरचना जिसके द्वारा विविपैरस स्तनियों में विकसित भ्रूण अपना पोषण मेटरनल यूटेराइन रूधिर (maternal uterine

blood) से प्राप्त करते हैं तथा जिसका निर्माण दोनों भ्रूणीय तथा मेटरनल ऊतकों के इटरलॉकिंग (interlocking) से होता है, प्लेसेन्टा कहलाती है।

3.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Question and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. ऐओर्टिक आर्च क्या है? कशेरुकी प्राणियों मे इनके विकास को दर्शाते हुए भलीभाँति नामांकित चित्र बनाइए। वर्णन की आवश्यकता नहीं है।
2. रेप्टाइल्स, एवीज एवं स्तनधारियों में छः भ्रूणीय आर्चेज के रूपान्तरण का अनुरेखन तथा अन्तिम भविष्य का वर्णन करिए।
3. वर्टीब्रेट सीरीज में ऐओर्टिक आर्चेज के विकास पर निबन्ध लिखिए।
4. कशेरुकियों में धमनी चापों (ऐओर्टिक आर्चेज) का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
5. वर्टीब्रेट्स के विभिन्न वर्गों में हृदय का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
6. वर्टीब्रेट्स में हृदय के विकास का वर्णन कीजिए।
7. रेप्टाइल, पक्षी एवं स्तनधारी के हृदय का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
8. रेप्टाइल के हृदय का वर्णन कीजिए तथा यह बताइए कि यह मछली एवं ऐम्फिबिया के हृदय से किस प्रकार अधिक विकसित है?
9. पृष्ठवंशियों में ऐओर्टिक आर्चेज के विकास का चित्रात्मक परिदृश्य दीजिए।
10. स्कॉलिओडॉन, मेंढक एवं शशक के हृदय का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
11. उभयचर, पक्षियों एवं रेप्टाइल्स में पाये जाने वाले हृदय का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
12. रेप्टीलिया एवं स्तनधारी के हृदय की तुलना कीजिए।
13. मछली, मेंढक एवं खरगोश के हृदय का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
14. पक्षी एवं स्तनधारी के धमनी चाप की तुलना कीजिए।
15. कशेरुकियों के हृदय का केवल चित्रों द्वारा वर्णन कीजिए।
16. मेंढक और स्तनधारी के हृदय की संरचना का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
17. कशेरुक प्राणियों के धमनी चापों की नियति का विवरण दीजिए।
18. विभिन्न कशेरुकियों में मिलने वाली ऐओर्टिक आर्चेज का वर्णन कीजिए।
19. मत्स्य, उभयचरी, सरीसृप एवं पक्षियों की ऐओर्टिक आर्चेज का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
20. मत्स्य, उभयचरी, सरीसृप एवं पक्षी के हृदय के वर्टीकल काटा का स्वच्छ नामांकित चित्र बनाइए।

टिप्पणी

21. पृष्ठवंशियों में हृदय की उत्पत्ति एवं विकास का केवल चित्रात्मक परिदृश्य दीजिए।
22. सरीसृप तथा पक्षी की ऐओर्टिक आर्चेज की तुलना कीजिए।
23. कशेरुकियों में महाधमनी चापों के विकास को स्पष्ट कीजिए।
24. मेढ़क का हृदय मछली के हृदय से किन–किन लक्षणों में भिन्न है? वर्णन कीजिए।
25. स्कॉलिओडॉन के हृदय का संक्षिप्त वर्णन कीजिए तथा स्पष्ट कीजिए कि इसे वीनस हृदय क्यों कहते हैं।
26. रेप्टाइल के हृदय के मुख्य लक्षणों का वर्णन कीजिए।
27. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ कीजिए–
    (i) ब्रैंकियल या वीनस हृदय।
    (ii) डक्टस बोटेलाई।
    (iii) फोरामैन ऑफ पैनिजी।
    (iv) ट्रंकस आर्टिरियोसस।
    (v) डक्टस कैरोटिकस।
    (vi) साइनस वेनोसस।
    (vii) स्तनधारियों के हृदय की संरचना।
    (viii) हृदय की उत्पत्ति।
    (ix) कशेरुकियों में धमनी चाप।
    (x) पक्षी का हृदय।
    (xi) एम्फिबिया का हृदय।
    (xii) स्तनी का हृदय।
28. यूरोमैस्टिक्स के हृदय की सममितार्धी काट का नामांकित चित्र बनाइए (विवरण की आवश्यकता नहीं)।
29. शिरा हृदय, संक्रमण (ट्रान्जिशनल) हृदय तथा दोहरा परिपथ हृदय को परिभाषित कीजिए।
30. एक सरीसृप, पक्षी एवं स्तनधारी के हृदय का नामांकित चित्र बनाइए।
31. मछलियों में ऐओर्टिक आर्चेज का वर्णन कीजिए।
32. मैण्डिबुलर आर्च का वर्टीब्रेट्स के भिन्न–भिन्न वर्गों में रूपान्तरण का वर्णन कीजिए।
33. पक्षी एवं स्तनधारियों में ऐओर्टिक आर्च के रूपों का वर्णन कीजिए।
34. उभयचर, सरीसृप तथा स्तनधारी में पाये जाने वाली धमनी चापों के नामांकित चित्र बनाइए (विवरण की आवश्यकता नहीं)।
35. धमनी चाप पर टिप्पणी लिखिए।

36. खरगोश के हृदय की लम्बवत् काट का चित्र बनाइए।
37. मछलियों के हृदय की रचना को समझाइए।
38. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) मीसोनेफ्रिक वृक्क
    (ii) आर्कीनेफ्रिक वृक्क
    (iii) ओपिस्थोनेफ्रिक वृक्क
    (iv) मेटानेफ्रास वृक्क।
39. खरगोश के उत्सर्जी तन्त्र का नामांकित चित्र दीजिए।
40. कबूतर, यूरोमैस्टिक्स के उत्सर्जी तन्त्र का नामांकित चित्र दीजिए।
41. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) बिडर कैनाल
    (ii) यूरिनिफेरस ट्यूबूल्स।
42. स्कॉलियोडॉन एवं मेंढक की किडनी के मुख्य अन्तरों का वर्णन कीजिए।
43. कबूतर एवं खरगोश की किडनी के अनुप्रस्थ काट का नामांकित चित्र दिजिए।
44. नर एवं मादा स्कॉलियोडॉन के उत्सर्जी तन्त्र का नामांकित चित्र दिजिए।
45. संक्षिप्त टिप्पणी लिखो–
    (i) मैथुन अंग
    (ii) एपिडिडिमिस
    (iii) सहायक जनन ग्रन्थियाँ
    (iv) मेंढक के नर जनन अंग
46. यूरोमैस्टिक्स एवं वृषण की तुलना संक्षिप्त में कीजिए।
47. खरगोश के मूत्रजनन अंगों का नामांकित चित्र बनाइए।
48. स्कॉलियोडॉन, मेंढक एवं यूरोमैस्टिक्स के नर जनन तन्त्र का नामांकित चित्र बनाइए।
49. कबूतर के नर एवं मादा जनन अंगों का नामांकित वर्णन कीजिए।
50. खरगोश के अण्डाशय का सचित्र वर्णन कीजिए।
51. यूरोमैस्टिक्स एवं खरगोश के नर जनन अंगों का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
52. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
    (i) टैलेनसिफेलॉन (Telencephalon)
    (ii) डाइनसिफेलॉन (Diencephalon)
    (iii) मस्तिष्क की गुहाएँ (Ventricles of brain)
    (iv) पिट्यूटरी बॉडी (Pituitary body)

टिप्पणी

(v) पैराइटल बॉडी (Parietal body)

(vi) मेंढक का मस्तिष्क

(vii) पक्षियों के मस्तिष्क की संरचना

(viii) तन्त्रिका कोशिका

(ix) स्तनी के मस्तिष्क की संरचना।

53. स्कालिओडॉन के मस्तिष्क का नामांकित चित्र बनाइए।
54. लीपस के मस्तिष्क की रचना को सचित्र समझाइए।
55. स्तनी के मस्तिष्क का केवल नामांकित चित्र दीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. उभयचर, सरीसृप, पक्षी एवं स्तनियों के मस्तिष्क के स्वच्छ नामांकित चित्र बनाइए। (वर्णन की आवश्यकता नहीं हैं)।
2. लिजार्ड के मस्तिष्क का वर्णन कीजिए। इसकी तुलना पक्षी एवं स्तनधारी कें मस्तिष्क से कीजिए।
3. कशेरुकियों में मस्तिष्क का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
4. मेंढक और खरगोश के मस्तिष्क की तुलना कीजिए।
5. सरीसृप, पक्षी तथा स्तनीय प्राणियों में मस्तिष्क का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
6. स्तनियों के मस्तिष्क की संरचना का वर्णन कीजिए एवं उसकी तुलना पक्षी के मस्तिष्क से कीजिए।
7. मछली के मस्तिष्क का नामांकित चित्र (पृष्ठ एवं अधर दृश्य) बनाइए।
8. मछलियों, रेप्टाइल्स एवं पक्षियों में पाये जाने वाले मस्तिष्क का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
9. कशेरुकियों के मस्तिष्क पर तुलनात्मक लेख लिखिए।
10. निम्नलिखित में से किन्हीं दो के अग्रमस्तिष्क के विभिन्न भागों का सचित्र तुलनात्मक विवरण दीजिए–

    (i) स्कोलियोडॉन

    (ii) यूरोमैस्टिक्स

    (iii) कबूतर।
11. उभयचरी एवं सरीसृप के मस्तिष्क के पार्श्व–दृश्य का केवल नामांकित चित्र बनाइए।
12. सरीसृप तथा पक्षी के मस्तिष्क की रचना का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
13. पक्षी एवं स्तनधारियों (खरगोश) के मस्तिष्क की तुलना कीजिए।
14. कशेरुक प्राणियों में किडनी के विकास का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।

15. कशेरुक प्राणियों में प्रोमींजो एवं मेटानेफ्रोस किडनी, किडनीज के वर्धन का वर्णन कीजिए।
16. कशेरुक प्राणियों में वृक्क के प्रकार एवं उनकी विवेचना कीजिए।
17. खरगोश में उत्सर्जी तन्त्र का वर्णन कीजिए एवं इसकी तुलना युरोमैस्टिक्स से कीजिए।
18. मछली, मेंढक एवं यूरोमैस्टिक में उत्सर्जी तन्त्र का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
19. यूरोमैस्टिक्स में उत्सर्जी तन्त्र का वर्णन कीजिए।
20. कबूतर में उत्सर्जी तन्त्र का वर्णन कीजिए।
21. स्कॉलियोडॉन के उत्सर्जी तन्त्र का वर्णन कीजिए।
22. पक्षियों एवं स्तनी प्राणियों में मादा जनन अंगों का तुलनात्मक वर्णन करों।
23. सरीसृप, पक्षियों एवं स्तनी प्राणियों में नर प्रजनन तन्त्र का तुलनात्मक वर्णन करो।
24. कशेरुक प्राणियों में मादा प्रजनन अंगों का वर्णन करो।
25. कशेरुक प्राणियों में नर प्रजनन अंगों का वर्णन करो।
26. मछली, सरीसृप एवं पक्षी वर्ग के प्राणियों में प्रजनन अंगों का वर्णन कीजिए।
27. यूरोमैस्टिक्स में जनन अंगों का वर्णन कीजिए तथा खरगोश से इसकी तुलना कीजिए।
28. यूरोमैस्टिक्स एवं कबूतर के नर जनन अंगों का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
29. खरगोश में जनन अंगों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
30. कशेरुक प्राणियों में मादा जनन अंगों में सारणी के द्वारा तुलनात्मक वर्णन कीजिए।

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Cytology – C.B. Powar
2. Principle of Physiology & Anatomy – Tor-Tora
3. Animal Physiology – Goyal & Sastry
4. Animal Physiology and Biochemistry – Eckert and Ramelils
5. Animal Physiology and Biochemistry – Dr. K.V. Sastry

इकाई 4 जीवन की उत्पत्ति एवं विकासवाद (Origin of Life and Theory of Evolution)

संरचना (Structure)

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 जीवन की उत्पत्ति
  4.2.1 प्राचीन परिकल्पना
  4.2.2 आधुनिक परिकल्पना
  4.2.3 प्रारम्भिक पृथ्वी तथा वायुमण्डल का निर्माण
  4.2.4 वायरस रूपी जीवन के विकास–क्रम में इनका स्थान
  4.2.5 जीवन की उत्पत्ति में वायरस का महत्व
4.3 लैमार्कवाद एवं डार्विनवाद
  4.3.1 जैव–विकास का संक्षिप्त इतिहास
  4.3.2 जैव–विकास के सिद्धान्त
  4.3.3 (अ) डार्विनवाद
  4.3.4 (ब) प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त या डार्विनवाद
  4.3.5 (क) डार्विनवाद की आलोचना
  4.3.6. (ड) नव–डार्विनवाद
  4.3.7 लैमार्कवाद तथा डार्विनवाद की तुलना
  4.3.8 जननद्रव्य सिद्धान्त
  4.3.9 जनन चयन सिद्धान्त
  4.3.10 जननद्रव्य सिद्धान्त की आपत्ति
4.4 विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त उत्परिवर्तन, विभिन्नता, पृथक्करण एवं जाति उद्भवन
  4.4.1 विकास का आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त
  4.4.2 प्रभावी कारकों के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार
  4.4.3 विभिन्नताएँ
  4.4.4 विभिन्नताओं के प्रकार
  4.4.5 पृथक्करण
  4.4.6 पृथक्करण के लाभ
  4.4.7 जाति उद्भवन
4.5 अनुकूलन एवं अनुकृति
  4.5.1 अनुकूलन
4.6 अनुकृति/अनुहरण
  4.6.1 रक्षात्मक अनुकृति/रक्षात्मक अनुहरण
  4.6.2 आक्रमणात्मक अनुकृति
  4.6.3 मृत्यु का बहाना
  4.6.4 बेटेसियन तथा मुलेरियन अनुकृति
4.7 सूक्ष्म, दीर्घ एवं वृहत् विकास
  4.7.1 माइक्रो या सूक्ष्म विकास
  4.7.2 मैक्रो–इवोल्यूशन या दीर्घ विकास
  4.7.3 मैगा–इवोल्यूशन या वृहत – विकास
4.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.9 सारांश

4.10 मुख्य शब्दावली
4.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.12 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय (Introduction)

'जीव' अथवा 'जीवन' क्या है तथा इसका रूप क्या था? पृथ्वी पर सर्वप्रथम प्राणी कौन थे, अथवा कैसे थे? इसी प्रकार के अनेक प्रश्न मनुष्य की परिकल्पना शक्ति को समय–समय पर झकझोरते आए हैं। पुरातन काल से वैज्ञानिक एवं दार्शनिक यह जानने का प्रयास करते आ रहे हैं कि– सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड का और ब्रम्हाण्ड से हमारी पृथ्वी का उद्गम और फिर पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति कब, कैसे और कहाँ हुई तथा पहाडों की उँची–उँची चोटियों पर सागर की अथाह गहराइयों में, भूमि, जल और हवा में हर जगह पाए जानेवाले जीव–जन्तुओं की विभिन्न प्रकार की जातियाँ कैसे बनी? इन पहेलियों को सुलझाने तथा बूझने के लिए मनुष्य सदा से ही अपने विचार प्रकट करता आया है। हर देश का हर धर्म के इतिहास में इन प्रश्नों को अलग–अलग परिकल्पनाओं से समझाया गया है। इन परिकल्पनाओं को उस युग में भले ही मान्यता मिली हो परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में इनको केवल नासमझी की बातें कहते हैं।

जीव विज्ञान के इन दो उपर्युक्त पहलुओं के अध्ययन को मेयर ने इवोल्यूशनरी बायलॉजी या बायोइवोल्यूशन का नाम दिया।

विकासवाद शब्द का पहली बार प्रयोग हर्बर्ट स्पेन्सर ने किया था। विकासवाद को अगर देखा जाए तो वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में क्रमिक परिवर्तन है। दूसरे शब्दों में, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जैविक विकास आनुवंशिक परिवर्तन है। डार्विन कें अनुसार "विकास को संशोधनों के साथ वंश के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। कई पीढ़ियों से लगातार विकास के परिणामस्वरूप नए किस्मों एवं प्रजातियों में विकास हो सकते हैं। इसी प्रकार पर्यावरणीय विकास में परिवर्तन में विकास न हो सकने पर वह प्रजाति विलुप्त होने के लिए नेतृत्व कर सकती है।

पिछली सदी में जैव–विकास की अनेक विचारधाराएँ प्रकाशित की गयीं तथा उन्हें मान्यता भी मिली परन्तु उन्हें प्राकृतिक चयन की आनुवंशिकी, मेंण्डलवाद, जीवसंख्या, आनुवंशिकी और प्रजाति संकल्पना के आलोक में पुनः विश्लेषित किया गया। इनके परिणामस्वरूप जैव–विकास का आधुनिक संश्लेषण सिद्धान्त की अवधारणा विकसित हुई।

यह संकल्पना प्रमुख रूप से जूलियन हक्सले द्वारा दी गयी है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'जैव–विकास' आधुनिक संश्लेषण जीस में इस अवधारणा को उत्परिवर्तन, विभिन्नताएँ, विलगन तथा प्राकृतिक चयन के आधार पर समझाया है।

प्रत्येक जीवधारी अपने आप को आनुवंशिक हार्मोनल, न्यूरोल या ऐक्सपोनेन्शली के सन्दर्भ में अलग–अलग तरीके से व्यवहार करके कैसे एक दूसरे से भिन्न होते हैं। प्रत्येक जीव में अपने आप को वातावरण के अनुसार ढालने और परिवर्तित करने की

विशेषता होती है और ये विशेषता होती है उनकी अनुकूलन प्रकृति। किसी भी जीव को जीवित रहने के लिए परिवर्तित वातावरण के अनुरूप अपने आप को बनाने की क्षमता प्रदान होती है अनुकूलन प्रकृति से। अनुकुलन प्रकृति प्रत्येक जीवधारी की विशिष्ट लक्षण या विशेषता होती है जो कि परिवर्तित वातावरण/माध्यम में प्राणी को अपने सशक्त या उपयुक्त बनाने के लिए उपयुक्त होता है।

जीव जन्तुओं द्वारा प्राणियों अथवा प्राकृतिक वस्तुओं के रंग, रूप, आकार, संरचना को इस प्रकार अपनाया जाना कि वे शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सके तथा आसानी से शिकार कर सकें अनुकृति (Mimicry) कहलाता है।

मॉडर्न सिन्थैटिक थ्योरी ऑफ इवोलूशन (theory) के अनुसार म्यूटेशन्स तथा वैरिऐशन्स जैव–विकास के मुख्य आधार या कारण हैं जिससे जीवों में नयी जातियों की उत्पत्ति होती है। गोल्डश्मिट ने 1940 में जैव–विकास के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन किया। उनके अनुसार अत्यन्त ही सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं जिनके आधार पर जीव विकास के अन्तर्गत होने वाले प्रमुख परिवर्तनों की व्याख्या नहीं की जा सकती है। उन्होंने इसी आधार पर जैव–विकास को दो मुख्य भागों में विभक्त किया–

(i) **माइक्रो या सूक्ष्म विकास**– इसके अन्तर्गत उप–जातियाँ अथवा भौगोलिक प्रजातियों का विकास आता है, तथा

(ii) **मैक्रो या दीर्घ विकास**– इसके अन्तर्गत जातियों जेनेरा तथा अन्य उच्च श्रेणियों का विकास आता है। इसके अतिरिक्त सन् 1953 में सिम्पसन (Simpson) ने एक अन्य पारिभाषिक शब्द मैगा–इवोलूशन का प्रयोग किया, जो एक बड़े परिमाण का विकास की प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत फेमिलीज (Families), ऑर्डर (Order), क्लास (Class) तथा फाइला का विकास आता है।

4.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप निम्न कार्य कर सकेंगे–

- जीवन की उत्पत्ति से सम्बन्धीत आधुनिक परिकल्पनाएँ जैसे प्राकृतिवाद, जैव–रासायनिक उद्भव आदि की व्याख्या कर सकेंगे।
- पृथ्वी एवं जीवन की उत्पत्ति के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे।
- जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में रासायनिक विकास के पहलुओं की विवेचना कर सकेंगें।
- आदि जीवन में पोषण विधियों के विकास के बारे में चर्चा कर सकेंगे।
- जैव–विकास के सिद्धान्तों जैसे लैमार्कवाद, डार्विनवाद आदि के बारे में विस्तृत रूप से जान सकेंगे।
- प्राकृतिक चरण के सिद्धान्त को परिभाषित कर सकेंगे।
- जननद्रव्य तथा जनन चयन सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना कर सकेंगे।

- विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे।
- आधुनिक जैव–विकास से सम्बन्धीत नियमों का उल्लेख कर चर्चा कर सकेंगे।
- उत्परिवर्तन एवं उसके प्रकारों का जैव–विकास पर प्रभाव स्पष्ट कर सकेंगे।
- 'विभिन्नताएँ विकास का एक आधार भूत कारक है' कि व्याख्या कर सकेंगे।
- 'पृथक्करण जैव–विकास का महत्वपूर्ण कारक है' पर चर्चा कर सकेंगे।
- अनुकूलन एवं जैव–विकास में इसके महत्व को पारिभाषित कर सकेंगे।
- अनुकूलन एवं वातावरणीय कारकों का जीवों पर होने वाले प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।
- अनुभूति/अनुहरण की जीवों में उपयोगिता एवं प्रभाव को विस्तृत रूप से समझा सकेंगे।
- अनुकृति के कारण एवं उसके विकास पर प्रकाश डाल सकेंगे।

4.2 जीवन की उत्पत्ति (Origin of Life)

विज्ञान के क्षेत्र में हमने अधिक या सराहनीय प्रगति की है हम चाँद पर जा चुके हैं और उस पर बसने के सपने देख रहे हैं। परन्तु एक मौलिक प्रश्न जीवन की उत्पत्ति कैसे हुई? का संतोषजनक उत्तर अभी तक नहीं खोज पाये। इस दिशा में काफी प्रयास किये गये हैं और प्रयोगों तथा तथ्यों पर आधारित नई परिकल्पना प्रस्तुत की गयी हैं। ये चार मूल विचारधाराओं में से किसी एक में रखी जा सकती है–

1. जीवन की उत्पत्ति ऐसी अनोखी व परा–प्रकृति घटना का परिणाम है जो कि भौतिक विज्ञान तथा रसायन विज्ञान की से परे की बात है।
2. जीवन की उत्पत्ति का सर्वप्रथम कारण, अवस्थाओं में स्वतः ही किन्हीं अजीवित पदार्थों से हुई।
3. जीवन भौतिक पदार्थों की अपेक्षा अनादि काल से है या इसका कोई प्रारम्भ नहीं। पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ–साथ इसकी उत्पत्ति हो गई थी।
4. पृथ्वी पर जीवन कुछ दिन एवं सतत से चलने वाली रासायनिक क्रिया के अभिषटन का परिणाम है।

इन चारों प्रकार की परिकल्पनाओं के बारे में विभिन्न प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता रहा है। समय की दृष्टि से कुछ परिकल्पना प्राचीन तथा अविश्वसनीय मानी जाती हैं जबकि कुछ आधुनिक परिकल्पनाओं के पक्ष में ठोस प्रमाण भी जुटाये गये हैं। इन परिकल्पनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

4.2.1 प्राचीन परिकल्पना (Ancient Hypothesis)

टिप्पणी

ये परिकल्पना मुख्यतः तीन है—

1. **विशिष्ट सृष्टि परिकल्पना (Hypothesis of Special Creation)**— इस परिकल्पना के अनुसार किसी अलौलिक एवं ईश्वरीय शक्ति ने विभिन्न प्रकार के जीवों को सृष्टि क्रमबद्ध तरीके से अलग—अलग की है इसलिये जितनी जीव जातियाँ आज है वे सब प्रारम्भ में भी थीं। बाइबिल के अनुसार पूर्ण संसार की सृष्टि इसी प्रकार 6 प्राकृतिक दिनों में पूरी कर दी गई थी। पहले दिन आकाश तथा पृथ्वी का निर्माण, दूसरे दिन इन दोनों का पृथक्करण, तीसरे दिन पृथ्वी पर पेड—पौधों का सृजन, चौथे दिन ग्रहों, तथा नक्षत्रों का प्रादुर्भाव, पाँचवे दिन टिड्डियों एंव् मछलियों की उत्पत्ति तथा छठे दिन मानव को बनाया गया।

   आधुनिक युग में इस परिकल्पना का कोई महत्व नहीं है और इसको एक अंधविश्वास जनक विचारधारा की संज्ञा दी गई है।

2. **स्वतः जनन परिकल्पना (Hypothesis of Spontaneous Generation)**— इस परिकल्पना के समर्थकों के अनुसार पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों से स्वतः ही हो गयी थी। जान रे (Jahn Ray), नीधम (Needham), अरस्तू (Aristotle) तथा उसके बाद अनेक वैज्ञानिकों ने इस परिकल्पना का समर्थन किया।

   तेरहवीं शताब्दी से पहले लोगों का विश्वास था कि बत्तखों (Geese) की उत्पत्ति फर—वृक्षों (fig trees) से हुई जो फिर समुद्र के पानी के सम्पर्क में आकर तैरने लगे। बत्तखों की इस प्रकार बत्तख—वृक्षों (goose tree) से उत्पत्ति की यह धारणा लगभग 250 वर्ष तक लोगों के मस्तिष्क में छायी रही। कुछ लोग इस बात में विश्वास करते थे कि कुछ वृक्ष, जो कि तरबूज जैसा फल देते थे, अपने अंदर से पूर्ण विकसित मेमने (lamb) की उत्पत्ति करते थे। जान रे तथा नीधम आदि वैज्ञानिकों का मत था कि मक्खी, मच्छर आदि सड़ी गली वस्तुओं से, चूहे मनुष्य के पसीने से और भी अन्य कई जैसे मेंढक, टोड तालाब की कीचड़ पर सूर्य की किरणों के पश्चात् स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं।

   विलियम हार्वे (William Harvey) (मध्य सत्रहवीं शताब्दी), फ्रांसिस्को रेडी (Francisco Redi, 1668) तथा लुई पाश्चर (Louis Pasteur, 1860) ने प्रयोगों द्वारा इसे निराधार व असत्य करार दिया।

टिप्पणी

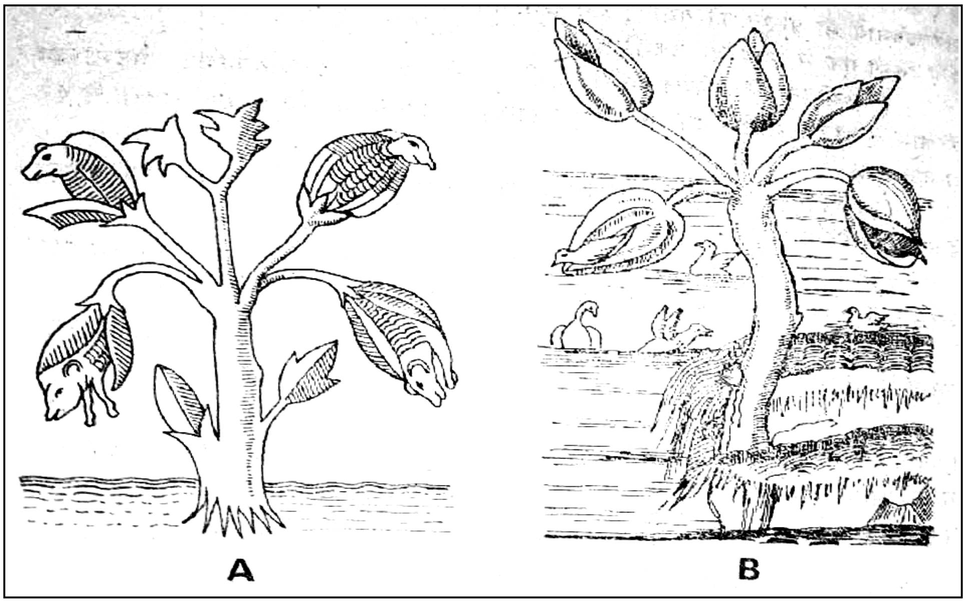

चित्र क्र. 4.1: **Legends Supporting Spontaneous Generation: A-Geese were Produced from Certain Trees; B-Vegetable Lambs were produced from Melonlike Fruits**

रेडी का प्रयोग (Redi's Experiment)– रेडी ने अपने इस प्रयोग में मांस को उबालकर उसके कई टुकड़े कर दिये तथा प्रत्येक टुकड़े को उसने अलग–अलग चौड़े मुंह वाले जार में रखा। पहले जार को उसने खुला छोड़ दिया, दूसरे व तीसरे जार को उसने क्रमशः महीन कपड़े व पार्चमेंट पेपर से बांध दिया। कुछ दिन पश्चात उसने देखा कि पहले जार में बहुत से दीमक तथा दूसरे जार में कुछ दीमक तथा तीसरे जार में कोई भी अतिरिक्त जीव नहीं पाया गया। ऐसा इसलिए हुआ कि पहले जार में मक्खियाँ प्रवेश कर गयीं और वहाँ पर उन्होंने अण्डे दे दिये, परन्तु तीसरे जार में मक्खियाँ प्रविष्ट न हो सकी, इसलिये दीमक नहीं पाये गये। रेडी के इस प्रयोग के बाद लोगों का विश्वास स्वतः जनन के इस सिद्धान्त से उठ गया।

लुई पाश्चर का प्रयोग (Pasteur's Experiment)– लुई पाश्चर ने भी रेडी के प्रयोगों की पुष्टि की, किन्तु उन्होंने एक नया प्रयोग प्रस्तुत किया। पाश्चर ने एक फ्लास्क में मांस के शोरबे को उबाला और साथ ही प्लास्क की गर्दन को गर्म करके 'S' के आकार में मोड़ दिया। नली के सिरे पर बारीक छेद छूटा रहा, शोरबे को उबालने के पश्चात् नली का छेद रूई से बंद कर दिया। जिससे बाहर की वायु शोरबे के सम्पर्क में रहे। कुछ दिनों बाद निरीक्षण करने पर पता लगा कि न तो शोरबा खराब हुआ है और न कोई जीव ही उत्पन्न हुआ। कारण यह था कि प्लास्टिक में वायु तो प्रवेश करती थी, परन्तु वायु में उपस्थित जीवाणु, धूल आदि मुड़ी नली में रुक जाते थे। नली के तोड़ देने पर तमाम जीवाणु तथा सूक्ष्म जीव शोरबे में पैदा हो गये। इस प्रकार पाश्चर ने सिद्ध कर दिया कि स्वतः जनन

सिद्धान्त मिथ्या है और इस प्रकार के प्रयोग द्वारा स्वतः जनन सिद्धान्त अन्तिम रूप में ढह गया।

टिप्पणी

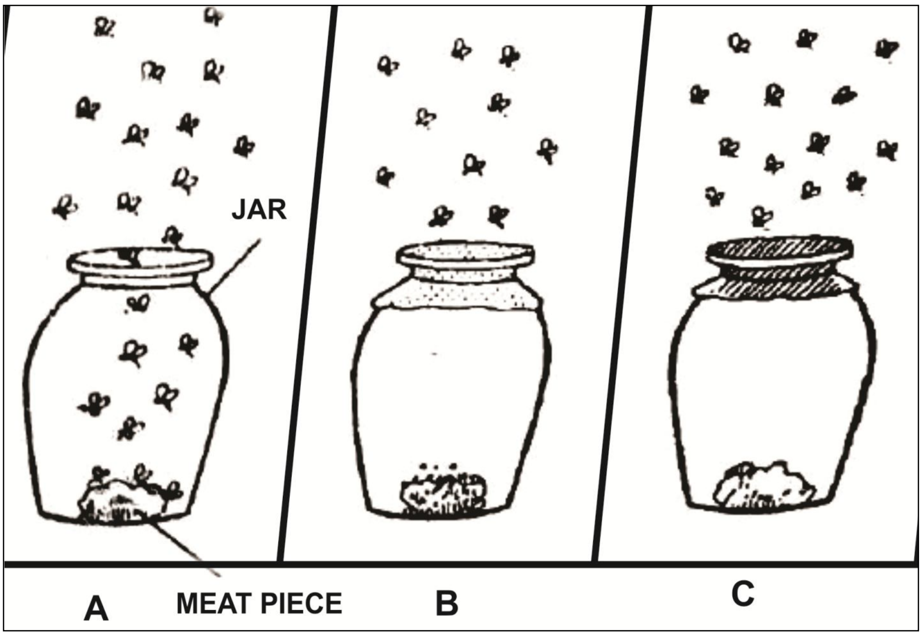

चित्र क्र. 4.2: Redi's Controlled Experiments-A-Jar Uncovered; B-Jar Mouth Tied with Cloth; C-Jar Mouth Tied with Parchment Paper

3. **जीवन की अनन्तकालीनता की परिकल्पना (Hypothesis of Eternity of Life)**– मलाशय, अण्डवाहिनी तथा शुक्राणु वाहिनी के छिद्रों का आरेख भविष्य मे भी ऐसा ही रहेगा। यह क्रम अपरिवर्तनीय है अर्थात् जीवन अनादि है अनन्त है, परन्तु पृथ्वी की उत्पत्ति से सम्बन्धीत जानकारी के मिलने एवं जीवन में हो रहे परिवर्तनों पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि जीवन की अनन्तकालीनता की परिकल्पना रूप से संदेहास्पद तथा मिथ्या है।

आधुनिक परिकल्पनाओं में सबसे अधिक मान्य परिकल्पना निम्नलिखित मानी जाती है–

4.2.2 आधुनिक परिकल्पना (Modern Hypothesis)

1. जटिल भौतिक, रासायनिक तथा बाद में जैव–रासायनिक क्रियाओं द्वारा जीवन उत्पत्ति का सिद्धान्त (Theory of origin of Life as a Result of Complex Progressive Physical, Chemical and later on Biochemical Reactions)

इस परिकल्पना को आपेरिनवाद (Oparinism) की संज्ञा भी दी जा सकती क्योंकि ए.आई. ओपेरिन (A.I. Oparin) नामक रूसी वैज्ञानिक ने 1920 के आस–पास तथा बाद में उस महान् वैज्ञानिक के समर्थकों व शिष्यों ने जीवन की उत्पत्ति से सम्बन्धीत मामले पर कई विचार–विमर्श, खोजबीन व प्रयोग किये।

पाश्चर के प्रयोगों से वास्तव में वैज्ञानिकों को जीवन उत्पत्ति के विषय में एक नये ढंग से सोचने की प्रेरणा मिली। टी.एच. हक्सले (T.H. Huxley, 1969) तथा जान टिंडल (John Tyndall, 1874) ने इस दिशा में सर्वप्रथम कार्य किया। जे.वी.एस. हेल्डेन (J.V.S. Haldane), जो कि बाद में भारतीय नागरिक भी बन गये थे, का भी कार्य काफी सराहनीय रहा।

जिस समय जीवन की उत्पत्ति से सम्बन्धीत ये जटिल भौतिक रसायनिक (physico-chemical) क्रिया हो रही थी, उस समय पृथ्वी का प्रारम्भिक वातावरण कैसा था? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

अब इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि कई जटिल भू–नाभिकीय तथा तापीय क्रिया द्वारा पृथ्वी और भी अन्य ग्रहों की भांति हाइड्रोजन (H) हीलियम (He), कार्बन (C), नाइट्रोजन (N), ऑक्सीजन (O) तथा निऑन (Ne), नामक छः मूल तत्वों का निर्माण हुआ (काल सागन, 1971)। इन तत्वों को ऐहिक संगठन के मूल तत्व कहा गया। यह माना जाता है कि इन मूल तत्वों के पारस्परिक मिलने से पहले मीथेन (CH_4), अमोनिया (NH_4) तथा पानी (H_2O) की उत्पत्ति हुई। बाद में कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2), डाइनाइट्रोजन (N_2) तथा अणु ऑक्सीजन (O) का निर्माण हुआ।

आपेरिन (Oparin) के मतानुसार पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति निम्नलिखित चरणों में क्रमिक तरीके से हुई।

4.2.3 प्रारम्भिक पृथ्वी तथा वायुमण्डल का निर्माण (Origin of Primitive Earth and Atmosphere)

लगभग 3 अरब साल पहले धरती की सतह का तापमान बहुत अधिक था तथा उस पर उपस्थित अनेक ज्वालामुखी निरन्तर फटते रहते थे और गर्म लावा निकलता रहता था। इस गर्म सतह पर उपस्थित विभिन्न रासायनिक तत्वों में कार्बन मौजूद थी। इसने लोहा, निकल आदि तत्वों के साथ मिलकर कार्बाइड का निर्माण किया।

इन कार्बाइड (carbides) नामक यौगिकों ने भूपटल के निर्माण में भाग लिया। इस समय पृथ्वी के वायुमण्डल में ऑक्सीजन नहीं थी, परन्तु नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, अमोनिया, मिथेन व साइनोजन का निर्माण हो चुका था। बाद में ऑक्सीजन का निर्माण हुआ था। पृथ्वी के ताप के धीरे–धीरे कम होने के साथ–साथ जल अणुओं (हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के मिलने से) का निर्माण वाष्प के रूप में हुआ। पृथ्वी का ताप कम होने पर जल–वाष्प पानी के रूप में बरस पड़ी जिससे समस्त पृथ्वी ने सागर का रूप ले लिया और बाद में महाद्वीपों का निर्माण हुआ–

(i) **अमोनिया तथा मिथेन का निर्माण (Origin of Ammonia and Methane)**– अब तक भी हाइड्रोजन ही सर्वाधिक क्रियाशील तत्व था। पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से हाइड्रोजन कार्बन के साथ मिली तो मिथेन नामक गैस, नाइट्रोजन के साथ मिली तो अमोनिया गैस का प्राकृतिक परिसंयोजन हुआ। बाद में मिथेन से ईथेन, प्रोपेन, ब्यूटेन व हेक्सेन नामक

टिप्पणी

महत्वपूर्ण यौगिकों (ग्लिसरॉल, वसीय अम्ल, शर्करा, अमीनो एसिड, पिरामिड तथा प्यूरीन आदि) का निर्माण हुआ फिर मिथाइल, एल्कोहल व इथाइल अल्कोहल बने। बाद में जटिल यौगिकों का निर्माण हुआ।

(ii) पृथ्वी तल पर समुद्रों, नदियों, झीलों तथा घाटियों का निर्माण (Formation of Oceans, Rivers, Lakes and Valleys on Earth Surface)– पृथ्वी के वायुमण्डल के ताप के कम होने पर जब जल–वाष्प जल के रूप में परिवर्तित होकर पृथ्वी पर बरसा तो तब भी सतह का ताप काफी अधिक था, अतः यह जल पुनः वाष्प बनकर वायुमण्डल में मिल गया, पुनः बरसा। लाखों वर्षों तक यही क्रम चलता रहा। बाद में पृथ्वी का ताप थोड़ा कम हुआ। थाची जल खेतों (water bodies) जैसे समुद्र, झील, नदी आदि का निर्माण हुआ। कुछ सतह पर उठी रह गई और कुछ नीची। इससे घाटी, पर्वत तथा भूमि के अन्य भाग बने। इस समय भी पृथ्वी पर काफी उथल–पुथल (भूकंप, ज्वालामुखी का फटना, बाढ़ आदि) होती रहती थी।

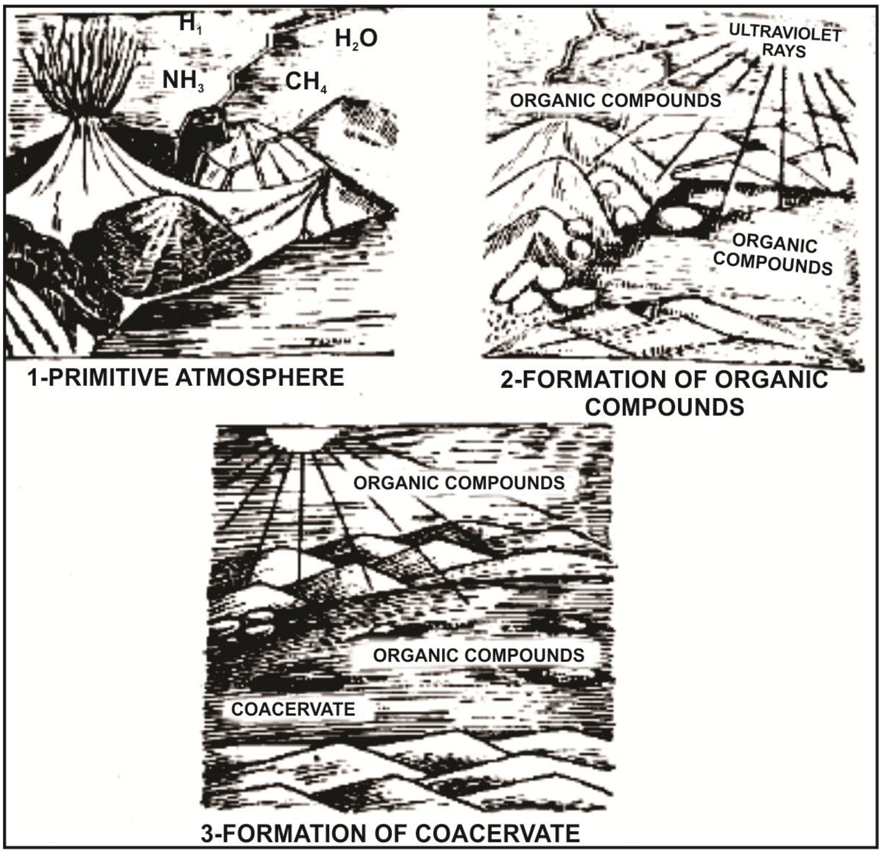

चित्र क्र. 4.3: **Sequence of Diagrams showing how Primitive Life (Coacervate) might have Originated from the Primitive Atmosphere**

(iii) अमीनों अम्ल का निर्माण (Formation of Amino Acids)– अमीनों अम्ल, प्रोटीन (महत्वपूर्ण जैविक यौगिक) के निर्माण की मूल इकाई है। अतः प्रकृति में इनका निर्माण सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। उपरोक्त विधि से

निर्मित कार्बाइड तथा वायुमण्डल के सरल पदार्थों की काफी मात्रा सागर में घुल गई। इन सरल पदार्थों, जल की ऑक्सीजन में परस्पर जटिल रासायनिक क्रियायें होने लगीं। सागर जल का अत्याधिक ताप, पराबैंगनी किरणों का प्रभाव बिजली का कौंधना तथा सागर जल का हिलना–डुलना (ज्वालामुखी के फटने से उत्पन्न कम्पन के कारण) आदि ऐसे अनेक कारण थे, जिनके प्रभाव स्वरूप कार्बनिक अम्लों, एल्डीहाइड्स तथा कीटोन आदि का निर्माण तो हुआ ही, साथ–साथ अमोनिया के इनके साथ मिलने से अनेक प्रकार के अमीनो अम्ल का निर्माण हुआ।

ओपेरिन द्वारा प्रतिपादित अमीनो अम्ल निर्माण की प्रक्रिया को अमेरीकी वैज्ञानिक स्टैनले मिलर (Stanley Miller, 1953) ने अपने एक प्रयोग द्वारा सत्यसिद्ध किया।

मिलर का प्रयोग (Miller's Experiment)– जैसा कि चित्र में दिखाया गया है मिलर ने एक विशेष प्रकार की बोतल में हाइड्रोजन, जल–वाष्प, अमोनिया तथा मिथेन गैसों का मिश्रण भरा।

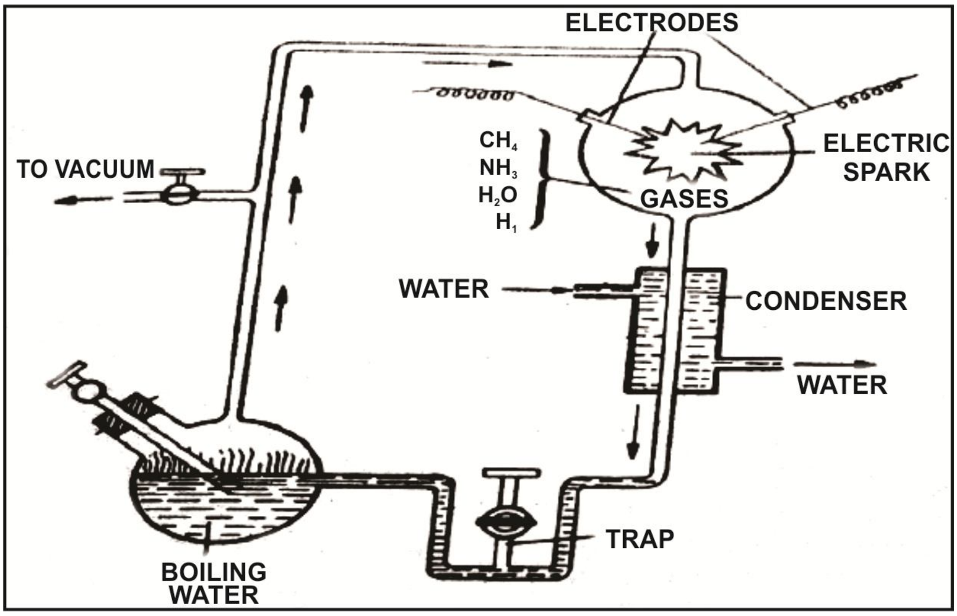

चित्र क्र. 4.4: **A Diagram of Miller's Spark Discharge Apparatus**

इन सभी गैसों की उपस्थिति पृथ्वी के आरम्भिक वायुमण्डल में मानी जाती है। आकाश में बिजली चमकने के समय जैसी स्थिति तथा चिन्गारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, वैसी ही इस बोतल में पैदा करने के लिये तेज विद्युत करण्ट को एक सप्ताह तक प्रवाहित किया गया। प्रयोग के अन्त में फ्लास्क की पानी में उपस्थित तरल पदार्थ का रासायनिक विश्लेषण किया गया तथा यह पाया गया कि इसमें शर्करायें कुछ अमीनो अम्ल तथा कुछ अन्य सरल कार्बनिक यौगिक उपस्थित थे। ये सभी कार्बनिक यौगिक जटिल तथा बड़े जैविक अणुओं के निर्माण की मूल इकाईयाँ थीं। मिलर तथा बाद

में सागन के प्रयोगों द्वारा अनेक जटिल कार्बनिक यौगिकों के प्रकृति में निर्माण को समझाया जा सका। मिलर ने आपेरिन के मत का तथा उनके निष्कर्षों का समर्थन किया।

बाद में कार्ल सागन (Carl Sagan) नामक वैज्ञानिक ने मिलर की विधी को और भी अधिक परिमार्जित करके प्रयोग किये। सागन (1971) द्वारा अपने प्रयोग के लिये इस्तेमाल किये गये उपकरण के प्रक्रिया पात्र में मिथेन, इथेन, जल–वाष्प, अमोनिया तथा हाइड्रोजन सल्फाइड को एक साथ रखा गया और उचित ताप तथा दाब पर गैसों को धर्मित (radiate) करने के लिए पराबैंगनी किरणों का प्रयोग किया गया। इस प्रयोग द्वारा अनेक प्रकार के अमीनो अम्लों तथा अन्य जैविक महत्व के यौगिकों का संश्लेषण किया जा सका।

(iv) प्रोटीन की उत्पत्ति (Origin of Proteins)– उपरोक्त विधि द्वारा प्रकृति (सागर जल) में बने अमीनो अम्लों में आपस में जुडने (पेप्टाइड बंध के द्वारा (by peptide bonds) की तीव्र प्रवृत्ति थी, जो कि आज भी अमीनो अम्लों में पायी जाती है। फलस्वरूप सागर में जटिल प्रोटीन का निर्माण होता गया।

(v) कोलाइड तथा कोएसरवेट्स की उत्पत्ति (Origin of Colloids and Coacervates)– प्रोटीन्स के अणुओं की आपस में मिलकर बड़े–बड़े कोलाइड्स (colloids) बनाने की प्रकृति होती है। इस प्रकृति के कारण सागर में उपस्थित प्रोटीन अणुओं के कोलाइड बने। इन पर विद्युत आवेश (electric charge) के कारण, ये जल अणुओं से चारों ओर से घिर गये और परिणामस्वरूप प्रोटीन की बूँद (अर्ध–तरल) सी बन गयी। इनको मोनेरा (Monera) अथवा माइक्रोस्फीयर (microsphere) की संज्ञा दी गयी। विपरीत विद्युत आवेश वाली ऐसी बूँदों के आपस में मिल जाने से जटिलक्ष कोलाइडल तन्त्र (complex colloidal system) की उत्पत्ति हुई। इन तन्त्रों को कोएसरवेट्स (coacervates) की संज्ञा दी गयी।

4.2.4 वायरस रूपी जीवन के विकास–क्रम में इनका स्थान (Viruses: Their Position in Origin of Life)

वाइरस (virus) या विषाणु (विष के अणु–L- virus (poison) प्रकृति में बहुत ही सूक्ष्म नग्न कणों (Ultramicroscopic particles or microbes) के रूप में पाये जाते हैं। ये आकार में बैक्टीरिया से इतने छोटे होते हैं कि इनको केवल सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है। अजीव एवं सजीव (nonliving and living) पदार्थ के तुलनात्मक अध्ययन में इनका विशेष महत्त्व होता है, क्योंकि इनमें दोनों के ही लक्षण होते हैं। ये संरचना में जीन के समान होते हैं एवं DNA तथा RNA के अणुओं से मिलकर बने होते हैं। ये जीवों में भयंकर रोग उत्पन्न करते हैं। इनका अध्ययन जीव–विज्ञान की एक अलग शाखा वाइरोलॉजी (Virology) के अन्तर्गत किया जाता है।

परिमाण तथा आकार (Size and Shape)– परिमाण में वायरस बैक्टीरिया (bacteria) से भी छोटे होते हैं। ये औसतन 15 mμ से 450 mμ या मिलीमाइक्रोन

होते हैं। अतः ये पोर्सलीन (porcelain) के सूक्ष्मतम छिद्रों में से निकल जाते हैं। शुक्र ज्वर (parrot fever) का वायरस सबसे बड़ा तथा पालतू पशुओं के पैर एवं मुख रोग का सबसे छोटा होता है। आकार में वायरस सूत्रनुमा, गोल, बहुदलीय (polyhedral) या टैडपोल जैसे होते हैं।

संक्षिप्त इतिहास (Historical Account) वायरस (virus) शब्द का उद्‌गम लैटिन भाषा से हुआ है, जिसका अर्थ विष (poison) होता है। 18वीं शताब्दी के अन्त तक वैज्ञानिकों को वायरस के बारे में कोई ज्ञान नहीं था, लेकिन वायरस के द्वारा फैली बीमारियों के बारे में जानते थे। मानव जाति को रोग से मुक्त करने की लालसा ने 18वीं और 19वीं शताब्दी के अनेक वैज्ञानिकों को बैक्टीरिया (bacteria) या जीवाणुओं की खोज के लिए प्रेरित किया। इसी दौरान वैज्ञानिकों को पता चला कि अनेक रोग जीवाणुओं से भी अधिक छोटे जीवों द्वारा होता है। वायरस की खोज सर्वप्रथम रूसी वनस्पतिज्ञ शास्त्री आइवेनोवास्की (Ivanovsky) ने की। इन्होंने सन् 1892 में तम्बाकू की पत्ती में मोजेक रोग (mosaic disease) का पता लगाया।

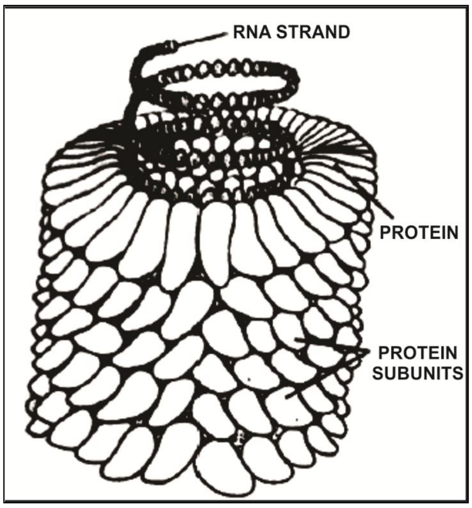

चित्र क्र. 4.5: Structure of TMV Virus

खोज करते समय उन्होंने देखा कि यह रोग बैक्टीरिया से भी सूक्ष्म परजीवियों द्वारा होता है। इस रोग में तम्बाकू की पत्तियाँ चितकबरी होकर मुरझा जाती हैं। उन्होंने रोगग्रस्त पत्तियों का रस निकाल कर दूसरे स्वस्थ पौधों की पत्तियों पर रगड़ा तो देखा कि इन पौधों की पत्तियों में भी यह रोग फैल गया।

बाद में बीजेरिंक (Beijerinck, 1898), लोफलर एवं फ्रोश (Loeffler and Frosch, 1898) आदि ने पौधों तथा जन्तुओं के अनेक ऐसे रोगों का पता लगाकर आइवेनोवास्की की खोज की पुष्टि की। आज हमें ज्ञात हो चुका है मनुष्य में जुकाम, इन्फ्लूएंजा (influenza), खसरा (measles), चेचक (small pox), रैबीज रोग (rabbies or hydrophobia), मम्प्स (mumps), पोलियो (polio myelitis), पीतज्वर (yellow fever) आदि रोग वायरस के द्वारा ही होते हैं। प्रत्येक वाइरस

टिप्पणी

को इसके द्वारा उत्पन्न रोग पर ही आधारित नाम देते हैं जैसे– तम्बाकू मोजैक वाइरस (Tobacco Mosaic Virus-TMV)।

अंग्रेज वैज्ञानिक ट्वॉर्ट (Twort, 1915) तथा फ्रांसीसी वैज्ञानिक डी. हेरेल (D. Herelle, 1917) ने बैक्टीरियोफेज (Bacteriophage) वाइरस का पता लगाया यह वाइरस संग्रहणी रोग से ग्रस्त मनुष्य की आंत में पाये जाने वाले बैक्टीरिया एश्केराइकिया कोलाई (Escherichia coli) का परजीवी है। अमेरिकी वैज्ञानिक, स्टेनले (W.M.Stanley) सन् 1935 में कई प्रयासों के बाद पहली बार तम्बाकू के मोजक वाइरस (TMV) को क्रिस्टल के रूप में पृथक् करने में सफल हुए।

रचना (Structure)– जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है सन् 1892 में आइवेनोवास्की (Ivanovsky) ने वाइरस की खोज की थी, लेकिन आधुनिक तरीकों से इसकी संरचना का अध्ययन बॉडेन (Bowden, 1936) तथा डार्लिंगटन (Darlington, 1944) ने किया। वाइरस इतने छोटे होते हैं कि इन्हें केवल इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (electron microscope) द्वारा ही देखा जा सकता है। इन्हें फिल्टरेबल वाइरस (filterable viruses) भी कहा जाता है, क्योंकि ये पोर्सलीन फिल्टर से आसानी से पार हो जाते हैं। ये कोशिका (cell) के आकार के नहीं होते अपितु विशेष प्रकार के निष्क्रिय कण के बने हैं जो विरिओन (virion) कहलाते हैं जिसमें दो भाग होते हैं।

(a) प्रोटीन आवरण (Protein shell) तथा (b) न्यूक्लिक अम्ल (Nucleic acid) से निर्मित भीतरी कोर (core)। अतः वाइरस को कोशिकाएँ (cells) नहीं कहा जा सकता है। वाइरस का प्रोटीन आवरण न्यूक्लिक अम्ल कोर को सुरक्षा प्रदान करता है। वाइरस का न्यूक्लिक अम्ल वाला भाग DNA अथवा RNA का बना होता है। इसकी आकृति ईंट के आकार, गोलाकार अथवा सुई के समान हो सकती है। TMV (Tobacco Mosaic Virus) का आकार सुई के समान होता है जिसमें RNA पाया जाता है। TMV के सबसे छोटे वाइरस का व्यास लगभग 17 mu होता है। इसके प्रोटीन आवरण या कैप्सिड (capsid) में अनेक समरूप प्रोटीन की उपइकाईयाँ होती है जिन्हें कैप्सोमियर (capsomere) कहते हैं। प्रत्येक कैप्सोमियर में 158 अमीनो अम्ल (amino acid) की एक श्रृंखला होती है। वायरस का DNA एक कुण्डलित सूत्र होता है जो 2130 कैप्सोमियर को कुण्डलित सूत्र के साथ जोड़ता है।

बैक्टीरियोफेज वाइरस (Bacteriophage Virus)– ऐसे वाइरस जो बैक्टीरिया (bacteria) के ऊपर परजीवी (parasite) होते हैं, बैक्टीरियोफेज (Bacteriophage) वाइरस कहलाते हैं। अनेक वाइरस एक्टीनोमाइसिटीज (Actinomycetes), नील–हरित शैवाल (blue green algae) तथा यीस्ट्स के ऊपर आक्रमण करके उनसे भोजन प्राप्त करते हैं, जिन्हें क्रमशः एक्टीनोफेज (Actinophage), फाइकोफेजेज (Phycophages) तथा जाइमोफेजेज (Zymophages) कहते हैं और सामूहिक रूप से फेजेज (Phages) कहलाते हैं एफ. टॉर्ट (F. Twort, 1915) तथा एफ.डी. हेरेल (F.D.Herelle, 1917) ने बैक्टीरियोफेज (bacteriophages) की खोज की। उन्होंने बताया कि

स्टेफाइलोकोकस एलबस (Staphylococcus albus) नामक बैक्टीरिया के समूह (colonies) फेजेज (phages) के कारण चमकीले, साफ तथा पारदर्शी दिखाई देने लगते हैं। इसके अतिरिक्त यह देखा गया कि संग्रहणी रोग से पीड़ित मनुष्य की आंत में पाये जाने वाले ई. कोलाई (E. coli) बैक्टीरिया पर भी फेजेज पाये जाते हैं। फेजेज में वाइरसों के सभी लक्षण पाये जाते हैं।

इनकी संरचना टेडपोल के समान होती है जो सिर (head), पूँछ (tail) तथा ग्रीवा (neck) में विभक्त होती है। इनका सिर बहुभुज 90–95 mμ लम्बा तथा 60–65 mμ चौड़ा होता है। पूँछ बेलनाकार 100 mμ लम्बी तथा 20–25 mμ चौड़ी होती है। सिर तथा पूँछ के बीच बहुत छोटी ग्रीवा (neck) स्थित होती है। सिर के अंदर DNA पदार्थ भरा रहता है जो एक प्रोटीन आवरण (protein sheath) द्वारा घिरा होता है। पूँछ के अन्तिम भाग में एक प्लेट (plate) होती है जिस पर 6 काँटे (spines) उपस्थित होते हैं। पूँछ प्लेट से कई पूँछ तन्तु निकलते हैं। पूँछ के मध्य में DNA का कोर (core) भरा रहता है जो प्रोटीन आवरण द्वारा घिरा रहता है।

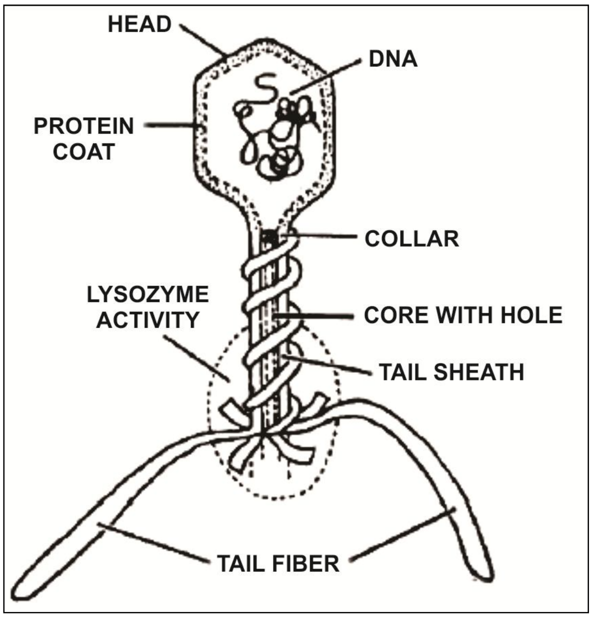

चित्र क्र. 4.6: Structure of Bacteriophage Virus

जनन (Reproduction)– अनुकूल परिस्थितियों में बैक्टीरियोफेज में जनन निम्नलिखित चार अवस्थाओं में पूर्ण होता है–

1. **संक्रमण (Infection)**– सर्वप्रथम फेज (phage) अपनी पूँछ के सिर को बैक्टीरिया (bacteria) की कोशिका (cell) से चिपका लेता है। इसके पश्चात् इसकी पूँछ से कुछ एन्जाइम निकलते हैं जिससे बैक्टीरिया की कोशिका की भित्ति गल जाती है और फेज का DNA बैक्टीरियल कोशिका (bacterial cell) में प्रवेश कर जाता है।
2. **फेज अवयवों का इण्ट्रासैलुलर संश्लेषण (Intracellular Synthesis of Phage Components)**– बैक्टीरियल कोशिका में DNA अथवा

टिप्पणी

न्यूक्लिक अम्ल के पहुँच जाने के बाद फेज (phage) अवयवों (components) का स्वतन्त्र रूप से निर्माण होने लगता है तथा पोषक (host) की आनुवंशिक सूचना (genetic information) फेज द्वारा ग्रहण कर ली जाती है।

3. **नये फेज कणों का संगठित होना (Assembly of New Phage Particles)–** इस प्रकार बने नये फेज कणों या DNA में गुणन (multiplication) होने लगता है और पोषक कोशिका के अंदर संगठित रहते हैं।

4. **फेज कणों का बाहर निकलना (Liberation of Phage Particles)–** अनायास ही पोषक कोशिका के नष्ट हो जाने पर फेज कण (phage particles) बाहर निकल आते हैं और यह क्रिया कोशिका स्फुटन (burst) कहलाती है।

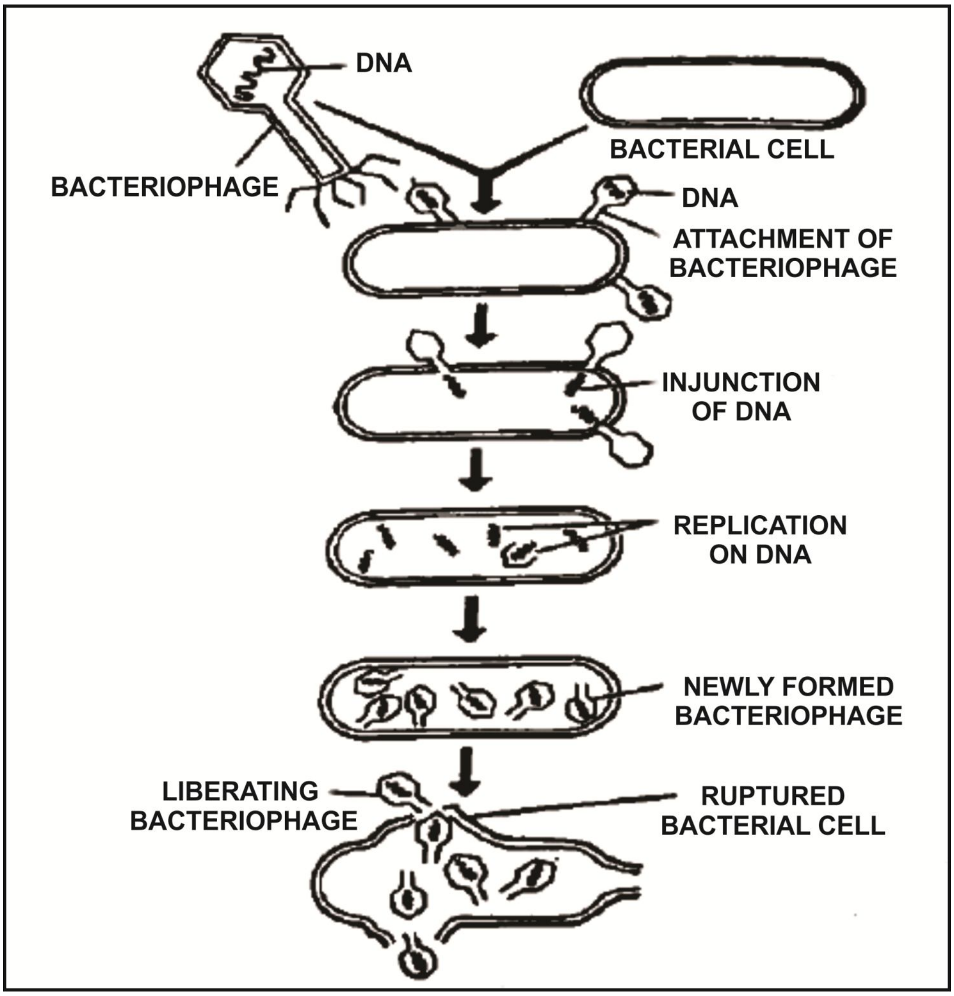

चित्र क्र. 4.7: Reproduction of Bacteriophage in a Bacterial Cell

वायरस सजीव है या निर्जीव (Is Virus Living or Non - living)–
वायरस सजीव है या निर्जीव? अभी तक वैज्ञानिक इस गुत्थी को नहीं सुलझा पाये हैं क्योंकि इसमें दोनों प्रकार के गुण पाये जाते हैं।

वायरस के सजीव लक्षण (Living Characters of Viruses)

1. वायरस में वृद्धि तथा जनन करने की क्षमता होती है। जनन केवल परपोषी कोशिका के अंदर ही होता है।
2. सजीव कोशिकाओं की भाँति इनमें RNA तथा DNA पाया जाता है। अतः ये जीवित कोशिका के अंदर ऐसा वातावरण बना लेते हैं कि ये जीव अवयवों (life components) का संश्लेषण करने में सफल हो जाता है।
3. वाइरस उत्परिवर्ती (mutants) होते हैं।

वाइरस के निर्जीव लक्षण (Non-living Characters of Viruses)

1. ये कोशिका रूपी नहीं होते, क्योंकि इनमें साइटोप्लाज्म (cytoplasm), कोशाकला (plasma membrane) तथा अंगों (cytoplasmic organelles) का पूर्ण अभाव होता है।
2. स्वतन्त्र वाइरस पोषण और श्वसन नहीं करते क्योंकि इनमें एन्जाइम का अभाव होता है अतः जीवित कोशिका के बाहर ये निष्क्रिय रहते हैं।
3. इनका जनन परपोषी कोशिका (host cell) के बाहर सम्भव नहीं है।
4. इन्हें क्रिस्टल के रूप में संचित किया जा सकता है। इसमें इनके गुणों में कोई अन्तर नहीं पड़ता।
5. प्रत्येक वायरस में केवल प्रोटीन खोल में बंद एक न्यूक्लिक अम्ल (DNA या RNA) का अणु होता है।

4.2.5 जीवन की उत्पत्ति में वायरस का महत्व (Importance of Virus in the Origin of Life)

वाइरस की आकृति, व्यवहार एवं जनन क्रिया का अध्ययन करके वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया कि जिस समय आदिकोशिक (primitive cell) का निर्माण हुआ, उस समय आधुनिक वाइरसों के पूर्वजों की भी उत्पत्ति हुई होगी। अनेक वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आदि कोशिकाओं में उपस्थित न्यूक्लियोप्रोटीनों के समूहों में से कुछ न्यूक्लियोप्रोटीन किसी प्रकार इन कोशिकाओं में से निकलकर आदिसागर में पहुँच गये और जल में स्वतन्त्र रूप से इधर–उधर तैरने लगे। लेकिन इसके बाद अकस्मात् ये पुनः आदिकोशिकाओं में प्रवेश पा गये और सक्रिय रूप से प्रजनन करने लगे। इसके पीछे मूल धारणा आधुनिक वाइरसों की रचना है क्योंकि यदि कोई भी जीव आदि कोशिका की परिकल्पना के निकट है तो यह वाइरस ही है। अतः वाइरस को जीवन–विकास का प्रारम्भिक बिंदु मान सकते हैं।

इसके अलावा वायरस के कुछ लक्षण जीवों की भाँति तथा कुछ लक्षण निर्जीवों की भाँति होना इनके जीवन–विकास के प्रारम्भिक बिंदु होने की पुष्टि

करते हैं। अतः वाइरस जीवों की उत्पत्ति सजीवों एवं निर्जीवों के मध्य की कड़ी होने के कारण अपना एक विशेष महत्व रखते हैं।

टिप्पणी

4.3 लैमार्कवाद एवं डार्विनवाद (Lamarckism and Darwinism)

4.3.1 जैव–विकास का संक्षिप्त इतिहास (A Brief History of Evolution)

प्राचीन ग्रीक दार्शनिक, जीवों के **स्वतः उत्पादनवाद** (Spontaneous generation) को मानते थे, फिर भी **एम्फीडोक्लीज** (Emphedocles, 495-425 B.C.) जिन्हें विकास कल्पना का पितामह कहा जाता है, का विचार जैव–विकास परिकल्पना की ओर झुकता हुआ प्रतीत होता है। उनके अनुसार परिवर्तनशील प्राकृतिक दशाओं के कारण अधूरी अथवा त्रुटिपूर्ण जीव–जातियों का विनाश हो जाता है और उसका स्थान उनसे श्रेष्ठ जातियाँ ले लेती हैं। **अरस्तू** (Aristotle, 384-322 B.C.) ने सर्वप्रथम जीवन के विभिन्न रूपों में कुछ समानता देखी तथा उनमें परस्पर कुछ–न–कुछ सम्बन्ध होना प्रतिपादित किया। उनके अनुसार सभी जीव एक ही जीवन की सीढ़ी के सदस्य है जिसमें सबसे नीचे प्रारम्भिक जीव (सूक्ष्म) तथा सबसे ऊपर सबसे बड़े जीव आते है।

इनके बाद लगभग 2000 वर्षों तक जैव–विकास की कल्पना की ओर किसी का ध्यान नहीं गया और अन्त में 19वीं सदी में **लैमार्क** (Lamarck, 1774-1829), **चार्ल्स डार्विन** (Charles Darwin, 1809-1882), **अल्फ्रेड रसैल वैलेस** (Alfred Russel Wallace, 1823-1913) तथा **ह्यूगो डी व्रीज** (Hugo Vries, 1840-1935) ने ठोस तत्वों के आधार पर जैव–विकास की व्याख्या की।

4.3.2 जैव–विकास के सिद्धान्त (Theories of Organic Evolution)

1. (अ) लैमार्कवाद (Lamarckism)

जीन बैप्टिस्ट डी लैमार्क (Jean Baptist de Lamarck 1774-1829) ने जैव–विकास परिकल्पना पर पहला सिद्धान्त प्रस्तुत किया जो सन् 1809 में उनकी पुस्तक *Philosophic Zoologique* में छपा तथा **लैमार्क का सिद्धान्त** (Lamarckism Theory) के नाम से जाना जाता है। इनके इस सिद्धान्त को **'उपार्जित लक्षणों का वंशानुगति सिद्धान्त'** (Theory of Inheritance of Acquired Characters) कहते हैं। लैमार्क के अन्तर्गत **चार धारणाएँ** (Assumptions or propositions) आती है–

1. प्राणियों या सजीवों के शरीर में तथा उसके अंगों में निरन्तर वृद्धि करने की प्रवृत्ति या आकार में बड़े होने की प्रवृत्ति, जीवन के आन्तरिक बलों के कारण निरन्तर पायी जाती है।

2. जीवों के शरीर में नये अंगों की उत्पत्ति, नई आवश्यकताओं एवं नई गतियों के परिणामस्वरूप होती है, जो शरीर में इस आवश्यकता को प्रारम्भ करने एवं बनाए रखने की प्रवृत्ति को बनाए रखती है।
3. जन्तुओं में किसी अंग का निरन्तर प्रयोग करने से वह अंग प्रयोग के अनुपात में बड़ा एवं शक्तिशाली हो जाता है जबकि किसी अंग का उपयोग नहीं करने पर वह अंग धीरे–धीरे निष्क्रिय होकर समाप्त हो जाता है। इसको लैमार्क ने **उपयोग एवं अनुपयोग** (Use and disuse) की धारणा कहा।
4. किसी प्राणी में वातावरण के अनुसार या वातावरण के परिवर्तन के अनुसार रूपान्तरण होते है, यदि यह रूपान्तरण नर एवं मादा दोनों पैतृकों (Parents) मे पाये जाते हैं, तो यह रूपान्तरण सन्तान में भी पहुँच जाती है। इन रूपान्तरणें को जो सन्तति में पाये गये लैमार्क **उपर्जित लक्षणों की वंशागति** (Inheritance of acquired characters) कहाँ गया है।

उपर्युक्त में 3 एवं 4 क्रम की धारणा के नियम प्रमुख हैं जो लैमार्क के उद्विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों को दर्शाती है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित तथ्यों (धारणाओ) पर आधारित है–

1. **बड़े होने की प्रवृत्ति (Tendency to increase in size)**– जीव शरीर और उसके अंगों में निरन्तर बड़े होने का प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है जो जैव–विकास का मुख्य कारण है।
2. **वातावरण का सीधा प्रभाव (Direct effect of environment)**– वातावरण का सीधा प्रभाव जीवों की आदतों, स्वभावों तथा जीवन–रीतियों पर पड़ता है। वातावरण के परिवर्तनों के साथ ही इनमें भी परिवर्तन होते हैं। साथ ही उनकी रचना तथा शरीर गठन प्रभावित होता है जिससे कुछ अंग अधिक उपयोगी हो जाते हैं तथा कुछ कम वातावरण, मिट्टी (Soil), भोजन (Food) एवं तापक्रम (Temperature) आदि में होने वाले परिवर्तन पौधों (Plants) प्रत्यक्ष रूप से एवं प्राणियों को अप्रत्यक्ष (Indirectly) रूप से प्रभावित करते है। वातावरण के परिवर्तन से नवीन आवश्यकताएँ होती हैं। आवश्यकताओं से नई आदतें उत्पन्न होती हैं।
3. **आवश्यकताएँ (Needs)**– जैसे–जैसे वातावरण में परिवर्तन होते है वैसे ही नई आवश्यकताएँ उत्पन्न होती है। **लैमार्क** (Lamarck) का ऐसा विश्वास था कि प्राणियों के स्वभाव में परिवर्तन होने से प्राणियों की संरचना (Structure) में भी परिवर्तन होते है। वातावरण में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव, प्राणियों के जीवन पर भी पड़ता है। जैसे– अनेक थलीय पक्षी अपना भोजन प्राप्त करने के लिए जल में जाते है, धीरे–धीरे उनमें या तो तैरने के लक्षण आ जाते हैं या छिछले जल में सुविधापूर्वक भोजन ग्रहण करने के गुण आ जाते हैं। उदाहरण बगुले में गर्दन का लम्बा होना, बतख के पश्च पाद की अंगुलियों में जाल का बनना।

4. **अंगों के कम या अधिक उपयोग का प्रभाव (Effect of use and disuse of organs)**– जो अंग अधिक उपयोग में आते हैं वे अधिक विकसित हो जाते है तथा जिन अंगों का उपयोग कम होता है उनका विकास रुक जाता है या अंगों का उपयोग नहीं होने के कारण यह लुप्त हो जाते हैं या उनका ऱ्हास (Loss) हो जाता है। इस प्रकार प्राणियों में संरचना, स्वभाव एवं संगठन में परिवर्तन हो जाता है। इन नये लक्षणों को **उपार्जित लक्षण** (Acquired characters) कहते हैं। जैसे कि– पक्षियों की अग्र भुजाएँ (fore limbs) अधिक उपयोग होने के कारण ही पंखों (Wings) में परिवर्तित हो गई, तथा व्हेल (Whale) में पश्च भुजाएँ (Hind limbs) तथा सर्पों (Snakes) में दोनों अग्र एवं पश्च भुजाएँ उपयोग नहीं होने के कारण विलुप्त हो गई या समाप्त हो गई। प्राणियों में अवशेषी अंगों (vestigial organs) की उपस्थिति अधिक समय तक उपयोग नहीं होने के कारण होती है। इसी धारणा के आधार लैमार्कवाद को **अंगों के कम या अधिक उपयोग का सिद्धान्त** (Theory of use and disuse of organs) भी कहते हैं।

5. **प्रतियोगिता (Competition)**– लैमार्क के अनुसार निम्न श्रेणी के प्राणियों एवं छोटे आकार के प्राणियों में शीघ्र गुणन (Multiplication) अथवा अधिक सन्तान की उत्पत्ति होती है। इसके विपरीत बड़े प्राणियों में गुणन अथवा सन्तान उत्पत्ति कम संख्या में होती है। इस प्रकार पृथ्वी को जनसंख्या समूहन या भीड़ से बचाने के लिए तथा सभी जीवों में सन्तुलन बनाए रखने के लिए प्राणियों में विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ या संघर्ष पाये जाते हैं।

6. **उपार्जित लक्षणें की वंशानुगति (Inheritance of acquired characters)**– जीव के जीवनकाल में, वातावरण के प्रभाव से अथवा अंगों के कम अथवा अधिक उपयोग से शरीर में जो परिवर्तन हो जाते है। उन्हें उपार्जित लक्षण कहते हैं। ये लक्षण वंशानुगत होते है तथा सन्तानों में पीढ़ी – दर – पीढ़ी पहुँचते रहते हैं तथा कई पीढ़ीयों के बाद ये स्थायी होकर नवीन जीव–जातियों की उत्पत्ति के कारण बनते हैं।

7. **संकरण (Cross breeding)**– यदि ऐसी सन्तान जिन्होने अपने जीवन काल में वातावरण के परिवर्तन के कारण विशेष प्रकार के लक्षणों को उपार्जित (Acquired) किया हो, जब ऐसे प्राणी आपस में संकरण (Cross) करते हैं तब इनकी सन्तति में वही विशेषताएँ पायी जाती है जो उनके पैतृकों (Parents) में थीं। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में इसी प्रकार का संकरण होता रहे तब एक नई जाति उत्पन्न होती है।

8. **पृथक्करण/विलगन (Isolation)**– यदि मनुष्यों के बीच पर्याप्त दूरी नहीं होती तब संकरण द्वारा उत्पन्न लक्षणों में वे सामान्य लक्षण समाप्त हो जाते, जिसके द्वारा विभिन्न राष्ट्रों के लोगों में भेद स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार वंशागति के द्वारा यह विभिन्नता स्थायी हो जाती है। लैमार्क के अनुसार विलगन विकास के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक भाग है।

टिप्पणी

(ब) लैमार्कवाद के सिद्धान्त का प्रमाण (Evidences in Favour of Lamarckism)

लैमार्क ने अपने सिद्धान्त के पक्ष में विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत किये, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं–

1. **अफ्रीकी जिराफ का उदाहरण (Example of African Giraffe)**– यह अफ्रीका के रेगिस्तानों में रहता है तथा ऊँचे–ऊँचे वृक्षों की पत्तियों को खाकर जीवन निर्वाह करता है जिसके कारण इसकी टाँगे व गर्दन लम्बी होती हैं। लैमार्क के अनुसार जब अफ्रीका में रेगिस्तान नहीं था तथा घास–फूँस व अन्य वनस्पतियाँ भूमि पर बहुतायत से थीं, तब इन जिराफों के पूर्वजों में टाँगे तथा गर्दन छोटी व सामान्य थीं। बाद में इस प्रदेश की जलवायु के बदलने से रेगिस्तान का विस्तार हुआ जिससे भूमि की घास–फूँस व वनस्पतियाँ समाप्त हो गयीं, वृक्ष ही शेष बचे और पत्तियाँ केवल वृक्षों के ऊपरी भागों पर बचीं जिससे इनके पूर्वजों के सामने भोजन की समस्या उत्पन्न हो गई। अतः ऊँची पत्तियों तक पहुँचने के लिए पूर्वज जिराफों ने अपनी अगली टाँग तथा गर्दन का अधिकाधिक उपयोग किया जिससे इनकी अगली टाँगे व गर्दन धीरे–धीरे लम्बी होती गयीं। यह इनका उपार्जित लक्षण बना जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी वंशानुगत होकर वर्तमान जिराफ जाति की उत्पत्ति का स्थायी लक्षण बना।
2. **सर्पों का उदाहरण (Examples of snakes)**– इसी प्रकार, लैमार्क ने अंगों के कम उपयोग का उदाहरण सर्पों में दिया। उन्होने कहा कि ज्यों–ज्यों सर्पों का शरीर लम्बा हुआ, घास–फूँस में तेजी से दौड़ने तथा बिलों में घुसने के लिए इनकी टाँगे बेकार सिद्ध हुईं अतः इनके पूर्वजों ने टाँगों का उपयोग छोड़कर रेंगने की आदत डाली। इस प्रकार इनकी टाँगों का उपयोग समाप्त हो गया और इनकी टाँगे छोटी होती गयीं और अन्त में लुप्त हो गयी। इनका यही लक्षण पीढ़ी–दर–पीढ़ी वंशानुगत होकर पादविहीन (Limbless) सर्पों की उतत्ति का कारण बना।

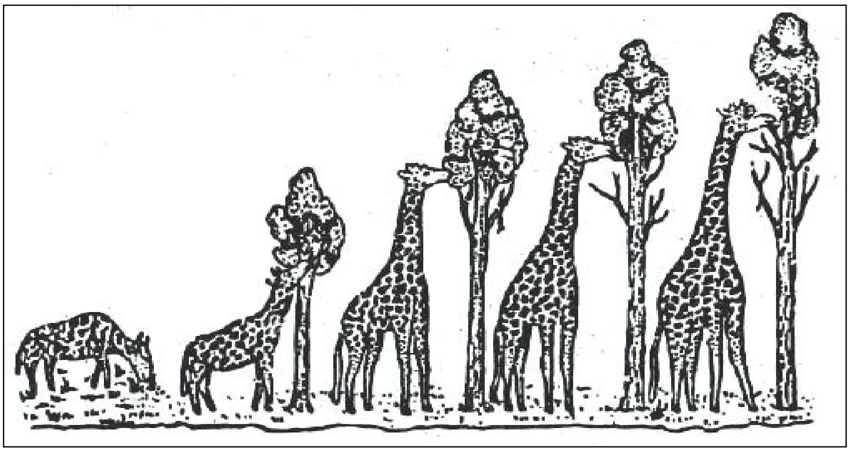

चित्र क्र. 4.8: Evolution of Giraffe

टिप्पणी

3. **छछूँदर (Moles)**– क्योंकि जमीन के अन्तर या भूमिगत स्थानों में जीवन व्यतीत करती है, इस कारण इनके नेत्र (Eyes) ऱ्हासित हो गये।
4. **मनुष्य में बाह्य कर्ण पल्लव (External pinna)**– की पेशियाँ ऱ्हासित होती है जबकि खरगोश (Rabbit) चौपायों (Cattles), कुत्तों (Dogs), हाथी (Elephant) आदि प्राणियों में कर्ण पल्लव की पेशियाँ क्रियाशील एवं अधिक विकसित होती है, क्योंकि यह प्राणी जंगल में रहते हैं और अपने कर्ण पल्लवों (External Pinna) के द्वारा चारों ओर के वातावरण से ध्वनि को एकत्रित करते है, जिससे कि अपने शत्रुओं की उपस्थिती को अधिक दूरी से ज्ञात कर सकें।
5. **जलीय पक्षी (Aquatic bird)**– बतख (Duck) मे पाद अंगुलियों के बीच पाद जाल (Web) अपनी अंगुलियों के बीच की त्वचा के तैरते समय या उतरते समय निरन्तर अधिक खींचने के कारण विकसित हुए।

लैमार्कवाद या उपार्जित लक्षणों की वंशानुगति का सिद्धान्त तर्क का विषय बना रहा। कुछ वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर इनके सिद्धान्तों का समर्थन किया तथा कुछ ने आलोचना। इनके मत के पक्ष में किये प्रयोग निम्न प्रकार है–

प्रयोग 1. चूहों पर मैक्डूगल का प्रयोग–मैक्डूगल (Mc Dougall, 1938) ने चूहों की 45 पीढ़ीयों को एक ही रास्ते से आने–जाने की ट्रेनिंग दी। प्रारम्भ में उन्हे सिखाने में इन्हे काफी मेहनत करनी पड़ी, परन्तु बाद में धीरें–धीरे पीढ़ी–दर–पीढ़ी इसकी जरूरत कम होती गयी।

प्रयोग 2. चूहों पर समनर का प्रयोग– समनर (Sumner 1910) ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया कि गर्म वातावरण में पले चूहों के कर्ण–पल्लव (Ear pinna) ठण्डे वातावरण में चूहों की अपेक्षा अधिक बड़े होते है। ये लक्षण इनकी सन्तानों में बाद में वंशानुगत होते गये।

प्रयोग 3. कुत्तों पर पैवलोव के प्रयोग– पैवलोव (Pavlov) ने कुत्तों को घण्टी की आवाज पर भोजन के लिए आने की ट्रेनिंग दी। पीढ़ी–दर–पीढ़ी ट्रेनिंग की जरूरत कम होती गयी।

प्रयोग 4. कैमरर के प्रयोग– पॉल कैमरर (Paul Kammrer 1924) ने टोड, सैलेमेण्डर तथा छिपकलियों के शरीर पर विभिन्न ताप, प्रकाश तथा नमी के प्रभावों का अध्ययन किया तथा बताया कि इसके प्रभाव से बदले हुए लक्षण वंशानुगत होते हैं। यूरोपियन सैलेमेण्डर मैकुलोसा (Salamander maculosa) की त्वचा पर काले–पीले धब्बे होते हैं। इन्हे कई पीढ़ियों तक इन्होने पीले तथा काले वातावरण में पाला। पीले वातावरण में सैलेण्डर की त्वचा पर पीले धब्बे फैलकर बड़े हो गये तथा काले वातावरण वाले सैलेमेण्डर की त्वचा काली हो गयी।

प्रयोग 5. मैकब्राइड का मत (Opinion of Mac Bride)– मैकब्राइड ने लैमार्क के सिद्धान्तों का समर्थन किया। इस वैज्ञानिक के अनुसार परिवर्तित वातावरण की आवश्यकताओं के कारण प्राणियों का स्वभाव परिवर्तित हो

जाता है। इस प्रकार विभिन्न भागों की संरचना परिवर्तित या रूपान्तरित हो जाती है, और यही परिवर्तन या रूपान्तरण सन्तति मे पहुँच जाते हैं।

प्रयोग 6. गायर तथा स्मिथ का प्रयोग (Experiment of Guyer & Smith)– इन वैज्ञानिकों के प्रयोग के अनुसार खरगोश (Rabbit) के लैंस (Lens) घोल को मुर्गे (Fowl) में प्रवेश कराया गया, जिसमें प्रतिरक्षी (Antibody) पदार्थ उत्पन्न हो गये। इसके पश्चात् मुर्गे (Fowl) के सीरम को गर्भस्थ खरगोशों मे निवेश कराया गया। खरगोश की उत्पन्न सन्ततियों में कुछ के नेत्र ह्रासित (Degenerated) थे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रतिरक्षी (Antibody) ने खरगोश के भ्रूण (Embryo) में नेत्रों को नहीं बनने दिया, यह दर्शाता है कि उपार्जित लक्षणों की वंशागति होती हैं इसी प्रकार अन्य प्रयोग में गायर एवं स्मिथ (Guyer and Smith) ने एक नर खरगोश को प्रतिरक्षित कर दिया। इस नर खरगोश तथा मादा खरगोश में हुए प्रजनन के परिणामस्वरूप उत्पन्न 6 शिशुओं में से चार नेत्रवहीन थे।

प्रयोग 7. कैमरर ने प्रोटियस एन्गुइनस (*Proteus anguinus*) पर प्रयोग किया। प्रोटियस नामक यह उभयचरी (Amphibian) प्राणी जल में स्थित पूर्ण अन्धकारमय गुफाओं में रहता है, इस कारण इसके नेत्र अवशेषी (Vestigeal) तथा शरीर रंगहीन (Colourless) होता हैं। जब इस वैज्ञानिक ने इस प्रोटियस को प्रकाश मे रखा तब धीरे–धीरे इसका रंग काला गहरा हो गया। इसी के साथ नेत्रों में परिवर्तन होने लगे। यही लक्षण इसकी सन्तति में भी पाये गये।

(क) लैमार्कवाद की आलोचना (Criticism of Lamarckism)

अनेक वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर लैमार्कवाद की कड़ी आलोचना की। जर्मन वैज्ञानिक **वीज़मैन** (Weismann, 1892) बीस पीढ़ियों तक चूहों की पूँछ काटते रहे, परन्तु उन्हें कभी भी पीढ़ी में पूँछ–रहित चूहे प्राप्त नहीं हुए। उदाहरणार्थ, प्रतिदिन दाढ़ी बनाने पर भी दाढ़ी–वहीन पुत्र पैदा नहीं होते हैं। पहलवान का पुत्र पहलवान नहीं होता है।

चीन देश में रहने वाली स्त्रियाँ लोहे के जूते पहनती हैं, जिससे कि वह अपने पैरों को छोटा रख सकें, लेकिन जन्म के समय लड़कियों के पैर समान आकार के पाये गये। इसी प्रकार पिता ने युद्ध में जो जख्म (Wounds) उपार्जित किये वह सन्तति में कभी नहीं पाये गये। एक बच्चा/शिशु उसी भाषा को समझता है जो उसमे माता–पिता समझाते हैं या सिखाते हैं, लेकिन उसको उपार्जित नहीं करता है।

वीजमैन (Weismann) ने **जर्मप्लाज्म** (Germplasm) एवं **दैहिक** (Somatic) लक्षणों में होने वाले परिवर्तनों में भिन्नता दर्शायी। इस वैज्ञाानिक ने दर्शाया कि जीव ने जीवन अवधि में जो दैहिक परिवर्तन उपार्जित किये वह वंशागत नहीं होते हैं, लेकिन वह परिवर्तन जो **जर्मप्लाज्म** (Germplasm) में पाये गये या हुऐ वह सन्तति में वंशागत होते है। लेकिन लेमार्क के सिद्धान्त को वह

हानिकारक सिद्ध हुये जिसमें उसने सभी लक्षणों को जिनको जीवों ने अपने जीवनकाल में उपार्जित किये थे वंशागत की धारण के अन्तर्गत दर्शाया।

जननद्रव्य की निरन्तरता का सिद्धान्त (Theory of Continuity of Germplasm) मे वीज़मैन ने बताया कि सन्तानों की उत्पत्ति माँ–बाप की युग्मक कोशिकाओं (Gametes), पिता के शुक्राणु (Sperms) तथा माता के अण्डाणु (Ova)–द्वारा लैंगिक जनन द्वारा होती है। युग्मक बनाने वाली कोशिकाएँ काफी पहले ही भ्रूण में बनने वाली दैहिक कोशिकाओं से अलग होकर जनद (Gonads) बनाती हैं। अतः जीव–शरीर प्रारम्भ से ही जननद्रव्य (जर्मप्लाज्म Germplasm) तथा कायद्रव्य (सोमेटोप्लाज्म–Somatoplasm) में बँट जाता है। इस प्रकार माता–पिता के वे लक्षण जो युग्मकों (Gametes) के गुणसूत्रों के जीन्स पर होते है, सन्तानों में आते है। कायद्रव्य (सोमेटोप्लाज्म) में उत्पन्न कोई भी परिवर्तन सन्तान में नहीं जाता है। वीज़मैन ने जननद्रव्य (Germplasm) को अजर (Immortal) बताया। अतः जीवन की उत्पत्ति के बाद जननद्रव्य, कायद्रव्य से अलग होकर एक अखण्ड श्रृंखला (Continuous chain) के रूप में युग्मक बनाता चला आ रहा है। जननद्रव्य का अंश मृत्यु से पूर्व सन्तानों में चला जाता है, जबकि कायद्रव्य मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है।

(ड) नव–लैमार्कवाद (Neo-Lamarckism)

वातावरण के प्रभाव में जीवन–रीतियों तथा स्वभाव में परिवर्तन हो जाते हैं जिनसे शरीर के अन्य भागों में भी परिवर्तन होते है। इन परिवर्तनों को **कायिकी या दैहिक** परिवर्तन कहते हैं। **वीज़मैन** के अनुसार ही गुणसूत्रों के जीन्स को बदल देने वाले परिवर्तन ही पीढ़ी दर पीढ़ी वंशानुगत हो सकते हैं। यह **आनुवंशिकी परिवर्तन** (Genetic changes) कहलाते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने लैमार्कवाद के सिद्धान्तों को ही नया रूप दिया है जिसे **नव–लैमार्कवाद** (Neo-Lamarckism) कहते है।

नव–लैमार्कवाद के अन्तर्गत बताया गया है कि वातावरण के प्रभाव से जीवों के शरीर में कुछ ऐसे भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तन हो जाते है जो जननद्रव्य के जीन्स को प्रभावित करते हैं। ऐसे उपार्जित लक्षण ही वंशानुगत होकर सन्तानों में जाते है। उदाहरण के लिए, **टावर** (Tower) ने दिखाया कि आलू–बीटल (potato-beetle) नामक कीट की युवा प्रावस्थाओं को अधिक ताप या नमी में रखें तो इनमें कुछ ऐसे कायिक परिवर्तन हो जाते है जो जननद्रव्य (Germplasm) के जीन्स को प्रभावित करके अगली पीढ़ीयों में प्रदर्शित होते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने कॉस्मिक किरणों (Cosmic rays) तथा एक्सरे (X-rays) द्वारा जीवों में कृत्रिम कायिक परिवर्तन किये तथा देखा कि यह जीन्स को प्रभावित वंशानुगत होते है।

4.3.3 (अ) डार्विनवाद (Darwinism)

चार्ल्स रॉबर्ट डार्विन (Charles Robert Darwin 1809-1882) एक अग्रेंज परिवार में जन्मे थे। इनके पिता एक चिकित्सक थे और वे चाहते थे कि उनका पुत्र भी चिकित्सक बने। उन्हे चिकित्सक बनाने के उद्देश्य से उनके पिता ने उन्हें एडिनबरा

मैडिकल कॉलेज में भर्ती कराया, किन्तु केवल तीन वर्षो तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होने केम्ब्रिज में बाह्यविज्ञान (Theology) का तीन वर्ष तक अध्ययन किया। वास्तव में वह एक प्राकृतिक वैज्ञानिक बनना चाहते थे अतः उनकी रुचि किसी भी कार्य में नहीं लगी। सन् 1831 में 22 वर्ष की अवस्था में अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए दक्षिणी अमेरिका जाने वाले बीगल (Beagle) नामक लड़ाकू जहाज पर उन्होंने यात्रा की। यह जहाज पाँच वर्षों के लिए विश्व भ्रमण पर निकला था। उस समय प्राकृतिक वैज्ञानिक के रूप में उन्हे कुछ अधिक ज्ञान नहीं था। उनका विश्वास था कि विशिष्ट सृजन के फलस्वरूप ही जाति का निर्माण हुआ।

अपनी इस यात्रा में उन्होंने बहुत से परिक्षण किये तथा संसार के विभिन्न भागों से असंख्य प्राणी, पौधे, चट्टानों के टुकड़े तथा जीवाश्म आदि एकत्र किये। अपनी इस यात्रा के दौरान उन्होंने बहुत से रोचक अनुभव प्राप्त किये, जिससे उनका विशिष्ट सृजनवाद से विश्वास डगमगा गया। उनके कुछ प्रमुख निरीक्षण इस प्रकार हैं–

1. गैलापैगो द्वीप तथा इंग्लैण्ड के मुख्य स्थल का वातावरण एक–सा होते हुए भी दोनों स्थानों के प्राणियों तथा पौधों मे अन्तर था।
2. अर्माडिला (Armadilla) के जो जीवाश्म उन्होंने प्राप्त किये थे, वे आज के अर्माडिला से आकार में तो काफ़ि बड़े थे, परन्तु रचना में समान ही थे।
3. दक्षिणी अमेरिका के सभी स्थानों में पाये जाने वाले रीआ (Rhea) (शुतुमुर्ग की तरह पक्षी) समरूप नहीं थे।
4. तूती (एक प्रकार का पक्षी) में उन्होनें विशेष रूप से विविधताएँ देखीं। उन्होनें पाया कि गैलापैगो के मुख्य स्थल की तथा आसपास के अन्य द्वीपों की तूतियाँ एक–दूसरे से काफी भिन्न है। कुछ फल खाती थी। कुछ बीज खाती थीं तथा कुछ कीटों को खाती थी। उनके लिए यही परेशानी का विषय था। उनके मन मे प्रश्न उठा, क्या ईश्वर ने हर प्रकार के जीवों की उत्पत्ति पृथ्वी के अलग–अलग भागों में पृथ्क रूप से की? बीस वर्ष तक लगातार वह अपनी इसी समस्या पर कार्य करते रहें। इसी बीच् सन 1858 मे इन्होने टी.आर. माल्थस (T.R. Malthus) के एक लेख 'On the Principles of Populations' पढ़ा कि जिस दर से प्राणियों मे जनसंख्या (Populations) बढ़ रही है, उस दर से उन्हें भोजन तथा रहने के लिए स्थान नहीं मिलता जिसके फलस्वरूप उनके 'जीवन में संघर्ष' (struggle for existence) होता है। इस सिद्धान्त ने उनके मन में एक नये विचार को जन्म दिया– योग्यतम की उत्तरजीविता (Survival of the fittest) अर्थात् बढ़ी हुई आबादी के परिणामस्वरूप भोजन की कमी के कारण जीवों में संघर्ष होता है, उसमें जो योग्यतम होता है वही जीवित रह पाता है।

अल्फ्रेड रसेल वैलेस (Alfred Russel Wallace, 1823-1913) नामक एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने डार्विन के पास 'जाति के उद्भव' (Origin Species) पर एक लेख भेजा जिसमें डार्विन से मिलते–जुलते ही विचार थे। रॉयल लीनियस सोसाइटी गया, परन्तु एक वर्ष पश्चात् ही वैलेस ने डार्विन की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली। इसके बाद ही जैव–विकास के सिद्धान्त के रूप में डार्विन की बहुचर्चित

पुस्तक 'प्राकृतिक वरण द्वारा जाति का विकास' (Origin of Species by Natural selection) प्रकाशित हुई। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने जैव–विकास की क्रिया को उदाहरणों सहित प्रस्तुत किया और बताया कि प्राणियों में अपने को वातावरण के अनुकूल बनाये रखने की क्षमता होती है तथा वे सन्तान उत्पन्न करते है। साथ ही, जो जीव अपने को वातावरण के अनुकूल बनाने में असमर्थ होते है वे कुछ समय बाद नष्ट हो जाते है। अतः प्रकृति में जीवों की बढ़ती हुई आबादी को रोकने के लिए एक प्रकार का प्राकृतिक वरण (Natural Selection) होता है।

4.3.4 (अ) प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त या डार्विनवाद (Theory of Natural Selection or Darwinism)

डार्विन का सिद्धान्त निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है–

1. **विभिन्नता की सार्वभौमिकता (Universal Occurence of Variation)**– प्राणियों की किसी भी जाति (species) में लैंगिक प्रजनन (Sexual Reproduction) के द्वारा उत्पन्न सन्ततियों में से युग्मज सदस्यों (Twins) के अतिरिक्त कोई दो सदस्य परस्पर बिल्कुल एक समान नहीं होते हैं लेकिन एक–दूसरे से कुछ भिन्न होते हैं। दैनिक जीवन में भी हम यह देखते हैं कि एक ही जाति के दो सदस्य बिल्कुल एक समान नहीं होते हैं। कुत्ते (Dog) या चौपायौं, बिल्ली (Cat), सूअर (Pig) के एक ही समय के सन्तति सभी एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य में एक ही माता–पिता की सन्तति होने पर भी भाई–बहिन, भाई–भाई, दो बहिनें एक–दूसरे से भिन्न होते है। समजातियों के सदस्यों के बीच जितने भी अन्तर पाये जाते है, उनको **विभिन्नताएँ** कहते हैं।

   इन विभिन्नताओं को डार्विन ने उद्विकास के **'कच्चे माल'** (Raw material) का स्थान दिया। डार्विन इन विभिन्नताओं में अन्तर या भेद नहीं कर पाये लेकिन डार्विन का आशय उन विभिन्नताओं से था जिनको जीव अपनी सन्तान में देख सकते है या आनुवंशिक होती है। इन विभिन्नताओं के कारण प्राकृतिक चयन के अनुसार जीव नयी जातियों को उत्पन्न करती है।

2. **जीवों में सन्तानोप्तत्ति की अपार क्षमता (Enormous fertility of offsprings)**– प्रत्येक जीव में सन्तनोत्पत्ति की अपार क्षमता होती है अतः उन सभी का जीवित रहना सम्भव नही। उदाहरण के लिए, एक समुद्री सीप (Oyster) एक वर्ष में 60,000,000 अण्डे देती है। फैसिओला पैटिका (Fasciola hepatica) एक दिन में 15,000 अण्डे तथा ऐरूकेरिस एक दिन में 27,00,000 अण्डे देती हैं। यदि इनमें से किसी एक के भी सभी नवजात जीवित रहे तथा वह जाति स्वतन्त्र रूप से जनन करती रहे तो उस जाति के सदस्य रेखागणित अनुपात (Geometrical ratio) में बढ़कर कुछ ही पीढ़ियों मे पूरी धरती को ढँक लेंगे। खरगोश एक वर्ष में लगभग चार बार बच्चे देता है तथा हर बार 4–5 बच्चे उत्पन्न होते है। केवल 6 महिने की उम्र से ही खरगोश बच्चा लैंगिक दृष्टि से वयस्क हो जाता है। जनन–दर के अनुसार हाथी सबसे पीछे माना जाता है। डार्विन के अनुसार हाथी भी 750 वर्षो में 19

लाख हाथी उत्पन्न करेगा। यदि मानव ने भी अपनी बढ़ती हुई आबादी को कृत्रिम साधनों से नहीं रोका और हजार वर्ष तक मानव आबादी इसी प्रकार बढ़ती रही तो पृथ्वी पर मानव के खड़े होने योग्य स्थान भी नहीं बचेगा। परिवार नियोजन का उद्देश्य इसी से स्पष्ट हो जाता है।

3. **जीवों की संख्या में स्थिरता (Stability in the number of living beings)**– जीवों मे सन्तानोत्पत्ति की कितनी भी प्रचुर क्षमता हो, उनकी कुल संख्या स्थिर रहती है, उसमें अधिक परिवर्तन नहीं होता, क्योकि अनेक जीव प्रजनन के योग्य होने से पहले ही समाप्त हो जाते है जिसका मुख्य कारण रोग, शत्रु, वातावरण तथा जीवन–संघर्ष है। उदाहरण के लिए, बड़ी मछलियाँ या अन्य माँसाहारी जन्तु 'कॉड' (Cod) मछलियों के अण्डों को खा जाते हैं। कुछ अन्य अण्डे भी अन्य कारणों से वयस्क नहीं होते। अतः उनकी संख्या लगभग स्थिर रहती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राणियों में सन्तानोत्पत्ति की अपार क्षमता होते हुए भी प्रकृति में उनकी संख्या एक औसत सीमा में स्थायी तथा सन्तुलित बनी रहती है।

4. **जीवन–संघर्ष (Struggle for existence)**– जनसंख्या की दर अधिक बढ़ने के कारण भोजन, जीवन तथा आवास के लिए प्राणियों में एक सक्रिय संघर्ष उत्पन्न होता है। यह संघर्ष प्राणियों में मुख्यतः तीन प्रकार का होता है–

   (i) सजातीय (Intra–Specific)– वह संघर्ष जीवित रहने के लिए एक ही जाति के सदस्यों के बीच होता है, क्योंकि जाति के सभी सदस्यों की आवश्यकताएँ एक–सी होती है। इस प्रकार सभी सदस्यों को एक–सा भोजन, रहने का स्थान तथा संगम–साथी (Mating-Specific) चाहिए। इस प्रकार के संघर्ष में शक्ति सम्पन्न सदस्य अपनी ही जाति के निर्बल/कमजोर सदस्यों को समाप्त कर अनेक सुख–सुविधाओं को ग्रहण करते है, जैसे कि– एक क्रस्टेशियन (Crustacean) लोबस्टर (Lobster) के कृत्रिम विकास (Artificial development) यदि नवजात लोबस्टर के शिशुओं को तुरन्त पृथक् जलाशय (Reservior) में नहीं रखा जाता है तब वे एक–दूसरे को मार कर खा जाते है।

   (ii) अन्तर्जातीय (Inter-specific)– एक ही स्थान पर रहने वाली दो या दो से अधिक जातियाँ अपनी आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करती है। इस संघर्ष में शक्तिशाली जाति निर्बल जाति को अधिक क्षति पहुँचाकर अनेक सुविधाओं का लाभ प्राप्त करती है। यदि हम 2002 की **वार्षिक पुस्तिका** (Year Book) का अध्ययन करें तब हम पायेंगे कि वर्ष 2002 मे वन्य प्राणियों ने 3,457 मनुष्यों, विषैले सर्पों ने 21,402 मनुष्यों को मार डाला। इस प्रकार मनुष्य ने 30,247 वन्य जन्तुओं एवं 55 हजार से अधिक सर्पों को मारा।

   (iii) वातावरण सम्बन्धी (Environmental)– विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तु सदा वातावरण से संघर्ष करते रहते हैं। अनुकूल वातावरण में यह संघर्ष कम होता है, परन्तु विपरीत वातावरण में

कठिनाइयाँ अधिक आती हैं तथा यह संघर्ष बढ़ जाता है। यह संघर्ष पृथ्वी, वायु, पानी, वायु में नमी तथा ताप से होता है। वायु, पानी, वर्षा, तूफान, बाढ़, सर्द लहर, (cold wave), गर्म लहर (Heat wave), या लू (Heat waves), भूकंप ज्वालामुखी आदि से अनेक जानवरों, मनुष्य, पक्षी, सरीसृप प्राणी आदि की मृत्यु हो गई है। 2003 में मई माह के भूकंप से लगभग 1,500 से अधिक मनुष्यों की मृत्यु हो गई है।

5. **योग्यतम की उत्तरजीविता (Survival of the fittest)**– आवश्यकताओं के लिए उत्पन्न जीवन–संघर्ष में योग्यता की सदा जीत होती है तथा दुर्बल जीव सदैव ही नष्ट हो जाते है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे दो पहलवानों में जीत अधिक शक्तिशाली तथा कुशल की होती है। अतः प्राकृतिक संघर्ष में वातावरण के अनुकूल जीवों के जीवित रहने तथा प्रतिकूल जीवों के नष्ट होने के इस प्रक्रम को **प्रकृति वरण** (Natural selection) कहते हैं। **हरबर्ट स्पेन्सर** (Herbert Spencer) के अनुसार, इसे **'योग्यतम की उत्तरजीविता'** (Survival of the fittest) कहते हैं। सरीसृपों (Reptiles) में इसका उदाहरण मिलता है। करोड़ों वर्ष पहले मध्यजीवी काल (Mesozoic era) में बहुत से शाकाहारी भीमकाय सरीसृप पृथ्वी पर रहते थे। वह सरीसृपों का स्वर्णयुग कहलाता था। कुछ तो 100 फीट से भी अधिक बड़े यह भीमकाय सरीसृप (डायनोसोर) वातावरण में परिवर्तन के कारण नष्ट हो गये, क्योकि उनको शाकाहारी भोजन उपलब्ध नहीं था। मौसम शुष्क हो गया तथा पानी की कमी हो गई जिससे वे भूखे मर गये, क्योकि वह वातावरण के बदलते हुए रूप के अनुसार अपने को अनुकूल नहीं बना पाये।
6. **बदलते हुए वातावरण में परिवर्तन की क्षमता (Capability to change with the environment)**– वातावरण सदा ही परिवर्तनशील है अतः जीवों में स्वयं को वातावरण के अनुकूल बनाने की क्षमता होनी चाहिए, क्योंकि जो जीव स्वयं को वातावरण के अनुकूल बना लेते है, वही जीवित रह पाते हैं।
7. **नयी जाति की उत्पत्ति (Origin of new species)**– वातावरण के कारण जीवों में जो भिन्नताएँ आती है वे माता–पिता से सन्तान में चली जाती है। डार्विन के मतानुसार कुछ पीढ़ीयों बाद सन्तान में ये विभिन्नताएँ इतनी स्पष्ट हो जाती है। जिनके कारण सन्तानें इनके पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलते रहने पर अपने पूर्वजों से भिन्न लगने लगती है तथा इस प्रकार एक नयी जाति की उत्पत्ति होती है। उदाहरण के लिए, शेर, चीता, तेंदुआ तथा बाघ आदि रचना तथा स्वभाव में इतने मिलते–जुलते है कि सभी एक ही पूर्वजों से विकसित हुए लगते हैं, परन्तु धीरे–धीरे होने वाली विभिन्नताओं के कारण एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न हो गये हैं। इसी प्रकार घोड़ों, कुत्तों, कबुतरों आदि की बहुत सी जातियाँ हमें दिखायी देती है।

4.3.5 (क) डार्विनवाद की आलोचना (Criticism of Darwinism)

कुछ समय के लिए डार्विनवाद काफी असरदार रहा, परन्तु फिर **वैज्ञानिकों** ने इसके पक्ष तथा विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत किये। उनके आलोचकों ने उनके विचारों का गलत अर्थ लगाया। उन्होंने डार्विनवाद की आलोचना में काफी प्रश्न उठाये, परन्तु उनका समाधान नहीं किया। उनके सिद्धान्तों में पायी जाने वाली कुछ कमियाँ इस प्रकार हैं–

1. डार्विन ने विभिन्नताओं की उत्पत्ति एवं कारणों पर कोई प्रकाश नहीं डाला।
2. ऐसे अंग जो जीव–जन्तुओं में पूरी तरह से विकसित अवस्था में होते हैं वही लाभदायक होते हैं, अर्द्ध–विकसित अंग नहीं। अतः ऐसे अंगों की उत्पत्ति उत्परिवर्तन (Mutation) द्वारा अकस्मात् हो जाती है, प्राकृतिक चयन द्वारा क्रमिक रूप से नहीं होती।
3. कुछ वैज्ञानिकों ने ऐसे उदाहरण भी दिये हैं जिनमें उपयोगी अंगों का विकास इस सीमा तक हुआ है कि वह हानिकारक सिद्ध हुआ। उदाहरण के लिए, आयरलैण्ड के **बारहसिंगों** (Irush Elks) में सींग पीढ़ी–दर–पीढ़ी विकसित होकर इतने बड़े हो गये कि यह जाति के लिए विनाश एवं विलोप (Extinction) का कारण बने। स्वीडोलोन (swedolon) श्रेणी के चीतों का विनाश भी दाँतों के अत्याधिक विकसित होने से हुआ। यह दाँत विकसित होकर इतने बड़े हो गये थे कि झाड़ियों में उलझ जाते थे तथा चीते शत्रुओं से अपनी रक्षा नहीं कर पाते थे।
4. डार्विन के सिद्धान्त ने योग्यतम की उत्तरजीविता (Survival of the fittest) को स्पष्ट किया लेकिन योग्यतम के आगमन (Arrival of the fittest) को स्पष्ट नहीं किया।
5. डार्विन का सिद्धान्त उन सूक्ष्म विभिन्नताओं (Variations) पर आधारित था लेकिन इनकी वंशागति नहीं होती, अर्थात् डार्विन को दैहिक (Somatic) एवं जनिक (Germinal) विभिन्नताओं में अन्तर का ज्ञान नहीं था।
6. डार्विन के सिद्धान्त मे न्हासी विकास (Degeneration) का कोई विवरण नही दिया।
7. डार्विन के सिद्धान्त ने संयोजी कड़ियों (Connecting link) की अनुपस्थिति का विवरण नहीं दिया।
8. डार्विन का सिद्धान्त किसी विशिष्ट अंग या लक्षण पर कार्य नहीं करके सम्पूर्ण शरीर पर प्रभाव डालता है।
9. डार्विन का सिद्धान्त जलीय जीवन से स्थलीय प्राणियों की उत्पत्ति की व्याख्या नहीं करता है।
10. **आनुवंशिकी** (Genetics) से यह स्पष्ट है कि केवल वंशानुगत लक्षण ही माता–पिता से सन्तानों में जाते हैं। यह लक्षण जनन कोशिकाओं (Germcells) के गुणसूत्रों (Chromosomes) के जीन्स से सम्बन्धीत होते हैं, परन्तु डार्विन के समय तक वैज्ञानिकों को आनुवांशिकी का ज्ञान नहीं था,

टिप्पणी

अतः डार्विन तथा वैलेस एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाने वाली विभिन्नताओं में भेद नहीं कर सके। उन्होंने वातावरणीय विभिन्नताओं के कारण उत्पन्न हुई छोटी–छोटी विभिन्नताओं तथा उपार्जित लक्षणों में भेद नहीं कर सके। उन्होने वातावरणीय विभिन्नताओं को अस्थिर (Fluctuating) विभिन्नताओं के प्राकृतिक चयन के लिए **'कच्चा माल'** (Raw material) बताया।

11. विभिन्न प्रकार की विभिन्नताओं की वंशानुगति को स्पष्ट करने के प्रयास में सन् 1863 में डार्विन ने **पेन्जेनीसिस सिद्धान्त** (Pangenesis Theory) का प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया कि शरीर के सभी भाग (कोशिकाएँ) अपनी सूक्ष्म प्रतिलिपियाँ (Miniature copies) बनाकर रूधिर में छोड़ते रहते है जिन्हे **पैन्जीन्स या मुकुलकों (जैम्यूल** – Pangenes or Gemmule) का नाम दिया तथा बताया कि यही जनदों (Gonads) में एकत्र होकर युग्मक कोशिकाएँ (Gametes) अर्थात् शुक्राणु (Sperms) एवं **अण्ड** (Ova) बनाती हैं।
12. जन्तुओं में समन्वित रचनाओं के समूहों (Sets of coordicates structures) के बारे में डार्विन ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया। उदाहरण के लिए, पक्षियों में पंखों का विकास किसी एक प्रारम्भिक विभिन्नता के कारण लगातार प्राकृतिक चयन से हुआ, परन्तु पंखों के साथ इनमें सम्बन्धीत पेशियों, अस्थियों, रुधिर वाहिनियों, स्नायुओं (Ligaments) तथा तन्त्रिकाओं (Nerves) आदि के विकास के बारे में डार्विन ने कोई मत स्पष्ट नहीं किये।

4.3.6 (ड) नव–डार्विनवाद (Neo-Darwinism)

डार्विन के सिद्धान्त को नयी खोजों के आधार पर रूपान्तरित किया गया, जिसे **नव–डार्विनवाद** (Neo-Darwinism) कहते हैं। **डी व्रीज** (De Vries), **वीजमैन** (Weismann), **मेण्डेल** (Mendel) तथा कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने इसका समर्थन किया। नव–डार्विनवाद के अनुसार जीवों की उत्पत्ति तथा जैव–विकास निम्नलिखित तथ्यों पर आधरित है–

1. **उत्परिवर्तन (Mutation) के कारण उत्पन्न विभिन्नताएँ (Variation)–** इसके द्वारा 'नयी जातियों की उत्पत्ति' किसी जाति विशेष में सदस्यों के जीन्स (Genes) में परिवर्तन होने से होती है। जीन्स में उत्पन्न परिवर्तन आनुवंशिक लक्षणों में परिवर्तन उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार उत्पन्न परिवर्तन **उत्परिवर्तन** या **म्युटेशन** कहलाते हैं। जीन्स अथवा गुणसूत्रों मे हुए अचानक परिवर्तन को **उत्परिवर्तन** (Mutation) कहते हैं।
2. **लैंगिक जनन के समय जीन की पुनर्व्यवस्था के कारण उत्पन्न भिन्नताएँ– मेण्डल** (Mendel) ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया जीव के लक्षण गुणसूत्रों (Chromosomes) तथा जीन क्रिया (Gene action) पर निर्भर करते हैं। वास्तव में, वंशानुगति की इकाई **'जीन'** (Gene) है जो एक–दूसरे को सन्दूषित नहीं करती। इनका संयोगिक अपव्यूहन (Random assortment) तथा पुनर्गठन (Recombination) मिओसिस (Meiosis) के समय होता है जिसके परिणामस्वरूप लैंगिक जनन के द्वारा सन्तान में विभिन्नताएँ (Variations) हो जाती है।

3. **जैव–विकासीय परिवर्तनों का उत्पन्न होना–** फिशर (Fisher) द्वारा प्राकृतिक चयन के कारण किसी भी लक्षण के अधिक उपयोगी जीन पर प्रभावी (Dominant) होते हैं। प्रकृति में उत्परिवर्तन की दर को **उत्परिवर्तन दबाव** (Mutation pressure) कहते हैं तथा प्राकृतिक चयन जिस दर से होता है उसे **चयन दाब** (selection pressure) कहते हैं।

इस प्रकार नव–डार्विनवाद के अनुसार जैव–विकास किसी एक कारण के द्वारा नहीं होता है वरन् कई कारण एक साथ मिलकर प्रकृति में जैव–विकासीय परिवर्तन लाते हैं जो निम्नलिखित है–

(i) उत्परिवर्तन दाब

(ii) चयन दाब

(iii) आनुवंशिक गति तथा अन्य छोटे–छोटे कारण।

4.3.7 लैमार्कवाद तथा डार्विनवाद की तुलना (Comparison between Lamarckism and Darwinism)

लैमार्कवाद तथा डार्विनवाद की तुलना जिराफ के उदाहरण से की जा सकती है।

लैमार्कवाद (Lamarckism)	डार्विनवाद (Darwinism)
लैमार्क के अनुसार वर्तमान जिराफ के पूर्वजों में गर्दन तथा अग्र पाद छोटे होते थे, क्योंकि इन्हें पृथ्वी पर पर्याप्त मात्रा में भोजन मिल जाता था, परन्तु जब पृथ्वी पर घास–फूँस की कमी होने लगी तो उन्हें वृक्षों से पत्तियाँ खाने के लिए अपनी गर्दन तथा अगली टाँगों को अधिक उचकाना पड़ता था। अतः ऊँचे पेड़ों की पत्तियों तक पहुँचने के लिए इनकी अगली टाँगें तथा गर्दन पीढ़ी–दर–पीढ़ी लम्बी होती गयी।	डार्विन के अनुसार जब घास–फूँस की कमी हुई तो जीवन–संघर्ष में प्राकृतिक चयन के कारण वही सदस्य जीवित रहे जिनकी गर्दन तथा टाँगें अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक लम्बी थीं। इन्ही सदस्यों में अधिक सन्तानोत्पत्ति हुई तथा अगली पीढ़ीयों में अधिक से अधिक सदस्य अपेक्षाकृत लम्बी गर्दन तथा टाँगों वाले होने लगे। प्राकृतिक चयन के फलस्वरूप पीढ़ी–दर–पीढ़ी छोटी गर्दन वाले पूर्वजों से लम्बी गर्दन तथा लम्बे अग्र पादों वाले जिराफों की उत्पत्ति हुई।

4.3.8 जननद्रव्य सिद्धान्त (Germplasm Theory)

अगस्त वीज़मान (August Weisman, 1983-1914) ने अपने सिद्धान्त के द्वारा **जननद्रव्य** (Germplasm) एवं **कायिकद्रव्य** (Somatoplasm) में अन्तर या भेद को स्पष्ट किया। वीज़मान का सिद्धान्त कोशिकाविज्ञान (Cytyology) से पूर्व ही स्थापित हो चुका था। लेकिन वीज़मान का यह जननद्रव्य सिद्धान्त 1892 में प्रकाशित हुआ था। वैज्ञानिक ने दर्शाया कि वह परिवर्तन जो जननद्रव्य में पाये जाते हैं वह सन्तति में स्थानान्तरित हो जाते है और परिवर्तनों को **वंशागत विभिन्नताएँ** (Heritable variation) कहते हैं। यह विभिन्नताएँ उद्विकास का स्त्रोत होती हैं।

वीज़मान के अनुसार जननद्रव्य, लैंगिक कोशिकाओं (Germ Cells) में पाया जाता है, तथा शेष भाग को काय (Soma) कहते हैं। जननद्रव्य में वंशागत पदार्थ

आइडेन्ट (Idant) के रूप में प्रदर्शित होता है। अधिकांश प्राणियों में इनकी संख्या गुणसूत्रों (Chromosomes) के समान होती है, लक्षणों की वंशानुगति कुछ निर्धारकों (Determinants) या बायोस्फीयर (Biosphere) नामक इकाईयों पर निर्भर करती है। किसी भी प्राणी के अन्तिम लक्षणों की वंशानुगति निर्धारक (Determinants) प्राणियों की गतिविधियों एवं विकास के समय प्राप्त वातावरणीय (Environment) कारकों की परस्पर अभिक्रियाओं के कारण होती है।

वीजमान के जननद्रव्य सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार है–

1. **जनिक द्रव्य एवं कायिकद्रव्य (Germplasm and Somatoplasm)**– वीज़मान ने दर्शाया कि जीवों में दो प्रकार का **प्ररस/प्रोटोप्लाज्म** (Protoplasm) पाया जाता है– (अ) **जननिक द्रव्य** (Germplasm)– यह प्ररस या प्रोटोप्लाज्म केवल लैंगिक कोशिकाओं (Germ cell) में पाया जाता है, जो संततियों (Offspring) में स्थानान्तरित होता है। (ब) **कायिकद्रव्य** (Somatoplasm) वह प्रोटोप्लाज्म/प्ररस जो शरीर के शेष भाग में पाया जाता है और आनुवंशिका (Heredity) में कोई भूमिका नहीं निभाता है। दो पैतृकों (Parents) की जनन कोशिकाएँ, प्रजनन के समय आपस में संयुग्मन कर जाइगोट (Zygote) या **निषेचित अण्डे** (Fertilized egg) को निर्मित करती हैं। परिवर्धन के समय जाइगोट (Zygote) विभाजित होता है और सन्तति कोशिकाओं को निर्मित करता है। प्रत्येक सन्तति कोशिका (Daughter cell) में समान मात्रा में जननिक द्रव्य पहुँचता है। इस प्रकार जननिक द्रव्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरन्तरता बनी रहती हैं। वर्ष 1885 में वीजमान ने ही **जननद्रव्य की निरन्तरता का सिद्धान्त** (Theory of continuity of germplasm) प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के द्वारा जनन कोशिकाओं तथा दैहिक/कायिक कोशिकाओं में अन्तर और स्पष्ट हो गया।
2. **निर्धारक की उपस्थिति (Presence of determinants)**– **जननद्रव्य** (Germplasm) में सूक्ष्म जटिल संरचनाएँ पायी जाती है। इन संरचनाओं को निर्धारक (Determinants) कहते हैं। इन निर्धारकों की तुलना वर्तमान में कोशिका के केन्द्रक में पाये जाने वाले गुणसूत्रों से की जाती है। जीवों की विशेषता/लक्षण निर्धारकों के द्वारा सूक्ष्म कार्यिकीय इकाई (Physiological units) – **डिटर्माइनर्स** (Determiners) के रूप में प्रदर्शित होती है। यह डिटर्माइनर्स आनुवंशक (Gene) के बराबर होते है। एक ही जाति के निर्धारक समान होते हैं। यदि एक भी निर्धारक परिवर्तित हो जाये तब उत्पन्न होने वाली सन्तति थोड़ी भिन्न होगी। इस प्रकार वीज़मान के जननद्रव्य सिद्धान्त का आधार निर्धारक होता है। निर्धारक, पोषण वृद्धि एवं प्रजनन करने योग्य होता है।
3. **जननद्रव्य का अमरत्व (Immortality of Germplasm)**– **जननद्रव्य** अमर होता है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में समसूत्री विभाजन (Mitotic division) के द्वारा पहुँचता है। जनन कोशिकाएँ (Germ cells) माध्यम का कार्य करती है जिनके द्वारा जननद्रव्य की निरन्तरता (Continuity) एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में बनी रहती है। दैहिक कोशिकाएँ

जीवित रहती हैं परन्तु बाद में मृत हो जाता है, जबकि जनन कोशिकाएँ (Germ cells) विभव रूप से (Potentially) **अमर** (Immortal) होती है। इस कारण केवल जनन कोशिकाओं (Germ cells) के द्वारा ही मस्तिष्क की पीढ़ीयों में वंशागत लक्षणों का संवहन होता है। जीवों में जनन कोशिकाएँ ही जातियों (Species) को बनाए रखती है। केवल वे ही उत्परिवर्तन (Mutations) पाये जाते है, जिनकी उत्पत्ति जननद्रव्य द्वारा होता है तथा उत्परिवर्तन जो प्राणियों ने प्राप्त किये वह वंशागत का भाग हो जाता है।

जननद्रव्य में इड्स (Ids) पाये जाते है, ये **निर्धारक बायोफोर** (Determinants biophores) नामक इकाईयों से मिलकर बने होते हैं। यह सन्तति में लक्षणों के विकास के लिए उत्तरदायी होते हैं निशेचित अण्ड में **'इड्स'** नर एवं मादा दोनों ही पैतृकों से समान मात्रा में प्राप्त होते हैं। एक ही जाति के इड्स (Ids) समान होते है।

कुछ एक कोशिका वाले प्राणी– प्रोटोजोआ प्राणियों में न केवल जननद्रव्य का ही वरन पूर्ण शरीर का विभाजन हो जाता हैं। मुकूलन (Budding) के द्वारा प्रजनन करने वाले प्राणी सन्ततियों में केन्द्रक (Nucleus) एवं कोशिकाद्रव्य का भाग छोड़ देते है। इसी प्रकार की स्थिति अलैंगिक (Asexual) प्रकार से प्रजनन करने वाले प्राणियों में पायी जाती है। कुछ प्राणियों–केंचुआ (Earthworm), प्लेनेरिआ (Planeria) आदि में शरीर का कोई भाग, शरीर से पृथक् होकर **पुनरुद्भवन** (Regeneration) के द्वारा नये नये प्राणी में परिवर्तित हो जाता है। इन उदाहरणों के द्वारा यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि शरीर के कायिक भाग को जीवित अवस्था में रखने के लिए जननद्रव्य (Germplasm) की उपस्थिति आवश्यक होती है।

4.3.9 जनन चयन सिद्धान्त (Germinal Selection Theory)

प्रकृति में निरन्तर होने वाली छोटी–छोटी लाभदायक विभिन्नताओं के संग्रहण से जैव–विकास/उद्विकास होता है। यही विभिन्नताओं को प्रकृति के द्वारा चुन लिया जाता है। वीज़मान के सिद्धान्त के अनुसार जननद्रव्य (Germplasm) में होने वाली विभिन्नताएँ ही संग्रहित होकर विकास करती हैं। इसको स्पष्ट करने के लिए प्राकृतिक चयन (Natural selection) के सिद्धान्त को पूर्णता स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार **जनन चयन सिद्धान्त** प्रतिपादित हुआ।

वीज़मान ने दर्शाया कि जननद्रव्य निर्धारक एवं बायोफोर से मिलकर बनता है। जननद्रव्य की यह जीवित इकाईयाँ हैं, इन इकाईयों (units) की वृद्धी एवं प्रजनन के लिए पोषण कि आवश्यकता होती है। इन इकाईयों मे से कुछ इकाईयों या निर्धारकों को पोषण अधिक प्राप्त होता है, तब इन इकाईयों की वृद्धि शीघ्र और अधिक मात्रा में होती है तथा जिन निर्धारकों को पोषण कम प्राप्त होता है वह निर्धारक दुर्बल रह जाता है। यदि निर्धारकों में पोषण की यह असमानता निरन्तर बनी रहती है, तब इस प्रकार के प्रभाव को देखा जा सकता है। इस प्रकार निर्धरकों में जीवन संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। प्राकृतिक चयन जननद्रव्य

टिप्पणी

(Germplasm) से सम्बन्धीत होता हैं। जब विभिन्नताएँ या उत्परिवर्तन जननद्रव्य (Germplasm) में आ जाते है, तब एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशागत द्वारा संवहन होता है। वैज्ञानिक **थामसन** के अनुसार वीज़मान सिद्धान्त प्राकृतिक चयन सिद्धान्त के अतिरिक्त किसी भी अन्य सिद्धान्त से महत्वपूर्ण होता है। प्राणियों के लक्षणों की वंशानुगति निर्धारकों, प्राणियों की गतिविधियों एवं परिवर्धन/विकास के समय उपलब्ध वातावरणी कारकों का परस्पर अभिक्रियाओं के कारण होती है।

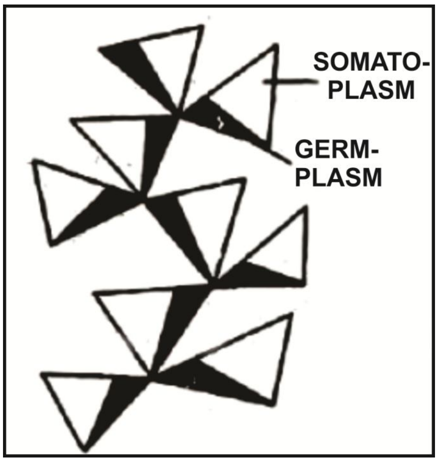

चित्र क्र. 4.9: Diagram to Illustrate the Continuity of the Germplasm-Each Triangle Represents an Individual made up of Germplasm (Dotted) and Somatoplasm (Undotted) Continuity of Germplasm is shown by Arrow

4.3.10 जननद्रव्य सिद्धान्त की आपत्ति (Objections to Germplasm Theory)

जननद्रव्य सिद्धान्त केवल परिकल्पित (Speculative) विचारधारा है। इस सिद्धान्त का न तो कोई प्रायोगात्मक प्रमाण है और न ही किसी भी प्रयोग द्वारा प्रमाणित किया गया है। इस कारण इस सिद्धान्त को अमान्य किया गया है।

डार्विन का पेन्जीवाद परिकल्पना
(Hypothesis of Darwins Pangenesis)

डार्विन ने प्राकृतिक चयन का सिद्धान्त (Natural selection theory) प्रतिपादित किया, लेकिन कुछ समय पश्चात् डार्विन ने यह महसूस किया कि इस सिद्धान्त में आनुवांशिकी के वास्तविक आधार की कमी है। इस कारण डार्विन (Darwin) ने **1885 में पेन्जीनवाद का सिद्धान्त** (Theory of Pangenesis) को प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के द्वारा डार्विन ने विभिन्नताओं की आनुवंशिकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया। वर्तमान समय में इस सिद्धान्त को अमान्य किया है। पेन्जीनवाद को निम्न बिंदुओं के द्वारा स्पष्ट किया जाता है–

1. प्राणियों के शरीर की सभी कायिक कोशिकाएँ सूक्ष्म कणों को उत्पन्न करती है, इनको **पैन्जीन** (Pangene) कहते हैं या **जैम्म्यूल** (Gemmule) कहते

हैं। यह रुधिर के द्वारा संवाहित होते हैं और जनन कोशिकाओं में संग्रहित होते हैं।

2. **प्रत्येक जनन कोशिका (Germ cell) अपने पैतृक–** माता या पिता के शरीर की सूक्ष्म संरचना है, जिनके द्वारा माता/पिता के समान नई सन्तति का विकास होता है।
3. पैन्जीन (Pangene) या जैम्म्यूल (Gemmule) विकास की प्रत्येक अवस्था में निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं। नई सन्तति की पैन्जीन एवं पुराने पैन्जीन में एक प्रकार प्रतिस्पर्धा निरन्तर होती रहती है।
4. कुछ **पैन्जीन** या **जैम्म्यूल** लंम्बी अवधि तक सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं तथा अनेक लम्बे अन्तराल के पश्चात् या फिर अनेक पीढ़ीयों (Generation) के पश्चात अपने पूर्वजों (Ancester) के लक्षण प्रकट कर सकते हैं।

पैन्जीनवाद सम्बन्धीत उपर्युक्त बिंदुओं के अनुसार शरीर की प्रत्येक कायिक कोशिका (Germ cell) केवल संग्रहण का कार्य करती है। लेकिन वीज़मान के जननद्रव्य के सिद्धान्त के अनुसार कायिक कोशिका (Somatic cells) एवं जनन कोशिकाएँ (Germs cells) की संरचना एवं कार्य भिन्न–भिन्न होते हैं। अतः डार्विन के पैन्जीनववाद का कोई आधार नहीं है, यह सिद्धान्त केवल ऐतिहासिक महत्व का है। इस सिद्धान्त पर विचार के पश्चात् डार्विन के सिद्धान्त एवं लैमार्क के सिद्धान्त में कोई भिन्नता या अन्तर ज्ञात नहीं होता है। उपार्जित लक्षणों की वंशागति को अप्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित करता है। **चित्र 4.10** के द्वारा लैमार्कवाद, डार्विन के सिद्धान्त एवं वीज़मान के सिद्धान्त को स्पष्ट किया है।

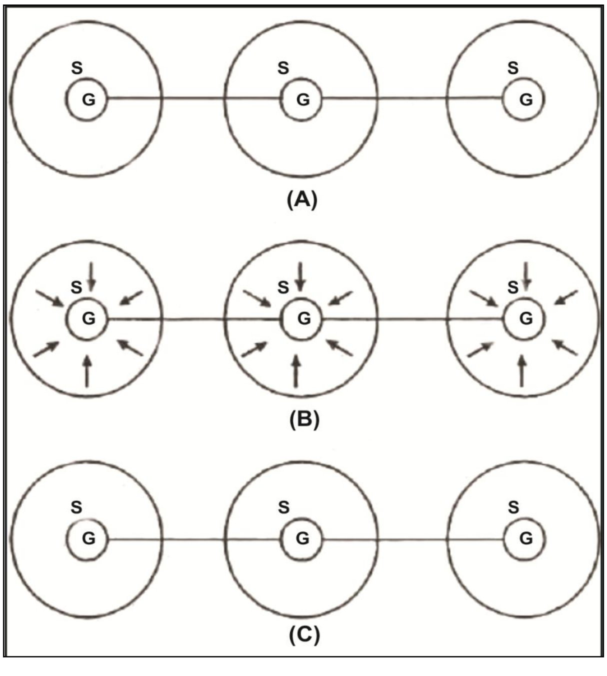

चित्र क्र. 4.10: Comparison of Lamarck's (A) Pan-genesis Theory, (B) Germplasm Theory, (C) G, Represents Germplasm; S, Represents Somato plasm

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

1. लैमार्कवाद का मूल आधार है–
   (अ) विभिन्नताएँ (ब) प्राकृतिक चयन
   (स) उपार्जित लक्षणों की वंशागति (द) योग्यतम की अतिजीविता।
2. योग्यतम की उत्तरजीविता के विचार के मूल प्रवर्तक हैं–
   (अ) वैलेस (ब) डार्विन
   (स) स्पेन्सर (द) मेण्डल।
3. कौनसा सिद्धान्त डार्विन के नाम से सम्बन्धीत है?
   (अ) उपार्जित लक्षणों की वंशागति
   (ब) एक युग्मक में तुलनात्मक जोड़ीदार लक्षणों में एक ही का जीन होना
   (स) जीवन संघर्ष में योग्यतम की उत्तरजीवित
   (द) प्रत्येक कोशिका की उत्पत्ति पहले से विद्यमाप कोशिका से होती है।
4. 'जीव जातियाँ की उत्पत्ति' नामक पुस्तक कौन से सन् में छपी?
   (अ) 1859 में (ब) 1956 में
   (स) 1809 में (द) 1858 में।
5. डार्विन के सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी जिसकी सबसे बड़ी आलोचना हुई है–
   (अ) इसमें जीवों में सन्तानोत्पत्ति की क्षमता को बहुत बढ़ा–चढ़ाकर बताया गया
   (ब) इसमें अंगों की व्याख्या नहीं दी गई
   (स) इसके विभिन्नताओं के साथ आनुवंशिकता की गणना नहीं की गई
   (द) इसमें पूर्व से ही मानना पड़ता है कि पृथ्वी पर वातावरणीय दशाएँ बदलती रहती है।
6. नव–डार्विनवाद के अनुसार कौनसा कारक जैव–विकास के लिए जिम्मेदार हैं?
   (अं) उत्परिवर्तन (ब) संकरण
   (स) लाभदायक विभिन्नताएँ (द) उत्परिवर्तन एवं चयनवाद

टिप्पणी

7. डार्विन ने जीव जन्तुओं की उत्पत्ति किसके द्वारा बताई?

   (अ) प्राकृतिक चयन के　　(ब) उत्परिवर्तन के

   (स) उपार्जित लक्षणों के　　(द) प्रसंकरण के

8. जैव–विकास पर लैमार्क का मत था–

   (अ) पूर्वजों के लक्षणों की वंशागति

   (ब) उपार्जित लक्षणों की वंशागति

   (स) अवशेषी लक्षणों की वंशागति

   (द) उत्परिवर्तित लक्षणों की वंशागति

9. जननद्रव्य का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया था?

   (अ) डार्विन　　(ब) लैमार्क

   (स) डी व्रीज　　(द) वीज़मान

4.4 विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त उत्परिवर्तन, विभिन्नता, पृथक्करण एवं जाति उद्भवन (Modern Synthetic Theories of Evolution Mutation, Variation Isolation and Speciation)

4.4.1 विकास का आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Modern Synthetic Theory of Evolution)

जीवन की उत्पत्ति आदि से वर्तमान तक जिज्ञासा का विषय रही है। जीवन क्या है, जीवन की उत्पत्ति कब, किस प्रकार और किन परिस्थितियों में तथा किस रूप में हुई? आदिकाल से आज तक वैज्ञानिक यह जानने का प्रयास करते रहे हैं कि ब्रम्हाण्ड की उत्पत्ति तथा पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति कब, कैसे और कहाँ हुई? पृथ्वी के तीनों वातावरण में जल, थल तथा वायु में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के असंख्य जीव–जन्तुओं की उत्पत्ति कैसे हुई तथा विभिन्न जीव जातियों का विकास किस प्रकार हुआ?

"जैव–विकास वह जटिल प्रक्रिया है जिसमें सरल जीवों से जटिल जीवों का विकास हुआ है।"

जैव–विकास के आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त की नींव **डोबजान्स्काई** (Dobzhansky, 1973) की पुस्तक 'आनुवांशिकी तथा जीव–जातियों की उत्पत्ति' (Genetics and the Origin of Species) मे पड़ी। इसे यह नाम **जुलियन हक्सले** (J. Huxley, 1942) ने दिया। **मुलर** (Muller 1949), **फिशर** (1958), **हैल्डैन**

टिप्पणी

(Haldane, 1932), **राइट** (Wright, 1968) **मेयर** (Mayer, 1942) आदि वैज्ञानिकों ने इस कार्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

आधुनिक जीव–वैज्ञानिक जैव–विकास (Organic Evolution) को एक प्राकृतिक तथ्य मानते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने नव–डार्विनवाद (Neo-Darwinism) को ही आनुवंशिकता के नवीन सिद्धान्तों से आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त के रूप मे उभारा है।

आधुनिक संश्लिष्टवाद (Modern synthetic theory) के अनुसार–

1. जीवों के लक्षण जीन्स द्वारा नियन्त्रित होते हैं। ये जीन्स गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं।
2. जीन्स तथा गुणसूत्रों में होने वाले परिवर्तन जीवों के लक्षणों में परिवर्तन पैदा करते हैं।
3. यदि ये परिवर्तन जर्मप्लाज्म (गैमीट, जाइगोट या जनन अंगों की कोशिकाओं) में होते हैं तब आगामी पीढ़ी में वंशानुगत हो जाते हैं। यह परिवर्तन पीढ़ी–दर–पीढ़ी एकत्रित होते जाते हैं।
4. इस प्रकार बने जीन संयोग (Gene combinations) यदि जीवों के लिए उस वातावरण में उपयोगी होते हैं, तो प्रकृति इन नये जीन संयोग वाले जीवों को चुन लेती है।
5. इन जीवों की जीवात्म क्षमता (Survival Value) अधिक होने के कारण इनकी संख्या में अधिक वृद्धि होती है और ये नये जीन संयोग वाले जीव नयी जाति बनाते हैं।

इसके अनुसार जीवों में उपस्थित विभिन्नताओं के आधार पर प्राकृतिक चयन एवं जननिक पृथक्करण (Reproductive isolation) को लागू कर जीव आबादियों को नयी–नयी अनुकूलित दिशाओं की ओर मोड़ते हैं जिससे नवीन जीव–जातियों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जैव–विकास के आधुनिक संश्लेषणामक सिद्धान्त अग्रलिखित पाँच मूल प्रक्रियाओं पर आधारित है–

1. जीन उत्परिवर्तन (Gene mutation)
2. गुणसूत्रों की रचना एवं संख्या में परिवर्तन (Changes in structure and number of Chromosomes)
3. जीन पुनःमिश्रण (Genetic recombination)
4. प्राकृतिक चयन (Natural selection)
5. जननिक पृथक्करण (Natural selection)

उपर्युक्त मूल प्रक्रियाओं में से प्रथम तीन मूल प्राक्रियाएँ भिन्नताओं (Genetic variation) को जन्म देती हैं और शेष दोनों मूल प्रक्रियाएँ जैव–विकास (Organic evolution) की प्रक्रिया को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है–

1. **जीन/आनुवंशक (Gene Mutations)**– डी.एन.ए. अणु (Molecule) में न्यूक्लियोटाइड की संख्या या विन्यास में होने वाले परिवर्तनों को आनुवंशक

उत्परिवर्तन कहते हैं, यह सामान्य आनुवंशक की अभिव्यक्ति को परिवर्तित कर देते है। आनुवंशक उत्परिवर्तन भिन्नता के प्रमुख स्त्रोत (Source) या कारक (Factor) है।

टिप्पणी

यद्यपि कुछ आनुवंशक उत्परिवर्तन उग्र होते हैं, लेकिन अधिकांश इतने उपेक्ष्य या छोटे होते हैं कि उनकी उपस्थिति का मान करना कठिन है। इन उत्परिवर्तन की कोई निश्चित दर नहीं होती। एक उत्परिवर्तित आनुवंशक विभिन्न दिशाओं में निरन्तर उत्परिवर्तित होकर विभिन्न प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। यह बहुगुणित एलील के माध्यम से किसी जीवधारी के अनेक गुणों को विभिन्न सीमाओं तक प्रभावित कर सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ आनुवंशक उत्परिवर्तन होने के पश्चात् प्रतिवर्त्य उत्परिवर्तन (reverse mutation) द्वारा पुनः अपनी प्रारम्भिक अवस्था में वापस आ सकते है।

सामान्यता उत्परिवर्तन (Mutation) एक समय में एक ही आनुवंशक में होता है, परन्तु एक जाति के प्रत्येक युग्मक में (Gamete) असंख्य आनुवंशक उपस्थित होते हैं उस जाति में करोडों की संख्या में प्राणी होते हैं, अतः उस जाति में उत्परिवर्तन (Mutation) के माध्यम से आनुवंशिक भिन्नताओं के पर्याप्त अवसर होते हैं।

2. **गुणसूत्रों की संरचना एवं संख्या में परिवर्तन (Changes in structure and Number of chromosomes)–** गुणसूत्रों (Chromosomes) पर आनुवंशक एक रेखित क्रम में स्थित होते हैं। गुणसूत्रों पर स्थित यह आनुवंशकों की संख्या अथवा विन्यास के परिवर्तन द्वारा गुणसूत्रों की संरचना में परिवर्तन होने की प्रक्रिया को **गुणसूत्रीय विपथन** (Chromosomal aberrations) या गुणसूत्री उत्परिवर्तन (chromosomal mutation) कहते हैं। गुणसूत्रों में संख्यात्मक परिवर्तनों (Numerical changes) को विषमगुणिता (Heteroploidy) कहते हैं।

   गुणसूत्रों में संरचनात्मक परिवर्तन द्विगुणन (Duplication), न्यूनता (Deletion), स्थानांतरण (Translocatioms), व्युत्क्रमण (Inversion) के द्वारा होते हैं। गुणसूत्रों (chromosomes) में संख्यात्मक परिवर्तन (Numerical changes) बहुगुणिता (Polyploidy) या अगुणिता (Haploidy) के द्वारा उत्पन्न होते हैं। गुणसूत्रों में यह संरचनात्मक एवं संख्यात्मक परिवर्तन वंशानुगत होते हैं। आनुवंशकों का यह क्रम किसी भी प्राणी के लिए हानिकारक या लाभदायक हो सकता हैं। इन गुणसूत्रीय परिवर्तनों के कारण नई जातियों (Species) की उत्पत्ति होती है।

3. **जीन पुनः मिश्रण (Genetic recombination)–** जीन पुनः मिश्रण जैव–विकास में एक प्रमुख प्रक्रिया है जो जीन विभिन्नताओं के द्वारा किसी जीव की आबादीं में विविधताओं की वृद्धि करता है। पुनः मिश्रण उत्परिवर्तनों के साथ जैव–विकास के लिए मूल पदार्थ प्रदान करते है। पुनः मिश्रण के द्वारा आनुवंशकों के संयोजन से विषमजात (Heterozygous) जीवों का विकास होता हैं

टिप्पणी

जीन पुनः मिश्रण की प्रक्रिया प्रजनन (Sexual reproduction) के समय होती है। युग्मक निर्माण (Gemete formation) के समय अर्धसूत्री विभाजन होता है, इसके अन्तर्गत मातृ एवं पितृ गुणसूत्रों में संयुग्मन (Synapsis) होता है। इसके पश्चात् यह गुणसूत्र पृथक् हो जाते हैं। इस समय इनमें पारस्परिक आनुवंशक विनिमय (Crossing over) के कारण नये आनुवंशक–विन्यास निर्मित होते हैं और प्राणियों में विभिन्नताएँ (Variations) उत्पन्न होती हैं। इन विभिन्नताओं के कारण नई जातियों के विकास की सम्भावनाएँ विकसित होती है।

4. **प्राकृतिक चयन (Natural selection)**– प्राकृतिक चयन में उन सभी शक्तियों (Process) का समावेश किया गया है जिनके द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि किसी भी प्राणी में किस प्रकार एवं किस दिशा में परिवर्तन (changes) होते हैं। वह प्राणी जिनमें आनुवंशक संयोग द्वारा लाभदायक विविधताएँ उत्पन्न होती हैं वह जीवित बचते हैं। प्रकृति में हानिकारक विविधताओं वाले प्राणी क्रमशः विलुप्त (Extinct) हो जाते हैं।

   प्राकृतिक चयन में लाभदायक विविधताओं के कारण नई जातियों का विकास होता है।

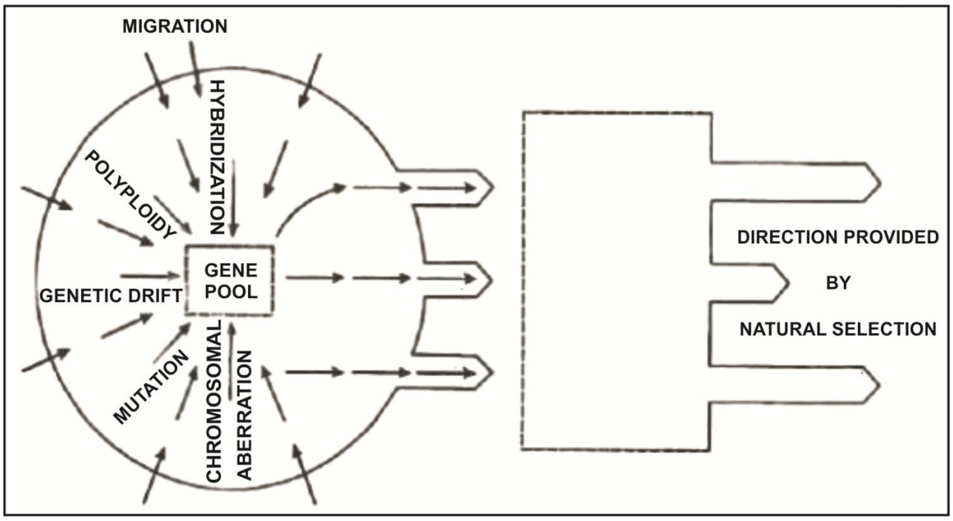

चित्र क्र. 4.11: Representation of the Evolutionary changes in Species

5. **जननीय पृथक्करण (Reproduction Isolation)**– किसी भी जाति के प्राणियों की जनसंख्या का छोटी–छोटी इकाईयों में विभाजन होने की क्रियाओं को पृथक्करण (Isolation) कहते हैं। यह पृथक्करण प्राकृतिक अवरोधों एवं मनोवैज्ञानिक (Psychological), शरीर–क्रियात्मक (Physiological), भौगोलिक (Geographical) होते हैं। पृथक्करण के कारण इन प्राणियों की जनसंख्या के विभिन्न समूहों में साथ रहने पर भी परस्पर जनन क्रिया नहीं होती, इसके कारण नई जातियों की उत्पत्ति होती है। पृथक्करण जैव–विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारक है और नई जातियों के विकास में सहायक होता है। सन् 1965 में **सिम्पसन** (Simpson, 1965) ने दर्शाया कि

टिप्पणी

पृथक्करण एक हानिकारक क्रिया है, एक समूह आपस में मिलने में असमर्थ होने के कारण धीरे–धीरे नष्ट होने लगते हैं।

उपर्युक्त प्रक्रियाओं के अतिरिक्त जैव–विकास में निम्निलिखित दो अन्य प्रक्रियाएँ भी सहायक होती हैं। यह प्रक्रियाएँ है– **'प्रवास'** (Migration) एवं संकरण' (Hybridization) प्राणियों के एक समूह से दूसरे समूह में एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन की क्रिया को प्रवास कहते हैं। सम्बन्धीत जातियों में आपस में प्रजनन की विधि के द्वारा संकरण (Hybridization) होता है। इन विधियों के द्वारा भी आनुवंशक पुनः मिश्रण होता है एक जाति के आनुवंशक कोशिका में दूसरी जाति के आनुवंशक का समावेश होने के कारण नई जातियाँ (New species) विकसित होती हैं। यह कहा जा सकता है कि जैव–विकास एक जटिल प्रक्रिया है, इसमें विभिन्न प्रक्रमों एवं कारकों का एक जटिल समुच्चय कार्य करता है।

किसी विशिष्ट क्षेत्र में पायी जाने वाली जाति के सभी सदस्यों के विभिन्न प्रकार के जीन्स मिलकर जाति विशेष की जीन राशि (Gene pool) बनाते हैं। यह जीन राशि जाति के सभी सदस्यों में विभिन्नता के लिए तो जिम्मेदार है, परन्तु इससे जैव–विकास की स्पष्टता का पता नहीं लगता है। यह जीन राशि निम्नलिखित प्रक्रियाओं द्वारा जैव–विकास में अपना योगदान देती है–

1. **स्थानान्तरण (Migration)**– जाति की एक आबादी से दूसरी में सदस्यों का स्थानान्तरण।
2. **प्रसंकरण (Hybridization)**– दो मिलती–जुलती जातियों में परस्पर जनन।
3. **आनुवंशिक अपवाहन (Genetic Drift)**– कभी–कभी प्राकृतिक विपदाओं जैसे अकाल, बाढ़, तूफान, महामारी आदि के कारण किसी जाति विशेष की जीनी राशि (Gene pool) में कमी आ जाती है जिससे नयी पीढ़ी के सदस्यों को मूल जाति के सभी लक्षण प्राप्त नहीं होते हैं, अतः इन सदस्यों के जीनी ढाँचे में जाति के सामान्य जीनी ढाँचे से कुछ न कुछ विभिन्नता आ जाती है। इसी को आनुवंशिक अपवाहन कहते हैं।

किसी जाति के जीन राशि में ही परिवर्तन मात्र से नयी जातियों की उत्पत्ति नहीं हो जाती। यह तो जैव–विकास में कच्चे माल (Raw material) की भाँति कार्य करता है जिस पर प्राकृतिक चयन कार्य करता है। अर्थात् इनमें से कुछ अपने आप को बदलती हुई वातावरणीय दशाओं के प्रति अनुकूलित करने में सक्षम होते हैं तथा कुछ कम व कुछ बिलकुल अनुकूलित नहीं करते हैं इस प्रकार इन जीवों एवं जातियों का प्राकृतिक चयन हो जाता है और इन्ही जीन राशि वाले जीवों को जनन का अधिकाधिक अवसर प्राप्त होता है और इसके आनुवंशिक लक्षणों का अधिक प्रसार होता हैं

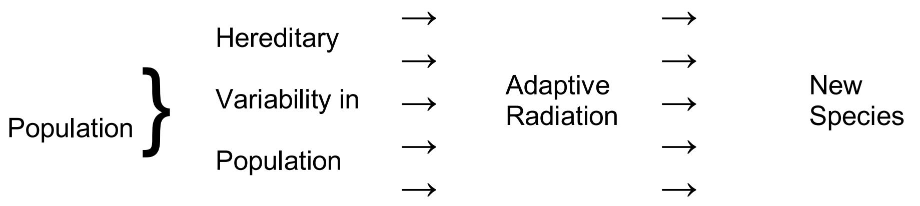

चित्र क्र 4.12: Diagrammatic Representation of Mechanism of Evolution of New Species

कभी–कभी भौगोलिक एवं जलवायुवीय अवरोधों के कारण एक जाति के सदस्यों का पृथक्करण हो जाता है जहाँ उन आबादियों पर उन क्षेत्रों की वातावरणीय दशाओं का प्राकृतिक चयन कार्य करता है इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों की आबादियाँ विभिन्न दशाओं में विकसित होकर नवीन जातियों की उत्पत्ति का आधार बनती है। इसी को अपसारी जैव–विकास (Divergent Evolution) कहते हैं।

आधुनिक जैव–विकास से सम्बन्धीत कुछ नियम

1. **एलेन का नियम (Allen's Rule)**– अधिक ठण्डे प्रदेशों में रहने वाले जन्तुओं के शरीर के खुले भागों में कान, पाद, पूँछ आदि अंग छोटे होते हैं, ताकि इनके माध्यम से शरीर के ताप की कम हानि हो।
2. **बर्गमैन का नियम (Bergman's rule)**– ठण्डे प्रदेशों में रहने वाली नियततापी (Warm blooded) जन्तुओ का शरीर अधिकाधिक बड़ा होता है।
3. **कोप का नियम (Cop's Law)**– जन्तु–शरीर एवं उसके अंगों में वृद्धि करने की प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है।
4. **डोलो का नियम (Dollo's Law)**– जैव–विकास कभी उल्टा नहीं होता है।
5. **ग्लोगर का नियम (Gloger's Law)**– गर्म तथा नम प्रदेशों के नियततापी जन्तुओं में मिलैनिन (Melanin pigment) पदार्थ अधिक होता हैं
6. **गॉसी का नियम (Gause's Law)**– ऐसी दो जीव–जातियाँ जिनकी वातावरणीय दशाएँ बिलकुल समान नहीं होती है, अनिश्चित काल तक एक ही स्थान पर नहीं रह सकती है।

माइक्रो जैव–विकास (Micro evolution)– किसी क्षेत्र विशेष की एक जाति की आबादी में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तन ही माइक्रो जैव–विकास कहलाते है। ये परिवर्तन आबादी में सतत् (Continuous) तथा नियमित होते है। ये परिवर्तन संरचनात्मक, व्यवहारात्मक एवं क्रियात्मक हो सकते है।

मैक्रो–जैव–विकास (Macro evolution)– परीवर्तन वातावरणीय दशाओं के कारण आबादियों में उत्पन्न विभिन्न मापों की अनुकूलन क्षमता आबादी के बड़े समूहों को छोटे–छोटे समूहों मे बाँट देती है। इस प्रकार पृथक हुए यह छोटे–छोटे समूह अपने पूर्वजों से भिन्न हो जाते हैं और नवीन जातियों की उत्पत्ति का आधार बनते हैं।

आबादियों में होने वाले ये परिवर्तन बदलती हुई वातावरणीय दशाओं के अनुकूल होते हैं जिससे उनमें विभिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं जो प्राकृतिक चयन का कारण बनती हैं।

क्रिक का आधुनिक मत (Recent View of F.H.C. Crick)

नोबेल पुरस्कार विजेता क्रिक ने 1982 मे अपनी पुस्तक 'लाइफ इटसेल्फः इट्स ओरिजिन एण्ड नेचर' (Life Itself : Its Origin and Nature) में जीव की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला। उनके अनुसार पृथ्वी की उम्र जीवन की उत्पत्ति के लिए समुचित समय नहीं है। उनका विश्वास है कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड में कहीं और हुई है। इस प्रकार ऐसे अनुकूल वातावरण में जीवन का विकास हुआ जो प्रारम्भिक दिनों में पृथ्वी पर नहीं था। यह जीवन सर्वप्रथम पृथ्वी पर प्रोकेरियोटिक, यूकेरियोटिक माइक्रोब तथा शुक्राणु के रूप में रॉकेट द्वारा पृथ्वी पर भेजे गये। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त को 'डायरेक्ट पेन्सपर्मिया का सिद्धान्त' कहा गया। क्रिक के अनुसार हालाँकि इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए आसानी से कोई प्रमाण नही मिल सकता, फिर भी यह कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर जीवन का उद्भव एक विरल तथा अद्भुत घटना है जिसे चमत्कार ही कहा जा सकता है।

उत्परिवर्तन (Mutation)

"किसी जीव में अचानक वंशानुगत होने वाले आनुवंशिकीय परिवर्तन को उत्परिवर्तन (Mutation) कहते हैं"

अथवा

"यह एक ऐसी घटना है जो समजीवी रूप में एक आनुवंशिक एकान्तरण उत्पन्न करती है।"

म्यूटेशन (Mutation), ग्रीक शब्द 'Mutare से बना है जिसका अर्थ 'परिवर्तन होना' (To change) होता है। जीव शरीर में वंशानुगति के कारण उत्पन्न होने वाले सभी परिवर्तनों को उत्परिवर्तन (Mutation) में शामिल किया जाता है। वर्तमान समय में उत्परिवर्तन का अर्थ उन परिवर्तनों से लगाया जाता है जिसके कारण आण्विक स्तर पर जीन रासायनिक संरचना में परिवर्तन हो जाता है। इन्हे सामान्यता जीन का उत्परिवर्तन कहते है। दूसरे शब्दों में, उत्परिवर्तन को इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं 'कि **आनुवंशिक पदार्थ के कारण जीन–शरीर में होने वाले आकस्मात् परिवर्तन उत्परिवर्तन कहलाते है'।** जीन्स या गुणसूत्र (Chromosomes) में यकायक परिवर्तन **गुणसूत्री उत्परिवर्तन** (Chromosomal mutation) कहलाते हैं। यह एक ऐसी घटना है जो समजीवी रूप में एकान्तरण उत्पन्न कर देती है। जीवों में उत्परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले जीव को **उत्परिवर्ती** (Mutant) कहते हैं। जीवों की जीन सरंचना (Genotype) में यकायक आए गुणात्मक (Qualitative) या मात्रात्मक (Quantitative) परिवर्तन के कारण होने वाली विभिन्नताओं (Variation) को उत्परिवर्तन (Mutation) कहते हैं।

टिप्पणी

जीन उत्परिवर्तन का सर्वप्रथम उदाहरण **सेथ राइट** (Seth Wright) ने 1791 में दिया था, इस वैज्ञानिक ने भेड़ के मेमने के छोटे पैरों को देखकर उत्परिवर्तन पर विचार दर्शाए थे।

उत्परिवर्तन का सर्वप्रथम अध्ययन एक डच वैज्ञानिक हयुगो डी व्रीज (Hugo De Vries, 1901) ने किया। इन्होंने सान्ध्य प्रिमरोज (Evening Primrose) या **इनोथेरा लैमार्कियाना** (Oenothera lamarckiana) नामक पौधों को अपने अध्ययन का विषय बनाया। यह हॉलैण्ड में पाया जाने वाला जंगली पौधा है। इसमें प्रायः संध्या के समय पीले फूल खिलते हैं।

डी व्रीज ने आलू के एक खेत में प्रिमरोज लैमार्कियाना (Oenothera lamarckiana) नामक जंगली पौधे को उगते हुए देखा। इनमें कुछ पौधों में भिन्नता थी, जिनके कारण वे पौधे अपने जनकों से काफी भिन्न थे। **डी व्रीज** ने ऐसे पौधें के बीजों एवं जड़ों को लेकर अपनी प्रयोगशाला में उगाया और पाया कि इन बीजों से पिमरोज के विभिन्न सात प्रकार के पौधे प्राप्त हुए। उन्होंने इनकी कई पीढ़ीयों तक उनके गुणों का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कुछ पौधों के फूल, पत्तियाँ आदि साधारण पौधों से भिन्न थीं। उन्होने यह भी पाया कि कुछ लक्षण इनमें वंशानुगत भी हुए तथा कुछ पीढ़ी के पौधों में इतनी भिन्नता थी कि प्रिमरोज की नवीन जाति माना जा सकता था।

हयुगो डी व्रीज ने प्रिमरोज के पौधों में सात प्रकार के उत्परिवर्तन देखे। ये उत्परिवर्तन गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन के कारण थे। प्रिमरोज में गुणसूत्रों की संख्या 14 होती है। इन पौधों में गुणसूत्रों की संख्या 15, 16, 20, 22, 24, 26 तथा 28 तक थी। इन सभी को हयुगो डी व्रीज ने एक अलग जाति बताया।

उत्परिवर्तनों (Mutation) का कार्य 1910 में उस समय प्रारम्भ हुआ, जब वैज्ञानिक टी.एच. मॉर्गन (T.H. Morgan) ने फलमक्खी (Fruit fly) ड्रोसोफिला मेलैनोगेस्टर (Drosphila melanogaster) पर प्रयोग प्रारम्भ किए। इसके पश्चात् सम्पूर्ण विश्व के वैज्ञानिकों द्वारा लगभग 500 उत्परिवर्तनों को ज्ञात किया गया। ड्रोसोफिला में उत्परिवर्तनों की इस खोज के पश्चात् कृन्तकों/रोडेन्ट्स (Rodents), मटर (Pea), मुर्गियों (Hens), मनुष्य, गिनी पिग (Guinea pig) में भी उत्परिवर्तनों (Mutation) का अध्ययन प्रारम्भ किया। गत 50 वर्षों में **एश्रीकिया कोलाई** (Escherichia coli) एवं न्यूरोस्पोरा (Neurospora) तथा जीवाणुभेजियों (Bactriophage) आदि जीवों में मिलने वाले उत्परिवर्तनों में निरन्तर अध्ययन किया जाने लगा, क्योंकि यह उत्परिवर्तन के अध्ययन हेतु उपयुक्त थे।

ह्यूगो डी व्रीज ने सन् 1901 में **इनोथेरा लैमार्कियाना** *(Oenothera lamarckiana)* नामक पौधे पर किए गए प्रयोगों के आधार पर जैव–विकास के सम्बन्ध में पृथक सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसे **ह्यूगो डी व्रीज के उत्परिवर्तन सिद्धान्त** के नाम से जानते हैं। यह निम्नलिखित मुख्य तथ्यों पर आधारित है–

1. प्रकृति में उत्परिवर्तन सदैव होते रहते हैं।

2. नवीन जीव–जातियों की उत्पत्ति छोटी–छोटी व अस्थिर विभिन्नताओं के पीढ़ी संचय एवं क्रमिक विकास के फलस्वरूप नहीं होती है बल्कि एक ही बार में अकस्मात् परिवर्तनों के फलस्वरूप होती है।
3. उत्परिवर्तन वंशानुगत होते हैं।
4. जाति का प्रथम सदस्य जिसमें उत्परिवर्तन लक्षण विकसित होता है, उत्परिवर्तक (Mutant) कहलाता है।
5. उत्परिवर्तन अनिश्चित होते हैं, अतः किसी भी दिशा में बिना रोक–टोक के हो सकते हैं। ये किसी एक अंश विशेष में या साथ–साथ एक से अधिक अंगों में हो सकते हैं, जिसके कारण अंग कम या अधिक विकसित हो सकते हैं। या पूर्ण रूप से विलुप्त हो सकते हैं, या नए अंग बन सकते है।
6. उत्परिवर्तन जीव के लिए लाभदायक तथा हानिकारक दोनों प्रकार के हो सकते हैं।
7. एक जनन जाति के उत्परिवर्तनों द्वारा कई मिलती–जुलती जातियाँ एक ही साथ विकसित हो सकती हैं।
8. उत्परिवर्तन दीर्घ एवं आकस्मिक होते हैं।
9. उत्परिवर्तन से नई जातियों का विकास होता है।
10. उत्परिवर्तन पर प्राकृतिक वरण का प्रभाव पड़ता है।

उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutations)

जीवों के जीवन काल में होने वाले उत्परिवर्तनों को निम्नलिखित आधारों के अनुसार विभेदित/विभाजित कर सकते हैं–

(i) कोशिकाओं के प्रकार के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार (Types of Mutation of the basis of types of the cell)

(ii) गुणसूत्रों के आकार एवं लक्षणों/गुणों के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार (Types of mutation on the basis of size and quality of chromosomes)

(iii) समलक्षणी/फीनोटाइप के प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार (Types of Mutations on the basis of phenotypie effect)

(iv) उत्पत्ति के आधार पर उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutation on the basis of origin)

(v) स्वभाव के प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutation on the basis of their nature and their effect)

(vi) दिशा के आधार पर उत्परिवर्तन (Mutations according to their direction)

(vii) गुणसूत्रों के प्रकार के आधार पर उत्परिवर्तन (Mutations according to type of chromosomes)

(viii) घटित/प्राप्त होने की अवस्था के आधार पर उत्परिवर्तन (Mutations according to the stage at which they occur)

टिप्पणी

(ix) प्रभावी कारकों के आधार पर उत्परिवर्तन (Mutations according to the affecting factors)

(A) कोशिकाओं के प्रकार के आधार पर उत्पपरिवर्तनों के प्रकार (Types of Mutations on the Basis of the Types of the Cells)

शरीर कोशिकाओं के प्रकार के आधार पर उत्परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं–

उत्परिवर्तन के प्रकार

- (A) कोशिकाओं के प्रकार के आधार पर उत्परिवर्तन
  1. जर्मिनल उत्परिवर्तन
  2. कायिक उत्परिवर्तन
- (B) गुणसूत्रों के लक्षणों के आकार एवं गुणों के आधार पर उत्परिवर्तन
  1. जीन उत्परिवर्तन
  2.गूणसूत्रीय उत्परिवर्तन
- (C) फीनोटाइप के प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तन
  1. प्रभावी दृष्टिगत
  2. माध्यमिक दृष्टिगत
  3. आटोसोमल अप्रभावी दृष्टिगत
  4. लिंगसहलग्न दृष्टिगत
  5. घातक
  6. हानिकारक
- (D) उत्पत्ति के आधार उत्परिवर्तन
  1. स्वतः उत्परिवर्तन
  2. प्रेरित उत्परिवर्तन
- (E) स्वभाव के आधार पर उत्परिवर्तन
  1. जैव–रासायनिक उत्परिवर्तन
  2. कृत्रिम उत्परिवर्तन
- (F) दिशा के आधार पर उत्परिवर्तन
  1. प्रतिवर्ती उत्परिवर्तन
  2. अग्रस्थ उत्परिवर्तन
- (G) गुणसूत्रों के प्रकार के आधार पर उत्परिवर्तन
  1.अलिंग गुणसूत्रीय उत्परिर्वन
  2. लिंग सहलग्न उत्परिवर्तन
- (H) घटित होने की अवस्था के आधार पर उत्परिवर्तन
  1. युग्मकी उत्परिवर्तन
  2. युग्मजी उत्पपरिवर्तन
- (I) प्रभावी कारकों के आधार पर उत्परिवर्तन
  1. बहिर्जनित उत्परिवर्तन
  2. अन्तर्जनित उत्परिवर्तन

1. **जर्मिनल उत्परिवर्तन (Germinal Mutation)**– जब उत्परिवर्तन जनन कोशिकाओं (Reproductive cells) में उत्पन्न होते हैं तो उसे जर्मिनल उत्परिवर्तन कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–

   (i) युग्मनकी उत्परिवर्तन (Gametic Mutation)– इस प्रकार के उत्परिवर्तन सम्भवतः युग्मकजनन (Gametogenesis) के दौरान होते हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तन आनुवंशिक होते हैं और आनुवंशिकता के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। यह प्राकृतिक चयन के लिए कच्चा माल (Raw material) निर्मित करते हैं।

(ii) **युग्मनजी उत्परिवर्तन (Zygotic Mutation)**– इस प्रकार के उत्परिर्वन युग्मनज (Zygote) के विदलन (Cleavage) के दौरान होते हैं।

2. **कायिक उत्परिवर्तन (Somatic Mutation)**– इस प्रकार के उत्परिवर्तन जीव–शरीर में अकस्मात् कभी–कभी उसके जीवन काल में हो सकते हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तनों का प्रभाव केवल दैहिक कोशिकाओं (Somatic cells) पर होता है, अतः स्पष्ट है कि ये वंशानुगत नहीं होते हैं। कायिक उत्परिवर्तन का आनुवंशिक एवं उद्विकासीय महत्व नहीं होता है, क्योंकि केवल एकाकी कोशिका एवं उनकी सन्तति कोशिकाएँ ही उत्परिवर्तन से सम्बन्धीत होती हैं। यदि भ्रूणीय अवस्था में कायिक उत्परिवर्तन होता है तो उत्परिवर्तित कोशिकाएँ एक कोशिकाओं के समूह में दिखाई देती हैं और शरीर के कायिक कोशिकाओं के समूह के रुप में पायी जाती हैं। कायिक उत्परिवर्तन सामान्यतः कैन्सर वृद्धि से सम्बन्धीत दिखाई देते हैं। कायिक उत्परिवर्तन के उदाहरण मनुष्य एवं इनोथेरा लैमार्कियाना में पाया जाता है। कायिक उत्परिवर्तन के कारण मनुष्य में अनेक प्रकार के रोग होते हैं।

(B) आकार एवं गुणों के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार (Kinds of Mutation on the Basis of Size and Quality)

उपर्युक्त आधार पर उत्परिवर्तन निम्न प्रकार के होते हैं–

1. जीन उत्परिवर्तन (Gene Mutation)
2. गुणसूत्र उत्परिवर्तन (Chromosomal Mutation)
3. गुणसूत्र समूह के उत्परिवर्तन (Genomatic Mutation)

1. **जीन उत्परिवर्तन (Gene Mutation)**– इस प्रकार का उत्परिवर्तन किसी लक्षण विशेष के जीन में रासायनिक परिवर्तन के कारण होता है। इसमें जीन का मूल लक्षण बदल जाता है अतः इसे बिंदु उत्परिवर्तन (Point Mutation) भी कहते हैं।

मॉर्गन (Morgan, 1910) ने लाल नेत्र वाली ड्रोसोफिला मक्खियों की आबादी में अचानक एक सफेद नेत्र वाली नर मक्खी देखी। इस नर मक्खी का उन्होंने सामान्य लाल नेत्र वाली मक्खी से संकरण कराया और पाया कि सफेद नेत्र वाला लक्षण स्थायी व शुद्ध नस्ली था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस प्रकार के उत्परिवर्तन DNA अणु के किसी भाग में न्यूक्लियोटाइड (Nucleotides) की पुनर्व्यवस्था के कारण होते हैं। जीन उत्परिवर्तन (Gene Mutation) दो प्रकार का होता है–

(i) क्षार युग्म का प्रतिस्थापन (Base pair substitution)

(ii) फ्रेमशिफ्ट उत्परिवर्तन (Frame shift Mutation)

(i) **क्षार युग्म का प्रतिस्थापन (Base pair substitution)**– इस प्रकार के उत्परिवर्तन सामान्यताः अधिक पाए जाते हैं। इनमें DNA की पुनरावृत्ति या DNA के रिपेयर (Repair) के समय गलत क्षार

टिप्पणी

का प्रवेश हो जाता है। क्षार युग्म प्रतिस्थापन में ट्रिपलेट कोडॉन (Triplet codon) का कोई क्षार दूसरे क्षार द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है जिससे कोडॉन (Codon) परिवर्तित हो जाता है। **उदाहरणार्थ–**

सामान्य (Wild type) फ्रेम – CAT GAT CAT GAT CAT GAT CAT---

प्रतिस्थापन के बाद फ्रेम – A का प्रतिस्थापन G द्वारा

CAT GAT CGT GAT CAT GAT CAT----

Mutation by substitution

यदि उत्पवर्तित कोडॉन किसी अन्य अमीनो अम्ल के लिए कोडित होता है तो पॉलिपेप्टाइड शृंखला में अमीनो अम्ल का प्रतिस्थापन हो जाता है।

क्षार युग्म प्रतिस्थापन दो प्रकार के होते हैं–

(a) **ट्रान्जिशन (Transition)**– यह वह प्रतिस्थापन है जिसमें एक प्यूरिन (Purine) का प्रतिस्थापन दूसरी प्यूरिन द्वारा होता है। (A का G द्वारा या G का A द्वारा) तथा एक पिरिमिडीन (Pyrimidine) का प्रतिस्थापन दूसरी पिरिमिडीन द्वारा होता है (T का C द्वारा या C का T द्वारा)

$$A \rightleftharpoons G, \quad C \rightleftharpoons T$$

(b) **ट्रान्सवर्सन (Transversion)**– यदि प्यूरिन क्षार का प्रतिस्थापन पिरिमिडीन द्वारा व पिरिमिडीन का प्रतिस्थापन प्यूरिन द्वारा हो तो ऐसे प्रतिस्थापन ट्रान्यवर्सन कहलाते हैं।

$$A \rightleftharpoons T, \quad G \rightleftharpoons T, \quad C \rightleftharpoons G, \quad C \rightleftharpoons A$$

क्षार युग्म प्रतिस्थापन द्वारा उत्परिवर्तन सम्भवतः दो चरणों में होता है। माना कि एक DNA द्विक् सूत्र (Double strand) में एक प्यूरिन क्षार A का विस्थापन दूसरे प्यूरिन क्षार G के द्वारा हो जाता है (ट्रान्जिशन)। जब DNA की पुनरावृत्ति होगी तो यह दो शृंखलाएँ बनाएगा, एक सामान्य दूसरी उत्परिवर्तित, क्योंकि G हमेशा C के साथ जोड़ा बनाता है, उत्पवर्तित DNA में उत्परिवर्तन के बिंदू पर G-C होगा

प्रतिलोमन (Inversion)– जब DNA में कोई क्षार निकलकर फिर से उसमें प्रतिलोमित क्रम में निवेशित हो जाता है तो उसे प्रतिलोमन कहते हैं। **उदाहरणार्थ–**

सामान्य CAT GAT CAT GAT CAT GAT CAT----

उत्परिवर्तित CAT GAT TAC GAT CAT GAT CAT ----

टिप्पणी

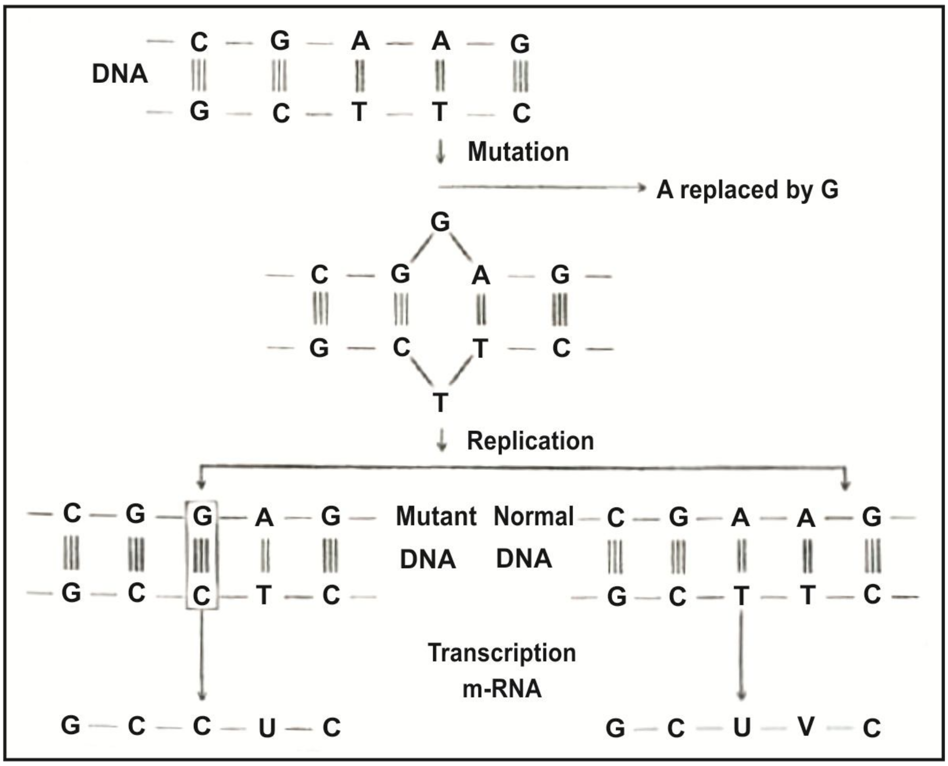

चित्र क्र. 4.13: **Base Substitution Resulting from Mutation**

(ii) फ्रेम शिफ्ट उत्परिवर्तन (Frame shift Mutation)– वह उत्परिवर्तन जिसमें एक या एक से अधिक क्षार या तो बाहर निकलती (Deletion) हैं या जुड़ जाती हैं (Insertion), फ्रेम शिफ्ट उत्परिवर्तन कहलाते हैं। इस उत्परिवर्तन को फ्रेम शिफ्ट नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि इसमें उत्परिवर्तन बिंदु के आगे जेनेटिक कोड की रीडिंग फ्रेम की स्थिति में परिवर्तन (Shift) हो जाती है। एक या दो क्षार के जुड़ने या बाहर निकलने से कोडॉन का क्रम पूर्णतः नया हो जाता है जिससे बिल्कुल भिन्न अमीनो अम्ल बनते हैं। परिणामस्वरूप प्रोटिन भी अलग प्रकार के संश्लेषित होते हैं जो सामान्यतया अक्रियाशील होते हैं। यह देखा गया है कि यदि रीडिंग फ्रेम में परिवर्तन तीन न्यूक्लियोटाइड (Nucleotide) द्वारा होता है तो प्रोटिन सामान्य बनता है, इसमें केवल एक अमीनो अम्ल या तो अनुपस्थित होता है या अतिरिक्त होता है।

डिलीशन (Deletion)– यदि एक न्यूक्लियोटाइड शृंखला से एक या अधिक क्षार बाहर हट जाते हैं तो वह डिलीशन कहलाता है। यह देखा गया है कि यदि एक भी क्षार हट जाता है तो प्रोटिन के लिए जो संदेश भेजा जा रहा है वह आउट ऑफ फ्रेम (Out of frame) होता जाता है और एक नया क्रम बनता है।

टिप्पणी

सामान्य संदेश: CAT GAT CAT GAT CAT GAT CAT ----

- C

संदेश जो आउट ऑफ CAT GAT ATG ATC ATG ATC फ्रेम हो जाते है: AT ----

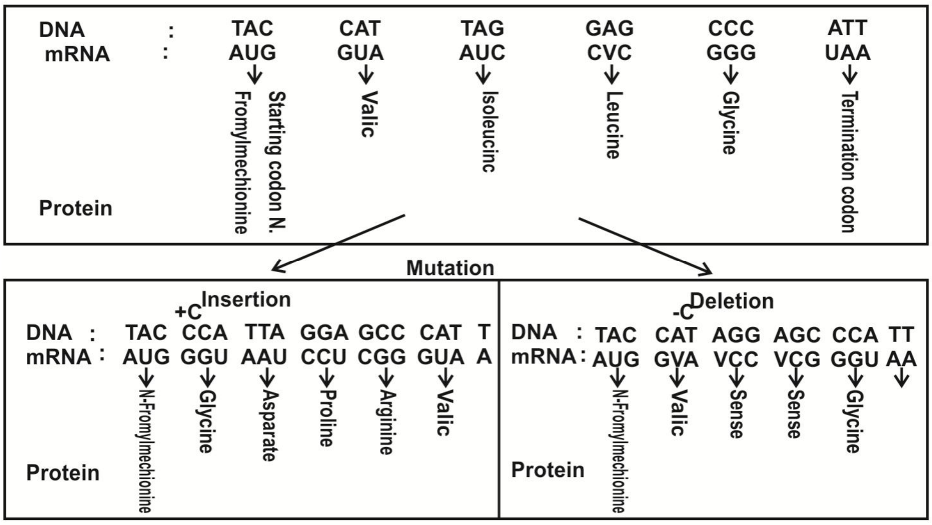

चित्र क्र. 4.14: **Diagrammatic Representation of Effect of Insertion or Deletion on mRNA.**

इन्सर्शन (Insertion)– आनुवंशिक संदेश एक या अधिक क्षार के जुड़ने से भी बाधित (Disturbed) हो जाता है।

उदाहरणार्थ–

सामान्य संदेश: CAT GAT CAT GAT CAT GAT CAT ----

+ G

संदेश जो आउट ऑफ CAT GAT GCA TGA TCA TGA **फ्रेम हो जाता है**: TCA ----

उत्परिवर्तन की निम्नलिखित समरुपता (Analogy) के द्वारा व्याख्या कर सकते हैं। माना कि आनुवंशिक सूचना (Genetic message) निम्नलिखित वाक्य में निहित है–

1. **"THE MAN WHO HAS ONE EYE CAN SEE YOU"**

   इस वाक्य में प्रत्येक शब्द में तीन अक्षर (Letter) एक कोडोन (Codon) को दर्शाते हैं।

2. यदि अक्षर 'W' को WHO सें हटा दिया जाये (विलोपन – Deletion), तब वाक्य होगा–

THE MAN HOH ASO NEE YEC ANS EEY OU -

MAN शब्द के पश्चात् वाक्य अर्थहीन (Meaningless) हो जाता है।

3. यदि अक्षर 'A' को शब्द MAN के पश्चात् जोड़ा जाए (Insertion-इन्सर्शन) तब भी वाक्य MAN के पश्चात् अर्थहीन हो जायेगा।

THE MAN AWH OHA SON EEY ECA NSE EYOU -

4. यदि WHO शब्द में से अक्षर 'H', 'U' अक्षर के द्वारा बदला जाता है (Substitution) तब वाक्य होगा–

THE MAN WUO HAS ONE EYE CAN SEE YOU -

तब वाक्य में एक शब्द WUO अर्थहीन होगा।

5. यदि शब्द WHO को परिवर्तित कर दिया जाये (प्रतिलोपन–Inversion) तब वाक्य होगा–

"THE MAN OHW HAS ONE EYE CAN SEE YOU"

इस वाक्य में केवल एक शब्द 'OHW' अर्थहीन होगा।

6. यदि शब्द WHO में से अक्षर 'W' को निकाल कर 'Z' अक्षर को ONE शब्द के पश्चात् जोड़ दिया जाये (विलोपन, इन्सर्शन–Deletion, Insertion) तब वाक्य होगा–

THE MAN HOH ASO NEZ EYE CAN SEE YOU

केवल वही शब्द जिसमें अक्षर का विलोपन एवं जोड़ा जाता है, अर्थहीन होते हैं।

केवल एक अमीनो अम्ल (Amino acid) **के परिवर्तन के कारण लक्षण प्ररूपी** (Phenotype) **पर अत्याधिक घातक प्रभाव होता है**– हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) जोकि मनुष्य के रक्त में उपस्थित लाल रक्त कणिकाओं (Red blood corpuscles) में पाया जाता है, एक प्रोटिन अणु (Molecule) होता है जिसमें 4 शृंखलाएँ (Chains) – 2 अल्फा (Alpha) एवं 2 बीटा (Beta) शृंखलाएँ होती हैं। इन शृंखलाओं में अमीनो अम्ल एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित होते हैं। सामान्य RBC तश्तरी (Disc) आकार के होते हैं। हिमोग्लोबिन (Haemoglobin) संरचना में परिवर्तन के कारण कुछ प्रकार की रक्तक्षीणता (Anaemia)– जैसे हँसियाकार कोशिका रक्तक्षीणता (Sickle cell anaemia) एवं हीमोग्लोबिन D रक्त क्षीणता (Haemoglobin D anaemia) पायी जाती है। हँसियाकार कोशिका रक्त क्षीणता में R.B.C. हँसिया आकार (Sickle shaped) के होने के कारण ऑक्सीजन दाब कम हो जाती है, इससे ऑक्सीजन संरचरण/परिवहन के लिए कम प्रभावी होती है। इसके परिणामस्वरुप मृत्यु हो जाती है। सामान्य हीमोग्लोबिन में अमीनो अम्ल, ग्लूटेमिक अम्ल (Glutamic acid) छठवी (Sixth) स्थिति में होती है। हँसियाकार कोशिका हीमोग्लोबिन C में (Lysine) जुड़ जाता है।

	1	2	3	4	5	6	7	8
A	Valine	histidine	Leucine	Theronine	Proline	Glutamic acid	Glutamic acid	Lysine
B	Valine	histidine	Leucine	Theronine	Proline	Valine	Glutamic acid	Lysine
C	Valine	histidine	Leucine	Theronine	Proline	Lysine	Glutamic acid	Lysine

हिमोग्लोबिन अणु के भाग छठवीं (Sixth) स्थिति में अमीनो अम्ल के अन्तर को दर्शाते हैं–

(A) सामान्य हिमोग्लोबिन (Normal haemolgobin)

(B) हँसियाकार कोशिका हिमोग्लोबिन (Sickle haemoglobin)

(C) हिमोग्लोबिन C (Haemoglobin C)

अर्थहीन/मिससेन्स उत्परिवर्तन (Missense Mutation)– अर्थहीन उत्परिवर्तन (Missense mutation) वह होता है जो कि एक पॉलिपेप्टाइड (Polypeptide) श्रृंखला में एक अमीनो अम्ल, दूसरे अमीनो अम्ल के द्वारा परिवर्तित होता है। उत्परिवर्तन के परिणामस्वरूप एक कोडोन (Codon) में एक क्षार, दूसरे क्षार के द्वारा प्रतिस्थापित होता है। **अर्थहीन उत्परिवर्तन** (Mutation) प्रतिस्थापित (Substitution), विलोपन (Deletion), या इन्सर्शन (Insertion) के कारण होता है।

अर्थहीन उत्परिवर्तन (Missense mutation) प्रतिस्थापित के द्वारा होते हैं, इसमें प्रोटिन अपने सामान्य प्रतिरूप (Counterpart) से एक अमीनो अम्ल (Amino acid) के कारण भिन्न होते हैं। इस प्रकार के प्रोटिन्स के द्वारा सामान्य जैविक क्रिया को करते हैं। **फिनायलएलेनीन** (Phenylalanine) में एक कोडोन (Codon) 'UUU' होता है। एकल क्षार प्रतिस्थापित (U→G) के कारण UGC- सिस्टीन (Cysteine) के कोडोन में परिवर्तित हो जाता है। अतः उत्परिवर्तन के पश्चात् जो प्रोटीन निर्मित होता है तब यह सामान्य प्रोटिन के समान होता है, केवल फिनायलएलेनीन (Phenylalanine) के स्थान पर **सिस्टीन** (Cysteine) प्रतिस्थापित होता है। लगभग ज्ञात आधे से अधिक मानव हीमोग्लोबिन में अमीनो अम्ल का प्रतिस्थापन होता है जिसमें एकल क्षार ट्रान्सवर्सन (Transversion) होता है।

नानसेन्स उत्परिवर्तन (Nonsense Mutation)– अमीनो अम्ल (Amino acid) के 64 कोडोन्स (Codons) में से 61 कोड (Code), जबकी तीन अन्तस्थ कोडोन्स (Termination codons) ऐसे होते हैं जोकि किसी भी अमीनो अम्ल को स्पष्ट नहीं करते हैं। तीन अन्तस्थ कोडोन्स (Termination codon) UAA, UAG एवं UGA होते हैं। एक कोडोन (Codon) जो एक अमीनों अम्ल (Amino acid) की अन्तस्थ कोडोन (Termination codon) से विशिष्टता दर्शाते हैं,

उत्परिवर्तन के परिणामस्वरूप परिवर्तित होता है। इसको **नॉनसेन्स उत्परिवर्तन** (Nonsense mutation) कहते हैं। जैसे कि यदि UAC कोडोन (टायरोसिन के लिए) एक क्षार प्रतिस्थापन (C→ G) करता है वह एक अन्तस्थ कोडोन UAG हो जाता है।

एक नॉनसेन्स उत्परिवर्तन (Nonsense Mutation) अन्तस्थ बिंदु पर पॉलिपेप्टाइड (Polypeptide) का संश्लेषण करता है। इसके परिणामस्वरूप पॉलिपेप्टाइड श्रृंखला जो संश्लेषित होती है वह अपूर्ण होती है। इस प्रकार की श्रृंखला जैविकी रूप से अक्रियाशील होती हैं क्योंकि एक नॉनसेन्स उत्परिवर्तन (Nonsense mutation) संश्लेषित होने वाले एन्जाइम में अत्याधिक रूप से परिवर्तन करता है जोकि लक्षण प्ररूप (Phenotype) से अर्थहीन उत्परिवर्तन की अपेक्षा अधिक घातक प्रभाव दर्शाते हैं।

पॉलिपेप्टाइड श्रृंखला (Polypeptide chain) का संश्लेषण 5'–3' दिशा में होता है। इस कारण नॉनसेन्स उत्परिवर्तन 5' सिरे के पास एक छोटी श्रृंखला में बदलती है, जिसमें कोई जैविक क्रिया नहीं होती है। इसके विपरीत 3' सिरे के पास नॉनसेन्स उत्परिवर्तन एक पूर्ण श्रृंखला में परिवर्तित होती है, जिसमें अनेक सामान्य जैविकी क्रियाएँ पायी जाती हैं।

अन्तस्थ कोडोन में उत्परिवर्तन (Mutation in termination codon)– कुछ उत्परिवर्तन, नॉनसेन्स उत्परिवर्तन (Nonsense mutation) के विपरीत भी होते हैं। अतः एक उत्परिवर्तन अन्तस्थ कोडोन (Termination codon) को सेन्स कोडोन (Sense codon) में परिवर्तित कर सकता है। मुख्य रूप से अमीनो अम्ल (Amino acid)– मानव हिमोग्लोबिन की श्रृंखला सामान्य रूप से 141 अमीनो अम्ल अवशेषी लम्बी होती है। उत्परिवर्तन U → C अन्तस्थ कोडोन (Terminal codon) UAA से CAA तक ग्लूटेमीन कोडोन (Glutamine codon) परिवर्तित कर देती है। श्रृंखलीय संश्लेषण (Chain synthesis) सामान्य अन्तस्थ बिंदु होता है और 172 अमीनो अम्ल युक्त पॉलिपेप्टाइड श्रृंखला (Polypeptide chain) को निर्मित करता है।

सुप्त उत्परिवर्तन (Silent Mutation)– कोई भी जीन उत्परिवर्तन (Gene mutation) जो लक्षण प्ररूपी (Phenotype) को अभिव्यक्त नहीं करता है, सुप्त उत्परिवर्तन (Silent mutation) कहलाता है। सुप्त उत्परिवर्तन अनेक प्रकार के होते हैं–

1. **आनुवंशिक कूट (Genetic code)** ऱ्हासित होता है, अर्थात् एक से अधिक कोडोन (Codon) एक अमीनो अम्ल को स्पष्ट करता है। जैसे कि दोनों AAG एवं AAA लाइसिन की व्याख्या करते हैं। यदि कोडोन AAG में उत्परिवर्तन AAA से होता है, फिर AAA कोडोन लाइसिन (Lysine) को स्पष्ट करता है। जब

उत्परिवर्तन त्रिक् कूट (Triplet codon) वास्तविक में अमीनो अम्ल के समान होता है तब अमीनो अम्ल में कोई परिवर्तन नहीं होगा। यह उत्परिवर्तन सुप्त प्रकार (Silent type) का होगा, क्योंकि DNA क्षार क्रम में परिवर्तन होता है, लेकिन जो प्रोटिन संश्लेषित होता है उसके अमीनो अम्ल के क्रम में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

2. **कोडोन (Codon)** में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अमीनो अम्ल का प्रतिस्थापन (Substitution) होता है, लेकिन यह इतना काफी नहीं होता कि प्रोटिन के कार्य को रूपान्तरित कर सके।
3. उत्परिवर्तन जीन में होता है जोकि क्रियाशील नहीं होता है या उसका प्रोटिन परीक्षण के एक चरण तक आवश्यक नहीं होती है।
4. निरन्तर अधिलंघन उत्परिवर्तन (Suppressor mutation) की उपस्थिति के कारण उत्परिवर्तन के सुप्त होने के कारण होता है। आनुवंशिक अधिलंघन (Suppression) में विभिन्न स्थल पर दूसरा उत्परिवर्तन, प्रथम उत्परिवर्तन के प्रभाव को नष्ट कर देता है।

आनुवंशिक अधिलंघन/विलोपन (Genetic Suppression)– लक्षण प्ररूपी (Phenotype) पर उत्परिवर्तन, विपरीत भी हो सकता है जिसके कारण सामान्य प्रकार (Wild type) वापस प्राप्त होता है। इस प्रकार विपरीत उत्परिवर्तन अधिलंघन या विलोपन (Suppression) के कारण या उलटफेर (Reversion) के कारण होता है।

यदि वास्तविक व्युत्क्रमण/उलटफेर (Reversion) में मूल आनुवंशिक परिवर्तन होता है AC → A उत्परिवर्तन कोडोन GCU (एलेनीन–Alanine) से GAU (ऐस्पार्टेट–Aspartate) तक परिवर्तित होगा। इसके परिणामस्वरूप निर्मित एन्जाइम अक्रियाशील (Inactive) हो जाता है। वास्तविक व्युत्क्रमण (True reversion) में A →C व्युत्क्रमित उत्परिवर्तन एलेनीन (Alanine) के कोडोन GAU → GCU को बनाए रखता है। इस प्रकार का उत्परिवर्तन उल्टा उत्परिवर्तन (Back mutation) कहलाता है। यदि अधिलंघन (Suppression) विभिन्न स्थल पर होता है तथा उत्परिवर्तन का लक्षण प्ररूपी (Phenotype) का निवारण होता है। वास्तविक व्युत्क्रमण, अधिलंघन (Suppression) से भिन्न होता है, केवल अधिलंघनीय उत्परिवर्तक पुनः संयोजन उत्पन्न करते हैं, जिससे उत्परिवर्तित लक्षण प्ररूपी पुनः प्राप्त होता है। अधिलंघन उत्परिवर्तन दो प्रकार के हाते हैं–

अन्तरा आनुवंशिकीय अधिलंघन/विलोपन (Intrageneic Suppression)– उत्परिवर्तन दूसरे या अन्य उत्परिवर्तन के कारण उसी जीन में विलोपित हो जाता है। यह अनेक प्रकार के होते हैं–

1. **अन्तराकोडोन अधिलंघन (Intracodon suppression)**– एक कोडोन जोकि उत्परिवर्तन के कारण परिवर्तन दर्शाता है, तब

कोडोन में एक दूसरा उत्परिवर्तन होगा जोकि एन्जाइम कार्य के लिए घातक होगा। अतः GCU (Alanine) को उत्परिवर्तन GAU तक (ऐस्पार्टेट–Aspartate) के कारण एन्जाइम अक्रियाशील होगा। दूसरा उत्परिवर्तन A → U वेलाइन (Valine) के लिए G कोडोन निर्मित करेगा और आंशिक या पूर्ण रूप से एन्जाइम क्रिया को बनाए रखेगा।

$$\underset{\text{Alanine}}{\text{GCU}} \xrightarrow{\text{Mutation}} \underset{\substack{\text{Asparate}\\ \text{inactive enzyme}}}{\text{GAU}} \xrightarrow{\text{दूसरा उत्परिवर्तन}} \underset{\substack{\text{Valine}\\ \text{active anyme}}}{\text{GAU}}$$

प्रथम हानिकारक प्रभाव के कारण उत्परिवर्तन कोडोन के अंदर दूसरे उत्परिवर्तन के कारण विलोपित हो जायेगा। इस विलोपन को इन्ट्रोकोडोन अधिलंघन (Inactracodon suppression) कहते हैं।

2. **रीडिंग फ्रेम उत्परिवर्तन (Reading frame mutation)**– जीन के विभिन्न स्थल पर दूसरा उत्परिवर्तन, प्रथम उत्परिवर्तन के प्रभाव को समाप्त या उदासीन कर देता है। इस परिवर्तन को रीडिंग फ्रेम में प्रथम उत्परिवर्तन के कारण उत्परिवर्तन की विपरित दिशा में हटाने के कारण होता है। विलोपन के प्रभाव एवं जोड़ने को अग्रलिखित परिकल्पना क्रम को दर्शाया है–

mRNA GUU CUG UUU CCU CGA ACU GAC GCA AUC GGU A

पॉलिपेप्टाइड -Val - Leu - Phe - Pro - Arg - Thr - Asp - Ala
(Polypeptide) - Lle - Gly -

Normal mRNA and Polypeptide

-U

mRNA GUU CUG UUC CUC GAA GUG ACG CAA UGG GUA A

पॉलिपेप्टाइड -Val- Leu- Phe- Leu- Glu- Leu- Thr- Gln Ger- Val-
(Polypeptide)

तृतीय कोडोन से U विलोपन के कारण रीडिंग फ्रेम का शिफ्ट होता है (Phe- प्रभावित नहीं होता है क्योंकि कोड ऱ्हासित होता है) इसके परिणामस्वरूप अमीनो अम्ल में परिवर्तन होता है और प्रोटीन अक्रियाशील होता है।

+U

mRNA GUU CUG UUC CUC GAA CUG ACU GCA AUC GGU

पॉलिपेप्टाइड
(Polypeptide)

टिप्पणी

U का जोड़ना मूल रिडिंग फ्रेम को जोड़ने के बिंदु के बाद तक बनाए रखता है। अमीनो अम्ल का क्रम सामान्य होता है, केवल दो उत्परिवर्तन के बीच कुछ अवशेषों (Residue) को छोड़कर।

3. एक अमीनो अम्ल के प्रथम उत्परिवर्तन स्थल की कुछ दूरी के बाद प्रतिस्थापन A (Tryptophan synthetase) में प्रारम्भिक उत्परिवर्तन (ग्लायसिन→ग्लूटेमिक अम्ल) के परिणामस्वरूप एक अक्रियाशील एन्जाइम बनाता है। इस उत्परिवर्तन के प्रभाव को दूसरा उत्परिवर्तन ठीक कर देता है– (टायरोसीन–सिस्टीन) यह दूसरा उत्परिवर्तन उसी जीन में 36 अमीनों अम्ल अवशेष पर होता है। यह उत्परिवर्तन एन्जाइम के कार्य को बनाए रखता है।

(B) अन्तःआनुवंशिकी अधिलंघन (Intergenic Suppression)– यदि एक जीन में उत्परिवर्तन के हानीकारक प्रभाव को दूसरे जीन में उत्परिवर्तन के द्वारा ठीक किया जा सकता है। इस विधि को बाह्य आनुवंशिकीय या अन्तःआनुवंशिकीय अधिलंघन (Extragenic or intergenic Suppression) कहा गया है। इस प्रकार के उत्परिवर्तन की प्रमुख विशेषता है कि दो पृथक जीन्स में उत्परिवर्तित अभिक्रियाएँ होती हैं। यह दो जीन्स विभिन्न गुणसूत्रों (Chromosomes) पर स्थित होते हैं।

पॉलिपेप्टाइड श्रृंखला का संश्लेषण का समाप्ति अन्तस्थ कोडोन– UAA, UAG या UGA के द्वारा होती है। वह उत्परिवर्तन जो एक कोडोन को जो अमीनो अम्ल को स्पष्ट करता है, अन्तस्थ कोडोन (नॉनसेन्स उत्परिवर्तन) में परिवर्तित करता है, के परिणामस्वरूप अपूर्ण पॉलिपेप्टाइड श्रृंखला बनती है। इस प्रकार की श्रृंखलाएँ अक्रियाशील होती हैं। नॉनसेन्स उत्परिवर्तन (Nonsense mutation) के प्रभाव को दूसरे जीन में उत्परिवर्तन के द्वारा विलोपित किया जाता है– अन्तःआनुवंशिकी उत्परिवर्तन (Intergenic mutation)।

tRNA अणु के एण्डीकोडोन (Anticodon) को बदलना एक विधि होती है जिसके द्वारा नॉनसेन्स कोडोन (Nonsense codon) के प्रभाव को दबाया जा सकता है। ग्लूटेमीन (Glutamine) के लिए एक कोडोन CAG है। कोडोन, Gln-tRNA के एण्टीकोडोन GUG के द्वारा पहचाना जाता है। ग्लूटेमीन कोडोन CAG में उत्परिवर्तन होता है – CAG → UAG जोकि एक अन्तस्थ होता है जो अपूर्ण श्रृंखला बनती है वह सामान्यतया अक्रियाशील होती है।

नॉनसेन्स कोडोन UAG का प्रभाव दूसरे जीन पर उत्परिवर्तन के द्वारा दबाया जा सकता है। टायरोसिन (Tyrosine) tRNA का एण्टीकोडोन 3' AUG 5' होता है। अधिलंघन/विलोपन उत्परिवर्तन इस एण्टीकोडोन को 3' AUC 5' में G → C के प्रतिस्थापन द्वारा बदल देती है।

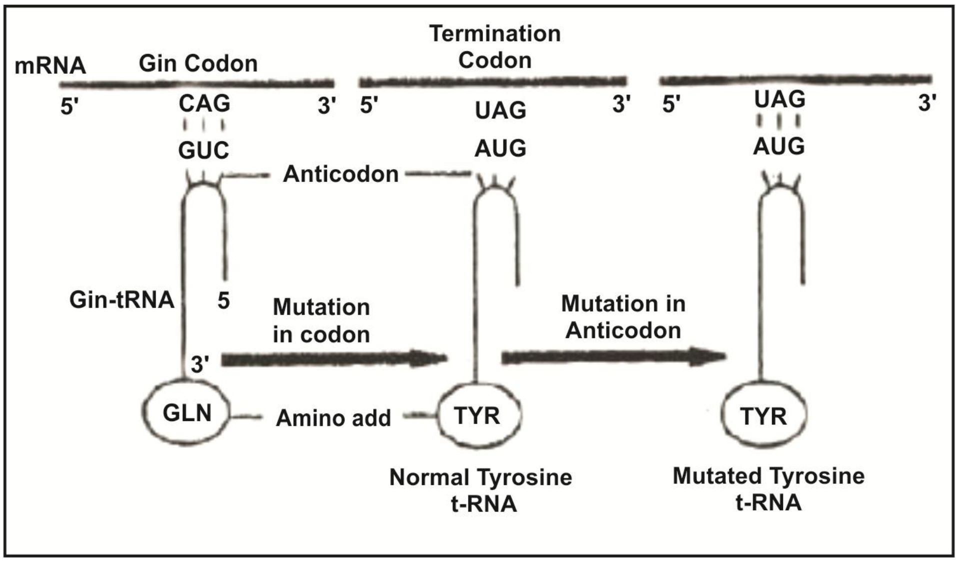

चित्र क्र. 4.15: Intergenic Suppression. Deleterious effect of Mutation of Glutamine (Gln) Codon (CAG) to Termination Codon (UAG) is Neutralized by Mutation of Normal Tyrosine tRNA Anticodon (AUG) to AUC which Reads the Termination Codon for Tyrosine

उपर्युक्त दर्शाए अधिलंघन/विलोपन उत्परिवर्तन के प्रकार का चयन तभी किया जा सकता है जब tRNA जोकि उत्परिवर्तित होता है, वह संश्लेषण के लिए आवश्यक नहीं हो।

2. **गुणसूत्र परिवर्तन (Chromosomal Mutation)**– इस प्रकार के उत्परिवर्तन गुणसूत्र के टूटने–फूटने, पुनर्मिलन अथवा अन्य गुणसूत्रों के साथ जुड़ने आदि से अथवा गुणसूत्रों की संख्या एवं विशेषताओं में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन गुणसूत्रों में प्रायः युग्मकजन की प्रक्रिया के दौरान होते हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों को सामान्यतया पहचाना जा सकता है, क्योंकि यह कायिक परिवर्तन (Phenotypepic change) उत्पन्न करते हैं। इनकी वंशानुगति मेण्डल के नियम के अनुसार होती है। गुणसूत्र उत्परिवर्तन निम्नलिखित अवस्थाओं में होते हैं–

   (a) **विलोपन (Deletion)**– अर्धसूत्री विभाजन के समय गुणसूत्र पहले 2 या अधिक टुकडों में बँटते हैं। विनिमय के समय समजात गुणसूत्रों के इन्ही टुकड़ों के बीच अदला–बदली होती है। इसमें कभी–कभी एक या अधिक टुकड़े समय पर वापस नहीं जुड़ पाते हैं तथा कोशिकाद्रव्य में घुलकर समाप्त हो जाते हैं जिससे गुणसूत्रों की संख्या एवं आकारिकी में परिवर्तन हो जाता है। (चित्र 4.15)।

टिप्पणी

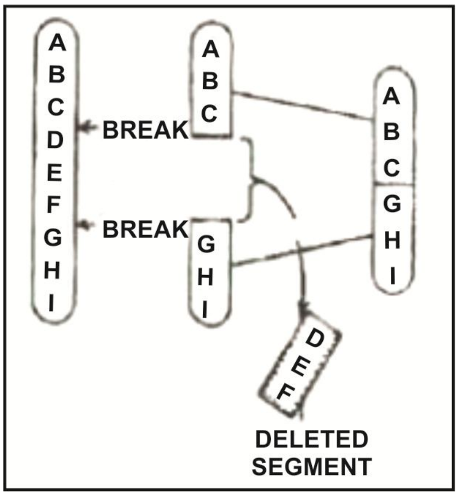

चित्र क्र. 4.16: Deletion (Middle Piece of Chromosome Falls Out)

(b) स्थानान्तरण (Translocation)– इसमें एक या अधिक गुणसूत्रों के टूटे टुकड़े असमजात गुणसूत्र से जुड़ जाते हैं। यह निम्नलिखित प्रकार के होते हैं। (चित्र 4.16)।

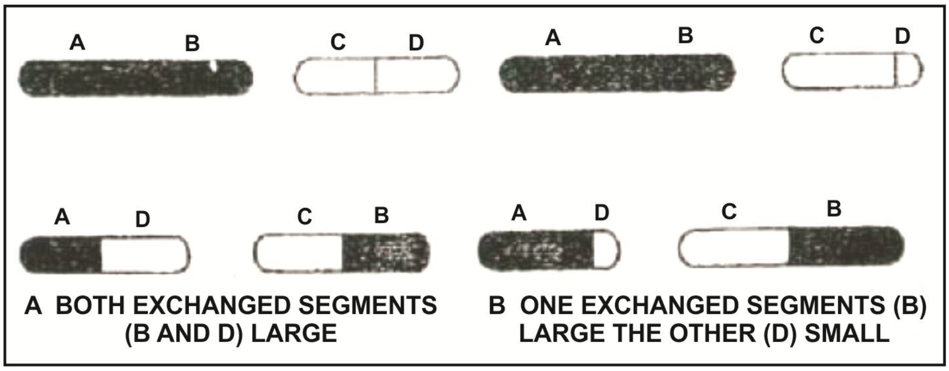

चित्र क्र. 4.17: Translocation

(i) साधारण स्थानान्तरण (Simple Translocation)– इस प्रकार के उत्परिवर्तन में गुणसूत्र में से एक छोटा–सा भाग टूटकर दूसरे गुणसूत्र (Chromosomes) के भाग से जुड़ जाता है, यह उत्परिवर्तन बहुत कम दिखाई देते हैं।

(ii) विस्थापन स्थानान्तरण (Shift Translocation)– इस प्रकार के उत्परिवर्तन में गुणसूत्र (Chromosomes) के बीच से कोई भाग टूटकर असमजात गुणसूत्र (Heterozygous Chromosomes) के किसी भाग से जुड़ जाता है।

(iii) व्युत्क्रमिक स्थानान्तरण (Reciprocal Translocation)– इस प्रकार के उत्परिवर्तन में दो असमजात (Heterzygous) गुणसूत्रों के मध्य खण्डों (Parts) की अदला–बदली होती है। (चित्र 4.17)।

(c) उत्क्रमण (Inversion)– इसमें एक या अधिक टुकड़ो से परस्पर जुड़ने से इनके सिरे बदल जाते हैं। प्रत्येक बार जीन्स की संख्या गुणसूत्र में नही बदलती, लेकिन किसी जीन समूह के 180° पर घूमने से जीन्स (Genes) का क्रम (Serial) परिवर्तित हो जाता है। इस विधि को उत्क्रमण कहते हैं। अगर गुणसूत्र b c d f g h हैं। यह b c तथा g h स्थान पर टूट जाता है तथा मध्य का खण्ड 180° पर घूम जाता है तब जीन्स का क्रम गुणसूत्रों में a b g f e d c h हो जाता है। उत्क्रमण (Iversion) दो प्रकार के होते हैं–

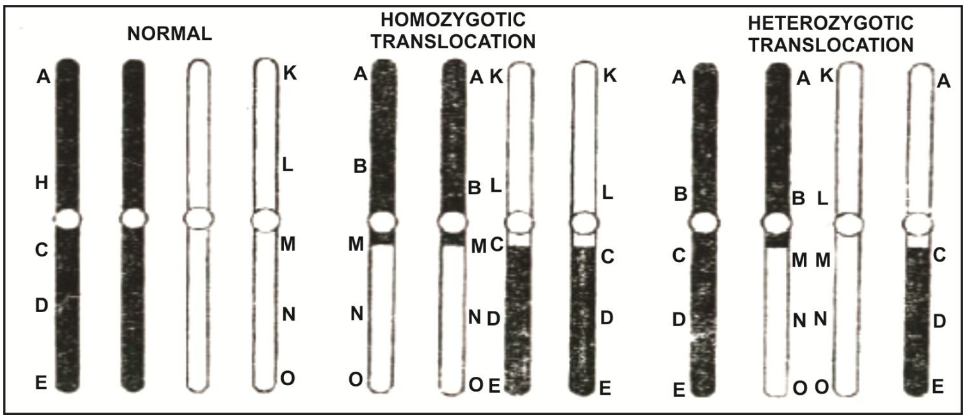

चित्र क्र. 4.18: Diagrammatic Representation of Translocation

(i) पॅरासेण्ट्रिक (Paracentric)– इसमें गुणसूत्र सेण्ट्रोमियर (Centromere) के केवल एक ही ओर से दो स्थानों पर टूटकर उत्क्रमण होता है।

(ii) पेरिसेण्ट्रिक उत्क्रमण (Pericentric inversion)– इसमें सेण्ट्रोमियर (Centromere) सहित गुणसूत्र टूटकर उत्क्रमण करते हैं। इसमें सेण्ट्रोमियर उपस्थित रहते है।

(d) आवृत्ति (Duplication)– इसमें किसी गुणसूत्र पर एक अथवा अधिक जीन्स दोहरे हो जाते हैं। यह एक प्रकार से विलोपन की विपरीत क्रिया होती है। गूणसूत्र में असमान जीन विनिमय के कारण होने वाली वृद्धि को आवृत्ति कहते हैं। यह निम्नलिखित प्रकार की होती है–

(i) टॅण्डेम आवृत्ति (Tandem duplication)– इस प्रकार के उत्परिवर्तन में जुड़े हुए गुणसूत्र भाग में जीन्स का अनुक्रम (Serial) वास्तविक अनुक्रम (Serial) के समान ही होता है।

टिप्पणी

उदाहरण– यदि आवृत्ति भाग ABC हो तो टेण्डम आवृत्ति में ABC ABC DEG अनुक्रम होगा।

(ii) उत्क्रमित टॅण्डेम आवृत्ति (Reverse tandem duplication)– इस प्रकार के उत्परिवर्तन में जीन्स का अनुक्रम (Serial) वास्तविक गुणसूत्र के अनुक्रम के ठीक विपरीत होता है। जैसे आवृत्ति भाग ABC हो जो उत्क्रमित टेण्डम में ABC CBA DEF अनुक्रम पाया जाएगा।

(iii) विस्थापित आवृत्ति (Displaced duplication)– इस प्रकार के उत्परिवर्तन में गुणसूत्र भाग किसी भी असमजात गुणसूत्र से जुड़ जाता है। अनुक्रम पृथक् होता है।

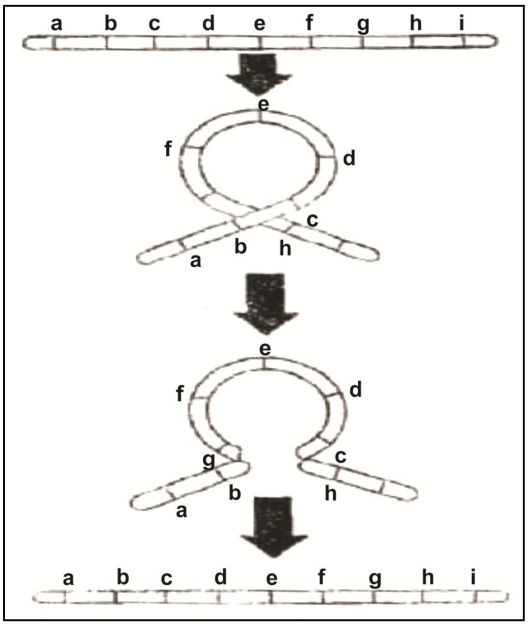

चित्र क्र. 4.19: Diagrammatic Representation of Inversion

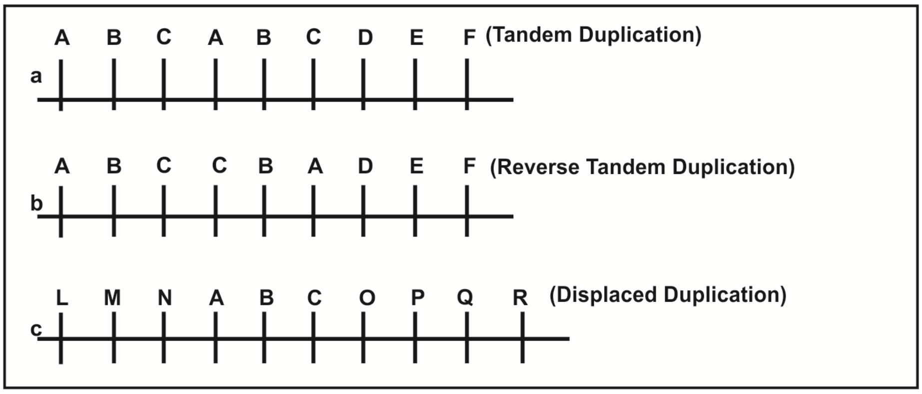

चित्र क्र. 4.20: (a, b, c) Duplication

3. **गुणसूत्र समूह के उत्परिवर्तन (Genomatic Mutation)**– इस प्रकार के उत्परिवर्तनों में गुणसूत्रों की संख्या बदल जाती है। उदाहरण के लिए, सानध्य प्रिमरोज की जाति में गुणसूत्रों की संख्या मूलतः 14 होती है, परन्तु उत्परिवर्तन के फलस्वरुप इसकी ऐसी सात जातियाँ देखी गई जिनमें गुणसूत्रों की संख्या क्रमशः 15, 16, 20, 22, 24, 26 तथा 28 थीं। गुणसूत्रों की संख्या में इस घटा–बढ़ी को विषमगुणन या ऐन्यूप्लॉइडी (Aneuploidy) कहते हैं। कभी–कभी गुणसूत्रों की संख्या अगुणित संख्या की तिगुणी तथा चौगुणी हो जाती है। इसे बहुगुणिता (Ploidy) कहते हैं।

बहुगुणिता (Polyploidy) निम्नलिखित प्रकार से उत्पन्न होती है–

1. **स्वबहुगुणिता (Autopolyploidy)**–

   (a) **अगुणित युग्मक** (Haploid gamete) एवं द्विगुणित युग्मक (Diploid gamete) के परस्पर संयुग्मन (Fusion) के द्वारा। **उदाहरण**– स्वत्रिगुणिता (Autotriploidy)।

   (b) **दो शुक्राणुओं** (Sperms) द्वारा एक ही अण्डाणु (Ovum) को निषेचित (Fertilize) करने से। **उदाहरण**– स्वत्रिगुणिता (Autotriploidy)। डिव्रीज (Devries) ने 1908 में ओयनोथेरा (Oenothera), रमैया (Rammaiah) ने 1931 में तथा 1942 में रंगास्वामी (Rangaswami) ने बाजरा के पौधों में त्रिगुणिता (Triploidy) का अध्ययन किया, ऐसे पौधों में पत्तियाँ अधिक पायी जाती हैं तथा पुष्पों का कम विकास होता है।

   (c) **द्विगुणित युग्मनज** (Diploid zygote) में अपसामान्य समसूत्री विभाजन (Abnormal mitosis) के कारण कोशिकाओं में गुणसूत्रों (Chromosomes) की संख्या दोगुणी होने के कारण। **उदाहरण**– स्वचतुर्गुणिता (Autotetraploidy)।

   (d) **अपसामान्य अर्द्धसूत्री विभाजन** (Abnormal meiosis) के द्वारा उत्पन्न द्विगुणित युग्मकों (Diploid gemetes) के परस्पर संयुग्मन से। **उदाहरण**– स्वचतुर्गुणिता (Autotetraploidy)।

   (e) **द्विगुणित युग्मक तथा त्रिगुणित युग्मक** (Triploid gamete) के परस्पर संयुग्मन से। **उदाहरण**– स्पंचगुणिता (Autopentaploidy)।

2. **परगुणिता (Alloploidy)**– इसमें दो निकट सम्बन्धी जातियों के द्विगुणित युग्मक (2*x*) परस्पर संयोजित होकर परगुणित जीव बनाते हैं, जैसे– निकट सम्बन्धी जातियों में गुणसूत्रों में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होती है जिसके कारण अर्द्धसूत्री विभाजन के समय युग्मन नहीं हो पाता है जिससे कभी–कभी गुणसूत्रों के दोनों सैट एक ही युग्मक में पहुँच जाते हैं। यदि ऐसे दो युग्मक परस्पर संयोजन करें तो इनमें चतुर्गुणित संकर (Allotetraploid) बनता है। इसमें प्रत्येक जाति के गुणसूत्रों के दो सैट होते हैं।

टिप्पणी

उदाहरण– रैफेनोब्रैसिका (Raphanobrasssica), रेफेनस सेटाइवम (Rapahanus sativum-2n = 18) एवं ब्रेसिका ओलेरेसिया (Brassica oleracea-2n=18) रुसी वैज्ञानिक कार्पेशेंन्कों (Karpechenko) ने 1927 में मूली के अंदर परगुणिता को दर्शाया।

3. **विषमगुणिता (Heteroploidy)** निम्नलिखित दो प्रकार की होती है–

(I) पूर्ण गुणसूत्र के समुच्चय में परिवर्तन (Change in complete set of chromosomes)– इसे सुगुणिता (Euploidy) भी कहते हैं। इसमें दो प्रकार की विभिन्नता विषमगुणिता या परिवर्तन पाए जाते हैं।

(i) अगुणिता (Haploidy)– इसमें कुल एक गुणसूत्र समुच्चय (सैट) होता हैः (n या x)।

(ii) बहुगुणिता (Polyploidy)– इसमें गुणसूत्र के समुच्चय (Set of Chromosomes) दो से अधिक पाए जाते हैं। यह निम्नलिखित प्रकार की होती है–

(a) त्रिगुणिता (Triploidy) = 3n या 3x

(b) चतुर्गुणिता (Tetraploidy) = 4n या 4x

(c) पंचगुणिता (Pentaploidy) = 5n या 5x एवं

(d) षष्ठगुणिता (Hexaploidy) = 6 n या 6x

(II) गुणसूत्र के समुच्चय में गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन (Change in the number of chromosomes of set of chromosomes)– इसे असुगुणिता (Aneuploidy) भी कहते हैं। यह निम्नलिखित प्रकार की होती है–

(i) एक न्यूनसूत्री (Monosomic)– इसमें गुणसूत्र समुच्चय में से एक गुणसूत्र की कमी पायी जाती है। (2n – 1)।

(ii) बहुअधिसूत्र (Polysomic)– इसमें गुणसूत्र समुच्चय में एक या अधिक गुणसूत्रों की वृद्धि होती है, (2n + 2)।

(a) एकाधिसूत्री (Trisomic) = 2n + 1

(b) द्विअधिसूत्री (Tetrasomic) = 2n + 2

(iii) द्विन्यूनसूत्री (Nullisomic)– एक युग्म के दोनों गुणसूत्रों की कमी होती है (2n + 2)।

(C) समलक्षणी/फीनोटाइप के प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutation on the Basis of Phenotypic Effect)

सभी उत्परिवर्तन जीवों में फीनोटिपिक (Phenotypic) या शरीर रूप में परिवर्तन नहीं करते हैं। उत्परिवर्तन सदैव अनिश्चित (Indeterminate) या दिशाविहीन होते हैं। उत्परिवर्तन प्रायः संरचनात्मक (Structural) एवं क्रियात्मक (Functional) दोनों प्रकार के हो सकते हैं। ये लाभदायक अथवा हानिकारक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। फिनोटाइप प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तन निम्न प्रकार के होते हैं–

1. **प्रभावी दृष्टिगत उत्परिवर्तन (Dominant Visible Mutation)**– प्रभावी होने के कारण इन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। ये समयुग्मनज दोनों अवस्थाओं में अपना प्रभाव दिखा सकते हैं। ये लाभदायक व हानिकारक दोनों प्रकार के हो सकते हैं।
2. **माध्यमिक दृष्टिगत उत्परिवर्तन (Intermediate Visible Mutation)**– इस प्रकार के उत्परिवर्तन केवल विषमयुग्मनज अवस्था में अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं। जैसे जैन्थोमेटोसिस (Xanthomatosis) बीमारी उत्पन्न करने वाला जीन केवल समयुग्मनज (Homogametic) अवस्था में ही प्रभावी बनकर रोग उत्पन्न कर सकता है। अतः इसको अप्रभावी जीन मानते हैं। वर्तमान में यह देखा गया है कि जीन्स विषमयुग्मनज (Heterozygous) अवस्था में हाइपरकोलेस्टेरोलीमिया (Hypercholesterolemia) नामक रोग उत्पन्न करता है। यह जीन अपूर्ण प्रभावी है।
3. **ऑटोसोमल अप्रभावी दृष्टिगत उत्परिवर्तन (Autosomal Recessive Visible Mutation)**– ये केवल समयुग्मनजी जीवों में ही प्रभावी होने के कारण उत्परिवर्तन कर सकते हैं। अतः इनको उभयलिंगी जीवों में सरलता से देखा जा सकता है। विषमयुग्मनजों में प्रभावी जीन की उपस्थिति के कारण इनका प्रभाव समाप्त हो जाता है।
4. **लिंग–सहलग्न दृष्टिगत उत्परिवर्तन (Sex-linked Visible Mutation)**– इस प्रकार के उत्परिवर्तन के जीन्स विषमयुग्मनज (Heterogametic) गुणसूत्रों के X गुणसूत्र पर पाए जाते हैं। अतः X गुणसूत्रों में होने वाला कोई भी जीनिक परिवर्तन इनको प्रभावी बनाकर प्रकट कर सकता है। अतः इस प्रकार के उत्परिवर्तनों को प्रायः नर में देखा जा सकता है। जनन–कोशिकाओं में होने वाला अप्रभावी उत्परिवर्तन नर एवं मादा दोनों सन्तानों में नहीं हो सकता।
5. **घातक उत्परिवर्तन (Lethal Mutation)**– इनके जीन्स विषमयुग्मनज गुणसूत्रों पर होने के कारण अप्रभावी (Recessive) होते हैं अतः इनको आसानी से नहीं देखा जा सकता है। इस प्रकार के उत्परिवर्तन केवल विषमयुग्मनजी जीवों में ही देखे जा सकते हैं।

6. **दैहिक उत्परिवर्तन (Somatic Mutation)**– इस प्रकार के उत्परिवर्तन जीन के जीवन काल में उसके किसी भी अंग विशेष अथवा भाग में हो सकते हैं, परन्तु उत्परिवर्तन वंशानुगत न होने के कारण सन्तानों में प्रकट नहीं हो सकते हैं।
7. **हानिकारक उत्परिवर्तन (Harmful Mutation)**– अधिकांश उत्परिवर्तन लाभकारी होते हैं। अतः जैव–विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, परन्तु कुछ उत्परिवर्तन हानिकारक होने के कारण अप्रभावी होते हैं, जैसे– हीमोफीलिया, वर्णान्धता, मधुमेह, एमिरीडिया आदि।
8. **प्रतिवर्त्य उत्परिवर्तन (Reversible Mutation)**– यह उत्परिवर्तन किसी जीव के समलक्षणी (Phenotype) को इतना कम उत्परिवर्तित करते हैं कि वह किसी भी विशेष तकनीक के द्वारा ही ज्ञात किए जा सकते हैं। उत्परिवर्तन जीन (Mutant gene) जो कम रुपान्तरित समलक्षणी (Phenotype) को दर्शाते हैं, समयुग्मविकल्पी (Isoalleles) कहलाते हैं। यह समयुग्मनजी (Homozygous) या विषयुग्मनजी (Heterozygous) संयोजन में समान समलक्षणी/फीनोटाइप (Phenotype) को उत्पन्न करते हैं।

(D) उत्पत्ति के आधार पर उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutation on the Basis of Origin)

उत्परिवर्तनों की उत्पत्ति के आधार पर दो प्रकार के उत्परिवर्तन (Mutation) पाए जाते हैं–

1. **स्वतः उत्परिवर्तन (Spontaneous Mutation)**– ये उत्परिवर्तन बहुत–सी प्राकृतिक स्थितियों जैसे विभिन्न प्रकार के विकिरणों, विद्युतधाराओं, तापक्रम में आकस्मिक परिवर्तन आदि के प्रभाव के कारण स्वतः उत्पन्न होते हैं। इन उत्परिवर्तनों को पृष्ठधार/पृष्ठभूमि उत्परिवर्तन (Background mutation) भी कहते हैं। यह उत्परिवर्तन प्राकृतिक उत्परिवर्तन (Natural mutation) भी कहलाता है। यह उत्परिवर्तन अनेक जीवों– (i) (Plants) में ओएनोथेरा (Oenothera), मक्का (Maize), रोटी की फफूँद (Bread molds) (ii) सूक्ष्मजीवों (Mirco-organism) के अन्तर्गत जीवाणु एवं विषाणु, (iii) प्राणियों के अन्तर्गत मनुष्य की बहुअंगुलिता (Polydactyly), एल्बीनिज्म (Albinism) मनुष्य, सुअर, चूहे में। सींगविहीन चौपाये, बहुचूचकी दशा (Multi nippled conditin) भेड़ों में।
2. **प्रेरित उत्परिवर्तन (Induced Mutation)**– इस प्रकार के उत्परिवर्तन कुछ विशेष परिस्थितियों तथा रासायनों द्वारा जीवों में कृत्रिम रूप से उत्पन्न किए जाते हैं। उत्परिवर्तनों को प्रेरित करने वाले कारकों को उत्परिवर्तन जनक (Mutagenes) कहते हैं। **उदाहरण**– ड्रोसोफिला।

(E) स्वभाव एवं उनके प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutation on the Basis of their Nature and their Effect)

यह उत्परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं–

1. **जैवरासायनिक उत्परिवर्तन (Biochemical Mutation)**– यह वह उत्परिवर्तन होते हैं जो कि किसी जीवों में जैवरासायनिक संगठन एवं कार्यिकी में मूलभूत परिवर्तन करते हैं। आनुवंशिकी के आधुनिक अध्ययनों के अनुसार जीन्स (Genes) एन्जाइम्स के उत्पादन को नियन्त्रित करते हैं, और यह एन्जाइम्स जैवरासायनिक (Biochemical) एवं जैवसंश्लेषणी (Biosynthetic) विधियों को सजीव कोशिकाओं में नियमन करते हैं। यदि इस प्रकार के जीन में उत्परिवर्तन होती है, परिणामस्वरूप विशिष्ट एन्जाइम की क्रिया या तो निष्क्रिय हो जाती है या अवरुद्ध हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप उत्परिवर्तन होते हैं। इसके उदाहरण प्राणियों एवं पौधों दोनों में पाए जाते हैं। जीव रासायनिक क्रियाओं (Biochemical defects), जिनके कारण वह अल्काप्टोनूरिया (Alkaptonuria), फिनाइलकीटोनूरिया (Phenylketonuria), ऐल्बिनिज्म (Albinism) आदि बीमारियों का शिकार हो जाता है। इसी प्रकार का एक अन्य रोग टायरोसिनोसिस (Tyrosinosis) होता है जो किं चयापचयिक क्रियाओं की असामान्य अवस्था के कारण होता है।
2. **कृत्रिम उत्परिवर्तन (Spurious Mutation)**– अनेक प्रकार के उत्परिवर्तन जो कि सुप्त अवस्था में रहते हैं, लेकिन सन्ततियों (Offspring) में जीन विनिमय (Crossing over) के परिणामस्वरुप दिखाई देते हैं। यदि जीन विनिमय (Crossing over) नहीं होता है तब यह उत्परिवर्तन सुप्त अवस्था में ही रहते हैं। **उदाहरण**– ड्रोसोफिला (Drosophila) में नेत्रों का बैंगनी रंग (Pink colour) यह रंग साधारण अवस्था में छिपा रहता है या सुप्त अवस्था में रहता है, लेकिन जहाँ समान जाति (Same race) में जीन विनिमय के द्वारा सुप्त या अप्रभावी जीन्स (Reccessive genes) के समलक्षणी (Phenotype) के रूप में प्रकट होने के कारण होता है।

(F) दिशा के आधार पर उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutation according to their Direction)

दिशा के प्रकार के अनुसार उत्परिवर्तन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

1. **अग्रसर उत्परिवर्तन (Forward mutation)**– जब किसी जीव में सामान्य या साधारण लक्षण (Wild/Normal/characters) असामान्य लक्षणों (Abnormal characters) में परिवर्तित हो जाते हैं, तब इस प्रकार के उत्परिवर्तनों को अग्रसर उत्परिवर्तन (Forward mutation) कहते हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तन हमेशा सामान्य प्रमुख स्तम्भ (Main stock) से विचलन/परिवर्तन को उत्पन्न करते हैं। यह उत्परिवर्तन अधिक साधारण

टिप्पणी

स्वभाव के होते हैं। **उदाहरण**– ड्रोसोफिला में अवशेषी पंख (Vestigeal wings)।

2. **विपरीत या पृष्ठीय व्युत्क्रमित उत्परिवर्तन (Reverse or Back Mutation)**: कभी–कभी उत्परिवर्ती समलक्षणी (Mutant phenotype) या असमान समलक्षणी (Abnormal phenotype) यकायक सामान्य प्रकार के समलक्षणी (Normal phenotype) में पुनः परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार के उत्परिवर्ति (Mutant) से सामान्य प्रकार (Wild type) में प्रतिलोम को विपरीत उत्परिवर्तन (Reverse mutation) कहते हैं। यह उत्परिर्तन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

   (a) **एकल स्थलीय उत्परिवर्तन (Single site mutation)**– कुछ विपरीत या प्रतिलोमी प्रकार के उत्परिवर्तन में जीन में एक न्यूक्लियोटाइड (Nucleotide) परिवर्तित होता है। इस प्रकार के उत्परिवर्तन को एकल स्थलीय उत्परिवर्तन (Single site mutation) कहते हैं। जैसे– अग्रसर उत्परिवर्तन (Forward mutation) के कारण एडिनाइन (Adenine) ग्वानीन (Gaunine) में परिवर्तित हो जाता है और प्रतिलोमी उत्परिवर्तन (Reverse mutation) में ग्वानीन (Gaunine) एडिनाइन में परिवर्तित हो जाता है।

   (b) **दमनकारी/ विलोपनीय उत्परिवर्तन (Suppressor mutation)**– जब कोई उत्परिवर्तन उस स्थल से विपरीत या अलग स्थल पर होता है जहाँ पर प्रारम्भिक उत्परिवर्तन होता है तब वह उत्परिवर्ती जीन (Mutated gene) प्रारम्भिक उत्परिवर्ती जीन (Mutated gene) के प्रभाव को प्रतिलोम या विपरीत कर देता है, तब द्वितीयक उत्परिवर्तन (Secondary mutation) को विलोपनीय या दमनकारी उत्परिवर्तन (Suppressor mutation) कहते हैं। यह उत्परिवर्तन निम्नलिखित प्रकार का होता है–

      (i) **बाह्यःजीनीय विलोपनीय/दमनकारी (Extragenic suppressor)**– इस प्रकार का उत्परिवर्तन, उत्परिवर्ती जीन (Mutant gene) की अपेक्षा विभिन्न जीन में होता है। ई. कोलाई (E. coli) में जीन उत्परिवर्तन विलोपनीय जीन (Mutation suppressor gene) rec A (rec. = पुन /संयोजन/recombination) कहलाता है, जोकि पुनःसंयोजन (Recombination) के लिए आवश्यक होता है। यह जीन के पराबैंगनी – उत्प्रेरित थायमीन डायमर (Ultraviolet-induced dimers) की मरम्मत करता है।

      (ii) **अन्तःजीनीय विलोपनीय/दमनकारी (Intragenic suppressor)**– इस प्रकार का उत्परिवर्तन विभिन्न न्यूक्लियोटाइड (Nucleotide) में समान जीन से होता है तथा परिशीलन को पुनः फ्रेम में वापस कर देता है।

(iii) प्रकाश पुनःसक्रियण (Photoreactivation)– प्रकाश पुनःसक्रियण प्रकार का विलोपनीय/दमनकारी उत्परिवर्तन में एक विशिष्ट एन्जाइम के द्वारा दृष्टिगत प्रकाश तरंगों की उपस्थिति में पराबैंगनी उत्प्रेरित थायमिन ड्राइमर्स (Thymine dimers) का विलोपन होता है। पराबैंगनी विकिरण (Ultraviolet radiation) के समय एक विशिष्ट प्रकार का एन्जाइम चयनित रूप से जीवाणु DNA से संयोजित हो जाता है। प्रकाश पुनः सक्रियाणी के समय एन्जाइम दृष्टिगत प्रकाश के द्वारा सक्रिय हो जाता है और फिर पिरीमिडीन (Pyrimidine) या प्यूरीन डाइमर (Purine dimer) मोनोमर (Monomer) में विदलित (Cleave) होकर अपने वास्तविक रुप को ग्रहण कर लेता है।

(iv) अपच्छेदनीय सुधार या प्रकाशहीन पुनःसक्रियण (Excision repair or dark reactivation)– पराबैगनी उत्प्रेरित उत्परिवर्तन (Ultraviolet induced mutations) में विपरीत/विलोपनीय उत्परिवर्तन (Reverse mutation) प्रकाश की अनुपरिस्थिति में होता है। होवार्ड फलेन्डर्स (Howard Flanders) एवं बॉयस (Boyce) वैज्ञानिकों के अनुसार प्रकाशहीन पुनःसक्रियण (Dark reactivation) विधि निम्नलिखित चरणों में होती है–

(अ) एक एन्जाइम– ऐण्डोन्यूक्लिएज (Endonuclease) पॉलिन्यूक्लियोटाइड (Polynucleotide) श्रृंखला/स्ट्रैण्ड (Strand) में एक काट डाइमर (Dimer) की प्रत्येक दिशा में लगाता है, जोकि पराबैंगनी विकिरण (Ultraviolet radiation) के कारण बनता है और DNA DS एक छोटे, एकल श्रृंखलीय खण्ड का अपच्छेदन (Excision) करता है।

(ब) ऐण्डोन्यूक्लिएज (Endonuclease) की क्रिया के द्वारा उत्पन्न जो रिक्त स्थान (Gap) होता है उसको एक अन्य एन्जाइम ऐक्सोएन्जाइम (Exoenzyme) चौड़ा करता है।

(स) DNA पॉलिमरेज (Polymerase), शेष बचे विपरीत स्ट्रैण्ड को एक टेम्पलेट (Template) के रूप में उपयोग कर खोए हुए खण्ड को पुनःसंश्लेषित करता है।

(द) कुछ एन्जाइम के पुनःसंयोजन विधि के द्वारा रिक्त स्थान को बंद कर दिया जाता है।

टिप्पणी

(G) गुणसूत्रों के प्रकार के आधार पर उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutation according to the Types of Chromosomes)

इस प्रकार के उत्परिवर्तन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

1. **अलिंग गुणासूत्रीय उत्परिवर्तन (Autosomal Mutations)**

   इस प्रकार के उत्परिवर्तन, अलिंग गुणसूत्र (Autosomes) में उत्पन्न होते हैं।

(अ) अलिंग गुणसूत्री उत्परिवर्तन (Autosomal mutations)

1.एकाधिसूत्रता – 21 (Trisomy - 21) डाउन्स सिण्ड्रॉम (Down's syndrome) – स्थानान्तरण प्रकार (Translocation type) – मोजाइक प्रकार (Mosaic type)	(700 में से एक बच्चे में) 47, XX + 21 47, XY + 21 46, XX-14 + t (14q 21q) 46, XY-22 + t (t21 22q) 46, XX/ 47, XX + 21	95% 4% 1%	वयस्क उम्र में (अधिक उम्र में) सामान्य (Normal) सामान्य (Normal)
2. एकाधिसूत्रता–18 (Trisomy - 18) एडवर्ड सिण्ड्रॉम (Edward syndrome) – मोजाइक प्रकार (Mosaic type)	(5,000 बच्चों में से एक बच्चे में) 47, XX + 18 47, XY + 18 46, XX/ 47, XX + 18	90% 10%	अधिक अवस्था सामान्य
3. एकासूत्रता – 13 (Trisomy - 13) – पटाऊ सिण्ड्रॉम (Patau's syndrome) – स्थानान्तरण प्रकार (Translocation type) – मोजाइक प्रकार (Mosaic type)	(6,000 बच्चों में से एक बच्चे में) 47, XX + 13 45, XX + 18 46, XX - 14 + t(14q, 13q) 46, XX/ 47 XX + 13	80% के ऊपर 10% 10%	अधिक अवस्था सामान्य सामान्य
4. एकन्यूनसूत्रता – 18 (Monosomy - 18)	45, XX + 18	75%	सामान्य
5. एकन्यूनसूत्रता – 21 (Monosome - 21)	45, XX + 21	68%	सामान्य
6. त्रिगुणित (3n) (Triploidy)	69 + 2X, XY 69 + 2X, XX	10:	सामान्य

2. **लिंग सहलग्न उत्परिवर्तन (Sex-linked mutations)**– यह उत्परिवर्तन वह होते हैं जो कि लिंग गुणसूत्र (Sex chromosomes)– X या Y गुणसूत्र पर पाए जाते हैं। यदि उत्परिवर्तन X– गुणसूत्र पर पाया जाता है तब इसको X– सहलग्न (X- सपदामक) कहते हैं, यदि उत्परिवर्तन Y– गुणसूत्र पर पाया जाता है तब इसको Y– सहलग्न (Y- सपदामक)

उत्परिवर्तन कहते हैं। इसके सबसे अच्छे उदाहरण लिंगसहलग्न रोग होते हैं जिनको लिंग सहलग्न उत्परिवर्तन कहते हैं।

टिप्पणी

7. टर्नस सिन्ड्रॉम (Turner's Syndrome) जनदीय मूलवंशनाशक (Gonadal Dysgenesis) – XO एकन्यूनसूत्रता (XO - Monosomic) – दोषपूर्ण दूसरा X गूणसूत्र (Defective second X chromosome) – मोजाइक प्रकार (Mosaic type)	45 X 46, XX P 46, XX q 46 X I (Xq) 45, X/46 XX	3,000 में से एक मादा जन्मे बच्चों में	सामान्य सामान्य सामान्य सामान्य सामान्य
8. क्लाइन्फेल्टर सिन्ड्रॉम (Klinefelter's syndrome) XXY- एकाधिसूत्र (XXY - Trisomic)	47, XXY 64,XX/47XXY	850 में से एक पर बच्चे में	कुछ अधिक वयस्क अवस्था में
9. चरम क्लाइन्फेल्टर सिन्ड्रॉम (Extreme Klinfelter syndrome) (i) XXXY द्विअधिसूत्रता XXXY Tetrasomic (ii) XXXX त्रिअधिसूत्रता (XXXX Pentasomic) (iii) दोहरा Y नर (Double Y Male)	48 XXXY 49, XXXXY 48, XXYY 47, XYY	कम 1,000 में से एक नर बच्चे में	अधिक वयस्क अवस्था में सामान्य
10. बहुगुण X मादा Multiple X females एकाधिसूत्र (Trisomic) (Triplofemale) द्विअधिसूत्रता (Tetrasomic metafemale)	47, XXX 48, XXXX	1,2000 में से एक मादा बच्चों में	अधिक वयस्क अवस्था में
11. वास्तविक द्विलिंगी (True hermaphrodite)	46, XX 46, XX/ 47 XXY	कम	सामान्य

(H) घटित होने की अवस्था के आधार पर उत्परिवर्तन (Types of Mutation according to the Stage at which they Occur)

इस प्रकार के उत्परिवर्तन निम्नलिखित के होते हैं–

1. **युग्मकी उत्परिवर्तन (Gametic Mutation)**– यदि उत्परिवर्तन, युग्मकजन (Gametogenesis) के पूर्व हो जाता है, तब सभी युग्मक (Gemete) इससे प्रभावित होते हैं, तथा ऐसे प्रभावित होने वाले युग्मकों (Gemetes) से बनने वाले सभी जीव उत्परिवर्तनों (Mutations) से प्रभावित होते हैं।

टिप्पणी

2. **युग्मजी उत्परिवर्तन (Zygotic Mutation)**– यदि उत्परिवर्तन युग्मनज (Zygote) बनने के पूर्व एक युग्मक (Gamete) में होता है, इसका प्रभाव केवल एक जीव (Organism) पर पड़ता है। यदि युग्मनज (Zygote) में विभाजन के पश्चात् प्रथम या अन्तिम जायगोट में समसूत्री विभाजन (Mitotic division) के पश्चात उत्परिवर्तन होता है, तब शरीर की उन कोशिकाओं में उत्परिवर्तक लक्षणों का विकास होता है जोकि विधि के समय सम्बन्धीत होती है। इस प्रकार एक मोजाइक जीव (Mosaic organism) निर्मित होगा।

4.4.2 प्रभावी कारकों के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार (Types of Mutations according to the Affecting Factors)

प्रभावित करने वाले कारकों (Factors) के आधार पर उत्परिवर्तन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

(अ) **बहिर्जनित उत्परिवर्तन (Endogenous Mutations)**– यह उत्परिवर्तन वह होते हैं जोकि कुछ बाहरी कारकों के प्रभाव के कारण उत्पन्न होते हैं, उनको बहिर्जनित उत्परिवर्तन (Exogenous mutations) कहते हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तन तापक्रम, मौसम (Climate), वातावरण (Environment) आदि में परिवर्तन के कारण होते हैं। यह प्राकृतिक (Natural) या अप्राकृतिक विकिरण (Radiations), जोकि रेडियोधर्मी तत्वों (Radioactive elements) के द्वारा उत्पन्न होती है, के कारण उत्पन्न होते हैं। बाहरी सौर्यमण्डल से आने वाली पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet rays) एवं कॉस्मिक किरणों (Cosmic rays) के द्वारा भी जीव प्रभावित होते हैं।

(ब) **अन्तर्जनित उत्परिवर्तन (Exogenous Mutations)**– यह उत्परिवर्तन शरीर के आन्तरिक कारकों के कारण उपन्न होते हैं अर्थात् चयापचय (Metabolism), पोषण (Nutrition) आन्तरिक रूप से उत्पन्न विकिरण (Radiations) आदि। पोषण की कमी के कारण जीवाणुओं (Bacteria) एवं फफूंद (Fungi) आदि में उत्परिवर्तन होते हैं।

जीवों (Organisms) में विभिन्न प्रकार के उत्परिवर्तनों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि–

(i) उत्परिवर्तन की सहायता से अनुपयोगी अंगों के अन्तर को पहचाना जा सकता है।

(ii) इसकी सहायता से अंगों की प्रारम्भिक अवस्था को समझा जा सकता है।

(iii) इसके कारण थोडे ही समय में विकासशील परिवर्तन प्राप्त हो सकते हैं।

(iv) उत्परिवर्तन की सहायता से जीवों का वर्णात्मक मूल्य जाना जा सकता है।

(v) प्रकृति में उत्परिवर्तन सदैव होते रहते हैं। प्राकृतिक वरण (Natural selection) एवं उत्परिवर्तनों के फलस्वरूप ही नवीन जीव जातियों की उत्पत्ति होती है।

(vi) उत्परिवर्तन विकास की सामान्य विधि को अभिव्यक्त नहीं कर सकता।

(vii) उत्परिवर्तन प्राणियों के बीच पृथक्ता (Natural selection) का एक विकल्प है तथा यह दोनों मिलकर ही विकास के मुख्य कारक बनते है।

(viii) उत्परिवर्तन ही विकास का आधार नहीं है बल्कि प्राकृतिक वरण (Natural Selection) का एक विकल्प है तथा यह दोनों मिलकर ही विकास के मुख्य कारक बनते है।

(ix) उत्परिवर्तन के द्वारा महासागरीय द्वीपों में उपस्थित उडने वाले पक्षियों की उपस्थिति नहीं समझाई जा सकती।

(x) प्रायः उत्परिवर्तन हानिकारक होते हैं अतः उत्परिवर्तन धारक जीव (Mutant) जीवित नहीं रहता है। इससे जैव–विकास के स्थान पर जीवों के विलुप्त होने की सम्भावना और अधिक बढ जाती है।

4.4.3 विभिन्नताएँ (Variations)

विभिन्नता (Variation) विकास का एक आधार मूल कारक है। विभिन्नता विकास का प्रगामी कारक (Progressive Factor) है, जिसके बिना कोई भी परिवर्तन नहीं होता और विकास फिर असम्भव हो जाता है। प्राणियों मे पाई जाने वाली सभी विभिन्नताएँ वंशानुगत नहीं होती । और जिन विभिन्नताओं की वंशानुगति नहीं होती वह जातियों के विकास में भाग नहीं लेती। प्राणियों/जीवों में वातावरण के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। डार्विन ने इन्ही विभिन्नताओं के अनुसार ''जाति के उद्गम (Origin of Species)'' सिद्धान्त दर्शाया और यह विभिन्नताएँ आनुवंशिकता (Heredity) के द्वारा एक सन्तान से दुसरी पीढ़ी की सन्तान में स्थानान्तरित हो जाती है।

हम अपने दैनिक जीवन में अनेक प्रकार के जन्तु तथा पादप देखते हैं। इसके अतिरिक्त एक ही जाति के सदस्यों में भिन्नता मिलती है, यहाँ तक कि एक ही माता–पिता की सभी सन्तानें केवल जुडवाँ सदस्यों को छोडकर समान नहीं होती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि जीवों मे व्यापक विभिन्नताएँ पायी जाती है। अतः विभिन्नताओं को हम निम्नलिखित प्रकार परिभाषित कर सकते हैं–

''सजातीय सदस्यों में पायी जाने वाली असमानताएँ (Dissimilarities) ही विभिन्नताएँ कहलाती हैं। ये संरचनात्मक (Morphological), मनोवैज्ञानिक (Psychological) अथवा क्रियात्मक (Physiological) किसी भी रूप में हो सकती है।''

1. **संरचनात्मक विभिन्नताएँ (Morphological Variations)**– इसमें शरीर की बनावट, अंगों की आकृति, रंग, रूप तथा शारीरिक संगठन सम्बन्धी विभिन्नताएँ आती हैं।
2. **मनोवैज्ञानिक विभिन्नताएँ (Psychological Variations)**– इसमें स्वभाव, बुद्धि, समझ, मानसिक सम्बन्धी विभिन्नताएँ आती हैं।
3. **क्रियात्मक विभिन्नताएँ (Physiological Variations)**– इसमें जीव शरीर में होने वाली जैविक क्रियाओं, जैसे– पाचन, श्वसन, उत्सर्जन, प्रजनन आदि से सम्बन्धीत विभिन्नताएँ आती हैं।

ये विभिन्नताएँ लाभदायक अथवा हानिकारक दोनों प्रकार की हो सकती हैं। विभिन्नताएँ वंशानुगत होकर नवीन जीव–जातियों की उत्पत्ति का आधार बनती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विभिन्नताएँ एवं आनुवंशिक जैव–विकास के दो प्रमुख कारक हैं।

4.4.4 विभिन्नताओं के प्रकार (Kinds of Variations)

विभिन्नताएँ तीन प्रकार की होती हैं–

(अ) अविच्छिन्न एवं विच्छिन्न (Continuous and Discountinuous) विभिन्नताएँ

(ब) निश्चयात्मक एवं अनिश्चयात्मक (Determinate and Indeterminate) विभिन्नताएँ

(क) कायिक एवं जननिक (Somatic and germinal) विभिन्नताएँ

(अ) अविच्छिन्न एवं विच्छिन्न विभिन्नताएँ (Continuous and Discontinuous Variations)– अविच्छिन्न विभिन्नताएँ (Continuous variations) सजातीय सदस्यों में पायी जाने वाली छोटी–छोटी व क्रमबद्ध (Systemic) होती हैं। ये शरीर, आकार, रंग–रूप, अंगों के परिणाम आदि में पायी जाती है। ये स्पष्ट व अत्यन्त सूक्ष्म भी हो सकती हैं। ये विभिन्नताएँ घटती व बढ़ती रहती हैं। अतः डार्विन ने इन्हें विचल विभिन्नताओं (Fluctuating variations) या डार्विन की विभिन्नता का नाम दिया तथा इनको जैव–विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया। उनके अनुसार यही अविच्छिन्न विभिन्नताएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी वंशानुगत तथा सम्परिवर्तित होकर नवीन जीव–जातियों की उत्पत्ति का आधार बनती है। यह विभिन्नताएँ प्रायः बड़ी एवं दुर्बल होती है, इन विभिन्नताओं को उत्परिवर्तन (Mutation) भी कहा गया है। विच्छिन्न विभिन्नताएँ अविच्छिन्न की अपेक्षा कम होती है।

विच्छिन्न विभिन्नताएँ (Discontinuous Variations) जीवों में अकस्मात् उत्पन्न होती हैं अतः ये स्पष्ट व स्थिर होती है। ये वंशानुगत होकर नवीन जीव–जाती का आधार बनती है। इन्हें हयूगो डी व्रीज (Hugo de Vries) ने उत्परिवर्तन (Mutation) कहा। इस प्रकार की विभिन्नताएँ अनिश्चित होती हैं। ये किसी भी दशा में बिना किसी नियन्त्रण के हो सकती हैं। जैसे– कभी–कभी मनुष्य में 5 के स्थान पर 6 अंगुलियों का होना, बछड़ों में

टिप्पणी

सींग का न होना, बिल्ली में पूँछ का न होना आदि। इन्हें दो श्रेणियो में बाँट सकते हैं– (i) संख्यात्मक (Quantitative) एंव (ii) गुणात्मक (Qualitative) विभिन्नताएँ।

(i) संख्यात्मक विभिन्नताएँ (Quantitative or meristic variations)– ये अकस्मात जीव शरीर के किसी भाग या अंग की संख्या में परिवर्तन उत्पन्न करती है। इसमे संख्या बढ़ अथवा घट जाती है। ये दो प्रकार की होती है–

(a) धनात्मक संख्यात्मक विभिन्नताएँ (Positive Quantitative Variations)– इसमे अंगों अथवा भागों की संख्या बढ जाती है, जैसे– पाँच के स्थान पर छः अंगुलियों का होना, पुष्प में 5 के स्थान पर 6–7 बाह्यदल (Calyx) अथवा दल (Corolla) का होना, आदि। सितारा मछली में 5 के बजाय 6 भुजाओं का होना इसी प्रकार की विभिन्नताएँ हैं।

(b) ऋणात्मक संख्यात्मक विभिन्नताएँ (Negative Quantitative Variations)– इसमें अंगों अथवा भागों की संख्या घट जाती है, जैसे– कभी–कभी दो के स्थान पर एक वृक्क का बनना, बछड़े के सिर से सींग का गायब होना, गुलाब के पौधे में काँटो का न होना, आदि। पाँच के स्थान पर 3–4 अंगुलियों का होना ऐसी ही विभिन्नताएँ हैं।

(ii) गुणात्मक विभिन्नताएँ (Qualitative or Substantive variations)– इस प्रकार की विभिन्नता जीव–शरीर में, उसके किसी भाग या अंश में अथवा रूप आदि में परिवर्तन प्रदर्शित करती है। **उदाहरण**– सन् 1871 में अमेरीका के मैसेचुसैट्स (Massachusetts) नामक नगर में सेथराइट्स (Sethritus) नामक किसान के बाड़े में भेड़ ने मेंढ़े (Lamb) को जन्म दिया जिसका शरीर सामान्य था, परन्तु पैर छोटे व धनुषाकार थे। उसके ये लक्षण शुद्ध नस्ली थे अतः इससे मेंढ़े की एक नयी नस्ल तैयार हुई, जिसे ऐनकेन भेड़ों (Ancon sheep) का नाम दिया गया। यह बाड़े को फाँद कर बाहर नहीं जा सकती थीं।

दीमक (Termite), मधुमक्खी (Honeybee) आदि के सजातिय सदस्यों की बहुरूपी विभिन्नताएँ भी गुणात्मक होती हैं। मनुष्य में विभिन्न प्रकार रुधिर वर्गों (Blood Group) का पाया जाना भी गुणात्मक विभिन्नताएँ कहलाती हैं।

2. **निश्चयात्मक एवं अनिश्चयात्मक विभिन्नताएँ (Determinate and Indeterminate Variation)**– निश्चयात्मक विभिन्नताएँ (Determinate variation) अनुकूलन से सम्बन्धीत होती हैं। ये सम्भवतः प्रभावशाली जीन संयोजन (Strong gene combination) द्वारा नियन्त्रित होती हैं, अतः विकास की निश्चित दशाओं में बिना रोक–टोक के विकसित होती रहती हैं। **उदाहरणार्थ**– आयरलैण्ड के बारहसिंगों में सींगों का तथा स्वीडीलॉन

चीते (Sweedelon leopard) में दाँतों का आवश्यकता से अधिक विकसित होना इसी प्रकार की विभिन्नता है।

अनिश्चयात्मक विभिन्नताएँ (Indeterminate Variation)– परिवर्तन (Mutation) के कारण उत्पन्न होने वाली विभिन्नताएँ हैं जो अकस्मात् बिना किसी प्रयोजन के किसी भी दिशा में बिना रोक–टोक के उत्पन्न होती हैं। अनिश्चयात्मक विभिन्नताएँ क्रमिक श्रेणियों में अत्याधिक पाई जाती हैं। यह परिवर्तन की किसी विचारणीय दिशा में उत्पन्न होती है। डार्विन का प्राकृतिक चुनाव (Natural selection) का सिद्धान्त अनिश्चित विभिन्नताओं पर आधारित है। निश्चयात्मक विभिन्नताएँ किसी अज्ञात प्रभाव द्वारा नियन्त्रत होती हैं।

3. **कायिक एवं जननिक विभिन्नताएँ (Somatogenic and Germinal Variation)**– इस प्रकार की विभिन्नताएँ जीव के शरीर में उसके जीवनकाल में बदलती हुई वातावरणीय दशाओं अथवा जीवन–रीतियों के कारण उत्पन्न होती हैं जो दृष्टिगत होती हैं। इन्हें दर्शरूप विभिन्नता (Phenotypic Variations) कहते हैं। इन्हे उपार्जित लक्षण (Acquired Character) कहते हैं। लोहार तथा पहलवान की पेशियों का विकसित होना, चीनी औरतों के छोटे पैर, धूप में कार्य करने वाले मजदूर का काला रंग, आदि इसी प्रकार विभिन्नताएँ हैं।

   जननिक विभिन्नताएँ (Germinal Variation)– इन्हें ब्लास्टोजीनिक (Blastogenic) विभिन्नताएँ भी कहते हैं। इस प्रकार की विभिन्नताएँ सजातिय सदस्यों के जीनी–समूह (Genotype) में परिवर्तन के कारण होती हैं। इन्ही के कारण एक ही माता–पिता की सभी सन्तानें समान होती हैं, जैस– बालों तथा नेत्र की पुतली का रंग, शरीर की लम्बाई आदि।

   ये विभिन्नताएँ जर्मप्लाज्म (Germplasm) में जाती हैं। युग्मक (Gemetes) जर्मप्लाज्म से बनते हैं तथा ये युग्मक संयुग्मन के पश्चात् युग्मनज (zygote) बनाते हैं जो वृद्धि करके प्रौढ़ जन्तु में विकसित हो जाते हैं। अतः जर्मप्लाज्म में होने वाले समस्त परिवर्तन पीढ़ी दर पीढ़ी सन्तानों में पहुँचते रहते हैं। ये जीव के जन्म के समय या उसके जीव काल में कभी भी प्रदर्शित हो सकती है तथा वंशानुगत होती हैं।

विभिन्नताओं के कारण (Causes of Variations)

विभिन्नताओं के कारणों को निम्नलिखित दो प्रमुख श्रेणियों में बाँट सकते हैं–

1. **वातावरणीय दशाओं में परिवर्तन के कारण (Effect due to environment changes)**
2. **जीनों ढाँचे में परिवर्तन के कारण (Effect due to changes in genetic structure)**

1. **वातावरणीय दशाओं के प्रभाव से उत्पन्न विभिन्नताएँ (Variations occuring due to environment effect)**– इसके प्रभाव से सजातीय सदस्यों में कायिक (Somatic) या उपार्जित विभिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। ये वातावरणीय दशाएँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं–

   (i) शरीर पर सीधा प्रभाव डालने वाली दशाएँ (Conditions affecting the body)– भोजन, ताप (Temperature), नमी (Moisture), वायु–दाब, प्रकाश आदि दशाएँ जीवों पर सीधा प्रभाव डालती हैं जिनसे जीव– शरीर में कायिक विभिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन प्रभावों से प्राणियों की संरचना प्रभावित होती है। **उदाहरणार्थ**– छिछले जल में पाये जाने वाले पौधों की पत्तियाँ सामान्य होती है परन्तु गहरे जल में पाये जाने वाले पौधों की पत्तियाँ कटी–फटी होती है। ऐसा इसलिए होता है चूँकि गहरे जल में प्रकाश की कम मात्रा पहुँचती है अतः पत्तियाँ अधिकाधिक प्रकाश ग्रहण करने के लिए बँट जाती है। इस प्रकार छिछले एवं गहरे जल के कारण सजातीय पौधों में यह भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। वैज्ञानिक **अगर** एवं **टावर** (Agar and Tower) ने प्रयोगों द्वारा पाया कि एक ही जाति के चूहों को कम या अधिक ताप पर पृथक्–पृथक् रखने पर थोड़े समय पश्चात् देखा कि दोनों प्रकार के चूहों में विभिन्नता आ गई।

   (ii) अंगों के उपयोग अथवा अनुपयोग को प्रभावित करने वाली दशाएँ (Conditions Affecting Use and Disuse of Body Parts)– कुछ वातावरणीय दशाएँ जीवों को उनके कुछ अंगों को कम अथवा अधिक उपयोग के लिए प्रेरित करती है। इसी प्रकार, जीव अपने जीवनकाल में जीवन–रीतियों के प्रभाव से कुछ अंगों का कम अथवा अधिक प्रयोग करता है जिससे उसमें परिवर्तन उत्पन्न हो जाते है, जैसे– चीनी औरतें छोटे पैर पसन्द करती है अतः वे बचपन से ही तंग जूते (Tight shoe) पहनती है जिससे उनके पैर का विकास रुक जाता है। लोहार के दायें हाथ की पेशियाँ बायें हाथ की पेशियों की अपेक्षा अधिक विकसित होती है।

   (iii) अन्तर्निहित प्रवृत्ति (Inherent tendency)– प्रत्येक जीव या प्राणी का आधारभूत पदार्थ जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म– Protoplasm) है। यह प्ररस या जीवद्रव्य एक जटिल पदार्थ होता है तथा इसके कणों में हमेशा रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं, इसी कारण दो जीव समान नहीं होते। अगर दो जीवों की संरचना समान है तो स्वभाव (Habit) एवं कार्यिकी (Physiology) के आधार पर समानता भिन्न होती है।

   (iv) अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine glands)– प्रत्येक मनुष्य एवं प्राणी में अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ पाई जाती है। विभिन्न प्रकार की अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के द्वारा रासायनिक पदार्थ हॉर्मोन स्त्रावित किया

टिप्पणी

जाता है। यह हॉर्मोन्स शरीर की सभी आवश्यक चयापचय क्रियाओं पर नियन्त्रण कर समन्वय बनाते हैं। इन हॉर्मोन्स के स्त्रावण की कमी या अधिकता के कारण जीवन की क्रियाओं में परिवर्तन आ जाते हैं। यह विभिन्नताएँ शारीरिक, मानसिक एवं क्रियात्मक विभिन्नताएँ होती हैं, जो नई सन्तति को उत्पन्न करते हैं।

(v) **द्वैत जनकता (Dual parentage)**– प्रत्येक प्राणी की सन्तान दो जनकों (Parents) की जनन कोशिकाओं के द्वारा उत्पन्न होती है। इन सन्तानों में कुछ गुण माता से तथा कुछ गुण पिता से आते हैं। इसके उपरान्त भी सन्तान माता–पिता के समान नहीं होती। इस कारण जीवों में परिवर्तन देखे जाते है।

2. **जीनी ढाँचे में परिवर्तन के कारण (Effect due to change in genetic structure)**– सभी जीव–जातियों में विभिन्नताएँ उनके गुणसूत्र समूह (Karyotype) में भिन्नता के अनुरूप होती है। अतः विभिन्न जीव–जातियों में गुणसूत्रों की संख्या अलग–अलग होती है। इसी तरह एक ही जाति के सदस्यों में विभिन्नताएँ उनके जीनी–ढाँचे (Genotype) के अनुरूप होती है, परन्तु इनमें गुणसूत्रों की संख्या सदैव निश्चित होती है। जैसे– मनुष्य में 46 गुणसूत्र होते है अर्थात् 23 जोड़े पाये जाते हैं। इसके प्रत्येक गुणसूत्र पर विभिन्न लक्षणों के जीन्स (Genes) जोड़ियों में पाये जाते हैं। इसके प्रत्येक गुणसूत्र एक जीन एक गुणसूत्र पर तथा इसका दूसरा जीन गुणसूत्र के दूसरे समजात (Homologous) साथी पर उसके सामने एक ही बिंदु पर स्थित होता है। इस प्रकार सभी जीन्स गुणसूत्रों पर एक निश्चित क्रम में लगे रहते है। इसी को जीन–समूह या ढाँचा (Genotype) कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक जीव–जाति के सदस्यों में भिन्नताएँ इनके जीनों के ढाँचे में परिवर्तन के कारण होती है। ये आनुवंशिक होती है। जीनी ढाँचे में परिवर्तन के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं।

(i) **लैंगिक जनन के कारण (Due to Sexual reproduction)**– लैंगिक जनन की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार होती है इसमें युग्मकजनन (Gametogenesis) के दौरान अर्धसूत्री (Meiosis) विभाजन होता है। इसकी डिप्लोटीन अवस्था में गुणसूत्रों में क्रॉसिंग ओवर होता है। इस क्रिया में जीन्स का विनिमय होता है। जिससे युग्मको के जीनों के ढाँचे में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य ही हो जाता है जो एक ही माता–पिता की सन्तानों अथवा सजातीय सदस्यों में विभिन्नता का कारण बनती है। जीनी ढाँचे में परिवर्तन निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होता है–

(a) **समजात जीन्स एवं गुणसूत्रों का अनियमित बँटवारा (Random Distribution of Homologous Genes and Chromosomes)**– समजात गुणसूत्रों (Homologous Chromosomes) के प्रत्येक सूत्र पर समजात लक्षणों अथवा तुलनात्मक लक्षणों के जीन्स (Alleles) सदैव जोडों में पाये जाते

है। अर्धसूत्री विभाजन के समय ये जीन्स गुणसूत्रों के साथ–साथ पृथक् होकर विभिन्न युग्मकों (Gametes) में चलें जाते है जिससे युग्मकों के लक्षणों में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य उत्पन्न हो जाती है।

(b) पारगमन (Crossing Over)– जीवों में लक्षण उनके जीनी ढाँचे (Genotype) के अनुरूप होते हैं। युग्मकजन की प्रक्रिया के दौरान अर्धसूत्री के विभाजन में पारगमन (Crossing over) की क्रिया होती है जिससे युग्मकों में गुणसूत्रों से जीन्स की सहलग्नता (Linkage) बदल जाती है जो सन्तानों में असमानता का आधार बनती है।

(c) द्वैतजनकता (Dual Parentage)– सन्तान का विकास युग्मनज (2X) (Zygote) से होता है। युग्मनज का निर्माण नर तथा मादा युग्मकों के संयोजन के फलस्वरूप होता है। इस प्रकार युग्मनज को आधे गुणसूत्र व जीन्स नर से तथा आधे मादा जनकों से प्राप्त होते है। अतः इनके गुणसूत्रों एवं जीन्स सम्मिश्रण से सन्तानों के जीनी ढाँचे (Genotype) में परिवर्तन हो जाता है जो सन्तानों में विभिन्नता का कारण बनते है।

(d) निषेचन में अनियमित संयुग्मन (Random Sexual Union in Fertilization)– कभी–कभी निषेचन (Fertilization) के समय नर तथा मादा युग्मकों में संयुग्मन (Conjugation) की संरचना में दिखाई देने वाले परिवर्तन को गुणसूत्री विपथन (Chromosomal aberration) या गुणसूत्री पुनर्विन्यास (Chromosomal rearrangements) भी कहते है। इस प्रकार के परिवर्तन गुणसुत्र के टूटने–फूटने, पुनर्मिलन अथवा अन्य गुणसूत्रो (chromosomes) के साथ जुडने आदि से अथवा गुणसूत्र की संख्या एवं विशेषताओं में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होते है। इस प्रकार के परिवर्तन गुणसूत्रों में प्रायः युग्मकजनन (Gametogenesis) की प्रक्रिया के समय होते है। इस प्रकार के परिवर्तनों को पहचाना जा सकता है, क्योंकि यह कायिक परिवर्तन (Phenotype change) उत्पन्न करते है। इन परिवर्तनों से जन्तुओं में संरचनात्मक या फीनोटाइपिक/कायिक परिवर्तन आ सकते है। सम्भावित आनुवंशिक अनुपात (Genetic ratio) में परिवर्तन आ जाते हैं एवं कुछ आनुवंशक/जीन्स (Genes) के सहलग्न सम्बन्ध में भी भिन्नता आ जाती है। गुणसूत्र विपथन (Chromosomal aberration) विकास सम्बन्धी परिवर्तन उत्पन्न करने तथा गुणसूत्रों (chromosomes) एवं जीन्स (Genes) में नये सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करते हैं। इनकी वंशानुगति मेण्डल के नियम के अनुसार होती है।

4.4.5 पृथक्करण (Isolation)

विलगन या पृथक्करण (Isolation) जैव–विकास का महत्वपूर्ण कारक है। यह एक ऐसी विधि है जो जातियों को समूह या उप–समूह में विभाजित कर देती है।

प्राकृतिक अवरोधों (Natural Barriers) भौतिक, यान्त्रिक, क्रियात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आदि विभिन्न कारको से किसी जाति विशेष के सदस्यों के छोटी–छोटी इकाईयों या उप–जातियों आदि में बँट जाने की क्रिया को पृथक्करण (Isolation) कहते है। इसके कारण ये जन्तु परस्पर जनन–क्रिया करने में असमर्थ हो जाते है जिससे उनकी मूल जाति का विकास रूक जाता है और वे नयी वातावरणीय दशाओं के अनुरूप स्वयं को परिवर्तित कर नयी जीव–जातियों में बदल जाते है। दूसरे शब्दों में पृथक्करण वह प्राकृतिक घटना है जो परस्पर सम्बन्धीत जातियों के मध्य जीन्स के प्रवाह को रोकती है।

कैलांग (Kelong) वैज्ञानिक के अनुसार विलगन/पृथक्करण (Isolation) एक स्वच्छ अनुकूल व्यवस्था है, लेकिन यह व्यवस्था जाति–निर्माण का कारण नहीं होती। यह जाति को शीघ्र ही हयासित करने में सहायक होती है। यह प्रारम्भ करने के सहायक नहीं होता। यह एक जीव वैज्ञानिक उत्प्रेरक है। मेटकॉफ (Metcalf) के अनुसार पृथक्करण के कारण संकरण (Interbreed) करने के लिए साधारण परिस्थितियाँ सहायता नहीं करती। अगर समान लक्षणों वाले जीव अपनी ही जाति से पृथक् हो जाती है तब इनमें विभिन्नता के कारण पैतृक गति (Parent) संकरण नहीं हो पाती है। वैज्ञानिक वैलेस (Wallace) के अनुसार यह पृथक्करण प्राकृतिक चुनाव में सहायता करता है। रोमेन्स (Romens) के अनुसार पृथक्करण चुनाव (Natural Selection) की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इनके अनुसार पृथक्करण (Isolation) आनुवंशिकता (Heredity) एवं विभिन्नता (Variation) की स्थिति समान है। इन पर जैव–विकास का सिद्धान्त उपयोग में आता है।

मोरिट्स वेगनर (Moritz Wagner, 1968) के अनुसार पृथक्करण जातियों के उद्भवन का एक आवश्यक तत्व तथा अपरिहार्य कारण है। यह जैव–विकास (Organic evolution) का एक महत्वपूर्ण कारक है।

पृथक्करण के भेद (Kinds of Isolation)

1. भौगोलिक पृथक्करण (Geographical Isolation)
2. अधिक दूरी के कारण पृथक्करण (Isolation Due to sheer Distance)
3. परिस्थितिक पृथक्करण (Ecological Isolation)
4. जलवायु पृथक्करण (Climatic Isolation)
5. यान्त्रिक पृथक्करण (Mechanical Isolation)
6. शरीर–क्रियात्मक पृथक्करण (Physiological Isolation)
7. जैविक पृथक्करण (Biotic Isolation)

8. जनन पृथक्करण (Reproductive Isolation)
9. युग्मक पृथक्करण (Gametic Isolation)
10. संकर का जीवित न रहना (Gametic Inviability)
11. संकर बन्धता (Hybrid Sterility)
12. मनोवैज्ञानिक पृथक्करण (Psychological Isolation)
13. सायटोलाजिकल पृथक्करण (Cytological Isolation)

1. **भौगोलिक पृथक्करण (Geographical Isolation)**– पर्वत–श्रृंखलाओं, नदियो, जल–मार्गो अथवा मरूस्थलों आदि भौगोलिक अवरोधों के कारण कभी–कभी जीव–जातियाँ छोटी–छोटी इकाईयों अथवा उप–जातियों मे बँट जाती है जो वहाँ की परिवर्तित वातावरणीय दशाओं के अनुरूप परिवर्तन कर धीरे–धीरे इतनी भिन्न हो जाती है कि उन्हें हम नयी जीव–जाति मानने लगते हैं। इस प्रकार एक ही जाति के भौगोलिक पृथक्करण द्वारा कई जातियों की उत्पत्ति की पृष्टि होती है। उदाहरण के लिए, दक्षिण अमेरिका तथा अफ्रीका में लगभग समान सी वातावरणी दशाएँ है फिर भी वहाँ पर पायी जाने वाली जातियों में भिन्नता है, क्योंकि दक्षिण अमेरिका पहले एक पृथक् महाद्वीप रहा जबकि अफ्रीका सदैव यूरोप–एशिया महाद्वीपों से जुडा रहा, अतः इन दोनों के बीच दूरी होने के कारण देशान्तरण (Immigration) के अभाव में भिन्न–भिन्न जातियाँ बनीं। ऐसा ही एक उदाहरण डार्विन ने दिया। उन्होने दक्षिण अमेरिका के निकटवर्ती समुद्र में स्थित छोटे–छोटे द्वीपों पर डार्विन फिंच (Darwin's Finch) नामक चिड़िया की मिलती–जुलती जातियाँ देखी। इसके बाद उन्होंने ऐसी ही एक चिड़िया दक्षिण अमेरिका महाद्वीप पर भी देखी। महाद्वीप तथा इन छोटे–छोटे द्वीपों की जलवायु एवं परिस्थितिक दशाओं में काफी अन्तर था। अतः डार्विन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह चिडियाँ पहले दक्षिण अमेरिका के महाद्वीप में पायी जाती थी जो देशान्तर के कारण अन्य छोटे–छोटे द्वीपो (Islands) पर जाकर फैल गई जो पुनः जलमार्ग की दूरी होने के कारण वापस न आ सकी और वे उन द्वीपों की वातावरणीय दशाओं के अनुसार उपयोजित होकर भिन्न–भिन्न जातियों में बदल गयी।

   हवाई द्वीप में थलीय घोंघों (Snails) का वितरण भौगोलिक पृथक्करण का एक अच्छा उदाहरण है। द्वीप की ज्वालामुखी कंटक घाटियों (Valleys) में पृथक् होती है जिनमें अत्याधिक वनस्पति सतह पर पाई जाती है, लेकिन इनका शीर्ष भाग पूर्णतः शून्य/खाली होता है। प्रत्येक घाटी में विभिन्न प्रकार के थलीय घोंघे पाये जाते है। इन घोंघों के बीच में एक–दूसरे से दूरी/विलगता घाटियों के बीच की दूरी के प्रत्यक्ष अनुपात में होती है।

2. **अधिक दूरी के कारण पृथक्करण (Isolation due to sheer Distance)**– कभी–कभी एक ही जाति के सदस्य देशान्तर (Immigration) द्वारा दूर–दूर इलाकों (क्षेत्रों) में फैल जाते है और वे किसी भी भौगोलिक अवरोध के न होते हुए भी परस्पर नही मिल पाते है तथा

जनन नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार वे अपने ही क्षेत्र में परस्पर जनन कर विकसित होते रहते है तथा दूरी के कारण दूसरे भू–भाग में पाये जाने वाले जीवों से नहीं मिल पाते है। उदाहरण के लिए, उत्तरी अमेरिका के एक बड़े क्षेत्र होलार्कटिका (Holarctica) भाग में स्तनधारी जन्तु दूरी के कारण कई छोटे–छोटे समूहों में बँट गये। इस कारण इनमें आपस मे ही संकरण (Hybridization) हो सकता है।

3. **पारिस्थितिक पृथक्करण (Ecological Isolation)**– कभी–कभी जीवों में परिस्थितिक प्रकृति एवं स्वभाव अन्तर होने के कारण वे परस्पर जनन करने में असमर्थ हो जाते है और अलग जाति के रूप में विकसित होने लगते हैं। समतापी (Homothermic) कशेरूक का प्रजनन काल लम्बा होता है, जबकि असमतापी (Poikilothermic) कशेरूक एवं अग्रसेन प्राणियों का प्रजनन काल सीमित होता है। जलवायु पृथक्करण के लिए सहायक होती है।

4. **जलवायु पृथक्करण (Climatic Isolation)**– कभी–कभी किसी बड़े क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की जलवायु पायी जाती है जिसके प्रभाव से उस बड़े क्षेत्र में फैले हुए जीव परस्पर नहीं मिल पाते है और न ही जनन कर पाते हैं। अतः निश्चित क्षेत्र की जलवायु के अनुकूल अपने को उपयोजित करने लगते है जिससे उस बड़े क्षेत्र में फैले जन्तुओ में भिन्नता हो जाती है।

   इस प्रकार किसी विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई एक ही समान जीव ताप, नमी, जल, प्रकाश तथा जल में घुलित लवणों आदि के प्रभाव से भिन्न–भिन्न लक्षणों से युक्त छोटी–छोटी उप–जातियों तथा समूहों में बँट जाते है। उत्तरी एवं दक्षिणी केप कॉड (Cape Cod) का समुद्री जल इसके उपयुक्त उदाहरण है।

5. **यान्त्रिक पृथक्करण (Mechanical Isolation)**– कभी–कभी एक ही जाति के कुछ सदस्यों के आकार व परिमाण अथवा उत्परिवर्तन के कारण उत्पन्न भिन्नता के कारण वे साथ–साथ रहते हुए भी परस्पर जनन नहीं कर पाते है और अलग – अलग रहते अपना विकास करते हैं। मॉथ की विभिन्न जातियों में मैथुन के कारण नर जननांग क्षतिग्रस्त हो जाते है और मृत्यु हो जाती है।

   मौसमी पृथक्करण (Seasonal Isolation)– प्रजनन मौसम में विभिन्नता या अन्तर, विभिन्न जातियों के या विभिन्न जीवसंख्या के व्यक्तियों के बीच अन्तःप्रजनन (Interbreeding) एवं मैथुन को रोकता है। मौसमी पृथक्करण पौधों में अधिकतर पाया जाता है तथा कभी–कभी कीटों (Insects) एवं अन्य अकशेरूक प्राणियों के बीच में होता है। **उदाहरण**–

   अ. ब्लेन (Blain-1941) ने मौसमी पृथक्करण अमेरिकन भेक (American toad)– बफोअमेरिकेनस (Bufoamericanus) एवं बफोफाउलेरी (Bufofowleri) में पाया। यह दोनों को प्रयोगशाला में बंदी अवस्था (Captivity) में रखा। इनके प्रजनन से संकरण उत्पन्न हुए जो बहुत कम संसार में पाये जाते हैं। बफो अमेरिकाना प्रारम्भिक वर्षा ऋतु में प्रजनन करते हैं, जबकि बफो

फाउलेरी वर्षा ऋतु के अन्त में प्रजनन करते हैं। अतिव्यापन (Overlapping) अवधि में अधिक संकरण उत्पन्न होते हैं तथा संकर (Hybrid) भेक (Toad) की दूसरी जाति – बफो वुडहाउसी (Bufo woodhousii) से समानता दर्शाते हैं।

ब. मेयर (Mayer) ने मौसमी पृथक्करण का वर्णन अनेक पक्षियों में किया है।

क. मौसमी पृथक्करण अधिक प्रभावशाली जलीय प्राणियों में पाया जाता है। **उदाहरण**– स्वच्छ जलीय मछलियों में जलाडंक (Spawning) का समय जल के तापक्रम के द्वारा नियन्त्रित होता है जबकि अधिक सम्बन्धीत जातियों में जलाडंक मौसम (Spawning season) प्रभावी रूप से विभिन्न जलाडंक तापक्रम में अनुकूलनता के द्वारा पृथक् पाया जाता है।

ड. विभिन्न पौधों की जातियों में पूर्णतया दिन की लम्बाई के अनुसार, प्रकाश की तीव्रता एवं तापक्रम के अनुसार फूल खिलते हैं।

6. **शरीर–क्रियात्मक पृथक्करण (Physiological Isolation)**– कभी–कभी तथा किसी–किसी जीव–जाति के सदस्यों के शरीर में क्रियात्मक भिन्नता उत्पन्न हो जाने के कारण वे उप–जातियों में बँट जाते है, जैसे– ड्रोसोफिला (Drosophila) मक्खी की कुछ जातियों में परस्पर मैथुन नहीं हो पाता, क्योंकि उनमें मैथुन (Mating) के बाद योनि (Vagina) की श्लेष्मिक कला (Mucus membrane) फूल जाती है और अण्डरोपण के अभाव में अण्डे मादा के शरीर में नष्ट हो जाते हैं।

7. **जैविक पृथक्क्रण (Biotic Isolation)**– किसी निश्चित क्षेत्र में रहने वाली विभिन्न जीव–जातियाँ एवं वानस्पतिक समूह मिलकर उस स्थान का जैविक वातावरण बनाते है, अतः वे सभी एक–दूसरे पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों का जैविक वातावरण भिन्न–भिन्न होता है जिसके प्रभाव से भी जीव–जातियाँ अलग–अलग हो जाती हैं।

8. **जनन पृथक्करण (Reproductive Isolation)**– कभी–कभी एक ही जाति के सदस्यों के मैथुन–अंगों में कुछ भिन्नता हो जाने के कारण वे अपनी जाति के अन्य जीवों के साथ मैथुन सम्बन्ध स्थापित करने मे असमर्थ हो जाते है और इस प्रकार एक ही जाति के सदस्य उप–जातियों में बँट जाते है। जैसे– कीटों में एक निश्चित जाति की मादा उसी जाति के नर के साथ मैथुन–सम्बन्ध स्थापित कर सकती है किन्तु थोड़ा–सा भी अन्तर हो जाने के कारण उनमें मैथुन नही हो पाता है। इस प्रकार उनमें जनन के आधार पर पृथक्करण हो जाता है। इसका उदाहरण टिड्डी (Grasshopper) में देखा जा सकता है। इस कीट में अपने जीवन चक्र की अवधि में आनुवंशिक रूपान्तरण के कारण काफी भिन्नता होती है।

टिप्पणी

9. **युग्मक पृथक्करण (Gametic Isolation)**– विभिन्न जातियों के सदस्यों के युग्मकों में आकारिकी भिन्नताओं के कारण नर के शुक्राणु दूसरी जाति के अण्डों को निषेचित करने में असमर्थ होते हैं। इस प्रकार वे अलग–अलग हो जाते हैं।

10. **संकर का जीवित न रहना (Hybrid Inviability)**– कभी–कभी भिन्न जातियों के सदस्यो के बीच निषेचन की क्रिया तो हो जाती है, परन्तु उससे बना युग्मनज (Zygote) वर्धन (Develop) करने में असमर्थ होता है। इस प्रकार वह उप–जातियों में अन्तर जनन–क्रिया को प्रेरित नहीं करता है।

11. **संकर बन्ध्यता (Hybrid Sterility)**– कभी–कभी दो विभिन्न जातियों के बीच निषेचन एवं भ्रूण का वर्धन सम्भव हो जाता है, परन्तु इससे बनी सन्तान स्वयं सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ होती है अर्थात् बन्ध्य (Sterile) होती है। जैसे– घोडे तथा गधे के बीच निषेचन तथा वर्धन हो जाता है और उनसे उत्पन्न खच्चर बन्ध्य होता है, क्योंकि इसमें युग्मकजनन के दौरान गुणसूत्र (Chromosomes) युग्मित नहीं हो पाते है।

दो प्रमुख सिद्धान्त प्रजननीय पृथक्करण की उत्पत्ति के बारे में प्रतिपादित हुए–

1. **मुलर के विचार (Muller's view)**– इस वैज्ञानिक के अनुसार प्रजननीय पृथक्करण जीन्स की विभिन्नता के कारण उत्पन्न होता है। यह जीन्स जाति एवं उपजाति की उत्पत्ति के समय ऐलोपेट्रिक (Allopatric) जनसंख्या में उत्पन्न होते हैं। जब किसी जाति (Species) की जनसंख्या विभिन्न वातावरण को ग्रहण करती है या विभिन्न वातावरण में रहती है या भौगोलिक पृथक्करण के द्वारा उपजाति के रूप में पृथक् हो जाती है, तब प्रत्येक विलगित उप समूह एक स्वतन्त्र जनसंख्या के रूप में व्यवहार करती है। इस प्रकार की ऐलोपेट्रिक जनसंख्या के जीव आपस में प्रजनन नहीं करते है और न ही आनुवंशिक पदार्थ का आदान–प्रदान होता है। प्रत्येक जनसंरचना में स्वतन्त्र रूप से उत्परिवर्तन उत्पन्न होंगे और प्रत्येक जनसंख्या स्वतन्त्र रूप से चयन दाब (Selection pressure) के द्वारा निरूपित होती है। इस प्रकार लम्बी अवधि में प्रत्येक जनसंख्या के जीन पूल (Gene pool) एक वातावरण के अनुसार परिवर्तित होगा, जिससे कि जीव अपने को वातावरण के अनुकूल बना सके। अधिक अवधि में इन परिवर्तन के परिणामस्वरूप जीन्स का पुनर्गठन एवं पुनर्विलगन हो जायेगा। जीनोटाइप के परिवर्तित रूप में इस जनसंख्या को यदि अन्तः प्रजनन का अवसर प्राप्त होता है तब उनके परिवर्तित जीनोटाइप अन्तर्प्रजनन करने की आज्ञा प्रदान करेंगे या संकर जो उत्पन्न होगा वह बन्ध्य/नपुंसक

होगा। अतः विलगन आनुवंशिकी विषमरूपता (Divergence) उपपदार्थ है।

डोबेजैन्सकी के विचार (Dobzhansky's view)– इस वैज्ञानिक के अनुसार प्रजननीय लैंगिक रूप से प्रजनन करने वाले युग्म एवं परनिषेचन करने वाली जातियों के बीच संपूरक जीन्स मिश्रण में परिवर्तन के कारण होता है, इसको प्राकृतिक चयन भी मान्य करता है। इसने देखा कि जातियों के संकर (Hybrid) या तो बन्ध्य/नपुंसक होंगे या अक्रियाशील होंगे। इनको प्राकृतिक चयन के द्वारा दूर कर दिया जाता है या हटा दिया जाता है। इस कारण संकर के हट जाने से पैतृकों के जीन्स भी दूर हो जाऐंगे, जो संकरण (Hybridization) को मान्य करता है। अतः प्राकृतिक चयन संकरण विरूद्ध कार्य कर प्रजननीय पृथक्करण प्राप्त करता है।

12. **मनोवैज्ञानिक पृथक्करण (Psychological Isolation)**– प्रायः एक ही जाति के सदस्य परस्पर जनन करने की इच्छा रखते है, क्योंकि प्रत्येक जाति की जनन–प्रक्रिया में भिन्नता होती है। इसी भिन्नता के कारण अलग–अलग जातियाँ एक–दूसरे से जनन करने में असमर्थ होती हैं और वे अलग–अलग रहती हैं।

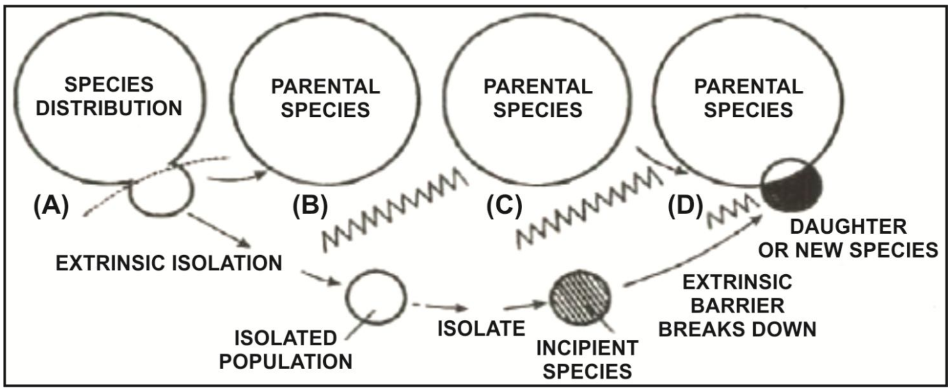

चित्र क्र. 4.21: Reproductive Isolation

13. **सायटोलाजिकल पृथक्करण (Cytological isolation)**– कभी–कभी अन्तरजातीय संकरण की भी असफलता हो सकती है। इस असफलता के लिए मूल रूप से उत्तरदायी कारक सायटोलॉजिकल अवरोध होता है। इस प्रकार अवरोध **राना क्लेमियन्स (Rana clamians)** एवं इसके घनिष्ट सम्बन्धी बुल मेंढक – **राना केटेसटेलेना (Rana catestelena)** में देखा जा सकता है। दोनों जातियों के नर एवं मादा के शुक्राणुओं एवं अण्डों के बीच जब प्रयोगशाला में कृत्रिम निषेचन कराया जाता है तब युग्मज/जाइगोट (Zygote) का परिवर्धन नहीं होता है। स्पष्ट है कि दोनों जातियों के गुणसूत्र (Chromosomes) परस्पर विरोधी है और एक दूसरे के सम्पर्क में आने पर परिवर्धन प्रारम्भ करने के लिए उचित रूप से कार्य नहीं करते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि पृथक्करण जैव–विकास का मुख्य कारक है।

उद्विकास में पृथक्करण की भूमिका (Role of Isolation in Evolution)

जाति निर्माण या जातिघटन (Speciation) की विधि के लिए पृथक्करण को एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में मान्य किया गया है। रेन्शच (Rensch-1923), मेयर (Mayer -1942), सिम्पसन (Simpson-1941) एवं लैक (Lack-1947) एवं अन्य वैज्ञानिक ने पृथक्करण के महत्व को स्थापित करने के लिए अत्याधिक बहुत काम किया हैं। यह ऐलोपेट्रिक जातिघटन (Allopatric speciation) (जातियों का उद्विकास जो विभिन्न क्षेत्रों में होता है) तथा सिम्पेट्रिक जातिघटन (Sympatric speciation) अर्थात वह उद्विकास जो एक समान क्षेत्र में होता है।

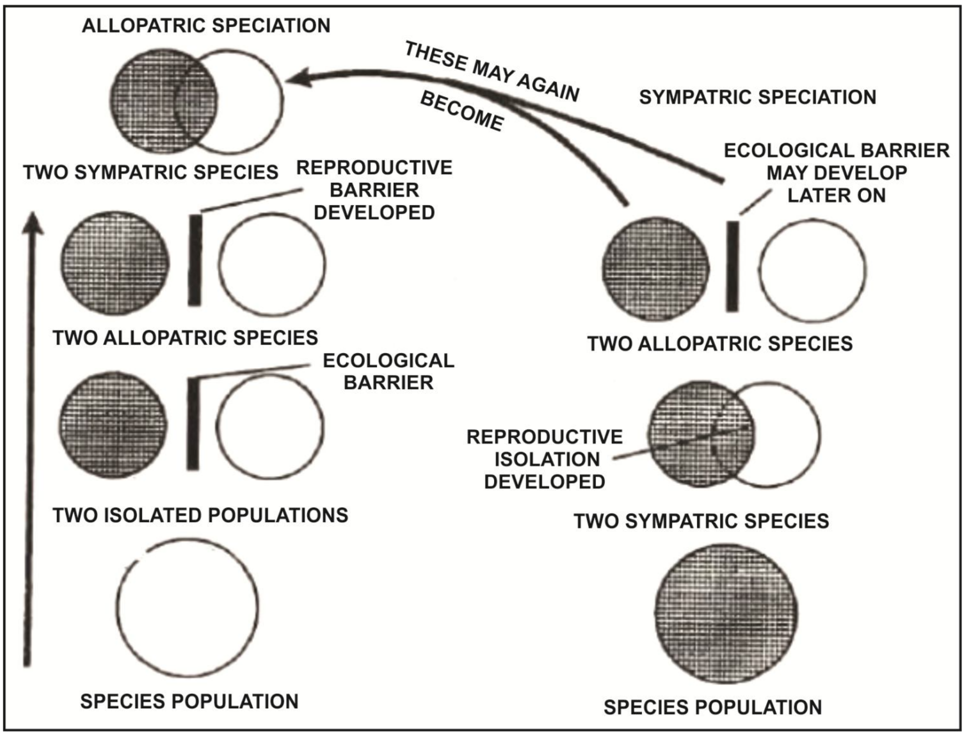

चित्र क्र. 4.22: **Process of Allopatric Reproductive Isolation**

1. **ऐलोपेट्रिक जातिघटन (Allopatric speciation)**– एक जाति की जनसंख्या विच्छिन्न वितरण (Discontinuous distribution) को दर्शाती है। अविच्छन्न वितरित जाति कभी–भी अनियमित मैथुन करने वाली बड़ी जनसंख्या को निर्मित नहीं करता है। इस कारण क्षेत्रीयता जीवों मे जातियों की जनसंख्या को अनेक ऐलोपेट्रिक प्रजनन करने वाली जनसंख्या में विलगित कर देती है। इस कारण एक ही जाति मे अनेक ऐलोपेट्रिक प्रजननीय जनसंख्या पाई जायेगी। सामान्य नियम के अनुसार जाति एक दुसरे से भौतिक रूप से पृथक् होगी और अपना स्वयं का उद्विकासीय पथ का चयन करेगी जबकि इन जनसंख्या का आनुवंशिक संगठन बहुत अधिक

समान होगा, जबकि कोई भी दो वातावरण, जैविकी एवं भौतिकी रूप से समान नहीं होते हैं। इस कारण इस जनसंख्या का चयन का दाब कुछ भिन्न होगा। इससे चयन + अनियमित उत्परिवर्तन एवं जनसंख्या मे कुछ आनुवंशिक विलगन, आनुवंशिक लक्षणों में विषमरूपता उत्पन्न होगी। अतः ऐलोपेट्रिक जाति भौगोलिक एवं प्रजननीय दोनों विलगन के कारण उत्पन्न होगी।

2. **सिम्पेट्रिक जातिघटन (Sympatric Speciation)**– इस प्रकार की जाति एकदम जाति जनसंख्या के खण्डों/समूहों के प्रजननी विलगन जीनोटाइप में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होगा। इसके परिणामस्वरूप जाति की जनसंख्या दो या अधिक प्रजननीय पृथक जनसंख्या मे विभाजित हो जायेगी। एक बार प्रजननीय विलगन स्थापित हो जाने पर प्रत्येक जनसंख्या अपने उद्विकास की ओर अग्रसर होगा, चाहे वह उसी क्षेत्र मे पाई जावे या अपने मूल क्षेत्र से प्रवास कर जावे। वे विभाजित जातियाँ भिन्न रहेगी।

4.4.6 पृथक्करण के लाभ (Advantages of Isolation)

1. **विकासवेत्ताओं (Evolutionist)**– के अनुसार पृथक्करण का लाभ प्राकृतिक वरण (Natural Selection) को हो सकता है।
2. **जैव–विकास (Organic evolution)**– के अन्तर्गत एक बार प्राप्त किये गये लक्षणों का संरक्षण करना आवश्यक होता है। जो प्राणी अधिक प्रजनन पर अत्याधिक संख्या में सन्तति उत्पन्न करते हैं, इन सन्तानों में से कुछ वातावरण के प्रभाव से मर जाते हैं। इस कारण पृथक्करण विभिन्नता को दूर करने के लिए मैथुन की क्रिया क्रम हो, मैथुन का कार्य ऐच्छिक होना चाहिए। अगर प्राणियों के पृथक्करण का परिवर्तन हो चुका है तो यह प्राणी उत्परिवर्तन वाले शिशु उत्पन्न करता है, यह शिशु अपरिवर्तित में अपना जीवन व्यतीत करने के लिए सक्षम होता है।

पृथक्करण का जैव–विकास में महत्व (Advantage of Isolation in Evolution)– पृथक्करण, जाति निर्माण (Species formation) में अत्याधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रैंस (Rensch-1923) मेयर (Mayer-1942) सिम्पसन (Simpson-1945)- तथा लैंक (Lack-1947) ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये है। यह विस्थानिक जाति उद्भवन (Allopatric: speciation विभिन्न प्रदेशों में स्थित जातियों का विकास) के साथ–साथ समस्थानिक जाति उद्भवन (Sympatric speciation: एक ही क्षेत्र में स्थित जाति के विकास) में भी सहायक होता है।

पृथक्करण जैव–विकास का एक महत्वपूर्ण कारक होता है। इसके कारण प्राणियों की जातियाँ, उप–जातियों में विभाजित हो जाती है तथा इन उप–जातियों में उत्पन्न परिवर्तन अपनी पैतृक (Parent) जाति के साथ संकरण न होने के कारण आपस में मिलकर अप्रभावी नहीं होते है, परन्तु इसका प्रभाव स्थिर रहता है। इस कारण पृथक्करण नई जाति की उत्पत्ति मे सहायता करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि पृथक्करण जैव–विकास का एक महत्वपूर्ण कारक होता है जो

नई जातियों को स्थापित करने एवं उनके सूक्ष्म विकास (Micro-evolution) में सहायक होता है। सिम्पसन (Simpson-1965) के अनुसार पृथक्करण हानिकारक भी है, क्योंकि इसके कारण पृथक्करण पाश (Isolation traps) बन जाते हैं और एक पाश के जन्तु दूसरे पाश के जन्तुओं से मिलने में असमर्थ होने के कारण नष्ट हो जाते हैं।

4.4.7 जाति उद्भवन (Speciation)

उद्विकास की सम्पूर्ण विधि नई जनसंख्या/जाति (Species) की उत्पत्ति पर निर्भर होती है जोकि अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक अनुकूलनीय कुशलता को रखती है। जनसंख्या अपसरण (species) शब्द का अर्थ समझाना आवश्यक है।

साधारणतया जाति (Species) किन्ही अन्तर प्रजननिक (Interbreeding) प्राणी समुदायों के समूह को कहा जाता है, जोकि प्रजनन की दृष्टि से पृथक होते हैं या जाति (Species) को किसी जीन संचय (Gene pool) के सहयोगी समुदायों के एक समूह को भी कहा जा सकता है, जोकि स्थान एवं समय के अनुसार संचरित होते हैं।

डाबजेनस्काई (Dobzhansky-1937) के अनुसार, "जाति (species) जैव–उद्विकास की यह प्रक्रिया है जिसमें वास्तविक या विभव (Potentially) रूप में प्रजनन कर रहे प्राणियों का व्यूह दो या अधिक ऐसे समूहों में पृथक् हो जाता है जो संस्करण (Hybridization) के योग्य नहीं होते।"

मेयर (Mayer-1940) के अनुसार– "जाति (Species) वास्तव में या विभव रूप में (potentially) संकरण कर रही ऐसी प्राकृतिक जनसंख्या (Population) का समूह है जो अन्य समूहों से लैंगिक रूप से पृथक् होते है।"

जाति उद्भवन की विधि (Mechanism of Speciation)– मेयर (Mayer-1970) के अनुसार जाति उत्पत्ति की दो या तीन सम्भावित विधियाँ है– (i) जाति उद्भवन (Speciation) एवं (ii) गुणन (Multiplication)। इन दो विधियों के द्वारा समान जातियों की संख्या में वृद्धि होती है। जैव–उद्विकास (Organic evolution) की सभी मौलिक समस्याएँ जाति उद्भवन (Speciation) की विधि मे निहित हे जिनके द्वारा जाति (Species) दो भागों में विभाजित हो जाती है।

(अ) तात्कालिक उद्भवन (Instantaneous speciation)

1. आनुवंशिक रूप से (Genetically)
   (a) अलैंगिक जातियों (Asexual species) में एक उत्परिवर्तन (Mutation) द्वारा।
   (b) दीर्घ जननिक विधि द्वारा (Macrogenesis)

2. कोशिकात्मक रूप से (Cytologically)

   (a) गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन (Chromosomal mutation) या गुणसूत्रीय विपथन (Chromosomal aberration)– स्थानान्तरण (Translocation) आदि।

   (b) बहुगुणित द्वारा (By polyploidy)

(ब) धीरे–धीरे उद्भवन (Gradual speciation)

(a) भौगोलिक जाति उद्भवन (Geographical speciation)

(b) स्थानिक जाति उद्भवन (Sympatic speciation)

(अ) तात्कालिक जाति उद्भवन (Instantaneous speciation)– तात्कालिक जाति उद्भवन की विधि के द्वारा एक प्राणी (व्यक्ति) की उत्पत्ति होती है, अर्थात् किसी भी जाति से प्रजनन रूप से विलगित, जो कि जनकीय स्तम्भ (Parental stick) के अन्तर्गत आती है और वह प्रजनन एवं पारिस्थितिकी रूप से नई जाति की जनसंख्या को उत्पन्न करने में सक्षम होती है। यह निम्न विधियों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है–

(a) साधारण उत्परिवर्तन द्वारा तात्कालिक जाति उद्भवन– उत्परिवर्तन एक आनुवंशिकी विधि इतनी अधिक आवृति की होती है कि उच्च श्रेणी के प्राणियों में 10,000 से अधिक आनुवंशिक बिंदु (Gene loci) होते है, कि प्रत्येक व्यक्ति नये उत्परिवर्तन के लिए वाहक होती हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तन जनसंख्या में विषमयुग्मकता (Heterozygosity) की वृद्धि करते हैं, यह नई जाति को उत्पन्न नहीं करते हैं। कोई भी उत्परिवर्तन जोकि वैमनस्य रूप से प्रजननीय व्यवहार (Ecology) को प्रभावित करते हैं, तब उसका चयन हो जायेगा तथा यदि यह जीवन क्षमता/जीव्यता (Viability) को कम कर देता है या फिर मूल एलील (Allele) को हटा देता है यदि यह अधिक जीव्यता (Viability) के होते हैं। अतः सामान्य या साधारण उत्परिवर्तन कभी भी लैंगिक प्रजननीय जाति में नई जाति को उत्पन्न नहीं कर सकता है।

रोटीफर्स (Rotifers) एवं निमेटोड (Nematodes) में कुछ प्रक्रियाएँ उत्परिवर्तन के द्वारा **अलैंगिकवादी उद्भवन** (Asexual speciation by mutation) को उत्पन्न कर देते हैं। **उदाहरण**– रोटिफर (rotifers) के गण ब्डेलायडिया (Order-Bdelloidea) में कोई भी नर प्राणी नहीं होता है, अतः ऐसा समझा जाता है कि इसकी पूर्वज पैतृक जाति (Ancestral species) अभिनिषक जनीय (Parthenogenetic) होती हैं। उत्परिवर्तन के द्वारा जाति उद्भवन के द्वारा पूर्वज जाति से 200 जातियाँ (species) – लगभग 20 वंश (Genera) एवं 4 कुल (Families) उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार वृद्धि (Growth) एवं विघटन (Degeneration) में कुछ प्रक्रियाएँ उत्परिवर्तन के द्वारा **अलैंगिकवादी उद्भवन** अनुकूल दशाएँ उत्पन्न करता है। इस प्रकार की विधि स्पन्ज (Sponges), सीलेण्ट्रेटस (Coelenterates)

टर्बेलेरियन्स (Turbellerians) प्राणियों में पाई जाती हैं। जिससे जाति उद्भवन का अध्ययन वर्गीकरण के लिए अनिश्चित होता है।

(b) दीर्घजनिक विधि द्वारा तात्कालिक जाति उद्भवन (Instantaneous Speciation through Macrogenesis)– नई जाति, उच्च टैक्सा (Taxa) या फिर नये प्रकार में उच्छलन (Saltation) विधि के द्वारा यकायक उत्पत्ति को दीर्घजननिक विधि/**मैक्रोजेनेसिस** (Macrogenesis) कहते है। जाति उद्भवन के सिद्धान्त मैक्रोजेनेसिस (Macrogenesis) को अनेक आधुनिक आनुवंशिक विशेषज्ञों (Geniticist)– **गोल्डस्मिड्ट** (Goldschmidt- 1940), **शिन्डेवोल्फ** (Schindewolf-1936, 1950) ने भी मान्य किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार नई जाति को पूर्ण आनुवंशिक पुनः रचना (मैक्रोजेनेसिस) द्वारा या कोई दीर्घ दैहिक उत्परिवर्तन के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया द्वारा "आशान्वित दानव (Hopeful monster)" उत्पन्न होगा (गोल्डस्मिड्ट Goldschmidt- 1940 ने दर्शाया) जोकि नये उदि्वकासीय क्रम का पूर्वज होगा। इस सिद्धान्त में विश्वास करने वालों ने दर्शाया कि सभी नये प्रकार/नयी जाति जीवाश्म अभिलेखों (Fossil records) के रूप में यकायक रूप से प्राप्त होंगे।

इस सिद्धान्त की आधुनिक उदविकासवेत्ताओं (Evolutionists) ने अधिक आलोचना की है, क्योंकि यह किसी भी प्रमाण के द्वारा सिद्ध नहीं कि जा सकी है। **सिम्पसन** (Simpson-1953) एवं **रेनश्च** (Rensch-1960) ने इस सिद्धान्त की आलोचना जीवाश्मीय प्रमाणों (Palaeontological evidences) को प्रस्तुत की और दर्शाया कि 'एक' प्रकार पूर्व में स्थित जाति से उत्पन्न किये जाते है। मेयर (Mayer-1963, 1970) ने दर्शाया कि यह सिद्धान्त जाति उद्भवन का एक अधिक कमजोर स्त्रोत होता है।

(c) गुणसूत्रीय विपथन द्वारा तात्कालिक जाती उद्भवन (Instantaneous speciation through chromosomal aberration)– अधिक आपस में सम्बन्धीत जातियाँ आकारिकी (Morphology) की अपेक्षा कैरियोटाइप (Karyotype) के द्वारा अधिक भिन्नित होती है। कैरियोटाइप (Karyotype) की दृष्टि के अन्तर्गत – वे गुणसूत्रों की संख्या के द्वारा मेटासेन्ट्रिक (Metacentric) या पेरिसेन्ट्रिक (Pericentric) गुणसूत्रों की संख्या, पैरासेन्ट्रिक (Paracentric) या पेरिसेन्ट्रिक (Pericentric) उत्क्रमण (Inversion) के प्रकार एवं उपस्थित के द्वारा, तथा गुणसूत्रीय विपथन (Chromosomal Aberration) की दृष्टी से भिन्नित होते है। उपर्युक्त स्थिति को देखते हुए अनेक कोशिका आनुवंशिकवेत्ता (Cytogeniticist) विश्वास करते है कि गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन तात्कालिक जाति उद्भवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह विश्वास दो बातों पर आधारित है–

(i) दो जातियों के द्वारा जिन विभिन्नता के अंशों को दर्शाया जाता है कि इस प्रकार की अवसीमाओं के लिए जाति उद्भवन की आवश्यकता होती है और केवल गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन सफल हो सके।

(ii) दो जातियों के बीच प्रजनननीय विलगन को बिना गुणसूत्रीय पुनर्संगठन के प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

अतः इससे यह ज्ञात होता है कि गुणसूत्रीय पुनर्व्यवस्था अधिकांश दशाओं में नई जातियों को उत्पन नहीं कर सकती है। कुछ ही दशा में यह जाति उद्भवन को उत्पन्न करते है।

(i) जाति उद्भवन के बिना गुणसूत्रों की पुनर्व्यवस्था (Chromosomal rearrangement without speciation)– हानिकारक गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन (Chromosomal mutation) के अलावा अधिकांश गुणसूत्रीय विपथन (उत्परिवर्तन) (Chromosomal aberration) के द्वारा विलगन विधि के विकास की अपेक्षा **गुणसूत्रीय बहुरूपिता** (Chromosomal polymorphism) से विकसित होते है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है– ड्रोसोफिला में पैरासेन्ट्रिक उत्क्रमण (Peracentric inversion)। प्रत्येक जाति अपनी स्वयं की **जाति विशिष्ट बहुरूपिता** (Species specific polymorphism) से दर्शाते है और बहुत कम अधिक सम्बन्धीत जातियाँ समान गुणसूत्रीय बहुरूपिता (Chromosomal polymorphism) को बाँटती है। यह विधि दर्शाती है कि गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन एवं जाति उद्भवन के बीच कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं होता है, जबकि यह एक–दूसरे के बिना हो सकती है।

(ii) जाति उद्भवन, गुणसूत्रीय उत्परिर्वन के साथ एकरूप होना (Speciation coinciding with a chromosomal mutation)– जाति उद्भवन के समय यदि गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन कुछ चयनित (उद्विकासीय) लाभ नही रखते/दर्शाते हैं, तब जल्दी–जल्दी प्रकृति में नहीं होते या पाये जाते। इस कारण इसके दो लाभ गुणसूत्रीय जाति उद्भवन में होते हैं– (i) गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन में विभव पाई जाती है जो विलगन/पृथक्करण विधि के रूप में कार्य कर सके। (ii) एक निश्चित अनुकूलित उत्परिर्वन के द्वारा संरक्षित रखने से एक सुपर जीन निर्मित होगा जिसको वैलेस (Wallace-1959) ने सर्वप्रथम पहचाना। गुणसूत्रीय जाति उद्भवन के उपर्युक्त दोनों भागों को बाद में प्राकृतिक चयन के द्वारा भौगोलिक पृथक्करण होने की अवधि में या पैरापेट्रिक **जाति उद्भवन** (Parapatric speciation) या दोनों विधियों द्वारा सुधारा जा सकता है। शब्द **पौरापैट्रिक** (Parapatric) का उपयोग जनसंख्या या जाति के लिए किया जाता है जोकि न तो अन्तरप्रजनन (Interbreeding) करती है या एक–दूसरे से अतिव्यापक (Overlapping) होती है लेकिन भौगोलिक रूप से सम्पर्क में रहती है।

(a) गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन–विभव नयी विलगनीय विधि के रूप में (Chromosomal mutation as potential new isolating mechanism)– गुणसूत्र की संरचना में किसी भी प्रकार का

टिप्पणी

परिवर्तन **गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन** (Chromosomal mutation) या **गुणसूत्रिय विपथन** (Chromosomal Aberration) कहलाता है चाहे वह उत्क्रमण (Inversion), स्थानान्तरण (Translocation) द्विगुणन (Duplication) हो या जीन्स/आनुवंशक के रेखीय क्रम, किसी भी अन्य प्रकार का परिवर्तन हो। गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन 1000 में 1 की दर से होते है। अधिकांशतः यह उत्परिवर्तन हानिकारक होते हैं जिनको एकदम दूर करना आवश्यक है इसके पूर्व उत्परिवर्तनीय वाहक प्रजननीय अवस्था/उम्र तक पहुँच पाये। एक अन्य प्रकार का गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन होता है जोकि विषमयुग्मजों की (Heterozygote) प्रजनन क्षमता को कम कर देता है। विषमयुग्मजों में कुछ गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन पाया जाता है, जोकि जाति उद्भवन में महत्वपूर्ण होता है। इसमें कुछ कठिनाई अर्धसूत्रण/युग्मकजनन के समय होती है– गुणसूत्रों के युग्मन में आंशिक रूप से असफलता या मल्टीवेलेन्ट्स का प्रथम अर्धसूत्रीय मेटाफेज में अनियमित घूर्मण या फिर दोनों। यह दोनों कठिनाईयों के कारण जो युग्मक उत्पन्न होते हैं उन युग्मकों में विलोपन या द्विगुणक या टूट–फूट या अकेन्द्रीय गुणसूत्रों में पाई जायेगी जिसके कारण नर संकर में प्रजनन क्षमता में कमी पाई जायेगी।

जीन/आनुवंशक या बिंदु उत्परिवर्तन की तरह गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन के द्वारा भी दृष्टिगत फीनोटाइप पर कोई प्रभाव नहीं दर्शाता है। इस कारण इनको पहचानना कठिन होता है। विषम युग्मकों के विपरीत, इसमें बिंदु उत्परिवर्तन पाया जाता है। गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन के विषमयुग्मज प्रभाविता के द्वारा आवरित नहीं होते हैं, अतः इस प्रकार के विषययुग्मज अर्धसूत्रण कठिनाई युक्त चयन के प्रमुख लक्ष्य होते हैं। अन्त में गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं होता है बल्कि जीन्स/आनुवंशक के रेखीय क्रम में परिवर्तन होता है।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

10. उत्परिवर्तनवाद का सर्वप्रथम प्रतिपादन किया–
    (अ) डार्विन ने (ब) लैमार्क ने
    (स) हयूगो डी ब्रीज ने (द) वैलेस ने
11. उत्परितर्वन का कारण है–
    (अ) जीन में अकस्मात परिवर्तन (ब) पोषण
    (स) एक्सरे–किरणे (द) एक जनक का प्रबल प्रभाव
12. आकस्मिक आनुवंशिक परिवर्तन को कहते है'–
    (अ) समसूत्रण (ब) अर्धसूत्रण
    (स) उत्परिवर्तन (द) पुनः सम्मिश्रण

13. उत्परिवर्तन होते है–

(अ) जीन्स के अनियमित बँटवारे के

(ब) जीन्स में रासायनिक परिवर्तन से

(स) परिवर्तनशील वातावरणीय दशाओं से

(द) विकास की निश्चित दशाओं से।

14. हयुगो डी ब्रीज ने जिन परिवर्तनों के आधार पर उत्परिवर्तन का प्रतिपादन किया, वह है–

(अ) गुणसूत्रीय विपथन

(ब) कोशिकासूत्र में होने वाले परिवर्तन

(स) जीन उत्परिवर्तन

(द) किसी में नहीं

15. जीन उत्परिवर्तन का सर्वप्रथम उदाहरण किस वैज्ञानिक ने प्रस्तुत किया था?

(अ) मेण्डल (ब) डी–ब्रीज

(स) मार्गन (द) सेथराइड

16. उत्परिवर्तन को कितने प्रकार से विभाजित किया गया है?

(अ) 7 (ब) 11

(स) 9 (द) 13

17. जीन परिवर्तन कितने प्रकार के होते है?

(अ) 5 (ब) 2

(स) 7 (द) 9

18. जीन उत्परिवर्तन को किस वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम खोजा था?

(अ) सेथराइट (ब) मार्गन

(स) विल्किन्सन (द) डी–ब्रीज

19. उत्पत्ति के आधार पर उत्परिवर्तन को कितने प्रकार से विभाजित किया गया है?

(अ) 7 (ब) 5

(स) 4 (द) 2

टिप्पणी

20. युग्मनजी उत्परिवर्तन किस समय उत्पन्न होते हैं?
    (अ) निषेचन के समय
    (ब) विदलन के समय
    (स) युग्मकजनन के समय
    (द) जनन कोशिकाओं के निर्माण के समय

21. प्यूरिन क्षार का प्रतिस्थापन ____________ के द्वारा होता है।
    (अ) पिरीमिडीन (ब) प्यूरीन
    (स) प्यूरीन क्षार (द) किसी से नहीं

22. ट्रान्सवर्शन ____________ के द्वारा उत्पन्न होते हैं।
    (अ) दो प्यूरीन जोड़े के द्वारा जुड़ने से
    (ब) दो पिरीमिडीन के जोड़े गलती से बनने से
    (स) दो प्यूरीन जोड़े के द्वारा गलती से घटने से
    (द) (अ) व (ब) के द्वारा

23. जीव'–विज्ञान की शाखा जिसमें जीवात्मा का अध्ययन किया जाता है, कहलाती है–
    (अ) इकोलॉजी (ब) पैलिएन्टोलॉजी
    (स) फिजियोलॉजी (द) इक्वाइनोलॉजी

24. उस जीवाश्म जन्तु का नाम बताइए जो सरीसृप तथा पक्षी वर्ग के बीच संयोजक कडी माना जाता है–
    (अ) आर्किओप्टेरिक्स (ब) मेमौथ
    (स) कोरल (द) युडीरिनोसिरोस

25. जीवाश्म किसके बनते हैं?
    (अ) वर्तमान जन्तुओं के
    (ब) मृत जीवों के
    (स) विलुप्त जीवों के
    (द) इनमें से किसी के नहीं

26. सबसे अच्छे जीवाश्म किन चट्टानों से बनते हैं?
    (अ) आग्नेय चट्टानों से (ब) शैल चट्टानों से
    (स) ग्रेनाइट चट्टानों से (द) कार्बन चट्टानों से

टिप्पणी

27. यूरेनियम लैंड विधि को सर्वप्रथम किसने प्रस्तुत किया था?

    (अ) लिबि (ब) मार्गन

    (स) वोल्टवुड (द) क्यूवियर

28. कस्तूरी बैल एवं रेण्डियर प्राणियों के जीवाश्मों की उपस्थिति से किस बात का पता चलता है?

    (अ) स्थान की ठण्डी जलवायु

    (ब) युग की उष्ण जलवायु

    (स) प्राणियों के उभयचरी स्वभाव का

    (द) (अ) तथा (ब) दोनों का

29. जीवाश्मों के अध्ययन का क्या महत्व है?

    (अ) चट्टानों की आयु निर्धारण

    (ब) क्रमिक विकास के पक्ष में प्रमाण

    (स) मनुष्य की वंशावली

    (द) ये सभी

30. जीवाश्म कितने प्रकार के होते है?

    (अ) 4 (ब) 3

    (स) 7 (द) 8

31. जीवाश्मों के सर्वप्रथम अध्ययन का श्रेय किसको जाता है?

    (अ) लिवी (ब) वोल्टवुड

    (स) क्यूवियर (द) विन्साई

32. जीवाश्म प्रागैतिहासिक काल के जीवों के अवशेष हैं किसका कथन है?

    (अ) विन्साई (ब) क्यूवियर

    (स) वोल्टवुड (द) मेण्डल

4.5 अनुकूलन एवं अनुकृति (Adaptation and Mimicry)

4.5.1 अनुकूलन (Adaptation)

प्रत्येक जीवधारी किसी न किसी वातावरण में रहता हैं और वह वातावरण जीवधारियों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव डालता है, अतः जीवधारी को सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए अपने आपको उस

वातावरण के अनुरूप ढालना अथवा परिवर्तित करना आवश्यक होता है। अतः **"प्रत्येक जीवधारी में ऐसी विशेषताएँ विकसित हो जाती हैं। इन्हीं विशेषताओं को अनुकूलन (Adaptation) कहते है।"** प्रत्येक जीवधारी का यह विशिष्ट लक्षण है कि वह अपने आपको वातावरण के अनुरूप बनाने की क्षमता रखता है तथा किसी अंग में या किसी भाग में होने वाला किसी भी प्रकार का परिवर्तन जोकि वर्तमान वातावरण/माध्यम में प्राणी के अस्तित्व को सशक्त या उपयुक्त बना देता है, अथवा उस प्राणी को वातावरण के अनुरूप रहने की क्षमता प्रदान करता है, जिससे कि वह प्राणी स्वयं के लिए पोषण कर सके, अपनी सुरक्षा कर सके, सन्तान की उत्पत्ति के साथ उसकी सुरक्षा कर सके, अनुकूलन (adaptation) कहलाता है।

ये विशेषताएँ (परिवर्तन) जीवधारी की संरचना (Structure), स्वभाव (Habit) कार्यिकी (Physiology) आदि किसी भी रूप में हो सकती हैं। जीवधारी की ये विशेषताएँ उसे एक निश्चित वातावरण में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाती हैं, साथ ही नष्ट होने से बचाती है। अतः अनुकूलन को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषिक कर सकते है–

"प्रत्येक जीवधारी में स्वतः नियमन (Self-regulation), आत्म परीक्षण (Self-preservation) तथा जाति की रक्षा के लिए जो विशेषताएँ (लक्षण) पायी जाती हैं, उन्हीं को अनुकूलन (adaptation) कहते है।"

सर्वप्रथम **लैमार्क** वैज्ञानिक ने यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक जीवधारी स्वयं को अपने परिवर्तित होते हुए वातावरण के अनुरूप रूपान्तरित कर लेता है। एक समान दिशा में पृथक्–पृथक् वंशों या सम्बन्धीत वंशों (Genera) में अनुकूलन की उपस्थिति प्राणियों के वंशों में समानता लाती है एवं इस प्रकार के जीव हीमोप्लास्टिक (Haemoplastic) कहलाते है (Haemos : वही, Plastuz: ढाले गये)। कुछ असम्बन्धीत वंशों के प्राणियों में भी एक ही प्रकार के अनुकूलन पाये जाते हैं, यह सभी अनुकूलन भोजन एवं प्रचलन करने तथा आक्रामक (Offensive) एवं सुरक्षात्मक (Protective) होते हैं।

किसी भी एक पूर्वज जाति से भिन्न प्रकार की जातियों के विकास को विकासीय अपसरण (Divergent evolution) कहते हैं, इसके कारण विकसित नई जाति स्वयं को अपने चारों ओर के वातावरण के अनुकूल बना लेती है। जब कभी भी कोई भी प्राणी किसी भी नये पारिस्थितिक आवास/माध्यम/वातावरण में प्रवेश करता है वह प्राणी स्वयं को उस आवास के अनुकूल बना लेता है। इसके कारण विभिन्न माध्यमों/वातावरण में पहुँचने पर नई जातियों के विकास की विधि को अनुकूल विकिरण या अपसारी विकास (Adaptive radiation or Divergent evolution) कहते है। प्रो. ऑसबार्न (Prof. Osborn) ने इस प्रकार के परिवर्तनों को एक नियम का रूप दिया है, जिसे **अनुकूली विकिरण** (Adaptive radiation) कहते हैं। नियम के अनुसार "यदि कोई विलगित क्षेत्र/प्रदेश (Isolated region) बहुत विस्तृत है तथा उस क्षेत्र की स्थलाकृति (Topography), मिट्टी (Soil), जलवायु (Climate) तथा पेड़–पौधे/वनस्पति भिन्न–भिन्न हैं तो उसमें विभिन्न प्राणी समूह पाये जायेंगे।" एक प्राइमरी या

प्राथमिक स्तम्भ या आधार से चार भुजाएँ विभिन्न दिशाओं में निकलती हैं, तब इसके अन्तर्गत, मुख्य रूप से पैरों भुजाओं तथा दाँतों (Teeth) में अनुकूलन होंगे।

समस्त विभिन्नताएँ (Variations) चार दिशाओं में होती है, भूमि के अंदर खननी (Fussorial), वृक्षों पर (Scansorial), जल में जलीय (Aquatic) तथा भूमि की सतह पर धावी (Cursorial)। अगर यह परिवर्तन या रूपान्तरण या अनुकूलन उपर्युक्त दिशाओं में से किसी भी त्रिज्यां (Radius) पर हो तो प्रत्यक्ष अथवा प्राथमिक (Primary) कहलाते हैं, अगर इसके अतिरिक्त अन्य किसी त्रिज्या पर पाये जायें तो इस प्रकार के अनुकूलन द्वितीयक (Secondary) कहलाते हैं। **उदाहरण**– दौडने वाले पक्षी – किवी (Kiwi), शुतुरमुर्ग (Ostrich)।

इस प्रकार विकास की दिशा उलट जाती है, लेकिन यह स्थिति अनुक्रमणीयता के नियम (Law of irreversibility) का खण्डन नहीं करती है।

अनुकूली विकिरण के उदाहरण (Examples of Adaptive Radiation)

जरायु स्तनियों (Placental mammals) के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि सभी स्तनी (Mammal) का विकास ऐसे पूर्वज (Ancestor) से हुआ है जो छोटे पाचांगुलिपाद (Pentadactyl) वाला कीटभक्षी (Insectivorous) प्राणी था जिससे निम्नलिखित प्रकार के अनुकूलन वाले प्राणी विकसित हुए–

(i) जो बिल बनाकर अपना जीवन व्यतीत करते है– इन प्राणियों के पाद बिल खोदने के लिए उपयुक्त हुए। **उदाहरण**– छछूँदर (Mole), बज़र आदि– खननी प्राणी (Fossorial)।

(ii) तेज दौडने वाले प्राणि– इन प्राणियों में पाद (Limbs) तेज दौडने के हेतु अनुकूलित हुए। धावी (Cursorial)– घोडे (Horse), कुत्ते (Dogs)।

(iii) उड़ने की क्षमता रखने वाले प्राणी– उड्डयन (Volant) प्राणी– चमगादड (Bat), कबूतर (Pigeon)।

(iv) वृक्ष पर जीवन व्यतीत करने वाले प्राणी– वृक्षवासी (Arboreal)– बन्दर (Monkey), ओपोसम (Opossum), गिलहरी (Squirrel) आदि।

(v) जलीय अनुकूलता प्रदर्शित करने वाले प्राणी– जलीय (Aquatic)–

व्हेल (Whale), सील (Seal), डॉगफिश (Dogfish), एनाबास (Anabas)।

उपर्युक्त सभी दिशा में अनुकूलन दर्शाने वाले प्राणियों के पादों में अपने माध्यम एवं वातावरण के अनुसार विभिन्न प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं। इसी प्रकार स्तनी प्राणियों में पोषण, दाँत एवं सुरक्षा के हेतु परिवर्तन दृष्टिगत होते है। यही स्थिति पक्षियों एवं सरीसृपों में भी दृष्टिगत होती है।

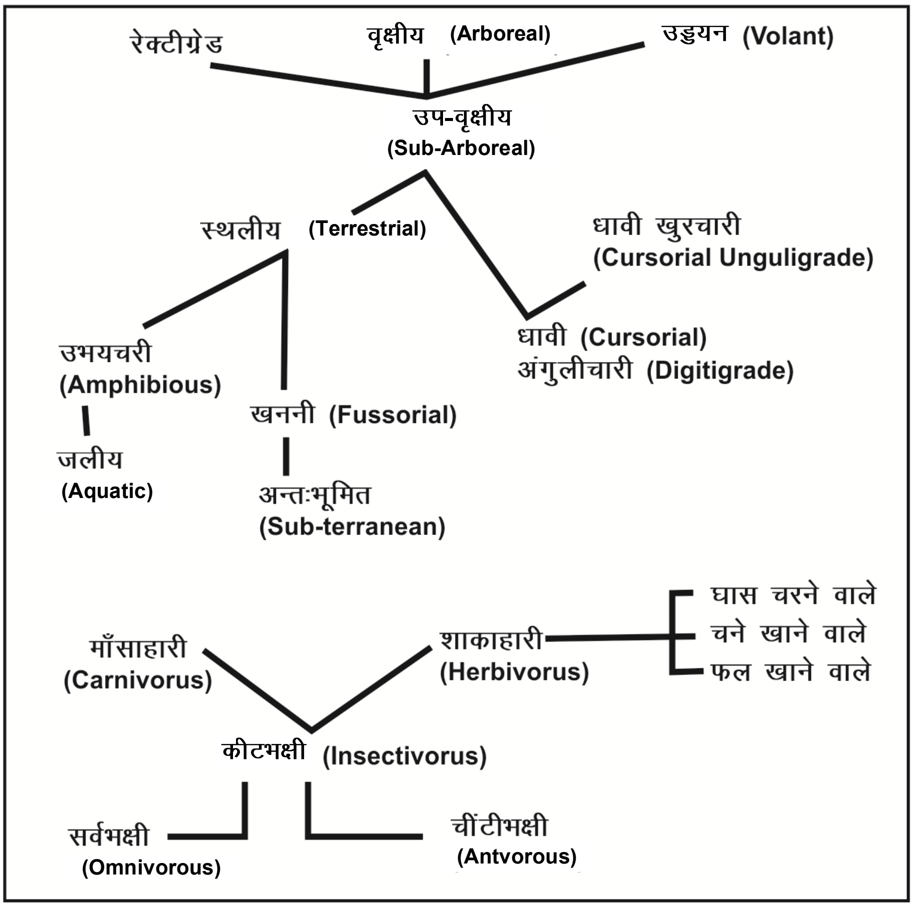

अनुकूलन के भेद (Kinds of Adaptation)

अनुकूलन को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

(A) आकारिकी अनुकूलन (Structural Adaptation)

(B) शरीर क्रियात्मक अनुकूलन (Physiological Adaptation)

(C) जन्तु–साहचर्य अनुकूलन (Animal Association Adaptation)

(D) रक्षात्मक अनुकूलन (Protective Adaptation)

इस अध्याय में विस्तृत रूप से आकारिकी अनुकूलन वर्णन के साथ–साथ शेष सभी प्रकार के अनुकूलनों का भी वर्णन किया है–

(A) आकारिकी अनुकूलन (Structural Adaptation)– भौतिक वातावरण के प्रभाव से जीवधारियों के शारीरिक संगठन एवं उसकी आकारिकी में होने वाले परिवर्तन आदि आकारिकी अनुकूलन के अन्तर्गत आते हैं जिनका उद्गम एवं विकास प्राणियों के आवास से सीधे सम्बन्धीत होता है। इनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित अनुकूलन का वर्णन किया गया है–

(I) धावी अनुकूलन (Cusorial adaptation)– इस प्रकार के अनुकूलन तेज गति के लिए होते हैं। जन्तुओं के शरीर का आकार इस प्रकार होता हैं कि हवा द्वारा कम–से–कम अवरोध हो। इन प्राणियों में निम्नलिखित प्रकार के रूपान्तरण पाये जाते हैं–

(अ) इन प्राणियों का शरीर तर्कुरूपी (Spindle shaped) होता है। गर्दन के पीछे की ओर कान, सिर एवं गर्दन फैली हुई, माँसपेशियाँ तनी हुई, यह सब लक्षण शरीर को गति करते समय कम अवरोध उत्पन्न करने में सहायता करते हैं।

(ब) शरीर का वक्षीय भाग (Thoracic part) पार्श्व रूप में चपटा होता है।

(क) इस प्रकार के अनुकूलन वाले प्राणियों में भुजाएँ (Fore limbs) कम विकसित होती है। इसके अतिरिक्त पश्च भुजाएँ रूपान्तरित होती है।

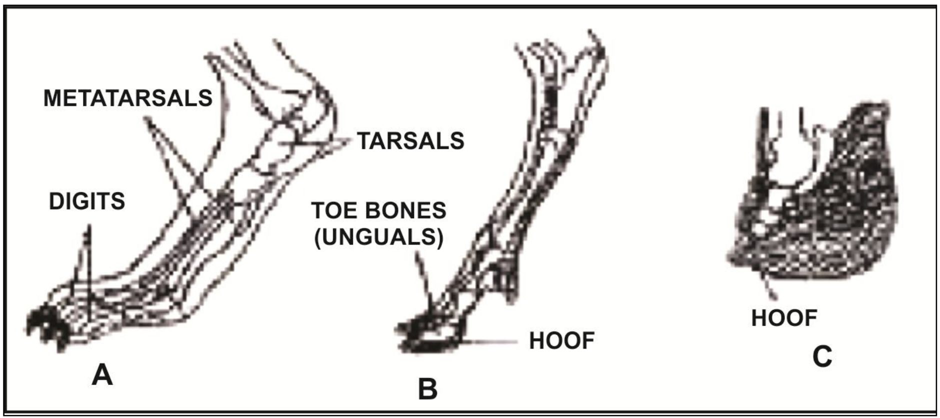

चित्र क्र. 4.23: **Foot Postures of Mammals : (A) Digitigrade Foot of Hyaena. (B) Unguligrade Foot of Pig and (C) Rhinoceros**

(ड) इस प्रकार के अनुकूलन वाले प्राणी अपने उपांगों, अंगुलियों एवं खुरों (Hoofs) से दौड़ते हैं या चला करते है– अंगुलीचारी (Digitigrade) या खुरचारी (Unguligrade)।

(इ) अग्र एवं पश्च उपांग में कार्पल्स (Carpals), मेटाकार्पल्स (Metacarpals) तथा टार्सल्स (Tarsals) एवं मेटाटार्सल्स (Metatarsals), हमेशा पृथ्वी से ऊपर उठे होते है। पेशीयुक्त गद्दियाँ (pads) इसको सहारा देती है जिसके कारण यह धक्कों और आपसी रगड (Friction), को सह सकते हैं।

(फ) इस अनुकूलन से प्राणियों के उपांगों में अंगुलियों की संख्या रूपान्तरण के कारण कम होती हैं। **उदाहरण**– खुरचारी (Hoofed), प्राणियों में 2 या 1 अंगुली जुड़ी हुई एवं अंगुलीचारी (Digitigrade), प्राणियों में 4, 3, 2 या 1 अंगुली पायी जाती है।

(प) अग्रभुजा में अल्ना (Ulna) एवं पश्च उपांग फिबुला (Fibula), कम विकसित या ऱ्हासित (Reduced), होती है।

(ब) क्लेविक्ल (Clavicle), अस्थि अनुपस्थित होती है।

(भ) अग्र एवं पश्च उपांगों के दूरस्थ भाग (Distal part) अधिक लम्बे होते हैं। इनसे सम्बन्धीत पेशियाँ सुदृढ एवं शक्तिशाली होती है। यह पेशियाँ प्राणियों में गति में वृद्धि करने में सहायता करती है।

(ज) यह प्राणी की द्विपादी (Bipedal) स्थिति को दर्शाती है। इन प्राणियों में पश्च भुजा (Hind limbs) की सहायता में गति होती है तथा अग्र भुजाएँ (Fore Limbs) जन्तु को भोजन को प्राप्त करने में सहायक होती है।

(झ) द्विपादी अनुकूलन (Bipedal adaptation) दर्शाने वाले प्राणियों में गर्दन (Neck) का अभाव होता है।

(क) इस प्रकार के अनुकूलन वाले प्राणियों में अनुकूलन कन्टुक उल्लूखल (Ball and socket Joint) पाये जाने पर भी उपांग एक ही दिशा में गति करते हैं। दौडते समय कुत्ते की अग्र एवं पश्च भुजाओं के मध्य अवरोध को बचाना सम्भव होता है। तेज गति में पश्च भुजाएँ अग्र भुजाओं के आगे एवं बाहर की ओर आ जाती है। अंगुलियों की सहायता से चलने वाले प्राणियों के टखने, कलाई, घुटने आदि के मध्य सीमा निश्चित रहती है।

(म) दुम (Tail) एक सन्तुलन का कार्य करती है। वर्तमान में पाये जानेवाले प्राणियों में दुम छोटी होती है। कंगारू (Kangaroo) की दुम शक्तिशाली एवं तीसरे उपांग के रूप में कार्य करती है। बड़े प्राणियों की पूँछ छोटी होती है, जबकि छोटे प्राणियों में पूँछ लम्बी होती है।

(ल) शिशु असहाय अवस्था में कार्य नहीं करते हैं। समूह में कार्य करने योग्य होते हैं, मस्तिष्क अधिक विकसित होता है।

(ख) घ्राण (Olfactory) संवेदी अंग अधिक विकसित होते हैं।

(II) खनन अनुकूलन (Fossorial adaptation)– खनन अनुकुलित जन्तु गुफा (Cave) अथवा बिलों मे रहते हैं। अतः इनके शरीर में पायी जाने वाली खनन विशेषताएँ इस प्रकार होती हैं, जैसे– टेल्पा (Talpa) एवं स्वाइन (Swine) के नाक की कर्टिलेज के सिरे पर एक प्रीनेसल (Prenasal) हड्डी है जो खनन में थूथन को सहारा देती है।

1. प्राणियों का शरीर तर्कुरूपी (Spindle shaped) कृत्रिम होता है। इन प्राणियों का शरीर बिल (Barrow) के अंदर घुमाने के अनुरूप होता है।
2. प्राणियों के शरीर में सिर (Head) छोटा, नुकिला एवं अस्पष्ट होता है। सिर का अग्रभाग थूथन (Snout) को बनाता है। थूथन शंक्वाकार (Conical) होता है।

टिप्पणी

3. खोपड़ी मजबूत एवं इसमें जायगोमेटिक मेहराव (Zygomatic arch) का अभाव होता है। जबड़ों की पेशियाँ कम विकसित होती हैं।

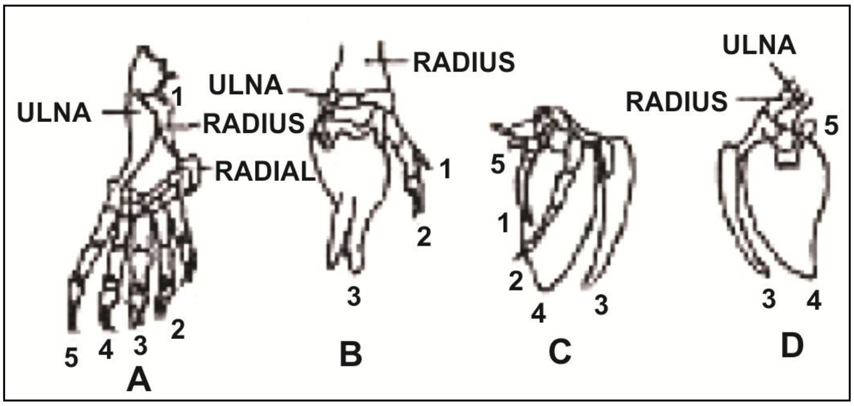

चित्र क्र. 4.24: **Hands of Moles: (A) Common Mole (Talpa) (B) Golden Mole (Chrasachlasis) (C) Palmor view of Marsupial Mole, (D) Dorsal view of Marsupial Mole**

4. इन प्राणियों में दुम अनुपस्थित या अल्पविकसित होती है। कुछ प्राणियों में– सर्प एवं बिलकारी छिपकलियों (Lizards) में यह छोटी होती है। दुम का उपयोग इन प्राणियों में नहीं होता।
5. दुम कुछ प्राणियों में संवेदी अंग (Secondary Organ) का कार्य करती है।
6. पाद (Limbs) बिल बनाने के कार्य में सहायता करते हैं, इस कारण यह शक्तिशाली होते हैं तथा इनका आकार छोटा, अंगुलियों में नखर (Claws) शक्तिशाली होती हैं।
7. अग्र भुजाओं की अस्थियाँ अधिक शक्तिशाली होती हैं, पेशियों के असंजन के हेतु गर्त (Tuberosity) या उभार पाये जाते हैं।
8. अग्र भुजाओं की अपेक्षा, पश्च भुजाएँ कम शक्तिशाली होती है।
9. टीबिया एवं फिबुला (Tibia and Fibula) आपस में जुड़ी रहती है।
10. पश्च भुजा में केल्केनियम (Calcaneum) अधिक स्पष्ट एवं विकसित होती है।
11. अंश मेखला (Pectoral girdle) आगे की ओर स्थित एवं शक्तिशाली होती है। **उदाहरण**– छछूंदर, इकिडना।
12. अंश मेखला में स्केपुला (Scapula) एवं छाती की हड्डी लम्बी होती है इस कारण अग्र भुजाओं की स्थिति कुछ आगे की ओर होती है।
13. प्राणि में क्लेविक्ल (Clavicle) अस्थि शक्तिशाली एवं विकसित होती है। कंधे (Shoulder) अधिक शक्तिशाली और खोदने के लिए सहायक होते हैं।

14. प्राणि के कशेरूक दण्ड (Vertebral column) की कशेरूक (Vertebrae) आपस में जुड़ी रहती है जोकि प्राणी को बिल खोदने में सहायक होते हैं।
15. प्राणी में बाहय कर्ण पल्लव (External pinna) अल्पविकसित या छोटे होते हैं। यह चित्त में प्रवेश करते समय बाधा उत्पन्न नहीं करते।
16. प्राणियों में नेत्र छोटे या अविकसित होते हैं।
17. स्पर्श संवेदी अंग (Tactile sense organs) अधिक विकसित होते हैं। अन्धकार वाले स्थानों में रहने के कारण इनका कोई उपयोग नहीं रहता है और बिल बनाते समय कोई हानि नहीं होती हैं छछूँदर के नेत्र पेशियों के बीच छोटे काले धब्बे के समान होते हैं। सुनहरे छछूँदर के नेत्र त्वचा में ढंके रहते हैं।
18. प्राणि असमतापी (Poikilothermic) होते है।

(III) आरोहण अनुकूलन (Scansorial adaptation)– इन जन्तुओं में वृक्षों, दीवारों आदि पर चढ़ने के लिए पायी जाने वाली विशेषताएँ आरोहण अनुकूलित विशेषताएँ कहलाती हैं।

1. ऐसे जन्तुओ की श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) सुदृढ होती है।
2. टाँगों के अग्रिम खण्ड लम्बे होते हैं तथा टाँगें परिग्राही होती है। पादों की अंगुलियाँ प्रतिमुखी (Opposable) होती है जिनके सिरों पर अभिलगी गद्दियाँ होती हैं तथा नखर (Claws) भली–भाँति विकसित होते हैं।
3. इनकी पुच्छ परिग्रही (Prehensile) होती है, जैसे– हायला (hyla) बन्दर (Monkey) गिलहरी (Squirrel) छिपकली (Lizard), चिम्पेंजी (Chimpanzee) आदि।
4. इन वस्तुओं की पश्च भुजाएँ वस्तुओं को पकड़ सकने वाली होती है। अंगुलियाँ सिण्डेकटाइली (Syndactyly) प्रकार की होती हैं। मार्सुपियल्स (अपोसम) में अंगुठा बाहर की ओर रहता है। दूसरी तथा तीसरी उंगली साथ में त्वचा से ढँकी रहती है तथा चढ़ने के रूपान्तरण भली प्रकार विकसित होते हैं। चमगादड (Bat) पेड़ की शाखाओं पर नहीं चल सकते, किन्तु अपनी भुजाओं के शक्तिशाली नखों की सहायता से लटकी हुई स्थित में ही गति करते है। यह पश्च भुजाओं की सहायता से लटके रहते हैं। स्लोथ (Sloth) अग्र भुजाओं की सहायता से लटकते है। इसमें लटकी हुई स्थिति उल्टी हुई नहीं होती है। ये प्राणी जमीन पर नहीं चल पाते हैं।

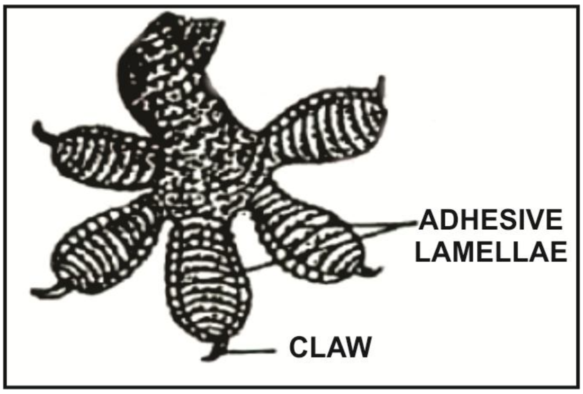

चित्र क्र. 4.25: Under Surface of the Digits Showing Adhesive Lamellar in Lizards

5. जन्तुओं में उड़ान वास्तविक तथा ग्लाइडिंग (Gliding) प्रकार की होती है। ग्लाइडिंग उडान में जन्तु किसी उँचे स्थान से कूदकर अपने किसी अंग की सहायता से नीचे की ओर ग्लाइड करते हुए आता है। जैसे– ड्रोको (Droco), एक्सोसीट्स (Exocoetus), ऑस्ट्रिच (Ostrich) आदि। डोक्रो में अग्र तथा पश्च भुजाओं के बीच त्वचा के वलय या पेटेजियम (Patagium) फैला रहता है। एक्सोसीट्स में पेक्टोरल फिन पैराशूट के समान फैल जाते हैं। इसके अलावा रैकोफोरस (Rhacophorus) में पैर की अँगुलियों के बीच जाल पाया जाता है जो प्राणी को कुछ समय हवा में ही रोके रखने में सहायक होता है। आरोही अनुकूलन को उनकी विशेषताओं के अनुसार निम्नलिखित तीन समूहों में विभाजित किया जाता है–

(अ) वास्तविक आरोही अनुकूलनवाले प्राणी– इस प्रकार के अनुकूलन के प्राणी, पेड़ों की पत्ती पर अपना जीवन व्यतीत करते है। यह प्राणि– (1) शाखाओं (Branches) पर दौड़ने वालें प्राणी होते है तथा पेड़ की शाखाओं पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। **उदाहरण**– केमेलियोन (Chameleon), गिलहरी (Squirrel)। (2) शाखाओं पर झुलने वाले या लटकने वाले प्राणी इन प्राणियों की भुजाएँ शक्तिशाली होती है जिनसे वह पेडों की शाखाओं से लटके रहते हैं या झूलते हैं। **उदाहरण– चमगादड़ (Bat) स्लोथ (Sloth) बन्दर, लंगूर (Monkeys)।**

(ब) दीवार एवं चट्टानों पर चढ़ने वाले प्राणी– इस अनुकूलन वाले प्राणी पेड़ों पर नहीं चढ़ते हैं। यह प्राणी घर की दीवारों एवं समान सतह वाली चट्टानों पर चढ़ने वाले होते हैं, इनकी अग्र एवं पश्च भुजाओं की अंगुलियों में नखर मजबूत एवं मुड़े हुए तथा चिपचिपी गद्दियाँ (Adhesive pads) पायी जाती हैं जो प्राणी को सामान्य सतह पर आसानी से गति करने में सहायता करती है।

(स) थलीय आरोही अनुकूलन वाले प्राणी– यह आरोहण की क्रिया तो करते हैं, लेकिन विश्राम के लिए यह पृथ्वी या जमीन पर रहते हैं। इन प्राणियों में आरोही अनुकूलन सामान्यतः कम विकसित होता है।

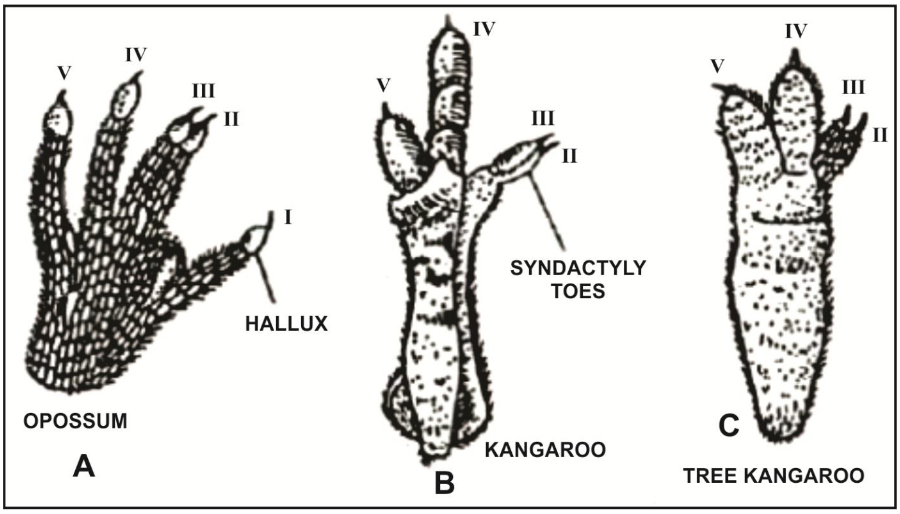

चित्र क्र. 4.26: **Hind Feet of Marsupials**

(IV) जलीय अनुकूलन (Aquatic adaptation)– जल में रहने वाले प्राणियों में पाये जाने वाले वे रूपान्तरण, जो उनको जलीय जीवन के प्रति अनुरूप बनाते है, जलीय अनुकूलन (Aquatic Adaptation) कहलाते हैं। जलीय प्राणियों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं–

(i) प्राथमिक जलीय जन्तु, (ii) द्वितीयक जलीय जन्तु।

(i) प्राथमिक जलीय जन्तु– वे है जिनकी उत्पत्ति जलीय पूर्वजों से हुई है। जलीय प्राणियों के शरीर में निम्नलिखित रूपान्तरण पाये जाते हैं, जैसे–

1. इनके शरीर का धारारेखित (Streamlined) होना, ग्रीवा (Neck) का अनुपस्थित होना तथा पूँछ का लम्बा होना। इनके शरीर की इस प्रकार की आकृति जल में तैरने में मदद करती है।
2. शरीर पर शल्क (Scales) पाये जाते हैं जो त्वचा (Skin) को जल के प्रभाव से बचाते हैं।
3. शरीर पर पंख (Fins) होते है तथा उभयचर प्राणियों के पादों में झिल्लीयुक्त (Webbed) जाल पाया जाता है जो इनके तैरने में पतवार (Oar) की भाँति कार्य करता है।
4. इनका कंकाल प्रायः हल्की व स्पंजी (Spongy) अस्थियों का बना होता है।
5. कशेरूक सरल, एम्फीसीलस (Amphicoelous) तथा पिसिअन (Piscian) प्रकृति के होते है।

टिप्पणी

6. इनका वक्ष बेलनाकार (Cylindrical) व पसलियाँ शीर्ष वाली होती हैं।
7. नेत्र पिसिअन (Piscian) प्रकार के होते हैं।
8. ये हार्डेरियन ग्रन्थियों (Harderian glands) के स्त्राव द्वारा जल से सुरक्षित रहते हैं।
9. इनमें बाहयकर्ण (External ear) अनुपस्थित होते हैं।
10. समुद्री गाय व वालरस (Walrus) आदि जलीय प्राणियों के अतिरिक्त अन्य जलीय प्राणियों में चबाने की क्षमता नहीं होती है। अतः मैण्डिबल तथा कोरोनरी प्रवर्ध अत्यन्त न्हासित होते हैं।
11. बाहय नासिका द्वार सिर के शीर्ष भाग पर स्थित होते हैं जो जलीय वातावरण में श्वसन करने में सहायक होते हैं।
12. श्वसन अंग क्लोम (Gills) होते हैं तथा यह गैसों के आदान–प्रदान में सहायक होते हैं।
13. प्राणियों में वाताशय (Swim bladder) होते हैं जोकि द्रवस्थैतिक (Hydrostatic) का कार्य करते हैं। यह अंग गैस या वायु से भरा रहता है तथा गैस या वायु की मात्रा में परिवर्तन कर यह पानी में अपना सन्तुलन बनाये रखते हैं।
14. प्राणी के शरीर के पार्श्व भाग में अग्र सिरे से लेकर अन्तिम सिरे तक यह पार्श्व रेखा (Lateral Line) पायी जाती है जोकि संवेदी जल ग्राही (Rheostatic) के अंग के रूप में कार्य करती है।

(ii) द्वितीयक जलीय अनुकूलन– इन प्राणियों के पूर्वज स्थलीय (Terrestrial) थे, परन्तु जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भोजन, प्रजनन, सुरक्षा आदि के संघर्ष के कारण ये जल में स्थानान्तरित होकर अपना जीवन जल में व्यतीत करते हैं तथा स्थायी रूप से जल में रहते हैं तथा समय–समय पर थल पर आते हैं। द्वितीयक अनुकूलन में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं–

1. प्राणी का शरीर धारा रेखित (Stream lined) होता है।
2. खोपडी का अग्र भाग लम्बा तथा कपाल (Cranium) का भाग छोटा होता है।
3. गर्दन छोटी होती है या यह अनुपस्थित होती हैं।
4. गर्दन की कशेरूक एक संपीडित (Compressed) संरचना बनाती है।
5. पार्श्व रेखा तन्त्र (Lateral line system) विकसित होती है।
6. बाहय कर्ण पल्लव (External pinna) अनुपस्थित होते है।
7. नेत्र चेहरे के ऊपर की ओर स्थित होते हैं। निमेषक झिल्ली (Nictitating membrane) अधिक विकसित होती है।

8. त्वचा चिकनी एवं बाहय कंकाल का अभाव होता है।
9. त्वचा में स्वेद ग्रन्थियों (Sweat glands) का अभाव होता है, लेकिन त्वचा स्तर के नीचे वसा का एक स्तर पाया जाता है जिसे ब्लबर (Blubber) कहते हैं, यह शरीर के आपेक्षित घनत्व को कम करता है।
10. प्रचलन की क्रिया माँसल फैलाव के द्वारा होती है, जोकि पंखों (Fins) के समान होते हैं।
11. प्राणियों में उपांगों या भुजाओं का अभाव होता है, भुजाओं के स्थान पर पतवार के समान पैडल (Paddles) पाये जाते हैं। पैडल में अंगुलियाँ अनुपस्थित रहती हैं।
12. प्राणियों की अस्थियाँ हल्की एवं स्पन्जी होती हैं।
13. कशेरूक (Vertebrae) में योजिप्रवर्ध (Zygapophyses) अनुपस्थित होता है तथा वक्ष का भाग बेलनाकार होता है।
14. मेखलाएँ (Girdles) या तो ऱ्हासित (Reduced) होती है या अनुपस्थित होती है।
15. प्राणियों में जबडों का अभाव होता है। जबडों में कोरोनाइड प्रवर्ध (Coronoid - Process) अल्पविकसित होता है।
16. प्राणियों की गति जल में तीव्र होती है।
17. प्राणियों का आकार एवं भार अधिक होता है।
18. इन जलीय प्राणियों की सन्तानों की मानसिक वृद्धि अत्याधिक होती है।

(V) मरुस्थलीय अनुकूलन (Desert adaptation)– शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों को मरुस्थल कहते है। यहाँ धूलभरी आंधियाँ चलती हैं तथा जल की बहुत कमी होती है। इस तरह के क्षेत्र प्रायः कर्क तथा मकर रेखा के समीप स्थित होते है।

अतः ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले जीवों (जन्तु एवं पादप) में ऐसी विशेषताएँ (लक्षण) पायी जाती है जो उनको मरुस्थलों में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाती हैं। इन्हीं विशेषताओं को मरुस्थलीय अनुकूलन कहते हैं।

1. मरुस्थल में जल की कमी होती है, अतः मरुस्थली जन्तुओं में जल–संरक्षण रूपी निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती है, जैसे उँट आमाशय के रूमन (Rumen) में जल संचित रखता है, टर्टल (Turtle) तथा शशक (Rabbit) सरस एवं गूदेदार पौधे के जल का उपयोग करते हे।
2. त्वचा मोटी होती है ताकि गर्मी के प्रभाव से पसीने द्वारा शरीर के जल का कम ऱ्हास (नुकसान) हो।
3. मोलोच (Moloch) नामक लिजार्ड अपनी त्वचा से वायु से नमी सोखती है अर्थात् त्वचा आर्द्रताग्राही (hygroscopic) होती है।

4. मरुस्थली सरीसृप तथा पक्षी उत्सर्जी पदार्थो को अर्ध–ठोस यूरिक अम्ल के रूप में बाहर निकालते है।
5. ये प्रायः रात्रिचर होते हैं, क्योंकि दिन की गर्मी से बचने के लिए ये बिलों आदि में छिप जाते है ओर रात्रि के समय का वातावरण नम व ठण्डा होता है तब ये अपने विभिन्न जैविक कार्यों के लिए बिल से बाहर आते है। यूरोमेस्टिक्स (Uromastix) बड़ी आंत में जल को संचित रखता है।
6. मरुस्थली बिल्लियों के तलवों पर मोटी खाल होती है जो इसको रेत में तेजी से दौड़ने में मदद करती है।
7. उँट की टाँगे लम्बी होती है ताकि शरीर तप्त भूमि से दूर रहे।
8. मरुस्थली प्राणियों में नसिका, कर्ण तथा नेत्र आदि संवेदांग आरक्षित रहते है। अधिकांश प्राणियों के नासिकारन्ध्र कपाटयुक्त होते है। मोबुला (Mobula) में निचली पलक अधिक बडी व पारदर्शी होती है जो पूर्ण नेत्र पर फैलकर धूल आदि से रक्षा करती है। उँट के नेत्र सिर पर उँचाई पर स्थित होते है, साथ ही पलकों पर घने व बढ़ी बरौनियाँ (Eye-lashes) पायी जाती हैं।
9. अधिकांश मरुस्थली प्राणी जहरीले होते हैं। इनमें दृष्टि, घ्राण एवं श्रवणांग आदि संवेदांग अधिक विकसित होते हैं। प्रायः सभी मरुस्थली सर्प, **उदाहरण**– रेटिल स्नेक (Rattle Snake) विषैले होते है। इनके अलावा हिलोडर्मा (Heloderma) लिजार्ड आदि मरुस्थली विषैले जन्तु हैं।
10. कुछ मरुस्थलीय प्राणी ओस की बूँदों को सोख लेते हैं।
11. इन प्राणियों की त्वचा में स्वेद ग्रन्थियों का अभाव होता है।
12. मरुस्थलीय प्राणी उस समय तक गतिशील एवं क्रियाशील होते हैं जब तक उनको पानी एवं भोजन प्राप्त होता है।
13. यह प्राणी सामान्यतः बिलों में रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं।
14. प्राणियों के उपांग लम्बे होते है जोकि कूदने एवं तेज दौड़ने के काम में आते हैं।
15. मरुस्थलीय प्राणियों में प्रचलन की गति तीव्र होती है।
16. मरुस्थलीय प्राणियों का रंग आवास से मिलता–जुलता होता है, शरीर का रंग सुनहरा या भूरा होता है।
17. शरीर में चेतावनी वाले रंग पाये जाते हैं, इससे शत्रु से रक्षा की जाती है।
18. प्राणियों के शरीर में सुनने, देखने, सूँघने के अंग अधिक विकसित होते है।
19. सामान्यतः मरुस्थलीय प्राणी चतुर व अक्लमन्द होते हैं। जब इन प्राणियों पर शत्रु आक्रमण करता है तब यह रेत शत्रु पर फेकते

टिप्पणी

है या चट्टानों की दरारों में पहुँचकर अपने शरीर को फुला लेते है। **उदाहरण**– कंगारू, चूहा एवं आदि।

(VI) वायवीय अनुकूलन (Aerial Adaptation)– पक्षियों में वायवीय जीवन के लिए उनके शरीर में पायी जाने वाली विशेषताएँ ही वायवीय अनुकूलन कहलाती है जो निम्नलिखित प्रकार है–

1. पक्षियों का शरीर सुवाही एवं तर्कुरूपी होता है जो उडने में मदद करता है।
2. इनका शरीर प्रायः परों (Feathers) से ढँका रहता है जो शरीर पर एक विसंवाही (Non-conducting) आवरण बनाता है जो शरीर की उष्मा को बाहर निकलने से रोकता है, जिससे शरीर का तापमान स्थिर रहता है।
3. अग्रपाद पंखों (Wings) में रूपान्तरित होते हैं।
4. पुच्छ चौड़ी होकर वायुयान के प्रोपैलर्स की भाँति कार्य करती है।
5. गर्दन लचीली होती है जो चोच को भूमि तक पहुँचने में मदद करती है।
6. चोंच चिमटे के समान होती है जो दाना चुगने में मदद करती है।
7. पक्षियों के पश्च पाद धड पर काफी आगे की ओर लगे होते हैं ताकि वे पूर्ण शरीर को सन्तुलित कर सकें तथा उसका वजन ढो सकें।
8. इनकी अस्थियाँ इल्की व छिद्रित होती हैं। अस्थियाँ परस्पर जुडकर एक सघन, केन्द्रीकृत तथा सुदृढ़ कंकालीय ढाँचा बनाती है। भारी जबड़े चोंच में रूपान्तरित हो जाते हैं।
9. कॉडल कशेरुकाएँ परस्पर मिलकर पाइगोस्टाइल (pygostyle) नामक रचना बनाती है जो पुच्छ पंखों को लगाने के लिए स्थान प्रदान करती है।
10. इनका स्टर्नम (Sternum) बड़ा होता है जो मध्य–अधर तल पर एक लम्बी कीलनुमा रचना बनाता है जिस पर उड्डयन पेशियाँ लगी रहती हैं।
11. पक्षियों को उडने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है, अतः इनमें श्वसन तत्व अत्यन्त विकसित होता। इनमें फेफडों के साथ–साथ वायु–कोष (Air-sac) भी होते है। वायु–कोषों में वायु के भरने से इनका वजन हल्का हो जाता है तथा फेफडों को वायु के अंदर तथा बाहर आने–जाने, दोनों समय ऑक्सीजन प्राप्त हो जाती है।
12. ये नियततापी (Warm-blooded) होते है। इनके शरीर का तापक्रम लगभग 120° होता है जो इनकी उँचाई पर उड़ने के लिए आवश्यक है।
13. इनमें क्लोएका (Cloaca) के कोप्रोडियम (Coprodium) भाग में जल का अवशोषण होता है।

14. पक्षियों में मूत्राशय का अभाव होता है, अतः मूत्र संचित न होकर तुरन्त ही शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है।
15. पक्षियों में दृष्टि–ज्ञान एवं श्रवण–ज्ञान सबसे अधिक विकसित होता है।
16. शरीर का भार कम करने के लिए इनमें केवल एक ही अण्डवाहिनी पायी जाती है।
17. पक्षियों में गर्दन लचकदार होती है जिससे पक्षी को भोजन ग्रहण करने में अधिक सहायता प्राप्त होती है।
18. खोपड़ी की अस्थियाँ हल्की, संख्या में कम एवं आपस में समेकित होकर अस्थि खोल का निर्माण करती है।
19. दाँतों का अभाव होता है।
20. नेत्र कोटर का आकार बड़ा होता है।
21. श्रोणि मेखला दृढ़ होती है।
22. कोरेकाइड (Coracoid) भारी तथा स्तम्भ के समान होती है। कोरेकाइड एवं स्केपुला 90° कोण पर स्थित होती है।
23. पाचन क्रिया तीव्र होती है तथा आहारनाल में क्रॉप (Crop) एवं गिजर्ड (Gizzard) अत्याधिक विकसित होते हैं। अधिकांश पक्षी सीमित एवं निश्चित विशेष प्रकार का भोजन करते हैं।
24. पक्षियों में मस्तिष्क अधिक विकसित होता है। इससे पक्षी को सन्तुलन, पेशियों के समन्वय (Coordination) एवं अभिग्रह वृत्ति (Instinct power) को अधिक सहायता प्राप्त होती है।
25. रक्त के लाल कणों में अधिक हीमोग्लोबिन की मात्रा पायी जाती है।
26. रक्त संवहन अत्याधिक विकसित होता है। हृदय चार कक्षीय एवं बड़ा होता है।
27. ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक विकसित होती हैं।

पक्षियों के अतिरिक्त उड्डयन (Volant) अनुकूलन अन्य प्राणियों में भी पाया जाता है। इन प्राणियों में उड्डयन अनुकूलन ग्लाइडिंग (Gliding) प्रकार का होता है। यह प्राणी केवल गुरुत्व के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान को अंगों के सहारे फिसलते या उड़ते हैं। **उदाहरण**– मत्स्य (Fish) वर्ग में एक्सोसीट्स (Exocoetus), एम्फिबिया में हायला (Hyla), सरीसृप (Reptilia) में ड्रेको (Draco) तथा स्तनी वर्ग में चमगादड (Bat) एवं श्रुज (Shrews)। इन प्राणियों में निम्नलिखित रूपान्तरण पाये जाते हैं–

टिप्पणी

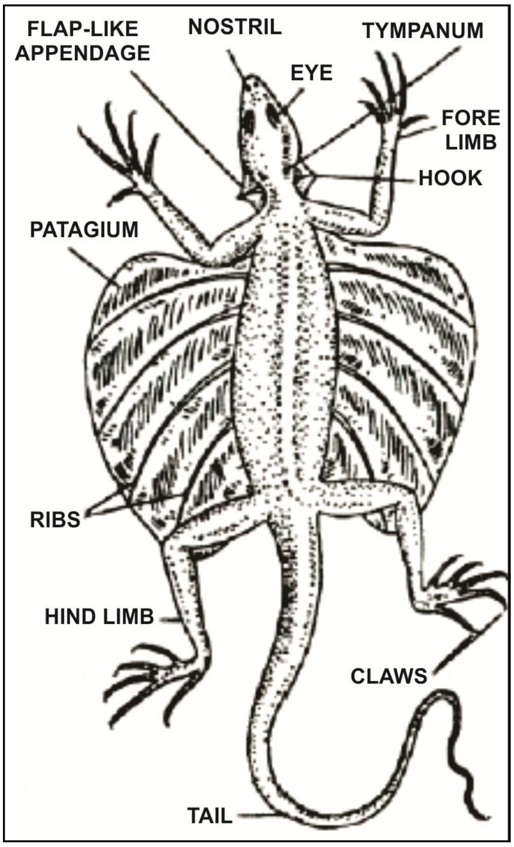

चित्र क्र. 4.27: Draco

1. शरीर धारा रेखित होता है। शरीर का आकार–गति करते समय अवरोध उत्पन्न नहीं करता है।
2. त्वचा के विस्तार से चर्म प्रसार या पटेजियम (Patagium) पाया जाता है।
3. चर्म प्रसार के विस्तार के हेतु भुजाएँ अधिक रूपान्तरित होती है। अग्र भुजा की अस्थियाँ आदि लम्बी होती हैं। पश्च पाद भी रूपान्तरित होते हैं।
4. छाती की अस्थि नाव की आकृति के समान होती है।
5. क्लेविकल अस्थि मजबूत एवं स्केपुला से समेकित होती है।
6. मछलियों में अंश (Pectoral) एवं अधर पंख (Ventral fins) विकसित होकर पंख के समान संरचना बनाते हैं जिसकी सहायता से मछलियाँ पानी की सतह से उपर की ओर छलांग लगाती है।
7. हाइला एवं रैकोफोरस, एम्फिबिया में, अग्र एवं पश्च की अंगुलियों के बीच त्वचा का जाल (Web) होता है जिससे एक स्थान से दूसरे स्थान पर विसर्पण किया जाता है।

(VII) गुफीय अनुकूलन (Cave adaptation)– गुफाएँ (Caves) वे स्थान हैं जिनके द्वारा पूर्व समय में पृथ्वी के नीचे पायी जाने वाली नदियाँ बहती थीं। इन स्थानों में प्रकाश (Light) की अनुपस्थिति और तापमान एक समान रहता है। गुफा में प्रकाश गुफा के प्रवेश द्वार से कुछ अंदर की ओर रहता है। इस अल्प प्रकाशीय भाग को टुईलाइट (Twilight) कहते हैं। यह अल्प प्रकाशीय भाग आन्तरिक भाग से पूर्णतः भिन्न होता है, क्योंकि आन्तरिक भाग में प्रकाश पूर्णतः अनुपस्थित रहता है। गुफा में नमी (Moisture) की मात्रा एक समान रहती है। गुफा में प्रकाश की कमी के कारण प्राणी अनुकूलित रहते हैं। गुफीय अनुकूलन (Cave adaptation) दो प्रकार के होते हैं–

(अ) अस्थायी (Temporary)– इसके अन्तर्गत वह प्राणी आते है जोकि अस्थायी रूप से गुफा में निवास करते हैं और बाह्य वातावरण में भी जीवन व्यतीत करते हैं। **उदाहरण**– चमगादड (Bat)।

(ब) स्थायी (Permanent)– इसके अन्तर्गत वह प्राणी आते है जोकि पूर्णतः गुफा के अंदर जीवन व्यतीत करते है। **उदाहरण**– सफेद पैरों वाला चूहा (Paramyscus), सैलामेण्डर (Salamander), ग्रीनिआस (Greenias) मछली आदि।

गुफीय अनुकूलन के लक्षण निम्नानुसार हैं–

1. गुफा में प्रकाश की अनुपस्थिति या कमी के कारण प्राणियों के शरीर में रंजक (Pigments) का अभाव होता है।
2. प्राणियों के नेत्र प्रकाश की अनुपस्थिति के कारण अल्पविकसित होते हैं या नेत्रों के उपर उतक का आवरण पाया जाता है अथवा इन प्राणियों में नेत्र पूर्णतः अनुपस्थित होते हैं। **उदाहरण**– टिफ्लोट्राइटन (Typhlotriton)।
3. गुफाओं में रहने वाले प्राणियों में पाचक अंग पूर्णतः इस प्रकार रूपान्तरित होते हैं कि इनके द्वारा किया गया भोजन पूर्ण रूप से उपयोग कर लिया जाता है।
4. प्राणियों का शरीर पतला एवं कृमिरूपी (Wormlike) होता है। **उदाहरण**– प्रोटियस (Proteus)|
5. गुफाओं में रहने वाले प्राणियों में संवेदांग–मुख्य रूप से स्पर्श संवेदांग, सूँघने के संवेदांग से अधिक विकसित होते हैं।

   उदाहरण– सेलामेण्डर (Salamander), स्लीलर्पिस (Spelerpes), टिफ्लोट्राइटन (Typhlotriton), ऐम्बल्योपिडी (Amblyopsidae), ग्रीनियास (Greenias) आदि।

(VIII) गहन समुद्रीय अनुकूलन (Deep sea adaptation)– गहन समुद्रीय अनुकूलन समुद्र की सतह से 250–300 मीटर नीचे रहने वाले प्राणियों में

मिलता है। गहन समुद्र का तापमान 36°F या कम होता है। प्रकाश अनुपस्थित होता है। प्रकाश के साथ–साथ ऑक्सीजन एवं भोजन की कमी होती है। जैसे–जैसे गहरे समुद्र में नीचे की ओर बढते हैं दबाव (Pressure) उसी अनुपात में वृद्धि करता है।

गहन समुद्रीय अनुकूलन के लक्षण निम्नानुसार हैं–

1. प्राणियों का शरीर पतला एवं कमजोर होता है।
2. प्राणियों के मुख एवं जबडों में भोजन और रक्षा के हेतु अस्त्र–शस्त्र पाये जाते हैं।
3. प्राणियों के शरीर का रंग गहरा होता है– भूरा या काला आदि।
4. प्राणियों में प्रकाश की अनुपस्थिति के कारण नेत्र अक्रियाशील होते हैं। नेत्र नतोदर दर्पन के समान होते हैं जोकि प्रकाश की किरणों को शोषित करते हैं।
5. नेत्रों के अल्पविकसित होने के कारण प्राणियों के शरीर में लम्बे स्पर्शक, पतले नुकीले पंख (Fins) पाये जाते हैं।
6. प्राणियों के शरीर के किसी भी भाग में जैव प्रकाश उद्दीप्त करने वाले अंग पाये जाते हैं जोकि गोल या अण्डाकार होते है। कुछ प्राणियों के दाँत एवं मुख चमकीले होते हैं।
7. गहरे समुद्री प्राणियों में चबाने की शक्ति या तो अल्पविकसित होती है या अनुपस्थित होती है, क्योंकि सामान्यतः सड़े–गले मृदु पंख (ooze) को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। इन प्राणियों के जबड़े चीरने फाड़ने के लिए अधिक विकसित होते है।
8. पानी के दाब के कारण शरीर चपटा होता है। दोनों नेत्र एक नहीं दो सतह पर पाये जाते हैं।
9. इन प्राणियों में पैतृक संरक्षण (Parental care) अत्याधिक विकसित होती है।
10. प्राणी सामान्यतः रेंगकर चलते हैं।
11. पंखों (Fins) के किनारों पर शिकार करने वाले अंग पाये जाते हैं।

    उदाहरण– सीटोमाइमस (Cetomimus), इपनोप्स (Ipnops), गैस्ट्रोस्टोमस (Gastrostomus), गोडीफॉर्मिस (Godiformis), एंग्लर्स (Anglers) आदि।

(IX) पारिस्थितिक अनुकूलन (Ecological adaptation)– कुछ जन्तुओं में कुछ ऐसे लक्षण उपस्थित होते हैं जो उनको पारिस्थितिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाते हैं, जैसे– ऐनाबास (Anabas) मछली में जल के बाहर रहने के लिए अतिरिक्त श्वसन अंग होते हैं। दलदल अथवा भूमि पर चलने के लिए इसमें ओपरक्यूलर काँटे (Opercular spines) होते हैं।

(X) परजीवी अनुकूलन (Parasitic adaptation)– परजीवी जन्तुओं में उनके परजीवी स्वभाव के कारण निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं,

जैसे– इन जन्तुओं की शारीरिक संरचना सरल, प्रचलन–अंगो की अनुपस्थिति, संवेदी तथा आहार नाल आदि अंगों की अनुपस्थिति तथा जनन–क्षमता अत्याधिक होना। भोजन के हेतु दूसरे प्राणियों पर निर्भर रहते हैं।

(B) शरीर क्रियात्मक अनुकूलन (Physiological Adaptation)– जन्तुओं के शरीर के अंगों की क्रिया में तथा स्वभाव में होने वाले परिवर्तन शरीर–क्रियात्मक" अनुकूलन कहलाते हैं। जैसे– इलास्मोब्रैंकी मछली (Bony Fish) के रक्त में यूरिया की मात्रा अधिक घुली रहती है जिससे उनके शारीरिक द्रव्य की परासरण दाब समुद्री जल के दाब से सदैव अधिक बना रहता है, अतः जल शरीर के बाहर विसरित नहीं हो पाता है। अमीबा प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने चारों ओर परिकोष्ठ (Cyst) बना लेता है। दूसरा **उदाहरण**– समुद्री पक्षी (Oceanic birds) – एल्बाट्रॉस (Albatross) केवल समुद्री लवणीय पानी को ही पीते है, इस कारण इन पक्षियों में नासा ग्रन्थियाँ (Nasal glands) अधिक विकसित रूप से पायी जाती हैं। यह ग्रन्थियाँ लवण की अधिक मात्रा को शरीर से अधिक जल की मात्रा को संकुचन रिक्तधनी (Contractile vacuole) के द्वारा बाहर निकालती हैं।

(C) जन्तु साहचर्य अनुकूलन (Animal Association Adaptation)– किसी एक समूह अथवा कई समूहों के जन्तु जब परस्पर एक साथ रहते हैं तब वे एक–दूसरे के प्रति साहचर्य सम्बन्धों का प्रदर्शन करते हैं। जन्तुओं के साहचर्य सम्बन्धों को निम्नलिखित श्रेणी में बाँटा गया है–

1. सामाजिक अनुकूलन 2. सहभोजी अनुकूलन 3. सहजीवी अनुकूलन और 4. परजीवी अनुकूलन।

1. **सामाजिक अनुकूलन (Social Adaptation)**– जन्तुओं में चीटियाँ, शहद की मक्खी आदि सामाजिक अनुकूलन का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। जैसे– शहद की मक्खी में रानी मक्खी केवल अण्डे देने का कार्य करती है। श्रमिक मक्खियाँ छत्ता बनाती हैं, पुष्प से मकरन्द एकत्र करती है तथा अण्डों एवं छत्ते की देखभाल करती है। नर मक्खियाँ केवल मैथुन करने का कार्य करती है। इसी प्रकार, दीमक भी सामाजिक अनुकूलन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

2. **सहभोजी अनुकूलन (Commensural Adaptation)**– इसमें पोषित (Host) को साहचर्य का तो लाभ होता है, इसके साथ–साथ पोषक को भी साहचर्य का लाभ हो सकता है और नहीं भी। अतः सहभोजी अनुकूलन के लिए पोषक तथा पोषित दोनों में ही शारीरिक संरचनात्मक एवं क्रियात्मक विशेषताएँ पायी जाती हैं। **हर्मिट क्रेब** (Hermit crab) तथा सी एनीमोन (Sea anemone) का परस्पर साहचर्य इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

3. **सहजीवी अनुकूलन (Symbiotic Adaptation)**– सहजीवी साहचर्य में पोषित तथा पोषक दोनों एक–दूसरे पर पारस्परिक लाभ

टिप्पणी

के लिए आश्रित रहते हैं। जैसे–ट्राइकोनिम्फा (Trichonympha) नामक फ्लेगलेट की मदद से दीमक लकड़ी का सेल्युलोज निकालने में समर्थ होता है। राइजोबियम नामक नाइट्रीकारक जीवाणु लैग्युमिनोसी कुल के पौधों की जडों की गाँठों में रहकर सहजीविका का प्रदर्शन करते है।

4. **परजीवी अनुकूलन (Parasitic adaptation)**– इस जन्तु साहचर्य में परजीवी पोषक पर पूर्ण रूप से निर्भर रहता है और उससे अपना भोजन एवं रक्षा प्राप्त करता है, इसके विपरीत पोषक पर परजीवी की उपस्थिति का बुरा प्रभाव पड़ता है। परजीवी इस प्रकार अपने को अनुकूलित कर लेते है कि उसकी उपस्थिति का पोषक पर कम बुरा प्रभाव पड़े।

   इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनुकूलन (Adaptation) जीवधारियों का विशिष्ट लक्षण है।

(D) रक्षात्मक अनुकूलन (Protective Adaptation)– जन्तुओं में अपने शत्रुओं से रक्षा करने के लिए पायी जाने वाली विशेषताएँ रक्षात्मक अनुकूलन के अन्तर्गत आती है जैसे– गाय, भैंसे, आदि सीधे जन्तुओं के सिर पर सींगों का उपस्थित होना। कुछ जन्तु अपने बचाव के लिए अन्य जन्तुओं, पादपों अथवा किसी प्राकृतिक वस्तु आदि के रंग–रूप को ग्रहण कर अपने बचाव का प्रयास करते हैं। इनकी इस प्रवृत्ति को अनुकृति (Mimicry) कहते हैं।

4.6 अनुकृति/अनुहरण (Mimicry)

जीव–जन्तुओं द्वारा अन्य प्राणियों अथवा प्राकृतिक वस्तुओं के रंग, रूप, आकार, संरचना को इस प्रकार अपनाया जाना कि वे शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सके तथा आसानी से शिकार कर सके, अनुकृति (Mimicry) कहलाता है। इस प्रकार प्राणी या तो दिखाई नहीं देते अथवा हानिप्रद दिखते है जो वास्तविक नहीं होता। इस प्रकार अनुकृति की प्रक्रिया में जन्तु जन्तुओं के समान अथवा डरावना दिखने का प्रयास करता है जो अवास्तविक होता है। अनुकृति के बारे में 1862 में सर्वप्रथम **हेनरी डब्लू बेट्स** (Henry W. Bates-1862) को जानकारी हुई जब वे ब्राजील के जंगलों में तितलियों पर अपना शोध कार्य कर रहे थे। वैज्ञानिक ने दो कुल (Family) की तितलियों का संग्रह किया– पाइरिडी (Pieridae) एवं हेलीकोनाइडी (Heliconidae)। दोनों कुल की तितलियों की बाहय संरचना, रंग एवं पंख समान थे। लेकिन यह देखा गया कि हेलिकोनोयडी की तितलियाँ स्वादहीन होने के कारण उनको कोई भी प्राणी नहीं खाता था इसके विपरीत पाइरिडि (Pieridae) कुल की तितलियों को प्राणी भोजन के रूप में खाते थे। यह पाइरिडी कुल की तितलियाँ अपनी रक्षा हेलिकोनायडी तितलियों के समान संरचना एव रंग, रूप बनाकर करती है। अनुकृति को निम्नानुसार परिभाषित किया जा सकता है–

"जन्तु द्वारा किसी अन्य जन्तु, पौधे अथवा किसी प्राकृतिक वस्तु के रूप एवं रंग, आकार एवं व्यवहार इत्यादि के अनुसार बदल अथवा अनुकरण करने की प्रक्रिया को अनुकृति (Mimicry) कहते है।"

अनुकृति (Mimicry) रूप, रंग, स्वभाव, संरचना एवं क्रियाओं में सुरक्षा की दृष्टि से की जाती है। अतः अनुकृति/अनुहरण (Mimicry) एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्राणी अपनी सुरक्षा के लिए किसी अन्य सुरक्षित प्राणी के समान या प्रारूप के समान बन जाता है। अनुकृति तीन प्रकार की हो सकती है–

1. रक्षात्मक अनुकृति (Protective Mimicry),
2. आक्रमणात्मक अनुकृति (Aggressive Mimicry),
3. मृत्यु का बहाना (Stimulation of Death)।

उपर्युक्त अनुकृति के प्रकार के अतिरिक्त ऐच्छिक (Conscious) एवं अनैच्छिक प्रकार की होती है। अनैच्छिक अनुकृति के अन्तर्गत रूप एवं रंग की समानता पाई जाती है। अनैच्छिक अनुकृति तब पाई जाती है जब कोई भी प्राणी गतिविधि के द्वारा किसी अन्य जन्तु के समान गति को दर्शाती है। अनुकृति किसी की भी की जा सकती है– पत्थर, शाखा, हानिकारक कीट का प्राणी।

4.6.1 रक्षात्मक अनुकृति/रक्षात्मक अनुहरण (Protective Mimicry)

इस प्रकार की अनुकृति में जन्तु रंग व आकार दोनों में ही अनुकृति करते है। प्राणी ऐसे रूप को धारण कर लेता है जिसको कोई भी प्राणी अखाय अथवा आक्रमणी होता है। यह दो प्रकार की होती है–

(i) छिपावयुक्त अनुकृति (Concealment)– इस प्रकार की अनुकृति जन्तुओं में अक्सर देखी जाती है। इसमें जन्तु अपने को अन्य जन्तुओं या वस्तुओं के समान दिखलाकर छिपाता है। जैसे– जियोमेट्रिड मोथ (Geometrid moth) के केटरपिलर (Caterpillar) रंग तथा आकार में पेड़–पौधों की शाखाओं के समान दिखाई देते हैं, जिसके कारण इन्हें अलग से नहीं पहचाना जा सकता है। इसी प्रकार, पत्ती कीट (Phyllium) के पंख, चपटे शरीर, लम्बी हरी भुजाएँ पीले धब्बेयुक्त होती है। अतः इसे देखने से पत्तियों पर फफूँद (Fungi) इत्यादी उगने का भ्रम हो जाता है। इस प्रकार इसकी रक्षा हो जाती है।

क्रिप्टोलिथोडीज (Cryptolithodes) केकड़ा (Crab) पत्थरों के बीच अपना जीवन व्यतीत करता है, इसकी आकृति, रंग तथा स्पर्श कठोर होता है जिसको पत्थर समझ कर छोड़ दिया जाता है और पहचाना नहीं जाता है। इसी प्रकार केलाइमा (Kallima) नामक तितली का रंग मृत सूखी पत्ती के समान होता है। इस तितली के पंखों का अधरीय तल सूखी पत्ती के समान (Dry leaf) होने के कारण यह तितली नहीं पहचानी जाती जब तक कि यह गति न करे।

टिप्पणी

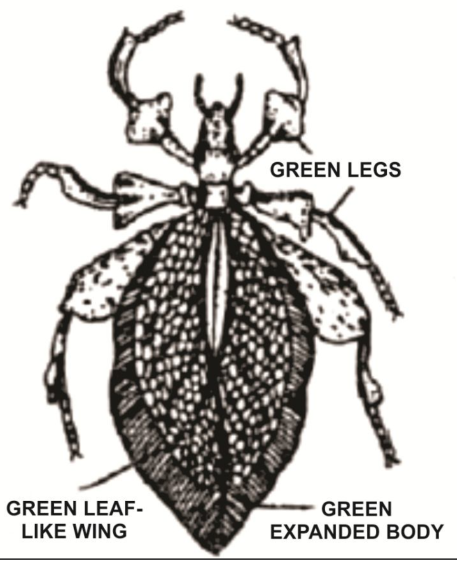

चित्र क्र. 4.28: Phyllium

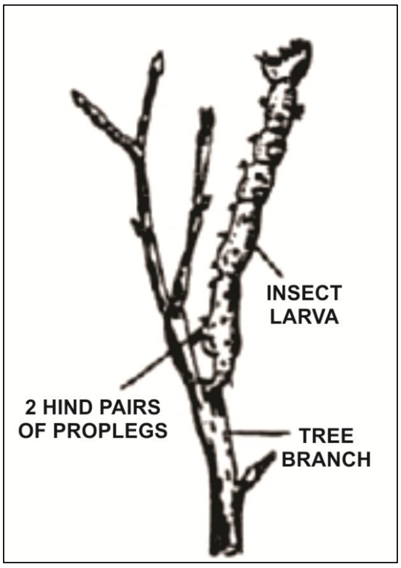

चित्र क्र. 4.29: Geometrid Caterpillar Larva

(iii) **अपसूचक अनुकृति (Warning Mimicry)**– इस प्रकार की अनुकृति के कुछ हानि रहित जन्तु स्वादहीन तथा जहरिले जन्तु के समान दिखायी देते है। सरीसृपों में इस प्रकार की अनुकृति अक्सर देखी जाती है। जैसे– हेटरोडॉन (Heterodon) जो एक विषहीन सर्प है, विषैले सर्प की तरह फुफकारने तथा आक्रमक होने के कारण भयानक दिखाई देता है। इस प्रकार यह अपनी रक्षा करता है।

इसी प्रकार अनेक विषहीन सर्प, विषैले सर्पों के समान अनुकृति कर अपनी रक्षा करते हैं। उदाहरण के लिए, कोलुब्राइडी कुल के कुछ विषहीन कोरल सर्प इलेपिडी (Elapidae) कुल के विषैले सर्पों के समान दिखायी देते हैं। इनके शरीर पर चटकीले लाल रंग, पीले रंग और काले रंग की पट्टियाँ होती हैं। इसी प्रकार हेटेरोडॉन (Heterodon) वंश का अविषैला सर्प अपने सिर को चपटा करके फुफकार मारकर विषैले सर्प की भाँति व्यवहार करता है। फूलों की अनेक मक्खियों (Flower flies) डंक मारने वाली मधुमक्खियों (Honey bees) एवं बर्र (Wasp) के समान होकर अपनी रक्षा करती है। मोनार्क (Monarch) तितली पक्षियों (Birds) के लिए बेस्वाद होती है, इस तितली की अनुकृति को खाद्यशील (Viceroy butter fly) बेसिलार्किया (Bassilarchia) तितली ग्रहण कर अपनी रक्षा करती है। इन दोनों तितलियों का रंग लाल, भूरा, काला सीमान्त भाग एवं सफेद चकते पाये जाते हैं।

सुरक्षात्मक अनुहरण की दशाएँ–

1. अनुहरणकर्ता अधिक असुरक्षित होते हैं।
2. अनुहरणकर्ता अपनी जाति के सदस्यों से भिन्न होता है।
3. अनुहरणकर्ता की संख्या अधिक कम होती है।
4. अनुहरण सदैव बाहय (External) होता है। अनुहरण का आन्तरिक लक्षणों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

5. अनुहरणकर्ता एवं जिस प्राणी या जीव का अनुहरण किया जाता है, दोनों को एक ही क्षेत्र का होना चाहिए।

4.6.2 आक्रमणात्मक अनुकृति (Aggressive Mimicry)

इस प्रकार की अनुकृति माँसाहारी जन्तुओं में पायी जाती है। प्रत्येक प्राणी अपनी सुरक्षा एवं भोजन के लिए शिकार को पकड़ने के लिए जिस आवास माध्यम पर अपना जीवन व्यतीत करता है उसी के अनुसार अपनी अनुकृति कर लेता है। जिससे प्राणी को पहचानना अति कठिन होता है। उदाहरण के लिए कुछ फूलों पर मकड़ी (Spiders) अपना रंग फूलों के समान कर लेती है। फूलों पर आकर्षित होने वाले कीट मकड़ियों का शिकार बन जाते है। यह दो प्रकार की होती है–

(i) **गोपन अनुकृति (Concealing Mimicry)**– इस प्रकार की अनुकृति में जन्तु अपना रंग किसी मॉडल के समान कर लेता है, जैसे– स्पाइडर (Spider), जो उन्ही फूलों की तरह दिखायी देते है जिन पर ये पाये जाते हैं। इस प्रकार कीट, स्पाइडर को नहीं देख पाते तथा उनके द्वारा खा लिये जाते हैं। इस प्रकार मकडियाँ पौधों के समान अपनी अनुकृति बनाती है। अमेरिका के बाज बूटिओ ऐल्बोनोटेटस (Buteo albonotatus) पंखों की आकृति तथा रंग में वहाँ के गिद्धों (vultures) के समान होता है और उन्ही के साथ उडता है। गिद्ध छोटे जन्तुओं का शिकार नहीं करते अतः बाज छोटे जन्तुओं का सरलता से शिकार कर लेता है।

(ii) **प्रलोभन अनुकृति (Alluring Mimicry)**– इस अनुकृति में जन्तु शिकार करने के लिए जीवों को प्रलोभन देते हैं। जैसे– कुछ मकडियाँ आर्किड के फूल के समान होती है। इस प्रकार शिकार फूल के कारण मकडी के निकट आ जाता है। कुछ मकडियाँ फूलों के गुच्छों के समान दिखाई देती हैं। जिनको देखकर कीट आकर्षित होते हैं और मकडी के शिकार बन जाते हैं। अमेरिका का हार्न मेंढक सिरेटोफारिस (Ceratophrys) चुपचाप बैठकर अपने अग्रपाद की अंगुली को हिलाता है, छोटे मेंढक या अन्य जन्तु जब शिकार समझकर इस ओर आते है तो इसके द्वारा पकड़ लिये जाते हैं।

4.6.3 मृत्यु का बहाना (Stimulation of Death)

इस प्रकार की अनुकृति में जन्तु खतरे की स्थिति आने पर इस प्रकार पड़ा रह जाता है जैसे उसकी मृत्यु हो गयी हो। यह शत्रुओं से अपनी रक्षा करने का एक उपाय है। जैसे– अमेरिकन अपोसम (Opossum) डाइडेल्फिश वर्जीनियाना (Didelphis virginiana) जानकर अचेत के समान बन जाता है और मृत होने का भ्रम पैदाकर अपने शत्रुओं से रक्षा करता है। कड़े शरीर वाली बीटल्स (Hard bodied beetles) शत्रु के आक्रमण करने पर चिकने कंकड की तरह पड़े रहते हैं और मृत्यु का बहाना करते हैं। यह ऐच्छिक प्रकार की अनुकृति होती है–

(i) भयानक आकृति (Terrifying appearance)– कुछ प्राणी या कीट शत्रु से अपनी रक्षा के लिए या तो भयानक ध्वनि उत्पादन करते हैं या फिर अपनी अनुकृति भयानक प्राणी के समान बनाते हैं या इन प्राणियों के शरीर पर भयानक

टिप्पणी

विभिन्न प्रकार के चिन्ह पाये जाते हैं। इन चिन्हों या भयानक आकृति को देखकर या ध्वनि को सुनकर शत्रु इनके पास नहीं आता है।

उदाहरण– अनेक प्रकार की तितली (Butterfly), टिड्डी (Grasshopper), विद्युत मछली (Electric Fish), मछली एवं शूल (sting) मछली आदि।

अनुकृति के उद्‌गम के कारण (Causes of Origin of Mimicry)

वीजमैन (Weismann) वैज्ञानिक के अनुसार प्राकृतिक वरण (Natural selection) ही अनुकृति के उत्पत्ति का कारण है। इस विचार के विपरीत यह कहा गया कि अनुकृति के अन्तर्गत निम्नलिखित कोटि की या छोटी–छोटी भिन्नताओं का महत्व नहीं है।

उत्परिवर्तन (Mutation) भी अनुकृति के उत्पादन का एक कारण है। **उदाहरण–** पेपिलियोंमेरोप (Papilliomerope) तितलियों में बहुरूपता (मादा में) जबकि नर तितली पैतृक तितली के समान होती है। वर्तमान में कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार बाहय वातावरण के कारण एवं आन्तरिक वातावरण के कारक अनुकृति के उत्पादन में सहायक होते हैं। कुछ अन्य वैज्ञानिकों के मतानुसार अनुकृति (Mimicry) जीन की क्रियाओं के द्वारा होता है। फिशर (Fischer) वैज्ञानिक के अनुसार हानिकारक जीन अप्रभावी (Recessive) हो जाता है तथा लाभकारी जीन प्रभावी (Dominant) हो जाते हैं। अनुकृति (Mimicry) एक जीन के उत्परिवर्तन के कारण होता है। जीनों को रूपान्तरण के अनुसार अनुकृति उत्पन्न होती है।

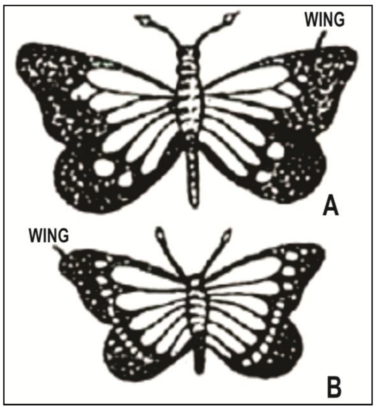

चित्र क्र. 4.30: Batesian Mimicry: (A) Monarch (B) Viceroy

अनुहरण का महत्व

1. शत्रुओं से प्राणियों की सुरक्षा करना।
2. इससे आत्मरक्षा होती है, इस कारण प्राणियों में जीवित रहने की क्षमता में वृद्धि होती है।
3. प्राणि को जीवित रहने के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं।
4. जीवन की सुरक्षा एवं जाति के गुणन में अत्याधिक सफलता।
5. प्राकृतिक चयन अनुहरण का समर्थन करता है।

4.6.4 बेटेसियन तथा मुलेरियन अनुकृति (Batesian and Mullerian Mimicry)

सर्वप्रथम बेट्स (Bates) ने अमेजन (Amazon) नदी के क्षेत्र में पायी जाने वाली तितलियों के लिए अनुकृति का वर्णन किया था। इन तितलियों को हेलिकोनिडी (Heliconide) कहते हैं। बेट्स के अनुसार खायी जा सकने वाली संख्या में कम पायी जानेवाली जाति तुलनात्मक रूप से कम खायी जाने वाली एवं रक्षित जाति के समान होती है। इस प्रकार अनुकृति करने वाली (Monarch) तितली चिड़ियों द्वारा न खायी जा सकने वाली तथा वासइराय (Viceroy) तितली खायी जा सकने वाली जाति है।

मुलेरियन (Mullerian) अनुकृति में दो या दो से अधिक अस्वादिष्ट तथा खायी जा सकने वाली जातियाँ एक–दूसरे से समानता रखती है। जिससे समानता रखने वाली और अनुकृति करने वाली अस्वादिष्ट दिखाई देने के कारण दोनों ही जातियाँ शत्रुओं से सुरक्षित हो जाती है। जैसे– एक मोथ (Moth) वास्प (Wasp) से समानता रखता है। बीबे (Beabe) एवं कैनेडी (Keneddy) के अनुसार मुलेरियन अनुकृति सभी के लिए लाभकारी होती है। बेट्स (Bates) के अनुसार कम सुरक्षित जाति दूसरी सुरक्षित जाति के समान दिखायी देती है। बेटसन अनुकृति प्रारूप के लिए हानिकारक है।

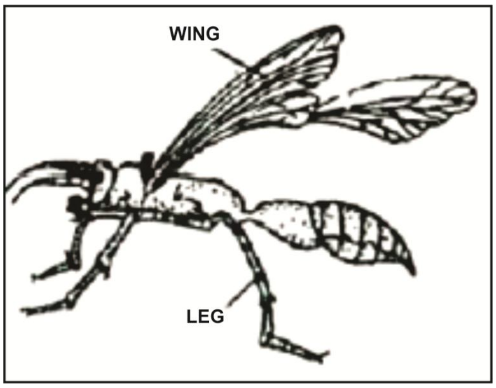

चित्र क्र. 4.31: Mullerian Mimicry

अनुकृति/अनुहरण का विकास (Evolution of Mimicry)

अनुहरण विधि के उद्गम एवं विकास के बारे में अधिक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गये हैं, कुछ का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है–

अनुहरण विधि के उद्गम एवं विकास के बारे में अधिक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गये हैं, कुछ का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. **प्राकृतिक वरण (Natural selection)**– वीजमैन (Weismann) वैज्ञानिक इस विचारधारा के थे कि प्राकृतिक वरण एक ऐसा कारक है जोकि अनुहरण (Mimicry) को जन्म देता है। इस वैज्ञानिक ने दर्शाया कि पाइरिडी (Pieridae) एवं हेलीकोनाइडी (Heliconidae) दोनों कुल की

टिप्पणी

तितलियों की बाहय संरचना, रंग एवं पंखों की समानता चयन के कारण ही होती हैं।

2. **उत्परिवर्तन (Mutation)**– आधुनिक मतों के अनुसार अनुहरण आनुवंशक (Gene) की क्रिया के फलस्वरूप होता है। फिशर (Fisher) वैज्ञानिक के अनुसार अनुकृति प्रभावी जीन उत्परिवर्तन के कारण होता है। कुछ लोगों का मत है कि अनुकृति का उद्‌गम एकाकी आनुवंशक उत्परिवर्तन के कारण होता है।

   फिशर एवं फोर्ड के अनुसार अनुकृति में केवल एक (Allelomorph) प्रभावी होता है, जोकि अनुहरणकर्ता एवं मॉडल (Model) में समानता दिखाता है और विधि जो इससे सम्बन्धीत है, के अनुसार परिवर्तित आनुवंशक (Gene) एवं प्राकृतिक चयन ही अनुहरण को प्रेरित करता है।

समता की सम्भावना (Chance of Similarity)– एक मत के अनुसार इन अधिक संख्या की जातियों एवं उनमें आपस में अत्याधिक सम्बन्ध एवं वातावरण का उनमें सम्बन्ध से ही आपस में अनुकृति के उद्‌गम की सम्भावना प्रबल हो सकती है तथा पौधों एवं प्राणियों के विकास में क्रियात्मक हस्तक्षेप एवं एकाकी लक्षण भी इस सिद्धान्त से सहमत होते हैं।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

33. वायवीय अनुकूलन के प्रमुख प्राणी हैं–

    (अ) कबूतर (ब) गौरेया

    (स) स्तनी प्राणि (द) (अ) तथा (ब) दोनों

34. अनुकूलन किसे कहते हैं?

    (अ) जीवधारी में आत्मपरीक्षण (ब) जीवधारी में स्वतः नियमन

    (स) जातियों की सुरक्षा (द) सभी

35. अनुकूली विकिरण को किसने नामांकन किया था–

    (अ) डार्विन (ब) ओसवान

    (स) मेण्डल (द) वीजमेन

36. अनुकूलन का वर्गीकरण कितने प्रकार में किया जाता है?

    (अ) 3 (ब) 2

    (स) 4 (द) 6

37. जीव जाती का अनुकूलन होता है–

    (अ) त्वक पतन (ब) आनुवंशिक लक्षण

    (स) उपार्जित लक्षण (द) कायान्तरण

टिप्पणी

38. धावी अनुकूलन के लक्षण है–

(अ) वायु द्वारा कम से कम अवरोध हो

(ब) शरीर का वक्षीय भाग पार्श्व से चपटा

(स) (अ) तथा (ब) दोनों

(द) अग्र भुजाएँ अधिक विकसित हों।

39. आरोहण अनुकूलन का उदाहरण है–

(अ) बन्दर (ब) गाय

(स) केंचुआ (द) मछली

40. किन प्राणियों में अंश मेखला शक्तिशाली एवं आगे की ओर स्थित होती है?

(अ) खनन अनुकूलन वाले प्राणियों में

(ब) आरोहण वाले प्राणियों में

(स) गहरे समुद्र में रहने वाले प्राणियों में

(द) मरुस्थली प्राणियों में।

41. गुफीय अनुकूलन के लक्षण होते हैं–

(अ) अल्पविकसित नेत्र

(ब) स्पर्श संवेदांग अधिक विकसित

(स) प्राणियों के शरीर में रजकों का अभाव

(द) सभी

42. अनुकृति या अनुहरण कितने प्रकार का होता है?

(अ) 3 (ब) 5

(स) 2 (द) 7

43. अनुकृति के बारे में सर्वप्रथम किस वैज्ञानिक ने जानकारी दी थी?

(अ) वीज़मैन (ब) हैनरी बेट्स

(स) आसबर्न (द) लैमार्क।

टिप्पणी

4.7 सूक्ष्म, दीर्घ एवं वृहत् विकास (Micro, Macro and Mega - Evolution)

मॉडर्न सिन्थैटिक थ्योरी ऑफ इवोल्यूशन (Modern synthetic theory of evolution) के अनुसार म्यूटेशन तथा वॅरिएशन्स (mutations and variations) जैव–विकास के मुख्य आधार या कारण (causes) हैं जिससे जीवों में नई जातियों की उत्पत्ति होती है। गोल्डश्मिट (Goldschmidt) ने 1940 में जैव–विकास के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन किया। उनके अनुसार मेडिटेशन अत्यन्त ही सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं जिनके आधार पर जैव–विकास के अन्तर्गत होने वाले प्रमुख परिवर्तनों की व्याख्या नहीं की जा सकती। उन्होंने इसी आधार पर जैव–विकास को दो मुख्य भागों में विभक्त किया–

4.7.1 माइक्रो या सूक्ष्म विकास (Micro-evolution)

(1) इसके अन्तर्गत उप–जातियों (sub-species) अथवा भौगोलिक प्रजातियों का विकास आता है तथा (2) मैक्रो या दीर्घ विकास (Macro - evolution) इसके अन्तर्गत जातियों (species), जेनेरा (Genera) तथा अन्य उच्च श्रेणियों का विकास आता है। इनके अतिरिक्त सन् 1953 में सिम्पसन (Simpson) ने एक अन्य पारिभाषिक शब्द मैगा–इवोल्यूशन (Mega - evolution) का प्रयोग किया, जो एक बड़े परिमाण पर विकास की प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत फेमिलीज (Families), ऑर्डर (Orders), क्लास (Classes) तथा फाइला (Phyla) का विकास आता है।

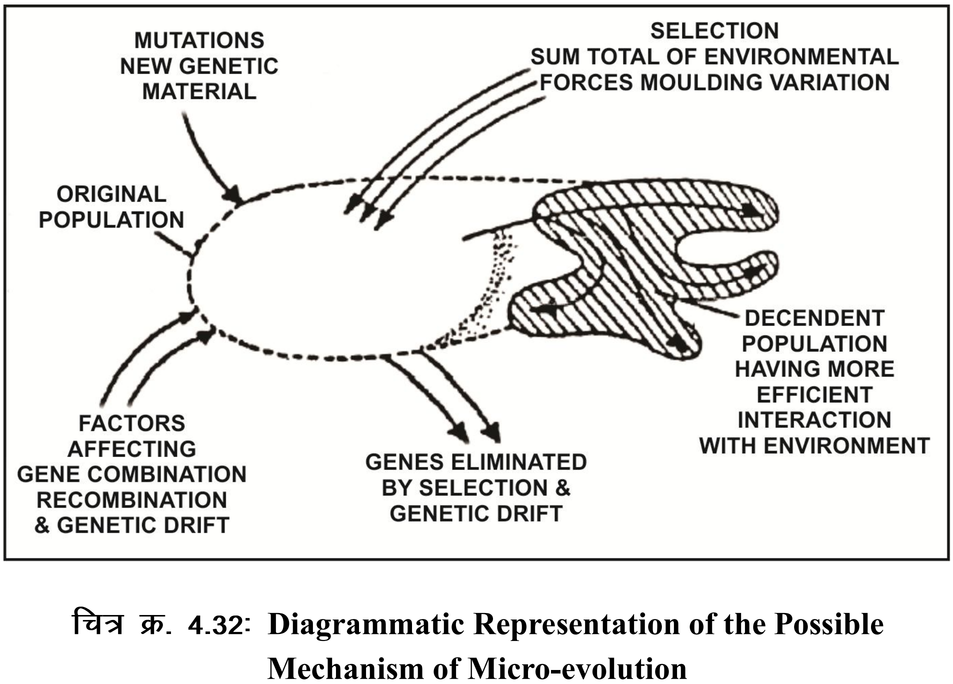

चित्र क्र. 4.32: **Diagrammatic Representation of the Possible Mechanism of Micro-evolution**

माइक्रो–इवोल्यूशन या सूक्ष्म विकास (Micro-Evolution)

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है उप–जातियों (sub-species) अथवा भौगोलिक प्रजातियों के इवोल्यूशन को माइक्रो–इवोल्यूशन कहते हैं। माइक्रो–इवोलूशन की प्रक्रिया इवोल्यूशन के मूल फेक्टर्स (elementary factors), जैसे जीन म्यूटेशन, वैरिएशन्स, रिकॉम्बिनेशन्स, प्राकृतिक वरण तथा जेनेटिक ड्रिफ्ट्स के फलस्वरूप होती है। माइक्रो–इवोल्यूशन का प्रमुख फैक्टर्स जीन फ्रीक्वेंसी (frequency) में परिवर्तन होना है जिसके फलस्वरूप किसी जाति की आबादी या समष्टि (population) में पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपेक्षाकृत छोटे–छोटे परिवर्तन होते रहते हैं। इनकी मूल कार्यविधि किसी जाति विशेष की मेण्डेलियन समष्टि (Mendelian population) के जीन समूह (gene pool) में परिवर्तन लाना है। अतः यह स्पष्ट है कि माइक्रो–इवोल्यूशन जातियों (species) के स्तर पर ही क्रियाशील होता है।

माइक्रो–इवोल्यूशन के उदाहरण (Examples of Micro-evolution)

माइक्रो–इवोल्यूशन के अनेक उदाहरण इनवर्टिब्रेट फॉसिल्स (invertebrate fossils) से प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए रौव (Rowe) ने सिल जेनेरा सी–अर्चिन, माइक्रऐस्टर (Micraster) की कई डीसैण्ट या अवरोहित पीढ़ियों (descent generations) का अध्ययन किया। इनमें से एक जाति माइक्रेस्टर कॉरबोविस (Micraster corbovis) में उन्होंने देखा कि इसके बाहरी रक्षात्मक टैस्ट या आवरण का आकार, ओरल छिद्र (oral opening) की संरचना तथा एम्बुलेकरा (ambulacra) के आकार में धीरे–धीरे परिवर्तन होकर यह एक नयी जाति माइक्रस्टर कारऐन्जिनम (Micraster coranguinum) में परिवर्तित हो गयी है। इस प्रकार के परिवर्तन एक ऐसे वातावरण में पाये गये थे जिसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ था और काफी लम्बे समय के लिए था। फेण्टन (Fanton) के अनुसार इसी प्रकार का ब्रैकियोपोड स्पाइरीफर (Spirifer) की एक पुरानी जाति धीरे–धीरे परिवर्तित होकर एक नयी जाति में बदल गयी। इन परिवर्तनों के समय वातावरण की अवस्थाएँ एक–सी नहीं थीं, किन्तु इस जाति में होने वाले इवोल्यूशनरी परिवर्तन (evolutionary changes) वातावरण की भिन्नताओं से सम्बन्धीत नहीं थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक इण्टरब्रीडिंग समष्टि (interbreeding population) में माइक्रो–इवोल्यूशन एक सतत् तथा धीमी गति से पाये जाने वाले परिवर्तन (continuous and gradual changes) हैं। ये छोटे वेरिएशन (Variations) धीरे–धीरे इकट्ठे होकर एक जाति समष्टि की रचनाओं में बड़े–बड़े परिवर्तन ला देते हैं। ये परिवर्तन एक साथ जाति में अनेक संरचनाओं में पाये जाते हैं और प्रायः एक लम्बे समय के लिए डाइरेक्शनल (directional) होते हैं। माइक्रो–इवोल्यूशन जीन्स के कॉम्बिनेशन या माइक्रो–म्यूटेशन के कारण उत्पन्न होते हैं।

4.7.2 मैक्रो–इवोलूशन या दीर्घ विकास (Macro-Evolution)

जैसा कि शुरू में ही वर्णन किया जा चुका है मैक्रो–इवोल्यूशन के अन्तर्गत जातियों, जेनेरा तथा अन्य उच्च क्रमों का विकास आता है, अर्थात् यह सदैव जातियों के स्तर से उच्च स्तर पर कार्यशील रहता है। इसके फलस्वरूप जेनेटिक डाइवरजैन्स (genetic divergence) तथा किसी आबादी या समष्टि के विभिन्न समूहों में बँटने के माध्यम से नये अनुकूलित जीवों (adaptive types) का विकास होता है। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) किसी समूह विशेष या जाति समष्टि का विभिन्न स्वभाव तथा वास स्थान के अनुसार अनेक नये छोटे–छोटे समूहों में बँटना (adaptive radiation)।

(ii) प्रकृति अथवा वातावरण में नये–नये परिवर्तन होना तथा जीवों में संरचनात्मक एवं क्रियात्मक विविधताएँ। मैक्रो–इवोल्यूशन की डाइवर्जेन्ट इवोल्यूशन (Divergent evolution) अथवा अडाप्टिव रेडिएशन (Adaptive radiation) भी कहते हैं। वह वातावरण में लगभग सभी समूहों के जीवों में देखा जा सकता है। इसके द्वारा किसी समूह के जीवों में कुछ विशेष लक्षणों का विकास निरन्तर होता रहता है जिससे नये प्रकार के जीवों का उद्भव होता है।

अडाप्टिव रेडिएशन (Adaptive radiation) के अन्तर्गत एक जीव–समूह कई छोटे–छोटे समूहों में बँट जाता है। इनमें से प्रत्येक समूह अपने स्वभाव एवं आवास (habit and habitat) के अनुसार रूपान्तरित होकर एक नये जीव समूह का निर्माण करता है। अडाप्टिव रेडिऐशन के अन्तर्गत सामान्यतः जन्तुओं के शरीर में बड़े परिवर्तन होते हैं जिसमें समूह के प्रत्येक जीव का आकार अत्याधिक बढ़ता है। जैसे ही जन्तु के स्वभाव (habits) में परिवर्तन होता है, जन्तु के शरीर के प्रत्येक भाग में उसी के अनुसार परिवर्तन होते हैं और इनके साथ हो उसके आकार में भी आल्टरेशन (alteration) पाये जाते हैं तथा इनमें से अधिकांश परिवर्तन, ऐलोमेट्रिक परिवर्तन (allometric changes) होते हैं तथा इनके साथ ही अन्य नये लक्षण या संरचनाएँ भी उस जन्तु के शरीर में बनती हैं। ऑसबोर्न (Osborn) के अनुसार जन्तु में जो ऐलोमेट्रिक परिवर्तन आकार (size) से सम्बन्धीत होते हैं, उन्हें ऐलोमेट्रोन (allometron) परिवर्तन कहते हैं तथा जन्तु के शरीर में बनने वाले नये लक्षणों को ऐरिस्टोजीन (aristogene) कहते हैं। इसको हम घोड़े के उदाहरण से समझ सकते हैं। घोड़े के विकास (evolution) के दौरान इनके शरीर के आकार में वृद्धि हुई तथा उसी अनुपात में उसके शरीर के प्रत्येक भाग के आकार में भी वृद्धि हुई। विकास में इओहिप्पस से मीजोहिप्पस (Eohippus to Mesohippus) तक घोड़े ब्रॉवसिंग (browsing) स्वभाव के थे, जो जंगलों में रहकर कोमल घास आदि पर निर्भर रहते थे। इस प्रकार के भोजन के लिए इनके दाँत ब्रैकियोडॉण्ट (brachyodont) प्रकार के थे मेरीहिप्पस (Meryhippus) से आगे, ये ग्रेजिंग (grazing) स्वभाव के हो गये, जिसके कारण इनमें हिप्सोडॉण्ट ग्राइंडिंग (hypsodont grinding) दाँतों या दाढ़ों का विकास हुआ। इन दाढ़ों के कस्पस और रिजैज (cusps and ridges) की लम्बाई में भी वृद्धि (allometric changes) हुई और साथ ही कुछ नये करपस का भी विकास हुआ (aristogene

change)। इस प्रकार मैक्रो–इवोल्यूशन में जन्तुओं में नये लक्षण या संरचनाओं का विकास होता है।

टिप्पणी

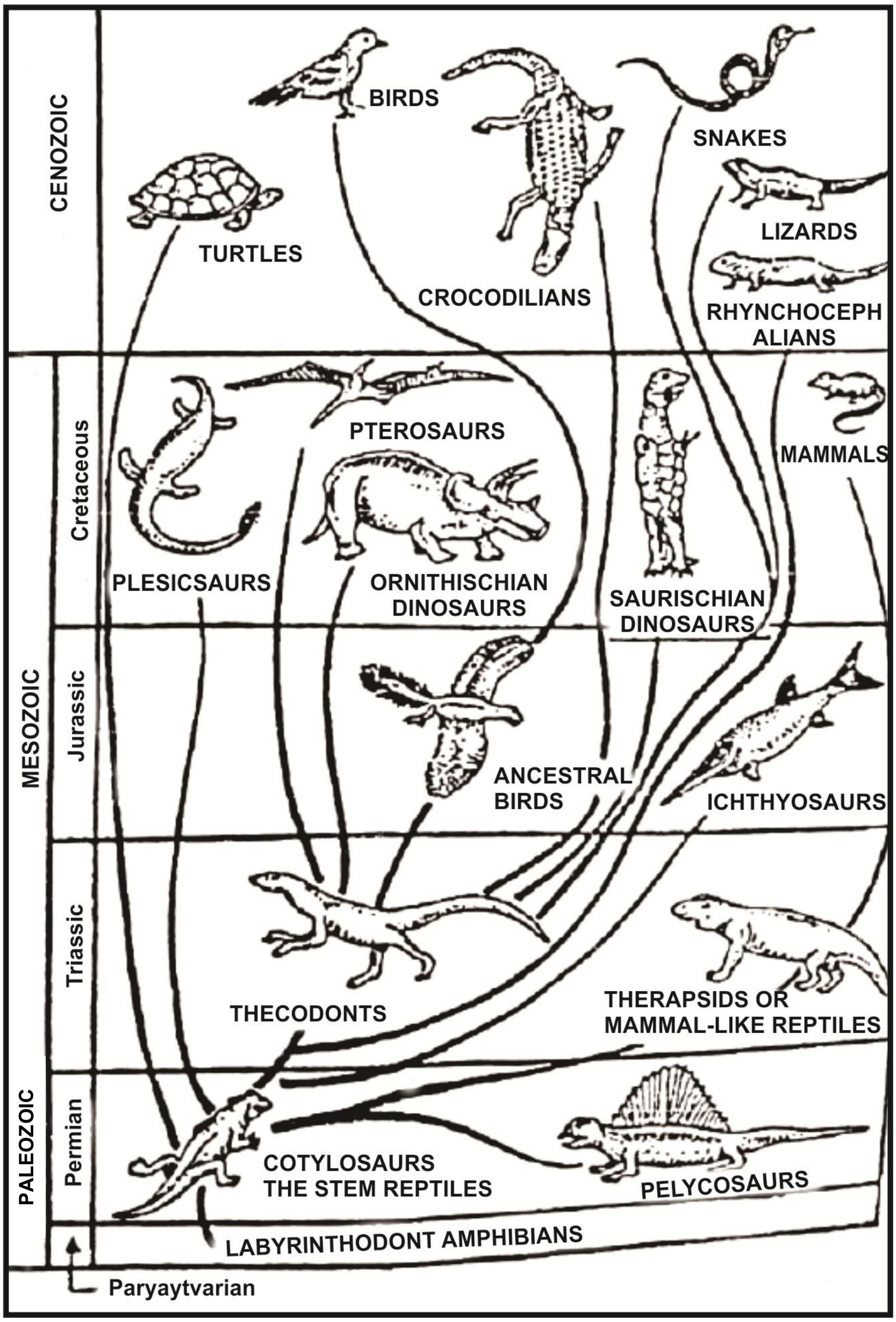

चित्र क्र. 4.33: Macro-evolution in Reptiles or Adaptive Radiation in Reptiles

4.7.3 मैगा–इवोल्यूशन या वृहत–विकास (Mega-evolution)

मैगा–इवोल्यूशन का तात्पर्य नये ऑर्डर, क्लास तथा फाइलम की उत्पत्ति अथवा विकास से है। अर्थात् इसके अन्तर्गत जन्तुओं में शारीरिक ऑर्गनाइजेशन की एक नवीन प्रणाली (सिस्टम) की उत्पत्ति होती है जिसके कुछ सब–ग्रुप्स (sub - groups) में अडैप्टिव रेडिएशन के दौरान होता है। मेगा–इवोल्यूशन के फॉसिल (fossil) प्रमाण अपेक्षाकृत कम हैं, क्योंकि किसी समूह विशेष की वास्तविक उत्पत्ति के फॉसिल प्रमाण सामान्यतः मिले ही नहीं हैं। वास्तव में मेगा–इवोल्यूशन बहुत कम होता है तथा इवोल्यूशन के इतिहास में भी ऐसे बहुत कम अवसर आये हैं जब मेगा–इवोल्यूशन हुआ हो किन्तु सभी पेड़–पौधे और जन्तुओं के उच्च समूह, जैसे ऑर्डर, क्लास तथा फाइलम जिनका शारीरिक ऑर्गनाइजेशन या संगठन भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है, मेगा–इवोलूशन के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुए हैं।

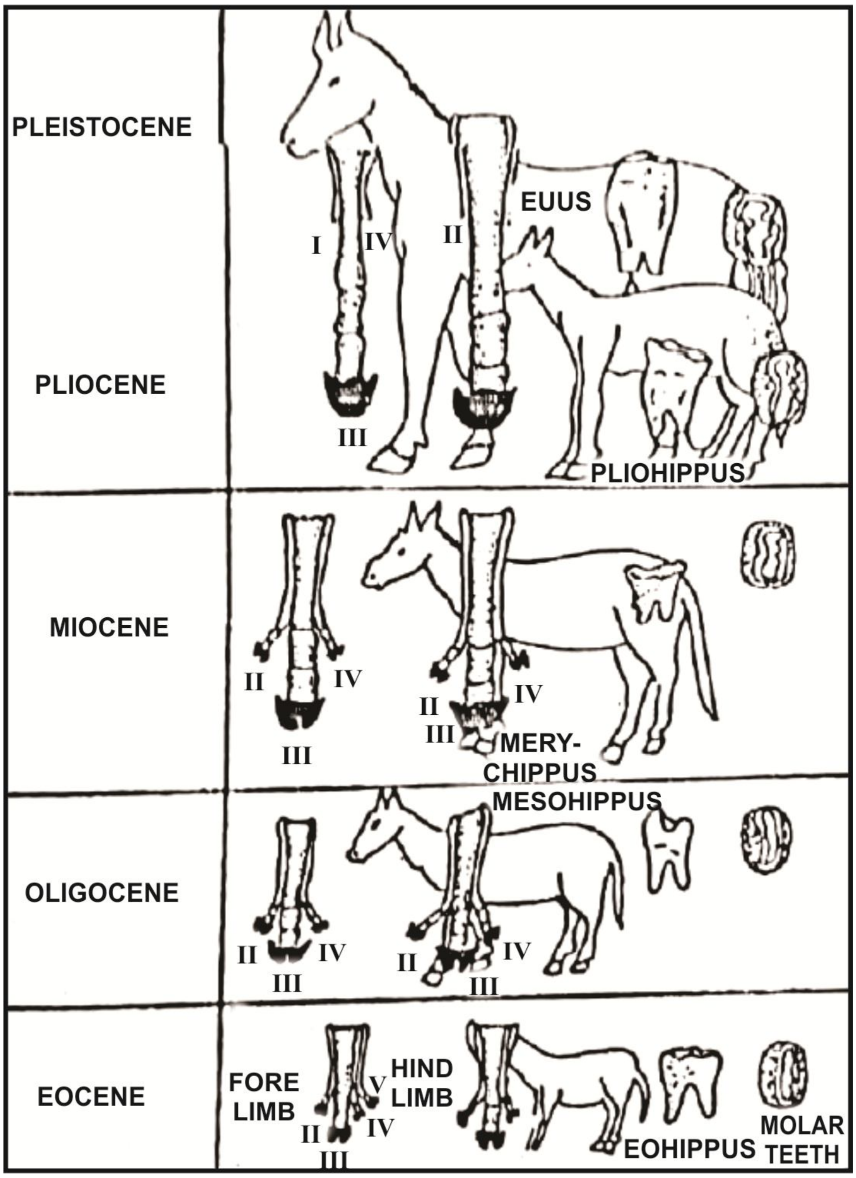

चित्र क्र. 4.34: Pedigree of Horse

मेगा–इवोलुशन का प्रक्रम (Process of Mega-evolution)

फॉसिल (fossil) प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि वर्टिब्रेट्स जन्तु अपने विकास काल में अक्सर नये वातावरण में प्रवेश करते थे और नये वातावरण के अनुसार अपने को परिवर्तित करके उसी प्रकार जीवनयापन करते थे। अतः मेगा–इवोल्यूशन के अन्तर्गत किसी विशेष समूह के जन्तु जिनमें जीवित रहने के लिए पारस्परिक स्पर्धा का अभाव हो, अपने वातावरण को छोड़कर किसी नये वातावरण या क्षेत्र में प्रवेश करने की कोशिश करते हैं। नये वातावरण में आकर ये जन्तु अपने शरीर में ऐसे रूपान्तरण करते हैं जिससे कि वे उस वातावरण में जीवित रह सकें। दूसरे शब्दों में हम इसको इस प्रकार कह सकते हैं कि किसी विशेष वातावरण में जाने से पहले ही ऐसे समूह के जीवधारी अपने शरीर में इस प्रकार के रूपान्तरण कर लेते हैं जो कि उन्हें नये वातावरण में जीवनयापन करने में मदद करते हैं। अर्थात् इन जन्तुओं के शरीर में पहले से ही इस प्रकार के लक्षण या स्ट्रक्चर्स (structures) उपस्थित होते हैं जिनका उपयोग ये नये वातावरण में आकर जीवनयापन करने में करते हैं। जन्तुओं में पहले से ही उपस्थित इस प्रकार के लक्षणों या स्ट्रक्चर्स को प्री–अडैप्टेशन (pre - adaptations) कहते हैं। नये वातावरण में पहुँचने के पश्चात् ये जन्तु अपने स्वभाव एवं आवास के अनुसार विकसित (radiate) होकर जीवन व्यतीत करने लग जाते हैं। अर्थात् इनमें इनके स्वभाव और आवास के अनुसार अन्य रूपान्तरण हो जाते हैं जिससे बेहतर जीवनयापन करने के लिए विशेष रूप से अनुकूलित हो जाते हैं। जन्तुओं में इस प्रकार के बाद में होने वाले रूपान्तरणों को पोस्ट–अडैप्टेशन्स (post adaptations) कहते हैं। इस प्रकार मेगा–इवोल्यूशन के द्वारा जन्तुओं में नये शारीरिक ऑर्गेनाइजेशन या संगठन का विकास होता है जिसके फलस्वरूप नये ऑर्डर, क्लास तथा फाइलम का विकास होता है।

मेगा–इवोल्यूशन उदाहरण (Examples of Mega-evolution)

(1) **रेप्टाइल्स का ऐम्फिबियन्स से उत्पन्न होना (Evolution of Reptiles from Amphibians)**– एम्फिबियन्स ऐम्फिबियस (amphibious) स्वभाव के होते है, अर्थात् ये जल तथा स्थल दोनों में निवास करते हैं। ऐम्फिबियन्स, रेप्टाइल्स के पूर्वज है क्याकि रेप्टाइल्स की उत्पत्ति का विकास प्रारम्भिक ऐम्फिबियन्स से हुआ है तथा उन्हें अपने जीवन में किसी जलीय माध्यम पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। जब रेप्टाइल्स की उत्पत्ति हुई, उस समय स्थल या भूमि पर किसी भी विशेष जन्तु समुदाय का अधिकार नहीं था और प्राणियों में पारस्परिक स्पर्धा का भी अभाव था। ऐम्फिबियन्स से रेप्टाइल्स के विकास में, ऐम्फिबियन्स में दो मुख्य परिवर्तन हुए।

(2) **बाह्यकंकाल का स्केल्स, प्लेटों या स्कूट्स (scales, plates or scutes)**– के रूप में विकसित होना, जो भूमि पर प्राणियों के शरीर से जल की क्षीणता को रोकता है।

(i) बड़े तथा झिल्लीदार अण्डों (cleidoic eggs) का उत्पन्न होना जो कि वयस्क को भूमि पर विकसित होने योग्य बनाते हैं।

(3) पक्षियों का रेप्टाइल्स से विकसित होना (Evolution of Birds from Reptiles)– पक्षियों का विकास प्रारम्भिक रेप्टाइल्स (primitive reptiles) से हुआ है। इसका प्रमाण फॉसिल पक्षी आर्कीओप्टेरिक्स (Archaeopteryx) से मिलता है। इस पक्षी में रेप्टाइल्स एवं पक्षी दोनों के ही लक्षण उपस्थित थे। रेप्टाइल्स से पक्षियों की उत्पत्ति में, रेप्टाइल्स में निम्न मुख्य परिवर्तन हुए–

(i) शरीर के ऊपर बाह्य–कंकाल का फैदर्स (feathers) के रूप में विकसित होना, जो शरीर के ऊपर एक इन्सुलेटिंग कवरिंग (insulating covering) का निर्माण करता है तथा वायु में उड़ते समय शरीर में बनी ऊर्जा को बाहर निकलने से रोकता है।

(ii) शरीर का तापक्रम एक–सा होना।

(iii) अग्रपादों का पंखों में बदल जाना।

(iv) ऊपरी तथा निचले जबड़ों का चोंच में परिवर्तित तथा चोंच में दाँतों का पूर्ण अभाव होना।

(v) हड्डियों का हल्का होकर उड़ने के लिए शरीर के वजन को कम करना तथा श्वसन–तन्त्र में वायुकोशों का विकास होना।

(4) स्तनियों का रेप्टाइल्स से विकास (Evolution of Mammals from Reptiles)– स्तनियों का विकास की प्रारम्भिक रेप्टाइल्स से हुआ है, जिसके प्रमाण हमको अनेक सिनेप्सिड फॉसिल्स रेप्टाइल्स (fossil Synapsid reptiles) से मिलते हैं। स्तनियों के विकास में इन सिनेप्सिड फॉसिल रेप्टाइल्स में अनेक स्तनियों के लक्षणों का विकास हुआ, जो निम्नलिखित हैं–

(i) फॉल्स पैलेट (false palate) का निर्माण।

(ii) हैटरोडॉण्ट डैण्टीशन (heterodont dentition) का निर्माण अर्थात दाँतों का कैनाइन्स, इन्साइजर्स, प्रीमोलर तथा मोलर में भिन्नित होना।

(iii) पादों में इस प्रकार का रूपान्तरण होना जिससे कोहनी तथा घुटनों को शरीर के नीचे तक मोड़ा जा सके।

(iv) क्वाड्रेट तथा आर्टिकल हड्डियों का निचले जबड़े में स्वतन्त्र होकर ईअर–ओसाइकिल्स (ear-ossicles) में रूपान्तरण हो जाना तथा निचले जबड़ों का स्कल (skull) से स्क्वैमोजल (squamosal) के द्वारा जुड़ना।

4.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.	(स)	16.	(स)	31.	(स)
2.	(ब)	17.	(ब)	32.	(अ)
3.	(स)	18.	(अ)	33.	(द)
4.	(अ)	19.	(द)	34.	(द)
5.	(स)	20.	(ब)	35.	(ब)
6.	(द)	21.	(अ)	36.	(स)
7.	(अ)	22.	(ब)	37.	(ब)
8.	(ब)	23.	(ब)	38.	(स)
9.	(द)	24.	(अ)	39.	(अ)
10.	(स)	25.	(स)	40.	(अ)
11.	(अ)	26.	(ब)	41.	(द)
12.	(स)	27.	(स)	42.	(अ)
13.	(ब)	28.	(अ)	43.	(ब)
14.	(अ)	29.	(द)		
15.	(ब)	30.	(अ)		

4.9 सारांश (Summary)

प्राकृतिवाद के अनुसार आदि समुद्र में अन्य पदार्थों के साथ–साथ कार्बनिक पदार्थ भी उपस्थित थे, जिनसे अनुकूल वातावरण में प्रथम जीव स्वतः ही उत्पन्न हुए।

हैल्डेन ने कहा कि आदि वातावरण में CO_2 जलवाष्प तथा NH_3 प्रचुरमात्रा में उपस्थित थी, जिन्होंने सूर्य की पराबैगंनी किरणों के प्रभाव से अनेक जैव कार्बनिक पदार्थ का निर्माण किया जो जीवद्रव्य के घटक माने जाते हैं।

जीवशास्त्री ओपेरिन के अनुसार परिवर्तनशीलता वातावरणीय दशाओं के साथ–साथ करोडों वर्षों तक ऐसी क्रमिक भौतिक रासायनिक क्रियाएँ होती रही, जिनसे पहले अकार्बनिक तथा कार्बनिक पदार्थ जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट आदि बने जो वर्तमान में जीवद्रव्य के मुख्य घटक माने जाते हैं। इसे रासायनिक उद्विकास कहा गया।

ओपेरिन की भौतिक परिकल्पना के अनुसार जीवन की उत्पत्ति आठ चरणों में पूर्ण हुई। जो इस प्रकार है– परमाणु अवसादि अणुओं मे एवं सरल अकार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति, कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति एवं उद्विकास, कोलाएड्स, कोएसरवेट्स एवं वैयक्तिता, स्व–उत्प्रेरक तन्त्र, जीन्स, विषाणु तथा

प्रारंभिक जीव, पूर्व केन्द्रीय कोशिकाओं की उत्पत्ति, स्वपोषण की उत्पत्ति तथा संकेन्द्रीय कोशिकाओं की उत्पत्ति।

प्रथम चरण– परमाणु अवस्था के अनुसार पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों की उत्पत्ति बहुत गर्म गैस के घूमते बादलों से हुई। इस प्रकार पृथ्वी अत्यन्त गर्म गैसों का एक गोला मात्र थी जो मुक्त परमाणुओं का बना था, इसमें गर्म गैसों के रूप में वे सभी रासायनिक तत्व, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन, गन्धक तथा फास्फोरस के स्वतन्त्र परमाणु थे जो जीवद्रव्य/प्रोटोप्लाज्म के प्रमुख घटक हैं।

दूसरा चरण– अणुओं एवं सरल अकार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति धीरे–धीरे गर्म पृथ्वी के वातावरण के तापक्रम के कम होने से मुक्त परमाणुओं से परस्पर जुड़कर अपने तत्वों को ही नहीं वरन् अन्य अकार्बनिक यौगिकों के भी अणु बनाए। पृथ्वी का आवरि वातावरण अपचायक था। चूँकि आदि वायुमण्डल में परमाणुओं की संख्या अधिक थी H_2 जिसने O_2 के परमाणुओं से जुड़कर जल, अमोनिया तथा कार्बन के साथ जुड़कर मीथेन बनाई।

तीसरा चरण– कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति एवं उद्विकास में आदि समुद्र के जल में NH_3, CH_4, HCN के साथ–साथ भू–पटल के अन्य लवण तथा धातु तत्व में घुले हुए थे। इनकें अणुओं के परस्पर टकराने तथा मीथेन जैसे हाइड्रोकार्बनों की जल के साथ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इथिलीन, ऐसीटिलीन के रूप में असंतृप्त हाइड्रोकार्बनों, एल्डोहॉल, ऐल्डिहॉइड तथा कीटोन जैसे संतृप्त हाइड्रोकार्बनों का संश्लेषण हुआ।

स्टैनले मिलर ने ओपेरिन के रासायनिक उद्विकास की पुष्टि के लिए एक फ्लास्क में 2:1:2 के अनुपात में मीथेन, अमोनिया हाइड्रोजन का मिश्रण यानि जलवाष्प + हाइड्रोजन भरकर प्रयोग किया। इस प्रयोग के तरल पदार्थ के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि यह ग्लासीन तथा ऐजेलीन (सरल अमीनो अम्ल) नामक शर्कराओं तथा अन्य कार्बनिक यौगिकों का मिलाप था।

चौथा चरण– प्रोटीन में अणुओं ने परस्पर जुड़कर छोटे–छोटे कोलॉयडी कण बनाएँ। इन प्रोटीन कणों पर विद्युतावेश के कारण जल अणु एकत्र होने से अर्धतरल प्रोटीन की बूंद सी बन गई। जिसे माइक्रोस्फीयर्स तथा मोजेश कहा गया। विरोधी विद्युतावेश वाले प्रोटीन कणों ने परस्पर जुड़कर बड़ी बड़ी बूंदों के समान कोलॉयडल तन्त्र बनाए। प्रारम्भिक पृथ्वी के सागर में इसी प्रकार के तन्त्र बने, जिन्हे ओपेरिन ने कोऐसरवेट्स की संज्ञा दी।

पाँचवा चरण– कोऐसरवेट्स के कुछ प्रोटीन ने एन्जाइम की भाँति कार्य करना प्रारंभ किया तथा अन्य पदार्थो के संश्लेषण तथा विखण्डन को उत्प्रेरित करने में मदद की, जिससे जल में कुछ ऐसे अन्य कार्बनिक यौगिक भी बने जिनके अणुओं में स्वगुणन की क्षमता थी। अतः इनको स्व–उत्प्रेरक तन्त्र कहा गया। इन स्व–उत्प्रेरक तत्वों को हम DNA के जीन्स मान सकते हैं।

छठाँ चरण– इस समय जीव पदार्थ कोशिकारूपी संरचनाओं में एकत्रित हो जाने के लिए प्राकृतिक दशाएँ बहुत ही उपयुक्त थी। इस प्रकार कोएसरवेट्स से ऐसी ही संरचनाओं वाली कोशिकाएँ बनी जिनमें न केंद्रक और न ही कोई

कोशिकांग होता था। केवल एक या अधिक जीव के चारों ओर प्रोटीन तथा कुछ अन्य कार्बनिक यौगिक का मिश्रण होता था।

सातवाँ चरण– आदिसागर मे बनी प्रारंभिक कोशिकाएँ सक्रिय पोषण, गुणनता वृद्धि द्वारा इनकी संख्या तीव्रता से बढी। जिससे इनके बीच पोषण को लेकर संघर्ष उत्पन्न होने लगा। जिसके कारण कुछ कोशिकाओं में ऐसे एन्जाइम बने जिसकी मदद से उन्होंने आदि सागर के जल में उपलब्ध अन्य अकार्बनिक पदार्थों से उर्जा के लिए कार्बोहाइड्रेट जैसे कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण प्रारंभ किया। यहीं से पूर्वजीवी कोशिकाओं में स्वपोषण का प्रारंभ हुआ।

जीवन की प्रारंभिक विकासीय अवस्था से अधिक उर्जा वाले कणों का विकिरण, प्रकाश किरणों एवं विद्युत स्फुरण से उर्जा विकसित हुई। इस उर्जा की प्राप्ति के साथ रासायनिक पदार्थ विकसित हुए। आदि जीव अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए इन रासायनिक पदार्थों का उपयोग करने लगे। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की पोषण विधियाँ इन आदि जीवों में पायी गई जैसे– स्वपोषण, मृतजीविता, परजीविता, प्रकाश-संश्लेषण तथा प्राणि सदृश।

आठवाँ चरण– O_2 की मुक्ति के साथ आदि वातावरण में वायवीय श्वसन की दशाएँ बनी अतः प्रारंभिक जीव कोशिकाओं ने वायवीय श्वसन प्रारंभ किया। वायवीय श्वसन मे अवायवीय श्वसन से लगभग 20 गुना अधिक उर्जा मुक्त होती है। साथ ही सेकेंन्द्रीय कोशिकाओं की उत्पत्ति प्रारंभिक कोशिकाओं मे जीन उत्परिवर्तन के द्वारा विभेदीकरण एवं उद्विकास के कारण या स्वतन्त्र रूप से पृथक–पृथक हुई, दो या दो से अधिक प्रकार की पूर्ण केंद्रीय कोशिकाओं के सहजीवी साहचर्य के फलस्वरूप बनी।

जैव–विकास वह जटिल प्रक्रिया है जिसमें सरल जीवों से जटिल जीवों का विकास हुआ है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने नवडार्विनवाद को ही आनुवंशिकता के नवीन सिद्धान्तों से युक्त आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त के रूप में उभारा है। जैव–विकास का आधुनिक संश्लेषणात्मक सिद्धान्त जीन उत्परिवर्तन, गुणसूत्रों की रचना एवं संख्या में परिवर्तन, जीन पुनः मिश्रण, प्राकृतिक चयन तथा जननिक पृथक्करण की मूल प्रक्रियाओं पर आधारित है।

किसी जीव में अचानक वंशानुगत होने वाले आनुवंशिक परिवर्तन को उत्परिवर्तन कहते हैं। उत्परिवर्तन कोशिका के प्रकार गुणसूत्रों के आकार एवं लक्षणों, समलक्षणों/फीनोटाइप के प्रभाव, उत्पत्ति के आधार, स्वभाव के प्रभाव, दिशा के आधार गुणसूत्रों के प्रकार घटित होने की अवस्था एवं प्रभावी कारकों के आधार पर निर्भर करता है।

विभिन्नता विकास का एक आधार मूल कारक है। सजातीय सदस्यों में पायी जाने वाली असमानताएँ ही विभिन्नताएँ कहलाती है। ये संरचनात्मक मनोवैज्ञानिक अथवा क्रियात्मक किसी भी रूप में हो सकती है। अविच्छिन्न एवं विच्छिन्न निश्चयात्मक एवं अनिश्चयात्मक, कायिक एवं जननिक विभन्निताओं के प्रकार है। विभिन्नताएँ वातावरणीय दशाओं में परिवर्तन एवं जीनी ढाँचे में परिवर्तन के कारण हो सकती है।

टिप्पणी

पृथक्करण जैव–विकास का महत्वपूर्ण कारक है। यह एक ऐसी विधि है जो जातियों को समूह या उपसमूह में विभाजित कर देती है। पृथक्करण वह प्राकृतिक घटना है जो परस्पर संबन्धित जातियों के मध्य जीन्स के प्रवाह को रोकती है। पृथक्करण के कई भेद हैं, जैसे– भौगोलिक पृथक्करण, पारिस्थितिक पृथक्करण, जलवायु पृथक्करण, यान्त्रिक पृथक्करण, जैविक पृथक्करण, जनन पृथक्करण आदि।

जाति के निर्माण या जाति घन की विधि के लिए पृथक्करण को एक महत्वपूर्ण कारक के रूप मे मान्य किया गया है। पृथक्करण का लाभ प्राकृतिक वरण को हो सकता है। पृथक्करण हानिकारक भी है, क्योंकि इसके कारण पृथक्करण पाश बन जाते है और एक पाश के जन्तु दूसरे पाश के जन्तुओं से मिलने में असमर्थ होने के कारण नष्ट हो जाते हैं।

जाति जैव–उद्विकास की वह प्रक्रिया है, जिसमें वास्तविक या विभव रूप से प्रजनन कर रहे प्राणियों का व्यूह दो या अधिक ऐसे समूहों में पृथक हो जाता है, जो संकरण के योग्य नहीं होते। जैव–उद्विकास की सभी मौलिक समस्याएँ जाति उद्भव की विधि में निहित हैं जिनके द्वारा जाति दो भागों में विभाजित हो जाती है।

जीवों की वर्तमान स्थिति/सृष्टि करोड़ों वर्षों के निरन्तर परिवर्तनों का परिणाम है। विभिन्न जीवों मे विकास एक जटिल विधि है। प्रारंभ में इस पृथ्वी पर अत्यन्त सरल संरचना वाले प्राणियों का निर्माण हुआ, निम्न श्रेणी के जीवों /प्राणियों में क्रमिक परिवर्तनों द्वारा जटिल प्राणियों की उत्पत्ति हुई। इन क्रमिक परिवर्तनों के अन्तर्गत दो प्रक्रम आते हैं।

1. एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरण के समय जनसंख्या के आनुवंशिक पूल में कुछ सूक्ष्म परिवर्तन पाए गये, इसके परिणामस्वरूप किसी नई जाति कि उत्पत्ति हुई लेकिन उत्पन्न होने वाली नई पीढ़ी के प्राणी अपने पूर्वजों से आनुवंशिक दृष्टि से समान नहीं थे।
2. नई जनसंख्या में विकास के समय जो परिवर्तन हुए उसके परिणामस्वरूप जाति, कुल, समूह, वर्ग आदि का विकास देखा गया।

व्यक्तिगत स्तर पर आनुवंशक में परिवर्तन न होकर किसी जनसंख्या के आनुवंशिकीय संगठन में होने वाले परिवर्तन को सूक्ष्म विकास कहा जाता है। सूक्ष्म विकास एक अनवरत क्रमिक रूप से अन्तराभिजनन जनसंख्या में धीरे–धीरे परिवर्तन का रूप है जो कि स्थायी जनसंख्या मे भौगोलिक पृथक्करण के रूप में देखा जा सकता है।

वह विकास जिसमें किसी एक पूर्व जाति से भिन्न जातियों के विकास में जातियों में एवं उप जातियों में विभाजित हो जाती है एवं इसमें उत्पन्न परिवर्तन अपनी पैतृक जाति के साथ अन्तराभिजनन नहीं होने के कारण आनुवंशिक विचलन के कारण नई अनुकुलित जातियों के रूप में पाया जाता है, दीर्घ विकास कहलाता है। जीवाश्म लेखा के अन्तर्गत सरीसृप एवं घोड़े का विकास दीर्घ विकास के अन्तर्गत प्रलेखीय उदाहरण है।

बृहत् विकास का तात्पर्य नये आर्डरों, क्लास तथा जाइलम की उत्पत्ति या विकास से है। बृहत् विकास के जीवाश्म प्रमाण बहुत कम है, क्योंकि किसी भी समूह विशेष की वास्तविक उत्पत्ति के जीवाश्म सामान्यतः मिले ही नहीं हैं। बृहत् विकास के उदाहरण रेप्टाइल्स का ऐम्फिबियस से विकास पक्षियों का रेप्टाइल्स से विकास, स्तनियों का रेप्टाइल्स से विकास है।

प्रत्येक जीवधारी में ऐसी विशेषताएँ विकसित हो जाती हैं, जो उसके जीवन को वातावरण के अनुरूप बनाती है। इन्हीं विशेषताओं को अनुकूलन कहते हैं। ये विशेषताएँ (परिवर्तन) जीवधारी की संरचना, स्वभाव, कार्यिकी आदि किसी भी रूप में हो सकती है। अनुकूल जीवधारी जो स्वतः नियमन आत्म–परीक्षण तथा जाति की रक्षा के लिए सहायक होते हैं। जैसे खनकी प्राणी (बिल बनाकर रहने वाली) आदि।

अनुकूलन को आकारिकी, शरीर क्रियात्मक, जन्तु सहचर्य तथा रक्षात्मक अनुकूलन में वर्गीकृत किया गया है।

आकारिकी अनुकूलन के अन्तर्गत धारी अनुकूलन, खनन अनुकूलन, आरोहण अनुकूलन, जलीय अनुकूलन, मरुस्थली अनुकूलन, वायवीय अनुकूलन, गुफीय अनुकूलन, राहन समुद्रीय अनुकूलन, परिस्थितिक अनुकूलन तथा परजीवी अनुकूलन आते हैं।

जन्तु साहचर्य अनुकूलन के अन्तर्गत सामाजिक अनुकूलन सहभोजी अनुकूलन, सहजीवी अनुकूलन तथा परजीवी अनुकूलन आते हैं।

जीवजन्तुओं द्वारा अन्य प्राणियों अथवा प्राकृतिक वस्तुओं के रंग, रूप, आकार, संरचना को इस प्रकार अपनाया जाता है कि वे शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सकें तथा आसानी से शिकार कर सके, अनुकृति (Mimicry) कहलाता है।

अनुकृति रक्षात्मक आक्रमणात्मक या मृत्यु का बहाना किसी भी प्रकार की हो सकती है। इसके अतिरिक्त अनुकृति ऐच्छिक एवं अनैच्छिक प्रकार की होती है।

रक्षात्मक अनुकृति में जन्तु रंग व आकार दोनों में ही अनुकृति करते हैं। प्राणी ऐसे रूप को धारण कर लेता है, जिसको कोई भी प्राणी अथवा आक्रमणी भ्रमित होता है। उदाहरण के लिए पत्री किट के पंख आदि।

आक्रमणात्मक अनुकृति मांसाहारी जन्तुओं में पायी जाती है। प्रत्येक प्राणी अपनी सुरक्षा एवं भोजन के लिए शिकार को पकडने के लिए जिस आवास माध्यम पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उसी के अनुसार अपनी अनुकृति कर लेता है। जिससे प्राणी को पहचानना अति कठिन होता है। उदा. के लिए कुछ फूलों पर मकड़ी अपना रंग फूलों के समान कर लेती है। फूलों पर आकर्षित होने वाले कीट मकड़ियों का शिकार बन जाते है।

प्राकृतिक करण ही अनुकृति की उत्पत्ति का कारण है। अनुकृति के अन्तर्गत छोटी–छोटी भिन्नताओं का महत्व नहीं है। उत्परिवर्तन भी अनुकृति के उत्पादन का एक कारण है। **उदाहरण**– पेपिलियोथेरोप तितलियों में बहुरूपता (मादा) में जबकि नर तितली पैतृक तितली के समान होती है।

4.10 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

टिप्पणी

- **यूकैरियोटिक कोशिका (Eukaryotic Cells)**: केंद्रक युक्त जीव कोशिका को प्रोटिस्टा या यूकैरियोटिक कोशिका कहते है।
- **मोनेरा कोशिकाएँ (Monera Cells)**: इस प्रकार की आदि कोशिकाओं में न्यूक्लियों–प्रोटीन्स के कण बिखरे हुए पाए गये और इन कोशिकाओं के द्वारा प्रौकैरियोटिक कोशिकाओं, आधुनिक जीवाणु एवं हरी शैवाल का उद्गम हुआ।
- **स्वउत्प्रेरण (Autocatalysis)**: वाइरस के जीन अपने ही वातावरण में विभाजन कर अपनी संख्या की वृद्धि कर सकते हैं। विभाजन का कार्य केवल अन्य जीवित कोशिकाओं में ही सम्भव होता है। इस प्रकार की क्रिया को स्वउत्प्रेरण कहते हैं।
- **जीवन की उत्पत्ति (Origin of Life):** यह ओपेरिन द्वारा लिखित पुस्तक है जो 1936 में प्रकाशित हुई। जिसमें पदार्थवाद की परिकल्पना को जो कि पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर जीवन की उत्पत्ति तक संबंधित है, लिखा गया है।
- **निर्धारक (Determinants):** जननद्रव्य (Germplasm) में सूक्ष्म जटिल संरचनाएँ पायी जाती हैं। इन संरचनाओं को निर्धारक कहते हैं। इसकी तुलना वर्तमान में गुणसूत्रों से की जाती है।
- **प्रकृतिवरण (Natural selection):** प्राकृतिक संघर्ष में वातावरण के अनुकूल जीवों के जीवित रहने तथा प्रतिकूल जीवों के नष्ट होने के इस प्रारूप को प्रकृतिवरण कहते है। इसे योग्यता की उत्तरजीविता भी कहते हैं।
- **कायिक परिवर्तन (Bodily changes)**: वातावरण के प्रभाव में जीवन रीतियों तथा स्वभाव में परिवर्तन हो जाते हैं। जिनसे शरीर के अन्य भागों में भी परिवर्तन होते हैं। जिन्हें कायिक या दैहिक परिवर्तन कहते हैं।
- **उपार्जित लक्षण (Acquired characters):** जो अंग अधिक उपयोग में आते हैं वे अधिक विकसित हो जाते हैं तथा जिन अंगों का उपयोग कम होता है इनका विकास रूक जाता है। या उनका ऱ्हास (Loss) हो जाता है। इस प्रकार प्राणियों में सरंचना, स्वभाव एवं संगठन में परिवर्तन हो जाता है। इन नये लक्षणों को उपार्जित लक्षण कहते हैं।
- **उत्परिवर्तन (Mutation)**: जीव के जीन में अकस्मात हुए आनुवंशिक परिवर्तन को उत्परिवर्तन कहते हैं।
- **जैव–विकास (Organic Evolution)**: सरल जीवों से जटिल जीवों के विकास की प्रक्रिया जैव–विकास है।
- **विषमगुणिता (Heteroploidy):** गुणसूत्रों में संख्यात्मक परिवर्तनों को विषमगुणिता (Heteroploidy) कहते है।

- **स्थानान्तरण (Translocation)**: जाति की एक आबादी से दूसरी में सदस्यों का जाना स्थानान्तरण कहलाता है
- **प्रसंकरण (Hybridization):** दो मिलती–जुलती जातियों में परस्पर जनन प्रसंकरण कहलाता।
- **विकासीय अपसरण (Divergent evolution):** किसी भी एक पूर्वज जाति से भिन्न प्रकार की जातियों के विकास को विकासीय अपसरण कहते हैं।
- **अपसारी विकास का अनुकूल विकिरण (Adaptive radiation or Divergent evolution):** जब कभी भी कोई भी प्राणी किसी भी नये पारिस्थितिक आवास/माध्यम/वातावरण मे प्रवेश करता है वह प्राणी स्वयं को इस आवास के अनुकूल बना लेता है। इसके कारण विभिन्न माध्यमों /वातावरण में पहुँचने पर नई जातियों के विकास की विधि को अपसारी विकास कहते हैं।
- **हीमोप्लास्टिक (Haemoplastic)**: एक समान दिशा में पृथक–पृथक वंशों में अनुकूलन की उपस्थित प्राणियों के वंशों में समानता लाती है एवं इस प्रकार के जीव हीमोप्लास्टिक कहलाते हैं।

4.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercise)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. नव–डार्विनवाद पर टिप्पणी लिखिए।
2. नव–लैमार्कवाद पर टिप्पणी लिखिए।
3. पैन्जीनवाद एवं जननद्रव्य सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
4. लैमार्कवाद के सिद्धान्त के प्रमाणों का वर्णन कीजिए।
5. डार्विनवाद एवं लैमार्कवाद की आलोचना का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (अ) जननद्रव्य का अमरत्व
   (ब) पैन्जीनवाद
   (स) आनुवंशिक अपवाहन
   (द) जैव–विकास सम्बन्धी कुछ नियम
7. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
   (अ) जीन परिवर्तन
   (ब) प्रेरित उत्परिवर्तन
   (स) जैव–रासायनिक उत्परिवर्तन

8. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
   (अ) प्रेरित उत्परिवर्तन
   (ब) अलिंग गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन
   (स) लिंग सहलग्न उत्परिवर्तन
9. प्रभावी कारकों के आधार पर उत्परिवर्तन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
10. युग्मकी, युग्मजी, अर्मिनल, कायिक उत्परिवर्तन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
11. निम्नलिखित में से किन्ही दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
    (अ) स्वतः उत्परिवर्तन
    (ब) गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन
    (स) अग्रस्थ उत्परिवर्तन
12. जीन उत्परिवर्तनों का वर्णन कीजिए।
13. गुणसूत्रों के प्रकार के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार का वर्णन कीजिए।
14. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
    (अ) उत्परिर्वनों के प्रकारों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
    (ब) गुणसूत्रीय उत्परिर्वनों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
    (स) दिशा के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार का वर्णन कीजिए।
    (द) गुणसूत्रों के प्रकार के आधार पर उत्परिवर्तनों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
    (इ) विभिन्नताओं को विकास का कच्चा माल कहते हैं, क्यों?
    (फ) विभिन्नता के चार प्रमुख कारकों का वर्णन कीजिए।
15. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (अ) पृथक्करण
    (ब) विभिन्नताएँ
16. विभिन्नता के कारणों पर निबन्ध लिखिए।
17. अधिगुणिता का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
18. जीवाश्म पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
19. जीवाश्म निर्माण की विधियों पर टिप्पणी लिखिए।
20. जलीय अनुकूलन पर टिप्पणी कीजिये।
21. शरीर–क्रियात्मक तथा रक्षात्मक अनुकूलनों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये।
22. उड्डयन अनुकूलनों का विवरण दीजिये।
23. संरचनात्मक अनुकूलन पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
24. अनुकृति एवं संयोजी कडी पर टिप्पणी लिखिए।
25. प्राणियों में रंजन पर टिप्पणी लिखिये। अनुकूलन से क्या समझते है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जैव–विकास के विषय में चार्ल्स डार्विन के कार्बनिक विकास के मतों का वर्णन कीजिए।
2. लैमार्कवाद पर एक निबन्ध लिखिए।
3. डार्विन के प्राकृतिक वरणवाद सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
4. किन प्रमाणों पर डार्विन का सिद्धान्त आधारित है? वर्णन कीजिए।
5. डार्विनवाद एवं लैमार्कवाद की आलोचना का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
6. उत्परिवर्तनों से आप क्या समझते है? उत्परिवर्तनों के प्रकार का वर्णन कीजिए।
7. उत्परिवर्तन किसे कहते है? जीन उत्परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
8. गुणसूत्रों को संरचना में परिवर्तनों के आधार पर विभिन्न प्रकार के उत्परिवर्तनों को वर्णन कीजिए।
9. उत्परिवर्तनों की व्याख्या करते हुए स्वभाव के आधार पर एवं गुणसूत्रों के लक्षणों के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकारों को वर्णन कीजिए।
10. उत्परिवर्तन की परिभाषा देते हुए गुणसूत्रों के प्रकार, फीनोटाइप के प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
11. कोशिकाओं के, उत्पत्ति के एवं दिशाओं के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
12. उत्परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों पर एक निबन्ध लिखिए।
13. जीन उत्परिवर्तन का विस्तार से वर्णन कीजिए।
14. उत्परिवर्तन की परिभाषा दीजिए। फीनोटाइप के प्रभाव एवं दिशा के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार का वर्णन कीजिए।
15. आनुवंशिक अधिलंघन उत्परिवर्तन का वर्णन कीजिए।
16. नॉनसेन्स एवं सुप्त उत्परिवर्तन का वर्णन कीजिए।
17. विभिन्नता किसे कहते हैं? ये कितने प्रकार की होती हैं?
18. विभिन्नता के प्रकार एवं कारणों पर एक निबन्ध लिखिए। विभिन्नताएँ विषय को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?
19. पृथक्करण क्या है? पृथक्करण के विभिन्न कारणों का वर्णन कीजिए तथा पृथक्करण के महत्व पर प्रकाश डालिए।
20. पृथक्करण सें क्या अभिप्राय है? पृथक्करण के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
21. पृथक्करण जातियों के विकास में किस प्रकार सहायक होते हैं?
22. गुणसूत्र विपथन की परिभाषा दीजिए। विलोपन एवं द्विगुणन का वर्णन करते हुए इनकें महत्व को समझाएँ।

23. गुणसूत्र विपथन में विलोपन एवं प्रतिलोपन क्रिया का वर्णन एवं महत्व को समझाइए।
24. गुणसूत्र विपथन किसे कहते हैं? गुणसूत्र की संरचना में कितने प्रकार के संरचनात्मक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं? समझाइये।
25. विकास से आप क्या समझते हो,? प्राकृतिक चयन का उद्विकास में योगदान पर एक निबन्ध लिखिए।
26. प्राकृतिक चयन का विस्तार से वर्णन कीजिए।
27. चयन उत्परिवर्तन, प्राकृतिक चयन की दिशा का विस्तार से वर्णन कीजिए।
28. प्राकृतिक चयन की परिभाषा दीजिए।
29. प्राकृतिक चयन पर एक लेख दीजिए।
30. प्राकृतिक चयन क्या है? प्राकृतिक चयन एवं प्रजनन का वर्णन कीजिए।
31. प्रजनन पृथक्करण एवं इसके प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
32. पृथक्करण क्या है? भौगोलिक, मौसमी पृथक्करण के साथ पृथक्करण का जैव–उद्विकास में महत्व का वर्णन कीजिए।
33. अनुकृति से आप क्या समझते हैं? ये कितने प्रकार की होती है? प्राणियों के जीवन में इनके महत्व पर प्रकाश डालिए।
34. अनुहरण पर निबन्ध लिखिये।
35. अनुकृति के महत्व का वर्णन कीजिए।
36. अनुकूलन पर एक निबन्ध लिखिए
37. मरुस्थली अनुकूलन पर संक्षिप्त में निबन्ध लिखिए।
38. अनुकूलन क्या है? वायवीय अनुकूलन पर निबन्ध लिखिए।
39. विभिन्न जन्तु समुदायों में उड्डयन, मरु एवं जलीय अनुकूलन का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
40. अनुकूलन के प्रकार एवं महत्व पर टिप्पणी कीजिए।
41. अनुकूलन क्या है? जलीय, थलीय तथा वायवीय अनुकूलन की व्याख्या कीजिये।

4.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Cytology & C. B. Powar
2. Principle of Physiology & Anatomy & Tor-Tora
3. Animal Physiology & Goyal & Sastry
4. Animal Physiology and Biochemistry & Eckert and Ramelils
5. Animal Physiology and Biochemistry & Dr. K. V. Sastry

टिप्पणी

इकाई 5 जीवाश्मीकरण, विलुप्त प्राणियों का अध्ययन (Fossilisation, Study of Extinct Animals)

संरचना (Structure)

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 जिवाश्म, जीवाश्मीकरण की प्रक्रिया, जीवाश्मों का आयु निर्धारण
- 5.2.1 जिवाश्म विज्ञान/जीवाश्मिकी के प्रभाग
- 5.2.2 चट्टानों के प्रकार
- 5.2.3 जीवाश्म
- 5.2.4 जीवाश्म–निर्माण
- 5.2.5 जीवाश्म अभिलेख
- 5.2.6 जीवाश्मों के प्रकार
- 5.2.7 जीवाश्मीभवन की दशा
- 5.2.8 जीवाश्म के अध्ययन का महत्व
- 5.2.9 जिवाश्मों की आयु निर्धारण

5.3 विलुप्त प्राणियों का अध्ययन डाइनोसॉर्स एवं आर्किऑप्टेरिक्स
- 5.3.1 डायनोसार्स
- 5.3.2 डायनोसार्स की उत्पत्ति
- 5.3.3 आर्किऑप्टेरिक्स
- 5.3.4 आर्किऑप्टेरिक्स के प्रमुख लक्षण
- 5.3.5 आर्किऑप्टेरिक्स का महत्व

5.4 प्राणी भौगोलिक वितरण
- 5.4.1 पेलिआर्कटिक परिमण्डल
- 5.4.2 निआर्कटिक परिमण्डल
- 5.4.3 नियोट्रॉपिकल परिमण्डल
- 5.4.4 इथियोपियन परिमण्डल
- 5.4.5 ओरिएण्टल परिमण्डल
- 5.4.6 ऑस्ट्रेलियन परिमण्डल

5.5 मानव का विकास
- 5.5.1 जन्तु जगत में मानव का स्थान
- 5.5.2 मानव के विकास का संक्षिप्त इतिहास
- 5.5.3 भविष्य का मानव/होमो फ्युच्युरिस

5.6 भौमिक समय–सारणी एवं द्वीपीय प्राणी समूह
- 5.6.1 विभिन्न युगों के अन्तर्गत जैव–विकास
- 5.6.2 द्विपीय प्राणी समूह

5.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.8 सारांश
5.9 मुख्य शब्दावली
5.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.11 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

5.0 परिचय (Introduction)

जीवाश्मिकी/जीवाश्म विज्ञान वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत पृथ्वी के प्राचीन एवं विलुप्त सजीवों के भूगर्भीय इतिहास का अध्ययन किया जाता है। जीवाश्म विज्ञान को जीवाश्म के अध्ययन का विज्ञान कहते है, जो कि प्राचीन सजीव (Living beings) भूपर्पटी (Earth's crust) की विभिन्न स्तरों मे अवशेषों (Vestigeals) ढाँचों (Moulds) या चिन्हों (Impressions) के रूप मे परिरक्षित (Preserved) मिलते है। शब्द पेलियोन्टोलॉजी (Palaeontology) ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है– Palaeos = प्राचीन (Ancient), ओन्टा (Onta) = पाये जानेवाले पदार्थ/वस्तु (Existing things): एवं लोगोस (Logos) अध्ययन।

इस प्रकार परिभाषा के रूप मे पेलिओन्टोलॉजी वह विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत प्राचीन जीवों के चट्टानों में पाये जाने वाले जीवाश्मों का अध्ययन करते हैं। एक जीवाश्म विज्ञानी का कार्य पुराने जीवाश्मों का अध्ययन करके जीवन का पता लगाना है।

वस्तुतः जीवाश्म शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द फोसिलिस से हुई है। जिसका शब्दिक अर्थ है खोदना अर्थात पुराने मरे हुए जीवों की जो छाप चट्टानों पर पायी जाती है वह जीवाश्म कहलाती है। जीवाश्म के अन्तर्गत उन प्राचीन जीवों के वास्तविक अवशेष या शरीर की छाप आते है। साधारणतया हड्डियाँ, काष्ठ, कवच, दाँत, त्वचा, पदचिन्ह, बिल, गोबर आदि जीवाश्मों के रूप में पाए जाते हैं। जीवाश्म विज्ञानी पुराने जीवाश्म एकत्र कर उनकी कड़ियाँ जोड़ते हैं और किसी जीव के विकास का खाका खींचते हैं।

जीवाश्मिकी/जीवाश्म विज्ञान के अध्ययन से हमको विकासवाद के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण मिलते हैं। मृत प्राणियों एवं पेड़–पौधों के कठोर अंगों के अवशेष या चट्टानों में अंकित उनकी रूपरेखा (Outline) को जीवाश्म (Fossil) कहते हैं। समय–समय पर निर्मित होने वाली चट्टानों की पर्तों/स्तरों में उस समय के प्राणियों की अस्थियों एवं कठोर भागों के जीवाश्म (Fossils) बनते गये, जिनसे पृथ्वी के इतिहास एवं सजीवों के विकास की एक प्रस्तर–अंकित दिनचर्या तैयार हो गई। प्राणियों के विकास की यह भूगर्भीय पुस्तिका (Geological Diary) अपूर्ण है। यह भूगर्भीय पुस्तिका वास्तव में इस प्रकार का भग्नावेश है, जिसमें प्रारम्भ के अनेक अध्याय प्राप्त नहीं है, बीच के थोड़े से ही पृष्ठ पाये गये हैं लेकिन अन्त के सभी अधिकांश पृष्ठ (Pages) सुरक्षित हैं।

पृथ्वी का उद्गम लगभग 4.5 अरब वर्ष पूर्व एक ज्वलित तथा ध्रुणीय गैसीय पिण्ड से हुआ। पृथ्वी पर 3.5 अरब वर्ष पूर्व एककोशिकीय जीव प्रकट हुए। अकशेरूकी जन्तुओं से कशेरूकी जन्तुओं का विकास हुआ।

मध्यजीवी महाकल्प लगभग 23 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ और इसकी अवधि लगभग 16.7 करोड़ वर्ष थी। इस अवधि मे सरीसृपों का उद्विकास अपनी चरम सीमा पर था। इसलिए इसे सरीसृपों का युग कहते हैं।

सरीसृपों की उत्पत्ति लगभग 25 करोड़ वर्ष पूर्व कार्बोनीकल्प में स्टीगोसिफैलिया उभयचरों से हुई थी। ये उभयचर जल में कम व अधिकांशतः स्थल पर रहने लगे थे। कार्बोनी कल्प के अंत मे प्रथम सरीसृप सिमोरिय की उत्पत्ति हुई जिसे मूल सरीसृप कहते है, जो उभयचरों और सरीसृपों की संयोजक कड़ी है। वह विशाल छिपकली की आकृती का था, जो बाद में विलुप्त हो गया।

संसार में प्राणियों के वितरण की व्यवस्था को ही हम प्राणियों का भौगोलिक वितरण कहते हैं। भू–मण्डल पर असंख्य प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि समस्त भू–मण्डल पर इनका वितरण नहीं हो सकता है। प्राणियों की प्रत्येक जाति का वितरण का एक निश्चित क्षेत्र होता है जिसमें कि ये अधिक सुविधा एवं सरलता से रह सकते हैं। पिछली शताब्दी में बहुत से वैज्ञानिकों ने जन्तुओं के भौगोलिक वितरण के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए। इस विषय पर सर्वप्रथम पी.एल. स्क्लैटर ने अपना मानचित्र प्रस्तुत किया।

मानव जीवन के विकास की कहानी संघर्ष एवं सामंजस्य की कहानी है। इस पृथ्वी पर जीवों के वंश वृक्ष में मानव की स्थिति सर्वोच्च है। प्रत्येक जीवन जाति सरल पूर्वजों से विकसित हुई है। मानव का विकास भी सरल पूर्वजों में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ है। मानव की स्थिति एवं विकास के सम्बन्ध में अनेक परिकल्पनाएँ एवं सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं। परन्तु वह सब वैज्ञानिक कारकों पर आधारित नहीं है। हक्सले ने अपनी पुस्तक "मानव का प्रकृति में स्थान" में मानव की उत्पत्ति को वैज्ञानिक आधार पर वर्णन किया। चार्ल्स डार्विन ने तर्क के द्वारा दर्शाया कि मानव जीव–जन्तुओं के समान एक जाति है, जिसकी उत्पत्ति एवं विकास अन्य जीव–जन्तुओं के समान हुआ।

रेडियोएक्टिव तत्वों की सहायता से पृथ्वी कें अंदर पाए जाने वाले जीवाश्मों अथवा उनकी चट्टानों की आयु निर्धारित की जा सकती है। पृथ्वी के आरंभ से अब तक के समय को जीवाश्मों एवं चट्टानों की आयु के अध्ययन के आधार पर एक भू–वैज्ञानिक समय–क्रम में बाँटा गया है। इसके अनुसार पृथ्वी के आरंभ से आज तक के इतिहास को पाँच महाकल्पों में विभाजित किया गया है।

5.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न कार्य कर सकेंगे–

- जीवाश्म विज्ञान के संदर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- जीवाश्म निर्माण की प्रक्रिया, जीवाश्मों के प्रकार एवं जीवाश्मीभवन को समझ सकेंगे।
- चट्टानों के प्रकार एवं जीवाश्म विज्ञान एवं जीवाश्म के अध्ययन के महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- जीवाश्मों का आयु निर्धारण किस प्रकार किया जाता है समझ सकेंगे।
- आदिकाल में पाए जाने वाले कुछ प्राणियों के वर्तमान समय में पाए जाने वाले जीवाश्मों का अध्ययन समझ सकेंगे।

- विलुप्त प्राणियों जैसे डायनोसॉर्स एवं आर्कियोप्टेरिक्स के बारे में वर्णन कर सकेंगे।
- विलुप्त प्राणियों के वर्गीकरण एवं उत्पत्ति को समझ सकेंगे।
- ऑर्कियोप्टेरिक्स जैसी संयोजी कडी के महत्व एवं विलुप्त प्राणियों के क्रमागत विकास पर प्रकाश डाल सकते हैं।
- जीव जन्तु जाति के निश्चित विचरण क्षेत्र के बारे मे बता सकेंगे।
- भूमण्डल के तल के विभिन्न प्रदेशों की जानकारी दे सकेंगे।
- विभिन्न प्रदेशों के परिमण्डलों के विषय में बता सकेंगे।
- प्रत्येक प्रादेशिक परिमण्डल की भौगोलिक सीमाएँ, भौतिक विशेषताएँ, प्राणिजात तथा उनके अपक्षेत्र के बारे में समझा सकेंगे।
- मानव जीवन के विकास की कहानी को समझ सकेंगे।
- जन्तु–जगत में मानव के स्थान से परिचित हो सकेंगे।
- मानव के उद्भवन के समय, परिस्थितियों एवं विकास क्रम से अवगत हो सकेंगे।
- मानव के ऐतिहासिक विकास क्रम के विस्तार का वर्णन कर सकेंगे।
- भौमिक समय सारणी क्या होती है? आप बता सकते हैं।
- विभिन्न महाकल्पों के विषय में जानकारी दे सकेंगे।
- विभिन्न युगों के अन्तर्गत जैविक विकास की विस्तृत विवेचना कर सकेंगे।
- द्वीपीय प्राणी समूह की विषय वस्तु से अवगत हो सकेंगे।

5.2 जिवाश्म, जीवाश्मीकरण की प्रक्रिया, जीवाश्मों का आयु निर्धारण (Fossils, Methods of Fossilisation, Determination of Age of Fossils)

जीवाश्मिकी/जीवाश्म विज्ञान (Palaeontology) वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत पृथ्वी के प्राचीन एवं विलुप्त (Extinct) सजीवों के भूगर्भीय इतिहास का अध्ययन किया जाता है। **जीवाश्म विज्ञान** को जीवाश्म (Fossils) के अध्ययन का विज्ञान कहते हैं जोकि प्राचीन सजीव (Living beings) भूपर्पटी (Earth's crush) की विभिन्न स्तरों मे **अवशेषों** (Vestigeals) **ढाँचों** (Moulds) या **चिन्हों** (Impressions) के रुप में परिरक्षित (Preserved) मिलते है। शब्द **पैलियोन्टोलॉजी** (Palaeontogy) ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है– Palaeos = प्राचीन (Ancient), ओन्टा (Onta)= पाये जाने वाले पदार्थ/वस्तु (Existing things): एवं **लोगोस** (Logos) अध्ययन।

जीवाश्मिकी/जीवाश्म विज्ञान (Palaeontology) के अध्ययन से हमको विकासवाद के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण मिलते हैं। मृत प्राणियों एवं पेड़ पौधों के कठोर अंगों के अवशेष या चट्टानों में अंकित उनकी रुपरेखा (Outline) को

जीवाश्म (Fosssil) कहते हैं। समय–समय पर निर्मित होने वाली चट्टानों की पर्तो स्तरों में उस समय के प्राणियों की अस्थियों एवं कठोर भागों के जीवाश्म (Fossils) बनते गये, जिनसे पृथ्वी के इतिहास एवं सजीवों के विकास की एक प्रस्तर–अंकित दिनचर्या तैयार हो गई। प्राणियों के विकास की यह भूगर्भीय पुस्तिका (Geological Diary) अपूर्ण है। यह भूगर्भीय वास्तव में इस प्रकार का भग्नावेश है, जिसमें प्रारम्भ के अनेक अध्याय प्राप्त नहीं है, बीच के थोड़े से ही पृष्ठ पाये गये हैं लेकिन अन्त के सभी अधिकांश पृष्ठ (pages) सुरक्षित हैं।

जीवाश्म विज्ञान के अभिलेखों के द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी पर जीवन अनेक वर्षों के पश्चात् परिवर्तित हुआ है। इनके द्वारा पृथ्वी के प्राचीन इतिहास, प्राणियों एवं पौधों के जीवन पर अधिक प्रकाश डाला गया है। जीवाश्म अभिलेखों (Fossils records) का अध्ययन इतना लाभकारी एवं अचम्भित होता है कि अभी तक पूर्ण विकसित विज्ञान की शाखा के रुप में स्थापित नहीं हुआ हैं। कुछ प्रारम्भिक **ग्रीक** (Greek) एवं **रोमन** (Roman) विद्वानों ने जीवाश्म (Fosssils) की उत्पत्ति एवं अर्थ की व्याख्या करने का एक असफल प्रयास किया, लेकिन अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी में इस क्षेत्र में या जीवाश्म के अध्ययन के बारे में अधिक महत्वपूर्ण विकास हुआ था। **पेलियोन्टोलॉजी** (Palaeontology) शब्द का सर्वप्रथम उपयोग सर्व 1834 में फ्रान्स एवं रुस में एक साथ किया गया।

ऐनॉक्सीमेन्डर (Anaximander, 611–547 B.C.) प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने जीवाश्म शब्द के वास्तविक अर्थ को समझा।

5.2.1 जिवाश्म विज्ञान/जीवाश्मिकी के प्रभाग (Divisions of Palaeontology)

जीवाश्मकी/जीवाश्म विज्ञान के मुख्य प्रभाग अग्रलिखित हैं–

(अ) **सूक्ष्म जीवाश्मिकी (Micro palaeontology)**– यह जीवाश्मिकी की एक नई शाखा है, इसके अन्तर्गत अत्यन्त सूक्ष्म जीवों के जीवाश्मों (Fossils) का अध्ययन किया जाता है, विशेष रुप से प्राकृतिक भूगर्भीय ईंधन (Geological Fuel) की खोज में अधिक उपयोगी है।

(ब) **वनस्पती जीवाश्मिकी (Paleobotany)**– इसके अन्तर्गत प्राचीन पौधें के जीवाश्मों (Fosssils) का अध्ययन किया जाता है। विशेष रुप से आर्थिक महत्व के पौधें का अध्ययन भी किया जाता है। इसके द्वारा वनस्पितयों के विकास के इतिहास पर समुचित प्रकाश पड़ता है। भूगर्भीय ईंधन, प्रमुख रुप से तेल, कोयले की खोज में अधिक उपयोगी है इसके अलावा फसलों (Crops) के जीवाश्मों (Fossils) से प्राचीन काल में रहने वाले मनुष्य की संस्कृति (Culture), उनकी खेती का स्तर आदि के बारे मे ज्ञात होता है। **उदाहरण**– मध्यप्रदेश के महेश्वर तहसील के नवदाटोली (Navadatoli) स्थान जो नर्मदा नदी के किनारे स्थित है, से गेहूँ (Wheat), चावल (Rice), मटर (Pea), मसूर आदि के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। ये जीवाश्म 2000 BC के हैं अर्थात उस समय खेती अधिक विकसित अवस्था में थी और चावल

टिप्पणी

(Rice) के अतिरिक्त अन्य सभी फसलें बाहर से लाकर पैदा की गई। यह अध्ययन **विष्णु मित्रे** (Vishnu Mitre) द्वारा 1961 में किया गया।

(स) प्राणि–जीवाश्मिकी (Palaeozoology)– इसमें अन्तर्गत प्राणियों के जीवाश्मों का अध्ययन किया जाता हैं इस शाखा को दो उप–शाखाओं में विभाजित किया गया हैं–

(i) अकशेरुकी जीवाश्मिकी (Invertebrate palaeontology)– इस उप–शाखा/उप–विभाग (Sub-division) के अन्तर्गत ऐसे प्राणियों के जीवाश्मों (Fossils) का अध्ययन किया जाता है, जिसमें कशेरुक दण्ड (vertebrate column) अनुपस्थित होता है। **उदाहरण**– प्रोटोजोआ (Protozoa), सीलेन्ट्रेटा (Coelenterata), मौलस्का (Mollusca), इकाइनोडर्मेटा (Echinodermata) आदि संघों (Phylum) के प्राणी आते हैं।

(ii) कशेरुकी जीवाश्मिकी (Vertebrate palaeontology)– इसके अन्तर्गत उन प्राणियों के जीवाश्मों का अध्ययन किया जाता है, जिनमें कशेरुक दण्ड (Vertebral column) के साथ अन्तः कंकाल विकसित रुप में पाया जाता है। **उदाहरण**– मत्स्य (Fishes), उभयचरी (Amphibians), सरीसृप (Reptilies), पक्षी (Aves) एवं स्तनी प्राणी।

5.2.2 चट्टानों के प्रकार (Types of Rocks)

पृथ्वी की अनुमानित आयु लगभग 48,000 लाख वर्ष (Million years) मानी जाती है। पृथ्वी की उपरी सतह स्तर (Surface layer) को या भूपर्पटी (Crust) की सामग्री को चट्टान या शेल (Rocks) कहते हैं। भूपर्पटी (Crust) की चट्टान अनुक्रमिक स्तरों के रुप में एक के उपर एक स्थिति में व्यवस्थित रहती हैं। अनेक बार इस प्रकार की क्रमबध्द अनुक्रमिक अवस्था पर्वतों के निर्माण, विशाल थल–पिण्डों का जलमग्न आदि भूगर्भीय उत्पादों के कारण व्यापक रूप से अव्यवस्थित हो जाती है। पृथ्वी की सबसे प्राचीन चट्टान 15,000 लाख वर्ष (Million years) पूर्व की है और इसको आर्क्रीजोईक युग (Archaeozoic period) द्वारा सम्बोधित किया जाता है।

पृथ्वी की चट्टानें तीन प्रकार की होती हैं–

1. **आग्नेय चट्टानें (Igneous rocks)**– यह चट्टानें पिघले हुए उस पदार्थ के ठण्डे होने से बनी है, जिससें कि एक समय पृथ्वी की रचना हुई थी। इन चट्टानों में भूतकालीन जीवन के किसी प्रकार के चिन्ह (Impressions) या जीवाश्म (Fossils) नहीं मिलते हैं। इनको **ज्वालामुखी चट्टानें** (Volcanic rocks) भी कहते हैं, क्योंकि इनका उद्‌गम पिछले लावा (Lava) के ठण्डे एवं घनीकरण के कारण होता है।
2. **स्तरित/अवसादी चट्टानें (Sedimentary rocks)**– इस प्रकार की चट्टानों का निर्माण नदियों द्वारा अन्य चट्टानों या मरे हुए जीवों से लाये गये कार्बनिक पदार्थों (Organic matter) के अनेक स्तरों मे झील (lakes) या समुद्रों (Oceans) में धीरे–धीरे संचय होने से होता है। अवसादी/स्तरित चट्टानें (Sedimentary rocks) क्योंकि क्रमबध्द (Serially) स्तरों मे विस्थापित

होती है, अतः इनको स्तरित चट्टानें कहा जाता है। पृथ्वी की भूपर्पटी (Crust) मे निरन्तर भूक्षरण एव विखण्डन होता रहता है। ये पृथ्वी के अंश या तो वायु के साथ या नदी–नालों के साथ बहकर झीलों या समुद्र की सतह या तलहटी में क्रमबध्द नियोजित स्तरों के रूप में जम जाते हैं ।

3. **कायान्तरित चट्टानें (Metamorphic rocks)**– आग्नेय (Igneous) एवं अवसादी (Sedimentrary) चट्टानें अत्यधिक तापक्रम एवं दबाव के कारण एक तीसरी प्रकार की चट्टान मे परिवर्तित हो जाती है जिनको **कायान्तरित चट्टानें** कहते हैं। **उदाहरण– ग्रेनाइट** (Granite) एवं **संगमरमर** (Marble) की चट्टानें। इस प्रकार की चट्टानों मे उपस्थित सजीवों के अवशेष/जीवाश्म (Fossils) लगभग पूर्णरूप से स्वतः नष्ट हो गये, अतः इन चट्टानों में जीवाश्म का अभाव होता है।

5.2.3 जीवाश्म (Fossils)

फॉसिल (Fossils) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के फोसिलियम (Fossilium) शब्द से हुई जिसका अर्थ है ''खोदकर निकाली हुई वस्तु।'' प्राचीन जीवों के अवशेषों की मिट्टी, चट्टानों तथा पत्थरों पर पथराये हुए चिन्ह जो वर्तमान काल में समय पर कहीं न कही खुदाई में प्राप्त होते रहते हैं, **जीवाश्म** (Fossils) कहलाते हैं।

इसके अध्ययन से प्राचीन जीवों के लक्षणों, जैव–विकास तथा जीवों के भू–वैज्ञानिक वितरण (Geological distribution) अथवा कालिक वितरण (Distribution in time) का ज्ञान होता है। अतः जीवाश्मों के द्वारा प्राचीन जीवों के अध्ययन को ही **जीवाश्मिकी** (Palaeontology) कहते हैं।

लैमार्क के अनुसार जीवाश्म प्राचीन जीवों के उन अवशेषों को कहते हैं जो किसी भी प्राकृतिक वस्तु अथवा चट्टान आदि मे परिरक्षित हो गये हों।

सर चार्ल्स लॉयल (Sir Charles Lyell) के अनुसार जीवाश्म प्राचीन जीवों के उन अवशेषों के प्राकृतिक कारणों से संचित रूप में प्राकृतिक चट्टानों में पाये जाते हैं।

जीवों की अश्मीकृत संरचना (Petrified structure) प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित अथवा जीवों द्वारा उत्पन्न चिन्हों अथवा वस्तुओं का जीवाश्म हो सकता है।

इटली के निवासी **लियोनार्डो डे विन्साई** (Leonardo da Vinci) ने सर्वप्रथम इस तथ्य की पुष्टि की, कि जीवाश्म प्रागैतिहासिक काल के जीवों के अवशेष हैं। इन्ही कारकों से इन्हें ''जीवाश्म विज्ञान का जनक'' कहा जाता है। परन्तु जीवाश्मों के सर्वप्रथम अध्ययन का श्रेय **जॉर्जेज क्यूवियर** (Georges Cuvier-1800) को जाता है। जीवाश्मों के कारण हमें प्रत्येक जीव जाति के विकास–क्रम (Phylogeny) का ज्ञान होता है।

5.2.4 जीवाश्म–निर्माण (Fossil Formation)

प्रायः जीवाश्म जलीय भाग के बनते हैं जीवों के मृत हो जाने पर वे तलहटी की नम कीचड में धँस जाते हैं जिसके उपर समयानुसार रेत, मिट्टी की तह पर तह

जमती चली जाती है इस मिट्टी अथवा खनिज में जीव–शरीर के प्रायः कठोर भाग में धँस कर उसी प्रकार की आकृति बना लेते हैं यह मिट्टी अथवा खनिज समय के साथ–साथ धीरे धीरे सख्त होकर पत्थरों अथवा चट्टानों का रूप ले लेते हैं।

जीवाश्म निर्माण कि क्रिया को **जीवाश्मीभवन** (Fossilization) कहते हैं। इसकी अनेक विधियाँ जीवाश्म की प्रकृति ही जीवाश्मी भवन (Fossilization) की क्रिया का नियन्त्रित करती है।

जीवाश्मों का निर्माण निम्नलिखित विधियों द्वारा होता है–

1. **वास्तविक परिरक्षण (Actual intact preservation)**– कभी कभी सम्पूर्ण जीवों के कठोर भाग अथवा कंकाल बर्फ अथवा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं, चट्टानों आदि मे जम जाते हैं। उदाहरण के लिए इस प्रकार के जीवाश्म साइबेरिया तथा अलास्का के बर्फीले मैदान से मैमोथ (Mammoth) तथा ऊन वाले गेंडों (Wooly rhinoceros) से प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार के जीवाश्म तेल तथा मोम की खानों के समीप की मिट्टी में प्राचीन जीवों के परिरक्षित चिन्हों के रूप में पाये जाते हैं।

   कोमल कीट, मकडियाँ (Spiders), जैली फिश (Jelly fish), क्रस्टेशिया (Crustacea) वर्ग के प्राणियों का तैलीय शैल (Oily shales), अम्बर (Amber) या एस्फाल्ट (Asphalt) में पूर्ण जीवाश्मीभवन (Fossilization) हो जाता है। लेकिन पूर्ण प्राणीकाय या जीवाश्मीभवन अपेक्षाकृत कम ही पाया है। अधिकांश रूप से उनका आंशिक परिरक्षण ही होता है। आंशिक परिरक्षण (Partial preservation) में प्राणियों के कवच (Shells) दाँत (Teeth), अस्थियों (bones) के समान कठोर भाग अधिकतर पाये जाते हैं। इन आंशिक परिरक्षणों के द्वारा जीवाश्म–विज्ञान प्राणी का पुनर्निमाण करते हैं और उसकी आकृति आदि का अनुमान लगाते है।

   चीड के वृक्ष से निकलने वाले रेजिन एम्बर (Resin Amber) में अनेक क्रस्टेशियन्स, कीटों तथा मकडियों आदि के लगभग 200 जातियों के जीवाश्म प्राप्त हुए है।

2. **अश्मीभवन (Petrification)– अश्मीभवन** (Petrification) जीवाश्मीभवन (Fossilization) की एक सामान्य विधि होती है, जिसके अन्तर्गत मृत जीवों को अवसादों (Sediments) में दफनाया जाता है, जोकि निरन्तर समुद्र (Oceans) एवं गहरे जलीय भागों की तलहटी में संचित होते जाते हैं। यहाँ कुछ पत्थरों मे परिवर्तित होकर चट्टानों (Rocks) में समायोजित (Embeded) हो जाते हैं। अवसादों का तलछट का यह संचय अवसादी चट्टानों को बनाता है जोकि पानी के अन्दर बनती है। नदियों से पानी समुद्रों में जाता हैं। नदी का जल रेत एवं दलदल/कीचड, स्थलीय भाग से लाकर समुद्रों में डालता है जहाँ यह समुद्रों की सतह/तल पर डूब जाती है। मृत जलीय जीवों के या थलीय जीवों का सम्पूर्ण शरीर या शरीर का कुछ भाग थल से नदी के जल के साथ बहकर समुद्र में अवसादी संचय में मिल जाता है। उनके दफनाने (Burial) के पश्चात् अधिकांश जीवों का सम्पूर्ण या कुछ भाग सड़ जाता है और कोई भी चिन्ह नहीं छोंड़ता है।

लेकिन कभी – कभी उपयुक्त जीवाश्मीभवन (Fossilization) की दशाएँ प्राप्त होती हैं। ये इतने गहरे संचय (Deposits) मे दफनाये जाते हैं कि यह परभक्षियों (Predators) एवं अपमार्जको (Scavangers) से सुरक्षित रहते हैं । शरीर का कोमल भाग धीरे–धीरे सड़ जाता है और जल के द्वारा बहा दिया जाता है। अस्थियों (Bones) का कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) या कवच (Shells) धीरे धीरे छिन्न भिन्न (Disintegrates) और संरचना को छिद्रित (Porous) कर देते है। जल इन छिद्रित संरचनाओं में प्रवेश करता है और जल में घुले हुए खनिज पदार्थ छिद्रों (Pores) में धीरे–धीरे जम जाते हैं जिससे कि यह सिलिका (Silica) या चुने (Lime) से भर जाते हैं और अकार्बनिक पदार्थों युक्त मूल संरचना उसी रूप में शेष बचती है। अर्थात् शरीर के कठोर भाग बिना परिवर्तित हुए मूल–अवस्था (Original state) में परिरक्षित (Preserved) हो जाते हैं।

जैसे–जैसे यह विधि निरन्तर होती रहती अधिक से अधिक रेत एवं कीचड सम्पूर्ण संचय पर निश्चित स्तरों मे जमती जाती है। हजारों या लाखो वर्षों के पश्चात् अवसादों के नीचे का स्तर संकुचित एवं कठोर होकर चट्टान बन जाती है। जब ऐसी चट्टानों को मनुष्य के द्वारा या जल, वायु के द्वारा अपरक्षण (Eroded) किया जाता है तो जीवाश्म (Fossils) दिखाई देते हैं।

इसमें जीवों (जन्तुओं एवं पादपों) के शरीरों के कठोर भागों का खनिजीकरण (Mineralisation) होता हैं। इस प्रकार के परिरक्षित में कंकाल, दाँतों एवं कड़े खोलों (कवचों) आदि की मूल संरचना का परिरक्षण हो जाता है। इनको परिरक्षित करने वाले खनिज कैल्सियम कार्बोनेट, सिलिका, गन्धक, आयरन, पाइराइट्स आदि होते हैं। इसके अतिरिक्त जीव–शरीर के कोमल भागों, ऊतकों, पेशियों तथा अंगों का परिरक्षण खनिज अणुओं के प्रतिस्थापन से होता है।

जिस शरीर या उसके कठोर भाग में अधिक खनिजी भवन (Mineralisation) होता है वह उतना ही पुराना जीवाश्म (Fossil) होगा। अश्मीभवन (Petrification) के अन्तर्गत अन्तराली सम्मिलन (Interstitial addition) अणु (Molecules) के स्थान पर अणु (Molecule) का क्रमिक प्रतिस्थापन (Gradual replacement) होता है। मौलिक पदार्थ विलुप्त हो जाता है। इस प्रकार बने जीवाश्म (Fossil) में बाहय रूप (External form) ही ज्ञात नहीं होता है, बल्कि ऊतकीय लक्षण (Histological feature/ characters) भी ज्ञात होते हैं। यह प्रतिस्थापन (Replacement) आइरन पाइराइट (Iron pyrite), आइरन ऑक्साइड (Iron oxide), सिलिका, आदि द्वारा हो सकता है। मौलस्का के कवच (Shells) तथा प्रवाल (Coral) का कैल्शियम कंकाल एवं कुछ स्पन्ज (Sponge) प्रतिस्थापन सिलिका (Silica) द्वारा होता है। इस प्रकार मूल संरचना का कूट रूप बन जाता है।

टिप्पणी

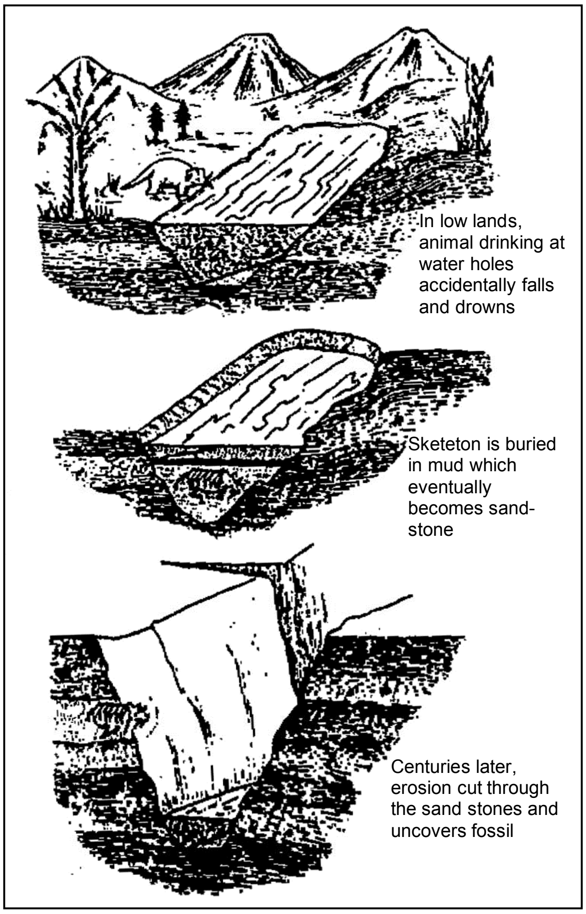

चित्र क्र. 5.1: Diagram to Illustrate Formation of Fossil by the Process of Petrification

ऐरिजोना के अश्मीभूत वनों के जीवाश्म उसके उत्कृष्ट उदाहरण है। उदाहरण के लिए एक जीवाश्म लगभग 30 करोड वर्ष पूर्व शार्क मछली का माना जाता है जिसकी पेशियाँ इतनी अच्छी तरह परिरक्षित हुई हैं कि उसकी अनुप्रस्थ पट्टियों तथा मायोफ्राइब्रिल्स को सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है।

3. **कोप्रोलाइट (Coprolite)**– कभी कभी जीव की आँत में उपस्थित ऐसे पदार्थ जो नष्ट न हुए हों, आहारनाल की रूपरेखा का ज्ञान कराते हैं। इस प्रकार के फॉसिल को **कोप्रोलाइट** कहते हैं।

4. **प्राकृतिक साँचे अथवा ढाँचे (Natural moulds or casts)**– खनिजों मे जब प्राणी/जीवों के शरीर का पूर्ण ऱ्हास होता है, तब चारों ओर खनिज का एक भाग एक ऐसी गुहिका को बना लेता है, जिसके अंदर वास्तविक जीवों के सभी बाह्य लक्षण दिखाई देते हैं। यह दफनाए गये जीवों के शरीर का साँचा (Molds) बनाते हैं। इन साँचों में प्राकृतिक खनिजों का संचय होता है जोकि कुछ समय पश्चात् कठोर हो जाते हैं। इनको मूल वस्तू/जीवों का प्राकृतिक साँचा (Natural casts) कहते हैं। यदि प्राकृतिक साँचा नहीं बनता है तो जो साँचा खोजा गया है उसको प्लास्टर ऑफ

पेरिस (Plaster of Paris) से भर देते हैं, इनको **अप्राकृतिक साँचा** (Artificial casts) कहते हैं। **उदाहरण– पोम्पई का जीवाश्म** (Fossils of Pompeli city) जोकि 79AD मे **वेसुवियस पर्वत** (Mount Vesuvius) की ज्वालामुखी राख (Volcanic ash) के द्वारा दफनाया गया था। इसमें मनुष्यों एवं उनके पालतू जानवरों के साँचे एवं ढाँचे (Molds and casts) पाये जाते हैं। इसमें मिट्टी तथा अन्य खनिज पदार्थों में सम्पूर्ण जीव की संरचना का ठीक वैसा ही ढाँचा बन जाता है। ऐसा मृत जीवों के शरीर पर मिट्टी की तह पर तह जमने से होता है। वह मिट्टी धीरे–धीरे सख्त होकर जीव की मूल बाह्य आकृति का ढाँचा बना देती है। इसमे जैली फिश (Jelly fish), कीटों (Insect) के पंख तथा पत्तियों आदि का परिरक्षण होता है। इस प्रकार से तैयार साँचों एवं ढाँचों से जन्तु की बाहय आकृति का अनुमान तो लगाया जा सकता है, लेकिन आन्तरिक रचना का कोई भी ज्ञान नहीं होता है।

5. **पद–चिन्ह (Foot-prints)**– अनेक प्राणियों के पद–चिन्हों के परिक्षित जीवाश्मों के अध्ययन से उनकी संरचना एवं अनुपात का ज्ञान होता हैं। ये प्राचीन प्राणियों के कीचड अथवा नम भूमि पर चलने से बने पादों के चिन्ह होते हैं जो धीरे–धीरे सख्त होकर पत्थरों तथा चट्टानों का रूप ले लेते है।

   इस प्रकार के जीवाश्म सन् 1948 में पिटस्बर्ग के समीप ही पेनिसिलवेनियन काल की चट्टानों से प्राप्त उभयचरों (Amphibians) के पद चिन्हो के हैं जिनके अध्ययन से शरीर के अनुपात एवं चलन–विधि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

6. **चिन्ह (Impression)**– जीवाश्म कार्बन की पतली स्तर के रूप में भी पाये जाते हैं। जीवित द्रव्य के अपघटन के पश्चात् केवल कार्बन ही शेष बचता है। यह चिन्ह तब ही बनते हैं जब चारों ओर का पदार्थ कोमल होता है। **उदाहरण**–पौधों की पत्तियों के चिन्ह, विलुप्त पक्षियों (Extinct birds) के पंख, उडने वाले सरीसृपों के पंखों की मेम्ब्रेन्स, डायनोसॉर्स की त्वचा आदि। यह बिना आवरित जीवाश्मों के चिन्हों के रूप मे पत्थरों पर दिखाई देते हैं।

7. **रेजिन्स एवं एम्बर मे परिरक्षण (Preservation in resins and amber)**– प्रमुखतया कीट (Insects) चिपचिपे रेजिन्स (Regins) में जोकि चीड के वृक्षों के द्वारा स्त्रावित किया जाता है, फँस जाते हैं। अनावरित (Exposed) होने पर यह कठोर और अम्बर (Amber) में परिवर्तित हो जाता है जिसमे फँसे कीट हमेशा के लिए परिरक्षित हो जाते हैं। यह जीवाश्म इस प्रकार परिक्षित होते हैं कि सूक्ष्म से सूक्ष्म औतिकी संरचना दिखाई देती है।

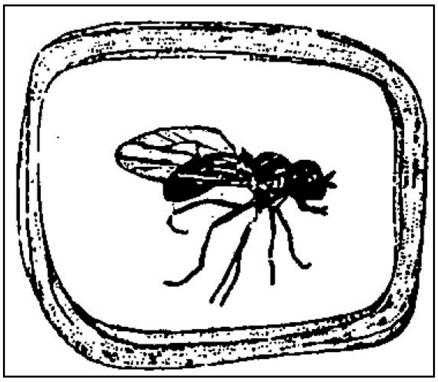

चित्र क्र. 5.2: **A Fly Preserved in Amber from Balue Region of Europe during Oligocene Period (about 40 Million Years Old)**

5.2.5 जिवाश्म अभिलेख (Fossil Record)

प्रोटोजोआ आदि कोमल शरीर वाले प्राणियों के जीवाश्म नहीं मिलते हैं, क्योंकि ये मिट्टी के दबाव से समाप्त हो जाते हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त फोरामिनीफेरा तथा रेडियोलेरिया आदि जन्तुओं के सिलिका के बने कठोर खोल होने से उनके जीवाश्म प्राप्त हुए हैं।

स्पंजों की कंटिकाओं (Spicules) सीलेण्ट्रेट्स के कोरल (Coral) आदि के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। जैलिफिश के साँचे तथा नली वाले कृमियों के जीवाश्म मिले हैं। होलोथूरिया तथा इकाइनोडर्म प्राणियों के जीवाश्म अधिकांशतः प्राप्त हुए हैं। आर्थ्रोपोडा में जलीय क्रस्टेशियन्स के जीवाश्म अधिकतर प्राप्त हुए हैं। आर्थोपोडा में कीटों तथा क्रस्टेशियन की अधिकांश जातियों के परिरक्षित चीड़ से प्राप्त रेजिन एम्बर में बने जीवाश्म प्राप्त हुए है। मछलियों, उभयचरों तथा सरीसृपों के अधिक जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। जल के समीप रहने वाले पक्षियों के जीवाश्म प्रायः मिलते हैं। स्थलीय प्राणियों के जीवाश्म प्रायः कम मिलते हैं, किन्तु हाथी, घोड़ों, ऊँटों, मनुष्य आदि की विकास अवस्थाएँ मिल चुकी है।

चट्टानों के इस अध्ययन से पृथ्वी पर हजारों–लाखों वर्षों से हुए विभिन्न परिवर्तनों का पता चलता है। जीवाश्म विज्ञान अभी अपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश प्राचीन जीवों के जीवाश्म या तो प्राप्त नहीं हुए अथवा नष्ट हो गये है।

5.2.6 जीवाश्मों के प्रकार (Types of Fossils)

जीवाश्म निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

1. **वास्तविक अवशेष (Actual remains)**– प्राणियों के शरीर जीवाश्म के रूप में पाये जा सकते है। इस प्रकार के जीवाश्मों में कोमल ऊतक (Soft tissue) एवं कठोर भाग (Hard part) दोनों ही भाग जीवाश्म के रूप में परिरक्षित हो जाते हैं। संसार के उत्तरी बर्फीले प्रदेशों मे दबी लोमडी का शरीर, तेल स्त्रोतों (Oil shales) ऐस्फाल्ट (Asphalt) तथा अम्बर (Amber) मे कोमल कीट, अकशेरुक प्राणी ज्यों के त्यों परिरक्षित हो जाते है। इन

प्राणियों के कोमल भागों की अस्थियाँ, दाँत, कवच आदि भी वास्तविक दशा बिना किसी परिवर्तन के परिरक्षित हो जाते हैं।

2. **अश्मीभूत जीवाश्म (Petrified fossils)**– जल में खनिजों की अत्याधिक सान्द्रता पाई जाती है। इन खनिजों मे सिलिका (Silica), कैल्सियम (Calcium) एवं मैग्निशियम (Magnesium) आदि होते हैं। इस खनिज युक्त जल के अन्तः स्पन्दन से कठोर भाग, कंकाल आदि प्रतिरोधी अश्मीभवन (Petrification) के रूप हो जाते हैं। अश्मीभूत भाग एक प्रकार से कठोर पत्थर बन जाते हैं। इसमें प्राणियों का रूप तथा सूक्ष्मदर्शीय आकार भी बना रहता है।
3. **चिन्ह (Impression)**– जीवाश्म कभी–कभी कुछ परिस्थितियों में कार्बन की पतली स्तर के रूप में भी पाये जाते हैं। **उदाहरण**– पौधों की पत्तियाँ द्रव्य के अपघटन के कारण कार्बन ही शेष बचता है।
4. **साँचे एवं ढलित जीवाश्म (Moulds and casts)**– खनिजों मे जब प्राणी के शरीर का पूर्ण न्हास होता है तब चारों ओर खनिज का एक भाग एक ऐसी गुहिका बना लेता है जिसके अंदर वास्तविक प्राणी के सभी बाहय लक्षण दिखाई देते हैं। साँचों में न तो प्राणी और न ही इसकी सूक्ष्म संरचनाएँ परिरक्षित होती हैं। कभी–कभी प्राकृतिक साँचे कीचड, दलदल या अन्य अवसाद से भर जाते हैं, इस कारण प्राणी का एक पूर्ण दलित जीवाश्म ढाँचा (Cast) बन जाता है। **उदाहरण**– करोटि, कवच की गुहिकाएँ।

5.2.7 जीवाश्मीभवन की दशा (Conditions for Fossilization)

जीवाश्मीभवन के लिए आवश्यक दशा है तुरन्त मिट्टी या किसी भी भाग में गड़ जाना या दब जाना। इस क्रिया में वायु का प्रवेश नहीं होना चाहिए जिससे कि जीव का ऑक्सीकरण (Oxidation) न हो सके। यह धँसना कीचड, दलदलीय भाग में होता है जोकि बाद में पुरानी चट्टानों के द्वारा ढँक जाता है।

उपर्युक्त दशाएँ पूर्ण हो जाने के पश्चात् जीवाश्म (Fossils) में समय के साथ–साथ विभिन्न परिवर्तन पाये जाते हैं। यह परिवर्तन भूमि के दबाव (Pressure), वलन (Folds) या अपरदन (Erosion) द्वारा होता है।

चट्टानों के बीच बहते हुए पानी से अस्थियाँ (Bones) एवं कवच (Shell) घुलकर बाहर निकल जाते हैं, केवल साँचा (Mould) रह जाता है। यह साँचा भी समय के साथ–साथ अस्पष्ट होने के साथ–साथ नष्ट हो जाता है।

जिवाश्म कहाँ पाये जाते हैं?

जीवाश्म चट्टानों में पाये जाते हैं। यह चट्टानें तीन प्रकार की होती हैं–

1. **आग्नेय** (Igneous) या ज्वालामुखी चट्टानें।
2. **अवसादी चट्टानें (Sedimentary rocks)**– यह पानी में अवसादों के कारण बनती हैं। ये चट्टानें क्रमबध्द पर्तों मे विन्यासित होती हैं इस कारण इन्हें स्तरित चट्टानें (Stratified rocks) भी कहते हैं।

टिप्पणी

3. **कायान्तरित चट्टानें (Metamorphic rocks)**– ये अवसादी चट्टानें होती है जोकि ताप एवं दाब द्वारा बनती है। **उदाहरण**– ग्रेनाइट एवं संगेमरमर।

आग्नेय एवं रूपान्तरित चट्टानों में प्राचीन जीवन का कोई चिन्ह नहीं पाया जाता है, लेकिन अवसादी चट्टानों में असंख्य प्राणियों के जीवाश्म पाये जाते हैं।

जीवाश्म के अन्वेषन में कठिनाइयाँ–

1. गहराई मे स्थित प्राचीन चट्टानों में पाये जाने वाले जीवाश्मों को खोदना कठिन एवं असम्भव है।
2. अवसादी चट्टानें समुद्रों के नीचे पाई जाती है, इनमें स्थित जीवाश्मों को निकालना असम्भव एवं कठिन होता है।
3. उँचे पर्वत शिखरों पर भी जीवाश्मों को निकालना कठिन होता है।
4. घनी आबादी के कारण भूमि का खोदना एवं जीवाश्मों का निकालना कठिन होता है।

5.2.8 जीवाश्म के अध्ययन का महत्व (Significance of Fossils Studies)

जीवाश्म जीवों के कार्बनिक विकास की अवस्थाओं का चित्रण करते है। इनके अध्ययन से जीव–विज्ञान के अध्ययन में निम्नलिखित लाभ हुए है। यह अतीत जीवन के प्रमाण है जो पौधें एवं प्राणियों के जैव–विकास का मार्ग बतलाते है–

1. **भू–वैज्ञानिकी आयु–निर्धारण (Determination of geological age)**– जीवाश्मों के अध्ययन से चट्टानों की आयु का निर्धारण किया जाता है तथा इन स्तरों के कालानुक्रम को ज्ञात किया जाता है।
2. **विकास के पक्ष में प्रमाण (Evidences in favour of organic evolution)**– जीवाश्मों के अध्ययन से आदिजीवों के क्रमिक विकास का पता चलता है, जैसे– आर्कियोप्टेरिक्स *(Archaeopterix)* के जीवाश्म के अध्ययन का पता चलता है कि उसमे सरीसृप तथा पक्षी वर्ग दोनों के लक्षण विद्यमान थे। इसमें स्पष्ट होता है कि पक्षियों का विकास सरीसृपों से हुआ है। इससे यह ज्ञात होता है कि जातियाँ प्रारम्भिक भू–वैज्ञानिक कालों में पाई जाती थी।
3. **जीवाश्म तथा प्रागैतिहासिक जीवन (Fossils and Prehistoric Life)**– जीवाश्मों के अध्ययन से प्रागैतिहासिक काल के भीमकाय प्राणियों जैसे डायनोसोर, छोटे एमोनाइट (Ammonite) तथा ट्राइलोबाइट (Trilobites) आदि प्राणियों का ज्ञान प्राप्त होता है। इनके अध्ययन से आदि प्राणियों तथा वनस्पतियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में मदद मिलती है।
4. **जन्तु वर्गों की वंशावली (Pedigree of animal groups)**– अधिकांश जन्तुओं, जैस– ऊँट, घोड़ा, हाथी तथा मनुष्य की वंशावली का ज्ञान जीवाश्मों पर ही निर्धारित है।

5. **जीवाश्मों द्वारा पुराभूगोल निर्धारण (Determination of Palaeogeography)**– जीवाश्मों के अध्ययन से आदिकालिक पृथ्वी के भूगोल का ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे– महाद्वीपों का धँसना, समुद्र–तल का उठना, पठारों तथा पहाडों का बनना आदि इसी क्रम की महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं।
6. **जीवाश्म एवं भूवैज्ञानिक जलवायु (Fossils and Geological Climate)**– जीवों के प्राप्त जीवाश्मों से उस स्थान की आदि–जलवायु तथा उसमें होने वाले समयानुसार परिवर्तनों का पता चलता है, जैसे– कस्तुरी बैल (Musk ox) तथा रेण्डियर प्राणियों के जीवाश्मों से उस स्थान की ठण्डी जलवायु होने का पता चलता है। फर्न जीवाश्मों से उस युग की उष्ण जलवायु का पता चलता है।

5.2.9 जिवाश्मों की आयु निर्धारण (Age Determination of Fossils)

आदि–पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के बाद से जैव–विकास की रूपरेखा को जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि जीवाश्म किस समय के जीव का है। इसके लिए चट्टानें जिसमें जीवाश्म प्राप्त हुआ, उसकी आयु का पता करना आवश्यक है। चट्टान की आयु का पता लगाना चट्टान का आयु–निर्धारण (Dating of Rocks) कहलाता है। चटटान जितनी पुरानी होगी, जीव भी उतना ही पुराना होगा। जीवाश्म केवल तलहटी या स्तरित (Sedimentary of Stratified) चट्टानों से ही प्राप्त होते हैं। चूँकि चट्टानों के अनुक्रम में भौतिक उथल–पुथल के कारण परिवर्तन होते रहते हैं, अतः इनकी आयु–निर्धारण सम्भव नहीं है। अतः अब रेडियोएक्टिव (Radioactive) तकनीकी के द्वारा चट्टानों की आयु का निर्धारण किया जाता है। इनकी प्रमुख दो विधियाँ हैं–

1. **युरेनियम लैड विधि (Uranium lead method)**– इस विधि का विकास सर्वप्रथम **बोल्टवुड** (Boltwood) द्वारा सन् 1907 में किया गया। शैल–स्तरों (Shell-rocks) में कुछ ऐसे रेडियोधर्मी (Radioactive) तत्व होते हैं जो परिवर्तनशील वातावरणीय दशाओं के बावजूद भी एक निश्चित रेडियोधर्मिता खोकर अपने रेडियोधर्मिता–विहीन समस्थानिक (आइसोटोप्स-Isotopes) में बदल जाते हैं, जैसे– यूरेनियम-238 (U^{238}) अपनी रेडियोधर्मिता खोकर सीसा (Lead-206) (Pb^{206}) में बदल जाता है, पोटैशियम–40, ऑर्गोन–40 ($Argon^{40}$) में बदल जाता है, कार्बन–14 (C^{14}) साधारण कार्बन (C^{12}) तथा रूबीडियम (Rubidium) स्ट्रॉन्शियम (Strontium) में बदल जाता है। यूरेनियम अति मन्द किन्तु एक निश्चित दर से लैड में विघटित होता रहता है। लगभग 45 अरब वर्षों में यूरेनियम की कुल मात्रा विघटित होकर आधी रह जाती है। यूरेनियम के विघटन के इस समय को यूरेनियम की अर्ध–आयु (Half life) कहते हैं। इस प्रकार शैल में यूरेनियम तथा सीसे के अनुपात से प्राचीन चट्टानों तथा जीवाश्मों की आयु निर्धारण की जाती है।

ऐसा अनुमान करो की शुध्द यूरेनियम–238 के परमाणु (2,00,000 atoms) एक बोतल मे बंद कर दिये जाते है जिसमें किसी भी अन्य तत्व (Element) के परमाणु नहीं है। बंद बोतल वर्ष के द्वारा चिन्हित किया जिस वर्ष में परमाणु रखे गये थे। यूरेनियम–238 के परमाणु बोतल के अंदर एक निश्चित दर से विघटित होते रहेंगे जिससे कि 4.5 बिलियन वर्षों के अन्त में बोतल में केवल 1 लाख परमाणु (1,00,000 atoms) शेष बचेंगे और दुसरे 1 लाख परमाणु Pb^{206} में परिवर्तित हो जायेंगे। यह प्रारम्भ किये परमाणु के आधे होंगे जिनसे प्रारम्भ किया गया था। दूसरे 4.5 बिलियन वर्षों के अन्त में (कुल 9 बिलियन वर्षों में) यह फिर कम होकर आधे रह जायेंगे। इस प्रकार यह क्रम चलता रहेगा जैसा कि निम्न प्रकार से दर्शाया गया है–

वर्ष (Year)	प्रारूप में यूरेनियम 238 के परमाणुयों की संख्या (No. of Uranium 238 Atoms in the Sample)
1975 A.D.	2,00,000
4,50,000, 1975	1,00,000
9,00,000, 1975	50,000
13,50,000, 1975	2,50,000
18,00,000, 1975	1,25,000

अतः यूरेनियम–238 की अर्ध आयु 4.5 बिलियन वर्षों है। इसका अर्थ होता है कि कुल 238 परमाणु के आधे 4.5 बिलियन वर्षों के पश्चात् पाये जायेंगे और दूसरे आधे परमाणु Pb^{206} के पाये जायेंगे। यदि चट्टानों में यूरेनियम एवं सीसा का अनुपात मापा जाता है तब चट्टान की उम्र ज्ञात हो जायेगी।

2. **रेडियोएक्टिव कार्बन विधि (Radioactive carbon method)**– जीवाश्मों की आयु निर्धारण हेतु प्रयुक्त यह एक नवीन विधि है तथा इसका विकास **डब्ल्यू.एफ. लिबि** (W.F. Libby) द्वारा किया गया। इस विधि द्वारा 25,000 वर्ष पुराने फॉसिल्स की आयु ज्ञात की जा सकती हैं इसके द्वारा प्लैयस्टोसीन (Pleistocene) तथा आधुनिक कल्प के फॉसिल्स की आयु का अध्ययन किया जाता है। रेडियोधर्मी कार्बन (C^{14}) लगभग 5568 वर्ष बाद क्षय होकर आधा रह जाता है। सभी जीवों में (C^{14}) भारी आइसोटोप की मात्रा निश्चित होती है। इसे मापकर चट्टानों तथा जीवाश्मों की आयु पता लगाया जा सकता है।

   रेडियोएक्टिव कार्बन विधि एक ऐसी विधि होती है, जिससे प्रत्यक्ष रूप से जीवाश्म की उम्र को ज्ञात किया जा सकता है, यह केवल उन जीवाश्मों के लिए उपयोग किया जाता है जिनमें कार्बनिक पदार्थ पाये जाते हैं। इसका उन जीवाश्म के लिए उपयोग नहीं होता है जिनमें कार्बनिक पदार्थों का प्रतिस्थापन खनिजों के द्वारा होता है। इस विधि का उपयोग 70,000 वर्षों से अधिक के जीवाश्मों की उम्र को ज्ञात करने के लिए नहीं किया जा सकता है, क्योंकि रेडियोएक्टिव कार्बन (C^{14}) समय के अनुसार कम होता जाता है। अतः

इस विधि का उपयोग पश्च प्लीस्टोसीन (Late pleistocene) एवं आधुनिक समय के जीवाश्मों के लिए किया जा सकता है।

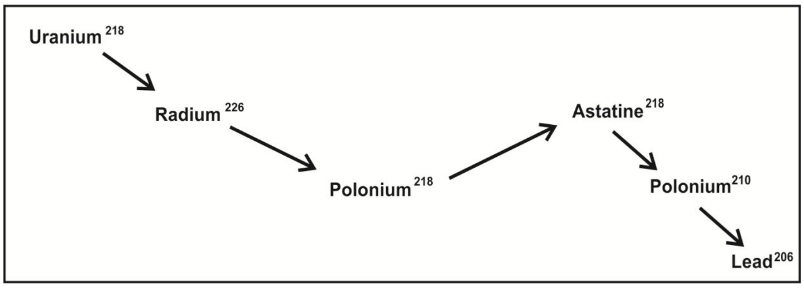

चित्र क्र. 5.3: Diagrammatic Representation of Breakdown of Uranium to Lead

इनके अतिरिक्त पोटैशियम ऑर्गन विधि द्वारा भी सफलतापूर्वक चट्टानों तथा जीवाश्मों की आयु का पता लगाया जा सकता है। रेडियोधर्मी पोटैशियम प्रायः सभी चट्टानों में पाया जाता है। सामान्यतः पोटैशियम मे लगभग 0.01% अर्धआयु लगभग 1,30,00,000 वर्ष है तथा यह अत्यन्त धीमी गति से विघटित होकर ऑर्गोन तथा कैल्सियम में बदलता रहता है। किन्तु **जॉन ऐन्डरसन** 1971 के अनुसार इसके विघटन की गति स्थिर नहीं रहती अतः इस विधि की विश्वसनीयता सन्देहास्पद है।

वर्तमान समय में अनेक भू–रासायनिक विधियाँ (Geo-chemical methods) विकसित हुई है। रूबीडियम–87 (Rubidium 87) स्ट्रान्शियम ($Strontium^{87}$) मे विघटित होता है, थोरियम–232 (Thorium से सीसा–208) ($Lead^{208}$) प्राप्त होता है।

रेडियोएक्टिव विधियाँ चट्टानों के साथ–साथ जीवाश्मों की उम्र को ज्ञात करने में अधिक लाभकारी होती है, लेकिन इन विधियों मे निम्न कमियाँ पाई जाती हैं–

(i) विधि उन आग्नेय चट्टानों तक सीमित होती है जिनमें रेडियोधर्मी खनिज (Radioactive minerals) पाये जाते हैं। यह स्तरित/अवसादी चट्टानों या जीवाश्मों के लिए प्रत्यक्ष रूप से उपयोग नहीं की जा सकती है।

(ii) यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है कि रेडियाधर्मी विघटन (Radioactive disintegration) के द्वारा हीलियम (Helium) या सीसा (Lead) उत्पन्न किये जाते हैं जो या तो समाप्त हो जाते हैं या रह जाते हैं।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

1. जीव–विज्ञान की शाखा जिसमें जीवाश्मों का अध्ययन किया जाता है, कहलाती है–
   (अ) इकोलॉजी (ब) पैलिएन्टोलॉजी
   (स) फिजियोलॉजी (द) इक्वाइनोलॉजी
2. उस जीवाश्म जन्तु का नाम बताइए जो सरीसृप तथा पक्षी वर्ग के बीच संयोजक कड़ी माना जाता है–
   (अ) आर्कियोप्टेरिक्स (ब) मेमौथ
   (स) कोरल (द) बुडीरीनोसिरोस
3. जीवाश्म किसके बनते हैं?
   (अ) वर्तमान जन्तुओं के (ब) मृत जीवों के
   (स) विलुप्त जीवों के (द) इनमें से किसी के नहीं
4. सबसे अच्छे जीवाश्म किन चट्टानों से बनते हैं?
   (अ) आग्नेय चट्टानों से (ब) शैल चट्टानों से
   (स) ग्रेनाइट चट्टानों से (द) कार्बन चट्टानों से
5. यूरेनियम लैड विधि को सर्वप्रथम किसने प्रस्तुत किया था?
   (अ) लिबि (ब) मार्गन
   (स) वोल्टवुड (द) क्यूवियर
6. कस्तूरी बैल एवं रेण्डियर प्राणियों के जीवाश्मों की उपस्थिति से किस बात का पता चलता है?
   (अ) स्थान की ठण्डी जलवायु
   (ब) युग की उष्ण जलवायु
   (स) प्राणियों के उभयचरी स्वभाव का
   (द) (अ) तथा (ब) दोनों का
7. जीवाश्मों के अध्ययन का क्या महत्व है?
   (अ) चट्टानों की आयु निर्धारण
   (ब) क्रमिक विकास के पक्ष में प्रमाण
   (स) मनुष्य की वंशावली
   (द) ये सभी

8. जीवाश्म कितने प्रकार के होते हैं?
   (अ) 4 (ब) 3
   (स) 7 (द) 8
9. जीवाश्मों के सर्वप्रथम अध्ययन का श्रेय किसको जाता है?
   (अ) लिंवी (ब) वोल्टवुड
   (स) क्यूवियर (द) विन्साई
10. जीवाश्म प्रागैतिहासिक काल के जीवों के अवशेष हैं किसका कथन है?
   (अ) डा विन्सी (ब) क्यूवियर
   (स) वोल्टवुड (द) मेण्डल

5.3 विलुप्त प्राणियों का अध्ययन डाइनोसॉर्स एवं आर्किऑप्टेरिक्स (Study of Extinct Forms: Dinosaurs and Archaeopteryx)

आदि काल में पाये जाने वाले कुछ प्राणी वर्तमान समय मे जीवाश्म (Fossils) के रूप में पाये जाते हैं। ऐसे प्राणी आदि काल या प्राचीन काल में जीवित रूप में पाये जाते थे। लेकिन वातावरणीय परिस्थितियों के परिवर्तनों के साथ–साथ भौगोलिक दशाओं मे परिवर्तन के अतिरिक्त इन प्राणियों के आकार एवं जीवन क्रियाओं एवं आश्न (Feeding) स्वभाव, अधिक भार के कारण यह प्राणी समयानुसार धीरे–धीरे विलुप्त (Extinct) होते गये। वर्तमान समय में यह विलुप्त प्राणी जीवाश्म (Fossils) के रूप में पाये जाते हैं। इन विलुप्त प्राणियों में से कुछ ऐसे प्राणी होते हैं, जिनमें दो विभिन्न संघो (Phylums) के लक्षण एक साथ पाये जाते हैं, अर्थात ये प्राणी दो विभिन्न समुदायों का परस्पर सम्बन्ध दर्शाते हैं, इस प्रकार के प्राणियों को **संयोजक कड़ियाँ** (Connecting links) कहा जाता है। इन प्राणियों से उच्च श्रेणियों की उत्पत्ति होती है।

विलुप्त प्राणी **अकशेरूक** (Inverterbrate) एवं **कशेरूक** (Vertebrate) दोनों समूहों के अन्तर्गत आते हैं। कशेरूक प्राणियों के अन्तर्गत विलुप्त प्राणी मत्स्य (Fishes), उभयचरी (Amphibians), सरीसृप (Reptiles), पक्षी (Aves) एवं स्तनी (Mammal) वर्गों में आते हैं– (i) **डाइनोसॉर्स** (Dinosaurs) सरीसृप वर्ग (Class Reptiles) के अन्तर्गत आते हैं। उद्विकास में सरीसृपों के युग (Age of Reptiles) को डायनोसोर का युग (Age of Dinosaur) कहा जाता है। (ii) **आर्किऑप्टेरिक्स** (Archaeopteryx) एक आदिकालीन पक्षी था, जिसके जीवाश्म (Fossil) जूरेसिक (Jurassic) काल की चट्टानों से प्राप्त हुए हैं। इस विलुप्त प्राणी में एक ओर पक्षियों के लक्षण पाये जाते हैं तथा दूसरी ओर सरीसृप वर्ग (Class Reptilia) के लक्षण भी पाये जाते हैं। अर्थात यह सरीसृपों एवं पक्षियों के बीच संयोजक कड़ी (Connecting link) बनाता है।

पाठ्यक्रम के अनुसार इस अध्याय मे **विलुप्त प्राणियों** (Extinct reptiles) के अन्तर्गत– (i) **डायनोसॉर्स** (Dinosaurs) (ii) **आर्किऑप्टेरिक्स** (Archaeopteryx) का वर्णन किया गया।

5.3.1 डायनोसॉर्स (Dinosaurs)

वर्गीकरण (classification)

वर्ग (Class) - रेप्टीलिया (Reptilia)

उपवर्ग (Sub-class) - आर्कोसॉरिया (Archosauria)

1. कपाल मे उपरी टेम्पोरल रिक्तिका बंद होती है लेकिन दोनो टेम्पोरल चापें उपस्थित होती हैं।
2. दाँत गर्वदन्ती (Thecodont) प्रकार के पाये जाते हैं।
3. पश्च पाद लम्बे, अधिक मजबूत और कुछ प्राणियों मे द्विपाद्वीय गति के लिए अनुकूलित होते है।

गण (Order)- सोरिस्चिया

1. प्राणी आकार में अधिक बड़े (दानव) भारी शरीर वाले जिनको डायनोसॉर्स (Dinosaurs) कहते हैं।
2. विलुप्त प्राणी जिनके जिवाश्म (Fossil) मीसोजोइक काल में पाये गये।
3. खोपडी में एक सा दो अग्नेत्रीय कोटरीय रिक्तिकाएँ (Antorbital Vacuities) पाई जाती थीं।

(अ) उप–गण (Sub-order) थीरोपोडा (Theropoda)

1. इसके अन्तर्गत वास्तविक डायनोसॉर्स आते हैं। यह ट्राएसिक काल में पाये गये।
2. खोखले अस्थियों वाले सरीसृप, शरीर की लम्बाई 10 फिट थी। विलुप्त प्राणी।

उदाहरण– आर्निथोलेस्टेस (Ornitholestes)

टायरेनोसॉरस (Tyrannosaurus)

गोर्गोसॉरस (Gorgosaurus)

(ब) उप–गण (Sub-Order) सॉरोपोडा (Sauropoda)

1. विलुप्त प्राणी जुरासिक काल में पाये गये।
2. शरीर बड़ा, भारी शरीर की लम्बाई 80 फिट, वजन 50 टन था।

उदाहरण– ऐप्टोसॉरस (Aptosaurus), ब्रेकियोसॉरस (Brachiosaurus), डिप्लोडोकस (Diplodocus), ब्रोन्टोसॉर्स (Brontosaurs), गाईगेन्टोसॉर्स (Gigantosaurs)

गण (Order)– ऑर्निथिस्चिया (Ornithischia)–

(i) पक्षी समान डायनोसॉर्स थे।

(ii) जीवाश्म मीसोजोइक काल में पाये गये।

(iii) शाकाहारी प्राणी था।

(iv) पूर्व जाम्भिका (Prexilla) और निचडे जबडें के अग्र भाग में दाँत दबे हुए थे।

उप–गण (Sub-order) आर्निथोपोडा (Ornithopoda)–

1. विलुप्त प्राणी, शरीर 30 फिट लम्बा था।
2. टाँगो में चार अंगुलियाँ। अग्र दिशा की और थी।
3. चोंच (Beak) चौडी दाँतविहीन शाकाहारी प्राणी थे।

उदाहरण– कैम्पटोसॉरस (Camptosaurus), इगुएनोडॉन (Iguanodon), ट्रैकोडोन (Trachodon), एडमोन्टोसॉरस (Edmontosaurs)।

उप–गण (Sub-Order) – स्टेगौसॉरिया (Stegosauria)–

1. विलुप्त प्राणी जुरासिक काल के सरीसृप थे।
2. शरीर की लम्बाई 25 फिट, चतुष्पादी, अग्रपाद छोटे थे।
3. पूँछ की पृष्ठीय सतह पर दो जोडी शूल, हथियार के रूप में स्थित थे।

उदाहरण– स्टोगोसॉरस (Stegosaurus) सीलडोसॉरस (Seelidosaurus)

उप–गण (Sub-order), एन्कायलोसॉरिया (Ankylosauria)

1. विलुप्त प्राणी, क्रिटेशियस काल के चतुष्पादीय डायनोसॉर्स थे।
2. शरीर की पृष्ठीय सतह पर अस्थिमय पट्टियाँ (Bonyplates) थीं।
3. पूँछ के उपर अस्थिमय छल्ले पाये जाते थे।

उदाहरण– एन्कायलोसॉरस (Ankylosaurus), नोडोसॉरस (Nodosaurus)

उप–गण (Sub-Order) सिरेटोप्सिया (Ceratopsia)–

1. विलुप्त प्राणी, क्रिटेशियस (Cretaceous) में अन्तिम चरण में पाये जाने वाले डायनोसॉर्स थे।
2. चतुष्पादी प्राणी थे। खोपडी बड़े आकार की थी।
3. अस्थिल सींग (Bony horn) उपस्थित था।

उदाहरण– ट्राइसिरेटोप्स (Triceratops)

सरीसृप प्राणी सबसे अधिक अनुकूलित पूर्ण रूप से थलीय कशेरुकी (Terresterial Vertebrates) के रूप में जाने जाते हैं। दैत्य आकार के प्राणी सरीसृप ही थे। यह फेफडों के द्वारा श्वसन किया करते थे और बडे आकार के कवचीय अण्डे (Shelled eggs) देते थे। इसी के कारण इन प्राणियों को प्रजनन क्रिया पूर्ण करने के लिए जल में दोबारा जाने की आवश्यकता से स्वतन्त्रता मिल गयी। इन्ही पूर्ण रूप से थलीय सरीसृपों से आगे चलकर एक तरफ तो आधुनिक पक्षियों की एवं दूसरी और स्तनी प्राणियों की उत्पत्ति हुई। **मीसोजोइक काल को सरीसृपों का सुनहरा काल (Golden age of reptiles)** कहा जाता है। इस समय के सरीसृपों की प्रसारण दिशाएँ थी–

1. मछली समान जलीय समुद्र में आवास करने वाले इक्थायोसॉर (Icthyosaurs), जलीय समुद्र वासी **प्लसियोसॉर** (Plteslosaur)।
2. वायु में उड़ने वाले पक्षी समान **टैरोसॉर** (Pterosaurs) एवं,
3. विशाल शरीर वाले **उप–वर्ग** (Sub-Class) **आक्रोसॉरिया** (Archosauria) के प्राणी, इनको **शासक सरीसृप** (Ruling reptiles) कहते है।

5.3.2 डायनोसॉर्स की उत्पत्ति (Origin of Dinosaurs)

डॉ.हयूने (Dr.Huene) के अनुसार डायनोसॉर्स की उत्पत्ति आदिम काटिलोसोरियन स्तम्भ/शाखा (Cotylosaurian stock) से हुई जो कि कार्बोनिफेरस (Carboniferous) समय से उत्पन्न हुए एवं ट्रायसिक (Triassic) काल तक पाये गये। पर्मियन (Permian) समय मे काटिलोसॉरा (Cotylosaura) से समूह **प्रोटीरोसॉरिया** (Proterosauria) विकसित हुए और इनसे पैरासूचिया समूह (Parasuchiya) ट्रायसिक (Triassic) से क्रीटेशियस काल के अन्त तक पाये गये। पौधों का भक्षण करने वाले आर्निथिश्चिया (Ornithischia) ट्राएसिक (Triassic) से क्रीटेशियस काल के अन्त तक पाये गये। पौंधो का भक्षण करने वाले आर्निथिश्चिया (Ornithischia) ट्राएसिक काल के अन्त में देखे गये।

डायनोसॉर्स (Dinosaurs) सर्वप्रथम जर्मनी में पाये गये। इसका यह अर्थ नहीं होता है कि यह इनका मूल विकिरणीय केन्द्र (Radiation Centre) था। ऐसा समझा जाता है कि उत्तरी अटलान्टिक बेसिन जो कि यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका को जोड़ता है वह स्थान है जहाँ डायनोसॉर्स उत्पन्न हुए और यहाँ से यह संसार के सभी भागों मे फैले – संयुक्त राज्य एवं कनाडा में तथा इंग्लैण्ड से ब्राजील में एवं बेल्जियम (Belgium), फ्रांस एवं पुर्तगाल से जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया एवं अफ्रीका में तथा मध्य मंगोलिया में देखे गये। अतः न्यूजीलैंड को छोड़कर संसार के सभी भागों में पाये गये। इनके आवास भिन्न–भिन्न थे। लेकिन इनका प्रारम्भिक उद्विकास (Evolution) – गति अनुसार अर्ध शुष्क जलवायु चक्र से आद्र दशाओं मे अनुकूलित हुआ। इन डायनोसॉर्स का स्वभाव भी भिन्न था। कुछ माँसाहारी (Carnivores) थे और कुछ शाकाहारी (Herbivores) थे।

विभिन्न डायनोसॉर्स का आकार भी भिन्न था। कम से कम अभिलेखित (Recorded) आकार 2 फिट **कोम्पोसोग्नेथ्स** (Composgnathus) था। लेकिन इससे आधे आकार के पद चिन्हों को अभिलेखित किया गया। अधिकतम आकार पूर्वी अफ्रीका के **गाइगैन्टोसॉरस** (Gigantosaurus) का था। उसकी पूर्ण लम्बाई 120 फिट थी।

वर्ष 1824 से पूर्व मनुष्य को डायनोसॉर्स (Dinosaurs) की उपस्थिति का ज्ञान नहीं था। सर्वप्रथम इस भीमकाय सरीसृप प्राणी को इंग्लैण्ड (England) के जीवाश्मी (Geologist) ने खोजा। **सर रिचर्ड ओवेन** (Sir Richard Owen) उस समय के प्रसिध्द जीववैज्ञानिक थे। इन्होने इस भीमकाय प्राणी को **डाइनोसॉरिया** (Dinosauria) नाम दिया। डायनोसॉरिया (Dinosauria) एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ होता है–

Dinosauria = Gr, Dencs = terrible (भयानक) + Saurus = lizard छिपकली। वर्तमान समय मे भूगर्भीय खुदाई एव खोज से संसार के हर भाग से डायनोसॉर्स (Dinosaurs) के जीवाश्म (Fossile) प्राप्त हुए है। अभी तक प्राप्त जीवाश्म अभिलेखों से ज्ञात होता है कि डाइनोसॉर्स (Dinosaurs) मीसोजोइक युग (Mesozoic era) में विभिन्न आकार, रूप, परिमाण भार स्वभाव के थे।

वर्गीकरण के अनुसार **डायनोसॉर्स, उपवर्ग** (Sub-Class) – **आर्कोसॉरिया** (Archosauria) में आते हैं। कुछ ज्ञात डायनोसॉर्स का वर्णन निम्न प्रकार से है–

1. **पोडोकेसॉरस (Podokesaurus)**– यह माँसाहारी डायनोसॉर्स थे। इनका आकार छोटा अधिक फुर्तीले सरीसृप थे। यह पठारी प्रदेशों में रहने वाले थे। इनकी अस्थियाँ खोखली थी और पक्षियों के समान संपूर्ण हल्का था। खोपडी अधिक हल्की थी। शरीर की लम्बाई 8 फिट थी। दुम अधिक लम्बी पतली थी। अग्र उपांग पश्च उपांगों की अपेक्षा छोटे थे। पाद अंगुलियाँ 3–4 पाई जाती थी। यह द्विपादचारी (Bipeada) थे। यह ट्राइसिक समय में यूरोप में पाये गये। (चित्र क्र. 5.4) कपाल में उपरी टेम्पोरेल रिक्तिका (Temporal Vacuity) बंद होती है लेकिन दोनो टेम्पोरल चापें उपस्थित होती है। यह अपना भोजन निगल जाते थे।

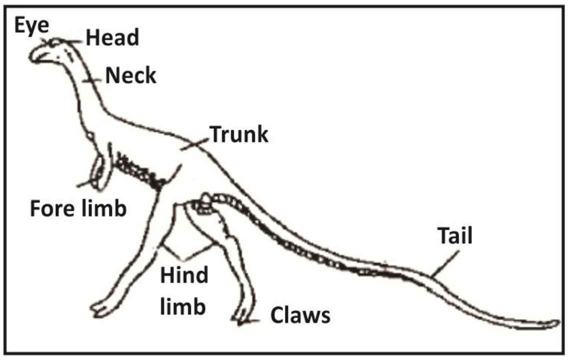

चित्र क्र. 5.4: Podokesaurus

उपवर्ग (Sub-class) आर्कोसॉरिया (Archosauria)

गण (Order)– सोरस्चिया (Saurischia)

उप–गण (Sub-order)– थीरोपोडा (Theropoda)

उदाहरण– पोडोकेसॉरस (Podokesaurus) कोएलूरस (Coelarus) इस डायनोसॉर्स का आकार भी पोडोकेसॉरस के समान था।

2. **ओर्निथोलेस्टेस (Ornitholestes)– इसका वर्गीकरण पोडोकेसॉरस के समान होता है।**

यह डायनोसॉर (Dinosaur) ट्राइसिक काल मे उत्तरी अमेरिका में पाये गये। अग्र उपांग छोटे होते थे। उपांग में 4 या 3 अंगुलियाँ नखर (Claws) सहित पाई जाती थी। अंश मेखला (Pectoral Girdle), स्केपुला (Scapula) एवं कोरेकोइड (Coracoid) अस्थि के रूप में पाया जाता था। क्लेविकल (Clavicle) अस्थि अनुपस्थित होती थी। यह माँसाहारी

(Carnivores) प्राणी थे। डायनोसॉर की लम्बाई 9 मीटर होती थी। दुम लम्बी। खोखले अस्थि वाले सरीसृप प्राणी 14 इंच पाद लम्बे अधिक मजबूत और द्विपाद गति के लिए अनुकूलित होते हैं। पाद अंगुलियाँ 3 नखर युक्त होती है।

3. **टायरेनोसॉरस (Tyranousaurus)– इसका वर्गीकरण पोडोकेसॉरस के समान होता है।**

दैत्य आकार का सरीसृप प्राणी। माँसाहारी प्राणी इसकी लम्बाई 45–47 फिट और उँचाई 18 फिट होती हैं। इनके शरीर का भार 8000 कि. ग्रा.। द्विपाद गति स्वभाव के प्राणी थे। माँसाहारी होने के कारण इसके लम्बे जबडे मजबूत एवं पैने चाकू समान बड़े–बड़े दाँत युक्त थे। यह धीमी गति वाले डायनोसॉर का भक्षण करता था। इस डायनोसॉर का भक्षण करता थां। इस डायनोसॉर के पश्चपाद अधिक बडे, मजबूत, भारी थे। यह डायनोसॉर्स मीसोजोइक युग (Mesozoic era) के क्रिटेशियस काल (Cretaceous) अधिक संख्या में पाये जाते हैं। अंगुलियों में 6.8 इंच लम्बे नखर पाये जाते हैं।

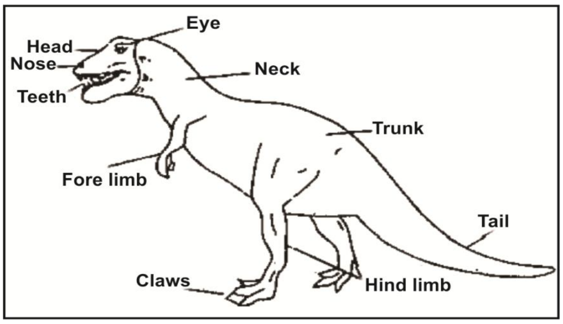

चित्र क्र. 5.5: Tyranosurus

4. **एलोसॉरस (Allosaurus)**– इस प्राणी का वर्गीरकण पोडेकोसॉरस के समान होता है।

उपगण (Suborder)– थीरोपोडा (Theropaoda) के अन्य उदाहरण है– येलिएसॉरस (Yaleasurus), सेरेटोसॉरस (Ceratosaurus)

एलोसॉरस (Allosaurus) डायनोसॉर्स माँसाहारी प्राणी होते थे। यह विलुप्त प्राणी जुरासिक काल में उत्तरी अमेरिका में पाये गये। इस विलुप्त प्राणी का आकार दैत्याकार था। लम्बाई 34 फिट 2 इंच और उँचाई 8 फिट 3 इंच थी। शरीर एवं दुम कम लचीली थी और कम गति कर पाती थी। जबडे मजबूत सम्पीडित थे। क्वाड्रेट (Quadrate) अतिस्थ गतिशील थी। जिसके कारण यह प्राणी भोजन को निगल जाते थे। फ्रन्टल एवं पेराइटल (Frontal and parietal) कपालीय अस्थियों के बीच सन्धि पाई जाती थी। कपाल (Skull) में उपरी टेम्पोरल रिक्तिका (Temporal Vacuity) बंद होती थी। लेकिन दोनों टेम्पोरल चापें (Temporal arches) पाई जाती थी। द्विपाद गति करते थे। अग्र उपांग पश्च उपांगों की अपेक्षा छोटे होते थे। पादांगुलियाँ

4–3 मुड़े हुए नखर युक्त होती थी। अंश मेखला (Pectoral Girdle) में केवल स्केपुला (Scapula) एवं कोरेकोइड (Coracoid) पाई जाती थी।

टिप्पणी

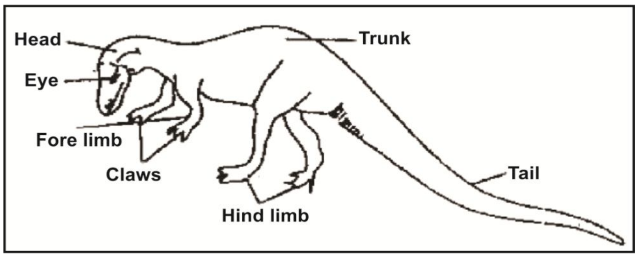

चित्र क्र. 5.6: Allosaurus

सेरेटोसॉरस (Ceretosaurus)– यह भी उपगण (Sub-Class) थीरोपोडा (Theropoda) के अन्तर्गत आता है। यह एलोसॉरस के समान होता था। लेकिन इसकी नाक (Nose) पर एक सींग समान प्रवर्ध (Horn like Process) पाया जाता था। यह भी माँसाहारी था। छोटे आकार के शाकाहारी डायनोसॉर्स को खाता था।

5. **ब्रोन्टोसॉर्स (Brontosaurs)**–

उपवर्ग (Sub-Classss)– आर्कोसॉरिया (Archosauria)

गण (Order)– सॉरिस्चिया (Saurischia)

उपगण (Sub-order)– सॉरोपोडा (Sauropoda)

यह विलुप्त प्राणी मीसोजोइक युग (Mesozoic era) के जुरासिक (Jurassica) काल में पाये गये। शरीर भीमकाय, दैत्य समान, लम्बाई 75–90 फिट और भार 38 टन था। यह विलुप्त प्राणी भारी–भरकम शरीर एवं वजन अधिक होने के कारण चतुष्पादी प्राणी था। चारो उपांग/पाद की अस्थियाँ शरीर के भार को वहन करने के लिए अत्यन्त भारी एवं मोटी थी। यह डायनोसॉर्स उभयचरी (Amphibious) था तथा दलदली भागों मे वास करता था। इस प्राणी की गर्दन लम्बी थी एवं सिर का आकार छोटा था। दाँत पैने नहीं थे तथा दाँतों के सीमान्त चम्मच आकार (Spoon Shaped) के आकार के आरी के दाँतों के समान थे। नखर (Claws) पार्श्व रूप से संपीडित थे, मुड़े हुए थे और पकड़ कमजोर थी। पाद अंगुलियाँ पैरो में 4 एवं अग्र उपांगों में 3 पाई जाती थी।

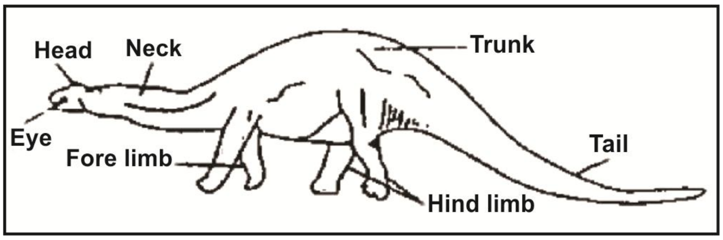

चित्र क्र. 5.7: Brontosaurus

6. **डिप्लोडोकस (Diplodocus)**– इस प्राणी का वर्गीकरण ब्रोन्टासॉर्स के समान होता है यह थलीय कशेरुक प्राणियों में सबसे बड़े आकार का प्राणी था। सिर के सबसे उपरी भाग पर नासिका द्वार पाया जाता था। यह प्राणी जलीय एवं उभयचरी (Amphibian) थे। इस विलुप्त प्राणी की लम्बाई 72 फिट थी। इसका भार 50,800 kg था। कशेरुक दण्ड (Vertebral Column) संरचना यह दर्शाती है कि शरीर का सब भार पैरों के द्वारा उठाया जाता है। पैर (Limbs) स्तम्भ (Pillar) के समान भारी एवं शक्तिशाली थे। इस विलुप्त प्राणी के पद चिन्ह पाये गये है। पाद अंगुलियों में एक या अधिक अंगुलों मे नखर (Claws) पाया जाता था। खोपड़ी (Skull) छोटी एवं चौडी थी। जबड़े (Jaws) अधिक कमजोर थे। दाँत मुख की ओर एकत्रित थे। जबड़े के अन्त में दाँत शस्योत्पादन (Cropping) के लिए उपयोग किये जाते थे इस प्राणी की गर्दन एवं दुम अधिक लम्बी थी।

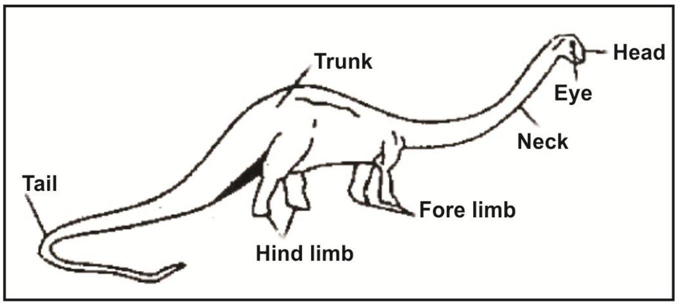

चित्र क्र. 5.8: Diplodocus

7. **गिगेन्टोसॉर्स (Gigantosaurus)**– इस प्राणी का वर्गीकरण ब्रोन्टोसॉर्स के समान होता है।

   यह डायनोसॉर्स भी दैत्याकार होता था। इसकी लम्बाई 120 फिट तथा अग्र उपांग (Fore limb) पश्च उपांगों की अपेक्षा अधिक लम्बे थे। गर्दन भी अधिक लम्बी थी। शरीर जिराफ (Giraffe) के समान था और गहरे पानी मे आश्रय लेता था जिससे कि थल के भयानक माँसाहारी से बचा जा सके। टाँगे शक्तिशाली थीं और शरीर के भार को वहन कर सकती थी। सिर छोटा सम्पीडित था। नेत्र आकार में छोटे थे। यह थल पर रहते हुए जिराफ के समान पेड़ों की पत्तियों को खाता था। शरीर का वजन 45 टन से ज्यादा था। जबड़े अधिक कमजोर थे। दाँत छोटे आकार के थे जो कि मुख के आगे एकत्रित थे। जबडों के पश्च भाग में दाँत अनुपस्थित थे। भोजन को चबाया नहीं जा सकता था। इन डायनोसॉर्स का जीवन अनिश्चित था। श्वसन सतह के नीचे होता था।

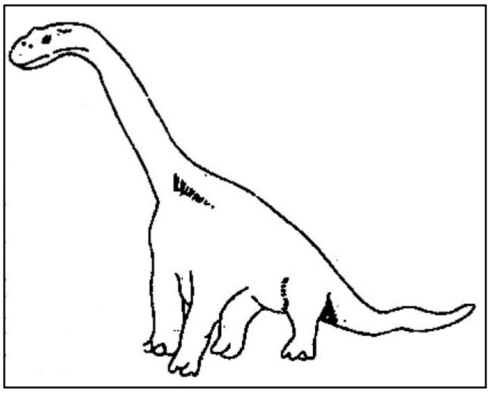

चित्र क्र. 5.9: **Gigantosaurus**

8. **केम्पटोसॉर्स (Camptosaurus)–**

उपवर्ग (Sub-Classs)– आर्कोसॉरिया (Archosauria)

गण (Order)– ऑर्निथिस्चिया (Ornithischia)

उपगण (Suborder)– आर्निथोपाडा (Ornithopoda)

पक्षी समान डायनोसॉर्स था। पाद पक्षियों के समान थे, द्विपाद (Bipedal) गति वाले प्राणी थे। कभी–कभी चतुष्पादी (Quadrupedal) स्थिति भी देखी गई या तो आराम करते समय या भोजन ग्रहन करते समय। जीवाश्म मीसोजोइक युग (Mesozoic era) में अमेरिका मे पाये गये। यह विशाल परिमाण उभयचरी (Amphibious) शाकाहारी डायनोसॉर्स था। खोपड़ी (Skull) का अग्र भाग चौडा होकर एक चपटी चोंच (Beak) में विभेदित था। श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) चतुषअरीय (4-Radiate) थी। प्यूबिस (Pubis) के पीछे की दिशा में थी और एक अतिरिक्त प्रीप्यूबिक (Prepubic) अस्थि आगे की ओर पाई जाती थी। जबडों के पश्च भाग में दाँत पाये जाते थे, जबड़ों (jaws) के अग्र भाग में चोंच (Beak) थी। यह शाकाहारी डायनोसॉर्स जुरासिक काल में दिखाई दिये थे। क्रिटेशियस (Createceous) काल में इनका आकार अधिकतम हो गया था। इनके पाद जालमय थे।

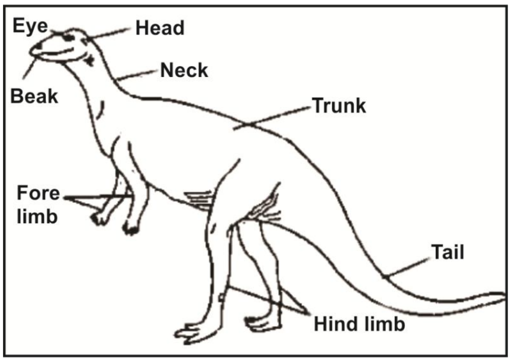

चित्र क्र. 5.10: **Camptosaurus**

9. इग्वानोडॉन (Igaonodon)– इस प्राणी का वर्गीकरण केम्पटोसॉर्स के समान होता है।

यह डायनोसॉर्स जीवाश्म के रूप यूरोप में पाया गया था। इसकी लम्बाई 34 फिट थीं। यह पक्षी समान, भारी भरकम अधिक विशाल जुरासिक काल का डायनोसॉर्स था। क्रिटेशियस (Cretaceous) समय मे अनेक वंश (Genera) पाये जाते थे। जिको बत्तख–चोंच डायनोसॉर्स (Duck-Beaked dinosaurs) उनके मुख के लक्षणों के अनुसार कहा जाता था जो कि चौड़ा एवं चोंच (Beak) समान था। इस जाति के डायनोसॉर्स के जीवाश्मों के अध्ययन से यह विदित होता है कि यह एक द्विपादीय (Bipeda) शाकाहारी सरीसृप प्राणी थे। इन डायनासॉर्स की उँचाई 15 फिट थी। यह डायनोसॉर्स द्विपादीय (Bipedal) होने के कारण इसके पश्चपाद अधिक लम्बे, शक्तिशाली एवं विकसित थे। लेकिन अग्रपाद (Fore Limb) अपेक्षाकृत अधिक छोटे भी नहीं थे। दाँत पीसने चबाने के लिए रूपान्तरित थे। खोपड़ी अधिक शक्तिशाली थी और शाकाहारी भोजन के लिए रूपान्तरित थी। निचले जबडे की कोरोनाइड प्रवर्ध (Coronoid process) से शक्तिशाली पेशियाँ जुडी रहती थी। एक प्राणी में 2000 दाँत पाये जाते थे। पश्च पादों मे पाद जाल (Web) पाये जाते थे।

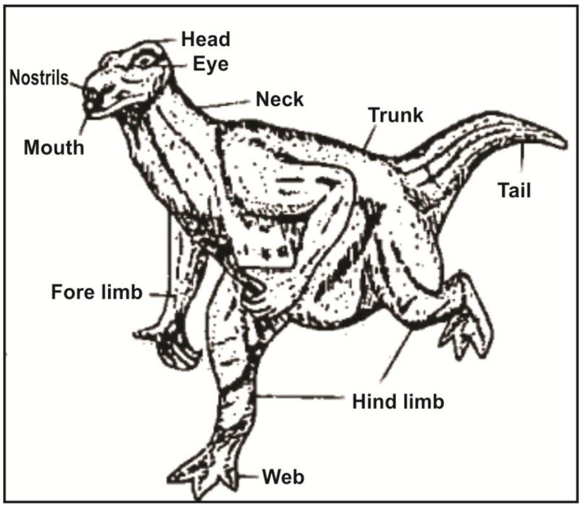

चित्र क्र. 5.11: Iguanodon

10. ऐनेटोसॉर्स (Anatosaurus)– इस प्राणी का वर्गीकरण केम्पटोसॉर्स के समान होता है।

यह अधिक ज्ञात डायनोसॉर्स प्राणी है। इसकी लम्बाई 30 फिट से अधिक नहीं होती हैं। यह एक अच्छा धावी डायनोसॉर्स था। इसकी दुम अधिक शक्तिशाली और तैरने के लिए अनुकूलित थी। गर्दन छोटी, खोपड़ी अधिक मजबूत थी। जबड़े का अग्रभाग चोंच (Beak) के समान था। जबड़े (jaws) के पश्च भाग मे 1500–2000 तक दाँत पाये जाते थे। दाँत शाकाहारी भोजन के लिए अनुकूलित थे, द्विपाद गति (Bipedal movement) अधिक

पाया जाता था। अग्र उपांग पश्च पादो की अपेक्षा छोटे थे। पादांगुलियाँ 4–3 पाई जाती थी। पश्च पाद (Hind Limbs) अधिक शक्तिशली, पादजाल (Webbed) युक्त थे।

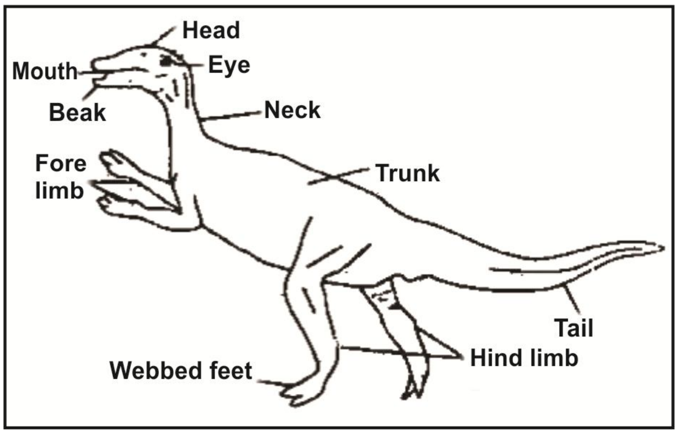

चित्र क्र. 5.12: Anatosaurus

11. स्टेगोसॉरस (Stegosaurus)– इस प्राणी का वर्गीकरण केम्पटोसॉर्स के समान होता है।

यह डायनोसॉर (Dinosaur) मीसोजोइक युग (Mesozoic era) के जुरासिक काल मे पृथ्वी पर पाया जाता था। इसको **कवचीय डायनोसॉर्स** (Armoured Dinosaurus) कहते हैं। इसके अधिक भारयुक्त वाले कवचीय भाग (Armature) की उपस्थिति के कारण यह डायनोसॉर्स चतुष्पादीय (Quadrupedal) होते है। शरीर पर कवच शूलीय या कंटकीय पट्टिका (Spring plates) के रूप मे स्थित होते है। यह एक बड़े परिणाम का भारीभरकम शाकाहारी डायनासॉर्स (Dinosaurs) था, जिसके अग्रपाद (Fore limbs) पश्चपादो (Hind Limbs) की अपेक्षा छोटे होते हैं। प्राणी का शरीर कोणीय (Angular) था। अधिक उँचाई का भाग धड का पृष्ठीय भाग था तथा पीछे का भाग छोटा संकुचित–सा था। प्राणी के शरीर का पृष्ठीय भाग, देह चर्म (Dermis) के कड़े सुरक्षात्मक कवच/आवरण (Armour) से ढँका था। यह चर्मी आवरण (Dermal armous) प्लेट/पट्टिका एवं पैने भाले (Lance) के समान उभार के रूप में शरीर के पृष्ठीय भाग पुच्छ पर पंक्तियों में व्यवस्थित थे। इन प्लेट्स पट्टिका की लम्बाई 25 इंच या अधिक थी। पैरों मे खूर (Hoof) के समान संरचना पाई जाती थीं।

इस डायनासॉर्स (Dinosaurs) की खोपड़ी (Skull) का भाग अधिक छोटा था और मस्तिष्क (Brain) अत्यधिक छोटा सुषुम्ना के लम्बर कटि के उभार (Lumber Swelling) से भी छोटा था। जबड़े में दाँत छोटे एकल पक्ति में स्थित थे। मस्तिष्क का भार 2.5 औन्स (Ounce) से कम था इस डायनोसॉर का कुल भार वर्तमान मे पाये जाने वाले जीवित हाथी से अधिक था। इस प्राणी ने अपने पीछे कोई सन्तति नहीं छोड़ी।

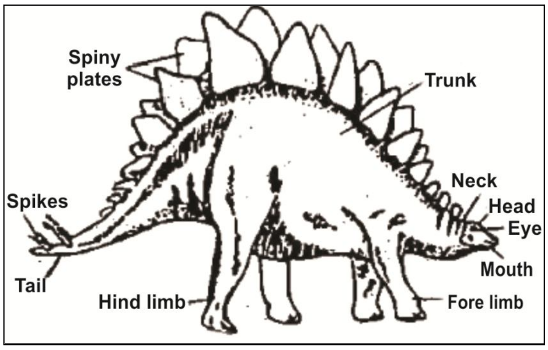

चित्र क्र. 5.13: **Stegosaurus**

12. **ट्राईसिरेटोप्स (Triceratops)–**

उपवर्ग (Sub-Class)– आर्कोसॉरिया (Archosauria)

गण (Order) – आर्निथिस्चिया (Ornithischia)

उपगण (Sub-Order)– सिरेटोप्सिया (Ceratopsia)

यह प्राणी क्रिटेशियस (Createaceous) में अन्तिम चरण में पाये जाने वाले डायनोसॉर्स थे। प्राणी चतुष्पादी, भारी भरकम शरीर वाला था। शरीर के भार के कारण प्राणी चतुष्पादी था। यह डायनोसॉर्स शाकाहारी, अण्डे देने वाले थे। इसके विशाल शीर्ष पर एक जोडी लम्बे पार्श्वक श्रृंग (Horn) एवं एक छोटा मध्यस्थ श्रृंग (Horn) उपस्थित था। शरीर भारी, 20 से 25 फिट लम्बा जिसमें पूरी लम्बाई का 1/3 भाग सिर का होता था। जिस पर श्रृंग स्थित होते थ। हाथियों के समान इस डायनोसॉर्स के पाद स्तम्भ (Pillar) समान थे। एक छोटी किन्तु मोटी पूँछ (Tail) उपस्थित थी। शरीर का आवरण अधिक मजबूत था। मुख (mouth) अग्र भाग में एक पैनी काटने वाली चोंच (Beak) एवं नाक के द्वारा आवरित होता था और नेत्रों के उपर खोपड़ी पर बडे सींग/श्रृंग (Horn) स्थित होते थे। गर्दन को आवरित करने के लिए पेराइटल (Parietal) एवं स्क्वेमोजल (squamosal) अस्थि का प्रसारण एक झालर को बनाता था। क्रिटेशियस (Createaceous) काल के यह डायनोसॉर सूखी जमीन पर रहते थे और चारो पैरों पर गति करते थे। यह डायनोसॉर्स कुछ समय तक जीवित रहे, इसके पश्चात् स्तनी प्राणियों के द्वारा प्रतिस्थापित हुए।

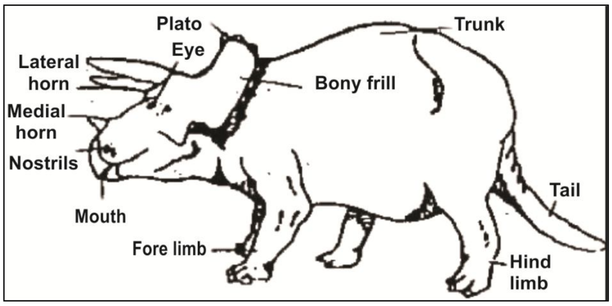

चित्र क्र. 5.14: **Triceratops**

उपर्युक्त वर्ण से यह ज्ञात हो चुका है कि डायनासॉर का जीवन प्रारंभिक मीसोजोइक युग (Mesozoic era) में मध्य यूरोप की चट्टानों से प्रारम्भ हुआ। ट्रायसिक काल (Triassic Period) में जो डायनोसॉर्स पाये जाते थे वह माँसाहारी थे, लेकिन कुछ डायनोसॉर शाकाहारी (Herbivorous) थे। जुरासिक काल के समय में अधिक संख्या में डायनोसॉर्स दोनों कवचीय (Armored) एवं अकवचीय (Unarmoured) रूप से पाये जाते थे। क्रिटेशियस (Createaceous) काल के अन्तिम चरणों में माँसाहारी डायनासॉर्स अधिक विकसित थे लेकिन कुछ समय पश्चात यह विलुप्त हो गये। इनका कुछ भी शेष जीवित नही बचा। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार इन डायनासॉर्स में अन्तर्द्वन्द्व युध्द (Intericune war) प्रमुख कारण था, अन्य दूसरे वैज्ञानिकों के मतानुसार खूनी स्तनी प्राणियों ने इनका नाश कर दिया। यही इनके विलुप्त होने का कारण है। जलवायु मे परिवर्तन भी इनके विलुप्ती के कारण है। ताप (Heat) में कमी के थलीय भाग में भी परिवर्तन इन प्राणियों के विलुप्तीकरण का कारण था। वैज्ञानिक रोमर (Romer) के अनुसार क्रिटेशियस काल भूर्ग विज्ञान की दृष्टि से एक अत्यन्त स्थायी एवं सक्रिय समय था क्योंकि इसी समय हरे–भरे सपाट मैदानों से बड़ी–बड़ी उँची पर्वत श्रेणियाँ बनी थी। इन व्यापक भूगर्भीय गतिविधियों के कारण अनेक शाकाहारी डायनोसॉर्स के हरे–भरे दलदली (Marshy) आवासों की पूर्ण क्षति हुई। साथ ही पृथ्वी की जलवायु मे भी व्यापक परिवर्तन हुए और नये प्रकार के पौधों का विकास हुआ जो कि शाकाहारी डायनोसॉर्स के लिए अनुकूल नहीं थे। इन परिवर्तित परिस्थितियों के कारण ये शाकाहारी डायनोसॉर्स धीरे–धीरे समाप्त होते गये। माँसाहारी डायनोसार्स जो शाकाहारी डायनोसार्स का भक्षण करते थे यह भी धीरे धीरे स्वतः विलुप्त हो गये। अन्य मत के अनुसार विकसित स्तनी प्राणियों के द्वारा इन बुद्धिहीन भीमकाय प्राणियों की समाप्ती हुई। कुछ अन्य मत के अनुसार पृथ्वी के किसी बड़े आकार के उल्का पिण्ड से भयंकर टक्कर के कारण अधिकांश सजीवों के नाश के साथ पृथ्वी के वातावरण में परिवर्तन हुआ जिसमे यह भीमकाय प्राणी भी समाप्त हो गये। वर्तमान में केवल जीवाश्म (Fossils) ही प्राप्त होते हैं।

5.3.3 आर्किऑप्टेरिक्स (Archeopteryx)

आर्किऑप्टेरिक्स एक प्राचीनतम पक्षी के रूप में जाना जाता है। 19 वीं सदी के पिछले भाग में एक आदि पक्षी के अवशेष सोलनहॉफन – जर्मनी (Solenhophen-Germany) की लिथोग्राफिक चूना प्रस्तर (Lithographic limestone) की खानों की उपरी जुरेसिक (Upper Jarassic) कल्प की परतों से प्राप्त हुए हैं। सन् 1861 में वैज्ञानिक **एड्रियास वेगनर** (Wagner) ने इसको खोजा और इसका नाम ग्रिफोसॉरस (Gryphosaurus) रखा। इसके पूर्व **हर्मेन वॉन मेयर** (Herman Von Meyer) ने अगस्त 1861 में एक पंखों को प्राप्त किया, शायद यह पंख इसी पक्षी का था और इन्हीं पंखों के आधार पर इस पक्षी का नाम **आर्किऑप्टेरिक्स लिथोग्राफिका** (Archaeopteryx lithographica) दिया। उसी वर्ष के सितम्बर माह

मे एक पूरे पक्षी के जीवाश्मी अवशेष की खोज हुई। इस जीवाश्म को आर्किओप्टेरिक्स साइमैन्सी (Archaeopteryx Siemensii) नाम दिया गया। इसी पक्षी का तिसरा जीवाश्म 1956 मे प्राप्त हुआ था। सन 1877 में एक अन्य सदस्य के अवशेष भी इस भाग से प्राप्त हुए, इस सदस्य का नाम **आर्किआर्निस** (Archaeornis) रखा। जीवाश्म या सभी पक्षियों के अवशेष वर्तमान में बर्लिन के संग्रहालय (Museum) में रखे हुए हैं। इन जीवाश्म पक्षियों का अध्ययन पक्षियों का सीधा सम्बन्ध पूर्वज डाएप्सिड–सरीसृपों (Diapsid-Reptiles) से स्थापित करता है और आधुनिक पक्षियों एवं सरीसृपों के मध्य की संयोजी कड़ी (Connnecting link) को दर्शाता है, क्योंकि इन जीवाश्म पक्षियों मे सरीसृप एवं पक्षियों दोनों के लक्षण पाये जाते है।

जीवाश्म पक्षियों (Fossil birds) की संरचना एक समान होने के कारण एक ही जाति में रखा गया क्योंकि यह जाति आधुनिक पक्षियों से अधिक भिन्न थी। इस कारण इसे वर्ग–एवीस (Class-Aves) के एक नवीन उपवर्ग (Sub-class) आर्किऑनिथीज (Archaeornithes) में रखा गया। द्विनाम पद्धति के अनुसार इस पक्षी का वैज्ञानिक नाम आर्किओप्टेरिक्स लिथोग्राफिका रखा गया।

वर्गीकरण (Classification)

संघ (Phylum)– कॉर्डेटा (Chordata)	उपवर्ग (Sub-class)– आर्किऑर्निथीज (Archaeornithes)
समूह (Group)– वर्टिब्रेटा (Vertebrata)	जीनस (Genus)– आर्किओप्टेरिक्स (Archaeopteryx)
उप–संघ (Sub-phylum)– ग्नैथोस्टोमेटा (Gnathostomata)	जाति (Species)– लिथोग्राफिका (lithographica)
वर्ग (Class)– एवीज (Aves)	

आर्किऑप्टेरिक्स (Archaeopteryx) के अवशेष आधुनिक पक्षी एव सरीसृप वर्ग के प्राणियों को सम्बन्धित करने वाली संयोजी कड़ी (Connecting link) प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि उद्विकास (Evolution) के परिवर्तन–चरण में होने के कारण इस जीवाश्म प्राणी में सरीसृपों (Reptiles) एवं पक्षियों (Birds) के लक्षण उपस्थित थे। यह एक पारूपिक (Typical) वृक्षवासी (Arboreal) सामान्य कौवे के आकार का पक्षी था जो कि शायद घने जंगलों में निवास करता था।

5.3.4 आर्किऑप्टेरिक्स के प्रमुख लक्षण (Main Characters of Archeopteryx)

1. आर्किऑप्टेरिक्स का शरीर पक्षी समान, शरीर पंखों (Feathers) से पूर्ण रूप से ढँका था। शरीर का अनुलम्ब (Longitudinal axis) सरीसृपों के समान था।
2. इस प्राणी की अस्थियाँ ठोस थी, लेकिन अस्थियों में वायुकोषों (Air sacs) का अभाव था।
3. खोपड़ी (Skull) का परिमाण बड़ा, खोपड़ी में सरीसृपों एवं पक्षियों दोनों के लक्षण उपस्थित थे।

4. चोच (Beak) की उपिस्थत चोंच मे दाँत थे। उपर के जबड़े मे 26 दाँत थे और निचले जबडे मे 6 दाँत थे।
5. नेत्र (Eyes) आकार में बड़े स्क्लेरोटिक (Sclerotic) के छल्ले युक्त थे।
6. पंखो पर पिच्छ केवल अग्र भुजा पर पाये जाते थे। इनकी अंगुलियाँ नखरयुक्त (Clawed) थीं।
7. नौतल (Keel) स्टर्नम में अनुपस्थित था।
8. पसलियाँ पतली एवं एक शीर्षी (One-handed) होती थीं। इसमें अंकुशी प्रवर्ध (Uncinate Process) अनुपस्थित था।
9. श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) पक्षी समान थी जिसमे इलियम केवल 6 कशेरुकों से सन्धि युक्त थी, जोकि सेक्रम बनाते थे।
10. अंश मेखला (Pelvic girdle) कमजोर एवं पतली थी।

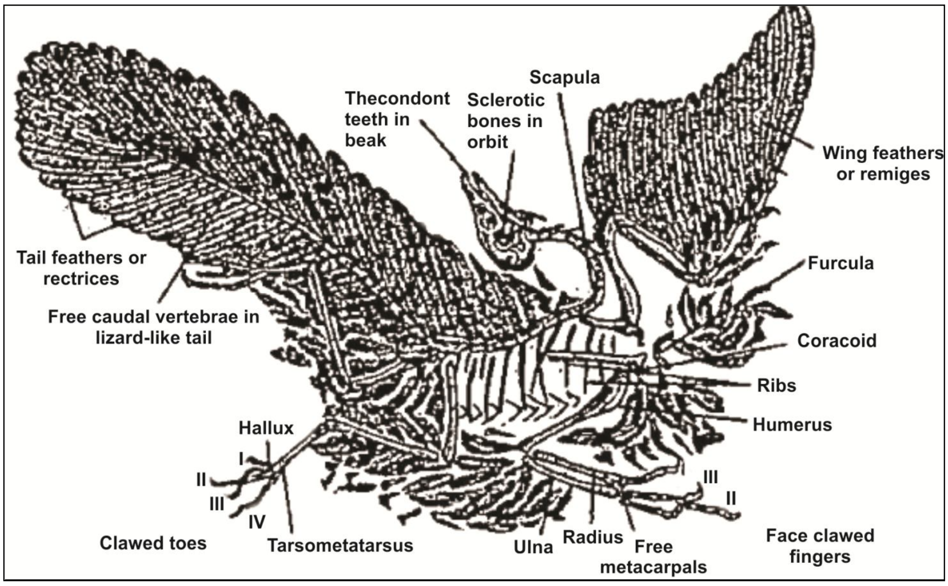

चित्र क्र. 5.15: Archaeopteryx (Lithographica)

11. कशेरुक दण्ड (Vertebral column) लम्बा था, कशेरुकों का सेन्ट्रकृम (Centrum) एम्फीसीलस (Amphicoelous) प्रकार का था।
12. ग्रीवा (Neck/cervical) एवं उदरीय पसलियाँ पाई जाती थीं।
13. टिबिया एवं फिबुला (Tibia and Fibula) पृथक् थी। प्रत्येक पश्च पाद मे 4 नखरयुक्त (Clawed) अंगुलियाँ थीं।
14. पूँछ (Tail) लम्बी होती थी जिसमे अनेक स्वतन्त्र कशेरुकाएँ (Vertebraes) होती थी।
15. मस्तिष्क (Bain) सपाट, संकरा कम विकसित था। मस्तिष्क मे प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध (Cerebral hemisphere) एवं अनुमस्तिष्क (Cerebellum) आकार में छोटे थे।

टिप्पणी

16. वर्तमान मे वैज्ञानिकों के अध्ययन से यह आभास मिलता है कि आर्किऑप्टेरिक्स एक उष्णपाती (Warm blooded Homiothermal) प्राणी था।

आर्किऑप्टेरिक्स सरीसृप एवं पक्षीवर्ग के प्राणियों के मध्य एक संयोजी (Connecting link) के रूप में जाना जाता है। आर्किऑप्टेरिक्स के सरीसृपीय (Reptilian) एवं पक्षीय (Avian) लक्षण निम्नलिखित प्रकार है–

(अ) आर्किऑप्टेरिक्स के सरीसृपीय लक्षण (Reptilian characters of Archaeopteryx)–

1. शरीर का अनुलम्ब अक्ष सरीसृप प्राणियों के समान लम्बा था।
2. सरीसृप प्राणियों के समान अस्थियाँ ठोस थीं। अस्थियों में वायुकोषों का अभाव था।
3. खण्डयुक्त लम्बी पूँछ पाई जाती थी।
4. जबड़ों मे दाँत पाये जाते थे। दाँत सरीसृप प्राणियों के समान नुकीले, समरूपी (Homodont), छोटे, इनेमेल (Enamel) युक्त थे।
5. पसलियाँ एक शीर्ष वाली (Monocephalous) थी। ग्रीवा (Cervical) एवं उदरीय (Abdominal) पसलियाँ पाई जाती थी। अंकुशी प्रवर्ध अनुपस्थित थे।
6. अंश मेखला (Pectoral girdle) कमजोर एवं पतली थी।
7. स्टर्नम (Sternum) नौतल (Keel) रहित था।
8. कार्पल्स (Carpals) एवं मेटाकार्पल्स (Metacarpals) स्वतन्त्र थे।
9. कशेरुक (Vertebraes) एम्फीसीलस (Amphicoelous) प्रकार के थे।
10. नेत्रों (Eyes) के चारो ओर स्क्लेरोटिक छल्ले (Sclerotic rings) पाये जाते थे।
11. पूँछ मे 13–20 स्वतन्त्र कशेरुक (Vertebraes) पाये जाते थे। पुच्छ कशेरुक समेकित होकर पाइगोस्टाइल (pygostyle) को नहीं बनाते थे।
12. कशेरुक दण्ड (Vertebral column) की लम्बाई अधिक थी।
13. पश्च पाद (Hind limbs) की अस्थियाँ सरीसृप के समान थी। टिबिया एवं फिबुला (Tibia and fibula) पृथक् थी। प्रत्येक पश्च पाद मे 4 नखरयुक्त (Clawed) अंगुलियाँ थी।
14. मस्तिष्क सरीसृप प्राणियों के समान चिकना (Smooth), सँकरा (Narrow) एवं कम विकसित था। प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध (cerebral hemisphere) एवं अनुमस्तिष्क (Cerebellum) का आकार छोटा था।

(ब) आर्किऑप्टेरिक्स के पक्षीय लक्षण (Avian characters of Archaeopteryx)–

1. सम्पूर्ण शरीर पिच्छों (Feathers) के आवरण से पूर्ण रूप से ढँका था।
2. पूँछ (Tail) के दोनों पार्श्वों पर पुच्छ पिच्छ (Rectrices feathers) पक्षियों के समान पाये जाते थे।
3. रेमिजेस (Remiges) पिच्छ (Feathers) पक्षियों के समान प्रारम्भिक (Primaries) या मेटाकार्पोडिजिटल्स (Metacarpodigitals) एवं द्वितीयक (Secondaries) या क्युबिटल्स (Cubitals) में विभाजित थे।
4. शरीर पर पाये जाने वाले शेष पिच्छ (Feathers) आधुनिक पक्षियों के समान कोमल थे।
5. खोपड़ी (Skull) पक्षियों के समान आकार में बड़ी थी। खोपडी समेकित अस्थियों से बनी थी।
6. खोपड़ी मोनोकोन्डायलिक (Monocondylic) थी या खोपड़ी में एक कपालीय– अस्थिकन्द (Occipital condyle) पाया जाता था।
7. नेत्र कोटर (Eye orbits) पक्षियों के समान थे।
8. 'U' आकृति का फर्कुला (Furcula), क्लैविकल्स (Clavicles) अस्थियों के समेकन से बना था।
9. रेडियस एवं अल्ना (Radius and ulna) अधिक विकसित थी।
10. अग्र उपांग (Fore limbs) पिच्छों के रूप मे रूपान्तरित थे और उसमें तीन अंगुलियाँ थी। अंगुलास्थियाँ पृथक् थी।
11. पेल्विस (Pelvis) एवं पश्च उपांग (Hind limbs) भी पक्षियों के समान थे श्रोणि (Pelvis) लम्बी और पीछे की दिशा की और पक्षियों के समान थी।
12. पश्च उपांग (Hind limbs) लम्बे चार नखरयुक्त (clawed) अंगुलियाँ थीं। प्रथम अंगुली पीछे की ओर तथा शेष तीन अग्र दिशा की और स्थित थीं।
13. कन्टूर पिच्छ (Contour feathers) गर्दन के आधार पर तथा कोवर्टस पर (Wing coverts) पाये जाते थे।
14. अंगूठा (Hallux) छोटा एवं पीछे की और मुडा हुआ प्रतिरोध्य (Opposable) के रूप में होता था।
15. मस्तिष्क खोल (Brain case) पक्षियों के समान था।
16. जबड़ों का चोंच (Beak) में रूपान्तरण होता था।
17. पश्च उपांगों से पक्षियों के समान चलते थे।

टिप्पणी

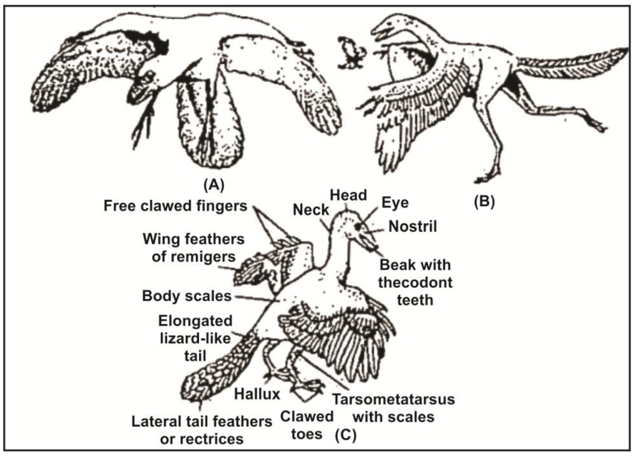

चित्र क्र. 5.16: Archaeopteryx: (A) Restoration as an Arboreal Glider, (B) Reconstruction as a Cursorial Predator, (C) Showing Detailed Structure

5.3.5 आर्किऑप्टेरिक्स का महत्व (Importance of Archaeopteryx)

आर्किऑप्टेरिक्स की संरचना तथा सरीसृपीय एवं पक्षीय दोनों प्राणियों के लक्षणों की उपस्थिति के आधार पर यह आभास होता है या निष्कर्ष निकलता है कि इस प्राणी में वास्तविक उड़ने की क्षमता नहीं थी और यह प्राणी केवल विसर्पन/अवरोहन (Glide/Volplane) ही कर सकता था। यह प्राणी एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर विसर्पन के द्वारा ही जाता होगा, क्योंकि आधुनिक पक्षियों के विपरीत इस पक्षी मे स्टर्नम आकार में छोटा तथा नौतल विहीन (Without keel) था। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि संरचनात्मक लक्षण पक्षियों का सरीसृपों से उद्गम को दर्शाने की अतिरिक्त यह भी दर्शाता है कि पक्षी उसी आर्कोन्सॉरन स्तम्भ (Archansauran stem) से विकसित हुए हैं जिससे डायनोसॉर समूह (Dinosaur group) का उद्गम (Origin) हुआ था। ये सरीसृपीय (Reptilian) वृक्षवासी प्राणी जोकि आर्निथिश्चिया समूह (Ornithischia group) से सम्बन्धित है, घने जंगलों में वास करते थे और कूदने एवं वृक्षों के बीच विसर्पण (Glide) करने में सक्षम थे और पक्षियों में वास्तविक उडान (Flight) का प्रारम्भ सर्वप्रथम विसर्पण से हुआ होगा। उपर्युक्त तथ्यों से यह सिद्ध हो जाता है कि पक्षी, सरीसृप प्राणियों (Reptilian) से विकसित हुए हैं।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

11. निम्न में किसके अनुसार डायनोसॉर्स की उत्पत्ति काटिलोसॉर्स स्तम्भ से हुई थी?

(अ) क्यूवियर (ब) हयूने

(स) वोल्ट वुड (द) लैमार्क

टिप्पणी

12. विलुप्त प्राणी के अन्तर्गत कौन–कौन से प्राणी आते हैं?

(अ) अकशेरुक प्राणी (ब) कशेरुक प्राणी

(स) (अ) + (ब) दोनों नही (द) कोई नहीं

13. डायनोसॉर्स किस उप–वर्ग के प्राणी हैं?

(अ) आर्कोसॉरिया (ब) सॉरिस्चिया

(स) आर्निथिस्चिया (द) सॉरोपोडा

14. गण आर्निथोपोडा के डायनोसॉर्स है–

(अ) इग्नेवोडान (ब) स्टेगोसॉरस

(स) केम्पटोसॉरस (द) (अ) + (ब) दोनों

15. मनुष्य को डायनासॉर्स के बारे मे किस वर्ष तक ज्ञात नहीं था?

(अ) 1774 (ब) 1824

(स) 1924 (द) 1874

16. बत्तख चोंच डायनोसॉर्स किसको कहते हैं?

(अ) इग्वेनोडान (ब) केम्पटोसॉरस

(स) डिप्लोडोकस (द) ट्राइसेरेटारस

17. उपगण थीरोपोडा के अन्तर्गत कौन–से डायनोसॉर्स आते हैं?

(अ) गोर्गोसॉरस (ब) आर्निथोलेस्टेस

(स) टायरेनोसॉर्स (द) सभी

18. डायनोसॉर्स सर्वप्रथम किस स्थान पर पाये गये?

(अ) अफ्रीका (ब) अमेरिका

(स) जर्मनी (द) न्यूजीलैंड

19. किस देश मे डायनोसॉर्स नहीं पाये गये हैं?

(अ) ऑस्ट्रेलिया (ब) अफ्रीका

(स) यूरोप (द) न्यूजीलैंड

20. डायनोसॉर्स किस स्थान पर उत्पन्न हुए?

(अ) एशिया (ब) ऑस्ट्रेलिया

(स) उत्तरी अटलांटिक बेसिन (द) आर्कटिक क्षेत्र

5.4 प्राणी भौगोलिक वितरण (Zoo-geographical Distribution)

पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के असंख्य जीव–जन्तु रहते हैं। जीवों की संख्या तथा विविधता इतनी अधिक है कि इनका वितरण भू–मण्डल पर समान रूप से नहीं किया जा सकता है। फिर भी प्रत्येक जाति के वितरण का निश्चित क्षेत्र होता है और वह उसी में सबसे अधिक सफलतापूर्वक रह सकती है। इसी के आधार पर सम्पूर्ण जन्तु–समुदाय को निश्चित भू–खण्डों मे बाँटा गया है। **वालेस** (A.R. Wallace) ने भू–मण्डल के तल को 6 प्रदेशों मे बाँटा है। प्रत्येक प्रदेश मे विशिष्ट जेनेरा (Genera) तथा जातियाँ (Species) पायी जाती हैं। इन प्रादेशिक जन्तुओं को प्राणिजात (Fauna) कहते हैं तथा प्रदेश को परिमण्डल (Region) कहते हैं। ये परिमण्डल निम्नलिखित हैं–

1. पेलिआर्कटिक परिमण्डल (Palaearctic Region)
2. निआर्कटिक परिमण्डल (Nearctic Region)
3. नियोट्रॉपिक परिमण्डल (Neotropic Region)
4. इथिओपियन परिमण्डल (Ethiopian Region)
5. ओरिएण्टल परिमण्डल (Oriental Region)
6. ऑस्ट्रेलियन परिमण्डल (Australian Region)

5.4.1 पेलिआर्कटिक परिमण्डल (Palaearctic Region)

1. **भौगोलिक सीमाएँ (Geographical Limits)**– यह पुराने विश्व का उत्तरी भाग है जिसमें यूरोप, चीन, जापान उत्तरी अफ्रीका, सहारा, साइबेरिया, भूमध्य प्रदेश, मंचूरिया, हिमालय तथा अरेबिया के उत्तर के समस्त प्रदेश सम्मिलत है। यह स्थल द्वारा इथिओपियन तथा ओरिएण्टल परिमण्डलों में जुड़ा है। इसका क्षेत्रफल लगभग 1,40,00,000 वर्ग मील है।
2. **भौतिक विशेषताएँ (Physical Features)**– इस परिमण्डल की जलवायु ठण्डी है जिसमें उत्तरीय ध्रुवीय जलवायु का आभास होता है इसमें शुष्क मैदान तथा नम सदाबहार वन है। एशिया तथा अफ्रीका में शुष्क मैदान है। पूर्वी एशिया, चीन तथा जपान में पर्णपाती वृक्षों के वन है। इस परिमण्डल में तापक्रम तथा वर्षा की विविधता बहुत है।
3. **प्राणिजात (Fauna)**– इस परिमण्डल में पारिस्थितिक विविधताओं के अधिक होने के कारण प्राणिजात (Fauna) अधिक समृद्ध नहीं है, अतः इसमें विविधताएँ अधिक पायी जाती है। इस परिमण्डल के प्राणिजात निआर्कटिक परिमण्डल के प्राणिजात के साथ काफी समानता प्रदर्शित करते हैं।

   इस परिमण्डल पर कशेरुकियों के 135 वंश है, जिनमें स्तनधारियों के 33, पक्षियों के 68, सरीसृप के 24, उभयचरों के 10 तथा आलवण जलीय मछलियों के 13 वंश सम्मिलित हैं।

4. **मछलियाँ (Fishes)**– इस परिमण्डल में सिप्रिनिड्स (Cyprinids) की कई जातियाँ, कैट फिशेज (Cat Fishes) की कुछ जातियाँ तथा चैनिड (Channids), पर्चिड (Perchids), कोबीडि (Cobitides), ऐनेबैण्टिड्स (Anabantids) तथा मैस्टाकेम्बिलिड्स (Mastacembelids) की कुछ अलवणीय जातियाँ भी पायी जाती हैं। डालिया (Dallia) मछली, पूर्वी साइबेरिया तथा पैडिल फिश (Paddle fish) केवल चीन में पायी जाती है।

5. **उभयचर (Amphibia)**– इसमें अधिकांश उभयचर पूँछयुक्त है। इनमें नेक्टूरस (Nacturus), साइरन (Siren), एम्फीयूमा (Amphiuma) तथा प्रोटियस (Proteus) प्रमुख है। पूर्वी एशिया में पाये जाने वाले सैलामैण्डर (Salamander) लगभग $1\frac{1}{2}$ फीट लम्बा होता है।

   पुच्छहीन उभयचरों मे राना (Rana), मेंढक, हायला (Hyla), बुफो (Bufo) तथा रैकोफोरस (Rhacophorus) आदि मेंढक मिलते हैं।

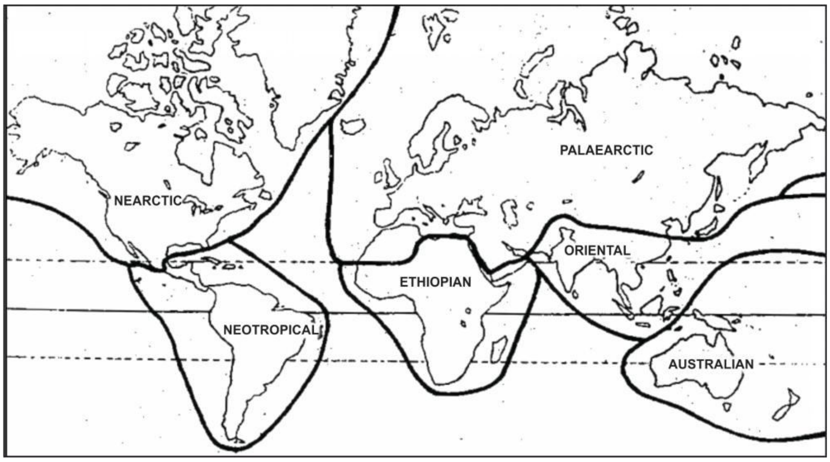

चित्र क्र. 5.17: **Zoo-geographical Regions of the World**

6. **सरीसृप (Reptiles)**– इस परिमण्डल में सरीसृप अधिक विकसित नहीं हैं। कुछ लिजार्डस (Lizards) कुछ स्किंक (Skinks), कुछ कछुए (Turtle) तथा सर्पों की कुछ जातियाँ पायी जाती हैं। इनमें से एक भी वंश स्थानिक (Endemic) नहीं है। इसमें केवल वाइपर, पिटवाइपर, कोल्युब्रिड आदि सर्प मिलते हैं।

   परिमण्डल के दक्षिणी भाग मे टेस्टुडो (Testudo) व ट्रायोनिक्स (Trionyx) नामक कछुए, चीनी घडियाल, कैमेलियोन, वैरेनस (Varanus), टिफलॉप्स (Typhlops) तथा सैण्डबोआ (Sandboa) आदि मिलते हैं।

7. **पक्षी (Aves)**– इस परिमण्डल में पक्षियों के लगभग 53 वंश पाये जाते हैं जिनमें से 17 वंश अन्य प्रदेशों में भी पाये जाते हैं तथा शेष वंश प्रवासी (Migrated) पक्षियों के हैं। ये वंश ग्रेब्स (Grebes), किंग फिशर (King Fisher), लून (Loon), सारस (Herons), बगुले (Storks), बत्तख (Duck), कोयल (Cuckoo), कठफोडवा (Woodpecker), भरतपक्षी, (Lark)

नीलकंठ (Jays), कौआ (Crow), फिंच (Finches) तथा स्टारलिंग (Starlings) आदि पक्षियों के हैं जो इस परिमण्डल में पाये जाते हैं।

8. **स्तनी (Mammalia)**– इस परिमण्डल में स्तनियों के 33 वंश मिलते हैं जिनमें से केवल दो वंश स्पेलेसिडी (Spalacidae) तथा स्क्लेविरिडी (Scleviridae) यहाँ के स्थानीय वंश हैं जो अन्य प्रदेशों में नहीं पाये जाते हैं। इनमें अतिरिक्त इस परिमण्डल में बीवर (Beavers), मोल्स (Moles), हैजहॉग (Hedgehogs), पंडा (Panda), सुअर (Pigs), गिलहरी, चूहा, शशक, हिरण, कुत्ते, बिल्ली आदि के वंश पाये जाते हैं।

पेलिआर्कटिक परिमण्डल के उपक्षेत्र (Palaearctic's Sub-division)

इस परिमण्डल को चार उप–प्रदेशों या उप–क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है–

1. **यूरोपीय उप–क्षेत्र (European Sub-division)**– इसके अन्तर्गत उत्तरी एवं मध्य यूरोप, काला सागर सम्मिलित है। इस उप–क्षेत्र मे 85 वंश कशेरुक प्राणियों के पाये जाते हैं, जिसमें से 6 उभयचरी (Amphibians), सरीसृप (Reptiles), 6 तथा शेष पक्षियों एवं स्तनी प्राणियों के अनेक वंश होते हैं। मायोगेल (Myogale) स्तनी प्राणी स्थानिक है।
2. **मध्य यूरोपीय उप–प्रदेश (Middle European Sub-division)**– इसके अन्तर्गत शेष यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, एशिया माइनर, ईरान, अफगानिस्तान तथा बलूचिस्तान आते हैं। यह प्राणी समूह की दृष्टि से सबसे समृद्ध उप–क्षेत्र है। स्थली कशेरुक की संख्या 124 वंशों की है। स्तनी प्राणियों में हाथी, श्रु (Shrew), हायना (Hyaena) तथा पक्षियों में पैस्टर प्रमुख है।
3. **साइबेरियन उप–प्रदेश (Siberian Sub-division)**– इस उप–क्षेत्र में हिमालय के उत्तर का उत्तरी एशिया का भाग आता हैं। जलवायु अत्यन्त उग्र है। स्थली कशेरुक की संख्या 94 वंशों की होती है जिसमें से स्तनी प्राणियों मे यार्क, मस्कडीयर एवं मोल प्रमुख वंश है।
4. **मन्चुरियन उप–प्रदेश (Manchurian Sub-division)**– इसमें मंगोलिया, जापान, कोरिया तथा मन्चुरिया के क्षेत्र आते हैं। कशेरुक प्राणियों के 102 वंश पाये जाते हैं। स्तनी-प्राणियों में लंगूर, चीनी जल मृग, ग्रेट पाण्डा तथा गुच्छि मृग स्थानिक है।

5.4.2 निआर्कटिक परिमण्डल (Nearctic Region)

1. **भौगोलिक सीमाएँ (Geographical limits)**– इस परिमण्डल में उष्णकटिबन्ध के उत्तर में अमेरिका, ग्रीनलैण्ड, न्यूफाउण्डलैण्ड तथा मैक्सिको के पठारी भाग सम्मिलित हैं। यह भाग चारों ओर से समुद्र द्वारा घिरा है अतः सबसे पृथक् है। यह केवल स्थल की एक संकीर्ण पट्टी के द्वारा मध्य अमेरिका से जुड़ा है।
2. **भौतिक विशेषताएँ (Physical Features)**– इसकी जलवायु पेलिआर्कटिक परिमण्डल की भाँति शीतोष्ण है तथा इसकी जलवायु परिवर्तनशील है। इसके पश्चिमी भाग में उत्तर–दक्षिण की ओर फैली

विस्तृत मालाएँ है। उत्तर मे ग्रीनलॅण्ड की आर्कटिक पट्टी है जहाँ बर्फ जमी रहती है। उत्तरी अमेरिका के पूर्वी भाग में पर्णपाती तथा मध्य भाग में घास के मैदान है।

3. **प्राणिजात (Fauna)**– इस परिमण्डल में पेलिआर्कटिक तथा नियोट्रॉपिकल (Neotropical) मण्डलों के मिश्रित जन्तुसमूह पाये जाते हैं। इसमें कशेरुकियों के 120 वंश हैं। जिसमें से स्तनधारियों के 26, पक्षियों के 40, सरीसृपों के 21, उभयचरों के 14 तथा अलवणीय जल की मछलियों के 24 वंश पाये जाते हैं।

4. **मछलियाँ (Fishes)**– अलवणीय जल की मछलियों में पैडिल फिश (Paddle Fish), सिप्रिनिडी (Cyprinidae), कैटफिश (Catfish), लेपिडोस्टियस (Lapidosteus), हयूरो (Huro), पिलयोमा (Pileoma), प्रोमोटिस (Promotis), बोलियोसोम, (Boleosoma), ब्रिटलस (Brytlus), नोटूरस (Noturus), साल्मोनिड (Salmonids) आदि मछलियाँ पाई जाती हैं।

5. **उभयचर (Amphibia)**– यहाँ पूँछयुक्त उभयचरों का आधिक्य हैं जिनमें एम्फीयूमा (Amphiuma), एम्बीस्टोमा (Ambystoma), एक्सोलोटल (Axolotl), साइरन (Siren) आदि प्रमुख वंश है। पुच्छविहीन उभयचरों में राना (Rana), बुफो (Bufo), हायला (Hyla) है। इस परिमण्डल के विशेष उभयचरों मे स्केफिओपस (Scaphiopus), स्यूडेक्रिस (Pseudacris) तथा एक्रिस (Acris) है।

6. **सरीसृप (Reptiles)**– सरीसृप इस परिमण्डल के काफी समृद्ध प्राणी। ट्रायोनिक्स (Trionyx), कस्तूरी कछुआ (Musk-turtle), एमीडिन (Emydine) तथा घडियाल एवं मगरमच्छ यहाँ सामान्य रूप से पाये जाने वाले सरीसृप है।

   औफियोसॉरस (Ophiosaurus) तथा फ्राइनोसोमा (Phrynosoma) केवल टैक्सास में तथा हीलोडर्मा (Heloderma) मध्य अमेरिका में पाये जाने वाले लिजार्ड है।

   सर्पों में रैटिल सर्प (Rattle snakes) यहाँ के विशिष्ट सर्प है। इनके अतिरिक्त यहाँ पिटवाइपर, प्रवाल सर्प (Coral snake), कोल्युब्रिड (Colubrids) आदि सर्प पाये जाते हैं।

7. **पक्षी (Aves)**– इस परिमण्डल पर पक्षियों के 49 वंश है जिनमें अधिकांश परिमण्डल में दूर–दूर वितरित है। यहाँ के पक्षी प्रायः पेलिआर्कटिक तथा नियोट्रॉपिकल प्रदेशों के समान है।

   कामीआ (Chamaea), कैथरपेस (Catherpes), सेण्ट्रोनिक्स (Centronyx), पिसीकार्वस (Picicorvus), हाइलैटोमस (Hylatomus), क्यूपिडोनिया (Cupidonia), ऑरिपेरस (Auriparus), फाइलोहेला (Phylohela) आदि यहाँ के स्थानिक (Endemic) पक्षी है।

इनके अतिरिक्त यहाँ लून्स (Loons), पेलिकन, गिद्ध (Vultures), सारस (Herons), बाज (Hawks), बत्तख, कबूतर, उल्लू, गोट सकर (Goat sucker), हमिंग बर्ड (Humming bird), रेन (Wrens), लार्क (Larks) आदि पक्षी भी सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

8. **स्तनी (Mammalia)**– स्टारनोज मोल (Starnose mole), कनाडा का सेडी (Canadian Porcupine), अमेरिकन बैजर, लम्बी टाँग वाला चमगादड आदि यहाँ के विशिष्ट स्थानिक (Endemic) स्तनी हैं।

   इनके अतिरिक्त नेवले (Weasels), उडन गिलहरी (Flying Squirrels), कूदने वाले चूहे (Jumping mouse), ओपोसम, छछूँदर, शशक, भालू, मृग, बीवर्स आदि भी इस परिमण्डल में पाये जाने वाले स्तनी है।

निआर्कटिक प्रदेश के उप–क्षेत्र (Nearetic's Sub-divisions)

निआर्कटिक प्रदेश/क्षेत्र को वैलेस (Wallace) ने निम्नलिखित चार उप–क्षेत्रों/उपप्रदेशों (Sub-division) में विभाजित किया है–

(i) **केलिफोर्निया उप–क्षेत्र (California Sub-division)**– इस उप–क्षेत्र में उत्तरी अमेरिका के सियरा, विवेदा, कास्कड श्रेणी से वानकू द्वीप (Vancouver Island) ब्रिटिश कोलम्बिया (British Columbia) के कुछ द्वीप आते हैं। स्थली प्राणियों के 86 वंश आते हैं, जिनमें से 21 स्तनी प्राणियों के वंश, 49 पक्षियों के वंश, 8 सरीसृप तथा 8 उभयचरी (Amphibians) के वंश आते हैं। स्थानिक प्राणियों के अन्तर्गत चैमेइडी (Chameidae) वंश, वेम्पाइर चमगादड (Vampire bat) तथा स्वतन्त्र पूँछ वाले चमगादड आदि प्राणी होते हैं।

(ii) **कनाडा उप–क्षेत्र (Canada Sub-division)**– इसके अन्तर्गत उत्तरी अमेरिका के शेष भाग एवं ग्रीनलैण्ड (Green land) आते हैं। प्राणि समुदाय में रेनडियर (Reindeer), बाइसन (Bison), लैमिंग (Lemming), ग्लूट्न्स (Gluttons), सफेद भालू तथा बर्फीली आर्कटिक लोमडी मुख्य हैं।

(iii) **चट्टानी पर्वत उप–क्षेत्र (Rocky Mountain Sub-division)**– यह क्षेत्र कैलीफोर्निया के पूर्व में उठा तथा सूखा क्षेत्र है। स्थली कशेरुक प्राणियों के अन्तर्गत 107 वंश प्राप्त होते हैं। कोई भी प्राणी स्थानिक नहीं होता है। इस क्षेत्र मे पहाड़ी बकरा, बाइसन (Bison), चरागाह के कत्ते (Cyonomys) तथा विषैली छिपकली सम्मिलित है।

(iv) **एलेघेनी उप–क्षेत्र (Alleghany Sub-division)**– इसमें पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका तथा वृहत् झीलें आती हैं। प्राणि समुदाय में ओपोसम मोल, वेम्पायर चमगादड (Vampire bat), कबूतर, तोता, केरोलिना तोता (Carollina parrot) प्रमुख हैं।

5.4.3 नियोट्रॉपिकल परिमण्डल (Neotropical Region)

1. **भौगोलिक सीमाएँ (Geographical Limits)**– इस परिमण्डल मे दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका, दक्षिण मैक्सिको का निचला उष्ण–कटिबन्धीय प्रदेश तथा पश्चिमी द्वीपसमूह (West Indies) सम्मिलित है।

2. **भौतिक गुण (Physical Features)**– यहाँ की जलवायु उष्ण–कटिबंधीय है, किन्तु दक्षिण अमेरिका के दक्षिण भाग की जलवायु शीतोष्ण है। यहाँ घने वन व घास के मैदान फैले हुए हैं। अमेजन घाटी में सदाबहार वन तथा सवाना व अर्जेण्टाइना में पर्णपाती वृक्षों के वन और घास के मैदान है। दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी भाग की जलवायु शुष्क है। परिमण्डल में जलवायु की विविधता के कारण विभिन्न प्रकार के जन्तु पाये जाते हैं।

3. **प्राणिजात (Fauna)**– इस परिमण्डल मे स्थलीय कशेरुकियों के 155 वंश पाये जाते हैं जिनमें 39 वंश स्थानिक है। शेष प्राणी अन्य प्रदेशों की भाँति हैं।

4. **मछलियाँ (Fishes)**– यहाँ कार्प कुल की मछलियों का अभाव है। यहाँ पायी जाने वाली स्वच्छ जलीय मछलियाँ निम्नलिखित प्रकार है– कैरासियन मछलियाँ (Characian fishes), कैटफिश (Catfish), जिम्नोटिड्स (Gymnotids), ट्राइगोनिड (Trygonid) तथा फेफड़े वाली मछलियाँ लेपिडोसाइरन (Lepidosirent)।

5. **उभयचर (Amphibia)**– इस परिमण्डल पर पुच्छहीन उभयचरों के 14 वंश मिलते हैं जिनमें राना, बुफो, पाइपा तथा हायला सामान्य रूप से पाये जाने वाले वंश हैं। इनके अतिरिक्त सिसिलियन्स (Caecilians), साइफोनोप्सिस (Siphonopsis) तथा राइनोटेरीमा (Rhinoterema) जातियाँ भी पायी जाती हैं। पाइपिडी (Pipidae), प्लैक्टोमेण्टिडी (Plactomantidae) तथा हाइलोप्लिसाइडी यहाँ की स्थानिक (Endemic) विशिष्ट जातियाँ हैं। पूँछ वाले उभयचरों मे स्पिलेर्पिस (Spelerepes) यहाँ के स्थानिक वंश हैं।

6. **सरीसृप (Reptiles)**– यहाँ के सरीसृप निआर्कटिक, इथिओपियन तथा ओरिएण्टल प्रदेशों के समान है। यहाँ मगरमच्छों में एलीगेटर (Alligator), कछुओं में डर्माटेमिस (Dermatemys), स्टूरोटाइपस (Stourotypus), पैल्टोसैफेलस (Paltocephalus) तथा कैलीस (Chelys) आदि के वंश प्रमुख हैं।

लिजाड्र्स के 15 वंश पाये जाते हैं जिनमें पाँच यहाँ के स्थानिक (Endemic) हैं– हिलोडर्मिडी (Helodermidae), एनाडिएडी (Anadiadae), काइरोकोलिडी (Chirocolidae), सर्कोसॉरिडी (Cercosauridae) तथा आइफिसिआइडी (Iphisiaidae)–

1. **सर्प (Snakes)**– यहाँ टिफलॉप्स (Typhlops), लेप्टोटिफलॉप्स (Leptotyphlops), कोल्युब्रिड्स (Colubrids), कोरल सर्प (Coral Snakes), बोआस (Boas), पिटवाइपर (Pit viper) आदि सर्प पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त ड्रोमिकस (Dromicus), एपिक्रेट्स (Epicrates) अंगलियाँ

(Ungalia) तथा एलप्स (Elaps) यहाँ के विशेष स्थानिक (Endemic) सर्प हैं।

टिप्पणी

2. **पक्षी (Aves)**– इस परिमण्डल को **'पक्षी प्रदेश'** भी कहते हैं। यहाँ पक्षियों के 67 कुल पाये जाते है जिनमें 23 कुल सीमित वितरण वाले हैं तथा दो स्थानिक हैं।

   रिया (Rhea), अमेरिकन ऑस्ट्रिच तथा टिनामस (Tinamus) आदि न उडने वाले विशेष क्षेत्रीय पक्षी हैं। गायक पक्षी (Song-bird) की अनुपस्थिति यहाँ का विशेष संयोग है। बटेरों (Quails) में केवल फीजेन्ट (Pheasant) जाति ही यहाँ पायी जाती है।

   अबाबील (Swallow), स्विफ्ट (Swift), कठफोडवा (Woodpecker), सारस (Heron), आइबिसिस (Ibeses), कबूतर, तोते, गोट सकर (Goat Sucker), बत्तख (Ducks), बगुले (Storkes), प्लॉवर्स (Plovers) आदि यहाँ सामान्य रूप से पाये जाने वाले पक्षी हैं।

   इनके अतिरिक्त इस परिमण्डल के क्षेत्र विशेषी (Endemic) पक्षियों के निम्नलिखित कुल पाये जाते है– केरिआमाइडी (Cariamidae), टिनामाइडी (Tinamidae), बुकोनाइडी (Puff birds), सोफाइडी (Safaidae), पेलिमिडिइडी (Honned Screames), फार्मिकेराइडी (Anti-thrusher), गेल्बुलिडी (Jacanas), रिआइडी (Rheaidae) आदि–

   स्तनी (mammalia)– यहाँ स्तनियों के 32 कुल पाये जाते हैं जिनमें 10 कुल स्थानिक है तथा शेष वितरित हैं।

   यहाँ टाल्पीडी (Talphidae), आर्सिडी (Urcidee-Hkkyw), सर्विडी (Cervidae), मृग, बकरी व भेड आदि अन्य प्रदेशों में सामान्य रूप से पाये जाने वाले स्तनी यहाँ नही मिलते हैं।

यहाँ के स्थानिक स्तनियों के कुल निम्नलिखित प्रकार है– ऑक्टोडोण्टिडी (Octodontidae), एकमिडी (Echimyidae), स्लॉथ, ब्रेडिपोडाइडी (Bradypodidae), डेसिपोडाइडी (Dasypodidae), चिंचिलिडी (Chinchillidae), कीटभक्षी, मिरमेकोफेगाइडी (Myrmecophagide), डाइडैल्फिडी (Didelphidae) तथा सीनोलेस्टिडी (Cenolestidae)।

नियोट्रॉपिकल के उपक्षेत्र (Neotropical's Sub-divison)

इस क्षेत्र को निम्नलिखित चार उप–क्षेत्रों में विभाजित करते हैं–

(i) ब्राजील उपक्षेत्र (Brazil Sib-division)– इस उप–क्षेत्र में उत्तर में पनामा, भू–सन्धि तक तथा दक्षिण अमेरिका में उष्ण–कटिबन्धीय वन प्रदेशों तक का भाग आता है। इस उप–क्षेत्र में अमेरिकन बनछर, वेम्पायर चमगादड (Vampire) अमेरिकन स्लॉथ (Sloth), ओपोसोम, आर्मेडिली, टेपीर (Tapir) आदि प्रमुख हैं।

(ii) चिली उप–क्षेत्र (Chile Sub-division)– इसके अन्तर्गत दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट पर पेरु के एण्डीज से बोलिविया (Bolivia) क्षेत्र पर आता हैं इसका प्रमुख प्राणी लामा (Lama), चिंचिला (Chinchila) आइल पक्षी है।

(iii) वेस्टइण्डीज उप–क्षेत्र (West Indies Sub-division)– इसके टोबैगो तथा ट्रिनीडाड के अलावा स्मस्त पश्चिम द्वीप समूह के क्षेत्र आते हैं स्थली कशेरुक के 76 वंश पाये जाते हैं। इनमें से 7 स्तनी, 47 वंश पक्षी के, 16 सरीसृप, 6 उभयचरी है। काँटेदार चडा, प्लाण्टकटर, अमेरिकन कीपर एवं इंडेण्टेट प्राणी प्रमुख है।

(iv) मैक्सिकन उप–क्षेत्र (Mexican Sub-division)– यह उप–क्षेत्र पनामा परिमण्डल के उत्तर तथा संकीर्ण स्थल सेतु तक सीमित है। वह क्षेत्र उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका को जोड़ता है। तापीर (Tapir), कीचड के कछुए (Mud terrapins), ऐंगुइडी (Anguidae) प्राणी प्रमुख हैं।

5.4.4 इथियोपियन परिमण्डल (Ethiopian Region)

1. **भौगोलिक सीमाएँ (Geographical Limits)**– इसमें सहारा मरुस्थल के दक्षिण में स्थित अफ्रीका, मैडागास्कर, दक्षिण अरब आदि शामिल हैं। यह ऊपर में सहारा मरुस्थल के द्वारा पेलिआर्कटिक प्रदेश से जुड़ा है परन्तु सहारा मरुस्थल भौगालिक अवरोध की भाँति कार्य करता है, क्योंकि तीन ओर से समुद्र से घिरा है।

2. **भौतिक विशेषताएँ (Phyisical features)**– यह मुख्यतः उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश है। मध्य में घने जंगल व मैदान हैं। इसमें अनेक बड़ी–बड़ी नदियाँ हैं। इसके दक्षिण भाग में शीतोष्ण जलवायु पायी जाती है।

3. **प्राणीजात (Fauna)**– इस परिमण्डल का प्राणिजात समृध्द तथा विविधतापूर्ण हैं यहाँ कशेरूकियों के अनेक क्षेत्र–विशेषी कुल मिलते है। यहाँ स्थलीय कशेरूकियों के 161 कुल पाये जाते है।

4. **मछलियाँ (Fishes)**– इस परिमण्डल पर मछलियों में काफी विविधता पायी जाती हैं आदिकालीन बाइकीर (Bichirs), प्रोटोप्टेरस (Protopterus), आइसोस्पोण्डाइली (Isospondyle), कैट–फिश (Catfish), अफ्रीकन विद्युत मछलियाँ आदि यहाँ के विशिष्ट स्थानिक हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ पायी जाने वाली मछलियाँ निम्नलिखित प्रकार है– सिप्रिनिड्स (Cyprinids), कैरासाइनिड्स (Characinids), सिप्रिनोडॉण्ट (Cyprinodont) तथा साइकिड्स (Cicids)।

5. **उभयचर (Amphibia)**– इस परिमण्डल का उभयचर प्राणिजात विशेष उल्लेखनीय नहीं है। जीनोपस (Xenopus) यहाँ का एक क्षेत्र–विशेषी उभयचर है तथा यहाँ पाइपीडी (Pipidae) का केवल एक वंश पाया जाता है। राना तथा बुफो जातियाँ यहाँ अनुपस्थित हैं पेलिपेडटाइडी (Polypedatidae) यहाँ के वृक्षीय मेंढक हैं जो बहुतायत से पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ सिसिलियन्स, ब्यूफोनिड्स, रानिडफस रैकोफोरिड्स तथा वैविसाइपिडिट्स आदि वर्ग के उभयचर जन्तु पाये जाते हैं।

6. **सरीसृप (Reptiles)**– कछुए तथा मगरमच्छ बहुतायत से मिलते हैं कछुओं में ट्रिओनिकाइडी (Trionichidae), टेस्टुडिनाइडी (Testudinidae), तथा पेलोमेड्यूसाइडी (Palomedusidae) आदि तीन प्रमख कुल है। कैमेलियोन में यहाँ केवल कैमेलियोनाइडी कुल ही मिलता है। लेसरटिड तथा एगेमडकम नामक लिजार्ड यहाँ कम प्राप्त है जबकि इग्वानिड्स अनुपस्थित होती है।

   कार्डिलाइडी (Cardylidae), स्पाइनी लिजार्ड (Spiny Lizard) एवं फलिनिड्स (Feylinids) यहाँ के क्षेत्र विशेषी कुल है। पाइथन (Python) टिफ्लॉप्स (Typhlops), बाइपेरिड्स तथा कोल्युब्रिडस आदि इस परिमण्डल के मुख्य सर्प है।

7. **पक्षी (Aves)**– यहाँ पक्षियों के 67 कुल पाये जाते है। जिनमे 6 स्थानिक है। इस परिमण्डल पर पक्षियों की बहुतायत है तथा ये ओरिएण्टल के पक्षियों से सजातीयता प्रदर्शित करते हैं हॉर्नबिल (Hornbills), भरतपक्षी (Larks), स्टार्क (Stark), तोते, कबूतर, वीवर्स (Weavers), गोट सकर (Goat Sucker), फिंच (Finches), गिनी–मुर्गे (Ginnae-Fowls) आदि यहाँ के सामान्य पक्षी हैं।

   शुतुरमुर्ग (Ostriches), पिट्टा (Pitta) माउसबर्ड (Mousebird), हैमर–हैडेड बर्ड (Hammer-headed bird), सेक्रेटरी बर्ड (Secretary bird) आदि यहाँ के स्थानिक पक्षी हैं।

8. **स्तनी (Mammalia)**– यहाँ स्तनियों के 38 कुल पाये जाते हैं जिनमें से 12 स्थानिक हैं। जिराफ (Giraffe), ओटर श्रू (Otter Shrews), गोल्डन मोल्स (Golden moles), हिप्पोपोटेमस (Hippopotamus), एलिफेन्ट श्रू (Elephant Shrews) आई–आई (Aye-aye); यहाँ के स्थानकि स्तनी हैं।

   लोरिस (Loris) चिम्पैंजी, गोरिल्ला, हाथी तथा राइनोसिरोस आदि इस परिमण्डल पर ओरियण्टल प्रदेश के प्रवासी स्तनी हैं। यहाँ के कीटभक्षी स्तनधारियों के तीन तथा कृतकों के 6 कुल पाये जाते हैं। कृत्तक कुल के स्तनियों मे अफ्रीकन उडने वाली गिलहरी, शकर चूहे (Cane rat), शैल चूहे (Rock-rats), पेडेटाइडी (Padetidae) अफ्रीका का उडने वाला शशक यहाँ के कृत्तक कुल के स्तनी हैं।

इथियोपियन परिमण्डल के उप–क्षेत्र (Ethiopian Sub-division)

इथियोपियन (Ethiopian) क्षेत्र 4 उप–क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है जो निम्नलिखित प्रकार है–

(i) **दक्षिणी अफ्रीकी उपक्षेत्र (South African Sub-division)**– यह उप–क्षेत्र अफ्रीका के दक्षिण में पाया जाता हैं कुल 13 कशेरुक वंश पाये जाते है। हाथी श्रू, अफ्रीकन मोल, गोल्डन मोल, शुतुरमुर्ग, आर्गवार्क, प्रमुख स्थानिक प्राणी हैं।

(ii) **पूर्व अफ्रीकी उपक्षेत्र (East African Sub-division)**– इसके अन्तर्गत पूर्वी अफ्रीका तथा अरब के उष्ण–कटिबंधीय क्षेत्र आते हैं। 145 कशेरुक

वंश पाये जाते हैं। गेंडा (Rhinoceros), व्हेल हेडेड बर्ड (Whale headed bird), कलंगी वाले चूहे प्रमुख स्थानिक वंश है।

(iii) **पश्चिमी अफ्रीकी उपक्षेत्र (West African Sub-division)**– यह क्षेत्र पश्चिमी कांगो तक फैला हुआ हैं। इस क्षेत्र में घने वन आते हैं। 134 स्थली कशेरुक प्राणी आते हैं। बन्दर, चिम्पेन्जी, गुरिल्ला आदि प्रमुख स्थानिक वंश हैं।

(iv) **मैलागासी उपक्षेत्र (Malagasy Sub-division)**– इस उप–क्षेत्र में मॉरिशस, मेडागास्कर तथा इनके समीप स्थित द्वीप सम्मिलित हैं। इस उप–क्षेत्र मे 86 स्थली कशेरुक वंश आते हैं। लीमर्स की 36 जातियाँ है। 35 पक्षियों के वंश है जिनमें से 5 स्थानिक है। सरीसृप में यूरोपेल्टाइडी तथा रेनाइडी वंश है। स्तनी प्राणियों में अंगुलेट की खिरहॉन तथा काइरोआइडो की सेण्टेडी प्रमुख है।

5.4.5 ओरिएण्टल परिमण्डल (Oriental Region)

1. **भौगोलिक सीमाएँ (Geographical Limits)**– इस परिमण्डल में एशिया महाद्वीप के सभी उष्ण–कटिबंधीय भाग, भारत, इण्डोनेशिया, श्रीलंका, मलेशिया, जावा, बोर्नियो, फारमोसा, फिलीपीन्स, दक्षिण चीन आदि सम्मिलित हैं। इस परिमण्डल के उत्तर में हिमालय अवरोध बनाता है।
2. **भौतिक गुण (Physical Features)**– इस परिमण्डल में विभिन्न प्रकार की जलवायु पायी जाती है। उत्तरी भाग में शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु तथा पूर्वी भारत, बर्मा, इण्डोचीन, उत्तर–पूर्व एशिया में घने बरसाती जंगल तथा प्रदेश के पश्चिमी भाग में मरुस्थल तथा दक्षिण में श्रीलंका तथा मलाया आदि में घने शीतोष्ण कटिबन्धीय वन पाये जाते है ।
3. **प्राणिजात (Fauna)**– स्थलीय कशेरुकियों मे 135 कुल इस प्रदेश में पाये जाते हैं। यहाँ का प्राणी इथिओपियन प्रदेश से काफी समानता रखता है। अतः प्राणी भूगोलशस्त्रियों ने इन प्रदेशों को पेलियोट्रॉपिकल परिमण्डल के अन्तर्गत रखा है। इस मण्डल का प्राणीजात न तो क्षेत्र–विशेषी कुलों में अधिक समृध्द है ओर न ही इसकी जातियाँ अधिक विस्तृत हैं।
4. **मछलियाँ (Fishes)**– मुख्य रूप से यहाँ कार्प (Carps) तथा कैटफिश (Catfish) मछलियाँ मिलती है। मछलियों के निम्नलिखित कुल सामान्य रूप से पाये जाते हैं– नोटोप्टेरिडी (Notopteride), आस्टियोग्लोसिडी (Osteogl-ossidae), नन्डाइडी (Nandide) तथा कोबिटाइडी (Cobitide), ऐनेबैण्टाइडी (Anabantidae), सिप्रिनिफॉर्मिस (Cypriniformes), मैस्टेसेम्बिलिडी (Mastacembelide)।
5. **उभयचर (Amphibians)**– यहाँ पर पूँछयुक्त उभयचरों की संख्या बहुत कम है, जबकि पुच्छहिन उभयचर काफी संख्या में पाये जाते हैं। रानिडी (Ranides), रैकोफोरिडी (Rhacophoridae), बुफोनिडी (Bufonides), हायलिडी (Hylidae), ब्रेविसिपिटिडी (Brevicipitidae), डिस्कोग्लोसिडी (Discoglossidaes) तथा पेलोबेटिड्स (Pelobatids) इनके प्रमुख कुल है। कुछ पादहीन एम्फीबियन्स–सिसिलियन्स भी पाये जाते हैं।

6. **सरीसृप (Reptiles)**– लिजार्ड, कछुए तथा सर्प सभी बहुत अधिक संख्या में मिलते है।
7. **लिजार्ड (Lizard)**– एगमिड (Agamids), गिको (Geckos), कैमेलियोन (Chameleons), स्किंक (Skinks), लेसरटिड्स (Lacertids) तथा वैरेनस (Varanus) ।
8. **कछुए (Turtles)**– टेस्टुडिनी (Testudinae), एमिडी (Emydae), ट्रायोनकिडी (Trionychidae) ।
9. **सर्प (Snakes)**– वाइपर्स (Vipers), पिटवाइपर्स (Pitvipers), पाइथन (Python), टिफलॉप्स (Tiphlops), लेप्टोटिफ्लॉप्स (Leptotyphlops) तथा कोल्युब्रिड (Colubrids) अधिक मिलते हैं तथा रैटल स्नेक अनुपस्थित होते है। यूरोपैल्टाइडी (Uropeltidae), लैन्थानोटस (Lenthanotus) तथा जीनोपैलाइडी (Zenopelidae) इस परिमण्डल के विशेषी कुल हैं।
10. **पक्षी (Birds)**– पक्षी कुल अच्छी तरह विकसित है। पक्षियों के 66 कुल यहाँ मिलते हैं। इसमें से 53 दूर तक वितरित, 3 इथिओपियन तथा 5 ऑस्ट्रेलियन प्रदेश में भी मिलते हैं। यहाँ खंजन (Pheasants) तथा कबूतरों (Pigeons) की अनेक जातियाँ मिलती हैं। मोर (Peacock) अथवा (Peafowl) तथा बया (Weaver bird) केवल भारत मे मिलती है। वन में मुर्गी (Jungle fowl) पूरे भारत तथा जावा में मिलती हैं। फिंच (Finches), हूप्स (Hoops), सनबर्ड (Sunbirds), तथा हनी गाइड्स (Honey guides) कम मिलती हैं। यूरिलीमिडी (Eurylaemidae) मोर स्थनिक पक्षी है।
11. **स्तनी (Mammals)**– इस प्रदेश मे स्तनियों के केवल 30 कुल मिलते है जिनमें से केवल चार कुल स्थानिक हैं। यह श्रू (Shrews), शशक, गिलहरी, क्रिसेटिड्स (Creicetids), मुरीद चूहे (Murid mice), कुत्ते, मस्टीलिड्स (Mustelids), बिल्लियाँ तथा बोविड्स कुल है। सुअर (Pigs), सिवेट्स (Civets), हैजहॉग (Hedgehogs), पॉर्कुपिन्स (Porcupines) तथा लकडबग्घा (Hyaena) आदि पेलिआर्कटिक व इथियोपियन परिमण्डलों में मिलते हैं। लोरिस (Loris) पुराने तथा विश्व के सुन्दर वनमानुष, पैंगोलिन हाथी तथा राइनोसिरोस आदि इस परिमण्डल के अतिरिक्त इथियोपियन परिमण्डल में भी मिलते हैं। परन्तु ओरिएन्टल परिमण्डल मे मिलने वाले मृग, भालू, तामीर तथा मोल्स इथियोपियन परिमण्डल में नहीं मिलते हैं। भारतीय बायसन (Indian bison), उडने वाले लीमर (Flying Lemurs), वृक्षवासी श्रू (Tree Shrews) तथा टार्सीयर्स (Tarsiers) इस परिमण्डल के स्थानिक जन्तु हैं। अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ओरिएन्टल परिमण्डल के स्थलीय कशेरुकियों के 135 कुल मिलते हैं। इनमें चार स्तनधारियों के टार्सीइडी (Tarsidae), हाइलोबेटाइडी (Hylobatidea-गिब्बन), गेलियोपिथेसाइडी (Galeopithecidae– उडने वाले लीम) तथा टुपेइडी (Tupaidae– वृक्षवासी श्रू), एक पक्षियों का यूरिलेमाइडी (Urylaemidae) तथ रैप्टाइल के पाँच कुल यूरोपेल्टाइडी (Uropeltidae), लैन्थानोटाइडी (Lanthanotidae),

प्लेटिस्टरनाइडी (Platysternidae), इलैकिस्टोडण्टाइडी (Elachistodontidae) तथा गैविएलाइडी (Gavialidae) क्षेत्र–विशेषी कुल हैं।

इनके अतिरिक्त स्तनधारियों की अनेक जातियाँ तथा वंश, जैसे– मलायन तापी, भारतीय हाथी, शेर बन्दर, ओरंगउटान तथा राइनोसिरास की तीन जातियाँ केवल इसी परिमण्डल में सीमित हैं।

ओरिएण्टल परिमण्डल के उप–क्षेत्र (Oriental Sub-division)

इस परिमण्डल को चार उप–क्षेत्र में विभाजित किया गया है–

(A) भारतीय उप–प्रदेश (Indian Sub-region)

(B) श्रीलंकाई उप–प्रदेश (Ceylonese Sub-region)

(C) इण्डोचाइनीज उप–प्रदेश (Indo Chinese Sub-region)

(D) इण्डोमलायन उप–प्रदेश (Indo-Malayan Sub-region)

(A) भारतीय उप–प्रदेश (Indian Sub-region)– परिवर्तित भौगालिक परिस्थिती एवं जलवायु के कारण भारतीय उप–प्रदेश का प्राणिजात (Fauna) अत्यधिक विविधता दर्शाता है। विभिन्न प्राणी–वैज्ञानिकों ने इसे विभिन्न प्राणिजात के आधार पर उप–भागों में बाँटने का प्रयास किया है।

सर्वप्रथम जॉर्डन (Jorden 1862) ने पक्षियों के आधार पर, **गुन्थर** (Gunther, 1864) ने रैप्टाईल्स पर **ब्लैनफोर्ड** ने 1818 में मौलस्का तथा **वैलेस** (Wallace, 1876) ने सभी जन्तुओं के आधर पर भारतीय उप–प्रदेश को पुनः विभाजित किया। उसके पश्चात् **डॉ. बी. प्रसाद** (Dr. B. Prasad, 1921) ने इसे 5 उप–भागों में तथा **डॉ. महेन्द्रा** (1942) ने इसे 10 उप–भागों में बाँटा– (1) उत्तर भारत का शुष्क तथा अर्धशुष्क भाग (2) पश्चिमी हिमालय (3) दक्षिणी बर्मी प्रदेश (4) गंगा पार प्रदेश (5) गंगा का मैदान तथा 20° अक्षांश तक का क्षेत्र (6) ट्रावणकोर को छोडकर 20° अक्षांक्ष के दक्षिण का क्षेत्र (7) ट्रावणकोर (8) श्रीलंका (9) अण्डमान (10) निकोबार द्वीपसमूह–

1. **उत्तर भारत का शुष्क तथा अर्धशुष्क भाग (Arid and Semi-arid Provinces of India)**– इसमें पश्चिमी पाकिस्तान, पंजाब, पश्चिमी राजस्थान तक कच्छ के क्षेत्र सम्मिलित हैं। यहाँ के स्थानिक प्राणिजात कम है तथा प्रायः विस्थायी जातियाँ पायी जाती हैं। उभयचर (Amphibians) में राना तथा बुफो, रैप्टाइल्स में कछुए की जातियाँ, छिपकली में रेटेनोडोक्टिलस, एल्मुरा, टेरेटोसिक्स, एटेगियास, प्रिस्चुटस तथा सर्पों में लेप्टोटिफ्लॉप्स कोन्शिया तथा लोटोरिंक्स आदि जातियाँ पायी जाती हैं।

2. **पश्चिमी हिमालय (Western Himalayas)**– इसमें कश्मीर, कुमाऊँ, गढ़वाल, पंजाब, पश्चिमी तिब्बत तथा हिमालय प्रदेश शामिल है। यहाँ की विशिष्ट स्थानिक जातियाँ निम्नलिखित प्रकार हैं– जापालुरा मेजर,

टिप्पणी

जिम्नोडैक्टिलस, लाइटेनस, फिटनोसिफेलस, थियोबोल्डी तथा लियोलोपिज्मा लैण्डसिनेम आदि।

3. **दक्षिण बर्मी प्रदेश (South Burmese Province)**– यह 20^o अक्षांश से दक्षिण का भाग है। इसमें–
   (i) उभयचरों में कालोडला मैक्रोडेक्टाला, ग्लाइकोग्लोसस मोलोसम आदि जातियाँ पायी जाती है।
   (ii) कछुओं मे प्लेटीस्टर्नम, जियोमिज उर्डिस, ट्रायोन– काब्रेलिजेनस, मेगासेफेलम आदि जातियाँ पायी जाती है।
   (iii) सर्पो में बगेरस प्लेवीसेत्स, डायोफिश–इण्टेस्टाइनेलिस, कोल्युवर, मिलेन्यूरस, रिओया ऐंगुआइना आदि जातियाँ पायी जाती है।
4. **गंगा पार प्रान्त (Trans-Gangetic Province)**– इसमें उत्तरी बिहार, बंगाल, उत्तरी बर्मा, असम, नेपाल तथा हिमालय का पूर्वी भाग शामिल है। यहाँ रेप्टाइल्स (Reptiles) प्रमुख प्राणिजात है। इनमें टाइक्टोलिमस, मिक्टोपोलिस, स्टोलिजर्रिया, ओरियोकैलोटिस आदि स्थानिक रैप्टाइल जातियाँ है।
5. **गंगा का मैदान तथा 20^o अक्षांक्ष तक का प्रान्त (The Ganges Plain and Region upto 20^o Latitude)**– इस उप–प्रदेश की सीमाएँ स्पष्ट नही है। यहाँ घरेलू छिपकलियाँ, घड़ियाल तथा अलवणीय जल के केंचुए मिलते हैं।

   उत्तर भारत, गंगा–पार तथा गंगा के मैदान की सभी नदियों के समान जन्तु–समूह पाया जाता हैं। उत्तर भारत में उभयचरों के पाँच वंश पाये जाते हैं।
6. **ट्रावनकोर को छोडकर 20^o अक्षांश के दक्षिण का उप–क्षेत्र (South India below 20^o Latitude excluding Travancore)**– यहाँ का प्रमुख प्राणिजात रैप्टाइल्स है जिनमें रिपालिनिएल (Repalineale), हैमीडैक्टाइलस सबट्रिड्रस (Hemidactylus subtreidrus) तथा जिम्नोडैक्टाइल्स डेकानेन्सिस आदि प्रमुख हैं।
7. **ट्रावनकोर उप–क्षेत्र (Travancore Sub-region)**– यह पूर्व में कोलिरून नदी (Coleroon river) के दक्षिण में तथा पश्चिम की ओर $12–13^o$ अक्षांश के दक्षिण में स्थित पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ अनेक स्थानिक जातियाँ पायी जाती हैं।
8. **श्रीलंका (Shri Lanka or Ceylon)**– यहाँ का प्राणिजात ट्रावनकोर के समान है।
9. **अण्डमान द्वीपसमूह (Andaman Islands)**– यह बंगाल की खाड़ी में स्थित द्वीप समूह है। यहाँ का प्राणिजात बर्मा उप–प्रदेश तथा निकोबार द्वीपसमूह के प्राणिजात के साथ सजातीयता प्रदर्शित करता है। यहाँ के विशिष्ट स्थानिक जन्तु–समूह की कुछ जातियाँ इस

प्रकार हैं– कैलोटिस अण्डमान्सिस (Calotes andamanesis), जिम्नोडैक्टाइलस रुबिडस (Gymnodactylus rabidus), बोइगा अण्डमान्सिस (Boiga andamanesis)।

10. **निकोबार द्वीप समूह (Nicobar Islands)**– यह द्वीप समूह अण्डमान के समीप बंगाल की खाड़ी मे स्थित है। यहाँ के जन्तु अण्डमान के जन्तुओं से सजातीयता प्रदर्शित करते हैं। यहाँ की स्थानिक जातियाँ बहुत कम है। इनमें कुछ इस प्रकार है– माबुया रुजिफेरा (Mabuya Rugifera), कैलोटिस जुबाटुओ (Calotes Jubatuo), लियोलोपिज्मा मेक्रोटिस (Leiolopisma macrotis)।

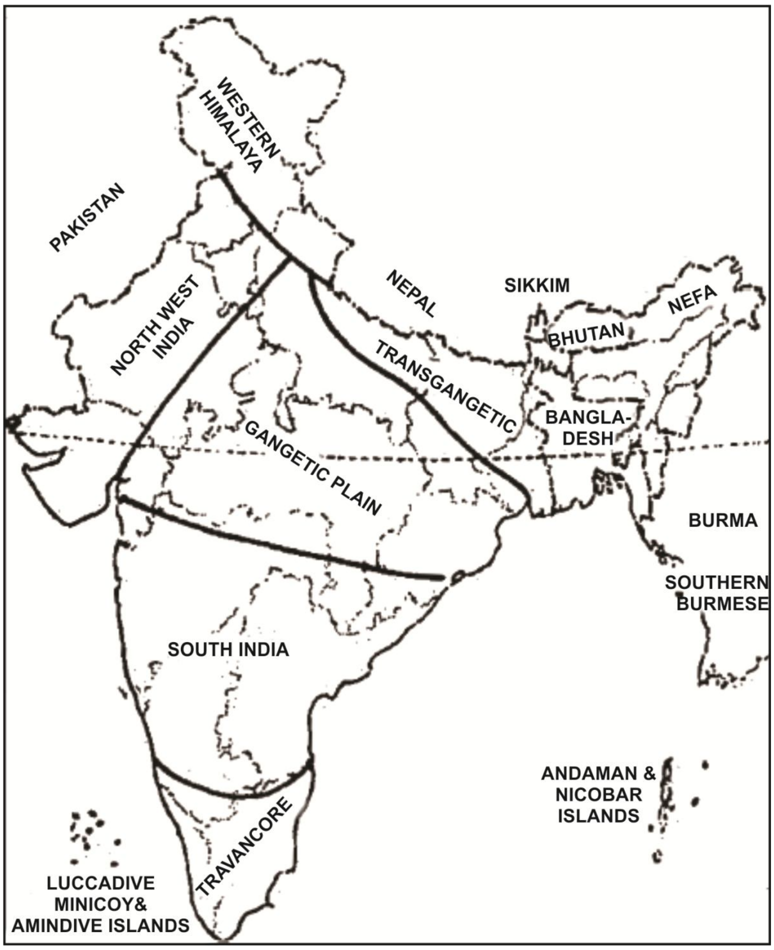

चित्र क्र. 5.18: **Zoo-Geographical Distribution of India Sub-region**

(B) श्रीलंकाई उप–प्रदेश (Ceylonese Sub-Region)– इस क्षेत्र में भारतीय प्रायद्वीप का दक्षिणी भाग और श्रीलंका सम्मिलित है। यहाँ स्पाइनी चूहे (Spiny rats), लोरिस (Loris) आदि प्रमुख हैं।

(C) इण्डोचाइनीज उप–प्रदेश (Indo-Chinese Sub-Region)– इस क्षेत्र में चीन का वह भाग है जो पेलिआर्कटिक परिमण्डल की सीमा के दक्षिण में है तथा बर्मा सम्मिलित है। यहाँ स्थलीय कशेरुकों के 138 कुल पाये जाते हैं।

(D) इण्डोमलायन उप–प्रदेश (Indo-Malayan Sub-region)– इस क्षेत्र में मलाया का प्रायद्वीप एवं मलाया आर्किपिलागो के द्वीप सम्मिलित हैं।

टिप्पणी

5.4.6 ऑस्ट्रेलियन परिमण्डल (Australian Region)

1. **भौगोलिक सीमाएँ (Geographical Limits)**– इसमें ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप, न्यूजीलैंड, तस्मानिया, न्यू गिनी, मोलुकास तथा अन्य समीपवर्ती द्वीपसमूह शामिल हैं। इसके चारों और समुद्र होने के कारण इसका अन्य किसी परिमण्डल से स्थलीय सम्बन्ध नहीं हैं।

2. **भौतिक गुण (Physical Features)**– यहाँ की जलवायु आंशिक रूप से शीतोष्ण तथा उष्ण कटिबन्धीय हैं। न्यूगिनी की जलवायु शीतोष्ण होने के कारण वहाँ वर्षा के सघन वन मिलते हैं। तस्मानिया ठण्डा तथा उष्ण कटिबन्धीय है। ऑस्ट्रेलिया का उत्तरी भाग ठण्डा है, परन्तु भीतरी प्रदेश शुष्क है, अतः पूर्वी ऑस्ट्रेलिया के तटों पर घास के मैदान, सदाबहार वन पाये जाते हैं।

3. **प्राणिसमूह (Fauna)**– यहाँ स्थली कशेरुकियों मे 134 कुल पाये जाते हैं। जिनमें यहाँ की विशिष्ट व स्थानिक जातियाँ हैं। स्तनियों के मॉनोट्रिमैट्स तथा मार्सुपियल्स केवल इसी परिमण्डल में पाये जाते हैं। यहाँ प्लेसेण्टल स्तनधारी नहीं पाये जाते हैं।

4. **मछलियाँ (Fishes)**– ऑस्टियोग्लोसिड्स (Osteoglossids) तथा फेफड़े वाली नियोसिरेटोड्स (Neoceratodes) यहाँ की स्वच्छ जलीय मछलियाँ है।

5. **उभयचर (Amphibia)**– यहाँ उभयचर बहुत कम संख्या में पाये जाते हैं। हायला में राना सामान्य रूप से पाये जाते हैं। सपुच्छकों में टोड का अभाव है, सिरेटोब्रेकिडी तथा जीनियोफ्रीडिडी कुल विशेष रूप से पाये जाते हैं।

6. **सरीसृप (Reptiles)**– इसमें यहाँ के दो कुल विशिष्ट स्थानिक है जिनमें पाइगोपोडाइडी (Pygopodidae) अथवा शल्कों–पद वाली छिपकलियाँ हैटरिडी (Hatteirdy) जिसमें स्फेनोडोन (Sphenodone) भी आते हैं। यह रिकोसिफैलिया का एकमात्र जिवित सदस्य है। इनके अतिरिक्त कछुओं का एक कुल सैरेटोफ्रिलिडिडो, जिसका उदाहरण फ्लाई रिवर टर्टल है, पाया जाता है। न्यूगिनी तथा ऑस्ट्रेलिया के कुछ भागों में कछुए, मगरमच्छ, छिपकलियाँ, वैरेनस, टिफलॉप्स, कोल्युब्रिड, पाइथन, बाइटिंग टाइगर सर्प बहुतायत में पाये जाते हैं। यहाँ छिपकलियाँ तथा वाइपर्स अनुपस्थित होते हैं।

7. **पक्षी (Aves)**– यहाँ पक्षियों के 58 कुल पाये जाते हैं जिनमें 10 कुल स्थानिक तथा शेष सामान्य होते हैं जो अन्य स्थानों पर भी पाये जाते हैं। यहाँ के विशिष्ट स्थानिक पक्षियों के कुल इस प्रकार है– **केजुएराएडी (Casuridae)**– कसोवरी मैगोपोड्स (Magapodes), मैलिफैगिडी (Meliph-agidae), हनीसर्कस, मैन्युरिडी (Manuridae) – लायरबर्ड, एट्रीकोर्निथिडी

(Atrichornithidae) – स्क्रब बर्ड, एप्टेराइडी (Apteridae), कीवी, स्ट्रिंगोपिडी (Stringopidae) – उल्लू, तोते, पैराडाइसिडी (Paradiseidae) पैराडाइज बर्ड्स आदि हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ कबूतरों के दो कुल क्राइपिजन गोराइडी (Gouridae) तथा टूथ बिलपिजन डाइडण्कुलाइडी (Didunculidae) तथा तोतों के तीन कुल नेस्टोरिडी (Nestoridae), साइक्लोपिस्टेसाइडी (Cyclopistacidae) तथा बॉवर बर्ड (Ptilonorhinchidae) प्रमुख हैं।

8. **स्तनी (Mammals)**– यहाँ यूथीरियन्स की अनुपस्थिति इस परिमण्डल की विशेषता है। यहाँ मर्सुपियल तथा गोनाट्रीम्स के कई कुल पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ पाये जाने वाले स्तनी इस प्रकार है – कीटभक्षी चमगादड़ों के 6 कुल, फुलभक्षी चमगादड़, ऑस्ट्रेलियन कुत्ते, भेड़, चूहे, शशक आदि अन्य परिमण्डलों के प्रवासी स्तनी है। यहाँ के विशिष्ट स्थानीय स्तनी इस प्रकार है– मैक्रोपोडाइडी (Macropodidae), नोटोरैक्टिडी (Notoryctidae) – मार्सुपियल मोल, डैस्युरिडी (Dasyuridae) – डेसीपुरस, फेस्कोलोमाइडी (Phascolomidae), डकबिल, प्लेटीपस, पेरामिलिडी (Paramaelidae)– बैण्डीकूट तथा फेलेन्जिराइडी (Phalangeridae) फेलेनर आदि।

ऑस्ट्रेलियन परिमण्डल के उप–क्षेत्र (Australian Sub-divisions)

1. **ऑस्ट्रेलियन उप–क्षेत्र (Australian Sub-division)**– इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण ऑस्ट्रेलिया एवं तस्मानिया का क्षेत्र आता है। 98 वंश स्थलीय कशेरुक के इस उप–क्षेत्र में पाये जाते हैं। इन 98 वंशों में 3 उभयचरी (Amphibians), 13 सरीसृप, 67 पक्षी तथा 15 स्तनी प्राणी आते हैं। स्थानिक प्राणियों के अन्तर्गत प्लेटीपस, लायरबर्ड, एमू, मोल एवं बाम्बेण्ट मार्सुपियल आते हैं।

2. **ऑस्ट्रो–मलायन उप–क्षेत्र (Austro-Malayan Sub-division)**– इस उपक्षेत्र के अन्तर्गत मोलूकास, न्यूगिनी तथा सोलोमन द्वीप समूह एवं मलाया द्वीप समूह के क्षेत्र आते हैं 130 वंश कशेरूक प्राणियों के इस उप–क्षेत्र में पाये जाते हैं। इस उप–क्षेत्र में विशेष प्राणी समुदाय के अन्तर्गत कबूतर, उड़ने वाले केंचए न्यूगिनी क्षेत्र में, सेरेटोब्रैक्राइडी (Ceratobrachidae) सोलोमन द्वीप समूह के तथा मधुमख्खी, बीबर पक्षी, केसोवरी (Cassowary), पेराडाइज पक्षी, मैना आदि आते हैं।

3. **पोलीनेशियन उप–क्षेत्र (Polynesian Sub-division)**– इस उप–क्षेत्र के अन्तर्गत कर्क रेखा के उत्तर में स्थित द्वीप तथा पोलीनेशियन द्वीप समूह आते हैं। इस उप–क्षेत्र में कम प्राणी पाये जाते हैं, कशेरुक प्राणियों के कुल 53 वंश पाये जाते हैं। स्तनी प्राणियों के अन्तर्गत चूहे, हिरन एवं टूथबिल्ड कबूतर (Toothed billed Piegon) मिलते हैं।

4. **न्यूजीलैण्ड उप–क्षेत्र (New Zealand Sub-division)**– इस उप–क्षेत्र में न्यूजीलैण्ड, ऑकलैण्ड, मैकबरी तथा कैम्पबेल द्वीप समूह आते हैं। कशेरुक

प्राणियों के कुल 34 वंश इसमे पाये जाते हैं जिसमें 1 एम्फीबियन, 3 सरीसृप, 27 पक्षी एवं 3 स्तनी वंश सम्मिलित हैं। एम्फीबिया में लायोपेल्मा (Liopelma) तथा उडान रहित पक्षियों में मोआस (Moas), कीवी (Kiwi), काकायो (Kakayo) होते हैं तथा सरीसृप में स्फेनोडोन (Sphenodon) आते हैं।

5.5 मानव का विकास (Evolution of Man)

मानव जीवन के विकास की कहानी संघर्ष एवं सामंजस्य की कहानी है। इस पृथ्वी पर जीवों के वंश वृक्ष में मानव की स्थित सर्वोच्च हैं। प्रत्येक जीवन जाति सरल पूर्वजों से विकसित हुई है। मानव का विकास भी सरल पूर्वजों में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ है। मानव की स्थिति एवं विकास के सम्बन्ध में अनेक परिकल्पनाएँ एवं सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं, परन्तु वह सब वैज्ञानिक कारकों पर आधारित नहीं है। **हक्सले (Huxley-1863)** ने अपनी पुस्तक **'मानव का प्रकृति में स्थान'** (Man's Place in Nature) मे मानव की उत्पत्ति को वैज्ञानिक आधर (Scientific facts) पर वर्णन किय। **चार्ल्स डार्विन** (Charles Darwin) ने तर्क के द्वारा दर्शाया कि मानव जीव–जन्तुओं के समान एक जाति है जिसकी उत्पत्ति एवं विकास अन्य जीवन–जन्तुओं के समान हुआ हैं। **"ओरिजिन ऑफ स्पीसीज"** (Origin of Species) एवं मानव का वंशक्रम एवं लैगिक सम्बन्ध में वरण (Descent of Man and Selection in Relation to Sex) नामक डार्विन की पुस्तकों के अनुसार मानव, बन्दर, कपि एक समान पूर्वज से उत्पन्न हुए हैं।

मानव जीवों में अधिक विकसित एवं जैव–विकास का सबसे महत्वपूर्ण जीव है। मानव की वंशावली (Geneology) के अध्ययन से इसके विकासीय इतिहास में आने वाले परिवर्तनों के बारे में पता चलता है। साथ ही साथ यह भी पता चलता है कि मानव के निकट कौन–कौन सी जातियाँ है तथा वह सभी अवस्थाएँ जिनसे होकर आज मानव इस स्थिति पर पहुँचा है। मानव अपने भूतकाल एवं उत्पत्ति के बारे में जानने हेतु उत्सुक है। मानव का विकास कहाँ और किस समय में हुआ है? मानव के पूर्वज कौन थे? मानव के पूर्वजों के समय जीव–जन्तु कैसे थे? यह सब जान लेना आवश्यक है।

5.5.1 जन्तु जगत में मानव का स्थान (Man's Place in Animal Kingdom)

मानव का कशेरुकी (Vertebrate) जरायुज स्तनी (Placental mammal) होता है। मानव मस्तिष्क अधिक विकसित होता है। यह **प्राइमेट** (Primate) प्राणी हैं। इन्हें कुल–होमिनिडी (Family-Hominidae) में रखा गया है। मानव का वैज्ञानिक नाम होमोसेपियन्स (Homosapiens) सेपियन्स (Sapiens) है।

मानव का वर्गीकरण

संघ (Phylum)	–	कॉर्डेटा (Chordata)
उप–संघ (Sub-phylum)	–	वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
वर्ग (Class)	–	मैमेलिया (Mammalia)
उप–वर्ग (Sub-class)	–	यूथेरिया (Eutheria)
गण (Order)	–	प्राइमेटस (Primates)
उप–गण (Sub-order)	–	एन्थ्रोपोइडिया (Anthropoidea)
अवगण (Infra-order)	–	कैटाराइनी (Catarrhini)
अधिकुल (Super-family)	–	होमीनियडिया (Hominioidea)
कुल (Family)	–	होमिनिडी (Hominidae)
वंश (Genus)	–	होमो (Homo)
जाति (Species)	–	सेपियन्स (Sapiens)
उपजाति (Sub-species)	–	सेपियन्स (Sapiens)

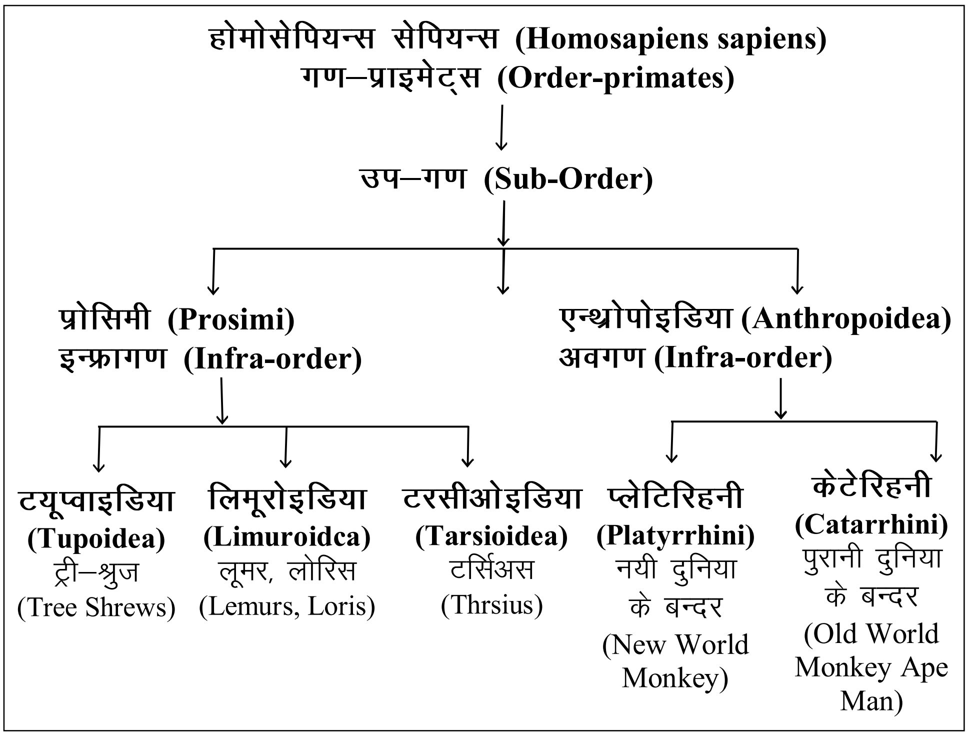

अधिक–कुल (Super-family)

- **होमिनोइडिया** (Hominoidea)
  - **कुल (family)**
    - **हाइलोबेटाइडी** (Hylobatidae) **गिब्बन** (Gibbon)
    - **पोन्गोइडी** (Pongoidae) **गौरिल्ला, चिम्पान्जी** (Gorilla, Chimpanzee)
    - **होमोनाइडी** (Hominidae)
      - → रामोपिथिकस (Ramopithecus)
      - → ऑस्ट्रेलोपिथेकस (Australopithecus)
      - → पेरेन्थ्रोपस (Paranthropus)
      - → जिंजेन्थ्रोपस (Zinjanthropus)
      - → होमो सेपियन्स (Homo Sapiens)
- **सारकोपिथेकोडिया** (Cercopithecoidea) पुरानी दुनिया के बन्दर (Old world monkeys)

मानव के उद्‌भव का समय (Time of Descent of Man)

मानव के उद्‌भव का समय विवादास्पद रहा हैं। जीवाश्मों (Fossils) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मानव की उत्पत्ति मीजोजोइक (Mesozoic) महाकल्प (Epoch) के प्लायोसीन युग में 210 मिलियन वर्ष पूर्व हुई थी। मानव जैसे कपियों (Man-like apes) से आदि मानव का विकास लगभग 1 करोड 30 लाख वर्ष पूर्व हुआ है। अपने प्रारम्भिक काल में मनुष्य ने जलवायु तथा भौगोलिक परिवर्तन से जनित अनेक कठिनाइयों का सामना किया।

मानव के मुख्य विकासीय लक्षण (Main Evolution Characters of Man)

1. **सीधी खड़ी भंगिमा (Erect posture)**– मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो कि सीधा खड़ा होकर दो पैरों की सहायता से गति करता है (Bipedal locomotion), द्विपादचारी गमन। सीधी खड़ी भंगिमा के कारण अनेक शारीरिक परिवर्तन पाये गये–
   (i) सीधी भंगिमा के हेतु टाँगो की लम्बाई अधिक हो गई। तलवे चपटे (Sole flat), अंगुलियाँ छोटी एवं कम गतिशील हो गयी है।
   (ii) धड़ (Trunk) का भाग अधिक छोटा हो गया है। वक्ष (Thorax) का भाग उरोस्थि अस्थि (Sternum bone) से चपटा होने से चौड़ा हो गया है।

(iii) कशेरुक दण्ड (Vertebral column) की लम्बाई कम पायी जाती है, लम्बर (Lumber) कशेरुक की कम संख्या सेक्रम एवं पुच्छ कशेरुक (Sacral and caudal vertebrae) जुड़कर अवशेषी (Vestigeal) हो गई।

(iv) कशेरुक दण्ड (Vertebral column) की मजबूती के लिए दो स्थानों पर नमन (Flexion) भी हुआ। जिसमें S की आकृति हो गई।

(v) आन्तरिक अंगों को सहारा देने के लिए **श्रोणि मेखला** (Pelvic girdle) चौडी एवं चिलमची के आकार (Basin Shape) की हो गई।

(vi) खोपडी (Skull) कशेरुक दण्ड पर सीधी स्थित होने के कारण, **महारन्ध्र** (Foramen magnum) पीछे के भाग से हटकर नीचे की ओर आ गया।

(vii) कमर (Waist) के भाग में कशेरुक दण्ड में कटि वक्र (Lumber curve) बन गया, यह सीधी मुद्रा में सहायता करता है।

(viii) जबडों (Jaws) का आकार छोटा, दन्त रेखायें 'U' आकार से अर्द्धवृत्ताकार, के रुप में विकसित हुई। दाँतों (Teeth) की संख्या 36 से घटकर 32 हो गई। रदनक (Canine) दाँतों का आकार घटकर शेष अन्य दाँतों के बराबर हो गया।

(ix) कपाल गुहा (Cranial cavity) का आयतन 1450–1500 c.c. होता है।

(x) चेहरा (Face) प्राचीन कपियों के प्रोगनेथस (Prognathous) रूप से बदलकर सीधा आर्थोग्नेथस (Orthognathous) हो गया।

(xi) पूँछ का उपयोग समाप्त हो जाने से यह विलुप्त हो गई।

(xii) माथा (Fore head) कपाल गुहा में वृद्धि होने के कारण करोटि मे माथे का विकास हुआ।

(xiii) आँखो के उपर स्थित भौंहों के उभार (Eye brow ridges) धीरे–धीरे कम हो गये।

(xiv) ठोडी (Chin) जबडों का आकार छोटा हो जाने से ठोडी उभरी (jutting) हो गई।

2. **संवेदी क्षमताएँ (Sensitivity)**– नेत्र (Eye) पार्श्व दिशा से खिसक कर आगे की ओर आ गये जिससे द्विनेत्री (Binoculary) या त्रिविम दृष्टि (Stereoscopic vision) हो गई।

3. **अल्प संवेदी अंगों में परिवर्तन (Changes in other sense organs)**– कर्ण पल्लव छोटे आकार के हो गये तथा घ्राण शक्ति में कमी या अवनति हुई।

4. **वस्तुओं को पकडना (Grasping ability)**– अंगुलियाँ लम्बी एवं गतिशील हुई, इनके सिरे स्पर्श संवेदी हो गये। कलाई पर हथेली को उपर–नीचे घुमाने की क्षमता का विकास हुआ। अँगूठे (Pollex-thumb) अन्य अंगुलियों के समकोण पर (Oppossable) होने के कारण वस्तुओं को पकड़ने की अधिक क्षमता पाई जाने लगी।

5. **संस्कृति (Culture)**– धीरे धीरे मानव की संस्कृति का विकास हुआ। सीखने की क्षमता, सामाजिक जीवन, सोचने की क्षमता एवं पशुपालन करना प्रारम्भ हो गया।
6. **जनन क्षमता (Fertility rate)**– मानव विकास क्रम में जनन क्षमता की दर बहुत घटी है। एक बार में एक ही बच्चे की सन्तानोत्पत्ति होने लगी।
7. **मस्तिष्क का विकास (Large size of brain)**– मानव में शरीर के अनुपात में, मस्तिष्क सबसे बड़ा व जटिल होता है, क्योंकि प्रमस्तिष्क (Cerebrum) वृद्धि का केन्द्र होता है। इसी का मानव के विकास क्रम में सबसे अधिक विकास हुआ है मस्तिष्क के बड़े होने के साथ–साथ ही कपाल गुहा (Cranial cavity) के आयतन में वृद्धि हुई हैं। आधुनिक मानव की कपाल गुहा का आयतन लगभग 1400–1700 क्यूबिक सेमी. होता है।

5.5.2 मानव के विकास का संक्षिप्त इतिहास (Brief History of Evolution of Man)

मानव (Man) के प्रारम्भिक पूर्वज, प्राइमेट्स (Primate) के समान रहे होंगे। मानव के लक्षण लीमर (Lemur), टारसियस, (Tarsiuss), वानर (Monkeys) एवं कपियों (Apes) के समान होते हैं। आदि पूर्वज प्राइमेट्स (Primates) से आधुनिक मानव के विकास क्रम के अन्तर्गत पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के पूर्वज स्तनियों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है–

1. **आदि पूर्वज प्राइमेट्स (Primitive Ancestral Primates)**– आदि पूर्वज प्राइमेट्स लगभग 6.5 करोड वर्ष पूर्व क्रिटेशियस कल्प (Cretaceous period) में प्रकट हुए। ये चूहे के समान छोटे छछूँदर (Shrews) रूप में थे, यह वृक्षों पर रहते थे तथा कीट पतंगों को खाते थे। फुदक कर चलते थे। नाक वस्तुओं को सूँघकर परखने के लिए लम्बी एवं नुकीली थी। कान चौकन्ने तथा विभिन्न प्रकार की ध्वनियों में भेद करने में सक्षम होते थे। इनके वृषण (Testes), उदरगुहा (Abdominal cavity) से बाहर नहीं पाये जाते थे। स्तन ग्रन्थियों (Mammary glands) की 1 से 3 जोडियाँ होती थी। इनसे मिलती–जुलती श्रूज (Shrews) की कुल जातियाँ अफ्रीका (Africa) महाद्वीप मे पाई जाती हैं।

2. **वानर पूर्व अथवा प्रोसीमियन प्राइमेट पूर्वज (Prosimian Primate Ancestors)**– आज ऐसे जीवाश्म (Fossils) प्राप्त है जिनसे ज्ञात होता है कि आदि श्रूज (Primitive shrews) से अन्य प्रकार के स्तनियों का विकास हुआ–

(i) **वृक्षाश्रयी श्रूज (Tree shrews)**– (1) थूथन (Snout) छोटी थी (2) नेत्र (Eyes) सामने की और स्थित थे। (3) संवेदी घ्राण अंग छोटे थे। (4) रेटिना (Ratina) में शंकु (Cones) भी पाये जाते थे। धीरे धीरे इनमें प्राइमेट्स के लक्षण विकसित होने लगे।

(ii) **लीमर्स/लीमरॉइड्स (Lemuroids)**– (1) यह प्राणी कीट भक्षी (Insectivorus) एवं वृक्षाश्रयी (Arboreal) थे। (2) अंगूठे लचीले तथा मजबूत होते थे। (3) पूँछ सन्तुलन का कार्य करती थी। (4) अंगुलियों में पंजों (Claws) के स्थान पर पाए जाते थे। (5) अंगूठे (Thumb) अंगुलियों

के समकोण पर स्थित थे। (6) नाक छोटी, नेत्र बड़े थे। **उदाहरण**– लोरिस (Loris)।

(iii) टारसियर्स/टार्सीआइड्स (Tarsioids)– (1) चेहरा (Face) बन्दरों के समान छोटा एवं खड़ा पाया जाता था। (2) गर्दन को चारों और घुमाया जा सकता था। (3) थूथन (Snout) एवं नाक छोटी होती थी। (4) नेत्र (Eye) गोलक सामने की और स्थित होते थे। (5) पूँछ (Tail) अधिक लम्बी पाई जाती थी। (6) कपाल गुहा (Cranial cavity) एवं प्रमस्तिष्क (Cerebrum) अधिक विकसित था।

3. **मानवाकार या ऐन्थ्रोपॉइड पूर्वज (Anthropoid Ancestors)**– आलीगोसीन (Oligocene) युग से मायोसीन (Miocente) युग में वानर कपियों (Monkeys, Apes), एवं मानवों के समान पूर्वज पृथक्–पृथक् दशाओं में विकसित होने लगे। मानवाकार या ऐन्थ्रोपॉइड (Anthropoid) पूर्वजों को उनके विकास क्रम के अनुसार तीन वंशों (Stocks) में विभाजित किया गया– (A) वानर वंश (Monkey stock), (B) कपि वंश (Ape stock), (C) मानव वंश (Hominid stock),

(A) वानर वंश (Monkey Stock)– पेलियोसीन (Palaeocene) एवं **इओसीन** (Eocene) युग में 2–2.5 करोड वर्ष पूर्व तक प्रोसीमियन प्राइमेट्स का राज्य था। इनके लक्षण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

1. पेलियोसीन (Palaeocene) एवं इओसीन (Eocene) युग में उष्णकटिबन्धीय भागों मे अस्तित्व बना रहा।
2. नथुने बाहर की और एवं नाक (Nose) चपटी होती है।
3. दाँतों की संख्या 36 होती है। मोलर दाँतो के उभार पाये जाते हैं, इस प्रकार के लक्षण के कारण यह मानव विकास शाखा से पृथक् क्रम में है।
4. पूँछ लम्बी एवं वस्तुओं को सिकुड़ने मे सहायक है।
5. अधिकांश अंगुलियाँ पंजेदार (Clawed) होती थीं एवं अंगूठे (Thumb) अन्य अंगुलियों के समानान्तर होते थे।

   सन 1961 में पुरानी दुनिया के बन्दर का जीवाश्म प्राप्त हुआ। पुरानी दुनिया के बन्दर जो केटेराहइनी (Catarrhini) के अन्तर्गत आते है, उनमें एवं मानव में निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती हैं–

   (i) शरीर की वृद्धि (Growth) एवं बुद्धिमत्ता (Intelligence) का विकास

   (ii) पूँछ कम विकसित होती है या पूर्णतः अनुपस्थित होती है। यदि पाई जाती है तो छोटी होती है जो वस्तुओं को पकडने में सहायक हैं।

   (iii) कर्णपल्लव (External pinna) आकार में छोटा होता है।

   (iv) आँखों की रेटिना (Retina) में शंकु एवं श्लाकाएँ (Cones and rods) दोनों पाई जाती है।

टिप्पणी

(v) प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध (Cerebral hemisphere) अधिक विकसित होते हैं।

(vi) नासिका का सँकरा होना पाया जाता है।

(vii) हाथ, अंगुलियों, नाखून में संवेदनशीलता का पाया जाना।

(viii) टिम्पैनिक (Tympanic) एवं स्क्वेमोसल (Squamosal) अस्थियाँ आपस में सम्बन्धित रहती हैं।

(ix) नथुने (Nasal aperture) पास–पास एवं नीचे की ओर स्थित होते हैं।

(x) लम्बर (Lumber) कशेरुकाओं का कम संख्या में होना।

(xi) दाँतो की संख्या का पाया जाना।

(xi) मादा में मासिक चक्र (Mensuration cycle) का पाया जाना।

सभी लक्षणों की समानता से यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव एवं बन्दरों का समान पूर्वज से उद्गम हुआ है।

श्रूज (Shrews)

↓

लीमर्स (Lemurs)

↓

टारसियर्स (Tarsiers)

↓

एन्थ्रोपोइड कपि (Anthropoid apes) → पूर्वज (Ancestor)

(सामान्य वंश)

नई दुनिया के बन्दर (New world monkeys) | पुरानी दुनिया के बन्दर (Old world monkeys) | कपि एवं मानव के पूर्वज (Ancestors of Apple and man)

कपि (Ape) | गोरिल्ला (Gorilla)

कुल–पोन्गाइडी (Pongidae) उदा.– चिम्पान्जी (Chimpanzeee)

कुल–हाइलोबेटाइडी (Hylobatidae) उदा.– गिब्बन (Gibbon)

कुल–होमीनाइडी (Hominidae) उदा.– होमोसेपियन्स (मानव) (Homosapiens)

(B) कपि वंश (Ape Stock)– वर्तमान में कपियों (Apes) की कुछ ही जातियाँ (Species) पाई जाती हैं। मानव में एवं कपियों में निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती है–

1. सिर का आकार बड़ा एवं पूँछ की अनुपस्थिति।
2. गर्दन एवं पादों (Limbs) की लम्बाई अधिक एवं पूँछ की अनुपस्थिती होती है।
3. मस्तिष्क (Brain) एवं कपाल गुहा (Cranial cavity) का आकार अधिक बड़ा होना।
4. उरोस्थि अस्थि (Sternal bone) के चौडी होने के कारण वक्ष का भाग चौडा एवं चपटा होना।
5. मोलर दाँतो में 5–5 उभार का पाया जाना।
6. चारों पादों (Limbs) में प्रचलन (Movement) एवं वस्तुओं के पकडने में सहायक, कुछ में एक जोडी पादों के द्वारा प्रचलन (Bipedal locomotion)।
7. लम्बर (Lumber) कशेरुकाओं की संख्या का कम 4–5 होना।
8. सामाजिक प्राणी के रूप में जीवन साथी के साथ गृहस्थ जीवन व्यतीत करना।
9. रक्त प्रोटीन्स (Blood proteins) में समानता।
10. सर्वाहारी (Omnivorus) पोषण का पाया जाना।

उपर्युक्त समानताओं से निष्कर्ष निकलता है कि मानव जाति का विकास कपि के समान–पूर्वजों से हुआ था।

(C) मानव वंश (Hominide Stock)– मानव विकास के जीवाश्म (Fossils) अधिकांशतः अफ्रीका (Africa) में पाये जाते गये। इन जीवाश्मों के द्वारा ही मानव विकास का क्रम ज्ञात हुआ आदि होमिनिड (Hominid) पूर्वजों के प्रमुख जीवाश्म (Fossils) निम्नलिखित हैं–

मायोसीन (Miocene) एवं प्लायोसीन (Pliocene) युगों के पूर्वज कपियों का वर्णन निम्नानुसार है। इनसे मानव एवं कपियों का विकास हुआ, यह कम समय में ही लुप्त हो गये।

टिप्पणी

सारणी क्र. 5.1: मानव एवं कपि में अन्तर
(Difference between Man and Ape)

क्र. No.	मानव (Man)	कपि (Ape)
1.	स्थलीय आवास में जीवन व्यतीत करते हैं।	वृक्षाश्रयी (Arboreal) आवास में जीवन व्यतीत करते हैं।
2.	पैरों की अपेक्षा भुजाएँ छोटी होती हैं।	पैरों की अपेक्षा भुजाएँ लम्बी होती हैं।
3.	द्विपादचारी गमन (Bipedal locomotion)।	चारों पादों के द्वारा गमन (Quadrapedal locomotion)।
4.	हाथों के अंगुठे, अंगुलियों के समकोण पर पाये जाते हैं। टाँगों के नहीं।	चारों पादों के अंगुठे, अंगुलियों के समकोण पर पाये जाते है।
5.	कपालीय गुहिका (Cranial cavity) का आयतन 1500 c.c. होता है।	कपालीय गुहिका (Cranial cavity) का आयतन 100–500 c.c. होता है।
6.	शरीर के सीमित भागों मे बाल पाये जाते हैं।	पूरे शरीर पर अधिक बाल पाये जाते हैं।
7.	चेहरा सीधा (Orthognathous) ठोडी (Chin) बाहर की और तथा भौंहो की हड्डी (Eye brow bone) कम उभरी हुई।	चेहरा कुछ आगे की ओर निकला (Prognathous) ठोडी (Chin) का अभाव, भौंहों की हड्डी (Eye brow bone) अधिक उभरी हुई।
8.	होंठ (Lips) बाहर की और उभरे हुए एवं उपरी होंठ में मध्यवर्ती खाँच का पाया जाना।	होंठ बाहर की और नहीं तथा उपरी होंठ (Upper Lip) पर खाँच अनुपस्थित।
9.	मादा में स्तन गन्थियाँ (Mammary glands) उभरी हुई।	मादा में स्तन गन्थियाँ (Mammary glands) उभरी हुई नहीं पाई जाती हैं।
10.	दाँतों का आकार छोटा तथा दन्तावकाश (Diastema) का अभाव।	दाँतों का आकार बड़ा, दन्तावकाश की उपस्थिति
11.	दन्त रेखाएँ अर्धवृत्ताकार (Semi-circular) तथा मैक्सिलरी प्री–मोलर दाँतों मे 2–2 एवं 1–1 जड़ों का होना।	दन्त रेखाएँ 'U' के आकार की मैक्सिलरी प्रीमोलर दाँतो मे 3–3 जड़ों की उपस्थिति।
12.	प्रीमैक्सिला (Premaxilla) अस्थियाँ मैक्सिला (Maxilla) से जुडी हुई।	प्री–मैक्सिला (Premaxilla) अस्थियाँ मैक्सिला (Maxilla) से पृथक् पाई जाती है।
13.	खोपडी चपटी नहीं होती तथा खोपडी कशेरुक दण्ड पर उपर की और स्थित होती है।	खोपडी चपटी तथा कशेरुक दण्ड पर आगे की और स्थित होती है।
14.	श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) अधिक चौड़ी होती है।	श्रोणि मेखला (Pelvic girdle) कम चौड़ी होती है।
15.	बोलने एवं लिखने की क्षमता पाई जाती है।	बोलने एवं लिखने की क्षमता नही पाई जाती है।

16.	भावनाओं की अभिव्यक्ति स्पष्ट एवं तर्क करने की शक्ति पाई जाती है।	भावनाओं की अभिव्यक्ति स्पष्ट नहीं होती तथा तर्क करने की शक्ति नही पाई जाती है।
17.	शिशु एवं बाल्यावस्था लम्बी।	शिशु एवं बाल्यावस्था कम अवधि की होती है।

(a) प्रोप्लिओपिथेकस (Propliopithecus)– इनके जीवाश्मों के द्वारा ज्ञात होता है कि मानव विकास शाखा कब कपियों की शाखा से पृथक हुई। जीवाश्म, ओलिगोसीन (Oligocene) युग मे प्राप्त हुए।

लक्षण– (i) दाँतों में 5–5 उभार पाये जाते थे। यह स्थिति मानव एवं कपियों के समान होती है।

(ii) जीवाश्म 3–4 करोड वर्ष पूर्व के है।

(b) लिम्नोपिथेकस एवं प्लायोसीन (Limnopithecus and Pliocene)–

(i) जीवाश्म **मायोसीन** एवं **प्लायोसीन** (Miocene and Pliocene) युग में पाये गये।

(ii) लम्बर कशेरुकों की संख्या 7 पाई गई। इस कारण इसे मानव विकास क्रम शाखा का सदस्य माना जाता है।

(c) प्रोकॉन्सल या ड्रायोपिथेकस (Proconsul or Dryopithecus)–

(i) इस मानव के जीवाश्म की खोज लीकी (Leakey-1930) नाम वैज्ञानिक ने की थी।

(ii) मोलर दाँतों में 5–5 उभार पाये जाते है।

(iii) पादों की सरंचना मानव के समान पाई गई।

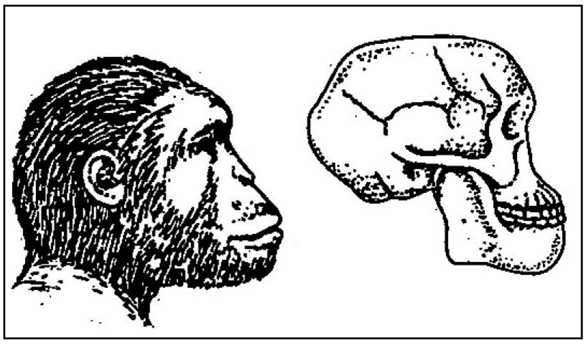

चित्र क्र. 5.19: Proconsul

(iv) थूथन बाहर की और निकला हुआ होता है।

(v) चार पादों से प्रचलन तथा इसको मानव विकास के क्रम के अन्तर्गत नहीं मानते है।

(d) शिवापिथेकस (Shivapithecus)–

(i) जीवाश्म मायोसीन एवं प्लायोसीन युग में पाये गये।

(ii) विशालकाय, चार पादों द्वारा प्रचलन करते थे।

(iii) मोलर दाँतों में 5–5 उभार पाये जाते थे।

(iv) मस्तिष्क खोपड़ी एवं हाथ शिवापिथेकस जीवाश्म के बन्दरों के समान पाये गये तथा दाँत, जबड़ा, चेहरा (Teeth, Jaws and Face) कपियों के समान था।

(v) यह कुछ–कुछ ड्रायोपिथेकस समान था।

(vi) आज से लगभग 1.50 करोड वर्ष पूर्व शिवापिथेकस से मानव वंशानुक्रम, कपियों के वंशानुक्रम से पृथक् हुआ।

4. **प्रथम चरण (Sub-man)– रामोपिथेकस एवं केनियापिथेकस (Ramopithecus and Kenyapithecus)–** मायोसीन युग के 1.3 करोड वर्ष पूर्व अवमानव के जीवाश्म को **लेविस** (Lewis-1930) ने भारत की शिवालिक पहाडियों (Shivalik hills) से प्राप्त किये। इनमें मानव के समान दन्त रेखा अर्धवृत्ताकार (Semicircular), **जबडे** (Jaws) छोटे एवं मेहराबनुमा तालु (Arched palate)। दो पादों द्वारा प्रचलन करते थे। दन्त रेखाएँ अर्धवृत्ताकार होती थी। अधिक सीधी खडा चेहरा/कृतन्क (Incisor) एवं रदनक (Canines) शेष दाँतों के समान थे। उपर्युक्त सभी लक्षण मानव वंशानुक्रम के सबसे प्रारम्भिक आदि होमिनिड पूर्वज में पाये गये। **लीकी** (Leakey-1955) ने अफ्रीका एवं चीन में उपरोक्त के समान मानव जीवाश्म को प्राप्त किया एवं इस जीवाश्म का नाम **केनियापिथेकस** (Kenyapithecus) दिया।

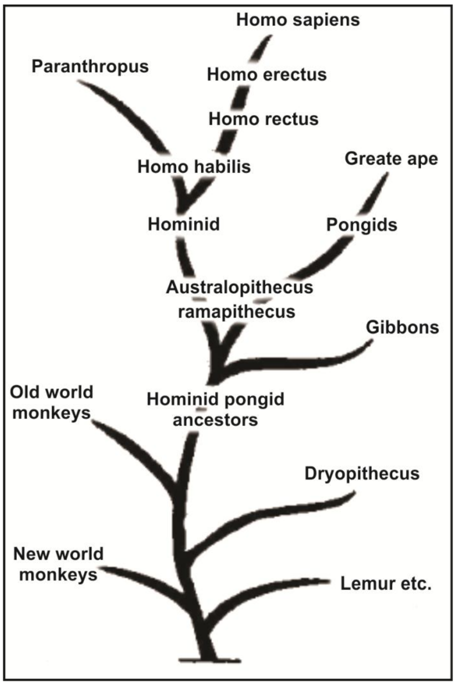

चित्र क्र. 5.20: **Evolutionary History of Man**

टिप्पणी

5. दूसरा चरण–कपि – मानव का निकट मानव (Ape-man or Near Man)– प्लीस्टोसीन (Pliestocene) युग में मानव का विकास– इस प्लीस्टोसीन (Pliestocene) युग से प्राप्त मानव जीवाश्मों को सामूहिक रूप से ऑस्ट्रेलोपिथीसाइन (Australopithecine) कहते हैं, इसका अर्थ आदि मानव (Primitive man) या कपि मानव (Ape-man) होता है। सभी जीवाश्म (Fossils) अफ्रीका से प्राप्त हुए थे। कुछ मुख्य जीवाश्म का वर्णन निम्नलिखित प्रकार है–

(अ) ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेन्स (Australopithecus africans)– इस जीवाश्म (Fossils) की खोज **प्रोफेसर रेमण्ड डार्ट** (Professor Raymond Dart-1924) द्वारा अफ्रीका मे प्लियोसीन (Pliocene) युग में चट्टानों से 6–7 वर्ष के बच्चे की खोपडी (Skull) के रूप में की–

1. यह सबसे प्राचीन आदि मानव (Primitive man) के रूप में माने जाते थे।
2. खोपडी (Skull) का महारन्ध्र (Foraman magnum) नीचे की ओर खिसक गया था।
3. सीधे खड़े (Erect posture) होकर चलते थे।
4. कपाल गुहा (Cranial cavity) का आयतन 400–800 c.c. था।
5. पत्थरों के औजार बनाता व शिकार करता था।

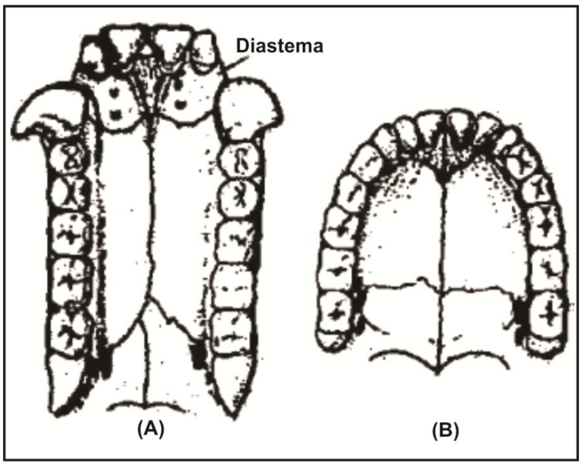

चित्र क्र. 5.21: (A) Ape (B) Man

6. माँसाहारी (Carnivorous) था और जबडों (Jaws) को इधर–उधर चलाकर वर्तमान मानव के समान भोजन करता था।
7. दन्त विन्यास एवं भार (140 kg.) वर्तमान मानव के समान था।
8. जीवाश्मों के साथ छडियों, अस्थियों एवं पत्थरों के ढेर मिलते थे।

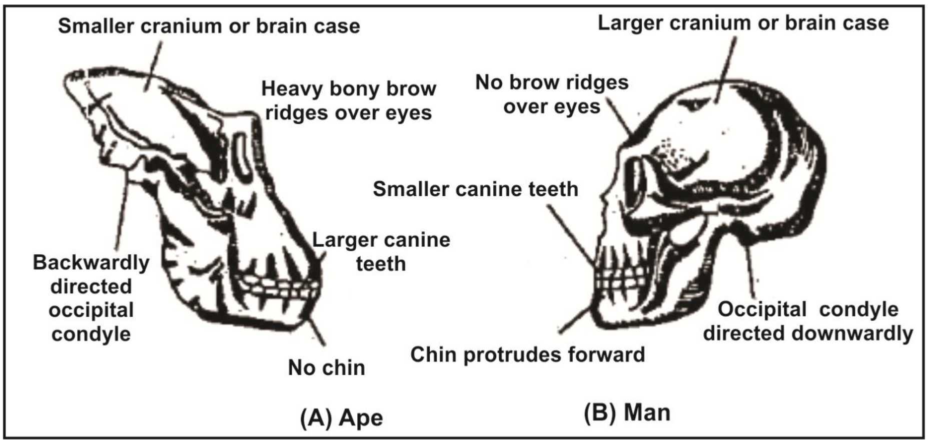

चित्र क्र. 5.22: **Comparison of Skull and Foraman Magnus**

(ब) **ऑस्ट्रेलोपिथेकस रोबस्टस (Australopithecus robustus)**– 1936 में जीवाश्म (Fossils) की खोज **राबर्ट ब्रूम** (Robert Broom) ने की। ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेन्स की अपेक्षा अधिक ताकतवर, अधिक लम्बा, शरीर का भार 60 kg. था–

1. जबड़े (Jaws) भारी तथा दाँत (Teeth) लम्बे थे।
2. शाकाहारी (Herbivorus) था।

इसे पेरेन्थ्रोपस रोबस्टस (Paranthropus robustus) कहा। यह शीघ्र ही विलुप्त हो गया।

(क) **जिंजेन्थ्रोपस मानव (Zinjanthropus Man)**– इस आदि मानव के जीवाश्म (Fossil) की खोज 1959 में **डॉ. लीकी** (Dr. Leakey) दम्पत्ति ने दक्षिण अफ्रीका के आल्वाई प्रदेश से की। 10 से 30 लाख वर्ष पुराने इस आदि मानव के जीवाश्म थे। इसका **ऑस्ट्रेलोपिथेकस बोइसेइ** (Australopithecus boisei) भी कहा–

1. शरीर का आकार छोटा, लगभग 140–150 सेमी. लम्बा था।
2. खोपडी (Skull) का आकार मनुष्य से मिलता था।
3. औजार बनाकर इनका उपयोग शिकार आदि के लिए करते थे।
4. माथा अनुपस्थित होता था।
5. कपाल गुहा (Cranial cavity) 600–700 c.c. थी जो कि आधुनिक मनुष्य से अधिक थी।
6. दाँतों का विन्यास शाकाहारी भोजन के लिए उपयुक्त था।
7. नाक चपटी, ठोड़ी अनुपस्थित तथा भौंहे (Eyebrows) विकसित थी।

यह भी कुछ समय पश्चात् विलुप्त हो गये।

6. **तीसरा चरण – प्रारम्भिक वास्तविक मानव (Early True Man)**– कपि–मानव (Ape man) के समान आदि मानव के द्वारा औजारों एवं हथियारों का

उपयोग करने से बुध्दि एवं मस्तिष्क का अधिक विकास हुआ। जीवाश्मों (Fossils) के अध्ययन से पता चलता है कि मानव वंश का विकास अन्य जातियों के क्रमिक विकास से हुआ–

(अ) होमो हेबिलिस (Homo habilis)– इस मानव जाति की उत्पत्ति 16–18 लाख वर्ष पूर्व प्लीस्टोसीन (Pleistocene) युग में हुई। सन् 1960 में **लीकी** (Leakey) वैज्ञानिक ने इस मानव जाति के जीवाश्म (Fossils) अफ्रीका से प्राप्त किए। इनको होमो श्रेणी (Genus-Homo) की सबसे पहली जाति माना गया है। शरीर का आकार 1.2–1.5 मीटर तथा भार 40–50 किलोग्राम था–

1. मस्तिष्क (Brain) बडा एवं कपाल गुहा (Cranial cavity) का आयतन 680 c.c. था।
2. दो पैरों पर सीधा खड़ा चलता था।
3. दन्त विन्यास आधुनिक मानव के समान था।
4. शिकार के लिए हथियारों का उपयोग करता था।
5. मानव का यह प्रथम पूर्वज था जिसने हथियारों का निर्माण किया था।

(ब) होमो इरेक्टस (Homo erectus)– इस मानव के जीवाश्म (Fosssils) **युजीन डूबोइस** (Eugene dubois) ने **1891** में जावा से प्लीस्टोसीन (Pleistocene) युग की 17 लाख वर्ष पूरानी चट्टानों से प्राप्त किये। इसका नाम पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस (Pithecanthropus erectus) दिया गया। **मेयर** (Meyer) ने 1950 मे इसका नाम **होमो इरेक्टस** (Homo erectus) दिया। यह दूर–दूर तक फैली हुई गुफाओं में जावा के अलावा अफ्रीका और चीन में पाये जाते हैं–

1. शरीर की लम्बाई 170 cm एवं भार 70 किलोग्राम था।
2. टाँगे लम्बी एवं सीधी थी, चलते समय कुछ झुका रहता था।
3. चेहरा (Face) आगे की और झुका हुआ, ठोडी (Chin) कम विकसित, नाक चौडी एवं चपटी थी।
4. माथा नीचा झुका हुआ, भौहों के नीचे अस्थि के मोटे उभार थे।
5. खोपडी चपटी, खोपडी की अस्थियाँ मोटी थी।
6. कपाल गुहा (Cranial cavity) का आयतन 800–1000 c.c. था।
7. नीचे का जबडा (Jaw) मजबूत एवं नीचे की और झुका हुआ।
8. दंत विन्यास मानव के समान था।

टिप्पणी

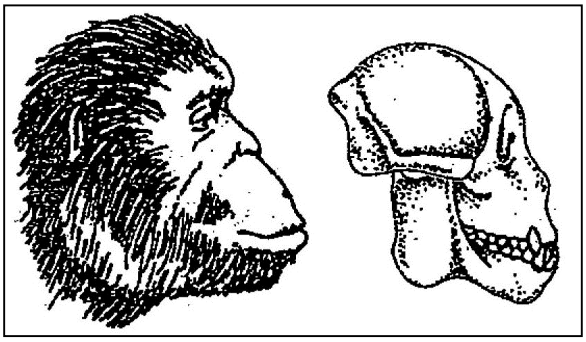

चित्र क्र. 5.23: Skull and Jaws of Man and Reconstructed Head

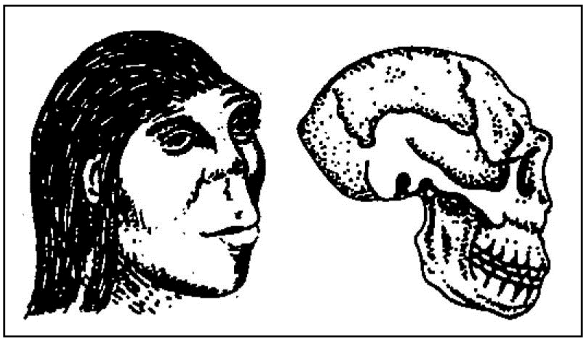

चित्र क्र. 5.24: Skull of Pekinernsis and Reconstructed Head

9. होंठ (Lips) मोटे एवं आगे की ओर निकले हुए थे।
10. यह पत्थरों के औजार (Tools) बनाते थे तथा अग्नि का उपयोग करते थे।

(स) **पेकिंग मानव या होमो इरेक्टस पेकिनेन्सिस (Peking man or Homo erectus pekinensis)**– सन् 1927 में **डेविडसन ब्लेक** (Davidson Black) ने पेकिंग के पास गुफा में अनेक दाँतों के जीवाश्मों (Fossils) का अध्ययन करने के पश्चात् निष्कर्ष निकाला कि यह जीवाश्म जावा कपि–मानव (Jawa apeman) से मिलते–जुलते हैं तथा अन्य जाति के हैं यह जीवाश्म 4–5 लाख वर्ष पूर्व प्लीस्टोसीनयुग (Pleistocene) के है। **डेविडसन** ने इसका नाम साइनेन्थ्रोपस पेकिनेन्सिस (Sinanthropus pekinensis) दिया, **मेयर** (Mayer) वैज्ञानिक ने इसका नाम परिवर्तित कर होमो इरेक्टस पेकिनेन्सिस (homo erectus-pekinensis) किया–

1. इसकी लम्बाई 1.55 से 1.65 मीटर थी।
2. यह मानव भक्षक थे।
3. इसका जबड़ा (jaw) बड़ा तथा ठोड़ी (Chin) नहीं थी।
4. कपाल गुहा का औसतन आयतन 1075 c.c. था।
5. समूहों में गुफाओं में रहते थे।
6. यह अग्नि का उपयोग करते थे।

7. इनका समय एवं स्थिति का अधिक ज्ञान था। अपने निवास स्थान को वर्ष में कई बार छोड़ते थे तथा फिर वहीं वापस आकर रहते थे।

(द) हीडलबर्ग मानव/होमो हीडलबर्गेन्सिस (Heidelberg man-Homo heidelbergensis)– सन् 1907 में जर्मनी में एक **जीवाश्म हीडलबर्ग** (Heidelberg) के पास प्राप्त हुआ। 10 लाख वर्ष पूर्व की प्लीस्टोसीन की चट्टानों (Rocks of Pleistocene) से दन्त जबड़ा जीवाश्म के रूप में मिला। इसको भी होमो इरेक्टस जाति का ही सदस्य माना गया–

1. ठोड़ी (Chin) अनुपस्थित थी।
2. जबड़ा (Jaw) काफी बडा, दाँत मानव के समान थे।
3. लक्षण जावा कपि मानव (Jawa apeman) के समान थे।
4. रदनक दाँत (Canine teeth) अन्य दाँतों से छोटे थे।

चीन के मानव शास्त्री **पाई** (Pai-1924) ने इस जीवाश्म को पेकिंग के पास से प्राप्त किया था। इसका नाम साइनेन्थ्रोपस पेकिनेन्सिस (Sinarnhropus pekinensis) रखा। इसके लक्षणों की समानता के आधार पर इसको **मेयर** (Meyer) वैज्ञानिक ने इसका नाम होमो इरेक्टस इरेक्टस (Homo erectus erectus) रखा।

(इ) होमो इरेक्टस मौरिटैनिकस (Homo erectus mauritanicus)– 1955 में इस मानव के जीवाश्म अफ्रीका से प्राप्त हुए। इसी प्रकार के जीवाश्म मोरक्को (Morocco) एवं हंगेरी (Hungary) से भी 1965 में प्राप्त हुए। यह अपेक्षाकृत कम बुध्दिमान, लेकिन जावा एवं पेकिंग मानव जैसे लक्षणों वाले थे।

7. चौथा चरण – वास्तविक मानव (True Man)– इस चरण के मानव पिछले चरण के समान की अपेक्षा अधिक विकसीत थे एवं सीधे खड़े होकर चलते थे। मस्तिष्क (Brain) का विकास भी आधुनिक मानव के समान था। जीवाश्मों के प्राप्त होने पर पता चला कि यह कई स्थानों पर फैले थे–

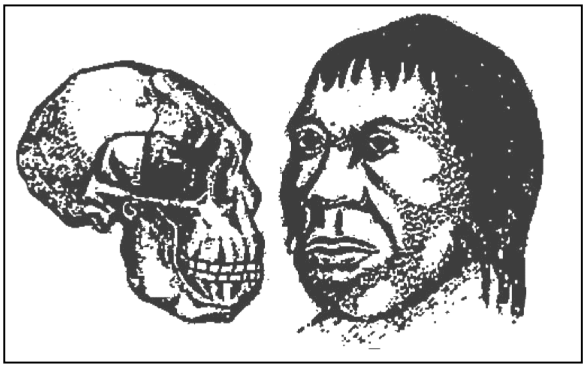

चित्र क्र. 5.25: Skull of Neanderthal Man and Reconstruction of Head

टिप्पणी

(i) नियेन्डरथल (Neanderthal), सोलो (Solo) मानव, क्रोमेगनन (Cromagnon) आदि–

(अ) नियेन्डरथल मानव (Neanderthal man) तथा होमोनियेन्डरथेलेन्सिस (Homo neanderthalensis)– इस मानव की उत्पत्ति लगभग 1.5 लाख वर्ष पूर्व अफ्रिका में विकसित हुई थी। यह यूरोप तथा एशिया में फैली तथा 35,000 वर्ष में लुप्त हो गई। सन् 1856 मे **फूहलरॉट** (Fuhlorott) ने जर्मनी की निएण्डर घाटी मे जीवाश्म प्राप्त किये थे। इसके अनेक जीवाश्म अन्य देशों में भी पाये गये। इन सब जीवाश्मों (Fossils) को एक ही मानव जाति से सम्बन्धित माना गया। निएण्डरथल (Neanderthal) वर्तमान मानव का सीधा पूर्वज था, इस कारण इसे उपजाति होमो सेपिएन्स नियेन्डरथेलेन्सिस (Homo-sapiens-neanderthalensis) कहा गया–

1. शरीर की लम्बाई 150 cm–165 cm थी।
2. शरीर सुडौल एवं ताकतवर था।
3. दो पैरों पर सीधे खड़े होकर चलते थे। (Bipedal)
4. ठोड़ी (Chin) स्पष्ट नहीं थी। निचला जबडा भारी था।
5. भौंहो के उभार सामान्य थे।
6. सिर सामने की और उभरा हुआ, माथा चौड़ा, चपटा एवं छोटा था।
7. नाक चपटी एवं छोटी थी।
8. कपाल गुहा (Cranial cavity) का आयतन 1350–1700 c.c. था।
10. आँखों के उपर की हड्डी मोटी थी।
11. श्रम विभाजन (Division of labour), धर्म, संस्कृति की स्थापना इसी मानव द्वारा की गई।
12. औजार (Tools) बनाना तथा मुर्दे को जमीन में गाड़ने की प्रथा थी।
13. आत्मा की अमरता (immortality of soul) पर विश्वास करते थें।
13. गुफा में रहते थे तथा अग्नि का उपयोग करते थें।
14. वाणी (Speech) के केन्द्र विकसित थे।

(ब) क्रोमेगनन मानस/होमोसेपियन्स फोसिलिस (Cromagnon man – Homosapiens fossilis)– निएन्डरथल मानव (Neanderthal man) का विलोम होने के पश्चात् इसका स्थान बिलकुल भिन्न मानव जाति ने लिया। इसकी उत्पत्ति 40,000 वर्ष पूर्व हुई। प्रारम्भ में यह जाति निएन्डरथल मानव जाति के साथ रही। अधिक विकसित एवं आधुनिक मानव के समान होने के कारण यह आगे चलती रही। सन् 1868 में **मैक ग्रेगर** (Mac Gergor) ने इस जाति

के जीवाश्म (Fossils) की खोज फ्रान्स के शिलाखण्डों में की। इस जाति को **होमो सेपियन्स** (Homo sapiens) का अन्तिम पूर्वज माना जाता है। इसकी एक जाति का नाम होमो **सेपियन्स फ्रासिलिस** (Homosapiens fossilis) कहा जाता है। इस जाति के अन्य जीवाश्म जर्मनी (Germany), इटली (Italy), अफ्रीका (Africa), इजराइल (Israel) आदि देशों में भी पाये गये–

1. शरीर की लम्बाई 6 फुट थी।
2. चेहरा छोटा, चौड़ा, तथा नाक उठी हुई, भौंहे (Eye brows) हल्की तथा ठोड़ी (Chin) स्पष्ट पाई गई।
3. जबडे (Jaws) मजबूत एवं दन्त विन्यास आधुनिक मानव के समान थे।
4. सीधे खेडे होकर चलते थे।
5. कपाल गुहा (Cranial cavity) का आयतन 1600 c.c. था।
6. यह चतुर थे एवं पशु पालते थे, पशुओं से काम भी लेते थे।

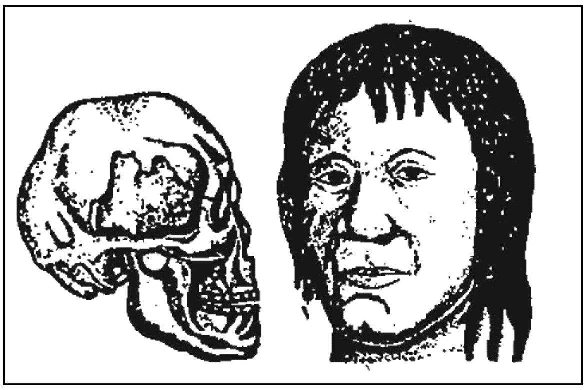

चित्र क्र. **5.26: Skull of Cromagnon Man and Reconstructed Head**

7. हथियारों का निर्माण एवं शिकार करना इस जाति का मुख्य व्यवसाय था।
8. कला एवं धर्म का विकास इसी मानव के द्वारा किया गया था, पशुओं के चित्र बनाते थे।
9. मुर्दो को अपनी रीति–रिवाजों के अनुसार गाडते तथा धर्म एवं समाज को मानते थे।
10. अत्यधिक बुध्दिमान एवं सभ्य संस्कृति वाले मानव थे।
11. यह तेज गति से चलते थे एवं दौडते थे।
12. गुफाओं में परिवार बनाकर रहते थे।
13. जानवरों की खाल के वस्त्र पहनते थे।

वैज्ञानिकों का मत है कि क्रोमेगनन मानव (Cromagnon man) की उत्पत्ति निएन्डरथल मानव से हुई है, यह दोनों ही जाति के मानव, आधुनिक मानव के सीधे पूर्वज थे। इस तथ्य की पुष्टि क्रोमेगनन मानव में संकरी करोटि (Skull) बड़े–बड़े नेत्र कोटर (Eye orbit) भारी जबड़े आदि लक्षण के द्वारा होती है।

(स) **आधुनिक मानव (Modern Man)– होमो सेपिएन्स सेपिएन्स (Homo-sapiens-sapiens)–** वर्तमान मानव को क्रोमेगनन (Cromagnon) से एक भिन्न जाति माना गया है। आधुनिक मानव का विकास क्रोमेगनन मानव से हुआ है। यह मानव 10–11 हजार वर्ष पूर्व एशिया में कैस्पियन सागर (Caspian sea) के पास विकसित हुए। इनकी उत्पत्ति के इस काल को पूर्व पाषाण काल (Paleolithic or Old Stone Age) कहते थे। धीरे–धीरे मध्य पाषाण युग (Mesolithic age) में मानव ने पशुपालन, पढ़ने–लिखने की क्षमता का विकास किया। अन्त में नव पाषाण काल (Neolithic or New Stone age) में मानव ने कृषि, गृहस्थ एवं सामाजिक जीवन व्यतीत करना सीखा।

लक्षण–

1. शरीर का आकार लम्बा 180 सेमी. था कपाल उठा हुआ, कपालस्थियाँ पतली।
2. चेहरा सीधा एवं चौड़ा, नाक सीधी थी।
3. कपाल गुहा का आयतन 1350–1500 c.c. था।

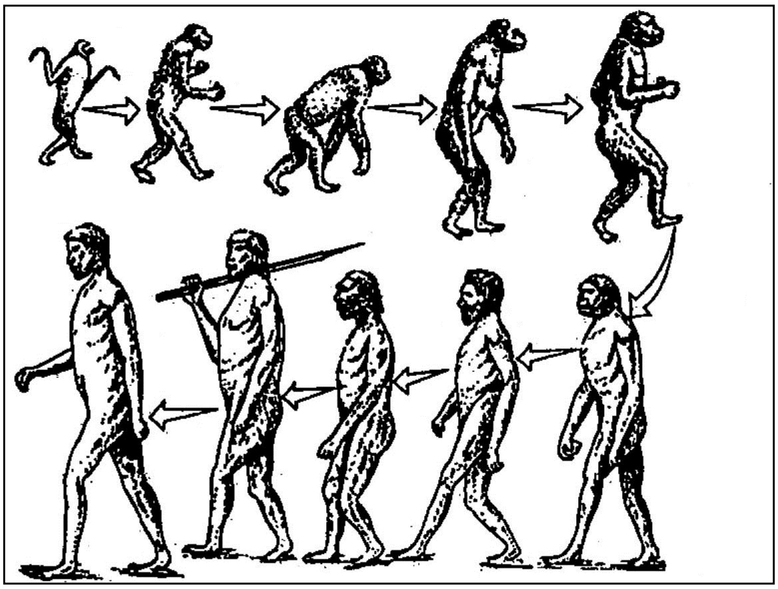

चित्र क्र. 5.27: **Evolution of Man (Progressive Way)**

4. टाँगो का भुजाओं से लम्बा होना।
5. प्रमस्तिष्क (Cerebrum) एवं अनुमस्तिष्क (Cerebellum) अधिक विकसित एवं जटिल।
6. धीरे–धीरे कृषि द्वारा अनाज उगाना शुरू किया।
7. धर्म एवं समाज को महत्व देना शुरू।
8. ठोडी (Chin) उभरी हुई होती थी।
9. सीधा खडे होकर चलना प्रारम्भ किया।

   आधुनिक मानव की उत्पत्ति के पश्चात् तीन प्रमुख दिशाओं में देशान्तर हुआ–

   (i) पश्चिमी दिशा मे भूमध्य साार के किनारे–किनारे– यूरोप, दक्षिण–पश्चिम एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका की वर्तमान गोरी जाति विकसित हुई।

   (ii) उत्तर एवं पूर्व दिशाओं की ओर जाने वाले मानव साइबेरिया एवं चीन जाकर मंगोलाइड प्रजाति में विकसित हुए।

   (iii) दक्षिण दिशा में जाने वाले भारतीय सागर के दोनों ओर जाकर अफ्रीका एवं मिलैनीशिया की काली नीग्री प्रजाति में विकसित हुए।

5.5.3 भविष्य का मानव/होमो फ्युच्युरिस (Future Man – Homo Futuris)

जैव विकास (Organic evolution) की क्रिया निरन्तर चल रही है। प्रश्न उठता है कि क्या मानव में विकास (Evolution) अब भी हो रहा है। क्रोमेगनन (Cromagnon) की उत्पत्ति के पश्चात् 40,000 वर्षों से मानव में कोई भी विशेष परिवर्तन नही आया, इसका मुख्य कारण मनुष्य में सांस्कृतिक विकास में अपनी आवश्यकतानुसार वातावरण की दशाओं को परिवर्तित करने की क्षमता पाई गई हैं। भविष्य में यही सांस्कृतिक विकास (Cultural evolution) चलता रहेगा। इसके साथ जैव–विकास का महत्व कम होता जायेगा। भविष्य में मनुष्य में निम्नलिखित लक्षण विकसित पाये जायेंगे। यह विचार **सेपिरो** (Shapiro) नामक अमेरिकन मानवशास्त्री (Anthropologist) ने दर्शाये–

1. मनुष्य का आकार अधिक लम्बा होगा।
2. खोपड़ी (Skull) में बालों की कमी होगी तथा खोपड़ी का आकार गुम्बज के समान होगा।
3. मस्तिष्क का आकार भी बड़ा होगा।
4. हाथ एवं पैरों की अंगुलियाँ समाप्त हो जायेगी।
5. जीवनकाल (Life span) अधिक लम्बा होगा।

6. आनुवंशक (Genes) में परिवर्तन करने मे सफलता मिल जाने पर मानव विकास में प्राकृतिक चयन (Natural selection) का महत्व समाप्त हो जायेगा।

अपनी प्रगती जाँचिए (Check Your Progress)

21. जावा कृषि मानव की खोज करने वाले वैज्ञानिक थे–

(अ) डबॉय (ब) लीकी

(स) मेयर (द) लेवी

22. कौन–सा लक्षण मानव विकास क्रम से सम्बन्धित नहीं है?

(अ) वृषण कोष (ब) त्रिविम दृष्टि

(स) मस्तिष्क का विकास (द) अंगुलियों पर पंजे

23. जावा मानव की कपाल गुहा कितनी थी?

(अ) 400 c.c. (ब) 900 c.c.

(स) 1450 c.c. (द) 650 c.c.

24. चट्टानों पर रंगीन चित्रकारी सर्वप्रथम किसने की?

(अ) जावा मानव (ब) पेकिंग मानव

(स) क्रोमेगनन मानव (द) निएन्डरथल मानव

25. पियेकन्थ्रायस के जीवाश्म कहाँ से प्राप्त हुए?

(अ) चीन (ब) जर्मनी

(स) जावा (द) जापान

26. कौनसा प्रागैतिहासिक मानव प्लीस्टोसीन युग में पृथ्वी पर रहता था?

(अ) क्रोमेगनन (ब) निएन्डरथल

(स) ऑस्ट्रेलोपिथैकस (द) एटलाण्टिक मानव

27. निम्न में से कौन–सा वक्तव्य सही है?

(अ) प्रोकन्सल मानव तथा कपि दोनों का पूर्वज था

(ब) प्रोकन्सल मानव का पूर्वज तथा परन्तु कपि का नहीं था

(स) शारीरिक संरचना के आधार पर कपि मानव का पूर्वज था

(द) कोई नहीं

28. मानव के किस पूर्वज ने सर्वप्रथम दो पैरों पर चलना आरम्भ किया?

(अ) ऑस्ट्रेलोपिथेकस (ब) क्रोमेगनन

(स) पेकिंग मानव (द) जावा मानव

29. जैव–विकास के क्रम में कौनसा प्राइमेट मनुष्य के सबसे निकट है?

(अ) गिब्बन (ब) गोरिल्ला

(स) साइनेन्थाप्रस (द) ओरंगुटान

30. मनुष्य का वैज्ञानिक नाम क्या है?

(अ) होमोसेपिएन्स (ब) होमोह्यूमेनिस

(स) होमो निएन्डरथेलेन्सिस (द) पिल्डॉन मानव

5.6 भौमिक समय–सारणी एवं द्वीपीय प्राणी समूह (Geological Time Scale and Insular Fauna)

भौमिक समय – सारणी (Geological Time Scale)

भू–पटल सहित पृथ्वी के पूर्ण बन जाने से लेकर वर्तमान समय तक के इतिहास को चट्टानों की आयु के अनुसार पाँच प्रमुख महाकल्पों में बाँटते है। ये निम्नलिखित प्रकार है–

1. भू–पटल सहित या आर्कियोजोइक महाकल्प (Archaeozoic Era)
2. प्राजीवी या प्रोटेरोजोइक महाकल्प (Proterozoic Era)
3. पुराजीवी या पेलियोजोइक महाकल्प (Palaeozoic Era)
4. मध्यजीवी या मीसोजोइक महाकल्प (Mesozoic Era)
5. नूतनजीवी या सीनोजोइक महाकल्प (Coenozoic Era)

अन्तिम तील (पेलियोजोइक, मीसोजोइक तथा सीनोजोइक) महाकल्पों (Eras) को आगे कल्पों में बाँटा गया है। पेलियोजोइक महाकल्प (Era) के प्रथम कल्प को कैम्ब्रियन कल्प (Cambrian Period) कहते है। अतः आर्कियोजोइक तथा प्रोटेरोजोइक महाकल्पों को सम्मिलित रूप से प्रीकैम्ब्रियन महाकल्प (Precambrian Era) भी कहते है। इसी प्रकार, प्रथम आर्कियोजोइक महाकल्प के अलावा शेष चार महाकल्पों को सम्मिलित रूप से फैनेरोजोइक महाकल्प (Phanerozoic Era) भी कहते हैं।

टिप्पणी

सारणी क्र. 5.2: भौतिक समय सारणी (Geological Time Scale)

महाकाल (Era)	काल (Period)	युग (Epochs)	अवधि (लाख वर्षों में) Period (in Lakh years)	प्राणी जीवन (Animal life)
सीनोजोइक	चतुर्थ काल	आधुनिक	10	मानव–युग तथा सभी प्रकार का आधुनिक जीवन
		प्लीसटोसीन	20	आदिमानव–काल
		प्लियोसीन	25	जरायुयुक्त स्तनधारी, पक्षी, टीलियोस्ट
		मायोसीन	30	जरायुयुक्त स्तनधारी, मनुष्य के समान कपियों का विकास
	तृतीय काल	ओलाइगोसीन	45	एन्थ्रोपॉइड कपि का उद्भव
		इयोसीन	60	आकार तथा संख्या में जरायुयुक्त
		पेलियोसीन	70	स्तनधारियों की वृद्धि तथा पक्षियों में वृद्धि
मीसोजोईक	क्रिटेशियस काल		120	डायनोसॉर तथा दंतमुक्त पक्षियों का विलुप्तीकरण
	जुरेसिक काल		155	पक्षियों का उद्भव, डायनोसॉर का चरम विकास
	ट्राइयेसिक काल		190	प्रथम जरायुयुक्त स्तनधारी, स्नतधारी सदृश सरीसृप का चरम विकास
	पर्मियन काल		215	सरीसृप की वृध्दि, उभयचरों में कमी
	कार्बोनीफेरस काल		300	प्रथम सरीसृप, उभयचरों (Amphibian) का चरण विकास, प्लेकोडर्म तथा ऑस्ट्रेकोडर्म का विलुप्तीकरण
पेलियोजोइक	डिवोनियन काल		350	प्रथम उभयचर (Amphibian)
	सिल्युरियन काल		360	प्रथम प्लेकोडर्म, ऑस्ट्रेकोडर्म का प्रभावी काल

	आर्डोवीसियन काल		480	प्रथम ऑस्ट्रेकोडर्म
	कैम्ब्रियन काल		550	अकशेरुकी प्राणियों का समय
प्रोटेरोजोइक			925	मुख्यतया प्रोटोजोआ का समय
आर्कियोजोइक			8000	प्राणी–जगत का प्रभाव

भौमिक क्रान्तियाँ (Geological Revolutions)– वैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्येक महाकल्प की शुरुआत **भौमिक क्रान्ति** (Geological Revolutions) के द्वारा होती है अर्थात् प्रकृति के भौतिक एवं जैविक कारकों में प्रलयकारी परिवर्तन होते हैं, जैसे– नयी पर्वत–श्रेणियों का बनना, पर्वतों आदि का समुद्र में धँसना, जीव–जातियों का पूर्ण रूप से नष्ट होना तथा नयी जीव–जातियों की उत्पत्ति होना।

आर्कियोजोइक तथा प्रोटेरोजोइक महाकल्पों के बाद की क्रान्तियों को प्रथम व द्वितीय महाक्रान्तियाँ कहते हैं। पेलियोजोइक महाकल्प के बाद तृतीय महाक्रान्ति को एप्लैशियन क्रान्ति (Appalachian revolution) कहते हैं, क्योंकि इसमें एप्लैशियन पर्वतमाला का निर्माण हुआ। मीसोजोइक महाकल्प के बाद शैल पर्वत क्रान्ति हुई जिसमें ऐण्डीज, हिमालय तथा आल्पस पर्वत श्रेणियाँ बनीं।

5.6.1 विभिन्न युगों के अन्तर्गत जैव–विकास (Organic Evolution in Different Era)

(अ) आद्यकल्पी या आर्कियोजोइक महाकल्प (Archaeozoic Era)

इस महाकल्प का आरम्भ भू–पटल बनने के बाद वर्तमान से लगभग 3 अरब 70 करोड पूर्व प्रारम्भ हुआ माना जाता है। इसकी अवधि 2.1 अरब वर्ष आँकी गयी है।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– इस महाकल्प में पृथ्वी पर ज्वालामुखियों का वर्चस्व था, जिनके फटने तथा भूमि के कटाव आदि से भू–पटल पर उथल–पुथल होती रहती थी। आदिसागर में तलछट (Sediments) का जमना प्रारम्भ हो गया था इसीलिए इसके शैल–स्तरों (Rocky-layers) में कार्बन, चुने का पत्थर, लोहा, ग्रेफाइट के जमाव मिलते हैं।

जीव–जन्तु (Living Organisms)– इस महाकल्प के शैल–स्तरों में यद्यपि पुराजीवों के जीवाश्म नही मिले, फिर भी इनमें कार्बन की उपस्थिती तथा अन्य तथ्य इस बात को प्रमाणित करते है कि इस महाकल्प के प्रारम्भ में आदि–सागर में 'जीवन की उत्पति' हो चुकी थी।

इस महाकल्प में प्रारम्भिक जीवों के अनेक प्रकार के पूर्व केन्द्रकीय (Prokaryotic), मोनेरा (Monera) तथा वर्तमान प्रोटिस्टा (Protista) जैसे सरलतम एककोशीय जीव बने। कोमल होने के कारण ही इनके जीवाश्म नहीं बने। फिर भी दक्षिण अफ्रीका के फिग वृक्ष शैल से सन् 1966 में लगभग 3 अरब वर्ष

पुराने कुछ जीवाणुओं (Bacteria) जैसे जीवों **इओबैक्टीरियम आइसोलेटम** (Eobacterium isolatum) के तथा सन् 1968 मे लगभग 3.2 अरब वर्ष पूर्व के कुछ नीले–हरे शैवालों जैंसे जीवों के जीवाश्म मिले।

(ब) प्राजीवी या प्रोटेरोजोइक महाकल्प (Proterozoic Era)

इसकी अवधि लगभग एक अरब वर्ष आँकी जाती है। यह वर्तमान समय से लगभग 1 अरब 60 करोड़ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ माना जाता है।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– इस महाकल्प में ज्वालामुखियों के फटने से भू–पटल पर उथल–पुथल मची रहती थी। आदि सागर में तलछट काफी जमी हुई थी। इस महाकल्प में बर्फ जमने के भी प्रमाण मिलते हैं। इस महाकल्प के शैल–स्तरों से मिले जीवाश्मों से अनेक प्रकार के जीव–जन्तुओं की उपस्थिती तथा जैव–विकास के प्रमाण मिलते हैं।

जन्तु (Animals)– इस महाकल्प के प्रारम्भ में आदिसागर में प्रोटोजोआ (Protozoa) जन्तु थे जिनमें अधिकांश खोलयुक्त रेडियोलेरियन (Radiolarian) थे। इसके पश्चात् स्पंजों (Sponges), सीलेण्ट्रेट्स (Coelenterates), मौलस्का (Mollusca), तथा आर्थ्रोपोडा (Arthropods) आदि का विकास हुआ।

पादप (Plants)– इस महाकल्प के प्रारम्भ में जीवाणु तथा नीले–हरे शैवाल थे, परन्तु बाद में आदि सागर के जल में शैवालों तथा कवकों का व्यापक विकास हुआ।

(क) पुराजीवी या पेलियोजोइक महाकल्प (Palaezoic Era)

(Gr. Palaios = ancient + zoe = life)

इस महाकल्प की अवधि लगभग 37 करोड़ वर्ष आँकी जाती है। इस महाकल्प का प्रारम्भ वर्तमान से लगभग 60 करोड़ वर्ष पूर्व तथा अन्त लगभग 23 करोड़ वर्ष पूर्व माना जाता है।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– इस महाकल्प के दौरान आदि – समुद्रों का विस्तार हुआ तथा कई विशाल पर्वत–श्रेणियों का निर्माण हुआ।

इस महाकल्प में जैव–विकास में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। आदि सागर के जीव भूमि पर आये। पृष्ठवंशीय जन्तुओं का उदय तथा विकास हुआ। इसी के साथ जिम्नोस्पर्म तथा टेरिडोफाइट (Pteridophyte) पादपों का व्यापक विस्तार हुआ।

इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण इस महाकल्प को निम्नलिखित छः कल्पों (Periods) में बाँटा गया है–

(i) कैम्ब्रियन कल्प (Cambrian Period)

(ii) ऑर्डोवीसियन कल्प (Ordovician Period)

(iii) सिल्युरियन कल्प (Silurian Period)

(iv) डिवोनियन कल्प (Devonian Period)

(v) कार्बोनीफेरस कल्प (Carboniferous Period)

(vi) पर्मियम कल्प (Permian Period)

(i) कैम्ब्रियन कल्प (Cambrian Period)– इस कल्प का प्रारम्भ वर्तमान समय से लगभग 60 करोड़ वर्ष पूर्व माना जाता है तथा इसकी अवधि लगभग 10 करोड़ वर्ष आँकी गयी है। सन् 1835 में **एडम सेड्विक** (Adam Sedgewick) द्वारा सिटी ऑफ वेल्स (City of Wale) में रोमन भाषा में कैम्ब्रियन समय के शैल–स्तर प्राप्त किए गए थे।

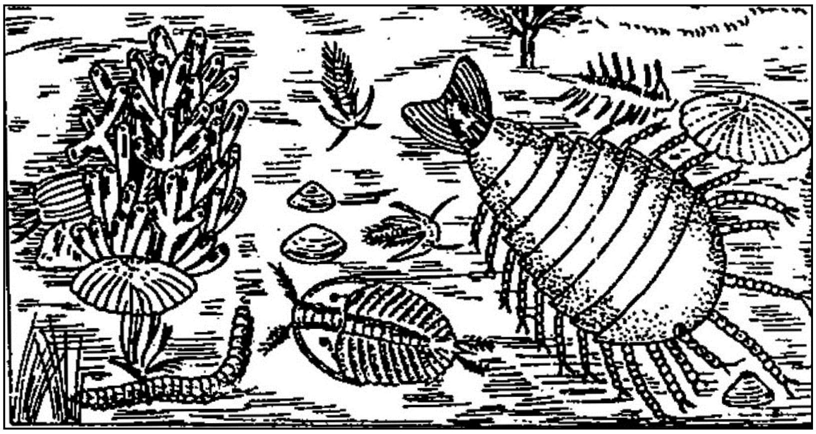

चित्र क्र. 5.28: **Different Animals and Plants of Cambrian Period**

भौमिक दशा (Geological Condition)– इस कल्प के शैल–स्तरों से अधिकांश जीवाश्म प्राप्त हुए। अधिकांश भूमि नीची थी। तथा जलवायु सामान्य थी। इस कल्प के प्रारम्भ तक जीवों का भूमि पर पदार्पण आरम्भ नहीं हुआ था।

जन्तु (Animals)– इस कल्प में आदि–सागर के जल में प्रोटोजोआ, स्पंजों, सीलेण्ट्रेट्स, एनीलिडा के अतिरिक्त मौलस्का संघ के ब्रेकियोपोड्स (Brachiopods) तथा सिफैलोपोड्स (Cephalopods) का तथा आर्थ्रोपोडा में आदि–झींगों का कई प्रकार का, क्रस्टेशियन्स, ऐरेक्नाइडा (Arachnida) तथा ट्राइलोबाइट्स (Trilobites) का तथा इकाइनोडर्मेटा संघ की कई जन्तु जातियों की उत्पति हुई। इनमें ब्रेक्रियोपोड्स (Brachiopods) तथा ट्राइलोबाइट्स (Trilobites) सबसे व्यापक थे।

ट्राइलोबाइट्स का शरीर 5–6 तथा 50-60 cm लम्बा था। शरीर शिरोवक्ष (Cephalothorax) तथा उदर (Abdomen) में बँटा हुआ था। शरीर पर सख्त बाहय कंकाल था। चलन पादों द्वारा व समुद्र की तलछटी में चलते थे। ब्रिटिश कोलम्बिया के कुछ पर्वतों के कैम्ब्रियन शैल स्तरों से कई एनीलिडा तथा आर्थ्रोपोडा के जीवाश्म मिले हैं जिनमें वर्तमान में पायी जाने वाली पेरीपेट्स (Peripatus) जाति से मिलती–जुलती जाति के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं, जिन्हें हम एनीलिडा तथा आर्थ्रोपोडा के बीच संयोजक

टिप्पणी

कडी (connecting link) मान सकते हैं। इसमे आर्थ्रोपोड्स का एनीलिड्स से विकास के प्रमाण मिलते हैं।

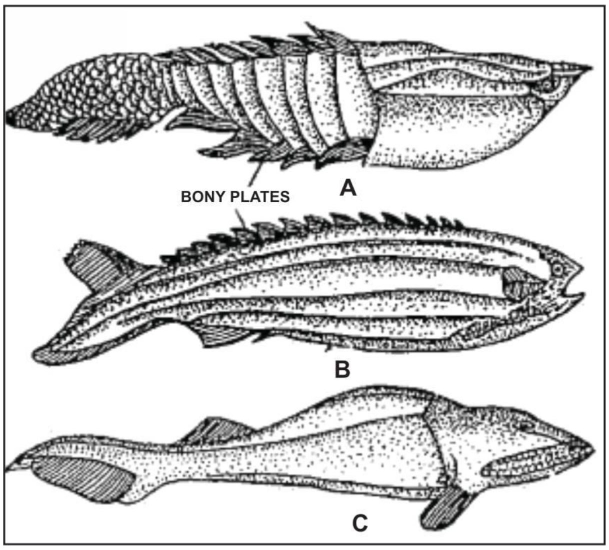

चित्र क्र. 5.29: Shelled Fishes

पादप (Plants)– इस कल्प मे विभिन्न शैवालों का व्यापक विकास व विस्तार हुआ।

(ii) आर्डोवीसियन कल्प (Ordovician Period)– इसकी अवधि लगभग 7.5 करोड़ वर्ष आँकी जाती है।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– इस कल्प में छिछले समुद्रों का व्यापक विस्तार हुआ। जलवायु गर्म थी।

जन्तु (Animals)– इस कल्प में कोरल्स (Corals) के ब्रेकियोपोड्स (Brachiopods) तथा वर्तमान नोटिलस प्राणियों (Nautilus) की व्यापकता थी। आदि–समुद्र में कई–कई मीटर तक लम्बे कवचदार सिफैलोपोड्स (Cephalopods) थे। इनके अतिरिक्त आदि अलवणीय जल मे निम्न कोटी की मछलियों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार पृष्ठवंशियों (Vertebrates) का उदय हुआ। ये मछलियाँ जबड़े विहीन थीं। इन्हें कवचित मछलियाँ अर्थात् ऑस्ट्रेकोडर्म (Ostracoderm) कहते हैं।

पादप (Plants)– आदि–समुद्र शैवाल काफी थे।

(iii) सिल्युरियन कल्प (Silurian Period)– इसकी अवधि लगभग 2 करोड़ वर्ष आँकी जाती है।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– भूमि की उथल–पुथल से समुद्र कई जगह गहरे हुए, ताप काफी कम हुआ, कुछ हिमखण्ड भी बने।

इस कल्प में आदि–समुद्री जीवों का भूमि पर पदार्पण प्रारम्भ हुआ।

जन्तु (Animals)– इस कल्प में बिच्छू तथा मकडियों जैसे आर्थ्रोपोड्स की काफी व्यापकता थी। इन्होंने भूमि पर आकर वायु–श्वसन प्रारम्भ किया।

सहस्त्रपाद (Millipedes) तथा पंखहीन कीटों की उत्पत्ति हुई तथा ऑस्ट्रेकोडर्म (Ostracoderm) मछलियों का जल मे विकास होता है।

पादप (Plants)– आदि–समुद्र में शैवालों का प्रभुत्व था। भूमि पर फर्न सदृश कुछ स्थलीय पौधों की उत्पत्ति हुई।

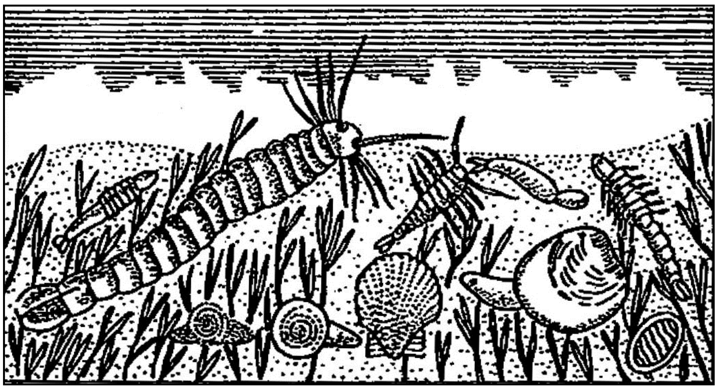

चित्र क्र. 5.30: Animals and Plants of Silurian Period

(iv) डिवोनियन कल्प (Devonian Period) (Period of 'Devon' in England)– इसकी अवधि लगभग 6 करोड़ वर्ष आँकी जाती है।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– जलवायु शुष्क थी। कुछ ताप कम हुआ जिससे हिमखण्डों का निर्माण हुआ।

जन्तु (Animals)– इसी कल्प (Period) में जबड़े रहित निम्न कोटि की मछलियों का व्यापक विस्तार हुआ। अतः इस कल्प को 'मछलियों का युग' (Age of Fishes) कहते है। इनसे छोटी–छोटी जबड़ेयुक्त व कवचदार शार्क मछली प्लेकोडर्म की उत्पत्ति हुई। प्लेकोडर्म अधिक सफल नहीं हुई, अतः इनसे लवणीय जल वाली फेफड़ेयुक्त मछलियों (Lung Fishes), मांसल–पंखी मछलियों (Fleshy-finned fishes) आदि का विकास हुआ। इसमें से कुछ मछलियाँ निकलकर भूमि पर आयीं तथा इनके पंख पंचांगुलीय पादों में विकसित हुए। इस प्रकार प्रारम्भिक उभयचर (Amphibian) स्टीगोसिफेलिया (Stegocephalia) का विकास हुआ।

इस कल्प की विलुप्त (Extinct) माँसल–पंखी मछली की जीवित किस्म लैटिमेरिया (Latimaria) सन् 1938 में दक्षिण अफ्रीका के समुद्र तट पर पकड़ी गयी है। इसकी लम्बाई लगभग 2 मीटर है। इसी से कुछ–मिलती–जुलती जाति की मछलियाँ मैलेनिया (Malania) भारतीय समुद्र में पकड़ी गयी है।

पादप (Plants)– इस कल्प में स्थलीय वनस्पतियों का विकास व विस्तार हुआ जिससे मॉस (Moss), लाइकोपोड्स (Lycopods) तथा इक्वीसीटम (Equisetum) आदि का व्यापक विस्तार हुआ। जिम्नोस्पर्म्स की व्यापकता थी।

(v) **कार्बोनीफेरस कल्प (Carboniferous Period) (Period of Mississipi and Pennsylvania)**– इसकी अवधि लगभग 6.5 करोड़ वर्ष आँकी जाती है।

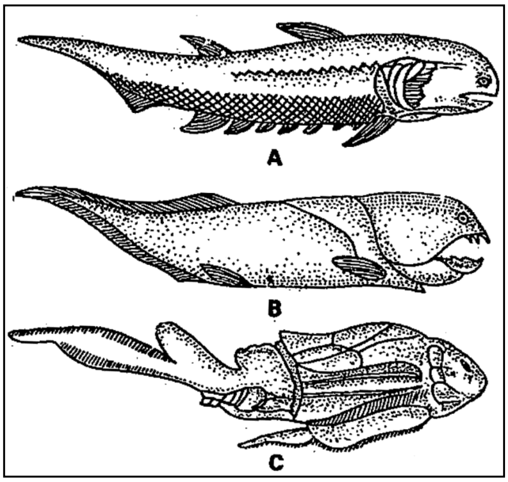

चित्र क्र. 5.31: Placoderm Fishes

भौमिक दशाएँ (Geological Conditions)– इस कल्प मे जलवायु गर्म व नम थी, अतः जंगल पत्थर के कोयले की खानों में बदल गये। पृथ्वी पर दलदल अधिक थे।

जन्तु (Animals)– इस कल्प में विभिन्न उभयचरों (Amphibians) का व्यापक विस्तार हुआ। अपृष्ठवंशियों में वायु मे श्वसन करने वाले आर्थ्रोपोड्स (Arthropods), जैसे– बिच्छू, कीट, मकड़ियों आदि का भी काफी विकास हुआ। समुद्र में शार्क मछलियाँ तथा इकाईनोडर्म्स का भी विकास व विस्तार हुआ। इस कल्प के अन्त में उभयचरों (स्टीगोसिफेलिया) से प्रथम सरीसृप (Reptile) सेमोरिया (Seymouria) की उत्पत्ति हुई।

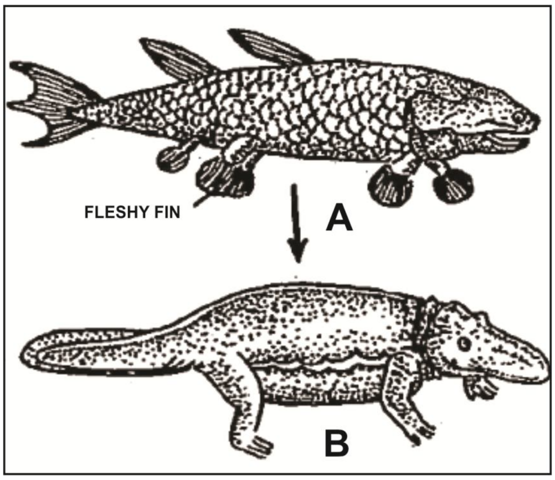

चित्र क्र. 5.32: Development of Stegocephalia from Fleshy-finned Fishes

पादप (Plants)– इस कल्प में फर्नों का प्रभुत्व था। भूमि दलदली होने के कारण जंगलो मे क्लब मॉस, लाइकोपोड़स तथा जिम्नोस्पर्म्स का काफी विस्तार हुआ।

पर्मियन कल्प (Permian period ("Period of Perm'' a Russian Province)– इसकी अवधि लगभग 5 करोड़ वर्ष आँकी जाती है।

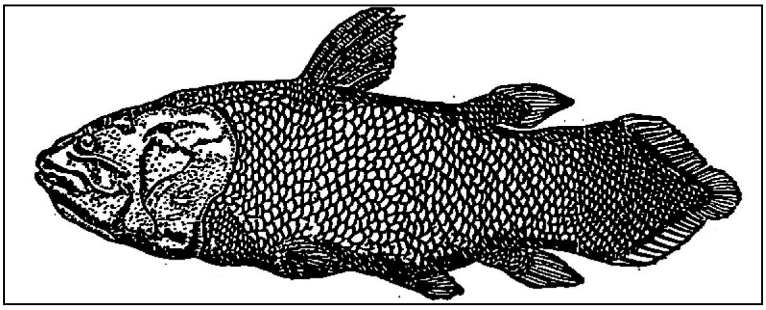

चित्र क्र. 5.33: Latimaria Fish

भौमिक दशाएँ (Geological Conditions)– पृथ्वी पर उथल–पुथल के कारण पर्वत–श्रेणियों का विकास हुआ। उथले समुद्र समाप्त हुए तथा नमकीन मरुस्थल बने। जलवायु शुष्क व नम थी, अंतः पर्वत–श्रेणियों पर हिमखण्ड बने और उनके पिघलने से नदियाँ बनी।

जन्तु (Animals)– इस कल्प में ट्राइलोबाइट्स (Trilobites) – आदि मछलियाँ विलुप्त हुई तथा उभयचरों (Amphibians) का प्रभुत्व समाप्त हुआ। सरीसृप (Reptile) का विकास व विस्तार हुआ। इन्हें साइनेप्सिड्स (Synapsids) तथा थिरैप्सिड्स (Therapsids) कहते हैं।

पादप (Plants)– क्लब मॉस, लाइकोपोड्स (Lycopods) तथा बीजधारी फर्न (Seeded fern) का विकास रुक गया तथा विशालकाय जिम्नोस्पर्म्स (Gymnosperm) का विकास हुआ।

(ड) मध्यजीवी या मीसोजोइक महाकल्प (Mesozoic Period)

इस महाकल्प की अवधि लगभग 16 करोड़ 70 लाख वर्ष आँकी गई है। इस युग में जल, थल तथा वायु तीनों प्रकार के वातावरण में सरीसृपों का प्रभुत्व कायम था। वे अपने विकास की चरम सीमा पर थे, अतः इस युग को सरीसृप का स्वर्ण युग (Golden Age of Reptiles) कहते हैं। इस महाकल्प को तीन कल्पों में बाँटा गया है– ट्राइऐसिक (Triassic), जुरैसिक (Jurassic) तथा क्रिटेशियस (Cretaceous).

टिप्पणी

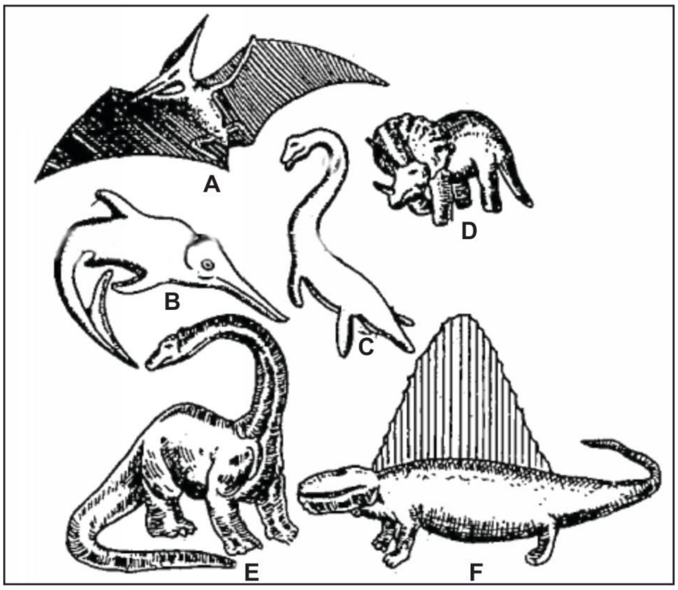

चित्र क्र. 5.34: **Giant Reptiles of Mesozoic Era**

(i) **ट्राइऐसिक कल्प (Triassic Period) (Period three fold division, (Duration: 181-230 million years ago)**– इस कल्प की आयु 4 करोड़ 90 लाख वर्ग आँकी जाती है।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– जलवायु शुष्क व नम होने के कारण मरुस्थलों का विस्तार हुआ।

जन्तु (Animals)– मौलस्कन (Molluscan), जैसे– सीप, घोंघे, आधुनिक कीटों तथा समुद्री अर्चिन्स का विस्तार व विभेदीकरण हुआ। आदि उभयचर विलुप्त हो गये। सरीसृपों का तीव्र प्रचार हुआ। स्थल पर छिपकली के समान डाइनोसॉर्स (Dinosaurs), जल में मछली के समान इक्थियोसॉर्स (Icthyosaurs) तथा छिपकली की भाँति टेरोसॉर्स (Pterosaurs) की उत्पत्ति हुई। इस कल्प के अन्तिम चरण मे टेरोसॉर्स (Pterosaurs) नामक उड़ने वाले सरीसृप तथा निम्न श्रेणी के अण्डे देने वाले निम्न कोटि के स्तनियों मॉनोट्रिमैटा की उत्पत्ति हुई। इन स्तनियों का शरीर छोटा, दुम लम्बी तथा पाद छोटे व पंचांगुली थे।

पादप (Plants)– क्लब मॉस, लाइकोपोड्स (Lycopods) तथा बीजधारी फर्नों की विलुप्ति हुई। जिम्नोस्पर्म्स (Gymnosperms) पादपों का व्यापक विस्तार हुआ और उनके घने जंगल बने।

(ii) **जुरैसिक कल्प (Jurassic Period (Period of "Jura mountains'' in France)**– इसकी अवधि लगभग 4.60 करोड वर्ष आँकी गयी थी।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– इस कल्प की जलवायु अधिक गर्म व नम थी।

जन्तु (Animals)– इस कल्प में पृथ्वी तथा वायुमण्डल तीनों मे सरीसृपों ने अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचकर प्रभुत्व कायम किया। समुद्री

सरीसृपों में मछली की भाँति इक्थियोसॉर (Icthyosaur) था जो लगभग 9–10 मीटर लम्बा था, बच्चे देता था तथा इसके पाद चप्पू की भाँति थे। इसके अतिरिक्त समुद्री सरीसृप में छिपकली के समान प्लीसियोसॉर्स (Plesiosaurs) था जो लगभग 8.10 मीटर लम्बा था।

स्थल पर बड़ी छिपकलियों की भाँति डाइनोसॉर्स (Dianosaurs) थे जिनमें कुछ शाकाहारी तथा कुछ माँसाहारी थे। शाकाहारी डाइनासॉर्स में क्रमशः इग्वानोडॉन (Iguanodon) लगभग 9 मीटर लम्बा व तेज गरजने वाला था। ब्रोण्टोसॉर्स (Brontosaurs) लगभग 18–20 मीटर लम्बा तथा 50 टन भारी था। इसकी गर्दन लम्बी व सिरा छोटा था। डिप्लोडोकस (Diplodocus) तथा ब्रैंकियोसॉर्स (Branchiosaurs) लगभग 25–30 मीटर लम्बे तथा 50–55 टन भारी थे। स्टीगोसॉर्स (Stegosaurs) के शरीर पर बड़ी–बड़ी सुरक्षात्मक प्लेट्स तथा शंकु थे। अधिकतर शाकाहारी डाइनोसॉर्स का शरीर बड़ा व मस्तिष्क छोटा व अल्पविकसित था। अतः ये डरपोक, सुस्त व बुद्धिहिन थे।

सबसे भयंकर माँसाहारी डाइनोसॉर्स में टाईरैनोसॉर्स था जो लगभग 15 मीटर लम्बा व 6 मीटर मोटा था।

उडने वाले सरीसृपों में र्‍हैम्पोरिकस (Rhamporhynchus) था जो लगभग 1 मीटर लम्बा था। इसमें पूँछ व दन्तयुक्त चोंच थी। इनके अतिरिक्त इस कल्प में आधुनिक छिपकलियों, मगरमच्छों तथा टीलियोस्ट मछलियों (Teleost fishes) की उत्पत्ति हुई। आदि–स्तनियों का विस्तार व विभेदीकरण हुआ जिससे मार्सुपियल्स (Marsupials) आदि स्तनियों की उत्पत्ति हुई, जो अपरिपक्व बच्चों को जन्म देते थे। इस कल्प के अन्तिम चरण मे टेरोसॉर्स से पक्षियों की उत्पत्ति हुई जिसकी पुष्टि आर्कियोप्टेरिक्स (Archaeopteryx) के जिवाश्म से हुई। इसको सरीसृपों तथा पक्षियों के बीच संयोजन कड़ी (Connecting link) प्राणी माना जाता है, क्योंकि इसमें सरीसृप तथा पक्षियों दोनों के ही लक्षण विद्यमान थे। इससे पक्षियों की उत्पत्ति सरीसृपों से हुई स्पष्ट होती है।

पादप (Plants)– इस कल्प मे अनावृत्तजीवी (Gymnosperm) का विकास व विस्तार जारी रहा तथा प्रारम्भिक आवृत्तजीवियों (Angiosperms) की उत्पत्ति हुई।

क्रिटेसियस कल्प (Cretaceous Period) (Period of Chalk) (Duration: 63-135 million years)– यह मध्यजीवी या मीसोजोइक महाकल्प का अन्तिम चरण या कल्प था जिसकी अवधि लगभग 7.20 करोड़ वर्ष थी।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– इस कल्प में जलवायु शुष्क व नम थी। सागरों के विस्तार से काफी भूमि समुद्र में डूबी जिससे दलदल का विस्तार हुआ। इस कल्प के अन्तिम चरण में शैल पर्वत क्रान्ति के कारण एण्डीज, आल्प्स तथा हिमालय जैसी पर्वत–श्रेणियाँ बनी।

जन्तु (Animals)– विशालकाय सरीसृप अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचकर विलुप्त होने लगे जिसके निम्नलिखित कारण थे–

(a) ये परिवर्तनशील वातावरणीय दशाओं के अनुकूल अपने आप को बदल नहीं सके।

(b) ये शीत–रुधिर वाले जन्तु होने के कारण ठण्डी जलवायु सहन नहीं कर सके।

(c) परिवर्तनशील जलवायु के कारण वनस्पतियों की कमी हुई, अतः शाकाहारी सरीसृपों को आहार मिलना कठिन हो गया।

(d) यह डरपोक, बुद्धिहीन व सुस्त थे अतः माँसाहारी सरीसृपों ने इनको खाना शुरू कर दिया।

(e) समतापी स्तनियों ने इनके अण्डों को नष्ट कर दिया।

आर्कियोप्टेरिक्स (Archeopteryx) के अलावा इस कल्प में आर्कियोर्निथीज (Archaeornithes) तथा हैस्पेरॉर्निस (Hasperornis) नामक आदि–दन्तयुक्त आदि – पक्षियों की उत्पत्ति हुई। बाद में ये धीरे–धीरे सभी विलुप्त हो गये तथा इनके स्थान पर आधुनिक पक्षियों की उत्पत्ति हुई।

इस कल्प में अण्डे देने वाले मॉनोट्रीम तथा बच्चे देने वाले मार्सुपियल्स (Marsupials) आदि स्तनियों का विस्तार व विभेदीकरण हुआ। इसके साथ–साथ जरायुज (Viviparous) स्तनियों की उत्पत्ति हुई।

इस कल्प के अन्त तक सरीसृपों में सभी भीमकाय डाइनोसॉर्स आदि नष्ट हो गये, केवल छोटे आकार वाली छिपकलियों, मगरमच्छ आदि की जातियाँ शेष बचीं। आधुनिक मछलियों तथा कीटों का व्यापक विकास हुआ।

पादप (Plants)– इस कल्प में अनावृत्तबीजी (Gymnosperms) समाप्त हुए तथा आवृत्तबीजियों (Angiosperms) का व्यापक विकास व विस्तार हुआ जिससे इनके जंगल बने।

(इ) नूतनजीवी या सीनोजोइक महाकल्प (Coenozoic Era)

यह वर्तमान महाकल्प है जिसका प्रारम्भ लगभग 6.30 करोड़ वर्ष पूर्व से माना जाता है। इसकी शुरुआत शैल–पर्वत क्रान्ति के बाद हुई।

भौमिक दशा (Geological Conditions)– आदि भू–पटल पर उथल–पुथल के पश्चात् वर्तमान पर्वत–श्रेणियाँ, नदियाँ, द्वीप, समुद्र आदि बने तथा ध्रुवों पर हिमपातीय जलवायु के कारण हिमखण्ड बने।

इस महाकल्प में आवृत्तबीजी पौधों (Angiosperm Plants) तथा स्तनियों (Mammalian) का विकास हुआ। इसलिए इस महाकल्प को स्तनियों तथा आवृत्तबीजियों का युग (Age of Mammals and Angiosperms) कहते हैं। इनके अतिरिक्त आधुनिक मछलियों, कीटों तथा पक्षियों आदि का भी विकास हुआ। इस महाकल्प को क्रमशः दो कल्पों तथा युगों (Epochs) में बाँटा गया है–

(i) तृतीय कल्प (Tertiary Period) (Third Period) (Duration: 1-63 million years)– इस कल्प की अवधि लगभग 6.20 करोड वर्ष आँकी जाती हैं। इस कल्प को पाँच युगों में बाँटा गया है जो क्रमशः निम्नलिखित प्रकार है–

(a) पैलिओसीन युग (Paleocene Epoch)– इसकी अवधि लगभग 50 लाख वर्ष आँकी गयी है। इस युग में स्तनियों का काफी विकास व विभेदीकरण हुआ। कीटभक्षी स्तनियों से माँसाहारी स्तनी बने।

(b) इओसीन युग (Eocene Epoch)– इस युग की अवधि लगभग 2.20 करोड वर्ष आँकी गयी है। जलवायु कुछ गर्मी थी।

आदि निम्न श्रेणी के स्तनी अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचे तथा जरायुज (Viviparous) स्तनियो का विकास कई दिशाओं में देखा गया। अतः स्थल पर चुहे, ऊँट, घोड़े, बन्दर तथा जल में समुद्री गाय (Sea Cow) व व्हेल (Whale) तथा वायु में आधुनिक पक्षियों का विकास हुआ।

आवृत्तबीजी पादपों का विस्तार व विभेदीकरण जारी रहा। इस युग में घास पादपों की उत्पत्ति सबसे महत्वपूर्ण थी।

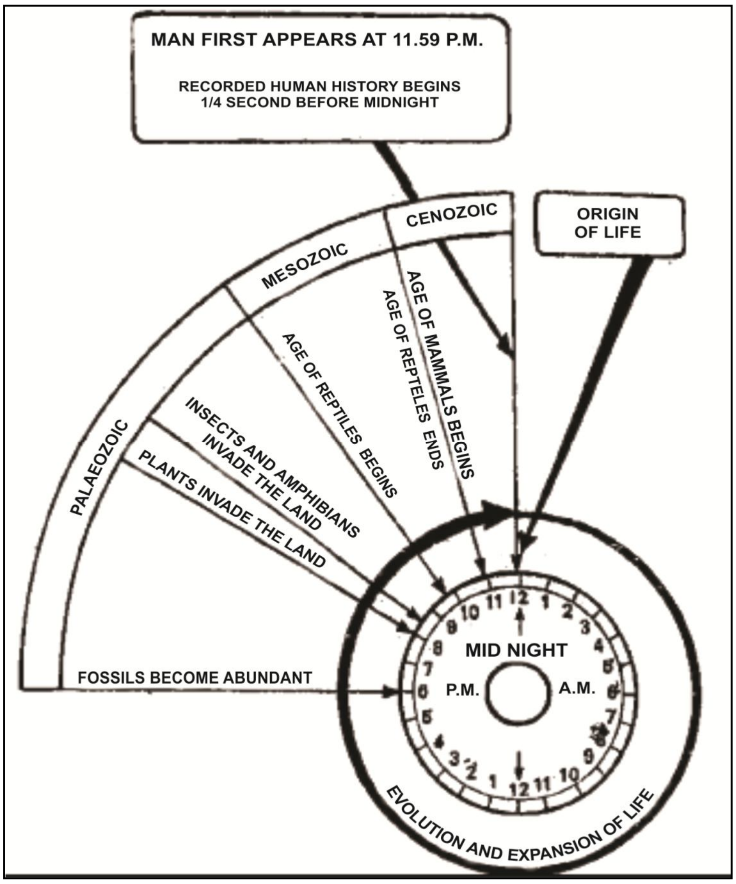

चित्र क्र. 5.35: **The History of Life on a 24-hours Scale**

(c) **ओलिगोसीन युग (Oligocene Epoch)**– इसकी अवधि 1.10 करोड वर्ष आँकी जाती है। इस समय जलवायु कुछ गर्म थी तथा स्थल कुछ नीचा हुआ।

निम्न श्रेणी के स्तनी विलुप्त होने लगे तथा जरायुज स्तनियों का विस्तार व विभेदीकरण जारी रहा। आर्थ्रोपोड्स काफी बने तथा उनमें उन्नति हुई। इसके साथ आधुनिक कीटों की भी उत्पति हुई। सरीसृपों मे कछुओं, घड़ियालों तथा मगर आदि का विकास हुआ। घोड़े के विकास–क्रम में इयोहिप्पस (Eohippus) से मीसोहिप्पस (Mesohippus) की उत्पत्ति हुई। बन्दरों से कपियों की उत्पत्ति हुई। एन्थ्रोपाइड (Anthropoid) जन्तुओं का इसी युग में पदार्पण हुआ।

वनस्पतियों में उष्ण कटिबन्धीय वनों का विस्तार हुआ। आवृत्तबीजियों में एकबीजी तथा द्विबीजी दोनों का विकास हुआ।

(d) **मायोसीन युग (Miocene Epoch)**– इसकी अवधि लगभग 1.20 करोड वर्ष आँकी जाती है। अमेरिका महाद्वीप में कास्केड (Cascade), सियरा आदि पर्वत श्रेणियों का निर्माण हुआ तथा उत्तरी–पश्चिमी अमेरिका में ज्वालामुखी पर्वन बने। जलवायु ठण्डी थी, अतः शीत के कारण अधिकांश वनस्पतियाँ नष्ट हो गई तथा जंगल नष्ट होने लगे।

इस युग तक माँसाहारी मार्सुपियल्स (Marsupials)– क्लैडोसिस्टिस (Cladoscistis), भीमकाय आर्मेडिलो (Giant Armadillo) तथा भीमकाय स्लॉथ (Giant Sloth) आदि विकसित हो चुके थे तथा आधुनिक स्तनियों का विकास जारी रहा, जैसे– हाथी, कुत्ता, घोडा, भेड़–बकरियों आदि स्तनी बने। मीसोहिप्पस (Mesohippus) से तीन उंगलियों वाले मेरीकिप्पस (Merychippus) की उत्पत्ति हुई। एन्थ्रोपाइड्स से विभिन्न कपि मानव बने।

(e) **प्लियोसीन युग (Pilocene Epoch)**– इस युग की आयु लगभग 1.20 करोड वर्ष आँकी जाती है। इस युग की जलवायु ठण्डी थी, अतः अधिकांश वनस्पतियाँ नष्ट हुई तथा काष्ठीय पौधों की अपेक्षाकृत शाकीय पौधे खूब विकसित होने लगे तथा एकबीजपत्री पौधों का काफी विस्तार हुआ। इस युग में एक उंगली वाले घोड़े प्लियोहिप्पस (Pliohippus) का विकास हुआ। जरायुयुक्त स्तनियों का आधुनिकीकरण होने लगा तथा एन्थ्रोपाइड्स से मनुष्य के आदि–पूर्वज का विकास हुआ।

(ii) **चतुर्थक कल्प (Quaternary Period (Fourth Period)(Duration:1.0 million years)**– यह कल्प वर्तमान से लगभग 10 लाख वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ माना जाता है। इसे निम्नलिखित दो युगों में बाँटा गया है–

(a) **प्लीस्टोसीन युग (Pleistocene Epoch)**– इसकी अवधि लगभग 9 लाख 89 हजार वर्ष आँकी गयी है। इस युग की जलवायु काफी ठण्डी थी, अतः इस युग में चार बार हिमयुग आया जिससे हिमखण्ड

बने और अनेक जीव–जन्तु नष्ट हो गये तथा अनेक अन्य सुरक्षित स्थानों पर प्रवास (Migrate) कर गये। जल–स्तर के नीचा होने से यूरोपीय महाद्वीप तथा इंग्लैण्ड के तथा साइबेरिया एवं अलास्का के बीच स्थल–मार्ग बने। अतः इन स्थानों पर काफी जन्तुओं ने प्रवास किया। ठण्डी जलवायु के कारण कोमल तथा शाकीय पौधों का विकास जारी रहा। इस समय तक मानव में सामाजिक सभ्यता का विकास हो चुका था। इनके अतिरिक्त आधुनिक जीवों का विस्तार जारी रहा जिनकी पुष्टि इस युग के प्राप्त जीवाष्मों से होती है।

(b) आधुनिक युग (Recent or Holocene Epoch)– यह लगभग वर्तमान से 11 हजार वर्ष पुराना युग है। इसकी जलवायु गर्म हुई, अतः हिमखण्डों का पिघलना शुरू हुआ और अलवणीय जल की नदियों का विकास व विस्तार हुआ।

इस युग में कोमल शाकीय पौधों का विकास जारी रहा तथा एकबीजपत्री पौधों का व्यापक विस्तार हुआ।

आधुनिक जन्तुओं का विकास व विस्तार जारी रहा तथा जन्तुओं में मनुष्य ने अपनी सर्वोच्चता का प्रभुत्व स्थापित किया, इसीलिए इस युग को **'मानव–युग'** (Age of man) कहते हैं।

5.6.2 द्वीपीय प्राणी समूह (Insular Fauna)

द्वीपों पर प्राणियों का वितरण एक जटिल एवं प्रमुख विधि होती है, क्योंकि जो द्वीप आपस में पास–पास पाये जाते हैं, ये अपने में विपरीत, भिन्न प्राणी समूहों को दर्शाते हैं। प्राणी भूगोल (Zoo geography) के विद्यार्थी के लिए द्वीपों का प्राणी जीवन अधिक रुचिपूर्ण होता है। प्रायः यह देखा गया है कि अनेक द्वीपों (Islands) का प्राणी समूह (Fauna) उनके समीप स्थित महाद्वीपों में पाये जाने वाले प्राणी समूह से कुछ भिन्न प्रकार का होता है। यह एक नियम होता है कि द्वीपों में वंश (Genera) एवं जातियाँ (Species) पायी जाती है। प्राणी समूहों की भिन्नता के कारण इन द्वीपों (Islands) को उनसे सम्बन्धित महाद्वीपों के परिमण्डलों में सम्मिलित करना सम्भव नहीं है। **वालेस** (Wallace) एवं **डार्विन** (Darwin) दोनों ने सभी प्रकार के द्वीपों को दो समूहों में विभाजीत किया है। दो श्रेणियाँ है–

(अ) महाद्वीपीय द्वीप (Continental Islands)

(ब) समुद्री द्वीप (Oceanic Islands)

(अ) महाद्वीपीय द्वीप (Continental Islands)– महाद्वीपीय का अर्थ होता है कि वह द्वीप जोकि किसी महाद्वीप के समीप स्थित होता है। ऐसे द्वीपों में चट्टानें पायी जाती है। आदिकाल में यह द्वीप महाद्वीप के भाग थे, लेकिन बाद में किन्हीं परिस्थितीयों के कारण महाद्वीपों के मुख्य भाग से पृथक् हो गये। इसी कारण इन द्वीपों पर मुख्य महाद्वीप के समान प्राणी समूह भी पाये जाते हैं, जिसमें कुछ स्तनधारी (Mammals) तथा उभयचरी (Amphibians) आवश्यक रूप से पाये जाते हैं। इसके विशेष प्राणियों का स्वभाव (Nature) एवं संख्या (Number) उस समय पर आधारित होती है जब द्वीप महाद्वीप से पृथक् हुआ था। अनेक महाद्वीप अधिक

गहरे जल के द्वारा पृथक् रहते हैं। इनकी उत्पत्ति अधिक प्राचीन मानी जाती है। इनको किसी महाद्वीप का अवशेष भी कह सकते हैं।

टिप्पणी

महाद्वीप एवं द्वीप के बीच में स्थित जलीय समुद्री भाग को **जलडमरूमध्य** (Strait) कहते हैं। **उदाहरण**– यूरोप एवं ग्रेट ब्रिटेन के बिच डोवर जलडमरूमध्य (Dover Strait) एवं चीन तथा फार्मोसा (China and Formosa) के बीच फार्मोसा जलडमरूमध्य (Formosa strait)

महाद्वीपीय द्वीपों (Continental Islands) के प्राणी समूहों की विशेषताएँ (Special features) निम्नलिखित होती है–

1. उड्डयन अनुकूलता वाले प्राणी इन द्वीपों से महाद्वीपों तक तथा वहाँ से इन द्वीपों तक आसानी से आ–जा सकते हैं।
2. महाद्वीपीय द्वीप (Continental Islands) के प्राणी समूह एवं द्वीपीय प्राणी समूहों में अनेक समानताएँ पायी जाती हैं।
3. प्राचीन महाद्वीपीय द्वीपों के प्राणियों में वह नई जातियाँ (Species) नहीं पायी जाती हैं जो सम्बन्धित मुख्य पृथ्वी के भाग पर विकसित हुई।
4. इन द्वीपों पर पाये जाने वाले थलीय प्राणी द्वीपों के अलग होने के समय ही मुख्य भू–भाग से इन द्वीपों में आये थे।
5. कभी–कभी महाद्वीपों में प्राणियों की वह आदिकालीन (Primitive) जातियाँ मिलती हैं जोकि मुख्य भू–भाग में जैविक विकास (Organic evolution) के क्रम में संघर्ष के कारण लुप्त हो गई।

महाद्वीपीय द्वीपों के कुछ उदाहारण–

1. ग्रेट ब्रिटेन (Great Britain), 2. बोर्नियो (Borneo), 3. जावा (Java), 4. फिलीपीन्स (Philippines), 5. फार्मोसा (Formosa), 6. मेडागास्कर (Medagascar), 7. न्यूजीलैण्ड (Newzealand)

1. **ब्रिटेन द्वीप समूह (Britain Island)**– इसमें दो द्वीप आते है– ब्रिटेन जो कि 89,000 वर्ग मील में फैला है तथा आयरलैण्ड जोकि 32,000 वर्ग मील में फैला हुआ है। भूगर्भीय इतिहास जटिल है। ऐसा समझा जाता है कि पेलियोजोइक (Palaeozoic) एवं मीसोजोइक (Mesozoic) युग में उत्तरी एवं दक्षिणी थल आपस में सम्बन्धित थे। मायोसिन (Miocene) युग में ब्रिटेन, यूरोप से पृथक् हुआ।

   इस द्वीप में प्राणी समूह का विकास कम पाया जाता है। इस द्वीप समूह में श्रू (Shrew) छछूँदर (Mole), हेजहॉग (Hedgehogs), खरगोश (Rabbits), खरहा (Hares), गिलहरी (Squirrels), म्यूरिड चूहे (Murid rats), बैजर्स (Badgers), बिल्लियाँ (Cats), कुछ चमगादड, एवं लाल हिरण पाये जाते है। समुद्री पक्षी अधिक पाये जाते हैं। सरीसृप एवं उभयचरी प्राणी कम पाये जाते हैं।

2. **बोर्नियो (Borneo)**– यह द्वीप एशिया महाद्वीप के दक्षिणी–पूर्वी छोर पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल 2,90,000 वर्ग मील है। यह उष्ण–

कटिबन्धीय द्वीप है, इसमें ऊँची–ऊँची तथा उन्नत पर्वत श्रेणियाँ मिलती है। एशिया महाद्वीप से एक उथले समुद्र द्वारा अलग है।

प्राणि समूह (Fauna)–

(i) इस द्वीप पर ओरिएण्टल क्षेत्र के स्तनधारी जन्तु बड़ी मात्रा में मिलते है।

(ii) इस द्वीप पर स्तनधारियों के 175 कुलों में से 55 कुल मिलते हैं।

(iii) बोर्नियों में पक्षियों की 126 विशिष्ट जातियाँ पाई जाती हैं।

(iv) इस द्वीप के जन्तुओं की मलाया के जन्तुओं से समानता है।

(v) स्तनधारियों में हाथी, भालू तथा टपीर मिलते है।

(vi) पक्षियों में जेय, कठफोड़वा, कोयल, तोते तथा फेजेण्ट मिलते हैं।

3. **जावा (Java)**– यह द्वीप भी एशिया महाद्वीप के दक्षिण–पूर्वी छोर पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल 49,000 वर्ग मील है। भूगर्भशास्त्र के अनुसार ये द्वीप प्राचीन व जटिल है तथा सम्भवतः प्लीस्टोसीन काल में ये एशिया महाद्वीप से जुड़े थे।

प्राणि समूह (Fauna)–

(i) इस द्वीप में स्तनधारियों की संख्या बहुत कम है।

(ii) स्तनधारियों की 90 जातियाँ यहाँ मिलती है। इसमे से 6 विशेष रूप से पायी जाती हैं।

(iii) पक्षियों की 300 जातियों में से 45 जातियाँ यहाँ मिलती है।

(iv) पक्षियों में जेय, कठफोड़वा, कोयल तथा तोते यहाँ नहीं मिलती हैं।

4. **फिलीपीन्स (Phillippines)**– फिलीपीन्स द्वीप दक्षिणी चीन के पास स्थित है। प्राणि–भूगोलीय स्थिति के अनुसार बोर्नियों के उत्तर–पूर्व में 1,000 मील लम्बाई में यह द्वीप फैले हुए हैं। ये द्वीप भी उष्ण–कटिबन्धीय है तथा इनमें भी बड़ी–बड़ी पर्वत श्रेणियाँ हैं।

प्राणि समूह (Fauna)–

(i) यहाँ स्वच्छ जल की मछलियों में छोटी **सिप्रिनिडस** (Cyprinids) मछलियाँ पायी जाती है।

(ii) यहाँ **एम्फीबियन्स** (Amphibians) सबसे मिलते हैं।

(iii) मेंढक की सभी जातियाँ यहाँ मिलती है।

(iv) **सरीसृपों** (Reptiles) में मगर, छिपकली तथा सर्प बहुतायत में पाये जाते हैं।

(v) यहाँ पाये जाने वाजे **पक्षियों** की 440 जातियों में से 122 जातियाँ विशेष रूप से मिलती हैं।

टिप्पणी

(vi) **स्तनधारियों** में उडन लैमूर (Galeopithecus), वृक्ष श्रू (Tree shrews), हिरण, भैंसा (Buffilus, bhindorensis), कुछ चूहे तथा चमगादड़ (Bat) विशेष रूप से मिलते है।

5. **फार्मोसा (Formosa)**– यह द्वीप चीन से लगभग 5 किमी. की दूरी पर स्थित है। इस द्वीप का कुल क्षेत्रफल 14,000 वर्ग मील है।

मत्स्य वर्ग (Fishes) के अन्तर्गत इस द्वीप मे सिप्रिनिड्स (Cyprinids) एवं सिलियूरिड्स (Silliurids) मुखर रूप से पायी जाती हैं। स्तनी वर्ग के अन्तर्गत काला रीछ (Black bear), शल्क युक्त चींटीखोर (Scaly ant eater), चमगादड़ एवं अन्य मुख्य गण के प्राणी पाये जाते है।

6. **मेडागास्कर (Madagascar)**– यह अफ्रीकी महाद्वीप के पूर्व मे 260 मील दूर हिन्द महासागर में स्थित है। यह 24,000 वर्ग मील क्षेत्र में फैला हुआ है। भूगर्भीय (Geologically) यह एक अधिक प्राचीन द्वीप है जो इओसीन युग (Eocene) में अफ्रीका से पृथक् हुआ। इस द्वीप में ग्रेनाईट (Granite) से बना पठारी प्रदेश एवं कुछ ज्वालामुखी चट्टानें (Volcanic rocks) हैं। इस द्वीप में फर्न के जंगल, बाँसों के जंगल (Forests of Ferns and Bamboos), दलदल आदि पाये जाते हैं।

प्राणि समुह (Fauna)–

(i) स्वच्छ जलीय मछलियाँ (Fresh water fishes) यहाँ नहीं पायी जाती हैं।

(ii) **उभयचरी** (Amphibians) प्राणियों के अन्तर्गत पोलीपेडेटिड (Polypadatid), वृक्ष पर रहने वाले मेंढक पाये जाते है जोकि ओरिएण्टल अफ्रीका परिमण्डल में भी पाये जाते हैं।

(iii) **सरीसृप** (Reptiles) के अन्तर्गत, अनेक ओरिएन्टल एवं इथोपियन क्षेत्रों के सरीसृप नहीं पाये जाते हैं। यहाँ पार्श्व ग्रीवा कछुए (Side neck turtles), थलीय कछुए, काँटेदार छिपकलियाँ (Spiny lizards) केमेलियोन (Chameleons) तथा गेकोस (Geckos) पाये जाते हैं। विषैले सर्पों का अभाव होता है।

(iv) **पक्षियों** (Birds) के अन्तर्गत इस द्वीप में अनेक जातियाँ मिलती है। स्थानीय जातियों के अन्तर्गत दो उड्डयनहीन (Flightless) है– मीसोनेटिड (Mesonatids) एवं भीमकाय हाथी पक्षी (Giant Elephant Bird) है। दो उड्डयन (Volant) पक्षियों में फिलेपिटास (Philepittas) एवं वेंगास (Vangas) होती है। यह फलभक्षी एवं कीटभक्षी होती है।

(v) स्तनी वर्ग के अन्तर्गत आने वाले प्राणियों में श्रू (Shrew), म्यूरिड चुहे, अफ्रीकन बुश पिग (African bush pig), चमगादड़, प्राइमेटस में तीन लीमर्स की जातियाँ पायी जाती हैं।

7. **न्यूजीलैण्ड (NewZealand)**– यह ऑस्ट्रेलिया के दक्षिण–पूर्व (South-East) में 1,000 मील की दूरी पर स्थित है। यह 1,00,000 वर्ग मील क्षेत्र में

स्थित है। इसमें मुख्य दो द्वीप है। द्वीप मे पहाड, जटिल ज्वालामुखी चट्टानें पायी जाती है। मीसोजोइक (Mesozoic) युग में यह ऑस्ट्रेलिया के मुख्य भाग से सम्बन्धित था।

प्राणि समूह (Fauna)–

(i) इस द्वीप के प्राणी ऑस्ट्रेलिया के प्राणियों से अधिक मिलते हैं। अनेक आदिकालीन कशेरुक प्राणियों के जीवाश्म अधिकता से प्राप्त होते हैं।

(ii) **उभयचरी** (Amphibians) प्राणियों के अन्तर्गत लियोपेल्मा (Liopelma), मेंढक की जाति मिलती है।

(iii) स्वच्छ जलीय मछलियाँ नहीं मिलती है।

(iv) **सरीसृपों के अन्तर्गत स्फनोडोन** (Sphenodon) की जातियाँ, गेकोस (Geckos), स्किंक (Skinks) मिलते हैं। स्फेनोडोन (Sphenodon) को जीवित जीवाश्म (Living fossils) कहते हैं। कछुए, थलीए सर्प यहाँ नहीं मिलते हैं।

(v) **पक्षी वर्ग के अन्तर्गत उड्डयनहीन** (Flightless) में कीवी (Kiwi), रैन्स (Wrens), उल्लू–तोता (Owl-Parrot), होते हैं। उड्डयन सक्षम (Flighted) में वैटल पक्षी (Wattle birds) तथा न्यूजीलैण्ड रैन्स (NewZealand Wrens) होती है।

(vi) स्तनी प्राणियों में केवल चमगादड़, भेड़, बकरी, गाय, घोड़ा आदि यहाँ मिलते हैं।

(ब) समुद्री द्वीप (Oceanic Islands)– समुद्री द्वीप वह द्वीप (Islands) होते हैं जोकि कभी किसी महाद्वीप से सम्बन्धित नहीं रहे। स्वयं ज्वालामुखी की क्रियाओं या गतियों के कारण उत्पन्न हुए या यह प्रवाल (Coral) भित्ति के द्वारा बनते हैं या दोनों विधियों के द्वारा बनते हैं। यह जलीय भाग में भू–भाग से काफी दूरी पर स्थित होते हैं। ऐसे द्वीपों के प्राणी समूह विशेष प्रकार के होते हैं।

प्राणि समूह (Fauna) की विशेषताएँ

(a) इसमें विचित्र पक्षी, कीटों तथा कुछ सरीसृपों का स्पष्ट अनुपात पाया जाता है।

(b) छोटी प्राणी – कीट (Insects), छिपकली (Lizard) प्रायः अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

(c) प्राणी अधिक विविधता को प्रदर्शित करते हैं।

(d) स्तनी, उभयचरी, (Mammals, Amphibians) प्रायः अनुपस्थित या कम संख्या में पाये जाते हैं।

(e) स्तनी वर्ग के अन्तर्गत चमगादड़, चूहे आदि अधिक दिखाई देते हैं। माँसाहारी का अभाव होता है।

(f) प्राणी समूह पृथक्करण (Isolation), भोजन, आवास के लिए संघर्ष एवं जलवायु से प्रभावित होता है।

टिप्पणी

(g) इस द्वीप पर वह प्राणी आते हैं जोकि उड्डयन में सक्षम होते हैं। या बर्फ के टुकडों की सहायता से यहाँ पहूँचते हैं।

(h) यहाँ पर पाये जाने वाल कीटों में न उडने की प्रवृत्ति के विकास के कारण बिना पंख वाले कीटों की उत्पत्ति होती है। पक्षियों में अपने चमकीले एवं चटक रंगों को त्यागने की प्रवृति मुख्य भू–भाग पर पाये जाने वाले सम्बन्धित प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित होती है। यही कारण है कि महासागरीय द्वीपों पर पाये जाने वाले पक्षी प्रायः सफेद या काले होते हैं।

(i) प्राणियों में प्रतिस्पर्धा नहीं के बराबर होती है और केवल यही कारण है कि मानव द्वारा उन द्वीपों पर लाये गये प्राणी सफलतापूर्वक विकसित होते हैं।

समुद्री द्वीपों के अन्तर्गत एजोरैस, बर्मुदा, गालापैगोस आदि द्वीप आते हैं। यहाँ गालापैगोस का वर्णन दिया जा रहा है।

गैलापैगोस द्वीप (Galapagos Islands)

यह द्वीप समूह दक्षिण अमेरिका के इक्वेडोर (Equador) के पश्चिमी तट से लगभग 600 मील दूर प्रशान्त महासागर में स्थित है। यह ज्वालामुखी द्वीपों का समूह है। इन द्वीपों के अन्तर्गत 5 बडे द्वीप, 19 छोटे द्वीप एवं 47 चट्टानें आती है। इनका क्षेत्रफल 2,870 वर्ग मील है। इन द्वीपों पर सरीसृपों (Reptiles) की अधिकता पायी जाती हैं, बड़े कछुए (Turtles) पाये जाते हैं।

छिपकली (Lizard) की कुछ जातियाँ तथा सर्पो (Snake) की दो जातियाँ पायी जाती है।

छोटे आकार के कीट (Insect) एवं मौलस्क भी पाये जाते हैं।

यह जन्तु समूह अमेरिका के प्राणी समूह के साथ बन्धुता (Affinities) दर्शाते हैं। 100 जातियाँ पायी जाती है। इनमें से 72 पक्षियों की जातियाँ पायी जाती है। इन द्वीपों में फिन्च (Finch) बहुत संख्या में पायी जाती है। इन फिन्चेज (Finches) का जैव–विकास (Organic evolution) में अधिक महत्व होता है। इन पक्षियों को डार्विन फिन्च (Darwin finches) भी कहते हैं। ऐसा समझा जाता है कि डार्विन के फिन्चेज (Finches) बहुत पहले प्रवास (Migration) द्वारा गैलापेगोस द्वीप समूह पर पहुँचे। यह फिन्चेज (Finches) अन्य जातियों से भिन्न होती है और अनुकूल विकिरण (Adaptive radiation) द्वारा विभिन्न द्वीपीय प्राणी बनते हैं। फिन्चेज (Finches) की चोंच (Beak) शंक्वाकार (Conical) होती है। डार्विन के फिन्चेज (Finches) की चोंच (Beak) विभिन्न प्रकार की पायी जाती है। इस प्रकार इनका स्वभाव महाद्वीप फिन्च (Finch) से भिन्न हो गया। डार्विन के अनुसार यह द्वीप समूह विकास की एक जीवित प्रयोगशाला है।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

31. रेप्टाइल्स का स्वर्ण युग–

    (अ) सीनोजोइक (ब) आर्किओजोइक

    (स) मीसोजोइक (द) दैलियोजोइक

32. निम्नलिखित में से किन प्राणियों का पेलियोजोइक युग में प्रभुत्व था?

    (अ) मछलियों (ब) स्तनीय प्राणी

    (स) पक्षी (द) सरीसृप

33. सरीसृप युग है–

    (अ) पुराजीवी महाकल्प (ब) मध्यजीवी महाकल्प

    (स) प्रागजीवी महाकल्प (द) परमियन कल्प

34. मछलियों का युग कहा जाता है–

    (अ) कैम्ब्रियन काल (ब) सिल्युरियन काल

    (स) डिवोनियन काल (द) परमियन काल

5.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.	(ब)	13.	(अ)	25.	(स)
2.	(अ)	14.	(द)	26.	(ब)
3.	(स)	15.	(ब)	27.	(अ)
4.	(ब)	16.	(अ)	28.	(अ)
5.	(स)	17.	(द)	29.	(स)
6.	(अ)	18.	(स)	30.	(अ)
7.	(द)	19.	(द)	31.	(ब)
8.	(अ)	20.	(स)	32.	(अ)
9.	(ब)	21.	(ब)	33.	(ब)
10.	(अ)	22.	(द)	34.	स)
11.	(ब)	23.	(ब)		
12.	(स)	24.	(स)		

5.8 सारांश (Summary)

जीवाश्म विज्ञान को जीवाश्म के अध्ययन का विज्ञान कहते हैं, जो कि प्राचीन सजीव भूपर्पटी की विभिन्न स्तरों मे अवशेषों, ढाँचों या चिन्हों के रूप में परिरक्षित मिलते हैं। इसके मुख्य प्रभाग–सूक्ष्म जीवाश्मिकी, वनस्पति जीवाश्मिकी, प्राणी जीवाश्मिकी होते हैं। सामान्यतः जीवाश्म का अर्थ है ''खोदकर निकाली हुई वस्तु''। प्रायः जीवों के मृत हो जाने पर तलछटी की नम कीचड में धँस जाने एवं उसके ऊपर समयानुसार रेत, मिट्टी की तह पर तह जमने, शरीर के कठोर भाग में मिट्टी अथवा खनिज धँसकर इसी प्रकार की आकृति बन जाने के फलस्वरूप चट्टानों का रूप ले लेने से जीवाश्म का निर्माण होता है। इस प्रकार जीवाश्म निर्माण की प्रक्रिया को जीवाश्मीभवन कहते हैं। इसकी कई विधियाँ हैं जैसे– वास्तविक परिरक्षण, अश्मीभवन, कोप्रोलाइट आदि। जीवाश्म वास्तविक, अश्मीभूत चिन्ह तथा साँचे एवं ढलित जीवाश्म प्रकार के होते हैं। जीवाश्म अवसादी चट्टानों मे पाए जाते है। इस तरह से जीवाश्म जीवों के कार्बनिक विकास की अवस्थाओं का चित्रण करते हैं। जिनका पहले भू–वैज्ञानिकी आयु निर्धारण, जन्तु वर्गों की वंशावली अध्ययन, जीवाश्मों द्वारा पुरा भूगोल अध्ययन आदि में होता है। आदि पृथ्वी पर के बाद से जैव–विकास की रूपरेखा जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि जो जीवाश्म प्राप्त हुआ, उसकी आयु का पता करना आवश्यक हैं। चट्टान की आयु का पता लगाना, चट्टान का आयु निर्धारण कहलाता है। जो कि युरेनियम-लैंड विधि तथ रेडियोएक्टिव कार्बन विधि द्वारा किया जाता है।

वातावरणीय परिस्थितियों के परिवर्तनों के साथ–साथ भौगोलिक दशाओं में परिवर्तन के अतिरिक्त आदिकाल के जीवित प्राणियों के आकार एवं जीवन क्रियाओं एवं अशन (Feeding) स्वभाव अधिक भार के कारण यह प्राणी समयानुसार धीरे–धीरे विलुप्त होते गए, जो कि वर्तमान समय में जीवाश्म के रूप में पाए जाते है। जैसे डायनोसॉर्स एवं आर्कियोप्टेरिक्स। विलुप्त प्राणियों मे से कुछ प्राणियों में विभिन्न संघों के एक साथ लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार के प्राणियों को संयोजक कडियाँ कहा जाता है। विलुप्त प्राणी अकशेरुक एवं कशेरुक दोनों समूहों के अंतर्गत आते हैं। कशेरुक प्राणियों के अन्तर्गत विलुप्त प्राणी, मत्स्य, उभयचरी, सरीसृपों, पक्षी एवं स्तनी वर्गो में आते है। डायनोसॉर्स की उत्पत्ति आदिम काटिलोसोरियन स्तंभ से हुई जोकि उपवर्ग– आर्कोसारिया मे आते है। कुछ डायनोसॉर्स इस प्रकार है– ब्रोंटोसॉर्स, डिप्लोडोकस, गिगेन्टोसॉर्स, केम्पटोसॉर्स, इगवानोडॉन, ऐनेटोसॉर्स, स्टेगोसॉरस एवं ट्राइसिरेटोप्स। इस अध्याय के अध्ययन से ज्ञात हो चुका है कि डायनोसॉर का जीवन प्रारंभिक मीसोजोइक युग में हुआ। ट्रायसिक काल मे जो डायनोसॉर्स पाए जाते थे, वे माँसाहारी थे, लेकिन कुछ शाकाहारी भी थे। जुरासिक काल के समय में अधिक संख्या में डायनोसॉर्स दोनों कवचीय एवं अकवचीय रूप में पाए जाते है। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार इन डायनासॉर्स के अन्तर्गत यह प्रमुख कारण था। परंतु कुछ अन्य वैज्ञानिकों के मतानुसार जलवायु के परिवर्तन भी इनके विलुप्तीकरण का कारण रहा है। ऐसी अनेक मत–धारणाएँ है जो कि इनके विलुप्तीकरण को स्पष्ट करती हैं।

आर्किआर्मिस जीवाश्म, आधुनिक पक्षियों एवं सरीसृपों के मध्य की संयोजी कड़ी को दर्शाता है क्योंकि इन जीवाश्म, पक्षियों में सरीसृप एवं पक्षियों दोनों के लक्षण पाए जाते हैं। आर्कीऑप्टेरिक्स के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संरचनात्मक लक्षण पक्षियों का सरीसृपों से उद्गम को दर्शाने के अतिरिक्त यह भी दर्शाते हैं कि पक्षी उसी आर्कोन्सॉस स्तम्भ से विकसित हुए है जिससे डायनोसॉर का उद्गम हुआ था। अतः यह स्पष्ट है कि पक्षी, सरीसृप प्राणियों से विकसित हुए हैं।

जीवों की संख्या तथा विविधता इतनी अधिक है कि इनका वितरण भूमण्डल पर समान रूप से नहीं किया जा सकता है। फिर भी प्रत्येक जाति के वितरण का निश्चित क्षेत्र होता है और वह उसी में सबसे अधिक सफलतापूर्वक निवास कर सकती है। इस आधार पर वालेल ने सम्पूर्ण जन्तु समुदाय को निश्चित भूखण्डों के तल को 6 प्रदेशों मे तथा प्रदेश को परिमण्डल मे बाँटा है।

पेलिआर्कटिक परिमण्डल की भौगोलिक सीमाएँ पुराने विश्व का उत्तरी भाग है जो कि स्थल द्वारा इथिओपियन तथा ओरिएण्टल परिमण्डलों में जुडा है। इस की जलवायु ठण्डी है। इस परिमण्डल में तापक्रम तथा वर्षा की विविधता बहुत है। पारिस्थिक विविधताओं के अधिक होने के कारण प्राणीजात अधिक समृद्ध नहीं है। इस परिमण्डल पर स्तनी, पक्षी, सरीसृप, उभयचर तथा अलवण जलीय मछलियों के वंश सम्मिलित हैं।

निआर्कटिक परिमण्डल की भौगोलिक सीमाएँ उष्णकटिबन्ध के उत्तर में अमेरिका, ग्रीनलैण्ड, न्यूफाडण्डलैण्ड तथा मैक्सिको के पठारी भाग तक है। इसकी जलवायु शीतोष्ण प्रकार की है, तथा परिवर्तनशील है। इस परिमण्डल में पेलिआर्कटिक तथा नियोट्रॉपिकल मण्डलों के मिश्रित जन्तु समुह पाए जाते हैं। इसमें स्तनधारियों के 26, पक्षियों के 40, सरीसृपों के 21, उभयचरों के 14 तथा अलवणीय जल की मछलियों के 24 वंश पाए जाते हैं। निआर्कटिक प्रदेश के केलिफोर्निया, कनाडा, चट्टानी पर्वत तथ एलेघेनी उपक्षेत्र हैं।

नियोट्रॉपिकल परिमण्डल में दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका, द. मैक्सिको का निचला उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश तथा पश्चिमी द्वीपसमूह आते हैं। यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबन्धीय है किन्तु द. अमेरिका के दक्षिण भाग की जलवायु शीतोष्ण है। यह दाबहीन वन, सवाना व अर्जेण्टाइना में पर्णपाती वृक्षों के वन तथा घास के मैदान है। जलवायु में विविधता के कारण विभिन्न प्रकार के जन्तु पाए जाते है। स्थलीय कशेरुकियों के 155 वंश तथा शेष प्राणी या अन्य प्रदेशों की भाँति है। रिया, अमेरिकन ऑस्ट्रिच, टिनामस आदि न उडने वाले विशेष क्षेत्रीय पक्षी है। यहाँ टाल्पीडी, आर्सिडी, सर्विडी, मृग, बकरी व भेड़ आदि अन्य प्रदेशों में सामान्य रूप से पाए जाने वाले स्तनी यहाँ नहीं मिलते है। इस परिमण्डल के चार उपक्षेत्र इस प्रकार है– ब्राजील उपक्षेत्र, चिली उपक्षेत्र, वेस्टइण्डीज उपक्षेत्र तथा मैक्सिकन उपक्षेत्र। इथियोपियन परिमण्डल में सहारा मरुस्थल के दक्षिण में स्थित अफ्रीका, मैडागास्कर, दक्षिण अरब आदि शामिल है। यह मुख्यतः उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश है। मध्य में घने जंगल व मैदान है। इसमें अनेक बड़ी–बड़ी नदियाँ है। दक्षिणीय भाग में शीतोष्ण जलवायु पायी जाती हैं। इसका प्राणिजात समृद्ध तथा विविधतापूर्ण है। शुतुरमुर्ग, पिट्टा, माउसवर्ड, हैमर हेडेड बर्ड, सेक्रेटरी बर्ड आदि यहाँ के स्थानिक

टिप्पणी

पक्षी है। इस परिमण्डल के चार उपक्षेत्र इस प्रकार हैं– दक्षिणी अफ्रीकी उपक्षेत्र, पूर्व अफ्रीकी उपक्षेत्र, पश्चिमी उपक्षेत्र तथा मैलागास्की उपक्षेत्र।

ओरिएण्टल परिमण्डल में एशिया महाद्वीप के सभी उष्णकटिबन्धीय भाग भारत, इण्डोनेशिया, श्रीलंका, मलेशिया, जावा, बोर्नियों, फारमोसा, फिलीपीन्स, दक्षिण चीन आदि शामिल हैं। यहाँ विभिन्न प्रकार की जलवायु पायी जाती है। उत्तरी भाग में शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु, उत्तर पूर्व में घनी बरसाती जंगल, पश्चिमी भाग में मरुस्थल तथा दक्षिणी भाग में घने शीतोष्ण कटिबन्धीय वन पाये जाते है। यहाँ का प्राणीजात इथिओपियन प्रदेश से काफी समानता रखता है। यहाँ पक्षी कुल अच्छी तरह से विकसित है। इसके अतिरिक्त स्तनधारियों की अनेक जातियाँ तथा वंश जैसे– मलायन तापी, भारतीय हाथी, शेर, बन्दर, ओरंगउटान तथा राइनोसिरास की तीन जातियाँ केवल इसी परिमण्डल में सीमित है। इस परिमण्डल के चार उपक्षेत्र है, भारतीय उपक्षेत्र, श्रीलंकाई उपक्षेत्र, इण्डोचाइना उपक्षेत्र, तथा इण्डोमलायन उपक्षेत्र।

ऑस्ट्रेलियन परिमण्डल में ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप, न्यूजीलैंड, तस्मानिया, न्यू गिनी, मोलकास तथा अन्य समीपवर्ती द्वीपसमूह शामिल है। इसका अन्य परिमण्डल से स्थलीय सम्बन्ध नहीं है। यहाँ की जलवायु आंशिक रूप से शीतोष्ण तथा उष्ण कटिबन्धीय है। यहाँ स्थलीय कशेरुकियों के 134 कुल पाए जाते हैं। स्तनियों के मानोट्रिमैट्स तथा मार्सुपियल्स केवल इसी परिमण्डल में पाए जाते हैं। यहाँ प्लेसेण्टलज स्तनधारी नहीं पाए जाते हैं। इस परिमण्डल के भी चार उपक्षेत्र है– ऑस्ट्रेलियन उपक्षेत्र, ऑस्ट्रोमलायन उपक्षेत्र, पोलीनेशियन उपक्षेत्र तथा न्यूजीलैंड उपक्षेत्र।

पृथ्वी पर जीवों के वंश वृक्ष में मानव की स्थिति सर्वोच्च है। मानव का विकास भी सरल पूर्वजों मे हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ है। मानव जीवों में अधिक विकसित एवं जैव–विकास का सबसे महत्वपूर्ण जीन है। मानव की वंशावली के अध्ययन से इसके विकासीय इतिहास मे आनेवाले परिवर्तनों के बारे में पता चलता है। मानव एक कशेरूक जरायुज स्तनीहोता है। मानव मस्तिष्क अधिक विकसित होता है। यह प्राइमेट प्राणी है। इन्हें कुल होमिनिडी में रखा गया है। मानव का वैज्ञानिक नाम होमोसेपियन्स सेपियन्स है।

जीवाश्मों के आधार पर मानव की उत्पत्ति मीजोजोइक महाकल्प के प्लायोसीन युग में 210 मिलियन वर्ष पूर्व हुई थी। मानव जैसे कपियों से आदि मानव का विकास लगभग 1 करोड 30 लाख वर्ष पूर्व हुआ है।

मानव के मुख्य विकासीय लक्षण सीधी खड़ी भंगिमा, संवेदी क्षमताएँ, अपसंवेदी अंगों में परिवर्तन, वस्तुओं को पकडना, संस्कृति जननक्षमता एवं मस्तिष्क का विकास है।

आदि पूर्वज प्राइमेट्स से आधुनिक मानव के विकास क्रम के अन्तर्गत पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के पूर्वज स्तनी आदि पूर्वज प्राइमेट्स, प्रोसीमियन प्राइमेट्स पूर्वज, मानवाकार (ऐन्थ्रोपॉइड) पूर्वज, प्रथम–चरण–अवमानव (Subman) कपि मानव का निकट मानव, प्रारम्भिक वास्तविक मानव एंव वास्तविक मानव है।

वास्तविक मानव के अन्तर्गत आधुनिक मानव होमोसेपिएन्स सेपिएन्स को रखा गया है। आधुनिक मानव का विकास क्रोमेगनन–मानव से हुआ है। धीरे–धीरे मध्य पाषाण युग में मानव ने पशुपालन, पढ़ने लिखने की क्षमता का विकास किया। अन्त में नव पाषाणकाल में मानव ने कृषि, गृहस्थ एवं सामाजिक जीवन व्यतीत करना सीखा।

क्रोमेगनन की उत्पत्ति के पश्चात् 40,000 वर्षो से मानव में कोई भी विशेष परिवर्तन नही आया इसका मुख्य कारण मनुष्य ने सांस्कृतिक विकास में अपनी आवश्यकतानुसार वातावरण की दशाओं को परिवर्तित करने की क्षमता पाई हैं। भविष्य में यही सांस्कृतिक विकास चलता रहेगा।

पूर्व से वर्तमान समय तक के पृथ्वी के इतिहास को चट्टानों की आयु के अनुसार 5 प्रमुख महाकल्पों मे बाँटा गया है। जो कि इस प्रकार है– आर्कियोजोइक, महाकल्प, प्रोटेरोजोइक महाकल्प पेलियोजोइक महाकल्प, मीसोजोइक महाकल्प तथा सीनोजोइक महाकल्प।

आर्कियोजोइक तथा प्रोटेरोजोइक महाकल्पों को सम्मिलित रूप से प्रीकैम्ब्रियन महाकल्प भी कहते हैं। तथा शेष महाकल्पों को सम्मिलित रूप से फैनेरोजोइक महाकल्प भी कहते हैं।

आर्कियोजोइक महाकल्प का आरम्भ भूपटल बनने के बाद वर्तमान से लगभग 370 करोड़ वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ माना जाता है। इस महाकल्प में पृथ्वी पर ज्वालामुखी का वर्चस्व था। आदि सागर मे तलछट का जमना प्रारम्भ हो गया था। इसलिए इसके शैल–स्तरों में कार्बन, चूने के पत्थर, लोहा, ग्रेनाइट का जमाव मिलते हैं। इस महाकल्प के प्रारम्भ में आदि सागर में जीवन की उत्पत्ति हो चुकी थी। इस महाकल्प में प्रारंभिक जीवों के अनेक प्रकार के पूर्व केन्द्रकीय मोनेरा तथा वर्तमान प्रोटिस्टा जैसे सरलतम एक कोशिका जीव बने।

प्रोटेरोजोइक महाकल्प में बर्फ जमने एवं जैव–विकास के प्रमाण मिलते हैं। इस महाकल्प के प्रारंभ में आदिसागर में प्रोटोजोआ जन्तु थे, जिनमें अधिकांश खोल युक्त रेडियोलेरियन थे। इसके पश्चात स्पंजो, सीलेण्ट्रेट्स, मोलस्का तथा आर्थ्रोपोडा आदि का विकास हुआ। इस महाकल्प के प्रारंभ मे जीवाणु तथा नीले हरे शैवाल थे, परन्तु बाद में आदिसागर के जल में शैवालों तथा कवकों का विकास हुआ।

पेलियोजोइक महाकल्प के दौरान आदि समूहों का विस्तार हुआ तथा कई विशाल पर्वत श्रेणियों का निर्माण हुआ। इस महाकल्प में जैव विकास में काक्षिकारी परिवर्तन हुए। आदिसागर से जीव भूमि पर आए। पृष्ठवंशीय जन्तुओं का उदय तथा विकास हुआ। इसी के साथ जिम्नोस्पर्म तथ टेरिडोफाइट पादपों का व्यापक विस्तार हुआ।

मीसोजोइक महाकल्प की अवधि लगभग 16 करोड 70 लाख वर्ष आंकी गई। इस युग में जल, थल, तथा वायु तीनों प्रकार के वातावरण मे सरीसृपों का प्रभुत्व कायम था। इस युग को सरीसृप का स्वर्णकाल/स्वर्णयुग कहा जाता है। इस महाकल्प को तीन कल्पों में बाँटा गया है– ट्राइऐसिक, जुरैसिक तथा क्रिटेशियस।

सीनोजोइक महाकल्प को वर्तमान महाकल्प कहते हैं, जिसका प्रारंभ लगभग 530 करोड़ वर्ष पूर्व माना जाता है। इसमें वर्तमान पर्वत श्रेणियाँ, नदियाँ, द्वीपसमूह आदि बने तथा ध्रुवों पर हिमपातीय जलवायु के कारण हिमखण्ड बने। इस महाकल्प में आवृतबीजीय पौधों तथा स्तनियों का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त आधुनिक मछलियों, कीटों, पक्षियों आदि का भी विकास हुआ।

द्वीपों पर प्राणीयों का वितरण एक जटिल एवं प्रमुख निधि होती है। क्योंकि जो द्वीप आपस मे पास–पास पाए जाते हैं ये अपने में विपरीत, भिन्न प्राणी समूहों को दर्शाते है। प्रायः यह देखा गया है कि अनेक द्वीपों का प्राणी समूह उनके समीप स्थित महाद्वीपों में पाए जाने वाले प्राणी समूह से कुछ भिन्न प्रकार का होता है। यह एक नियम होता है कि द्वीपों में वंश (Genera) एवं जातियाँ (Species) पायी जाती हैं।

5.9 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **जीवाश्मिकी (Paleontology):** वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत पृथ्वी के प्राचीन एवं विलुप्त सजीवों के भूगर्भीय इतिहास का अध्ययन किया जाता है।
- **प्राणी जीवाश्मिकी (Animal Paleontology):** इसके अन्तर्गत प्राणियों के जीवाश्मों का अध्ययन किया जाता है।
- **फॉसिल (Fossil):** इस शब्द की उत्पत्ति लॅटिन भाषा के फोसोलियम शब्द से हुई है। जिसका अर्थ खोदकर निकाली हुई वस्तु।
- **जीवाश्मीभवन (Fossilization):** जीवाश्म निर्माण की क्रिया को जीवाश्मीभवन कहते हैं।
- **अवसादी चट्टाने (Sedimentary rocks):** यह पानी में अवसादों के कारण बनती हैं। वे चट्टानें क्रमबद्ध पर्तो में विन्यासित होती है इस कारण इन्हें स्तरित चट्टानें भी कहते है। इन्ही चट्टानों में असंख्य प्राणियों में जीवाश्म पाए जाते है।
- **संयोजक कडी (Connecting Link):** इसके अन्तर्गत विलुप्त प्राणियों में से कुछ ऐसे प्राणी आते हैं जिनमें दो विभिन्न संघों के लक्षण एक साथ पाए जाते हैं। अर्थात् ये प्राणी दो विभिन्न समुदायों का परस्पर सम्बन्ध दर्शाते हैं। **उदाहरणार्थ**– आर्कियोप्टेरिक्स।
- **मीसोजोइक काल (Mesozoic Era):** इस काल को सरीसृपों का सुनहरा काल (Golden age of reptile) कहा जाता है। क्योंकि इसी काल में सरीसृप प्राणियों का अत्याधिक विकास हुआ। इस काल में सरीसृप विभिन्न आकार, रूप, परिमाण भार स्वभाव के थे। जैसे– डायनोसॉर्स।
- **विलुप्त प्रायः प्राणी (Extinct Animals):** आदि काल में जीवित रूप में पाए जानेवाले प्राणी वातावरणीय परिस्थितियाँ के परिवर्तनों एवं भौगोलिक

दशाओं में परिवर्तन के अतिरिक्त आकार एवं जीवन क्रियाओं, अधिक भार के कारण समयानुसार धीरे–धीरे खत्म हो गए। जिन्हें विलुप्त प्रायः प्राणी कहा जाता है।

- **परिमण्डल (Division):** प्रत्येक जाति के वितरण का निश्चित क्षेत्र होता है और वह उसी में सबसे अधिक सफलतापूर्वक रह सकती है। इसी क्षेत्र विशेष को परिमण्डल कहते हैं।
- **ओरिजिन ऑफ स्पीशीज (Origin of Species):** यह डार्विन द्वारा लिखित पुसतक का नाम है। जिसमें डार्विन ने तर्क द्वारा दर्शाया कि मानव जीव जन्तुओं के समान एक जाति है। जिसकी उत्पत्ति एव विकास अन्य जीव जन्तुओ के समान हुआ है।
- **विकास (Evolution):** जैविक जनसंख्या/आबादी की पैतृक विशेषताओं में पीढ़ी दर पीढ़ी परिवर्तन ही विकास है।
- **जाति (Species):** जीवविज्ञान में वर्गीकरण की सबसे छोटी मूल इकाई को जाति कहते है। और एक जीन की वर्गीकी श्रेणी के साथ साथ जैवविविधता की एक इकाई भी जाति है।
- **प्रजनन (Reproduction):** यह एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें पैतृक (माता–पिता) द्वारा नई संतति को जन्म दिया जाता है।
- **भौमिक क्रांति (Earth Revolution):** प्रकृति के भौतिक एवं जैविक कारकों में प्रलयकारी परिवर्तन होते है। जैसे नई पर्वत श्रेणियों का बनना पर्वतों आदि का समूहों में धँसना, जीवजातियों का पूर्ण रूप से नष्ट होना तथा नयी जीव जातियों की उत्पत्ति होना। इन्हे भौमिक क्रांति कहते है।
- **समुद्री द्वीप (Oceanic Island):** समुद्री द्वीप वह द्वीप होते हैं जोकि कभी किसी महाद्वीप से सबन्धित नहीं रहे। स्वयं ज्वालामुखी की क्रियाओं या गतियों के कारण उत्पन्न हुए या यह प्रवाल भित्ति के द्वारा बनते हैं। या दोनों विधियों द्वारा बनते है। यह जलीय भाग में भू–भाग से काफी दूरी पर स्थित होते है।
- **डार्विन फिन्च (Darwin's Finch):** शैलावैगोस द्वीप समूह दक्षिण अमेरिका के इक्वेडोर के पश्चिमी तट से लगभग 600 मील दूर प्रशान्त महासागर में स्थित है। इन द्वीपों में फिन्च बहुत संख्या में पाई जाती है। इन फिन्चेज का जैव–विकास में अधिक महत्व होता है। इन पक्षियों को डार्विन फिन्च कहते हैं। डार्विन के अनुसार यह द्वीप समूह विकास की एक जीवित प्रयोगशाला है।

5.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Question and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जीवाश्मों का आयु निर्धारण किस प्रकार किया जाता है? किन्ही दो विधियों का वर्णन कीजिए।
2. जीवाश्मों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. जीवाश्मों के निर्माण एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
4. जैव–विकास के क्षेत्र में जिवाश्मिकी के महत्व पर प्रकाश डालिए।
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–

   (i) अश्मीभवन (ii) जीवाश्म अभिलेख (iii) यूरेनियम लैंड विधि।
6. चट्टान की आयु–निर्धारण की किसी एक विधि का वर्णन कीजिए।
7. टिप्पणी लिखिये– जीवाश्मों की आयु निर्धारण।
8. जीवाश्म पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. जीवाश्म निर्माण की विधियों पर टिप्पणी लिखिए।
10. संक्षिप्त मे वर्णन कीजिए–

    (a) विलुप्त प्राणी (b) संयोजी कड़ी (c) डायनोसॉर्स
11. संक्षिप्त मे वर्णन कीजिए–

    (a) ट्राइसिरेटॉप्स (b) आर्कियोप्टेरिक्स (c) इग्वेनोडान
12. निम्नलिखित में से किन्ही दो का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए–
    (i) आर्किआप्टेरिक्स
    (ii) डिप्लोडोकस
    (iii) केम्पटोसॉर्स
13. संक्षिप्त में वर्णन कीजिए–
    (i) गण आर्निथिस्चिया के डायनोसॉर्स
    (ii) आर्कियोप्टैरिक्स के सरीसृपी लक्षण
    (iii) डायनोसॉर्स की उत्पत्ति
14. डायनोसॉर्स के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।
15. गण सोरिस्चिया के डायनोसार्स का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
16. गण आर्निथिस्चिया के डायनोसॉर्स का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
17. आर्किओप्टेरिक्स एवं इसके महत्व का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
18. प्राणि–भौगोलिक वितरण का वर्णन कीजिए।

19. नियोट्रॉपिकल एवं ऑस्ट्रेलियन परिमण्डलों में प्राणि–जाति का वर्णन कीजिए।
20. निआर्कटिक इथिओपियन परिमण्डलों की भौतिक दशा की तुलना कीजिए।
21. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–
    (अ) वैलेस रेखा (ब) इन्सुलर फॉना
    (स) वैबर रेखा (द) महाद्वीपीय ड्रिफ्ट
    (इ) ओरिएन्टल परिमण्डल (फ) द्वीपीय प्राणी समुदाय
    (म) इथिओपियन परिमण्डल का प्राणि–समूह
    (प) ऑस्ट्रेलियन प्राणी समूह
22. मानव विकास के समय होने वाले पाँच मुख्य परिवर्तन लिखिए।
23. होमो इरेक्टस की दो जातियों के नाम लिखिए।
24. गुफा मे रहने वाले तथा खाल के कपड़े पहनने वाले उपादी मानव का क्या नाम था?
25. टिप्पणी लिखिए–
    (i) जावा कपि मानव (ii) क्रोमेगनन मानव
    (iii) रामोपिथेकस (iv) पेकिंग मानव
    (v) पुराने समय के बन्दर
26. मानव एवं कपि की तुलना कीजिए।
27. क्रोमैगनन मानव के लक्षण लिखिये तथा स्पष्ट कीजिये कि वह आधुनिक मानव का निकटतम पूर्वज था।
28. ट्राइऐसिक तथा क्रिटेशियस कल्पों की तुलना कीजिए।
29. मत्स्य युग किस कल्प को कहते हैं? इसके जन्तुओं की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
30. स्टीगोसिफेलिया किस कल्प में उत्पन्न हुआ? इसके मुख्य लक्षण बताइए।
31. कैम्ब्रियन कल्प के जीवों का वर्णन कीजिए।
32. मध्यजीवी महाकल्प पर टिप्पणी कीजिए।
33. टिप्पणी लिखिए–
    (i) मीसोजोइक महाकल्प (ii) सीनोजोइक महाकल्प
    (iii) जुरैसिक काल (v) महाद्वीपी द्वीप
    (v) पेलियोजोइक महाकल्प

टिप्पणी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जीवाश्म की परिभाषा दीजिए, इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये तथा जीवाश्म बनाने की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
2. जीवाश्म क्या है? ये कितने प्रकार के होते हैं? जीव–विज्ञान मे जीवाश्मिकी के महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. रेडियोधर्मी आयु निर्धारण से आप क्या समझते हैं? जीवाश्मों की आयु निर्धारण में यह विधि किस प्रकार सहायक है।
4. जीवाश्म की परिभाषा दीजिए तथा विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
5. जीवाश्म किसे कहते हैं? इसके निर्माण की प्रक्रिया तथा महत्व का वर्णन कीजिए।
6. जीवाश्म क्या है? जीवाश्म बनने की क्रिया, महत्व तथा जीवाश्मों की आयु निर्धारण करने की विधियों का वर्णन कीजिए।
7. जीवाश्म निर्माण तथा जीवाश्मों की आयु निर्धारण की विधियों का वर्णन कीजिए।
8. विलुप्त प्राणियों पर एक निबन्ध लिखिए।
9. विलुप्त प्राणी से क्या समझते हो? गण सॉरिश्चिया के अन्तर्गत आने वाले डायनोसॉर्स का वर्णन कीजिए।
10. डायनोसॉर्स की उत्पत्ति एवं गण ऑर्निथिश्चिया के डायनोसॉर्स का वर्णन कीजिए।
11. डायनोसॉर्स के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए। डायनोसॉर्स की उत्पत्ति का वर्णन कीजिए।
12. आर्कियोप्टेरिक्स के विशिष्ट लक्षण एवं इसके महत्व के बारे में विस्तार से वर्णन कीजिए।
13. संयोजी कड़ी किसे कहते हैं? उदाहरण सहित विस्तृत वर्णन कीजिए।
14. विश्व के प्राणि भौगोलिक प्रमण्डलों का वर्णन कीजिए।
15. संसार के प्राणि–भौगोलिक प्रदेशों का विवरण दीजिए।
16. संसार के प्राणि भौगोलिक प्रदेश कौन–कौन से हैं? इथियोपियन एवं ऑस्ट्रेलिया प्रदेश के प्रमुख प्राणिजातों का वर्णन कीजिए।
17. पृथ्वी के विभिन्न भागों में पाये जाने वाले प्रमुख प्राणि जातों का वर्णन कीजिए।
18. प्राणि भूगोल के अध्ययन का महत्व तथा प्राणि–भौगोलिक सम्भागों के नाम लिखिये। ओरिएण्टल क्षेत्र के जन्तुओं का वर्णन कीजिए।
19. महाद्वीपीय विस्थापन से आप क्या समझते हैं? इसकी कार्यविधि को समझाइये।

20. ओरिएण्टल परिमण्डल की सीमाओं, विशेषताओं एवं वहाँ के जन्तु समूह का वर्णन कीजिए।
21. इथिओपियन परिमण्डल की भौगोलिक सीमाएँ, भौतिक गुण तथा प्राणि समुदाय का वर्णन कीजिए।
22. पेलिआर्कटिक और ओरिएण्टल परिमण्डल के प्राणि समुदाय का वर्णन कीजिए।
23. ऑस्ट्रेलियन परिमण्डल के प्राणि समूह के गुणों का विवरण देते हुए वहाँ के एन्डेमिक पशुओं की उपस्थिति की विवेचना कीजिए।
24. मानव के विकास पर एक निबन्ध लिखिये।
25. मानव विकास में जावा मानव का क्या महत्व है?
26. निएन्डरथल मानव एवं क्रोमेगनन मानव की तुलना कीजिए।
27. निएन्डरथल मानव का वर्णन कीजिए।
28. मानव के ऐतिहासिक विकास क्रम का विस्तार से वर्णन कीजिए।
29. भौमिक समय – सारणी के महाकल्पों के नाम लिखिए। मीसोजोइक महाकल्प के जीवों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए यह बताइए कि इस महाकल्प को रैप्टाइल–युग क्यों कहते हैं?
30. सीनोजोइक महाकल्प को कितने युगों में बाँटा गया है। प्रत्येक युग के जीवों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
31. जियोलॉजीकल टाइम–स्केल का चित्र बनाइये, वर्णन भी आवश्यक है।
32. पेलियोजोइक महाकल्प को कितने युगों में बाँटा गया है? प्रत्येक युग के जीवों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
33. एप्लैशियन क्रान्ति किस युग की देन है? इसका जैव–विकास तथा भौमिक वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ा है?
34. भूगर्भीय मापक्रम का सारणी के रूप में वर्णन कीजिए एवं प्रत्येक इरा (Era) की जलवायु एवं प्राणी–समूह की विशेषताएँ लिखिए।
35. भू–वैज्ञानिक समय सारणी क्या है? आर्कियोजोइक, पैलियोजोइक, सीनोजोइक महाकल्प का वर्णन कीजिए।
36. विभिन्न प्राणियों के वितरण को 'भौमिक समय सारणी' द्वारा एक टेबिल के रूप में दर्शाइये।
37. 'मीसोजोइक इरा' की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
38. 'भू–वैज्ञानिक' समय चक्र पर एक निबध लिखिए।

टिप्पणी

5.11 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Cytology – C.B. Power
2. Principle of Physiology & Anatomy – Tor-Tora
3. Animal Physiology – Goyal & Sastry
4. Animal Physiology and Biochemistry – Eckert and Ramelils
5. Animal Physiology and Biochemistry – Dr. K.V. Sastry